स्वाध्याय　　　　स्वमन्थन　　　　स्वावलम्बन

उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

(उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा निर्गत अधिनियम संख्या 10, 1999 द्वारा स्थापित)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

प्रथम खण्ड : आर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ

द्वितीय खण्ड : उपभोक्ता व्यवहार तथा मांग का सिद्धान्त

तृतीय खण्ड : उत्पादन के सिद्धांत

चतुर्थ खण्ड : कीमत का सिद्धांत

पंचम खण्ड : आय का वितरण

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद - 211013

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

ब्रंड

1

आर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ

इकाई 1

आर्थिक प्रणालियों की मूलभूत समस्याएँ 5

इकाई 2

आधारभूत संकल्पनाएँ 25

इकाई 3

आर्थिक प्रणालियाँ 43

खंड 1 आर्थिक प्रणाली की मूल समस्याएँ तथा आधारभूत संकल्पनाएँ

आजकल की गहन व्यावसायिक समस्याओं का उचित समाधान प्राप्त करने के लिए व्यक्तिगत अनुभव, अंतःप्रज्ञा, अंतर्दृष्टि, दूरदर्शिता तथा निर्णय आदि अब काफी नहीं हैं। व्यावसायिक समस्याओं के इष्टतम समाधान के लिए आर्थिक तर्क और विश्लेषण अनिवार्य हैं। वाणिज्य का विद्यार्थी होने के नाते आपको आर्थिक सिद्धांत का कार्यसाधक ज्ञान होना आवश्यक है। आर्थिक सिद्धांत का यह पाठ्यक्रम इस आवश्यकता को ही पूरा करने के लिए बनाया गया है।

यह आर्थिक सिद्धांत का परिचय खंड है। इस खंड का मुख्य उद्देश्य व्यष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के लिए कुछ आधार तैयार करना है। इसमें अर्थव्यवस्था के मूल प्रश्न और समस्याओं, आधारभूत आर्थिक शब्दावली और संकल्पनाओं तथा विभिन्न देशों में प्रचलित अनेक आर्थिक प्रणालियों की व्याख्या की गई है।

इस खंड में तीन इकाइयाँ हैं।

इकाई -1 में आर्थिक प्रणाली का अर्थ, अर्थव्यवस्था की मूल समस्याएँ तथा विभिन्न प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं में संसाधनों के आवंटन की प्रकृति का वर्णन किया गया है। इसमें उत्पादन के विभिन्न कारकों के अर्थ और विशेषताओं की भी चर्चा की गई है।

इकाई -2 में कुछ आधारभूत आर्थिक नियमों, संकल्पनाओं और शब्दावली की विवेचना की गई है। इसमें इस बात की भी व्याख्या की गई है कि किस प्रकार आर्थिक प्रणाली के विभिन्न अंग एक-दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं।

इकाई -3 में आर्थिक प्रणालियों के विभिन्न रूपों की व्य ख्या की गई है। यह मुख्य रूप से पूंजीवाद, समाजवाद और मिश्रित आर्थिक प्रणाली के लक्षणों तथा उनके कार्यकलाप से संबंधित है।

इकाई 1 आर्थिक प्रणालियों की मूलभूत समस्याएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आर्थिक प्रणाली
1.2.1 साधनों का अभाव और आवश्यकताओं की असीमितता
1.2.2 आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था
1.2.3 आर्थिक अभिकर्ता
1.3 उत्पादन के कारक
1.3.1 भूमि
1.3.2 श्रम
1.3.3 पूंजी
1.3.4 उद्यमत
1.4 अर्थव्यवस्था की मूल समस्याएँ
1.4.1 किस वस्तु का उत्पादन किया जाए?
1.4.2 कैसे उत्पादन किया जाये?
1.4.3 किसके लिए उत्पादन किया जाये?
1.4.4 विकास की समस्या
1.4.5 सार्वजनिक वस्तुओं और निजी वस्तुओं में चयन
1.4.6 सर्वहितकारी वस्तुओं की समस्या
1.5 उत्पादन संभावना वक्र
1.6 संसाधनों का आवंटन
1.6.1 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन
1.6.2 समाजवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन
1.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.10 स्वपरख प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- समाज की सदा बढ़ती हुई आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए संसाधनों के अभाव की समस्या की व्याख्या कर सकेंगे,
- किसी अर्थव्यवस्था के अर्थ और स्वरूप का विवेचन कर सकेंगे,
- आर्थिक कारकों की धारणा का वर्णन कर सकेंगे,
- उत्पादन के साधनों की धारणा और उनके मुख्य वर्गों और लक्षणों की व्याख्या कर सकेंगे,
- किसी अर्थव्यवस्था के संसाधनों, उनके स्वरूप एवं मूल समस्याओं के संबंध में विस्तृत जानकारी दे सकेंगे,
- उत्पादन संभावना वक्र की धारणा का वर्णन कर सकेंगे,
- पूंजी निवेश और उपभोग तथा निजी और सार्वजनिक वस्तुओं के बीच संसाधनों के आवंटन संबंधी मामलों का वर्णन कर सकेंगे,
- किसी बाजार अर्थव्यवस्था, समाजवादी अर्थव्यवस्था, मिश्रित अर्थव्यवस्था के आवंटन की विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

इस आरंभिक इकाई में प्रत्येक अर्थव्यवस्था के समक्ष पैदा होने वाले कुछ मूल प्रश्नों और समस्याओं से परिचय कराया जाएगा। उनकी जानकारी आपको आर्थिक तार्किकता और उस

तार्किकता के आधार पर सिद्धांतों को समझने में सहायता मिलेगी। इससे आपके लिए किसी अर्थव्यवस्था के समक्ष समस्याओं और ऐसी समस्याओं के समाधान किए जाने के प्रकारों को समझने में सरलता होगी। इस इकाई में आप किसी आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था के अर्थ का विस्तार से अध्ययन करेंगे। किसी अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओं, उत्पादन के साधनों के अर्थ और लक्षणों, उत्पादन संभावना वक्र की धारणा, विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों संसाधन आवंटन के विभिन्न प्रश्नों का विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.2 आर्थिक प्रणाली

इससे पूर्व कि हम प्रत्येक अर्थव्यवस्था की मूलभूत धारणाओं, प्रश्नों तथा उनके समक्ष समस्याओं की चर्चा करें, आइए हम पहले किसी आर्थिक प्रणाली के अर्थ और स्वरूप संबंधी जानकारी प्राप्त करें।

1.2.1 साधनों का अभाव और आवश्यकताओं की असीमितता

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ होती हैं। यदि उनकी तुष्टि नहीं होती, तो संबंधित व्यक्ति को पीड़ा का अनुभव होता है, जो कि शारीरिक हो सकती है, मानसिक हो सकती है अथवा दोनों तरह की हो सकती हैं। यदि दूसरी ओर, किसी आवश्यकता की संतुष्टि हो जाती है, तो पीड़ा का स्थान तुष्टि और तृप्ति ले लेती है। ये तथ्य प्रत्येक मनुष्य को उसकी आवश्यकताओं की तुष्टि करने के लिए आग्रह करता है। कुछ व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को कम करने की चेष्टा करते हैं परंतु ऐसे व्यक्ति भी अपनी आवश्यकताओं को तुष्ट करने का प्रयास करते हैं, चाहे उनकी आवश्यकताएँ सीमित हों। आप अनुभव करेंगे कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की आवश्यकताएँ आमतौर पर भिन्न-भिन्न होती हैं तथा एक ही व्यक्ति की आवश्यकताएँ भी समय, स्थान और पद के परिवर्तन के साथ बदल जाती हैं। इसका कारण यह है कि व्यक्तियों की आवश्यकताएँ बहुत सी बातों पर निर्भर करती हैं। जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के तथा समय के साथ-साथ बदलती रहती हैं। इसके अंतर्गत व्यक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य उसके विचार और अभिरुचियाँ, उसका समाज जिसमें कि वह रहता है, वह स्थान जहाँ कि वह रहता है, वर्ष का मौसम इत्यादि सम्मिलित हैं। किसी व्यक्ति की आवश्यकताएँ उसकी आय में परिवर्तन के साथ भी बदलती रहती हैं।

मानवीय आवश्यकताओं की कुछ विशेषताएँ होती हैं, किसी आर्थिक प्रणाली के स्वरूप को समझने के लिए आपको इस बात पर ध्यान देना चाहिए। एक ऐसी विशिष्टता यह है, कि मनुष्य की बहुत सी आवश्यकताएँ स्थाई रूप से तुष्ट नहीं की जा सकतीं, ये पुनः पैदा हो जाती हैं और बार-बार इनकी तुष्टि करनी पड़ती है। उदाहरण के तौर पर कोई व्यक्ति अपनी भूख की तुष्टि खाना खा कर करता है परंतु कुछ समय बाद उसे फिर भूख लग जाती है और उसे अपनी भूख की पुनः तुष्टि करनी पड़ती है। मानवीय आवश्यकताओं की एक और विशेषता है कि नई आवश्यकताएँ भी उत्पन्न होती रहती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जैसे ही कुछ आवश्यकताओं की तुष्टि होती है, नई आवश्यकताएँ उनका स्थान ले लेती हैं।

आवश्यकताओं की ये दो विशेषताएँ i) पहले से तुष्ट हुई आवश्यकताओं का पुनः पैदा होना और ii) नई मांगों का पैदा होना, इसका अर्थ है कि मानवीय आवश्यकताएँ असीम हैं और वे बढ़ती रहती हैं। मनुष्यों में निरंतर ऐसी इच्छा बनी रहती है कि वे अपने जीवन स्तर को उन्नत करें, अज्ञात विषयों की जानकारी प्राप्त करें। वे नई वस्तुओं को जानने की चेष्टा करते हैं तथा सदा बदलने वाले हालात नई आवश्यकताओं को पैदा करते रहते हैं।

आप इस तथ्य को नोट करें कि किसी आवश्यकता की तुष्टि के लिए कुछ वस्तुओं या सेवाओं के उपयोग की आवश्यकता होती है। किसी विशिष्ट आवश्यकता की तुष्टि विभिन्न साधनों से हो सकती है। उसी प्रकार एक विशिष्ट साधन का उपयोग विभिन्न आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए किया जा सकता है। फिर भी हमारे उद्देश्य के लिए एक अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उपलब्ध वस्तुएँ और सेवाएँ हमारी सदा पुनः पैदा होने वाली तथा सदा बढ़ती रहने वाली आवश्यकताओं की तुष्टि करने में अपर्याप्त हैं। किसी अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में सभी वृद्धियाँ जो कि पूंजी-संचयन (capital accumulation) उत्पादन के बेहतर विधियों को अपनाने के रूप में हो सकती हैं, के परिणामस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति में उतनी सीमा तक वृद्धि नहीं कर पातीं, कि दुर्लभता को पूरी तरह से समाप्त किया जा सके।

इस दुर्लभता की स्थिति से छुटकारा पाने का क्या समाधान है? कुछ विचारकों का मत है कि मनुष्यों को अपनी आवश्यकताओं को घटाना चाहिए ताकि संतुलन कायम किया जा सके। परंतु इस विचारधारा को बहुत कम व्यक्ति स्वीकार करते हैं, तथा उनके विचार और व्यवहार समग्र रूप से समाज के विचार और व्यवहारों में अंतर नहीं ला पाते। दूसरे शब्दों में, सच यह है कि समाज आवश्यकताओं की वृद्धि को रोकना नहीं चाहता। वह इनकी अधिक से अधिक तुष्टि करना चाहता है और इस मूलभूत व्यवहार संरचना को हमें वास्तविकता के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

बढ़ती हुई आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए दोहरी नीति की आवश्यकता है : i) प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराए गए अपर्याप्त साधन समाज की सभी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए अपर्याप्त हैं। इसलिए उनकी उपलब्धता को जैसे भी संभव हो सके बढ़ाया जाना चाहिए, जैसे उत्पादन केंद्रों को सुव्यवस्थित करके, श्रम शक्ति (labour force) को प्रशिक्षण देकर, उत्पादन की तकनीक में सुधार लाकर तथा मुद्रा तथा बैंकिंग संस्थानों को सुगठित करके, इत्यादि। इस सूची का कोई अंत नहीं है। ii) आप समझ गए होंगे कि सभी व्यक्तियों की सभी आवश्यकताएँ पूरी नहीं की जा सकतीं। अतः कोई ऐसी प्रणाली निकाली जानी चाहिए जिससे समग्र आवश्यकताओं में से अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं को पहचाना जा सके तथा उन्हें प्राथमिकता दी जा सके। दूसरे शब्दों में दुर्लभ साधनों (scarce means) का समाज के सदस्यों के लिए राशन कर दिया जाए तथा उनके विभिन्न उपयोगों को उनके उपभोग के लिए विनिमिमत कर देना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि इन संसाधनों के उपयोग में किफायत की जानी चाहिए अर्थात् संसाधनों का अपव्यय नहीं करना चाहिए और न ही उनका उपयोग कम महत्वपूर्ण प्रयोगों में किया जाना चाहिए।

1.2.2 आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था

विभिन्न समाज इन समस्याओं का अलग-अलग तरीके से समाधान करने की चेष्टा करते हैं और इस प्रक्रिया में प्रत्येक समाज एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करता है जिसे अर्थव्यवस्था कहते हैं। ''अर्थव्यवस्था'' अथवा ''आर्थिक प्रणाली'' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है।

इसके अंतर्गत साधनों और आवश्यकताओं के बीच असंतुलन की मूलभूत तथा स्थायी समस्या का समाधान करने के लिए गठित पूरी संरचना आ जाती है। इसमें न केवल प्राकृतिक साधन सम्मिलित हैं अपितु मनुष्य द्वारा निर्मित साधन भी सम्मिलित हैं। इसके अंतर्गत वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, व्यापार, विनिमय, परिवहन और वितरण आदि के लिए की गई सभी व्यवस्थाएँ आती हैं। इसी प्रकार इन युगल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निर्मित तथा चलाई जा रही व्यवस्थाएँ मुद्रा, बैंकिंग वित्तीय परिसंपतियाँ (financial assets) और बाज़ार आदि संस्थान हैं, जो अर्थव्यवस्था का अंग हैं। आप इस बात को भली भाँति समझते हैं कि वास्तव में किसी अर्थव्यवस्था का गठन कई बातों पर निर्भर करता है। किसी देश के प्राकृतिक संसाधनों, उसकी भौगोलिक और जलवायु संबंधी परिस्थितियाँ, इसकी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक व्यवस्था, इसके अतीत का इतिहास तथा अन्य तथ्य उस देश की अर्थव्यवस्था के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप किसी देश की अर्थव्यवस्था किसी अन्य देश की अर्थव्यवस्था से काफी भिन्न हो सकती है। इसी कारण हम ब्रिटिश अर्थव्यवस्था तथा जापानी अर्थव्यवस्था की तुलना में भारतीय अर्थव्यवस्था की चर्चा करते हैं। अतः ''भारतीय अर्थव्यवस्था'' शब्द का संबंध इस व्यवस्था की समग्रता से है जो युगल उद्देश्यों को पूरा करने के लिए भारतीय समाज द्वारा गठित की गयी है जिससे i) यह बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधनों की उपलब्धता को बढ़ाती है और ii) इसका अत्यंत मितव्ययी रूप से प्रयोग करती है। सभी प्राकृतिक और मनुष्य द्वारा उत्पादित संसाधन अर्थव्यवस्था का अंग हैं।

किसी अर्थव्यवस्था की मुख्य तथा विशिष्ट लक्षणों की जानकारी उसकी समस्याओं का विश्लेषण करने तथा उसका समाधान करने में मदद करती है। इस प्रकार हम अर्थव्यवस्थाओं का वर्गीकरण विशिष्ट लक्षणों के आधार पर करते हैं। उदाहरण के तौर पर पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को लीजिए। इसमें उत्पादन के साधनों का स्वामित्व तथा उत्तराधिकार व्यक्तियों के हाथ में होता है।

विभिन्न आर्थिक निर्णय बाजारों में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्यों के आधार पर किए जाते हैं। किसी व्यक्ति की आय का निर्धारण इसके द्वारा सप्लाई किए गए उत्पादनों के साधनों तथा उनके लिए दी गयी दरों के आधार पर किया जाता है।

विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में वर्गीकरण का एक और प्रकार उत्पादन संसाधनों के वर्गों की प्रधानता

पर निर्भर करता है। इस आधार पर कोई अर्थव्यवस्था कृषि अर्थव्यवस्था अथवा औद्योगिक अर्थव्यवस्था समझी जाती है। इसी प्रकार विकास के स्तर पर निर्भर करते हुए (अर्थात्) आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन की क्षमता के आधार पर किसी अर्थव्यवस्था को विकसित अर्थव्यवस्था और अल्पविकसित अर्थव्यवस्था कहा जा सकता है। आपको यह भी ध्यान रखना चाहिए कि समय के साथ-साथ या तो ऐतिहासिक विकास द्वारा अथवा सुविचारित नीति द्वारा अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं में परिवर्तन आता है।

ऊपर बताए गये विचारों का सारांश यह है। अर्थव्यवस्था की तुष्टि के साधनों के अभाव तथा सदा बढ़ती हुई आवश्यकताओं के संदर्भ में समाधान किया जाना आवश्यक है। साधनों और आवश्यकताओं को कई प्रकार से जोड़ा जा सकता है। चाहे अर्थव्यवस्था विकसित हो अथवा अल्पविकसित, दुर्लभता की समस्या (problem of scarcity) विद्यमान रहती है। अतएव उसको दो मामलों की तरफ ध्यान देना होता है (i) तुष्टि के साधनों की उपलब्धता को बढ़ावा देना (ii) तुष्ट करने वाली वस्तुओं की प्राथमिकता निर्धारित करना।

1.2.3 आर्थिक अभिकर्ता

आर्थिक कारक (economic agents) किसी अर्थव्यवस्था में निर्णय लेने वाली इकाइयाँ होते हैं। सामान्यतः हम ऐसे आर्थिक एकक को व्यक्तियों, परिवारों, वाणिज्यिक फर्मों, कंपनियों, संस्थाओं और राज्यों के रूप में समझते हैं। कार्य करते हुए अलग-अलग हैसियतों में जैसे उपभोक्ता, बचत करने वाले, कच्चे माल के विक्रेता माल एवं सेवाओं के पूर्तिकर्ता, उधार लेने वाले, उधार देने वाले इत्यादि, वे तरह-तरह के निर्णय लेते हैं। आर्थिक अभिकर्ताओं के ये निर्णय ही किसी अर्थव्यवस्था के कार्यकलाप के लिए जिम्मेवार हैं और वे उसके स्वास्थ्य एवं कार्यक्षमता को निर्धारित करते हैं।

बोध प्रश्न क

1 आवश्यकताओं की दो महत्वपूर्ण विशेषताए बताइए जो कि उन्हें असीमित बनाती हैं।

....

....

2 आर्थिक प्रणाली से क्या तात्पर्य है?

....

....

बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत?

i) सभी मनुष्यों की आवश्यकताएँ असीमित होती है।
ii) सब मनुष्यों की समान आवश्यकताएँ होती है।
iii) किन्हीं आर्थिक प्रणालियों में सभी व्यक्तियों की सभी आवश्यकताएँ पूरी करनी संभव हैं।
iv) किसी व्यक्ति की आवश्यकताएँ उसकी आय पर निर्भर करती है।
v) किसी आवश्यकता की पूर्ति होने पर वह फिर पैदा हो जाती है।
vi) आवश्यकताओं और उनकी तुष्टि करने के कई विकल्प हैं।
vii) अधिकांश व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की तुष्टि के साधनों की उपलब्धता के अनुरूप कार्य करते हैं।
viii) आर्थिक अभिकर्ता उन कमीशन एजेन्टों की तरह हैं जो अन्य लोगों को क्रय-विक्रय इत्यादि क्रियाकलापों में सहायता करते हैं।

1.3 उत्पादन के कारक (Factors of Production)

आपने पहले ही अध्ययन कर लिया है कि प्रकृति ने बिना मूल्य के बहुत सीमित साधन प्रदान किए हैं जो हमारी सभी आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए नाकाफ़ी हैं। अतः हमारी अतिरिक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उनकी उपलब्धता बढ़ाई जानी चाहिए। आप यह भी कह सकते हैं कि इन संसाधनों का उत्पादन किया जाना चाहिए।

अर्थव्यवस्था में "उत्पादन" शब्द का उपयोग विभिन्न प्रकार के कच्चे मालों को निर्मित वस्तुओं में बदलने को कहते हैं जिनके द्वारा कच्चे माल की मांग-तुष्टि की क्षमता में वृद्धि होती है। इस प्रकार परिवर्तित की जाने वाली वस्तुओं को कच्चे माल या आगत (inputs) कहते हैं। अतः निर्मित वस्तुएं कच्चे माल या आगतों का परिवर्तित रूप ही हैं। यदि निर्मित वस्तुओं की तुष्टि करने की क्षमता कच्चे माल की तुलना में बढ़ जाती है, तो वह परिवर्तन उत्पादन है। इसे दूसरे प्रकार से ऐसे कहा जा सकता है, उत्पादन और कुछ नहीं है बल्कि उपयोगिता का सृजन (creation of utility) है। अब आप यह पूछ सकते हैं कि उपयोगिता क्या है? अर्थशास्त्र में उपयोगिता का अर्थ उस संभावित तुष्टि से है जो उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के उपयोग से प्राप्त करते हैं। आपको यह भी स्मरण रहे कि भौतिक पदार्थ (matter) का न तो उत्पादन किया जा सकता है न वह नष्ट किया जा सकता है। उपभोक्ता के लिए यह केवल अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। कच्चे माल को निर्मित वस्तुओं में बदलना जिसे उत्पादन कहते हैं, कई रूप धारण कर सकता है। प्रायः कच्चे माल में भौतिक और रासायनिक परिवर्तन होते हैं। जैसे कच्ची रुई से कपड़ा बनता है। वस्तु को उपयोगिता तभी प्राप्त होती है जब इसे उपभोक्ता के पास भिजवा दिया जाता है जिन्हें इनकी अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार के उत्पादन के लिए वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना पड़ता है। इस प्रकार कई वस्तुएँ उपयोगिता तभी प्राप्त करती हैं जबकि उन्हें उस स्थान पर पहुंचाया जाए जहाँ उनकी जरूरत है। इसे स्थान-उपयोगिता (place utility) कहते हैं। इसी प्रकार कई प्रकार कई वस्तुएँ तभी उपयोगिता प्राप्त करती हैं जब उनका संग्रहण किया जाए। आप ऐसे कार्यकलापों के बारे में सोच सकते हैं जैसे प्रक्रमण (processing) पैकिंग जो कि अर्थव्यवस्था के उत्पादन ढांचे का अंग है। ये भी उल्लेखनीय है कि उत्पादन में सेवाएं भी सम्मिलित हैं जबकि वास्तविक रूप से उनका प्रत्यक्ष योगदान नहीं होता है।

यह अध्ययन हमें उत्पादक संसाधनों अथवा उत्पादन के कारकों की ओर ले जाता है। अर्थात् वे मदें जो उत्पादन प्रक्रिया में कच्चे माल की भूमिका अदा करती हैं। कच्चे माल की विभिन्न मदों को कुछ वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार एक वर्ग की सभी वस्तुओं को उत्पादकता के समान संवर्ग अथवा एक दूसरे के पूर्ण प्रति स्थापक (perfect substitution) होते हैं जबकि विभिन्न वर्गों के साथ जुड़ी हुई इकाइयों में ऐसा नहीं होता। दूसरे शब्दों में, एक ही संवर्ग की विभिन्न इकाइयाँ एक दूसरे का स्थान ले सकती हैं जिससे कुल उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु यदि एक वर्ग का स्थान दूसरे वर्ग की इकाइयाँ ले लें, तो कुल उत्पादन में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार वर्गीकृत किए गये प्रत्येक ग्रुप के आगतों (inputs) की इकाइयों को उत्पादन का कारक (factor of production) कहा जाता है। सामान्यतः आदानों की इकाइयों को चार मुख्य कारकों साधनों में विभक्त किया जाता है जो इस प्रकार है:
1 भूमि 2 श्रम 3 पूंजी 4 संगठन अथवा उद्यम।
हम उनमें से प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.3.1 भूमि

भूमि इस शब्द में खेती, फैक्ट्रियों, आवास, सड़कों इत्यादि के लिए उपलब्ध केवल भूमि क्षेत्र ही नहीं आता, इसका उपयोग अब बहुत व्यापक रूप में किया जाता है। इसके अंतर्गत वे वस्तुएँ एवं शक्तियां जो प्रकृति ने बिना कोई मूल्य लिए प्रदान की हैं ताकि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें या वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर सकें। अतः भूमि शब्द का अभिप्राय केवल साधारण रूप में भूमि से नहीं बल्कि इसमें पानी, धूप, खनिज पदार्थ इत्यादि भी सम्मिलित हैं। दूसरे शब्दों में, भूमि के अंतर्गत न केवल वह जमीन जो कृषि या औद्योगिक कार्यों के लिए उपयोग में आती है अपितु धरती के भीतर के सभी संसाधन सम्मिलित हैं। अतः भूमि उन सभी प्राकृतिक साधनों का प्रतिनिधित्व करती है जो अर्थव्यवस्था में उपलब्ध हैं।

इस प्रकार पारिभाषित भूमि का संभरण निश्चित है। मनुष्य इसमें अपने प्रयास द्वारा कुछ जोड़ नहीं सकता। जबकि कोई व्यक्ति कीमत अदा करके अधिक धरती प्राप्त कर सकता है, पूरा समाज भूमि के संभरण को बढ़ा नहीं सकता। हम ज्ञात संसाधनों के नए प्रयोग ढूंढ सकते हैं। उसी प्रकार अपने प्रयासों द्वारा हम भूमि की उपयोगिता तथा उत्पादकता (productivity) को बढ़ा सकते हैं या इसे पूर्ण अथवा आंशिक रूप से अनुत्पादक (unproductive) बना सकते हैं। उदाहरण के तौर पर हमें विदित है कि खेती योग्य भूमि की उर्वरता को कई तरीकों से बढ़ाया या घटाया जा सकता है। किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि प्राकृतिक संसाधनों में मानवीय प्रयासों द्वारा लाए गए परिवर्तन मूलभूत प्राकृतिक संसाधनों के साथ घुल-मिल जाते हैं तथा यह लगभग असंभव हो जाता है कि उन परिवर्तनों को पृथक-पृथक आंका जा सके।

भूमि के भिन्न-भिन्न प्रकार तथा प्राकृतिक संसाधनों के बाज़ार मूल्य क्या हैं। बेशक हम कह सकते हैं कि भूमि तो प्रकृति का मुफ़्त उपहार है। किसी व्यक्ति को भूमि बिना कीमत अदा किए प्राप्त नहीं होती। उसे कुछ धन देकर ही भूमि खरीदनी पड़ती है। आर्थिक व्यवस्थाओं अर्थात् निजी स्वामित्व तथा उत्तराधिकार के कारण ही भूमि की कीमत देनी पड़ती है।

1.3.2 श्रम (Labour)

अर्थव्यवस्था में श्रम शब्द का उपयोग किन्हीं शारीरिक और मानसिक क्रियाकलापों को दर्शाता है जो कि भुगतान के बदले में किए जाते हैं। श्रम की यह संकल्पना केवल मानवीय प्रयासों तक ही सीमित हैं, इसमें पशुओं तथा मशीनों द्वारा किया गया कार्य सम्मिलित नहीं किया जाता।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि श्रम को श्रमिक से पृथक नहीं किया जा सकता इसे आदान (input) के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि श्रमिकों को अपने श्रम को स्वयं प्रदान करना पड़ता है। श्रम का एक और लक्षण यह है कि इसके परिश्रम को स्थगित नहीं किया जा सकता। यदि एक श्रमिक एक महीने के लिए कार्य नहीं करता, तो उस कार्य को भविष्य में नहीं किया जा सकता। जो कार्य निष्पादित नहीं किया जाता, वह श्रम सदा के लिए व्यर्थ हो जाता है। इस कारण श्रमिकों की सौदा-शक्ति (bargaining power) कम होती है। उन्हें बार-बार कम मजदूरी पर कार्य करना पड़ता है अथवा बिना आय के रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, जिन श्रमिकों की आय का कोई अन्य स्रोत नहीं होता, उनकी सौदा-शक्ति और भी कमजोर होती है।

उत्पादन में श्रम एक समरूप साधन नहीं होता। श्रमिकों के बहुत से प्रकार होते हैं—कुशल एवं अकुशल। दोनों प्रकार के श्रमिकों की बहुत सारी विविधताएँ हमारे समक्ष आती हैं। इसलिए उत्पादन के साधनों के रूप में उन्हें एक साथ एक वर्ग में रख देना आर्थिक विश्लेषण के सरलीकृत रूप से ही लाभप्रद है। श्रमिकों के स्वास्थ्य, उनकी बुद्धिमता, आयु, सामाजिक पृष्ठभूमि, शिक्षा के स्तर इत्यादि पर ध्यान देते हुए विभिन्न श्रमिकों की उत्पादन क्षमता विभिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार प्रत्येक श्रमिक अलग-अलग कार्यों में समान रूप से कुशल नहीं होता। जब कोई श्रमिक एक कार्य को छोड़कर दूसरा कार्य पकड़ता है, तो उसकी क्षमता में परिवर्तन हो जाता है। यह भिन्नता कुशल श्रमिकों में अधिक पायी जाती है। कुशल श्रमिक एक विशिष्ट कार्य के लिए शिक्षित तथा प्रशिक्षित होता है। इस कारण श्रमिकों को एक तरह के कुशल कार्य के बदले दूसरे कार्य में बदला जाता है। तो उन्हें अतिरिक्त प्रशिक्षण और शिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। यदि हम एक देश से दूसरे देश को प्रवास करने वाले श्रमिकों पर ध्यान न दें, तो किसी देश की जनसंख्या ही उसके कुल श्रम-शक्ति का एकमात्र स्रोत बन जाती है। परंतु इसकी श्रमिक शक्ति के आकार पर अन्य कारणों का भी प्रभाव पड़ता है, जैसे विभिन्न आयु-वर्गों में व्यक्तियों की संख्या, सामाजिक रीतियाँ, अभिवृत्तियाँ इत्यादि।

अब तक हमने श्रम की मात्रा की चर्चा की है अर्थात् विभिन्न व्यवसायों के लिए उपलब्ध श्रमिकों की संख्या की, किन्तु उत्पादन के साधन के रूप में श्रम की चर्चा अधूरी रहेगी जब तक उसमें श्रम की गुणवत्ता (quality) का उल्लेख न किया जाय। एक श्रमिक के संदर्भ में इस संकल्पना या धारणा के दो पहलू हैं। i) वह तीव्रता जिसमें कोई श्रमिक कार्य करता है, और ii) ऐसी अधिकतम कार्यकुशलता जो कोई श्रमिक प्राप्त कर सकता है।

श्रम की तीव्रता (intensity) श्रमिक की बिना समय और प्रयास का अपव्यय किए कार्य की इच्छा पर निर्भर करती है। ये बहुत प्रभावशाली शक्तियों पर निर्भर करती है जैसे सामान्य सामाजिक वातावरण, श्रमिक के कार्य के प्रति निष्ठा, मजदूरी की दर, कार्य का वातावरण और कुछ अन्य ऐसे ही पहलू। दूसरी ओर, श्रमिक की कार्यकुशलता का स्तर उसकी शिक्षा और प्रशिक्षण, कुशलता, स्वास्थ्य और व्यक्तिगत गुणों, जलवायु संबंधी दशाओं, उस उत्पादन एकक के संगठनात्मक संरचना पर निर्भर करती है।

भूमि तथा श्रम उत्पादन के दो प्राथमिक साधन हैं। इन दोनों मूलभूत साधनों के उपयोग के बिना उत्पादन संभव ही नहीं। कोई श्रमिक तब तक कार्य नहीं कर सकता, जब तक उसे कार्य करने के लिए भूमि उपलब्ध न कराई जाय। और भूमि अपने आप कुछ पैदा नहीं कर सकती, जब तक श्रमिक उस पर अपना श्रम न लगाए।

1.3.3 पूंजी (Capital)

पूंजी शब्द उत्पादक संसाधनों के उस वर्ग का संकेत करता है जो कि मानवीय श्रम का फल है। पूंजी मनुष्यकृत उत्पादक स्रोतों का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि भूमि प्रकृति का उपहार है।

क्योंकि एक तरह से बिना कुछ भी श्रम लगाए यह उपलब्ध है। उस दृष्टि से पूंजी बिना मूल्य का उपहार नहीं है। पूंजी एक प्रकार से अदृश्य या संचित श्रम (congealed labour) है यह कई रूपों में प्रत्यक्ष होती है, जैसे प्लान्ट एवं मशीनरी, सड़कें, पुल, परिवहन और संचार के साधन, इत्यादि।

विकास की प्रक्रिया में श्रम-शक्ति (labour force) का कौशल तथा प्रशिक्षण आवश्यक है ताकि श्रमिक संयंत्र और मशीनरी का उपयोग सक्षम रूप से कर सकें। एक अल्पविकसित देश के लिए आवश्यक है कि इसके श्रमिकों को इंजीनियरिंग, औषधि, प्रबंध तथा कई अन्य क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाए। चूंकि कौशल निर्माण श्रम-शक्ति की उत्पादन क्षमता को बढ़ाता है, इसलिए इस प्रक्रिया का मानवीय पूंजी निर्माण (human capital formation) के रूप में उल्लेख किया गया है। चूंकि स्वस्थ श्रमिक को उत्पादन के लिए अधिक उपयोगी समझा जाता है, श्रमिकों के स्वास्थ्य पर पूंजी लगाना मानवीय पूंजी निर्माण में सम्मिलित किया जाता है। आपको इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि केवल वे उत्पाद जिनका उपयोग और आगे उत्पादन के लिए किया जाता है, पूंजी के अंतर्गत आते हैं। यदि किसी उत्पाद का उपयोग अंतिम उपभोग (final consumption) के लिए किया जाता है तो वह पूंजी वस्तुओं का अंग नहीं माने जा सकते। ऐसा प्रायः होता है कि विशेष उत्पाद की कुछ इकाइयों का उपयोग पूंजी के रूप में होता है, जबकि अन्य का आंशिक उपभोग के रूप में। इस प्रकार ऐसे उत्पाद आंशिक रूप से पूंजी का रूप धारण कर लेते हैं।

चूंकि पूंजी उत्पादन के साधनों में मानवीय श्रम के प्रयास का परिणाम है, न कि उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में, इस कारण उसके संचय के लिए कोई उच्च सीमा नहीं है। कोई भी अर्थव्यवस्था अपने उत्पादक साधनों (productive resources) का एक भाग और अधिक उत्पादन के लिए लगाती है और इस प्रकार वे अपने पूंजी-संग्रह (capital stock) को बढ़ाते हैं। इस प्रक्रिया को पूंजी निर्माण (capital formation) कहा जाता है। हमें नोट करना चाहिए कि पूंजी-संग्रह करने की प्रक्रिया में पूंजी संग्रह (capital stock) कम हो जाता है। यदि किसी अर्थव्यवस्था से पूंजी संग्रह की शुद्ध-वृद्धि का पता लगाना हो, तो किसी दी गई अवधि के दौरान पूंजी-संचयन की मात्रा किस अवधि विशेष में उत्पादन के दौरान प्रयुक्त पूंजी की मात्रा से अधिक होनी चाहिए।

किसी अर्थव्यवस्था [illegible] यन क्यों किया जाना चाहिए। इसका सही उत्तर इस तथ्य में है कि पूंजी संचयन में [illegible] उचित रूप से उपयोग किया जाता है तो इससे श्रम उत्पादिता (labour productivity) में वृद्धि होती है। जब कोई अर्थव्यवस्था अपने उत्पादक संसाधनों का प्रयोग पूंजी वस्तुओं के लिए करती है तो उपभोग वस्तुओं की उपलब्धता की मात्रा तुरंत कम हो जाती है। परंतु बाद के काल में उपभोग वस्तुओं के उत्पादन में काफी वृद्धि होगी।

1.3.4 उद्यमत (Entrepreneurship)

अर्थशास्त्री उत्पादन के चौथे साधन की विद्यमानता में विश्वास रखते हैं अर्थात् संगठन या उद्यमत (entrepreneurship) जिसकी पूर्ति उद्यमकर्ता करता है। भूमि, श्रम और पूंजी अपने आप में एकत्र हो कर उत्पादन प्रक्रिया में व्यवस्थित नहीं हो सकते हैं। ताकि वे उत्पादन कर सकें। उन्हें विधिवत और समन्वित ढंग से प्राप्त किया जा सकता है। अधिकांश उत्पादन प्रक्रियाओं पर समय लगता है। उद्यमी कच्चे माल या अन्य आदान (inputs) को प्राप्त करता है। (उसका मूल्य देता है) यह कार्य वह उस प्रत्याशा से करता है कि उत्पादित माल की अधिकतर बिक्री से वह लाभान्वित होगा। उद्यमकर्ता ही हानि का जोखिम उठाता है तथा लाभ होने पर वही लाभ का हकदार है। इस अनिश्चितता के वातावरण में उसका कार्य जोखिम सहन करना है।

बोध प्रश्न ख

1 उत्पादन के कारक कौन से हैं? नाम लिखिए।

....

....

....

2 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।

i) उपयोगिता और तुष्टि एक ही चीज है।
ii) उपयोगिता किसी वस्तु की मांग की तुष्टि करने की क्षमता है।
iii) उत्पादन उपयोगिता का सृजन है।

iv) किसी देश में भूमि की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है।
v) उत्पादन के साधनों में बहुत सी मदें हैं जो कि कुल उत्पादन पर प्रभाव डाले बिना एक दूसरे का प्रतिस्थापन कर सकती है।

3 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
i) .... और .... उत्पादन के दो प्रमुख प्राथमिक कारक हैं।
ii) उत्पादन प्रक्रिया में आदान का उपयोग होता है और उत्पादन वे मदें हैं जो कि ....
iii) .... के लिए पूंजी उत्पादन का साधन है।
iv) जबकि भूमि प्रकृति का बिना मूल्य का उपहार है, पूंजी ....।

1.4 अर्थव्यवस्था की मूल समस्याएँ

हमने अध्ययन किया है कि प्रत्येक आर्थिक व्यवस्था की मूलभूत विशिष्टताएँ होती हैं। उसे आवश्यकताओं अथवा उद्देश्यों की तुलना में संसाधनों की दुर्लभता का सामना करना पड़ता है तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सीमित संसाधनों का कई विकल्पों में उपयोग किया जा सकता है। तदानुसार, प्रत्येक अर्थव्यवस्था को कुछ मूलभूत समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाधान वह अपनी समाजार्थिक-संरचना (socio-economic framework) के अनुसार करती है। ये मूल समस्याएँ इस प्रकार हैं:

i) किस वस्तु का उत्पादन किया जाये?
ii) कैसे उत्पादन किया जाये?
iii) किसके लिए उत्पादन किया जाये?
iv) वर्तमान उपभोग तथा बचत और पूंजी निवेश में चयन।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक अर्थव्यवस्था को कई महत्वपूर्ण प्रश्नों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि सार्वजनिक वस्तुओं एवं निजी वस्तुओं में चुनाव करना। इसमें कुछ अन्य समस्याएं भी हैं जैसे बेरोजगारी भुगतान-शेष इत्यादि, जो कि प्रायः पैदा होती हैं तथा सभी आर्थिक व्यवस्थाओं के सामने आती भी हैं और नहीं भी आती हैं। आइए हम सब इन समस्याओं के बारे में सविस्तार चर्चा करें जो कि किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए केंद्रीय अथवा आधारभूत हैं।

1.4.1 किस वस्तु का उत्पादन किया जाये?

आप समझ गए होंगे कि किसी अर्थव्यवस्था के पास उत्पादन के इतने साधन नहीं हैं कि वह प्रत्येक ऐसी वस्तु का उत्पादन कर सके जिसकी उसे आवश्यकता है। अतः उसे चयनात्मक होना ही पड़ता है और फिर निर्णय करना पड़ता है कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाये। जब कुछ वस्तुओं का उत्पादन नहीं किया जाता तो समाज की कुछ आवश्यकताएँ असंतुष्ट रह जाती हैं: आवश्यकताओं की संतुष्टि के संबंध में निर्णय वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के साथ संबंधित है और ये एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हो सकते। इसे उत्पादन के संसाधनों का वंटन (allocation of resources) कहा जाता है। इसका कारण यह है कि किस सीमा तक उत्पादन के साधनों को "क" वस्तु के उत्पादन में लगाया जाता है, उसको "ख" वस्तु के उत्पादन में नहीं लगाया जाता। इस समस्या का समाधान प्रसिद्ध उत्पादन संभावयता वक्र (production possibility curve) द्वारा स्पष्ट रूप से किया जा सकता है, जिसका अध्ययन आप इस इकाई के बाद के भाग में करेंगे।

आप को यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समस्या को पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर विकसित अर्थव्यवस्था में उत्पादन के अधिक संसाधन होते हैं, परंतु इन अर्थव्यवस्थाओं में भी संसाधन इतने नहीं होते कि सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इसके अतिरिक्त अर्थव्यवस्था का ढाँचा बदलने से भी इस समस्या की प्रकृति नहीं बदलती। अर्थव्यवस्था किसी भी प्रकार की हो, पूंजीवादी है या समाजवादी अथवा मिश्रित अर्थव्यवस्था प्रत्येक स्थिति में विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं में संसाधनों के वंटन का निर्णय करना ही पड़ता है। इस इकाई में बाद में आप अध्ययन करेंगे कि अर्थव्यवस्था की भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ किस प्रकार अपनी समस्याओं को भिन्न-भिन्न तरीकों से सुलझाती हैं।

1.4.2 कैसे उत्पादन किया जाये?

इस समस्या के अंतर्गत विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन के लिए संसाधनों के आवंटन पर विस्तार से विचार किया गया है।

अधिक सूक्ष्म रूप से कह सकते हैं कि जब अर्थव्यवस्था वस्तु "क" का उत्पादन करने का निर्णय लेती है, तो उसे इस बात का भी सही रूप से पता लगाना होता है कि उसके लिए कितने श्रम की, कितनी पूंजी की और कितनी भूमि इत्यादि की आवश्यकता होगी। किसी वस्तु के उत्पादन के लिए सही उत्पादन के लिए सही उत्पादनों के साधनों का पता लगाना उस वस्तु के उत्पादन की तकनीक कहलाती है। उदाहरण के तौर पर हम ऐसी वस्तुओं के बारे में सोच सकते है। ... में पूंजी की अपेक्षा अधिक श्रम की आवश्यकता होती है। ऐसी उत्पादन की तकनीक को श्रम प्रधान तकनीक (labour intensive technique) कहा जाता है। दूसरी ओर यदि किसी वस्तु के उत्पादन में अधिक पूंजी लगती है, तो हम कह सकते हैं कि इस वस्तु का उत्पादन पूंजी प्रधान तकनीक (capital intensive technique) द्वारा हो रहा है। किसी भी देश के लिए उत्पादन की तकनीक का चयन उत्पादन के साधनों की सापेक्ष उपलब्धता (relative availability) पर निर्भर करता है। भारत जैसे देश को जिसमें पूंजी की तुलना में श्रम शक्ति अधिक है, उत्पादन के लिए श्रम प्रधान तकनीक अपनानी चाहिए। उसी प्रकार बहुत से ऐसे देश हैं जिनमें पूंजी की प्रचुरता होती है, परंतु श्रम का अभाव होता है, उन्हें उत्पादन के लिए पूंजी प्रधान तकनीक को प्राथमिकता देनी चाहिए।

जब कोई व्यक्तिगत उत्पादक किसी विशेष वस्तु के उत्पादन की तकनीक का निर्णय करता है, तो वह विकल्प आदानों की कीमतों एवं उत्पादिताओं (productivities) पर विचार करता है। वह ऐसे आदानों को उपयोग में लाने की चेष्टा करता है, जिसमें प्रति इकाई लागत के फलस्वरूप उत्पादन अधिकतम होता है, क्योंकि इस चुनाव के कारण ही अधिकतम उत्पादन प्राप्त होता है। इस प्रकार हम उत्पादन लागत को कम रखकर लाभ को अधिकतम कर सकते हैं।

1.4.3 किसके लिए उत्पादन किया जाये?

किसी समाज में बहुत से व्यक्ति और परिवार होते हैं। सभी उपभोग वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन अन्ततः उनके उपयोग के लिए होता है। इसलिए सभी उत्पादित वस्तुएँ और सेवाएँ उन व्यक्तियों और परिवारों में वितरण के लिए हैं। प्रत्येक व्यक्ति एवं परिवार का हिस्सा तथा विशिष्ट वस्तओं और सेवाओं में उनका हिस्सा निर्धारित कर दिया जाता है।

आप यह बात आसानी से समझ सकते हैं कि भिन्न-भिन्न सिद्धांत प्रस्तावित करना सभव हैं जिनके अनुसार वितरण किया जा सके। बाज़ार-सिद्धांत के अनुसार गठित किसी आर्थिक प्रणाली में समाज के प्रत्येक सदस्य की आय के हिस्से का निर्धारण निम्न आधार पर किया जाता है। किसी बाज़ार अर्थव्यवस्था (market economy) में उत्पादन के स्रोतों पर निजी स्वामित्व होता है उन्हें वस्तुओं तथा सेवाओं की भाँति बेचा, खरीदा या किराये पर प्राप्त किया जाता है। उत्पादक संसाधनों (productive resources) का मूल्य बाज़ार में विद्यमान मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है। जब कभी भी उत्पादक द्वारा किसी संसाधन का उपयोग किया जाता है, तो बाज़ार में निर्धारित मूल्य, वस्तु के स्वामी को दिया जाता है। यह स्वामी पर निर्भर करता है कि वह वस्तु की पूर्ति बाज़ार के लिए करे अथवा इसे रोके रखे। इन परिस्थितियों में प्रत्येक व्यक्ति की आय विभिन्न संसाधनों के उनके आधीन स्वामित्व और उनके बाज़ार में संभरण तथा उनकी क्रमशः कीमतों पर निर्भर करती है। आय के वितरण की प्रणाली में बहुत सी कमियाँ हैं। समाज के सदस्यों द्वारा किए गए प्रयासों से इसका कोई संबंध नहीं है। समाज में उत्पादन के साधनों का स्वामित्व समरूप नहीं है, इससे आय के वितरण में बड़े पैमाने पर असमानता भी उत्पन्न हो जाती है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में, सरकारें इन असमानताओं को दूर करने के लिए भी कई उपायों जैसे कराधान इत्यादि का प्रयोग करती हैं।

इसके विरुद्ध किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था में श्रम उत्पादन संसाधनों (श्रम को छोड़कर) के स्वामित्व को सरकार अथवा सहकारिताओं (cooperatives) में बदलकर असमानताओं को कम किया जाता है। जबकि कुछ मुख्य आवश्यकताओं की प्राप्ति सबके लिए आवश्यक है। बूढ़े, बीमार बच्चों का खास तौर पर ध्यान रखा जाता है, व्यक्ति को अतिरिक्त आय की प्राप्ति अतिरिक्त काम से ही होती है।

आप यह बात नोट करेंगे कि ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में जिसमें सीमित मात्रा में परिवार और व्यक्ति हैं, वस्तुओं और सेवाओं का पूरी तरह से भौतिक राशन किया जा सकता है। परंतु विकास के साथ-साथ किसी अर्थव्यवस्था की संगठनात्मक संरचना जटिल बनती जाती है इससे बड़ी मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन शुरू हो जाता है। व्यवसायों की संख्या बढ़ जाती है और आदानों और उत्पादित वस्तुओं की विविधता से वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा में तदनुरूप वृद्धि हो जाती है। प्रायः समाज का आकार भी बढ़ जाता है। ऐसी परिस्थिति में ये संभव नहीं रहता कि वस्तओं और सेवाओं के पर्ण राशन की व्यवस्था कायम की जा सके। उससे अधिक

व्यवहारिक और सक्षम उपाय यह है कि व्यक्तियों और समाज के सदस्यों की क्रय शक्ति और आय के वितरण की राशियाँ निर्धारित की जायें और साथ-साथ वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य उन पर अंकित कर दिए जाएँ। इस आवंटित क्रयशक्ति में से सदस्य स्वयं इस बात का निर्णय ले सकते हैं कि वे कौन सी वस्तुएँ और सेवाएँ प्राप्त करना चाहते हैं और कितने मूल्य की वस्तुएं और सेवाएं लेना चाहते हैं परंतु शर्त यह है, वे उनका मूल्य अदा करें। इस प्रकार से "किसके लिए उत्पादन करें" की समस्या समाज के सदस्यों में आय के वितरण तक सीमित हो जाती है। यह संभव है कि आय के वास्तविक वितरण में ऐसी असमानताएँ रह जाएँ, जो समाज को स्वीकार्य नहीं है उस स्थिति में प्राधिकारी आय वितरण की विभिन्न नीतियों जिसमें कराधान भी सम्मिलित है, के माध्यम से सुधार करते हैं। वितरण की समस्या का कोई आसान हल नहीं है। ये बात सदा संभव नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति आय वितरण के नियमों के बारे में तथा आय की असमानताओं को दूर करने पर उसी हद तक सहमत हो। समाज के सदस्यों की सापेक्ष आवश्यकताओं का अनुमान लगाना भी आसान नहीं। फिर आय वितरण की प्रणाली का समाज के सदस्यों द्वारा उत्पादन के लिए प्रोत्साहनों पर प्रभाव पड़ता है और इसलिए उसका राष्ट्रीय आय के स्तर पर भी प्रभाव पड़ता है।

1.4.4 विकास की समस्या

प्रत्येक आर्थिक प्रणाली उत्पादक संसाधनों (productive resources) की कमी को दूर करने की चेष्टा करती है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उसके द्वारा राष्ट्रीय उत्पादन के अंश को वर्तमान उपभोग से बचाकर उसका उपयोग पूंजी निर्माण अथवा उत्पादक संसाधनों के स्टॉक में वृद्धि करने में किया जाता है। इस प्रकार पूंजी निर्माण किसी अर्थव्यवस्था के बचाव अथवा संवर्द्धन के लिए एक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य है। किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादक संसाधनों के स्टॉक में उनके लगातार उपयोग द्वारा कमी होती जाती है। अतः पूंजी स्टॉक में वृद्धि के लिए आवश्यक है कि कुल बचत और पूंजी निर्माण की मात्रा ह्रास की तुलना में अधिक हो।

1.4.5 सार्वजनिक वस्तुओं तथा निजी वस्तुओं में चयन

सार्वजनिक और निजी वस्तुओं के बीच चयन की समस्या को समझने के लिए आपको पहले यह समझना चाहिए कि सार्वजनिक वस्तुओं और निजी वस्तुएँ क्या हैं। आइए पहले हम इन दो संकल्पनाओं को समझें।

निजी वस्तुएँ (Private Goods)

वस्तु शब्द के अंतर्गत सेवाएं भी सम्मिलित हैं (जिनकी उपलब्धता कुछ चुने हुए व्यक्तियों तक ही सीमित रह सकती है) उदाहरण के तौर पर किसी वस्तु का बाज़ार मूल्य तय कर दिया जाता है और केवल वही व्यक्ति जो उस मूल्य को अदा कर सकते हैं, उस वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं। वस्तु की इस विशिष्टता जिसके द्वारा कुछ व्यक्ति उसके उपयोग से वंचित कर दिए जाते हैं, को बहिष्करण का सिद्धांत (principle of exclusion) कहा गया है। तदानुसार, ऐसे व्यक्ति जो उसके मूल्य को अदा नहीं कर सकते या अदा करने योग्य नहीं हैं, उसका उपयोग नहीं कर पाते। इस प्रकार वस्तु का उपयोग विभिन्न व्यक्तियों के बीच विभाज्य है। **कोई भी वस्तु जिसका ऐसा मूल्य निर्धारित किया जाता है कि उसका उपयोग कुछ चुने हुए व्यक्तियों तक सीमित हो जाता है, को निजी वस्तु कहा जाता है।** आपको याद रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं है कि निजी वस्तुएँ अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र द्वारा ही उत्पन्न की जाएं। ये सरकारी सार्वजनिक या निजी क्षेत्र द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं। यह भी संभव है कि ये ऐसी इकाइयों द्वारा जिनका स्वामित्व सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा संयुक्त रूप में भी हो सकता है, उत्पन्न की जाएँ।

सार्वजनिक वस्तुएँ (Public Goods)

किसी वस्तु की उपलब्धता को चुने हुए व्यक्तियों के लिए सीमित नहीं किया जाता, तो इसे सार्वजनिक अथवा सामाजिक वस्तु भी कहा जाता है। ऐसी वस्तु का इतना मूल्य नहीं हो सकता कि कुछ व्यक्तियों को उसके उपयोग से वंचित किया जा सके। इस प्रकार से वस्तुएँ अविभाज्य होती हैं। सार्वजनिक वस्तु का एक प्रारूपिक उदाहरण सुरक्षा सेवा है। जब कोई देश विदेशी आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा का प्रबंध करता है, तो प्रत्येक नागरिक की सुरक्षा होती है। आप यह नहीं कह सकते कि केवल उन्हीं व्यक्तियों को सुरक्षा दी जाएगी जो उसकी निर्धारित कीमत अदा करेंगे तथा अन्यों को असुरक्षित रहने दिया जाएगा। इसी प्रकार जब सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था की जाती है, तो बस्ती के सभी व्यक्तियों को लाभ पहुंचता है परंतु आपको यह भी ज्ञान होना चाहिए कि सार्वजनिक वस्तु की समान उपलब्धता का यह अर्थ नहीं है, कि समाज के प्रत्येक सदस्य को इसमें बराबर का हिस्सा मिलता है। उदाहरण के तौर पर किसी देश की राजनीतिक

सीमाओं के निकट अथवा संवेदनशील सैनिक ठिकानों के निकट रहने वाले व्यक्तियों को युद्ध की स्थिति में अधिक हानि उठानी पड़ती है। किसी वस्तु की अविभाज्य की कसौटी यह है कि वह वस्तु समाज के सभी सदस्यों को उपलब्ध हो, बिना इस बात पर ध्यान रखे कि वह इसके लिए कीमत अदा कर सकती है, अथवा करने को तैयार है। ऐसी वस्तु को सार्वजनिक निधि से उपलब्ध कराया जाता है, न कि बाज़ार मूल्यों के माध्यम से।

व्यवहार में विशुद्ध निजी वस्तु या सार्वजनिक वस्तु को खोज पाना कठिन है। अधिकांश वस्तुएँ इन दोनों का मिश्रण होती हैं। अतः किसी वस्तु को सार्वजनिक वस्त अथवा निजी वस्त उसकी प्रमुख लक्षणों के आधार पर निर्धारित करते हैं।

सीमित संसाधनों के साथ किसी अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक और निजी दोनों तरह की वस्तुओं की काफी मात्रा नहीं हो सकती। इसे दोनों में अनुकूलतम मिश्रण प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए। इस निर्णय से एक और प्रश्न पैदा होता है। सार्वजनिक वस्तु को उपलब्ध कराने का दायित्व किसे सौंपा जाना चाहिए और निजी वस्तु को उपलब्ध करने का दायित्व किसे सौंपा जाना चाहिए। अर्थशास्त्रियों ने तर्क दिया है कि ऐसी वस्तुएँ जो प्रमुख रूप से सार्वजनिक हैं, उनका उत्पादन सार्वजनिक क्षेत्र में किया जाना चाहिए क्योंकि उनकी लागत (costs) विक्रय-राजस्व के आधार पर उगाही नहीं जा सकती। दूसरी ओर निजी वस्तुएँ निजी क्षेत्र एवं सरकारी क्षेत्र दोनों द्वारा उपलब्ध करायी जा सकती हैं। इस बारे में चुनाव दर्शन पर निर्भर करता है जिसमें कोई समाज विश्वास रखता है।

1.4.6 सर्वहितकारी वस्तुओं (Merit Goods) की समस्या

आधुनिक समाज के समक्ष एक अन्य समस्या है। उस वस्तु को जिसकी समाज के सदस्यों द्वारा खपत अत्यंत आवश्यक है, उसे सर्वहितकारी वस्तु कहा जाता है। सर्वहितकारी वस्तु की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है कि उस वस्तु का लाभ उसे इस्तेमाल करने वालों को भी प्राप्त होता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति शिक्षित है, तो उसके शिक्षित होने से न केवल उसे सहायता मिलती है अपितु समग्र समाज को लाभ पहुँचता है। इस प्रकार शिक्षा एक सर्वहितकारी वस्तु (merit goods) है और इसलिए यह वांछनीय है कि समाज के प्रत्येक सदस्य को शिक्षा प्राप्त हो। सर्वहितकारी वस्तु के उपभोग से समग्र समाज को लाभ पहुँचता है और यह उसकी कार्यकुशलता एवं कल्याण में वृद्धि करती है। इसलिए प्रत्येक समाज को यह निश्चय करना होता है कि उक्त समाज किस सीमा तक हितकारी वस्तुओं का उत्पादन कर सकता है। और उसे ऐसा करना चाहिए। ऐसा अनुभव है कि यदि सर्वहितकारी वस्तुओं का उत्पादन और उनकी पूर्ति निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दी जाती है तो उत्पन्न किए जाने वाली वस्तुओं की मात्रा काफी अपर्याप्त ही रहती है। उदाहरण के तौर पर शिक्षा अधिक लागत वाली हितकारी वस्तु है। और हर कोई उस लागत को देने में सक्षम नहीं होता। अतः ऐसा समझा जाता है कि यदि शिक्षा निजी क्षेत्र के हाथों में रहती है तो बहुत से सूक्ष्म बुद्धि और योग्य परंतु निर्धन छात्र शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकेंगे। ऐसी परिस्थिति न केवल शिक्षा से वंचित रहने वाले छात्रों के लिए खराब है अपितु समाज के लिए भी हानिकारक है। यदि स्वास्थ्य के मामले को पूरी तरह निजी क्षेत्र के लिए छोड़ दिया जाता है तो उसके भी ऐसे ही भयावह परिणाम निकलेंगे। अतः यह आवश्यक है कि सर्वहितकारी वस्तुओं को उपलब्ध कराने का दायित्व सार्वजनिक प्राधिकारी अपने हाथ में लें अथवा निजी क्षेत्र द्वारा उसकी पूर्ति को कम से कम सम्पूरित करें।

बोध प्रश्न ग

1 किसी अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याएँ क्या हैं?

....

....

....

2 पूंजी निर्माण किसे कहते हैं?

....

....

....

3 उत्पादन की तकनीक क्या है?

....

....

उत्पादन संभावना वक्र चित्र 1.1 में दिखाया गया है कि मक्खन का मात्रा टनों x-अक्ष की तुलना में बंदूकों की संख्या y-अक्ष के साथ दिखाई गई है। संबंधित मिश्रणों में बंदूकें और मक्खन एक वक्र में दर्शाये गए हैं। जिसे उत्पादन संभावना वक्र कहते हैं। इस प्रकार के वक्र बंदूकों और मक्खन के सभी सम्मिश्रण व्यक्त किए जा सकते हैं। जो कि किसी अर्थव्यवस्था में सभी उत्पादक संसाधनों के उपयोग द्वारा उत्पन्न किए जा सकते हैं। इस प्रकार इस वक्र का प्रत्येक बिंदु अधिकतम संभव उत्पादन को दर्शाता है और इसी कारण इसे किसी अर्थव्यवस्था के उत्पादन सीमा (production frontier) भी कहा जाता है।

कोई भी अर्थव्यवस्था बंदूकों और मक्खन के वक्र में दर्शाये गए किसी बिंदु में मिश्रण के अनुसार जिसे डायग्राम में भी दिखाया गया है, शेडिड क्षेत्र द्वारा प्रदर्शित सम्मिश्रणों से विदित है कि जबकि अर्थव्यवस्था या तो बंदूकों का अधिक उत्पादन कर सकती है या मक्खन का अथवा दोनों का अधिक उत्पादन कर सकती है, परंतु यह ऐसा नहीं करती क्योंकि इससे कुछ उत्पादक संसाधनों का व्यर्थ व्यय होता है। अतः बिंदु क (A) पर 10 टन मक्खन का और 14 बंदूकों का मिश्रण दर्शाया गया है। उत्पादन संभावना वक्र में यह दर्शाया गया है कि कोई अर्थव्यवस्था इतने मक्खन के बदले 27 बंदूकों का उत्पादन कर सकती है जैसा कि PPC के बिंदु ग (C) में दर्शाया गया है। विकल्प के तौर पर, 14 बंदूकों के साथ मक्खन के उत्पादन को बढ़ाकर 25 टन किया जा सकता है। (देखिए बिंदु ख (B))।

PPC के बाहर डायग्राम के गैर-शेडिड क्षेत्र में 75 दिखाये गये सम्मिश्रणों (combinations) का उत्पादन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर बिंदु घ (D) में 30 टन मक्खन और 20 बंदूकों का सम्मिश्रण दर्शाया गया है। फिर भी जब 30 टन मक्खन का उत्पादन किया जाता है तो बंदूकों के उत्पादन के लिए संसाधन नहीं बचते। दूसरी ओर यदि 20 बंदूकों का उत्पादन किया जाता हैं, तो उत्पादन किये जाने वाले मक्खन की मात्रा कम करके 20 टन करनी पड़ती है।

उत्पादन सीमा का विस्तार : PPC अथवा उत्पादन सीमा समय व्यतीत होने के साथ-साथ बदलती रहती है। जब कोई अर्थव्यवस्था अपने उत्पादक संसाधनों (productive resources) में बढ़ोतरी करती है अथवा इनका उपयोग अधिक कुशल रूप में करना सीखती है, तो इससे इसकी उत्पादक क्षमता (productive capacity) बढ़ती है और यह बंदूकों और मक्खन दोनों ही वस्तुओं का अधिक उत्पादन कर सकती है। परिणाम-स्वरूप यह आवश्यक नहीं कि नया उत्पादन संभावना वक्र पुराने के समानान्तर हो।

1.6 संसाधनों का आवंटन (Allocation of Resources)

आप जानते हैं कि प्रत्येक अर्थव्यवस्था को उत्पादक संसाधनों का विभिन्न उपयोगों में आवंटन करने का निर्णय लेना होता है। इस संदर्भ में प्रश्न उठता है कि इस मामले का समाधान कैसे किया जाय। इस प्रश्न का उत्तर देते समय हमें संसाधनों के आंवटन की संरचना पर गंभीरता पूर्वक विचार करना चाहिए, जिसका संबंध किसी अर्थव्यवस्था की मूलभूत समस्याओं के समाधान से है, जिनकी चर्चा इस इकाई में पहले की जा चुकी है। संसाधनों के आवंटन की समस्या का हल कई तरीकों से निकाला जा सकता है और प्रत्येक अर्थव्यवस्था अपने चुने हुए उद्देश्यों के अनुरूप इसका समाधान करती है। कोई अर्थव्यवस्था कतिपय नियमों को और विनियमात्मक उपायों (regulatory devices) का चयन करती है। जो कि उत्पादक संसाधनों के आवंटन में मार्गदर्शन करते हैं। आप नोट करेंगे कि संसाधन आवंटन की किसी भी अकेली प्रणाली को आने वाली सभी समय के लिए आदर्श और सर्वश्रेष्ठ नहीं माना जा सकता। यदि ऐसी स्थिति होती तो आवंटन के इस प्रकार के नियम होते। स्पष्टतया किसी आर्थिक प्रणाली के आवंटन नियमों में कई शक्तियों पर निर्भर करते हैं। उनमें उल्लेखनीय हैं : इसका ऐतिहासिक अतीत उसके विकास का स्तर, उसकी तात्कालिक समस्याएँ, राजनीतिक विचारधारा तथा सामाजिक और धार्मिक रीति रिवाज। इस खंड में हम संक्षेप में विभिन्न तरह की आर्थिक प्रणालियों में संसाधन आवंटन की समस्या की चर्चा करेंगे।

1 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था
2 समाजवादी अर्थव्यवस्था
3 मिश्रित अर्थव्यवस्था

1.6.1 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (Capitalistic Economy) में साधनों का आवंटन

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन अध्ययन के इस स्तर पर आपको समझ लेना चाहिए कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था और बाज़ार अर्थव्यवस्था को एक ही माना जा सकता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत संसाधन आवंटन की समस्या को समझने के लिए हमें इस प्रणाली के विशिष्ट लक्षणों की जानकारी पहले प्राप्त करनी चाहिए। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की विशिष्टताएँ निम्न प्रकार हैं :

i) उत्पादन के साधन अथवा उत्पादक संसाधनों पर निजी स्वामित्व होता है। वे व्यक्ति जिनका संसाधनों पर प्राधिकार होता है, वे जब भी चाहें पूर्ति को बाज़ारों में भेजने से रोक सकते हैं।

ii) प्रत्येक वस्तु और सेवा (जिसमें उत्पादक संसाधन भी शामिल होते हैं) की एक कीमत होती है, जो मांग और पूर्ति के परस्पर क्रिया द्वारा निर्धारित होती है। मांग और पूर्ति के आधार पर कीमतों को मुक्त रूप से तय किए जाने की क्रिया सभी वस्तुओं और सेवाओं तक फैली होती है और इसे कीमत-निर्धारण की प्रक्रिया (price mechanism) कहा जाता है। याद रखें कि कीमत निर्धारण प्रक्रिया में, स्वतंत्रता, पूंजीवाद अथवा बाज़ार अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषता है।

iii) प्रत्येक आर्थिक इकाई विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करती है अर्थात् यह केवल अपने ही हित में कार्य करती है। अर्थात् बेचने वाला उच्चतम मूल्य देने वाले को ही बेचता है। खरीदने वाला वस्तु को कम से कम कीमत पर खरीदता है, इत्यादि।

iv) समाज की किसी सदस्य की आय को दो पहलुओं द्वारा निर्धारित किया जाता है : (क) उसके द्वारा बाज़ार में सप्लाई किए गए उत्पादक संसाधनों की मात्रा तथा (ख) वह कीमत जो उनके लिए अदा की जाती है।

प्रत्येक आर्थिक इकाई को कीमत प्रक्रिया (price mechanism) से मार्ग दर्शन मिलता है। वह बदलती हुई कीमतों पर ध्यान देती है और क्रय-विक्रय उपभोग, विनियोग उत्पादन आदि के निर्णय करती है।

ऐसी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत ऐसी वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है जो अधिकतम लाभ देती हैं। अतः उत्पादक संसाधन भी ऐसे मदों के लिए आवंटित किए जाते हैं क्योंकि भारी मांग वाली वस्तुओं के लिए ऊंचे मूल्य मिलते हैं और उन पर अधिक लाभ भी होता है। हम कह सकते हैं कि अधिकतम लाभ देने वाली वस्तुओं के लिए उत्पादक संसाधनों का आवंटन होता है किन्तु साथ ही यह प्रश्न भी पैदा होता है कि विशिष्ट मदों का उत्पादन करने के लिए कौन से संसाधन उपयोग में लाए जायें। नियोजक (employer) इस चयन को करने से पहले दो पहलुओं पर विचार करके इस पर निर्णय लेता है: (क) किसी उत्पादन के साधन की उत्पादकता और (ख) उसके लिए दी जाने वाली कीमत। वह इन दोनों पहलुओं से प्रत्येक उत्पादक संसाधन की तुलना करता है और ऐसे साधन का चुनाव करता है जिसमें उत्पादकता का कीमत से अनुपात अपेक्षाकृत अधिक हो। नियोजक इस बात को सुनिश्चित करने की चेष्टा करता है कि आदानों (inputs) पर व्यय किए जाने वाले प्रत्येक रुपए के बदले उसे अधिकतम संभव लाभ प्राप्त हो। आप पहले ही जानते हैं कि उत्पादक संसाधन और उनका स्वामित्व समाज के सदस्यों में आय के वितरण को तय करते हैं। बदले में वे निर्णय करते हैं कि कौन सी वस्तुओं और सेवाओं की मांग की जाय। इस प्रकार बाज़ार-प्रक्रिया आर्थिक इकाई का इसके निर्णय लेने में मार्ग दर्शन करती है और विभिन्न प्रयोगों में संसाधन आवंटन (allocation of resources) को निर्धारित करती है।

किसी बाज़ार अर्थव्यवस्था में आय के वितरण में भारी असमानताएँ होती हैं। हमारे जैसे गरीब देश में प्रायः लोगों के पास पर्याप्त क्रय-शक्ति नहीं होती जिसमें वे जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं को खरीद सकें। जबकि अमीर लोग विलास वस्तुओं की मांग करते हैं, और उनके उत्पादन को लाभप्रद बनाते हैं। परिणामस्वरूप देश में मूल आवश्यकताओं जैसे दूध इत्यादि का अपर्याप्त उत्पादन होता है जबकि अर्थव्यवस्था वातानुकूल जैसी विलास वस्तुओं का उत्पादन कर रही होती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि आय के असमान वितरण से उत्पन्न मांग के प्रकार से समाज की वास्तविक आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व नहीं होता। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था इस परिस्थिति का निदान करने की चेष्टा करती है।

1.6.2 समाजवादी अर्थव्यवस्था (Socialist Economy) में साधनों का आवंटन

समाजवाद शब्द के अंतर्गत बहुत सी अर्थव्यवस्थाएँ आती हैं जो एक दूसरे से कई प्रकार से भिन्न हैं, फिर भी किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

i) उत्पादन के संसाधनों का निजी स्वामित्व नहीं होता। उसके विपरीत इनको स्वामित्व सहकारिताओं (cooperatives) या सरकार के हाथ में होता है।

ii) कोई भी समाजवादी अर्थव्यवस्था समाज के सदस्यों के अधिकतम कल्याण के लिए कार्य करती है। यह ऐसी वस्तुओं और सेवाओं को उत्पन्न करने की चेष्टा करती है, जो कि समाज के सदस्यों की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप होती है। यह आय और पूंजी की असमानताओं को निम्न स्तर तक कम करने की चेष्टा करती है।

iii) इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए बाज़ार प्रक्रिया को मुक्त रूप से कार्य नहीं करने दिया जाता। इसका अभिप्राय है कि कीमतों को मांग और पूर्ति की शक्तियों पर पूरी तरह आधारित नहीं होने दिया जाता। उसी प्रकार वस्तुओं और सेवाओं की मांग और पूर्ति के संबंध में निर्णय भी सदा कीमतों पर आधारित नहीं होते। ऐसे निर्णय पृथक आर्थिक एककों द्वारा नहीं लिए जाते उनके स्थान पर ये निर्णय किसी केंद्रीय आयोजन प्राधिकरण अर्थात् स्वयं सरकार द्वारा लिए जाते हैं। पृथक आर्थिक इकाइयों की ओर से आवश्यक निर्णय केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा लिए जाते हैं।

   इस बात का निर्णय कि अर्थव्यवस्था की केंद्रीय समस्याओं का हल किस प्रकार किया जाता है; केन्द्रीय आयोजन प्राधिकरण द्वारा किया जाता है। इस कारण समाजवादी अर्थव्यवस्था को केंद्रीय आयोजन वाली अर्थव्यवस्था (centrally planned economy) भी कहते है।

iv) उत्पादकों तथा विक्रेताओं को लाभ पूर्ण कार्य करने नहीं दिया जाता। जिसका अर्थ है कि उन्हें अपने लाभ को अधिकतम करने नहीं दिया जाता इसके स्थान पर आदानों और उत्पादित वस्तुओं के मूल्यों पर निर्णय केंद्रीय प्राधिकरण द्वारा प्रशासनिक रूप से लिए जाते हैं। कुछ अत्यावश्यक वस्तुओं और सेवाओं का राशन भी किया जाता है तथा सभी अथवा चुने हुए सदस्यों को साहय्यित दरों (subsidized rates) पर खुले रूप में इनका वितरण किया जाता है। आमतौर पर केवल गैर-आवश्यक वस्तुएँ ही बाज़ार कीमतों पर बेची जाती हैं।

अतः केंद्रीय रूप में आयोजित अर्थव्यवस्था में संसाधन-आवंटन संबंधी निर्णय लेने की पूरी जिम्मेदारी प्राधिकारियों के हाथ में होती है। बाज़ार की शक्तियों को इन निर्णयों को प्रभावित नहीं करने दिया जाता। इस बात का निर्णय प्राधिकारी लेते हैं कि कौन सी वस्तुओं का कितनी मात्रा में उत्पादन किया जाए। इन वस्तुओं के उत्पादन के लिए संसाधनों के आवंटन का निर्णय भी वही प्राधिकारी लेते हैं। इन निर्णयों को कीमत और लाभ से प्रभावित होने नहीं दिया जाता उसके स्थान पर उनका लक्ष्य होता है समाज की वास्तविक आवश्यकताओं का पता लगाना तथा अर्थव्यवस्था के उत्पादक संसाधनों को इन्हें पूरा करने के लिए निदेश देना।

समाजवादी अर्थव्यवस्था की प्रमुख कमी यह है कि इसमें कार्य और उत्पादन के लिए प्रोत्साहन कम हो सकता है। इसलिए वस्तुओं और सेवाओं की न्यूनतम उपलब्धता से अधिक मात्रा प्राप्त करने के लिए श्रमिकों को अतिरिक्त आय कमाने के लिए अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है।

1.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) में संसाधनों का आवंटन

मिश्रित अर्थव्यवस्था उसे कहते हैं जिसमें कुछ निर्णय बाज़ार की शक्तियों के लिए छोड़े जाते हैं जबकि अन्य निर्णय सीधे सरकार के विनियमों अथवा स्वामित्व में लिए जाते हैं। आर्थिक क्रिया-कलापों के कुछ चुने हुए क्षेत्र सरकारी क्षेत्र के लिए सुरक्षित रखे जाते हैं। सरकार इन कार्यकलापों के लिए आवश्यक उत्पादक संसाधन प्राप्त करती है तथा उनकी प्राथमिकता के अनुसार उनका उपयोग करती है। सरकारी क्षेत्र के उत्पादन का ढंग, सरकारी क्षेत्र द्वारा किए गए उत्पादन की मदों की कीमतों और अन्य उपायों का प्रयोग निजी क्षेत्र में भी संसाधन आवंटन के विनिमय (regulation) के लिए किया जाता है। इन अन्य उपायों में मूल्य नियंत्रण, लाइसेंस प्रदान करना, कराधान, मूल्य में अर्थ-साहाय्य (subsidies) आदि सम्मिलित हैं। इसके अलावा विभिन्न श्रम कल्याणकारी कार्य हाथ में लिए जाते हैं। देश के पिछड़े क्षेत्रों के विकास में विशिष्ट कमियों को दूर करने और अर्थव्यवस्था में समग्र रूपेण संतुलित विकास लाने के लिए उत्पादक संसाधनों का इसमें उपयोग बढ़ाया जाता है।

बोध प्रश्न घ

1 उत्पादन संभावना वक्र से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

2 बतलाइए, निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।

i) बाज़ार अर्थव्यवस्था में साधनों का आवंटन समाज की वास्तविक आवश्यकता के अनुरूप होता है।

ii) आर्थिक विवेक के आधार पर लिए गए निर्णय समाज की दृष्टि से सदा श्रेष्ठ होते हैं।

iii) किसी बाज़ार अर्थव्यवस्था के संबंध में निर्णय मूल्य-संकेतों से प्रभावित होता है।

iv) समाजवादी अर्थव्यवस्था में केंद्रीय समस्याओं का समाधान बाज़ार-प्रक्रिया द्वारा किया जाता है।

v) मिश्रित अर्थव्यवस्था में संसाधनों का आवंटन आंशिक रूप से निजी क्षेत्र द्वारा निर्धारित किया जाता है।

vi) किसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में प्राधिकारियों द्वारा निजी क्षेत्र को अनियमित छोड़ दिया जाता है।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) बाजार तंत्र का अभिप्राय है। .... के बीच अंत: क्रिया।

ii) आर्थिक .... का भी अर्थ है कि आर्थिक इकाई अपने ही हितों के लिए कार्य कर रही हैं।

iii) .... अर्थव्यवस्था में सभी आर्थिक निर्णय आर्थिक विवेक के आधार पर लिए जाते हैं।

1.7 सारांश

प्रत्येक समाज को उसकी सदा बढ़ती हुई और असीमित आवश्यकताओं की तुष्टि करने के लिए उनकी तुलना में साधनों के अभाव का निरंतर समस्या का सामना करना पड़ता है। अतः प्रत्येक समाज एक ओर तो साधनों की उपलब्धता में बढ़ोतरी करने तथा दूसरी ओर उनके उपयोग में बचत लाने का प्रयास करता है। इस उद्देश्य के लिए विभिन्न संस्थान (institutions) विधियाँ और व्यवस्थाएँ खोजी गई हैं और उनके समग्र रूप को अर्थव्यवस्था अथवा आर्थिक प्रणाली कहा जाता है। किसी भी आर्थिक प्रणाली की प्रकृति यथार्थ रूप में प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न होती है। फिर भी किसी समाज द्वारा अपनाई गई आर्थिक पद्धति भी समय के साथ-साथ बदलती रहती है। अर्थव्यवस्थाओं को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे कि उपयोग में लाए जाने वाले उत्पादक संसाधनों की प्रमुखता के आधार पर, उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं के आधार पर तथा संस्थाओं के प्रकारों तथा सम्पत्ति के अधिकारों आदि के आधार पर किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक अभिकर्ता (economic agents) निर्णय लेने वाले एकक होते हैं।

उत्पादक संसाधन अथवा उत्पादन के साधन उत्पादन में उपयोग में लाए जाने वाले अतिरिक्त उपयोगिता का सृजन है अर्थात् आदान (inputs) हैं। उत्पादन अर्थात् किसी मद की आवश्यकता की तुष्टि करने की क्षमता उत्पादन के साधनों को समरूप इकाइयों के समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है। अर्थात् ऐसे एकक जिन्हें एक दूसरे के स्थान में बिना उत्पादन पर प्रभाव डाले प्रतिस्थापित किया जा सकता है। ऐसे प्रत्येक ग्रुप को उत्पादन के साधन कहा जाता है। उत्पादन के साधनों को परंपरागत रूप से चार वर्गों में विभाजित किया जाता है : (1) भूमि (2) श्रम (3) पूंजी (4) संगठन या उद्यमकर्ता।

भूमि एक ऐसा उत्पादन संसाधन है जो प्रकृति द्वारा बिना मूल्य के प्रदान किया गया है। मनुष्य भूमि पैदा नहीं कर सकता, बेशक अज्ञात संसाधनों की खोज करना तो उसके लिए संभव है। उसी प्रकार ज्ञात संसाधनों के अलावा नए उपयोगों की खोज करना भी संभव है। श्रम उत्पादन के लिए मानव द्वारा किए गए भौतिक एवं मानसिक प्रयासों का द्योतक है। पूंजी के अंतर्गत मनुष्य के द्वारा उत्पन्न किए उत्पादन संसाधन आते हैं अर्थात् उत्पादित उत्पादनों के साधन, उद्यमकर्ता

व्यावसायिक क्रिया कलापों के संबंध में निर्णय लेने वाला और जोखिम उठाने वाला व्यक्ति है।

प्रत्येक अर्थव्यवस्था में कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं जो कि आवश्यकताओं की तुलना में उत्पादन के साधनों के अभाव से पैदा होती है। ये समस्याएँ हैं : i) किस वस्तु का उत्पादन किया जाये? ii) किसके लिए उत्पादन किया जाये? बचत और पूंजी निवेश द्वारा वर्तमान उपभोग और विकास के मध्य चुनाव। क्या उत्पन्न किया जाय की समस्या का घनिष्ठ संबंध उत्पादन के साधनों और विकल्पी प्रयोगों के आवंटन से हो। जबकि तकनीक का चयन इस समस्या को उजागर करता है कि कैसे उत्पादन किया जाए। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अर्थव्यवस्था को निजी और सार्वजनिक वस्तुओं के संबंध में तथा निजी वस्तुएँ किस सीमा तक निजी क्षेत्र में उत्पादित की जाएँ ये निर्णय भी करने होते हैं।

प्रत्येक अर्थव्यवस्था को अर्थात् सर्वोहितकारी वस्तुओं की सप्लाई की वृद्धि का भी ध्यान रखना होता है अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जिनके बारे में माना जाता है कि जिनका उपयोग किया जाना पूरे समाज के लिए हितकारी है। किस वस्तु का उत्पादन किया जाय, इसे सामान्यता उत्पादन संभावना वक्र अथवा उत्पादन परिवर्तन वक्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे कुछ सरल मान्यताओं के आधार पर तैयार किया जाता है। इस वक्र द्वारा दर्शाया गया भाव यह है कि जब कोई अर्थव्यवस्था अपने संसाधनों का पूरा उपयोग करती है तब ये दी गयी उत्पादन तकनीक के आधार पर कुछ वस्तुओं का उत्पादन तब तक बढ़ा नहीं सकती जब तक अन्य वस्तुओं का उत्पादन कम न किया जाए। फिर भी आर्थिक विकास के साथ यह संभव है कि सभी वस्तुओं का उत्पादन साथ-साथ कराया जाए ताकि सभी वस्तुओं का उत्पादन एवं उत्पादन संभावना वक्र बाहर की ओर ऊंचे उठे।

किसी आर्थिक प्रणाली तुलना में दूसरी आर्थिक प्रणाली में संसाधनों का आवंटन भिन्न प्रकार से होता है। किसी बाज़ार अर्थव्यवस्था अथवा पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आवंटन बाज़ार-प्रक्रिया की सहायता से होता है। उसका अभिप्राय है कि मांग पूर्ति और मूल्यों की परस्पर-क्रिया द्वारा इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर निजी एककों का स्वामित्व होता है तथा वे अलग-अलग परिस्थितियों में निर्णय लेती हैं जैसे उपभोक्ता, उत्पादक, इत्यादि। प्रत्येक इकाई का व्यवहार आर्थिक विवेक से निर्धारित होता है। नियोजक आदानों और उनसे प्राप्त होने वाली उत्पादिता (productivity) और मूल्यों की तुलना करके निर्णय करता है। नियोजक यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि आदानों पर व्यय किए गए प्रत्येक रुपये से उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। तदानुसार अर्थव्यवस्था की मांग प्रक्रिया ही अन्तोगत्वा, संसाधनों का आवंटन निर्धारित करती है। चूंकि बाज़ार अर्थव्यवस्था की विशिष्टता है कि इसमें आय और पूंजी के वितरण में भारी असमानताएँ होती हैं, मांग का ढांचा समाज की वास्तविक आवश्यकताओं को दर्शाने में सफल नहीं होता। आवश्यक वस्तुओं की तुलना में विलास वस्तुओं का उत्पादन तथा विक्रय करना अधिक लाभप्रद हो जाता है। परिणामस्वरूप संसाधनों का आवंटन भी वास्तविक आवश्यकताओं को नहीं दर्शाता।

किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व नहीं होता। उनके स्थान पर उनका स्वामित्व सरकार के पास अथवा सहकारी समितियों के पास होता है। अर्थव्यवस्था आय और पूंजी की असमानताओं को दूर करने का प्रयास करती है। इसमें चेष्टा की जाती है कि वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन और इसलिए संसाधनों का आवंटन समाज की वास्तविक आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इस कारण से बाज़ार-प्रक्रियाओं को मुक्त रूप से कार्य करने नहीं दिया जाता। अधिकांश वस्तुओं की कीमतें उनकी मांग और पूर्ति की स्थिति को आधार न बनाकर प्रशासनिक आधार पर तय की जाती हैं। पृथक आर्थिक एककों पर आर्थिक विवेकशीलता के आधार पर अपना निर्णय लेने पर प्रतिबंध लगाया जाता है।

किसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में निर्णय लेने की प्रक्रिया पृथक आर्थिक एककों और प्राधिकारियों के साथ मिल जुल कर तय की जाती है। फिर भी जहां भी आवश्यकता हो निजी आर्थिक एककों का और सरकारी नियमों, विनियमों के अधीन चलना पड़ता है जैसे कि मूल्य, नियंत्रण अर्थ-साहाय्य (subsidies) कराधान, कोटे, श्रमिक कानून इत्यादि।

1.8 शब्दावली

पूंजी : मनुष्य द्वारा निर्मित अथवा उत्पादित उत्पादन के साधन।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था (बाज़ार अर्थव्यवस्था) : वह अर्थव्यवस्था जिसमें उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व और उत्तराधिकार निजी व्यक्तियों का होता है। वे ही आर्थिक निर्णय लेते हैं और ऐसे निर्णय लेने में उन्हें वस्तुओं और सेवाओं के बाज़ार-मूल्यों से मार्गदर्शन मिलता है।

आर्थिक अभिकर्ता : किसी अर्थव्यवस्था की निर्णय लेने वाली इकाइयाँ।

आर्थिक प्रणाली अथवा अर्थव्यवस्था : असीमित आवश्यकताओं तथा उनमें से तुष्टि के लिए चुनी गई आवश्यकताओं के उत्पादन साधनों (संसाधनों) के अभाव की सभी समस्याओं, विधियों एवं व्यवस्थाओं का समग्र रूप।

उद्यमकर्ता : व्यवसाय संबंधी क्रिया-कलापों के बारे में अंतिम निर्णय लेने वाला और जोखिम उठाने वाला व्यक्ति। यह संगठनात्मक कार्य है जो अन्य संसाधनों द्वारा उपलब्ध कराई गई सेवाओं को जोड़ता है ताकि वस्तुओं का उत्पादन हो सके।

उत्पादन के साधन : आगतों (भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यमकर्ता) जो कि उत्पादन के लिए आवश्यक हैं।

आगत : ऐसी मदें जिन्हें उत्पादन प्रक्रिया में इस्तेमाल किया जाता है।

श्रम : शारीरिक एवं मानसिक मानवीय प्रयास जिसे उत्पादन के लिए आदान के रूप में उपयोग में लाया जाता है।

भूमि : उत्पादन के वे साधन जो प्रकृति ने बिना मूल्य दिये हैं। इसमें कृषि तथा औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाये जाने वाली भूमि अथवा भूमि से प्राप्त होने वाले प्राकृतिक संसाधन भूतल से लिए गये संसाधन सम्मिलित हैं।

बाज़ार प्रक्रिया : मांग पूर्ति और मूल्यों संबंधी आंतरिक क्रिया-कलापों को दर्शाने वाली प्रक्रिया तथा उसके अध्ययन के फलस्वरूप आर्थिक इकाइयों द्वारा मूल्यों संबंधी निर्णय लेने की प्रक्रिया।

सर्वहितकारी वस्तुएं : ऐसी वस्तुएं जिनके उपयोग के बारे में समझा जाता है कि ये न केवल उपयोग करने वाले को, बल्कि पूरे समाज को लाभ देती हैं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य।

निजी वस्तुएँ : ऐसी वस्तुएँ जिनकी उपलब्धता चुने हुए उपभोक्ताओं के लिए सीमित रहती है। इस रूप में ये विभाज्य हैं।

उत्पादन : विभिन्न विधियों से उपयोगिता बढ़ाना।

उत्पादन संभावना वक्र : किसी अर्थव्यवस्था के आधीन कतिपय अन्य सरलीकृत मान्यताओं के आधार पर दिये गये उत्पाद्य संसाधनों के साथ विनिर्मित होने वाले वर्ग "एक्स" तथा "वाई" अक्षों के सम्मिश्रणों के उत्पादन की अधिकतम मात्रा दर्शाने वाला।

उत्पाद्य संसाधन : ऐसी मदें जिनका उपयोग उत्पादन के आदानों के रूप में होता है।

सार्वजनिक वस्तुएँ : ऐसी वस्तुएँ अथवा सेवाएँ जिनकी उपलब्धता चुने हुए उपभोक्ताओं के लिए उसके मूल्य अथवा अन्य कारणों से प्रतिबंधित नहीं की जा सकती। इन वस्तुओं से प्राप्त लाभ अविभाज्य है और लोगों को उनसे वंचित नहीं रखा जाता।

1.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) 3 (i) नहीं (ii) नहीं (iii) नहीं (iv) सही (v) सही (vi) सही (vii) नहीं (viii) नहीं

ख) 2 (i) नहीं (ii) सही (iii) सही (iv) नहीं (v) सही

3 (i) भूमि, श्रम (ii) उसमें से निकलना
(iii) और आगे उत्पादन
(iv) मनुष्य द्वारा निर्मित

ग) 6 (i) नहीं (ii) सही (iii) नहीं (iv) सही (v) नहीं

घ) 2 (i) नहीं (ii) नहीं (iii) सही (iv) नहीं (v) सही (vi) नहीं

3 (i) मांग पूर्ति तथा मूल्य (ii) तर्काधार (iii) बाज़ार/पूंजीपति

1.10 स्वपरख प्रश्न

1 आर्थिक प्रणाली किसे कहते हैं? किसी अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओं को स्पष्ट कीजिए।

2 मानवीय आवश्यकताओं की मुख्य विशिष्टताएँ क्या हैं?

3 "न्यूनता सभी आर्थिक प्रणालियों की जननी है" व्याख्या कीजिए।

4 उत्पादन के साधनों से आप क्या समझते हैं। उनके चार तत्वों की संक्षेप में व्याख्या करें।

5 निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :
क) सार्वजनिक वस्तुएँ और निजी वस्तुएँ
ख) सर्वहितकारी वस्तुएँ
ग) मानवीय आवश्यकताएँ

6 स्पष्ट करें कि किसी अर्थव्यवस्था की मूल समस्याओं का समाधान किस प्रकार एक दूसरे से संबंधित है।

7 उत्पादन संभावना वक्र की संकल्पना को स्पष्ट करें। उसकी मान्यताओं का उल्लेख करें तथा इसे किसी उदाहरण की मदद से प्रदर्शित करें।

8 संक्षेप में बताइए कि निम्न आर्थिक व्यवस्थाओं में संसाधनों का आवंटन किस प्रकार होता है।
क) बाजार अर्थव्यवस्था
ख) समाजवादी अर्थव्यवस्था
ग) मिश्रित अर्थव्यवस्था

नोट : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 2 आधारभूत संकल्पनाएं

संरचना

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 अर्थशास्त्र की आधारभूत शब्दावली
2.3 वर्तुल प्रवाहों की प्रणाली के रूप में अर्थव्यवस्था
2.4 आर्थिक कार्य-पद्धति और आर्थिक नियम
  2.4.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक तर्क
  2.4.2 यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें
  2.4.3 संतुलन
2.5 यथार्थमूलक बनाम आदर्श अर्थशास्त्र
2.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र
2.7 स्टॉक और प्रवाह
2.8 स्थैतिकी और गतिकी
2.9 विकल्प लागत
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.13 स्वपरख प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- **उन प्रमुख संकल्पनाओं और शब्दों का स्पष्टीकरण कर सकेंगे जो सामान्य अर्थशास्त्र की शब्दावली के अंग हैं,**
- **यह बता सकेंगे कि आर्थिक तर्क किस प्रकार किया जाता है और आर्थिक नियमों का सामान्यीकरण कैसे होता है,**
- **आर्थिक नियमों के स्वरूप और उनकी विश्वसनीयता को बता पाएंगे,**
- **आर्थिक तर्कों से संबंधित कुछ विश्लेषणात्मक संकल्पनाओं का स्पष्टीकरण कर सकेंगे, तथा**
- **यह विवेचन कर सकेंगे कि हमारे भौतिक कल्याण के लिए अर्थशास्त्र का उपयोग किया जाता है या नहीं।**

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में आप पढ़ चुके हैं कि आर्थिक प्रणाली का क्या अर्थ होता है, सभी आर्थिक प्रणालियों को किन प्रमुख समस्याओं का सामना करना होता है, उत्पादन के कारक क्या हैं और विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों में संसाधनों का आवंटन (allocation of resources) किस प्रकार होता है। चर्चा के दौरान आपके सम्मुख कुछ मूल संकल्पनाएं आती हैं, जैसे उपयोगिता, उत्पादन, उत्पादन के कारक/आगतें, उत्पादन संभावना वक्र, दुर्लभता आदि। इस इकाई में आप इनमें से कुछ संकल्पनाओं के संबंध में और विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे तथा कुछ नई संकल्पनाओं के संबंध में भी आपको जानकारी मिलेगी। आप यह भी देखेंगे कि किसी आर्थिक प्रणाली के विभिन्न अंग किस प्रकार एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक तर्क के मूल तत्वों तथा आर्थिक नियमों और सिद्धांतों के स्वरूप और विश्वसनीयता के संबंध में परिचय दिया जाएगा। उसी प्रकार इस संबंध में भी विचार किया जाएगा कि अर्थशास्त्र केवल ज्ञान प्रदान करने वाला विषय ही नहीं है अपितु यह भौतिक कल्याण की वृद्धि में हमें व्यावहारिक मार्ग निर्देशन भी प्रदान करता है। इस इकाई को पढ़ते समय आर्थिक तर्क से संबंधित कुछ विश्लेषणात्मक संकल्पनाओं के संबंध में भी विवेचन किया जाएगा।

2.2 अर्थशास्त्र की आधारभूत शब्दावली

उपयोगिता (Utility) : आप जानते हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता का अर्थ होता है आवश्यकता की तुष्टि करने की उसकी शक्ति। विचारणीय वस्तु के उपयोग से अपेक्षित संतुष्टि होने के कारण यह व्यक्तिपरक (subjective) होती है, वस्तुपरक (objective) नहीं। इसका अर्थ यह है कि किसी उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि वह उस वस्तु के उपयोग से कितनी संतुष्टि पाने का अनुमान लगता है। इसे किसी यांत्रिक या मात्रात्मक प्रणाली से मापने का कोई उपाय नहीं है। संतुष्ट की जाने वाली आवश्यकता/आवश्यकताओं की तीव्रता पर भी उपयोगिता निर्भर करती है। इसके फलस्वरूप किसी एक ही वस्तु की उपयोगिता भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न-भिन्न मात्राओं में होती है। इसके अतिरिक्त किसी एक ही व्यक्ति को किसी वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से अपेक्षाकृत कम उपयोगिता मिलने की आशा की जाती है, क्योंकि वस्तु के उपभोग के साथ-साथ संतुष्ट हो रही आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है। उपभोग होने वाली वस्तु की अंतिम इकाई की उपयोगिता को उसकी **सीमांत उपयोगिता** (marginal utility) कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, सीमांत उपयोगिता का अर्थ होता है किसी उपभोक्ता को किसी वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से प्राप्त अतिरिक्त उपयोगिता या संतुष्टि। किसी उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु के उपभोग से प्राप्त कुल उपयोगिता या संतुष्टि को उपभोग की गई कुल इकाईयों से भाग देने पर एक इकाई की जो उपयोगिता आती है उसे **औसत उपयोगिता** (average utility) कहा जाता है।

मूल्य (Value) : इस शब्द का प्रयोग दो भिन्न अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में इसका उपयोग किसी उपभोक्ता या उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की लाभप्रदता को बताने के लिए किया जाता है। इस अर्थ में उस व्यक्ति के लिए इसमें उपयोगिता होती है, अर्थात् उसके लिए वह उपयोगी है। इस मूल्य को उस वस्तु का **उपभोग-मूल्य** (use-value) कहा जाता है। दूसरे अर्थ में, किसी वस्तु के पास इस अर्थ में मूल्य होता है कि इसका किसी दूसरी वस्तु के साथ विनिमय किया जा सकता है या इसे बेचा जा सकता है। जिस कीमत के लिए इसे बेचा जा सकता है उसे इसका **विनिमय मूल्य** (exchange value) कहा जाता है।

किसी वस्तु का उपयोग-मूल्य इस बात पर निर्भर करता है कि वह जिस आवश्यकता/जिन आवश्यकताओं की तुष्टि करती है उसमें कितनी तीव्रता है। इसीलिए जल जैसी जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रारंभिक मात्राओं में अधिक उपयोग-मूल्य होता है। लेकिन यदि वे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं तब उनका सीमांत उपयोग-मूल्य या सीमांत उपयोगिता घट कर बहुत कम हो जाती है। इसके विपरीत किसी वस्तु का विनिमय मूल्य उसकी उत्पादन लागत तथा मांग की तुलना में उसकी दुर्लभता से प्रभावित होता है। इसीलिए हीरा तथा सोना जैसी कुछ वस्तुओं का विनिमय मूल्य बहुत अधिक होता है।

संपत्ति (Wealth) : संपत्ति की संकल्पना का अर्थ भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न होता है। मूल रूप में यह सभी उपलब्ध उपयोगी साधनों के कुल योग का प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए किसी व्यक्ति की संपत्ति के अंतर्गत केवल उसकी भू-संपत्ति तथा अन्य भौतिक वस्तुएं ही नहीं बल्कि उसके पास के **मुद्रा-रूप अधिशेष** (money balances) तथा अन्य **वित्तीय परसंपत्तियां** (financial assets) भी आ जाती हैं। परंतु अर्थव्यवस्था के संदर्भ में संपत्ति की संकल्पना से अभिप्राय कुछ और ही होता है। देश के सभी प्राकृतिक संसाधन, जिन पर सरकार या अन्य आर्थिक इकाईयों का स्वामित्व हो या नहीं इसकी संपत्ति के अंतर्गत आ जाते हैं। इस दृष्टिकोण से राष्ट्रीय संपत्ति के अंतर्गत मानव संपत्ति भी आ जाती है जिसका प्रतिनिधित्व आबादी के आकार, स्वास्थ्य, शिक्षा और पशिक्षण तथा लोगों के नैतिक चरित्र और कार्य के प्रति उनकी प्रवृत्ति द्वारा होता है। राष्ट्रीय संपत्ति के अंतर्गत मशीन और उपस्कर, भवन, सड़क, पुल आदि मानव निर्मित संसाधन तथा शेष विश्व के देशों पर किसी देश के दावे भी आ जाते हैं। यह स्मरणीय है कि व्यक्तियों की वित्तीय संपत्ति राष्ट्रीय संपत्ति का अंश नहीं होती क्योंकि एक श्रेणी के व्यक्तियों के दायित्व (liabilities) दूसरे श्रेणी के व्यक्तियों के दावों से कट जाते हैं।

पदार्थ या वस्तुएं (Goods) : इस पद के अंतर्गत सेवाएं भी आ जाती हैं। ऐसी किसी भी वस्तु को पदार्थ कहा जाता है जिसमें उपयोगिता हो या जिसका उपयोग और अधिक पदार्थों और सेवाओं के उत्पादन में किया जा सके। पदार्थों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। जो पदार्थ व्यक्तियों और परिवारों की आवश्यकताओं की तुष्टि करते हैं उन्हें **उपभोग वस्तु** (consumption goods) कहते हैं। इसके विपरीत जिन पदार्थों का उपयोग बिक्री के लिए वस्तुओं/सेवाओं के उत्पादन कार्य में होता है, उन्हें **मध्यवर्ती वस्तुएं** (intermediate goods)

कहते हैं। जिन वस्तुओं का उपयोग एक से अधिक बार उत्पादन कार्य के लिए किया जा सकता है (जैसे मशीन और उपस्कर) उन्हें **पूंजी-वस्तुएं** (capital goods) कहा जाता है, मध्यवर्ती वस्तुओं के उदाहरण हैं कच्चे माल, कोयला, मशीनें, हस्तोपकरण (hand tools), आदि, जिनका उपयोग विनिर्माण उद्योगों (manufacturing industries) में किया जाता है तथा बीज, उर्वरक और कीटनाशक जिनका उपयोग किसान लोग खेती के काम में करते हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि एक ही वस्तु उपभोग वस्तु की कोटि से मध्यवर्ती वस्तु की कोटि में जा सकती है और इसके विपरीत भी हो सकता है। ऐसा होना इस बात पर निर्भर करता है कि उस वस्तु का उपयोग किस उद्देश्य से किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, एक मोटरगाड़ी का मालिक उसका उपयोग यदि अपने निजी कार्य के लिए करता है तब उसे उपभोग वस्तु कहा जाएगा परंतु यदि इसका उपयोग टैक्सी के रूप में किया जाता है तब उसे पूंजी वस्तु या मध्यवर्ती वस्तु कहा जाएगा।

वस्तुओं का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जाता है कि वे किस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। जो वस्तुएं भूख, सर्दी और गर्मी से रक्षा तथा कुछ सामाजिक दायित्वों को निभाने जैसी हमारी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं उन्हें **"आवश्यक वस्तुएं"** (necessities) कहते हैं। इस प्रकार से तुष्ट की जाने वाली आवश्यकताएं अत्यंत तीव्र होती हैं, इसलिए आवश्यक वस्तुओं की उपयोगिता बहुत अधिक होती है। यदि आवश्यकताओं की तीव्रता कुछ कम होती है, तब उन्हें पूरा करने वाली वस्तुओं का वर्गीकरण "सुख की वस्तुओं" (comforts) के रूप में किया जाता है। सुख की वस्तुओं के प्रयोग के फलस्वरूप प्रायः हमारी कार्यक्षमता और उत्पादिता बढ़ जाती है। उसी प्रकार **"विलास वस्तुएं"** (luxuries) वे होती हैं जिनके उपभोग से हमारी अत्यंत कम तीव्र आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति मुख्यतः सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की दृष्टि से की जाती है। सामान्यतः व्यक्ति पहले आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करता है और उसके बाद सुख की वस्तुओं ेर विलास वस्तुओं का। परंतु इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि जो वस्तु किसी के लि : विलास की है वह किसी अन्य के लिए सुख की वस्तु तथा किसी और व्यक्ति के लिए आवश्य वस्तु हो सकती है। इसके अतिरिक्त समय बीतने के साथ-साथ व्यक्ति की आवश्यकताअ में परिवर्तन हो सकता है जिसके फलस्वरूप उसके लिए वस्तुओं का पुनर्वर्गीकरण करना होता ।

पूर्ति (Supply) : किसी वस्तु की पूर्ति की संकल्पना का संबंध उसकी उपलब्धता के साथ होता है। उत्पादक तथा स्टॉकधारी विभिन्न कीमतों पर किसी वस्तु की विभिन्न मात्राओं में बिक्री करने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार वस्तु की पूर्ति का अर्थ है किसी निर्दिष्ट कीमत पर बिक्री के लिए उस वस्तु की दी जाने वाली मात्रा। किसी वस्तु की कीमत के घटने-बढ़ने के साथ ही साथ उसकी पूर्ति की मात्रा भी घटती-बढ़ती है। आमतौर पर वस्तु की कीमत के बढ़ने पर उसकी पूर्ति बढ़ती है तथा कीमत के घटने पर उसकी पूर्ति भी घटती है। परंतु उत्पादन लागत में परिवर्तन होने की स्थिति में दी हुई कीमत पर भी पूर्ति में परिवर्तन हो सकता है। इसके अतिरिक्त यदि अर्थव्यवस्था में प्रतिसार (recession) या मंदी (depression) आ जाती है तब कीमत के घटने पर पूर्ति बढ़ती है क्योंकि कीमतों में और गिरावट होने के भय से विक्रेता अपने स्टॉक को समाप्त करना चाहते हैं।

मांग (Demand) : जैसा कि आप जानते हैं, विभिन्न कीमतों पर क्रेता किसी वस्तु का विभिन्न मात्राओं में क्रय करने को तत्पर रहते हैं। इस प्रकार किसी वस्तु के लिए मांग का कोई अर्थ तभी होता है जब कि खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा के साथ-साथ उसकी कीमतें भी दी हुई हों तथा क्रेता उस कीमत को देने का इच्छुक होने के साथ ही साथ समर्थ भी हों। आम तौर पर कीमत के बढ़ने पर वस्तु की माँग घटती है और कीमत के घटने पर माँग बढ़ती है परंतु किन्हीं विशेष परिस्थितियों में तथा कुछ वस्तुओं के साथ ऐसा नहीं भी होता है। जैसे कि दुर्लभता की स्थिति में खाद्य पदार्थों की कीमत के बढ़ने पर उनकी माँग भी बढ़ सकती है क्योंकि उपभोक्ताओं को यह भय होता है कि बाज़ार में ये वस्तुएं उपलब्ध नहीं रहेंगी तथा उनकी कीमतें और भी चढ़ जाएंगी। अतः वे इसे अपनी औसत आवश्यकता से अधिक मात्रा में खरीदकर अपने पास रखना चाहेंगे। उसी प्रकार हीरे-जवाहरात तथा अन्य फैन्सी वस्तुओं की खरीद लोग मुख्य रूप से अपने वैभव-प्रदर्शन के लिए करते हैं। इसीलिए इनकी कीमतों के बढ़ने पर माँग में भी वृद्धि हो जाती है।

उपभोग (Consumption) : जिस प्रकार से उत्पादन शब्द से अभिप्राय किसी न किसी रूप में उपयोगिता का सर्जन (creation) करना होता है, उसी प्रकार उपभोग से अभिप्राय होता है किसी आवश्यकता को पूरा करने में या उत्पादन की प्रक्रिया में उस उपयोगिता का उपयोग करना। उपभोग का अर्थ उपयोगिता को नष्ट करना नहीं होता है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग करने से पूर्व कुछ धन खर्च करके

बाज़ार में उन्हें खरीदना होता है। इसीलिए उपभोग वस्तुओं को खरीदने पर किए जाने वाले व्यय को प्राय: **उपभोग व्यय** या केवल **उपभोग** कहा जाता है। इस संदर्भ में उपभोग को निवेश (investment) से भिन्न माना जाता है, जो किसी कारोबार पर किए जाने वाले उस व्यय का द्योतक होता है जो अर्जन करने, उत्पादन करने या टिकाऊ परिसंपत्तियों का सर्जन करने की हमारी क्षमता को बढ़ाता है। जबकि उपभोग अपने आप में व्यवसाय-भिन्न व्यय (non-business expenditure) का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरे शब्दों में, निवेश व्यय उस रूप में हो सकता है जिसे प्राय: **कार्यकारी पूंजी** (working capital) कहा जाता है। अर्थात् वर्तमान उत्पादन क्षमता के परिचालन के लिए या वह उस रूप में हो सकता है जिसे प्राय: **स्थायी पूंजी** (fixed capital) कहा जाता है अर्थात् उत्पादन क्षमता में प्रति इकाई की वृद्धि करने के लिए।

विनिमय (Exchange) : व्यक्ति, परिवार, फर्में, व्यवसाय इकाइयां तथा सरकार के अंग आदि आर्थिक एजेंट या आर्थिक क्रियाओं के एजेंट अनेक प्रकार की आर्थिक क्रियाओं को अपने हाथ में लेते हैं। इनमें से उत्पादन और उपभोग जैसी क्रियाओं के संबंध में आप पढ़ ही चुके हैं। विनिमय भी एक महत्वपूर्ण आर्थिक-क्रिया है। जब कोई आर्थिक एजेंट किसी वस्तु या सेवा के बदले में कोई और वस्तु या सेवा प्रदान करता है तब इस कार्य को **विनिमय** कहा जाता है। इसे ही दूसरे शब्दों में, यों कहा जा सकता है कि एक वस्तु/सेवा का विक्रय किसी अन्य वस्तु/सेवा के रूप में किया जाता है। यह विक्रय द्रव्य की कुछ रकम के बदले में भी किया जा सकता है जब विनिमय वस्तुओं और सेवाओं के बीच होता है तब इसे **वस्तु-विनिमय सौदा** (barter transaction) या **वस्तु-विनिमय बिक्री** (barter sale) या केवल **वस्तु-विनिमय** कहा जाता है। जब वस्तु/सेवा का विक्रय द्रव्य के साथ होता है तब उसे **मौद्रिक विनिमय** (money exchange) कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक स्थिति में वस्तु/सेवा या मुद्रा का स्वामी इसे अन्य किसी के साथ बदल सकता है।

विनिमय क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें विनिमय क्रिया को क्रेता के दृष्टिकोण से देखना होगा। यदि क्रेता उपभोक्ता है, तब उसके लिए खरीदी जाने वाली वस्तु की उपयोगिता कीमत के रूप में दी जाने वाली वस्तु की उपयोगिता की तुलना में अधिक होती है। यदि क्रेता व्यापारी है तब वह आशा करता है कि उस वस्तु को बेचकर वह अधिक धन कमाएगा। उसी प्रकार खरीदी गई वस्तु यदि उत्पादन का आदान (input) है तब क्रेता को आशा होती है कि उत्पाद की बिक्री आय (sale proceeds) के रूप में उसे अधिक प्रतिफल मिलेगा। परंतु यह स्मरणीय है कि इन सभी स्थितियों में होने वाला विनिमय स्वैच्छिक (voluntary) होता है तथा सौदा करने वाले दोनों पक्षों (विक्रेता और क्रेता) को लाभ की आशा होती है। इसीलिए प्राय: कहा जाता है कि विनिमय कार्य डकैती नहीं है। परंतु इस संबंध में ध्यान देने की यह भी बात है कि सौदा करने वाले पक्ष को कम लाभ होता है या अधिक, यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्रेता की सौदा-शक्ति (bargaining power) कितनी है।

सीमांत (Marginal) : आर्थिक तर्क के संदर्भ में सीमांत की संकल्पना एक महत्वपूर्ण साधन है तथा विभिन्न हैसियत की आर्थिक इकाइयों के व्यवहार स्वरूप और उनके नीति-निर्धारकों के संबंध में बताने में उसका उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। इस संकल्पना का संबंध विचाराधीन चर (variable) की अंतिम इकाई के साथ होता है। आमतौर पर प्रयोग में आने वाले कुछ शब्दों के संबंध में विचार द्वारा इस विषय को और स्पष्ट किया जा सकता है। जैसा कि आपने पहले ही देखा है, **सीमांत उपयोगिता** (marginal utility) वह उपयोगिता है जिसे कोई उपभोक्ता अपनी खरीदी गई वस्तु की अंतिम इकाई से प्राप्त करता है। इसके विपरीत औसत उपयोगिता (average utility) का अर्थ होता है खरीदी गई कुल इकाइयों से प्राप्त होने वाली कुल उपयोगिता में इन इकाइयों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त उपयोगिता। उदाहरणार्थ, हम उस स्थिति को लें जब कि कोई क्रेता चार ब्रेड खरीदता है जिनकी उपयोगिता क्रमश: 20, 16, 14, और 6 इकाइयां हैं। इस स्थिति में चौथी और अंतिम ब्रेड की उपयोगिता को सीमांत उपयोगिता कहा जाता है जो 6 इकाइयों की उपयोगिता के बराबर है। इसके विपरीत उपभोक्ता को चारों ब्रेडों से 56 इकाइयों की उपयोगिता मिलती है, अत: औसत उपयोगिता 56/4 = 14 इकाइयाँ हैं। आसानी से यह देखा जा सकता है कि खरीदी गई वस्तु की मात्रा और अन्य संबंधित परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन होने से औसत और सीमांत इन दोनों ही उपयोगिताओं में परिवर्तन की संभावना होती है। यह स्मरणीय है कि इनमें से किसी भी स्थिति में किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता का अर्थ होता है वस्तु की अंतिम इकाई द्वारा कुल उपयोगिता में की गई वृद्धि। उसी के अनुरूप उत्पादन के क्षेत्र में सीमांत लागत (marginal cost) की संकल्पना होती है, जिसका अर्थ होता है अंतिम इकाई के उत्पादन के फलस्वरूप कुल उत्पादन की लागत में होने वाली वृद्धि। उसी प्रकार **सीमांत आय** (marginal revenue) का अर्थ होता है एक और इकाई की बिक्री के फलस्वरूप कुल बिक्री आय (sale proceeds) में हुई वृद्धि।

सामान्य की संकल्पना (Concept of Normal) : अर्थशास्त्र में सामान्य की संकल्पना का अर्थ होता है बार-बार होने वाली घटना। दूसरे-शब्दों में, इससे पता चलता है कि सामान्य रूप में क्या होता है। जो कुछ होता है इसकी वांछनीयता अथवा अवांछनीयता के संबंध में यह कुछ भी नहीं कहता। उदाहरणार्थ, जब हम कहते हैं कि आमतौर पर कोई फर्म अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करती है, तब हम केवल तथ्य की बात कर रहे हैं। इस कथन का किसी प्रकार से ऐसा कोई अभिप्राय नहीं होता कि ऐसा करना सामान्य या कानूनी रूप से उचित है या नहीं। सामान्य शब्द का प्रयोग वास्तव में किसी घटना (occurrence) या व्यवहार स्वरूप (behaviour pattern) के सामान्यीकरण के लिए किया जाता है।

इस शब्द का प्रयोग एक अन्य अर्थ में भी होता है। कीमतों, लागतों, संवृद्धि दरों (growth rates) आदि आर्थिक चरों (economic variables) में यह दीर्घकालिक प्रवृत्ति होती है कि उनका कार्य एक विशिष्ट प्रकार का हो। किसी चर में जिस स्तर (कीमत, उत्पादन, लागत, आदि का) को प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है उसे उसका सामान्य स्तर (कीमत, उत्पादन, लागत आदि का) कहा जाता है। परंतु अल्पकाल में कोई चर प्रायः अपने सामान्य या दीर्घकालिक मार्ग से हट कर दूर चला जाता है।

2.3 वर्तुल प्रवाहों की प्रणाली के रूप में अर्थव्यवस्था (Economy as a System of Circular Flows)

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि आर्थिक प्रणाली की स्थापना उत्पादन के संसाधनों में वृद्धि करने तथा सार्थक ढंग से उनका उपयोग करने के लिए की जाती है। व्यक्तियों, परिवारों, व्यवसाय इकाइयों, तथा सरकार के अंगों जैसे निर्णय लेने वाले आर्थिक एजेंटों के संबंध में भी आपने पढ़ा है। ये एजेंट उपभोग, उत्पादन, निवेश, विनिमय आदि आर्थिक क्रियाओं को करते हैं। ये क्रियाएं अव्यवस्थित नहीं होतीं। इनका अपना एक ढंग होता है। वे एक दूसरे के साथ समन्वित होती हैं और अर्थव्यवस्था व्यवस्थित रूप से चलने लगती है। आर्थिक क्रियाओं और उनके द्वारा निर्मित अर्थव्यवस्था के अध्ययन से पता चलता है कि ये क्रियाएं कुछ निश्चित कानूनों और नियमों का पालन करती हैं। विभिन्न प्रकार की शक्तियों और प्रोत्साहन के प्रति वे संवेदनशील होती हैं। अतः उनके निर्णयन (decision making) और कार्यकलापों का मानकीकरण (standardisation) किया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि वे अव्यवस्थित नहीं होतीं बल्कि उनमें इतनी सुसंगतता होती है कि उन्हें सामान्य सिद्धांतों और आर्थिक नियमों के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है। इस रूप में देखने पर हम यह अनुभव करते हैं कि अर्थव्यवस्था एक ऐसी प्रणाली है जिसके कार्य को कुछ नियमों के रूप में समझा जा सकता है। इस प्रकार विनिमय कार्यों की एक श्रेणी का प्रादुर्भाव होता है जिसका वर्गीकरण वस्तुओं और सेवाओं के वर्तुल प्रवाहों के रूप में किया जा सकता है।

वर्तुल प्रवाहों की प्रणाली के रूप में अर्थव्यवस्था की संकल्पना को समझने के लिए हमें एक सरलीकृत चित्र के संबंध में विचार करना होगा। पहले हम एक ऐसी अर्थव्यवस्था को लेते हैं जिसमें केवल दो वर्गों के आर्थिक एजेंट हैं : (1) परिवार (households) (जिसमें व्यक्ति भी आ जाते हैं) और (2) व्यवसाय-इकाइयाँ (business units) परिवार अर्थव्यवस्था की उपभोक्ता इकाइयाँ हैं। समस्त उपभोग वस्तुएं उनके उपयोग में आ जाती हैं। वे उत्पादन के सभी साधनों के मालिक भी होते हैं जिसके अंतर्गत वे साधन भी आ जाते हैं जो व्यवसाय-इकाइयों के पास होते हैं, ऐसा इसलिए कि वे व्यवसाय इकाइयाँ भी उनके स्वामित्व में होती हैं। दूसरी ओर व्यवसाय इकाइयाँ अर्थव्यवस्था की उत्पादन इकाइयाँ होती हैं।

इस व्यवस्था के अंतर्गत परिवार अपने उत्पादन के साधनों को, जिसके अंतर्गत श्रम भी आ जाता है, व्यवसाय इकाइयों के हाथ बेच देते हैं और उसके बदले में उन्हें वस्तुएं तथा सेवाएं प्राप्त होती हैं जिनका उत्पादन व्यवसाय-इकाइयाँ करती हैं। इस प्रकार आर्थिक इकाइयों की इन दो श्रेणियों अर्थात् परिवारों और व्यवसाय इकाइयों के बीच वर्तुल प्रवाह स्थापित होता है। व्यवसाय इकाइयाँ अपनी वस्तुओं और सेवाओं का विक्रय आपस में भी करती हैं। एक श्रेणी के उत्पादकों का निर्गत (output) दूसरी श्रेणी के उत्पादकों का आगत (input) बन जाता है। ऐसा अनेक स्थितियों में देखने में आता है। उदाहरणार्थ, कृषि कार्य में आगत के रूप उर्वरक एवं ट्रेक्टर जैसी अनेक औद्योगिक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार, उद्योग अनेक प्रकार के कृषि पदार्थों का उपयोग कच्चे माल के रूप में करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उद्योग अपने कुछ आगतों को किन्हीं अन्य उद्योगों को खरीदता है इस प्रकार वस्तुओं और सेवाओं के अनेक लघु वर्तुल प्रवाहों

की स्थापना की जा सकती हैं।

मुद्रा के बदले में वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय/क्रय पर विचार करने के संदर्भ में इन वर्तुल प्रवाहों को अधिक आसानी से समझा जा सकता है। परिवार अपने स्वामित्व के अधीन के उत्पादन के साधनों को व्यवसाय-इकाइयों को बेचते हैं जिसके बदले में उन्हें मुद्रा प्राप्त होती है। व्यवसाय इकाइयाँ भी परिवारों के हाथ अपने उत्पादों का विक्रय मुद्रा के बदले में करती हैं। व्यवसाय-इकाइयाँ आपस में भी क्रय-विक्रय करती हैं।

पूंजी बाजार (capital market) की स्थिति में उपर्युक्त सरलीकृत चित्र अधिक यथार्थ सिद्ध होता है। इस स्थिति में ऐसी व्यवसाय-इकाइयाँ होती हैं जो परिवारों तथा अन्य व्यवसाय इकाइयों की बचतों को उधार पर लेकर उन्हें उन आर्थिक इकाइयों को उधार देती हैं जिन्हें इनकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार (क) नए ऋणों (fresh loans) और निवेशों तथा (ख) ऋण सेवा (debt servicing) के द्वारा धन का प्रवाह परिवारों से पूंजी बाजार की ओर होता रहता है। ऋण सेवा से अभिप्राय होता है पूंजी बाजार द्वारा परिवारों से लिए गए ऋण के बदले में ब्याज और मूलधन के भुगतान के अपने दायित्व को निभाना। इसी प्रकार पूंजी बाजार से परिवारों की ओर धन का प्रवाह यों होता है : (क) परिवारों को नए ऋण तथा (ख) परिवारों के वर्तमान ऋण और निवेश की सेवा। व्यवसाय इकाइयाँ भी अपने अतिरिक्त धन को पूंजी बाजारों में लगाती हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनसे उधार लेती हैं। इस प्रकार पूंजी बाजारों और शेष व्यवसाय इकाइयों के बीच होने वाले मुद्रा-राशियों (funds) के वर्तुल प्रवाह को स्पष्ट किया जा सकता है।

इस चर्चा में यदि हम सरकार को भी एक कारक के रूप में शामिल कर लें तब वर्तुल प्रवाह का चित्र और भी यथार्थ हो सकता है। आप जानते हैं कि समाज को सरकार रक्षा, कानून और व्यवस्था, न्याय आदि अनेक सेवाएं प्रदान करती हैं। इन कार्यों के लिए उसे जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है उन्हें अनेक उपायों द्वारा जुटाया जाता है, जैसे परिवारों, व्यवसाय इकाइयों तथा पूंजी बाजारों पर कर लगाकर तथा उन सब से उधार लेकर। सरकार व्यवसाय-इकाई के समान कार्य करते हुए अपनी कुछ सेवाओं को जनता के हाथ बेच भी सकती है। इस प्रकार धन का प्रवाह शेष अर्थव्यवस्था की ओर से सरकार की ओर होता है। उसी प्रकार वस्तुओं और सेवाओं की कीमतों, आर्थिक सहायता (subsidies) तथा सार्वजनिक ऋण (public debt) की सेवा के रूप में सरकार शेष-अर्थव्यवस्था को भुगतान भी करती है। सरकार परिवारों तथा व्यवसाय इकाइयों को ऋण भी दे सकती है, जो नए ऋणों और गैर-सरकारी-इकाइयों द्वारा इनकी सेवा के रूप में ऊपर वर्णित वित्तीय प्रवाहों के पूरक का काम कर सकते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आर्थिक इकाइयों के बीच अत्यधिक परस्पर संबंध और परस्पर निर्भरता होती है। भौतिक रूप में इसे आगत-निर्गत संबंध (input-output relationship) कहा जाता है, जिसका अर्थ यह होता है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई को उसकी आगतों की प्राप्ति अन्य आर्थिक इकाइयों से होती है और वह इनके लिए भुगतान निर्गत (निर्गतों के रूप में करती है। आर्थिक प्रणाली के लिए यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब अनेक आर्थिक इकाइयाँ आगतों और निर्गतों द्वारा उत्पादन करने लगती हैं तब अर्थव्यवस्था में विकास संभव हो जाता है।

बोध प्रश्न क

1 किसी वस्तु के विनिमय-मूल्य और उपयोग-मूल्य के बीच भेद बताएं।

....

....

....

2 उपभोग और निवेश के बीच भेद बताएं।

....

....

....

3 वस्तु-विनिमय और मुद्रा-विनिमय के बीच भेद बताएं।

....

....

....

4 बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) उपयोगिता वस्तुपरक होती है तथा इसे मापा जा सकता है।

ii) किसी वस्तु की अंतिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता को उसकी सीमांत उपयोगिता कहा जाता है।

iii) किसी वस्तु के उपयोग-मूल्य और उसके विनिमय-मूल्य के बीच कोई भेद नहीं होता।

iv) विभिन्न व्यक्तियों या विभिन्न समय के बीच किसी वस्तु के उपयोग मूल्य में कोई परिवर्तन नहीं होता।

v) किसी देश के वित्तीय संसाधन उसकी संपत्ति के अंग होते हैं।

vi) किसी व्यक्ति के वित्तीय संसाधन उसकी संपत्ति के अंग होते हैं।

vii) किसी वस्तु की कीमत और पूर्ति की गति प्रायः विपरीत दिशा में होती है।

viii) किसी वस्तु के उपभोग और उसकी उपयोगिता के विनाश के बीच कोई भेद नहीं होता।

ix) किसी वस्तु की माँग और कीमत की गति प्रायः विपरीत दिशा में होती है।

x) कोई व्यक्ति यदि छः संतरे खरीदता है तब छठे संतरे की उपयोगिता उसके लिए संतरों की सीमांत उपयोगिता होती है।

xi) अर्थशास्त्र में सामान्य क्रिया सदा ही सही प्रकार की क्रिया होती है।

2.4 आर्थिक कार्य-पद्धति और आर्थिक नियम (Economic Methodology and Economic Laws)

प्रत्येक विज्ञान के पास अपनी विश्लेषण की तकनीकें (विश्लेषण के उपकरण), विश्लेषण किए जाने वाली मूल सूचना (आधार-सामग्री) को एकत्रित करने के उपाय, तर्क की पद्धति आदि होते हैं। इन सबके योग को इस विज्ञान की कार्य-पद्धति (methodology) कहा जाता है। अर्थशास्त्र में भी एक समुचित कार्य-पद्धति की आवश्यकता पड़ती है और प्रत्येक अर्थशास्त्री इसके किसी न किसी रूप को अपने काम में लाता है। प्रत्येक अर्थशास्त्र में कुछ कारणों के आधार पर अनुमान लगाए जाते हैं या निष्कर्ष निकाले जाते हैं। ये कारण काल्पनिक स्थितियों के रूप में हो सकते हैं या वे प्रेक्षित तथ्यों (observed facts) से प्राप्त किये जा सकते हैं या ये इन दोनों के मिश्रण हो सकते हैं। इसके पश्चात् उनके अनुरूप परिणाम निकाला जाता है तथा निर्दिष्ट कारणों और उनके परिणाम के बीच के संबंध को दिखाने वाले कथन को इस विज्ञान का नियम कहा जाता है। प्रत्येक विज्ञान में ऐसे अनेक नियम होते हैं।

सामाजिक विज्ञान में विषय-वस्तु होती है समाज व्यवस्था में मनुष्य का व्यवहार। इसमें ऋषि-मुनियों जैसे उन व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जाता है जो समाज से अलग पर्वतों-वनों जैसे एकांत स्थानों में रहते हैं। सामाजिक विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र होता है समाज में रहने वाले व्यक्तियों के कार्य (व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही प्रकार के)। विभिन्न कारणों और शक्तियों के प्रत्युत्तर में समाज के सदस्य किस प्रकार के कार्य करते हैं, उसे जानने का प्रयास किया जाता है और फिर कारणों तथा शक्तियों की विभिन्न श्रेणियों के प्रत्युत्तर में प्रत्याशित व्यवहारात्मक परिणाम को सामान्य सिद्धांतों के रूप में रखा जाता है। ये सामान्य सिद्धांत (generalisations) प्रवृत्तियों के विवरण होते हैं और वे सामाजिक नियम कहे जाते हैं।

अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है, अतः आर्थिक नियम सामाजिक नियमों के अंग होते हैं। अल्फ्रेड मार्शल के शब्दों में, हमें समाज के सदस्यों के व्यवहार के उस अंश को अलग कर लेना चाहिए जहां मुख्य उद्देश्य आर्थिक होता है, अर्थात् जहां मुख्य उद्देश्य को मुद्रा-कीमत (money price) के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है तब इसके अनुरूप क्रियाएं आर्थिक क्रियाएं होती हैं। लेकिन आर्थिक नियमों और अन्य सामाजिक नियमों के बीच की विभाजन रेखा सदा स्पष्ट नहीं होती। कभी-कभी कोई कार्य आर्थिक तथा आर्थिकेतर (economic and non-economic) इन दोनों ही कारणों से किया जाता है। अतः अक्सर ऐसे आर्थिक नियमों को बनाना कठिन होता है जो पूर्णतः युक्तिसंगत हो अथवा न भी हो।

2.4.1 आगमनात्मक और निगमनात्मक तर्क (Inductive and Deductive Reasoning)

आर्थिक नियमों को बनाने के संदर्भ में अर्थशास्त्रियों ने दो परंपराओं का पालन किया है। एक परंपरा के अनुसार कारणों को (जिन्हें शर्त या मान्यताएं भी कहा जाता है) विशेष रूप से चलाया जाता है और विभिन्न आर्थिक इकाइयों से अपेक्षा की जाती है कि वे तर्कसंगत ढंग से व्यवहार करें (इकाई 1 में आप तर्कसंगत शब्द का अर्थ जान चुके हैं)। इस स्थिति में परिणाम को पहले से बताया जा सकता है, बशर्ते कि मान्यताओं की पुष्टि हो जाए। ये मान्यताएं स्वयं ही वास्तविकता से बिल्कुल दूर हो सकती हैं या वास्तविकता के नजदीक हो सकती हैं लेकिन वे सुनिश्चित ढंग से प्रस्तुत की जाती हैं। फिर भी हर हालत में इस प्रकार के तर्क को निगमनात्मक तर्क (deductive reasoning) कहा जाता है। इस विधि के अंतर्गत सामान्य सिद्धांत या नियम को बता दिया जाता है और आशा की जाती है कि प्रत्येक क्रिया उसी के अनुरूप होगी। निगमनात्मक तर्क का एक विशिष्ट दृष्टांत माँग का नियम है जिसके अनुसार अन्य बातें यदि समान रहें, तब किसी वस्तु की मात्रा और उसकी कीमत के बीच विपरीत संबंध होता है। कीमत के गिरने पर माँग बढ़ती है और कीमत के बढ़ने पर माँग गिर जाती है। (इकाई नं. 6 और 7 में आप इस संबंध में विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे।)

इस निगमनात्मक तर्क के विपरीत कुछ चिंतक आर्थिक नियमों को दूसरे ढंग से प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं। कारणों या शर्तों का निर्धारण काल्पनिक आधार पर न करके ये विभिन्न स्थितियों में आर्थिक इकाइयों के व्यवहार के संबंध में सही सूचनाएं एकत्रित करते हैं।

दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि आनुभविक सूचना (empirical information) एकत्रित की जाती है और विभिन्न स्थितियों में आर्थिक इकाइयों के व्यवहार के संबंध में सामान्य सिद्धांत बनाए जाते हैं। इसे आगमनात्मक तर्क प्रणाली (inductive reasoning) कहते हैं। इस प्रणाली के प्रयोग का एक प्रसिद्ध उदाहरण है एंजिल का नियम। परिवारों के बजटों का अध्ययन करके एंजिल ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी परिवार की आय जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे आवश्यक वस्तुओं पर व्यय का अनुपात घटता जाता है और यह अनुपात सुख और विलास की वस्तुओं पर बढ़ता जाता है। अधिकतर व्यवसाय-फर्में (business-firms) इसका पालन करती हैं। निगमन और आगमन प्रणालियों के अपने-अपने गुण और दोष हैं। निगमन प्रणाली से मानव व्यवहार से संबंधित अनेक मूल सिद्धांतों के निर्माण में सहायता मिलती है। यह प्रणाली हमारे तर्क के लिए सैद्धांतिक आधार बनाती है। परंतु दूसरी ओर यह यथार्थ से दूर हो सकती है तथा पूर्णतः अनुपयुक्त (inapplicable) भी। आगमनात्मक तर्क के संदर्भ में आर्थिक इकाइयों के वास्तविक व्यवहार का प्रयोग किया जाता है, अतः आशा की जाती है कि यह वास्तविकता का अधिक सही ढंग से चित्रण प्रस्तुत करेगा। यही कारण है कि अधिकतर व्यवसाय-फर्में अपने उत्पादों की किस्मों और कीमतों में या उनसे संबंधित विज्ञापन की विधियों में परिवर्तनों के संबंध में उपभोक्ताओं की प्रत्याशित प्रतिक्रिया को जानने के लिए अनुभव-आधारित अनुसंधान (empirical investigation) विधि का आश्रय लेती हैं। उपभोक्ताओं, निवेशकों, कृषकों, विनिर्माताओं आदि अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों की प्रतिक्रिया के संबंध में ज्ञान से अधिकारियों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कारगर नीतियों के निर्धारण में सहायता मिलती है। परंतु आगमनात्मक तर्क की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं। जैसा आपने पहले ही पढ़ा है हमारी आर्थिक क्रियाएं आर्थिक तथा आर्थिकेतर दोनों ही कारणों से की जाती हैं। आर्थिक नियमों से हमें केवल यही पता लगता है कि आर्थिक कारणों (non-economic factors) के बदलने से हमारी क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा। परंतु आर्थिकेतर कारणों में भी परिवर्तन होता रहता है, अतः संभव है आगमनात्मक तर्क पर आधारित आर्थिक नियम भविष्य में सही सिद्ध न भी हों।

किसी अर्थव्यवस्था और उसके कार्यचालन के संबंध में हमारे ज्ञानवर्धन के लिए अर्थशास्त्र के अंतर्गत आगमनात्मक और निगमनात्मक दोनों ही तर्क प्रणालियाँ एक दूसरे की पूरक मानी जाती हैं। इनमें से कोई भी अपने आप में पूर्ण तथा सभी परिस्थितियों के लिए आदर्श प्रणाली नहीं होती। परंतु इनका एक साथ प्रयोग करने से इन दोनों ही विश्लेषणात्मक तकनीकों में सुधार की गुंजाइश रहती है। इनकी सहायता से अर्थशास्त्र में और प्रगति होती है और यह और अधिक उपयोगी बनता है। अंततोगत्वा ये दोनों ही आपस में मिल जाते हैं। आगमन प्रणाली से निगमनात्मक तर्क की अधिक संगत मान्यताओं के चुनाव में सहायता मिलती है और निगमन प्रणाली जटिल यथार्थ की और सार्थक ढंग से व्याख्या करने में मदद करती है।

आर्थिक नियमों की अनेक सीमाएं हैं जिनके कारण निश्चितता के साथ भविष्यवाणी के लिए उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। आपको यह याद रखना चाहिए कि इन सेवाओं का संबंध

कारणों और उनके पड़ने वाले प्रभावों के साथ नहीं होता बल्कि स्वयं कारणों के चुनाव की विधि के साथ होता है। इस कथन को थोड़ा और अधिक स्पष्ट कर देने से आप आर्थिक नियमों की सीमाओं को और अच्छी तरह से समझ पाएंगे।

सर्वप्रथम, आपको यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अर्थशास्त्र में उस प्रकार का नियंत्रित प्रयोग नहीं किया जा सकता जैसा कि भौतिक विज्ञानों में किया जा सकता है। अर्थशास्त्र में मनुष्य और उसकी उन क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिन्हें समाज से अलग नहीं किया जा सकता।

दूसरी बात यह है कि हमारी आर्थिक क्रियाएं अनेक कारणों से प्रभावित होती हैं। इन सबके संबंध में विचार करना संभव नहीं होता। कभी-कभी तो इन सबकी पहचान करना तक संभव नहीं हो पाता। अतः व्यवहार रूप में किसी अर्थशास्त्री को उस कारण को चुनने के संबंध में स्वयं ही निर्णय लेना होता है जिसे वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझता है और उसे यह भी देखना होता है कि इसके प्रति अन्य आर्थिक इकाइयों की क्या प्रतिक्रिया होती है।

तीसरी बात यह है कि अंतिम परिणाम के ज्ञात होने से पहले ही स्वयं कारणों में ही परिवर्तन आ जाता है। कुछ कारण लुप्त हो जाते हैं और नए कारण उत्पन्न हो जाते हैं। कारणों में परिवर्तन के उदाहरण हैं, किसी वस्तु पर से कर को हटा लिया जाना या उस पर कर का लगाया जाना, इस वस्तु का उत्पादन करने वाले श्रमिकों की हड़ताल, उसकी स्थानापन्न वस्तुओं की खोज, इत्यादि।

2.4.2 यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें (Ceteris Paribus)

इन्हीं सब कारणों से प्रत्येक आर्थिक नियम के साथ कुछ शर्तें या सीमाबंधन लगे होते हैं। उसके साथ ये शब्द जुड़े होते हैं कि **यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहे, जिसका अर्थ होता है कि यदि अन्य बातें पहले समान रहें**। जहां इन शब्दों को स्पष्ट रूप में नहीं कहा जाता, वहां भी यह मान लिया जाता है कि ये मौजूद हैं। इस शर्त का अर्थ यह है कि ये कारण जब कार्य करना प्रारंभ कर देते हैं, तब अंतिम परिणाम के होने तक उनमें कोई विघ्न नहीं पड़ता। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य विज्ञानों में भी यह शर्तें सदा स्पष्ट रूप में दी हुई होती हैं। अन्य विज्ञानों में "यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें"। शर्त प्रायः प्रयोगशाला की स्थितियों में लागू होती है या उसे कार्य में लाया जा सकता है। परंतु अर्थशास्त्र में यह शर्त पूरी नहीं हो पाती। नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत आर्थिक प्रयोग करना संभव नहीं होता। चूंकि आर्थिक नियमों से हमारा अभिप्राय विभिन्न शक्तियों के प्रत्युत्तर में आर्थिक क्रियाओं का विवरण है, अर्थशास्त्री कुछ ऐसे निर्देशक सिद्धांतों (guiding principles) को काम में लाते हैं जिनके अंतर्गत प्रतिक्रियाओं के होने की धारणा की जाती है। ऐसा एक निर्देशक सिद्धांत यह है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई विभिन्न कारणों के प्रति अपने उत्तर का निर्णय तर्क की कसौटी के आधार पर करती है (इकाई 1 में आप इस संकल्पना के संबंध में पढ़ चुके हैं)। इसका अर्थ यह है कि प्रत्युत्तर (response) का निर्धारण इस प्रकार किया जाता है कि उससे यह आशा की जा सके कि वह उत्तरदायी इकाइयों के हित की रक्षा भली भांति करेगा। उदाहरणार्थ, किसी उपभोक्ता से आशा की जाती है कि वह व्यय की दी हुई मात्रा का उपयोग अपनी खरीद द्वारा अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करने के लिए करेगा। किसी एकाधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह अपने उत्पादन की उस मात्रा को चुनेगा और अपने उत्पादन के लिए उस कीमत को निश्चित करेगा जिससे उसे अधिकतम लाभ मिल सके।

आर्थिक नियमों को बनाने से संबंधित दूसरा निर्देशक सिद्धांत निम्नलिखित है। यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक आर्थिक इकाई तर्कसम्मत प्रयोजन से कार्य करते हुए इष्टतम (optimum) अर्थात् सर्वोत्तम प्राप्य स्थिति को प्राप्त करने का प्रयास करती है। इष्टतमीकरण (optimisation) का अर्थ यह होता है कि किसी मापदंड या उद्देश्य को निश्चित कर लिया जाता है और फिर इसे प्राप्त करने या यथासंभव इसके अधिक से अधिक निकट पहुंचने का प्रयास किया जाता है। इस मापदंड की दो कसौटियां हैं, लाभ को अधिकतम करना तथा उत्पादन लागत को कम से कम करना। व्यवहार रूप में कुछ कठिनाइयों के कारण इन कसौटियों तक नहीं भी पहुंचा जा सकता है।

2.4.3 संतुलन (Equilibrium)

संतुलन की संकल्पना अर्थशास्त्र में विश्लेषण का एक प्रमुख उदाहरण है। इसे बार-बार काम में लाया जाता है और इससे आपको परिचित होना चाहिए। किसी आर्थिक चर (economic variable) पर प्रायः विभिन्न शक्तियों का प्रभाव पड़ता है जो इसे अपने-अपने वश में करने का

प्रयास करती हैं। जब ये शक्तियां संतुलन में होती हैं तब चर के मूल्य (value of the variable) में परिवर्तन रुक जाता है और इसे संतुलन में होना माना जाता है।

बोध प्रश्न ख

1 निगमनात्मक तर्क और आगमनात्मक तर्क के बीच भेद बताएँ।

....
....
....
....

2 इष्टतमीकरण की संकल्पना को स्पष्ट करें।

....
....
....
....

3 बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) आर्थिक नियमों का उपयोग सही भविष्यवाणी के लिए किया जाता है।

ii) विभिन्न शक्तियों और उनके परिणामों के प्रत्युत्तर में की जाने वाली आर्थिक क्रियाओं के विवरण को आर्थिक नियम कहा जाता है।

iii) आगमनात्मक तर्क का आधार होता है प्रेक्षित तथ्यों का अध्ययन।

iv) निगमनात्मक तर्क निर्दिष्ट कारणों पर आधारित होता है।

v) निगमनात्मक तर्क के अंतर्गत सभी मान्यताएं अवास्तविक होती हैं।

vi) आर्थिक नियमों तथा अन्य शेष सामाजिक नियमों के बीच भेद करना सदा ही संभव होता है।

vii) आर्थिक नियम भौतिक विज्ञान के नियमों के समान सही नहीं होते।

viii) प्रत्येक आर्थिक नियम के साथ "**यदि अन्य बातें पूर्ववत रहें**" शर्त लगी होती है।

ix) कोई आर्थिक चर संतुलन में तब होता है जब उसे निर्धारित करने वाली शर्तें एक दूसरे के संतुलन में होती हैं।

2.5 यथार्थमूलक बनाम आदर्शक अर्थशास्त्र (Positive Versus Normative Economics)

आप जानते हैं कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है और इसके अंतर्गत मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के संबंध में उनके व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इस संदर्भ में अर्थशास्त्रियों के बीच इस बात पर मतभेद रहा है कि अर्थशास्त्र के अध्ययन को सत्य और सैद्धांतिक तर्क तक ही सीमित रखा जाए या इसका उपयोग अर्थव्यवस्था के संचालन में सुधार लाने और समाज के सदस्यों के भौतिक कल्याण के लिए भी किया जाए।

यथार्थमूलक अर्थशास्त्र (positive economics) शब्द का संबंध आर्थिक नियमों के निरूपण और वास्तविकता को बताने तक सीमित होता है। आर्थिक नियम सैद्धांतिक धारणाओं से निकाले जा सकते हैं या उल्लिखित तथ्यों से। इनमें से किसी भी स्थिति में ये केवल इतना ही बताते हैं कि "क्या है"। इस संबंध में ये राय नहीं देते कि आर्थिक विश्लेषण से निकले परिणाम वांछनीय हैं या नहीं अथवा क्या इनमें किसी सुधार की आवश्यकता है। इसके विपरीत आदर्शक अर्थशास्त्र (normative economics) यह स्वीकार करता है कि कोई अर्थव्यवस्था कभी भी पूर्ण नहीं होती। इसके संचालन के परिणाम में सदा ही सुधार की गुंजाइश बनी रहती है। आमतौर पर देखने में आता है कि कोई अर्थव्यवस्था अनेक समस्याओं से उलझी होती है, जिसके संबंध में शीघ्र ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इन समस्याओं का संबंध कीमतों में परिवर्तन,

बेरोज़गारी, कुछ आगतों की न्यूनता (scarcity of input) आय और संपत्ति में असमानता आदि के साथ हो सकता है। आदर्शक अर्थशास्त्र में प्राप्त ज्ञान का उपयोग अर्थव्यवस्था के संचालन में सुधार लाने के कार्य में किया जाता है। सुधार के लक्ष्य निर्धारित कर दिए जाते हैं और नीति संबंधी ऐसे उपाय किए जाते हैं जिनसे इन लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके। इस प्रकार आदर्शक अर्थशास्त्र का संबंध **'क्या होना चाहिए'** के साथ होता है। यह व्यावहारिक अर्थशास्त्र (applied economics) है। अर्थशास्त्र का अध्ययन फलदायक होता है, अर्थात् युक्ति के रूप में इसका उपयोग कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। अपनी प्रकृति के अनुसार ही आदर्शक अर्थशास्त्र में मूल्य-निर्णय (value-judgement) समाहित होता है अर्थात् यह निर्णय लेना कि बुरी और त्याज्य वस्तु के विपरीत कौन सी वस्तु अच्छी और वांछनीय है। आदर्शक अर्थशास्त्रियों के सम्मुख एक विशेष समस्या यह होती है कि प्रायः ऐसे लक्ष्यों को निर्धारित करना संभव नहीं हो पाता जिनके संबंध में सभी एकमत हों। इस कारण प्रत्येक अर्थशास्त्री अपनी पसंद के सुधारात्मक उपायों (remedial measures) को प्रस्तुत कर सकता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि यथार्थमूलक और आदर्शक दोनों ही अर्थशास्त्रों में प्रस्थापनाओं (propositions), सिद्धांतों और नियमों का प्रयोग किया जाता है। इसके विपरीत यथार्थ-मूलक अर्थशास्त्र में तो व्युत्पन्नों (derivation) तक पहुंचकर रुक जाया जाता है लेकिन आदर्शक अर्थशास्त्र में इनका उपयोग हम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं।

आदर्शक अर्थशास्त्र के पक्ष में यह दलील दी जाती है कि हमारा संबंध अपने भौतिक कल्याण (material welfare) के साथ होता है। अतः हमें अपनी तथा अर्थव्यवस्था की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास करना चाहिए। इसीलिए अर्थशास्त्र का अध्ययन मात्र अध्ययन के रूप में नहीं बल्कि व्यावहारिक उपयोग के लिए होना चाहिए। इसी दलील के आधार पर आदर्शक अर्थशास्त्र को यथार्थमूलक अर्थशास्त्र से बेहतर माना जाता है।

2.6 व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics and Macro Economics)

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र शब्दों का उपयोग समुच्चयन के स्तर (level of aggregation) के संबंध में किया जाता है, अर्थात् इस संबंध में कि आर्थिक विश्लेषण के अंतर्गत आर्थिक इकाइयाँ और चर किस सीमा तक आ पाते हैं। एक ओर तो विश्लेषण के अंतर्गत केवल एक आर्थिक इकाई के व्यवहार और प्रतिक्रियाएं आ सकती हैं और दूसरे छोर पर इसके अंतर्गत समस्त अर्थव्यवस्था आ सकती है। इन शब्दों (micro और macro) की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्दों mikros और makros से हुई है जिनका क्रमशः अर्थ होता है छोटा और बड़ा।

व्यष्टि अर्थशास्त्र (micro-economics) में किसी अर्थव्यवस्था के पृथक-पृथक तत्वों के व्यवहार के संबंध में विचार किया जाता है, जैसे कि किसी एक वस्तु की कीमत के निर्धारण या किसी एक उपभोक्ता के व्यवहार या किसी एक व्यवसायी-फर्म के व्यवहार के संबंध में अध्ययन। इस संबंध में किसी वस्तु के एक विशेष उपभोक्ता का उदाहरण लिया जा सकता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि यदि उस वस्तु की कीमत, अन्य वस्तुओं की कीमतों, उस उपभोक्ता की आय या रुचि में परिवर्तन हो जाता है, तब उस वस्तु के लिए उसकी मांग में क्या परिवर्तन होगा। उसी प्रकार व्यष्टि अर्थशास्त्र के अतर्गत किसी एक वस्तु के कीमत निर्धारण के संबंध में अध्ययन किया जाता है। किसी उत्पादन के कारक की प्रति इकाई कीमत निर्धारण के संबंध में अध्ययन भी व्यष्टि अर्थशास्त्र का ही अंग है।

इसके विपरीत समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक इकाइयों के उन बृहत् समुच्चयों या समूहों का अध्ययन होता है तो समस्त अर्थव्यवस्था से संबंधित हो सकते हैं। केनेथ ई. बोल्डिंग के शब्दों में **"समष्टि अर्थशास्त्र (macro-economics) के अंतर्गत आर्थिक प्रणाली के बृहत् समुच्चय और औसत आते हैं, पृथक-पृथक इकाइयाँ नहीं।** इसमें राष्ट्रीय आय, रोज़गार, सामान्य कीमत स्तर, वस्तुओं और सेवाओं का क्षेत्रकों के बीच प्रवाह, कुल बचतें और निवेश आदि आर्थिक इकाइयों और चरों के समूहों का अध्ययन होता है। **व्यष्टि अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के अंतर्गत पृथक-पृथक फर्मों या उद्योगों का अध्ययन आता है, जबकि समष्टि अर्थशास्त्र के विषय-क्षेत्र के अंतर्गत समस्त क्षेत्रक आ जाते हैं।**

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र की पूरकता

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र इन दोनों ही का अपना-अपना महत्व है और इनमें से

किसी की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन दोनों ही का अध्ययन आवश्यक है। आधुनिक अर्थव्यवस्था अत्यंत जटिल प्रणाली होती है जिसके अंतर्गत अनेक शक्तियां परस्पर निर्भर रूप में काम करती हैं। इन सभी के संबंध में एक साथ विचार करना संभव नहीं हो पाता। पहले आर्थिक प्रणाली की एक-एक इकाई का अध्ययन करना होता है और उसके बाद ही समस्त अर्थव्यवस्था के संबंध में विचार करना संभव हो पाता है। पृथक्-पृथक् इकाइयों और उनके छोटे-छोटे समूहों के अध्ययन की आवश्यकता व्यष्टि अर्थशास्त्र की उपयोगिता का द्योतक है। दूसरी ओर समस्त अर्थव्यवस्था के कार्यचालन के संबंध में अध्ययन की आवश्यकता समष्टि अर्थव्यवस्था की उपयोगिता को सिद्ध करती है। अर्थव्यवस्था के घटक तथ्यों (constituent elements) (अर्थात् पृथक्-पृथक् आर्थिक इकाइयों और इनके समूहों) के स्वास्थ्य और समृद्धि को ठीक रखने के लिए यह आवश्यक है कि समस्त अर्थव्यवस्था का कार्यचालन भी सही ढंग से हो।

परंतु यह याद रखना चाहिए कि व्यष्टि अर्थशास्त्र के निष्कर्षों को बिना किसी संशोधन के समष्टि अर्थशास्त्र पर लागू करना सदा संभव नहीं हो पाता। ऐसा इसलिए कि अनेक परिस्थितियों में पृथक्-पृथक् आर्थिक इकाइयों के परिणामों को जोड़ा नहीं जा सकता। इसके बावजूद वे एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं और अंतिम परिणाम को संशोधित कर देते हैं। उदाहरणार्थ, कोई व्यक्ति अपने व्यय को कम करके यदि अधिक बचत करता है तब उसकी कुल संपत्ति में और वृद्धि हो जाती है। परंतु यदि सभी लोग ऐसा करने लगें, तब माँग और कीमतें घटेंगी इसके फलस्वरूप उत्पादन में भी कमी हो सकती है। उसी प्रकार कोई व्यक्ति किसी दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की अधिक मात्रा खरीद सकता है। परंतु यदि बड़ी संख्या में लोग इस प्रकार से अधिक मात्रा में खरीद करने लगें तब उस वस्तु की कीमत बढ़ जाएगी। दूसरा उदाहरण बैंक जमा (bank deposits) का है। कोई व्यक्ति बैंक में अपना खाता बंद करके अपनी समस्त जमा-राशि वापस ले सकता है। परंतु यदि सभी जमाकर्त्ता ऐसा ही करने का प्रयास करें, तब बैंक उन सभी का भुगतान नहीं कर पाएगा और उसके दिवाला निकलने की स्थिति आ सकती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि व्यष्टि आर्थिक व्यवहार (micro economic behaviour) को रैखिक ढंग से जोड़कर उससे समष्टि आर्थिक व्यवहार (macro economic behaviour) को निकाला नहीं जा सकता। जैसा कि ऊपर हमने देखा है, इकाइयों के बीच संघर्ष हो सकता है। परंतु अनेक परिस्थितियों में व्यष्टि आर्थिक इकाइयों के अध्ययन से समष्टि आर्थिक घटनाओं को समझने में मदद मिलती है। उदाहरणार्थ, भारत के छोटे पैमाने के उद्योगों में बहुत बड़ी मात्रा में रुग्णता (sickness) विद्यमान है। इस घटना को समझने के लिए यह आवश्यक है कि अलग-अलग इकाइयों की रुग्णता के कारणों के संबंध में अध्ययन किया जाए, सभी कारणों को जाना जाए, उनमें से प्रमुख कारणों की पहचान की जाए और उनके उपचार संबंधी कार्यों के बारे में सुझाव दिया जाए।

2.7 स्टॉक और प्रवाह (Stock and Flows)

आर्थिक चर दो प्रकार के होते हैं : (1) स्टॉक और (2) प्रवाह। **स्टॉक चर उसे कहा जाता है जिसका माप केवल किसी समय बिंदु के संदर्भ में किया जा सकता है, पूरी अवधि के संदर्भ में नहीं।** उसके विपरीत **प्रवाह चर (flow variable) उसे कहा जाता है जिसका माप केवल किसी समय अवधि के संदर्भ में किया जा सकता है, समय बिंदु के संदर्भ में नहीं।**

आप अनेक आर्थिक चरों के संबंध में पढ़ चुके हैं कि उपर्युक्त दोनों में से किसी न किसी प्रकार के अंतर्गत आते हैं। मुद्रा की पूर्ति (supply of money) और संपत्ति की मात्रा का उदाहरण लें। इनका संबंध किसी समय बिंदु के साथ होता है। अतः ये "स्टॉक" संकल्पनाएं हैं। इसी प्रकार प्रवाह चरों के उदाहरण हैं उत्पादन, बचत, व्यय, आय, विक्रय, क्रय आदि। इन सब चरों का माप किसी अवधि के संदर्भ में ही किया जा सकता है। किसी कारखाने में उत्पादन एक अवधि (जैसे एक मास) में होता है, किसी दिए हुए समय बिंदु पर नहीं। किसी व्यक्ति की आय किसी समय बिंदु पर नहीं बल्कि एक अवधि में होती है। किसी प्रवाह संकल्पना का मूल्य एक अवधि के संदर्भ में होता है, अन्यथा नहीं। माँग और पूर्ति की संकल्पनाओं से आप परिचित हो चुके हैं। ये दोनों ही प्रवाह चर (flow variable) हैं। किसी वस्तु की माँग से अभिप्राय इस वस्तु की मात्रा के साथ होता है जिसे कोई व्यक्ति किसी दी हुई कीमत पर किसी अवधि में खरीदना चाहेगा। पूर्ति के साथ भी यही बात लागू होती है। आप देखेंगे कि **आर्थिक विश्लेषण में स्टॉक और प्रवाह चरों का प्रयोग प्रायः साथ-साथ** किया जाता है।

2.8 स्थैतिकी और गतिकी (Statics and Dynamics)

इन दोनों शब्दों से आर्थिक विश्लेषण की विभिन्न तकनीकों के बीच अंतर का पता चलता है। स्थैतिक विश्लेषण (static analysis) में, जिसे स्थैतिक अर्थशास्त्र (static economics) भी कहा जाता है। आर्थिक प्रणाली के मूल तत्वों को दिया हुआ तथा अपरिवर्तनीय मान लिया जाता है। इन्हें अर्थव्यवस्थाओं के प्राचल (parameters) कहा जाता है और इनके अंतर्गत आजादी, अभिरुचियां, उत्पादन की तकनीकें, बाजारों के संगठन, आदि आते हैं। दिए हुए प्राचल के अंतर्गत एक संतुलन-स्थिति को चुना जाता है और एक या उससे अधिक विशिष्ट चरों में इस शर्त पर परिवर्तन होने दिया जाता है कि "यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें" नामक सामान्य शर्त पूरी हो जाती है। इन्हें नई संतुलन स्थिति को लाने दिया जाता है। इन दो शर्तों अर्थात् (क) प्राचल में परिवर्तन न होना और (ख) यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें के अधीन नई संतुलन स्थिति के प्राक्कलन की तकनीक को स्थैतिक विश्लेषण या स्थैतिक अर्थशास्त्र कहा जाता है। चूंकि इस तकनीक के अंतर्गत दो संतुलन स्थितियों की तुलना की जाती है। अतः इसे तुलनात्मक स्थैतिकी (comparative statics) भी कहा जाता है। इस तकनीक के परिष्कृत रूप में नियत, प्राचल की शर्त को छोड़ दिया जाता है लेकिन प्राचलों में परिवर्तन केवल पूर्व निर्धारित दरों पर ही होने दिया जाता है ताकि मूल संतुलन स्थिति में जब कभी किसी परिवर्तन की शुरुआत की जाए, तब नई संतुलन स्थिति का पता लगाया जा सके।

इसके विपरीत गत्यात्मक अर्थशास्त्र (dynamic economics) या गत्यात्मक-विश्लेषण के अंतर्गत अर्थव्यवस्था के प्राचलों और अन्य वस्तुओं में अपूर्व-सूचनीय ढंग से परिवर्तन होने दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रारंभिक संतुलन स्थितियों के आधार पर नई संतुलन स्थिति का पता लगाना संभव नहीं हो पाता। अतः गत्यात्मक विश्लेषण के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में परिवर्तन उन दरों के अनुसार होता है जिनके स्वयं में परिवर्तन अपूर्व-सूचनीय ढंग से होते रहते हैं। किसी अर्थव्यवस्था में किसी चर की प्रारंभिक स्थिति की तुलना में उसकी नई स्थिति को जानने का एकमात्र उपाय है उसके परिवर्तन के मार्ग का पता लगाना अर्थात् परिवर्तन की प्रत्येक अवस्था को देखना और सभी निर्धारक कारणों में होने वाले अंतरों को अनुकूल करना।

आप देखेंगे कि वास्तव में प्रायः प्रत्येक आर्थिक प्रणाली गत्यात्मक होती है—अपूर्वसूचनीय ढंग से इसमें परिवर्तन होता रहता है। आधुनिक अर्थशास्त्र के संबंध में यह बात और भी अधिक लागू होती है, जिसमें कि आर्थिक संवृद्धि (economic growth) की प्रक्रिया में तेजी लाने के सतत् प्रयास होते रहते हैं और समस्त विश्व की घटनाओं से अर्थव्यवस्था प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। फिर भी स्थैतिक विश्लेषण के भी अपने ही लाभ हैं। इससे कोई विश्लेषक यह सीखता है कि किसी चर का उपयोग किस प्रकार किया जाए।

2.9 विकल्प लागत (Opportunity Cost)

किसी वस्तु को प्राप्त करने के बदले में अपनी किसी वस्तु को खोना पड़ता है जो इसकी लागत होती है और इसी लागत को विकल्प लागत कहा जाता है। समस्त अर्थव्यवस्था या किसी आर्थिक इकाई को जो कुछ भी लाभ होता है उसकी कुछ विकल्प लागत भी होती है। ऐसा इसलिए होता है कि संसाधनों की आवश्यकता की तुलना में वे कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं या दुर्लभ होते हैं। अवसर लागत (opportunity cost) का उदाहरण अनेक प्रकार से दिया जा सकता है। किसी उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु को खरीदने में लगी विकल्प लागत की अभिव्यक्ति कीमत के रूप में होती है जिसका भुगतान वह मुद्रा के रूप में करता है। परंतु अंततोगत्वा विकल्प लागत उन वस्तुओं और सेवाओं के रूप में होती है जिनके क्रय से वह वंचित रह जाता है। उसी प्रकार कोई व्यक्ति जब अपनी आय के एक अंश की बचत करता है तब उस बचत की विकल्प लागत वर्तमान उपभोग से वंचित रहना होता है। इसके विपरीत वर्तमान उपभोग की विकल्प लागत भविष्य में उसी प्रकार के उपभोग से वंचित रहना होता है क्योंकि वर्तमान उपभोग के कारण भविष्य में उपभोग पर व्यय के लिए बचत नहीं हो पाती। उसी प्रकार किसी उधारदाता के लिए किसी एक प्रकार की वित्तीय संपत्तियों (financial assets) में निवेश से होने वाली आय की विकल्प लागत उस आय से वंचित रहना होता है जो उसे किसी अन्य सर्वोत्तम विकल्प निवेश से मिलती। उत्पादन के किसी कारक के लिए उसके वर्तमान नियोजन से अर्जन की विकल्प लागत उसके अगले सर्वोत्तम उपलब्ध नियोजन से होने वाले आय से वंचित रहना होता है। इसे ही उत्पादन के उस कारक की अंतरण आय (transfer earnings) भी कहा जाता है। उत्पादन के

लिए "क" वस्तु के उत्पादन की विकल्प लागत वह वस्तु होती है जिसका वह अन्य प्रकार से उत्पादन कर पाता।

इस प्रकार विकल्प लागत की संकल्पना अत्यंत व्यापक और विस्तृत होती है। यह हमारी समस्त आर्थिक क्रियाओं पर लागू होती है क्योंकि सीमित साधनों की सहायता से हम सभी वस्तुओं का उत्पादन और उन्हें प्राप्त नहीं कर सकते। विभिन्न संदर्भों में माप की गई विकल्प लागत की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार से होती है : जैसे कि मुद्रा लागत, विकल्प उत्पादन की क्षति, विकल्प आय/प्राप्ति की क्षति, विकल्प उपयोगिता की क्षति इत्यादि। इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में तो विकल्प लागत की अभिव्यक्ति मुद्रा के रूप में करना संभव हो सकता है परंतु अन्य स्थितियों में ऐसा करना संभव नहीं भी हो सकता।

विकल्प लागत की संकल्पना समस्त अर्थव्यवस्था पर भी लागू होती है। कोई भी अर्थव्यवस्था अपनी आवश्यकता की सभी वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर सकती। कुछ वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के बदले में उसे कुछ अन्य वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से वंचित रहना होता है। अतः उसे यह निर्णय करना होता है कि वह किन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करे और किनको छोड़े। उत्पादन संभावना वक्र (production possibility curve) के संबंध में आप पढ़ चुके हैं (इकाई 1)। उसी संदर्भ में आपने देखा कि बंदूक के अतिरिक्त उत्पादन का अर्थ होता है उसी के अनुरूप मक्खन के उत्पादन में कमी करना। परंतु इस संबंध में यह स्मरणीय है कि किसी वस्तु की विकल्प लागत सदा नियत नहीं होती। किसी वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने पर प्रायः उसकी विकल्प लागत भी बढ़ती जाती है। इस संबंध में अन्य कारणों का भी प्रभाव पड़ना जारी रहता है जिसके फलस्वरूप विचाराधीन वस्तु की विकल्प लागत में परिवर्तन होता रहता है।

बोध प्रश्न ग

1 बताएं की निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) यथार्थमूलक अर्थशास्त्र का संबंध "क्या होना चाहिए" के साथ होता है।

ii) आदर्शक अर्थशास्त्र के अंतर्गत नीति संबंधी उपायों की सिफारिश के लिए मूल्य निर्णय प्रणाली की आवश्यकता होती है।

iii) किसी विशेष आर्थिक समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक अर्थशास्त्री एक ही उपाय को बताता है।

iv) यथार्थमूलक अर्थशास्त्र सदा वास्तविकता का चित्रण करता है।

v) व्यष्टि अर्थशास्त्र के निष्कर्षों को समष्टि अर्थशास्त्र के क्षेत्र में सदा ही लागू किया जाता है।

vi) माँग और पूर्ति ये दोनों ही स्टॉक चर हैं।

vii) तुलनात्मक स्थैतिकी के अंतर्गत दो संतुलन स्थितियों के बीच तुलना की जाती है।

viii) यह कथन कि समस्त अर्थव्यवस्था या किसी आर्थिक इकाई को जो कुछ भी लाभ होता है उसकी कुछ विकल्प लागत होती है, कभी-कभी सही नहीं भी होता।

ix) किसी वस्तु के उत्पादन में अर्थव्यवस्था को होने वाली विकल्प लागत सदा नियत होती है

2 स्तंभ "अ" में दिए हुए मदों का स्तंभ "ब" में दिए हुए मदों के साथ मिलान करें।

स्तंभ "अ"	स्तंभ "ब"
i) किसी एक फर्म और उद्योग का अध्ययन	क) वस्तु-विनिमय
ii) वह चर जिसका माप किसी समय बिंदु पर किया जा सके	ख) समष्टि अर्थशास्त्र
iii) किसी अर्थव्यवस्था के समस्त क्षेत्रक का अध्ययन	ग) सीमांत उपयोगिता
iv) वह चर जिसका माप किसी अवधि के दौरान किया जा सके	घ) यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें
v) आवश्यकता की तुष्टि करने की किसी वस्तु की क्षमता	ङ) प्रवाह चर
vi) एक अतिरिक्त इकाई के उपभोग से होने वाली तुष्टि	च) व्यष्टि अर्थशास्त्र
vii) यदि अन्य बातें समान हों	छ) उपयोगिता
viii) अंडों के साथ सेब का विनिमय	ज) स्टाक चर

2.10 सारांश

अर्थशास्त्र में उपयोगिता, मूल्य, विनिमय, संपत्ति, पदार्थ, पूर्ति, मांग, उपभोग, सीमांत आदि अनेक शब्द तथा संकल्पनाएं हैं जो लोकप्रिय आर्थिक शब्दावली के अंश होते हैं।

अर्थव्यवस्था को वस्तुओं और सेवाओं के वर्तुल प्रवाह की प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। यह वर्तुल प्रवाह परिवारों, व्यवसाय-इकाइयों, सरकार आदि अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों के बीच होता है। प्रत्येक आर्थिक इकाई को दूसरी आर्थिक इकाइयों से आगत प्राप्त होते हैं और उनके बदले में उन्हें भुगतान वह अपने निर्गत (निर्गतों) के रूप में करती है। आर्थिक प्रणाली के लिए यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

आर्थिक नियमों का निरूपण आर्थिक इकाइयों के कार्यों का चित्रण करने के लिए किया जाता है जो विभिन्न कारणों और शक्तियों के प्रत्युत्तर में किए जाते हैं। ये नियम प्रवृत्तियों के विवरण होते हैं। चूंकि इनका संबंध मनुष्य के व्यवहार के साथ होता है जिसे वह समाज का सदस्य होने के नाते करता है, अतः ये सामाजिक नियमों के अंतर्गत माने जाते हैं। आर्थिक नियमों का निरूपण निगमनात्मक या आगमनात्मक तर्क के आधार पर किया जाता है। निगमनात्मक विधि के अंतर्गत धारणाओं या कारणों को चुन लिया जाता है और तर्क द्वारा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। कारण या धारणाएं वास्तविकता को बता भी सकती हैं और नहीं भी। इसके विपरीत आगमनात्मक तर्क के अंतर्गत तथ्यों को एकत्रित किया जाता है और यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि विभिन्न शक्तियों और उद्दीपनों (stimuli) की प्रतिक्रिया के रूप में आर्थिक इकाइयों का वास्तविक व्यवहार स्वरूप क्या होगा। आर्थिक नियमों को सशक्त और परिष्कृत करने तथा अर्थव्यवस्था की कार्यवाही को समझने के लिए इन दोनों ही विधियों का प्रयोग होना चाहिए।

चूंकि नियंत्रित प्रयोग करना संभव नहीं होता तथा मानव व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन होते रहते हैं, अतः आर्थिक नियमों का प्रयोग विश्वसनीयता पूर्वकथन के लिए नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त वास्तविकता इतनी जटिल होती है कि आर्थिक नियमों को बनाते समय सभी सक्रिय कारणों पर ध्यान देना संभव नहीं हो पाता। दूसरी बात यह है कि अधिकतर स्थितियों में होता यह है कि अंतिम परिणाम के निकलने के पहले ही कोई बाह्य शक्ति प्रक्रिया में विघ्न डाल देती है। इसी कारण प्रत्येक आर्थिक नियम के साथ यह वाक्य जुड़ा होता है कि "यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें" या "यदि अन्य बातें समान हों"।

यथार्थमूलक अर्थशास्त्र से अभिप्राय आर्थिक विश्लेषण के उस अंश से होता है जो केवल वास्तविकता (या सैद्धांतिक तर्क) का विवरण प्रस्तुत करता है। इसके अंतर्गत यह नहीं बताया जाता कि आर्थिक विश्लेषण से निकले परिणाम वांछनीय हैं या नहीं। इसके विपरीत आदर्शक अर्थशास्त्र का संबंध "क्या होना चाहिए" के साथ होता है। यह वास्तविकता को समाज द्वारा निर्धारित लक्ष्यों के संदर्भ में देखता है तथा उन्हें प्राप्त करने के उपाय बताता है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र और समष्टि अर्थशास्त्र शब्दों का उपयोग समुच्चय के स्तर (level of aggregation) के संबंध में किया जाता है, अर्थात् इस संबंध में कि आर्थिक विश्लेषण के अंतर्गत आर्थिक इकाइयां और चर किस सीमा तक आ जाते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत पृथक्-पृथक् आर्थिक इकाइयों और उनके छोटे-छोटे वर्गों की आर्थिक क्रियाओं और उनकी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत आर्थिक इकाइयों के बृहत् समूहों, उनके समुच्चयों तथा उनकी औसतों और समष्टि चरों का अध्ययन होता है जैसे कि राष्ट्रीय आय, बेरोज़गारी आदि। व्यष्टि अर्थशास्त्र तथा समष्टि अर्थशास्त्र, इन दोनों ही का अपना-अपना महत्व है और इन दोनों ही का अध्ययन होना चाहिए। क्योंकि ये एक दूसरे के पूरक हैं।

आर्थिक चरों को स्टॉक और प्रवाह नामक दो वर्गों के बीच बांटा जा सकता है। स्टॉक चर वह है जिसका माप केवल किसी समय बिंदु के संदर्भ में किया जा सकता है। इसके विपरीत प्रवाह चर (flow variable) का माप किसी अवधि के दौरान किया जाता है। प्रायः इन दोनों ही चरों का साथ-साथ उपयोग करना आवश्यक होता है।

स्थैतिक अर्थशास्त्र का तुलनात्मक स्थैतिकी विश्लेषण की वह तकनीक है जिसमें अर्थव्यवस्था के प्राचलों को दिया हुआ मान लिया जाता है। "यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें" को मान लिया जाता है तथा प्रारंभिक और अंतिम संतुलन स्थितियों के बीच तुलना की जाती है। गत्यात्मक अर्थशास्त्र या गत्यात्मक विश्लेषण के अंतर्गत अर्थव्यवस्था के प्राचलों में परिवर्तन होने दिया जाता है तथा

"यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें" नामक शर्त को छोड़ दिया जाता है। इस विश्लेषण के अंतर्गत किसी चर की प्रारंभिक स्थिति की तुलना में उसकी नई स्थिति को जानने का एकमात्र उपाय होता है उसके परिवर्तन के मार्ग का पता लगाना।

किसी वस्तु की विकल्प लागत से अभिप्राय उस वस्तु की क्षति से होता है जिसे कि प्राप्त होने वाली वस्तु के बदले में छोड़ना पड़ता है। यह संकल्पना किसी आर्थिक प्रणाली के प्रत्येक पक्ष पर लागू होती है। विकल्प लागतों की अभिव्यक्ति मुद्रा-लागत, विकल्प उत्पादन की क्षति, विकल्प आय-प्राप्ति की क्षति आदि रूपों में होती है। यह संकल्पना व्यष्टि और समष्टि इन दोनों ही स्तरों पर लागू होती है।

2.11 शब्दावली

औसत उपयोगिता (Average Utility) : कुल उपयोगिता में वस्तु की कुल इकाइयों से भाग देने पर एक इकाई की जो उपयोगिता प्राप्त होती है उसे औसत उपयोगिता कहते हैं।

वस्तु विनिमय (Barter) : वस्तु/सेवाओं के बदले में किन्हीं अन्य वस्तुओं/सेवाओं का विनिमय।

यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें (Ceteris Paribus) : प्रत्येक आर्थिक नियम के विवरण के साथ लगी शर्त, जिसका अर्थ होता है कि अंतिम परिणाम पर पहुंचने के पूर्व कोई भी बाहरी शक्ति इस प्रक्रिया में बाधा नहीं डालेगी।

सुख की वस्तुएं (Comforts) : वे वस्तुएं जिनका उपयोग हमारी उत्पादन क्षमता को बढाने और हमारे जीवन को और सुखमय बनाने के लिए किया जाता है।

उपभोग (Consumption) : किसी आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया के अंतर्गत उपयोगिता का उपयोग।

निगमनात्मक तर्क (Deductive Reasoning) : विश्लेषण की वह तकनीक जिसके अंतर्गत कारणों या मान्यताओं का चयन कर लिया जाता है और उनके आधार पर परिणाम निकाले जाते हैं।

माँग (Demand) : वस्तु की वह मात्रा जिसे किसी अवधि के अंतर्गत प्रति इकाई के लिए दी हुई कीमत पर क्रेता खरीदने को तैयार हों।

गत्यात्मक अर्थशास्त्र (Dynamic Economics) : विश्लेषण की एक तकनीक जिसके अंतर्गत अर्थव्यवस्था के प्राचलों और अन्य वस्तुओं में अपूर्वसूचनीय ढंग से परिवर्तन होने दिया जाता है। विचाराधीन चर की स्थिति का अनुमान लगाने का एकमात्र उपाय यह होता है कि मार्ग का पता लगाया जाए।

आर्थिक नियम (Economic Laws) : प्रवृत्तियों के विवरण। वे आर्थिक इकाइयो की उन मानकीकृत या व्यापक प्रतिक्रियाओं का चित्रण प्रस्तुत करते हैं जो विभिन्न शक्तियों और उद्दीपनों के प्रति की जाती है।

विनिमय मूल्य (Exchange Value) : बाजार में किसी वस्तु के लिए मिलने वाली कीमत।

प्रवाह चर (Flow Variable) : वह चर जिसका माप केवल किसी समय अवधि के संदर्भ में किया जा सकता है।

वस्तु/पदार्थ (Goods) : कोई भी वस्तु जिसमें उपयोगिता हो या जिसका उपयोग अन्य पदार्थों या सेवाओं के उत्पादन में किया जा सके।

आगमनात्मक तर्क (Inductive Reasoning) : विश्लेषण की एक तकनीक जिसके अंतर्गत विभिन्न शक्तियों और उद्दीपनों के प्रत्युत्तर में विभिन्न आर्थिक इकाइयों के व्यवहार स्वरूप को जानने के लिए सही सूचना का प्रयोग किया जाता है।

मध्यवर्ती वस्तुएं (Intermediate Goods) : वे आगत जिनका उपयोग उत्पादन के लिए किया जाता है।

विलास वस्तुएं (Luxuries) : वे वस्तुएं जिनका उपयोग अपनी हैसियत को दिखाने या सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए किया जाता है।

समष्टि अर्थशास्त्र (Macro Economics) : आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा जिसके अंतर्गत केवल समस्त अर्थव्यवस्था या उसके बड़े क्षेत्रकों की गतिविधियों का ही अध्ययन किया जाता है।

सीमांत (Margin) : किसी वस्तु की अंतिम इकाई से संबंधित विचाराधीन चर का मूल्य।

सीमांत उपयोगिता (Marginal Utility) : किसी वस्तु की एक और इकाई के उपभोग से प्राप्त होने वाली अतिरिक्त तुष्टि।

कार्य-पद्धति (Methodology) : यह विश्लेषण के उपकरणों, आधार सामग्री के संग्रह और उनके उपयोग तथा तर्क-प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती है।

व्यष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics) : आर्थिक विश्लेषण की वह शाखा जिसके अंतर्गत एकल आर्थिक इकाइयों या उनके छोटे वर्गों तथा अलग-अलग वस्तुओं की अलग-अलग कीमतों जैसे व्यष्टि-चरों के अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

मुद्रा विनिमय (Money Exchange) : मुद्रा के बदले में वस्तुओं/सेवाओं का विक्रय।

आवश्यक वस्तुएं (Necessities) : हमारे जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के काम में आने वाली वस्तुएं।

सामान्य (Normal) : किसी चर में ऐसी प्रवृत्ति का होना कि वह बार-बार, प्रायः आमतौर पर या दीर्घ काल तक बनी रहे।

आदर्शक अर्थशास्त्र (Normative Economics) : आर्थिक विश्लेषण का वह अंश जिसका संबंध इन बातों के साथ हो कि **क्या होना चाहिए** और वर्तमान परिस्थितियों में परिवर्तन लाकर किस प्रकार उनकी प्राप्ति की जा सकती है।

विकल्प लागत (Opportunist Cost) : किसी आर्थिक पदार्थ के अगले सर्वोत्तम उपयोग (या अवसर) का मूल्य; त्याग किए हुए विकल्प का मूल्य।

यथार्थमूलक अर्थशास्त्र (Positive Economics) : आर्थिक तर्क का वह अंश जिसके अंतर्गत **क्या है** के संबंध में विचार किया जाता है। इसकी वांछनीयता या अन्यथा के साथ इसका कोई संबंध नहीं होता। उसी प्रकार वर्तमान स्थिति को बदलने के संबंध में भी वह कुछ नहीं कहता।

स्थैतिक अर्थशास्त्र (तुलनात्मक स्थैतिकी) (Static Economics) (Comparative Statics) : विश्लेषण की एक तकनीक जिसके अंतर्गत प्रारंभिक और अंतिम संतुलन परिस्थितियों की तुलना इस मान्यता के आधार पर की जाती है कि आर्थिक प्रणाली के मूल तत्वों में (जिन्हें अर्थव्यवस्था के प्राचल भी कहा जाता है) कोई परिवर्तन नहीं होता।

स्टॉक चर (Stock Variable) : वह चर जिसकी माप केवल किसी समय बिंदु के संदर्भ में ही की जा सके।

पूर्ति (Supply) : किसी वस्तु की वह मात्रा जिसकी प्रति इकाई के लिए दी हुई कीमत पर और नियत समय पर विक्रेता बाज़ार में बेचने को तैयार हों।

कुल उपयोगिता (Total Utility) : किसी वस्तु की कुल इकाइयों से प्राप्त कुल संतुष्टि।

उपयोग मूल्य (Use Value) : किसी वस्तु की उपयोगिता।

उपयोगिता (Utility) : आवश्यकता तुष्ट करने की किसी वस्तु की शक्ति। इससे आशय होता है कि कोई वस्तु किसी उपभोक्ता की क्या सेवा या संतुष्टि प्रदान कर पाती है।

2.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) 4 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) गलत (vi) सही
(vii) गलत (viii) सही (ix) गलत (x) सही (xi) गलत

ख) 3 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) गलत
(vii) सही (viii) सही (ix) सही

ग) 1 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत
(iv) गलत—यह यथार्थ का चित्रण तभी कर सकता है जब मान्यताएं यथार्थवादी हों। अन्यथा इसका तर्क तो सही होगा परंतु उसके निष्कर्ष उपयोग योग्य नहीं भी हो सकते हैं।

(v) गलत (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत (ix) गलत

2 (i) छ (ii) झ (iii) ख (iv) च (v) ज (vi) ग (vii) घ (viii) क

2.13 स्वपरख प्रश्न

1 यथार्थमूलक और आदर्शक अर्थशास्त्र के बीच अंतर बताएं। आप इनमें से किसे उत्तम समझते हैं और क्यों?

2 निम्नलिखित के संबंध में संक्षिप्त नोट लिखें :

क) संतुलन की संकल्पना।
ख) आर्थिक नियमों की सीमाएं।
ग) यदि अन्य बातें पूर्ववत् रहें।
घ) परिवर्तन के मार्ग का पता लगाना।

3 निम्नलिखित के बीच भेद बताएं।

क) समष्टि अर्थशास्त्र और व्यष्टि अर्थशास्त्र
ख) स्थैतिक अर्थशास्त्र और गत्यात्मक अर्थशास्त्र

4 प्राय: प्रत्येक आधुनिक अर्थव्यवस्था गतिशील होती है। इसके कारण बताएं।

5 उपभोक्ता, उत्पादक, निवेशकर्त्ता और उत्पादन के कारक के लिए अवसर लागतों की अभिव्यक्ति किस रूप में होती है।

नोट : इन प्रश्नों से इस इकाई को आप अच्छी तरह से समझ पाएँगे। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। परंतु उत्तर आप विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 3 आर्थिक प्रणालियाँ

संरचना

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 आर्थिक प्रणाली
3.3 विभिन्न आर्थिक प्रणालियाँ
3.4 पूंजीवाद
    3.4.1 पूंजीवाद का आविर्भाव
    3.4.2 पूंजीवाद की विशेषताएँ
    3.4.3 कीमत तंत्र और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का कार्यचालन
    3.4.4 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आधुनिक निगम
3.5 समाजवाद
    3.5.1 समाजवाद का निर्माण
    3.5.2 समाजवाद की विशेषताएँ
    3.5.3 समाजवादी अर्थव्यवस्था में आयोजन की भूमिका
3.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था
    3.6.1 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ
    3.6.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में तर्क
    3.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था की सीमाएँ
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.10 स्वपरख प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- आर्थिक प्रणालियों के विभिन्न प्रकार की पहचान कर सकेंगे,
- पूंजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ बता सकेंगे,
- पूंजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के कार्यचालन को स्पष्ट कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

अपने दिन-प्रति-दिन के जीवन में अक्सर ही हम पूंजीवाद, समाजवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था की चर्चा करते हैं। विभिन्न देशों में आज ये ही आर्थिक प्रणालियाँ प्रचलित हैं। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि इन प्रणालियों का वास्तविक अभिप्राय क्या होता है। आप यह भी देखेंगे कि इन प्रणालियों का आविर्भाव कैसे हुआ या इनका निर्माण कैसे होता है और प्रायः उनकी कार्यविधि क्या है। साथ ही साथ आप यह भी पढ़ेंगे कि विभिन्न आर्थिक प्रणालियों के बीच बाज़ार और राज्य की आयोजना के कार्यभाग के संबंध में किस प्रकार के अंतर होते हैं।

3.2 आर्थिक प्रणाली

पिछले भाग में कुछ आर्थिक प्रणालियों (economic systems) की ओर संकेत किया गया है और इस इकाई में उन्हीं के संबंध में मुख्य रूप से चर्चा की जाएगी। लेकिन ऐसा करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि आर्थिक प्रणाली शब्द का सही अर्थ क्या होता है और यह भी कि विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का विकास कैसे हुआ और स्थापना किस प्रकार हुई। इस संबंध में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं (इकाई 1) कि अपने साधनों और आवश्यकताओं के बीच के असंतुलन संबंधी मूल समस्या के समाधान के लिए प्रत्येक समाज एक व्यवस्था का निर्माण करता है जिसे आर्थिक प्रणाली या अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इस प्रकार "आर्थिक प्रणाली (अर्थव्यवस्था)"

शब्द उन सभी संस्थाओं, विधियों और व्यवस्थाओं के कुल योग का प्रतिनिधित्व करता है जिनका निर्माण इसलिए किया जाता है कि असीमित आवश्यकताओं और पूरी की जाने वाली आवश्यकताओं के चुनाव से संबंधित दुर्लभ साधनों की समस्या का समाधान किया जा सके। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि किसी समाज में जो तंत्र यह तय करता है कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाए, कैसे उत्पादन किया जाए और किसके लिए उत्पादन किया जाए, उसे आर्थिक प्रणाली कहा जाता है। आर्थिक प्रणाली की संकल्पना को इस रूप में लेने का अर्थ है इसे अत्यंत सरल ढंग से प्रस्तुत करना। अधिक वैज्ञानिक अर्थ में आर्थिक प्रणाली से अभिप्राय जो उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के कुछ स्वरूपों पर आधारित "उत्पादक शक्तियों" (producti forces) और उत्पादन के संबंधों (relation of production) के सहयोग से है। इसलिए किसी समाज की आर्थिक प्रणाली के स्वरूप को समझने के लिए हमें उस समाज में विद्यमान उत्पादन-संबंधों के साथ-साथ उसकी उत्पादक शक्तियों के संबंध में भी विचार करना होगा। इनके बारे में अब विस्तारपूर्वक चर्चा की जाएगी।

उत्पादक शक्तियाँ (Production forces) : जीवित रहने के लिए मनुष्य को भोजन, वस्त्र, मकान तथा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता पड़ती है। इन सबके उत्पादन में उसे अपना श्रम लगाना होता है। हम जानते हैं कि केवल श्रम से ही किसी वस्तु का उत्पादन नहीं किया जा सकता। मनुष्य के लिए उपयोगी वस्तु के निर्माण में श्रम के साथ गन्ना, तिलहन, कच्चा लोहा, कोयला, उपकरण, मशीन, भवन जैसी वस्तुओं का उपयोग करना होता है। इस प्रकार की सभी वस्तुएँ जिनका उपयोग उत्पादन कार्य में किया जाता है उत्पादन के साधन कहे जाते हैं। उत्पादन के साधनों का वर्गीकरण दो मुख्य श्रेणियों में किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी के अंतर्गत उत्पादन के वे साधन आते हैं जिनके साथ श्रम का उपयोग प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है। इसके अंतर्गत कपास, तिलहन, रसायन और खनिज आदि कच्चे माल आते हैं। इन्हें श्रम की वस्तुएँ (objects of labour) कहा जाता है। मशीन, औजार आदि पूंजीगत उपस्करों को श्रम के उपकरण (instruments of labour) कहा जाता है। श्रम के इन उपकरणों के अतिरिक्त सड़कों, फैक्ट्रियों, भवनों, पत्तनों, गोदामों आदि का भी उपयोग उत्पादन कार्य में करना होता है जिन्हें श्रम के साधन (means of labour) के नाम से जाना जाता है।

आदिम (Primitive) अथवा आधुनिक सभी समाजों में उत्पादन के साधन और श्रम एक दूसरे को सदा ही प्रभावित करते रहे हैं और इसी क्रिया के द्वारा इन समाजों में उत्पादक शक्तियों का निर्धारण होता है। विज्ञान और तकनॉलाजी के क्षेत्र में प्रगति के साथ-साथ मशीनों और औज़ारों में बहुत कुछ सुधार हुए हैं। श्रम के उपकरणों में बहुत विविधता आ गई है और आज भी अत्याधिक कौशल की आवश्यकता पड़ती है। इन सब तर्कों का सार यह है कि समय के साथ-साथ उत्पादक शक्तियों का विकास हुआ है और आज भी इनमें और वृद्धि के संकेत दिखाई पड़ रहे हैं।

उत्पादन के संबंध (Relation of production) : उत्पादन की प्रक्रिया में एक मनुष्य दूसरे को प्रभावित करता है और उनके बीच किसी न किसी प्रकार का संबंध भी होता है। इन संबंधों को "उत्पादन के संबंध" के नाम से जाना जाता है। ये मुख्यतः इस बात पर निर्भर करते हैं कि उत्पादन के साधनों का स्वामी कौन है तथा श्रम कार्य कौन करता है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि उत्पादन के संबंधों के स्वरूप का निर्धारण भूमि, खनिज संसाधनों, कारखानों, मशीनों आदि के स्वामित्व के द्वारा होता है यदि उत्पादन के इन साधनों का स्वामित्व कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में है और अन्य लोग (जिनकी संख्या बहुत बड़ी होती है) श्रम की पूर्ति करते हैं, तब इनमें से पहला अत्यंत शक्तिशाली वर्ग बन जाएगा और दूसरे वर्ग का स्थान समाज में अत्यंत नीचा बना रहेगा। इन दोनों वर्गों के हितों के परस्पर विरोध के कारण इनके बीच सदा संघर्ष बना रहेगा। इसके विपरीत उत्पादन के सभी साधनों का स्वामित्व यदि सरकार के अधीन है, जो समस्त समाज के हित में कार्य करती है, तब उत्पादन के संबंध पारस्परिक सहयोग पर आधारित होंगे और किसी एक वर्ग द्वारा किसी दूसरे वर्ग के शोषण की गुंजाइश नहीं रहेगी।

उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच संगति संघर्ष **(Compatibility and conflict between productive forces and relation of production) :** समय के साथ-साथ केवल जनसंख्या में ही वृद्धि नहीं हुई है बल्कि मनुष्य के ज्ञान और चेतना में भी वृद्धि हुई है। इसलिए आवश्यक हो गया है कि उत्पादन में सतत् वृद्धि की जाए। प्राचीन काल में उत्पादक शक्तियाँ अत्यंत पिछड़ी हालत में थीं और तब लोग अपने जीवन यापन के लिए साथ-साथ रहते और साथ-साथ ही काम करते थे। पशुओं के सामूहिक शिकार और सामूहिक श्रम के फल में अपना-अपना हिस्सा प्राप्त करने के कार्य में श्रम का साधन अपेक्षाकृत कम विकसित था। इसके विपरीत अब उत्पादक शक्तियाँ अधिक विकसित हो गई हैं। जो लोग उत्पादन के साधनों के

स्वामी होते हैं, वे स्वयं श्रम नहीं करते। वे दूसरों से काम कराते हैं। उत्पादन के ये संबंध उत्पादक शक्तियों के साथ संगत होते हैं। जब तक यह संगतता बनी रहती है तब तक आर्थिक प्रणाली स्थिर रहती है। लेकिन उत्पादक शक्तियों में प्रगति के कारण यदि इनके तथा उत्पादन के संबंधों के बीच एक बार संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, तब आर्थिक प्रणाली को खतरा पैदा हो जाता है। उदाहरणार्थ, अठारहवीं सदी के दौरान यूरोप में इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई। अनेक प्रकार की मशीनों की खोज के कारण पुरानी व्यवस्था में संघर्ष की स्थिति कायम हो गई। आधुनिक उद्योगों को स्थापित करने के लिए पुरानी खेतिहर अर्थव्यवस्था (peasant economy) को नष्ट करना पड़ा। पूर्वकालीन प्रगति में सामंत (feudal lords) भूमि के स्वामी होते थे और कृषि कार्य बंधुआ मजदूरों द्वारा होता था जिन्हें कृषिदास (serfs) कहा जाता था। उत्पादन के इस प्रकार के संबंध के कायम रहते हुए औद्योगीकरण करना संभव नहीं हो सकता था। इसलिए प्रगतिशील उत्पादक शक्तियों और उस समय विद्यमान उत्पादन संबंधों के बीच संघर्ष का होना अवश्यंभावी था। अतः अंत में पुरानी व्यवस्था अर्थात् सामंतवाद का पतन हो गया और पूंजीवाद नामक नई आर्थिक प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ।

3.3 विभिन्न आर्थिक प्रणालियाँ (Various Forms of Economic Systems)

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज की आर्थिक प्रणालियाँ प्राचीन और मध्य युग में विद्यमान नहीं थीं। जो आर्थिक प्रणालियाँ विकसित हुईं या जिन्हें स्थापित किया गया वे आनुक्रमिक रूप में इस प्रकार थीं :

1 आदिम समाज (Primitive society)
2 दासप्रथा (The slave owning system)
3 सामंतवाद (Feudalism)
4 पूंजीवाद (Capitalism)
5 समाजवाद (Socialism)

आदिम समाज : सबसे पहले मनुष्य ने जिस व्यवस्था को विकसित किया वह आदिम समाज के नाम से जाना जाता है। यह प्रणाली हजारों वर्ष तक चलती रही और उसका अंत आज से लगभग 6-7 हजार वर्ष पहले हुआ। यह ऐसा समय था जब मनुष्य अत्यंत कमजोर और असहाय स्थिति में था। उस युग में श्रम के उपकरण आदिकालीन थे, अतः एक दूसरे के साथ सहयोग करने के अतिरिक्त मनुष्य के सम्मुख और कोई विकल्प नहीं था। लोग झुंड बनाकर शिकार करने जाते थे और वे इस सम्मिलित श्रम के फल का उपभोग सामूहिक रूप में रहकर करते थे। इस प्रणाली में निजी संपत्ति नहीं होती थी। समय के साथ-साथ जब उत्पादक शक्तियों का विकास हुआ और मनुष्य ने खेती करना सीख लिया, तब उत्पादन के संबंध बदलने लगे। इस बदली हुई स्थिति में चूंकि मनुष्य के लिए यह संभव हो गया कि वह अपने निर्वाह के लिए आवश्यक मात्रा से अधिक का उत्पादन कर सके, अतः दासप्रथा का जन्म हुआ। इसी समय निजी संपत्ति की धारणा भी स्वीकार्य बन गई। दासप्रथा और निजी संपत्ति के उद्भव के साथ ही साथ वर्गविहीन आदिम समाज (classless primitive society) के स्थान पर एक ऐसा वर्ग समाज (class society) आया जिसमें स्वामी और दास नामक दो वर्ग थे।

दासप्रथा : इस प्रणाली के अंतर्गत उत्पादन के साधनों के स्वामी व्यक्ति होते थे जिनका नियंत्रण दासों के श्रम के ऊपर भी होता था। दासप्रथा के प्रारंभिक काल में दासों के साथ मालिक भी काम करते थे। लेकिन समय के साथ-साथ ऐसा नहीं रहा तथा श्रम कार्य केवल दासों से ही लिया जाने लगा। समस्त उत्पादन को मालिक हड़प लेते थे और उसमें से दासों को उतना ही अंश दिया जाता था जो उनके निर्वाह मात्र के लिए अत्यंत आवश्यक था।

दासप्रथा के अंतर्गत उत्पादकों को, जो सदा ही दास होते थे, तकनीक में सुधार लाने के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं होती थी क्योंकि उससे उनका कोई भला नहीं होने वाला था। उन्नत प्रकार की तकनॉलाजी से उत्पादकता बढ़ती जिसके फलस्वरूप केवल अधिशेष (surplus) में वृद्धि होती है। जिसे मालिक हड़प लेते। इसलिए दासप्रथा पर आधारित समाज में उत्पादन के संबंध उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक सिद्ध हुए। इस अंतर्विरोध और मालिकों और दासों के हितों के बीच विरोध होने के फलस्वरूप अंततः उस आर्थिक प्रणाली का ही विनाश हो गया। उसके बाद जो आर्थिक प्रणाली विकसित हुई उसका नाम था सामंतवाद।

सामंतवाद : दासप्रथा के अंत और सामंतवाद के प्रादुर्भाव के फलस्वरूप उत्पादक शक्तियों के विकास का अवसर आया। सामंतवाद के अंतर्गत भूमि उत्पादन का मुख्य साधन थी और यह राजाओं, सामंतों तथा अमीर वर्ग के स्वामित्व में होती थी। जो लोग वास्तव में कृषि कार्य करते थे, उनके पास अपनी भूमि नहीं होती थी। उन्हें दास कहा जाता था। वे लोग सामंतों के खेतों पर काम करते थे और उसके बदले में उन्हें उतना ही दिया जाता था जिससे उनका जीवन-निर्वाह मात्र होता रहे। अन्य वस्तुओं का उत्पादन कारीगर (artisans) और दस्तकार (handicraft workers) करते थे और यह कार्य मुख्यतः स्थानीय मांग की पूर्ति के लिए किया जाता था। समय बीतने के साथ-साथ जब इन वस्तुओं के बाज़ार का विस्तार हुआ तथा औद्योगिक तकनॉलाजी और उन्नत हो गई, तब कारखानों को खोलने की आवश्यकता हुई। इसी के फलस्वरूप सामंतवाद के अंतर्गत उत्पादन के संबंधों और उत्पादक शक्तियों के बीच असंगति आ गई। कारखानों में काम करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता थी लेकिन सामंतों के बंधन से दासों को जब तक मुक्ति नहीं मिलती थी तब तक इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो सकती थी। इसीलिए पूंजीपतियों ने अपने ही हित में दासों को उकसाना शुरू कर दिया कि वे अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष करें। इसी के फलस्वरूप अंततः सामंतवाद का पतन हो गया। इसके बाद जो आर्थिक प्रणाली उभरी उसका नाम था पूंजीवाद।

पूंजीवाद : दासप्रथा और सामतवाद के ही जैसे पूंजीवाद का आधार भी उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और एक व्यक्ति द्वारा दूसरे किसी व्यक्ति का शोषण होता है। पूंजीवाद के अंतर्गत उत्पादक शक्तियाँ बहुत अधिक बढ़ी हैं और उसके फलस्वरूप श्रम की उत्पादिता में भी अत्याधिक वृद्धि हुई है। इस आर्थिक प्रणाली में उत्पादन कार्य मुख्यतः बाज़ार के लिए किया जाता है। पूंजीवाद की प्रारंभिक अवस्था में तो प्रतियोगिता थी लेकिन समय के साथ-साथ बड़ी-बड़ी कंपनियाँ छोटे उत्पादकों को नष्ट करने में सफल हो गईं। इसी कारण आज की पूंजीवादी प्रणाली में उत्पादन के सभी क्षेत्रों में पूर्ति के बहुत बड़े भाग पर मुट्ठी भर बड़े-बड़े उत्पादकों का नियंत्रण बना हुआ है। इस संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रमिकों की श्रम शक्ति ने वस्तु का रूप धारण कर लिया है, जिसके फलस्वरूप उत्पादन के साधनों के मालिक उनका शोषण करने लगे हैं। सच्चाई तो यह है कि पूंजीवादी प्रणाली का आधार वर्ग-भेद है। एक ओर पूंजीपति हैं जिनका स्वामित्व मशीनों, भवनों, कच्चे माल तथा अन्य सभी उत्पादन के साधनों के ऊपर होता है और दूसरी ओर श्रमिक हैं जिनके पास अपनी श्रम शक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता। इन दोनों वर्गों के हितों के बीच टक्कर बनी रहती है जिसका परिणाम वर्ग-संघर्ष के रूप में होता है। आशा की जाती है कि यह वर्ग-संघर्ष जब अति तीव्र हो जाएगा, तब पूंजीवाद का पतन हो जाएगा और उसके बाद जो प्रणाली आएगी वह समाजवाद की होगी। इस इकाई में ही आगे चलकर पूंजीवाद के संबंध में आप और विस्तार से पढ़ेंगे।

समाजवाद : पूंजीवाद के पतन के बाद आने वाली प्रणाली को समाजवाद कहा जाता है। समाजवाद के अंतर्गत वर्गों के बीच संघर्ष नहीं होता। इस प्रणाली का उद्गम पूंजीवाद से नहीं होता। वास्तव में इसका निर्माण तो योजनाबद्ध रूप से करना होता है। समाजवाद के अंतर्गत उत्पादन के सभी साधनों पर प्रायः राज्य का स्वामित्व होता है, इस प्रकार उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व (social ownership) कायम हो जाता है। समाजवादी समाज में श्रम शक्ति एक वस्तु मात्र नहीं रह जाती, अतः श्रमिकों का शोषण समाप्त हो जाता है। उत्पादन की क्रिया कुछ मुट्ठी भर व्यक्तियों के निजी लाभ को अधिकतम करने के लिए नहीं बल्कि आम जनता के कल्याण को बढ़ाने के लिए की जाती है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में बाज़ार की भूमिका सीमित होती है और मुख्य रूप से आर्थिक आयोजन (economic planning) का आश्रय लिया जाता है जिसके फलस्वरूप कभी-कभी नौकरशाही और भ्रष्टाचार को बल मिलता है। इसी इकाई में आगे चलकर समाजवाद के संबंध में आप और विस्तार से पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न क

विभिन्न आर्थिक प्रणालियों का नाम बताइए

1 i) .... ii) ....

iii) .... iv) ....

2 पूंजीवाद किसे कहते हैं?

....

....

....

3 समाजवाद किसे कहते हैं?

....

....

....

4 निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत?

i) जब उत्पादन के संबंधों के साथ उत्पादक शक्तियों का मेल नहीं होता, तब आर्थिक प्रणाली स्थिर हो जाती है।

ii) सामाजिक विकास में पूंजीवाद अंतिम आर्थिक प्रणाली है।

iii) समाजवाद का उद्गम पूंजीवाद से होता है।

iv) समाजवाद का उद्गम अपने पहले की प्रणाली से नहीं होता बल्कि इसका निर्माण करना होता है।

v) दासप्रथा पर आधारित आर्थिक प्रणाली शोषणकारी होती है।

vi) सामंतवाद के अंतर्गत उत्पादन का मुख्य साधन भूमि होती है।

vii) आदिम समाज के अंतर्गत वर्ग-संघर्ष था।

viii) श्रमिकों की दृष्टि से पूंजीवाद आदर्श आर्थिक प्रणाली है क्योंकि इसके अंतर्गत उनके शोषण की गुंजाइश नहीं होती।

3.4 पूंजीवाद (Capitalism)

आशा है कि अब तक आप पूंजीवाद शब्द से परिचित हो चुके होंगे। अब हम पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली के संबंध में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। आज विश्व के बहुत से देशों की अर्थव्यवस्थाओं का स्वरूप पूंजीवादी है। प्रमुख पूंजीवादी देश हैं—संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी और जापान। विभिन्न देशों में पूंजीवाद के विद्यमान होने के संबंध में तो मतैक्य है परंतु उसकी परिभाषा के संबंध में मतभेद हैं। क्रौमवेल तथा सिजेर्वोन्की के अनुसार, पूंजीवाद का संबंध अहस्तक्षेप (laissez faire) की प्रणाली या मुक्त निजी उद्यम (free private enterprise) के साथ होता है। सोंबर्ट (Sombart) और वेबर (Weber) के अनुसार पूंजीवाद उस देश में होता है जहां के लोगों में उद्यम (enterprise) आर्थिक गणना (economic calculation) और विवेकशीलता की भावना हो। हैमिल्टन और नुसबौम जैसे इतिहासकारों के अनुसार, पूंजीवाद के अंतर्गत लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से दूरस्थ बाज़ार के लिए उत्पादन किया जाता है। सर्वाधिक वैज्ञानिक और व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा कार्ल मार्क्स की है। उसके अनुसार पूंजीवाद की परिभाषा उत्पादन के ढंग (mode of production) के रूप में की जाती है। इस मतानुसार पूंजीवाद के होने के लिए दो वर्गों का होना आवश्यक होता है— i) पूंजीपति जिनका उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व होता है और ii) श्रमिक जो उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से वंचित होते हैं। दासप्रथा और सामंतवाद के विपरीत, जिनमें वर्गों के बीच संबंध का निर्धारण शक्ति और प्रथाओं द्वारा होता है, पूंजीवाद के अंतर्गत दो वर्गों के बीच का संबंध मुक्त (free) और अनुबंधात्मक (contractual) होता है। मार्क्स के अनुसार, वस्तु का उत्पादन होना मात्र ही अर्थात् बाज़ार के लिए उत्पादन, पूंजीवाद का द्योतक नहीं समझा जा सकता। पूंजीवाद के लिए तो यह आवश्यक होता है कि श्रम शक्ति स्वयं ही वस्तु का रूप धारण कर ले जिससे कि विनिमय की अन्य वस्तुओं के ही समान बाज़ार में उसका भी क्रय और विक्रय किया जा सके।

3.4.1 पूंजीवाद का आविर्भाव

उत्पादन के पूंजीवादी संबंध का विकास सामंतवाद के गर्भ में हुआ। इस कथन से अभिप्राय यह है कि सामंतवाद के पतन के पूर्व ही पूंजीवाद के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे थे। इसे समझने के लिए निम्नलिखित के संबंध में चर्चा करना आवश्यक है, जिनके कारण सामंतवाद का पतन हुआ और पूंजीवाद के आविर्भाव के लिए मार्ग साफ हो गया।

1 **व्यापार और वाणिज्य की मात्रा में तेजी से विस्तार** : सामंतवाद के अंतर्गत उत्पादक शक्तियों में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि की उत्पादिता बढ़ गई जिससे खाद्य तथा अन्य प्रकार के

कृषि पदार्थ बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध होने लगे। अत: दूरस्थ बाज़ारों में व्यापार के लिए इन पदार्थों का उपयोग किया जाने लगा। परिवहन की सुविधाओं में सुधार हो जाने से वाणिज्यिक और औद्योगिक नगरों की स्थापना को बल मिला जहाँ पर व्यापारी पूंजीपति (merchant capitalist) की मुख्य भूमिका अदा करने लगे।

2 **उद्योग में घरेलू उत्पादन प्रणाली (Putting-out systems industry) :** सामंतवाद के अंतर्गत विनिर्माण कार्यों को परिवार उद्यम के रूप में किया जाता था तथा कारखाने, औज़ार, कच्चे माल, श्रम आदि परिवारों के ही होते थे। सामंतवाद के आगे के बाद के चरणों में उत्पादन की इस प्रणाली के स्थान पर धीरे-धीरे घरेलू उत्पादन प्रणाली आ गई। इस प्रणाली के प्रारंभिक रूप में व्यापारी पूंजीपति शिल्पकारों को कच्चा माल देते थे जो इसे तैयार माल का रूप देकर इन व्यापारियों को सौंप देते थे। बदले में शिल्पकारों को इस सेवा के लिए पारिश्रमिक मिलता था। समय बीतने के साथ-साथ इन शिल्पकारों के औज़ार तथा कारखानों का स्वामित्व भी व्यापारी पूंजीपतियों के हाथों में चला गया जो मजदूरी देकर श्रमिकों से इस कारखानों में काम कराने लगे। इस प्रकार उत्पादन के पूंजीवादी संबंध का विकास होने लगा।

3 **कृषि में बाड़ाबंदी आंदोलन (Enclosure movement) :** उत्पादन के पूंजीवादी संबंध के लिए आवश्यक होता है कि ऐसे श्रमिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते रहें जिनका अपने नियोजकों के साथ सामंतवाद के अधीन के दासों (serfs) के समान कोई प्रथागत बंधन (customary tie) नहीं होता तथा जिनके पास उत्पादन के अपने कोई साधन नहीं होते। यूरोप के बाड़ाबंदी आंदोलन तथा सोलहवीं सदी में हुई जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप इस प्रकार के श्रमिकों की पूर्ति में बहुत मदद मिली। बाड़ाबंदी आंदोलन का अर्थ यह था कि सामंतों ने शामिलात जमीनों पर बाड़ा लगा दिया और इनका उपयोग वे भेड़ों को पालने के लिए करने लगे। वस्त्र उद्योग में ऊन की मांग के बढ़ने के फलस्वरूप भेड़ पालन अत्यंत लाभदायक व्यवसाय हो गया। इस कार्य में अधिक श्रम की आवश्यकता न होने के कारण बहुत बड़ी मात्रा में दासों तथा उनके परिवार के लोगों को अपनी जीविका की खोज में नगरों की ओर जाना पडा। पंजीवादी उद्योगों की श्रम के लिए मांग की पूर्ति इन्हीं लोगों द्वारा हुई।

3.4.2 पूंजीवाद की विशेषताएँ

निस्संदेह यह कहा जा सकता है कि सभी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाएँ एक जैसी नहीं लगती फिर भी इनके बीच कुछ एक जैसी विशेषताएँ होती हैं। अब हम पूंजीवाद की प्रमुख विशेषताओं के संबंध में विचार करेंगे।

1 **उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व :** उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का होना पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता है। उत्पादन के ये साधन कच्चे माल जैसी श्रम की वस्तुएँ हों या मशीनों और औज़ारों जैसे श्रम के उपकरण उत्पादन कार्य के लिए इन पर मुख्य रूप में पूंजीपतियों का ही स्वामित्व होता है। वे दूसरों को मजदूरी देकर उनसे काम कराते हैं और उनके द्वारा होने वाले उत्पादन को अपना मानते हैं।

2 **वस्तु उत्पादन (Commodity production) :** पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अंतर्गत उत्पादन मुख्यतः वस्तु उत्पादन के रूप में होता है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि उत्पादन कार्य का मुख्य उद्देश्य होता है, उत्पादित वस्तुओं को बाज़ार में बेचना। वस्तु उत्पादन की शुरुआत तो सामंतवाद के अंतर्गत ही हो गई थी, फिर भी वह उनकी सर्व प्रमुख विशेषता नहीं थी। सामंती संबंधों के विघटन के साथ ही साथ वस्तु उत्पादन में बड़े पैमाने पर विस्तार हुआ। वस्तु उत्पादन में इस विस्तार में जिन दो कारकों की प्रमुख भूमिका थी, वे थे (i) श्रम का सामाजिक विभाजन और (ii) उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व। श्रम का सामाजिक विभाजन हो जाने से लोग विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करने लगे और बाज़ार में अपनी आवश्यकताओं के अनुसार वे आपस में उन वस्तुओं का विनिमय कर लेते।

3 **वस्तु के रूप में श्रम शक्ति (Labour power as a commodity) :** पूंजीवाद के अंतर्गत श्रम शक्ति स्वयं ही एक वस्तु का रूप धारण कर लेती है और अन्य वस्तु के समान ही बाज़ार में इसका भी क्रय-विक्रय किया जा सकता है। चूंकि नियोजकों की तुलना में श्रमिकों की सौदा-शक्ति प्रायः बहुत ही कम होती है, अतः उत्पादन में जिनका जितना योगदान होता है उससे कम ही उन्हें मजदूरी मिल पाती है। शुरू-शुरू में उन्हें निर्वाह मात्र मजदूरी दी जाती थी जो कि उत्पादन में उनके योगदान से बहुत ही कम होती थी। आज भी जबकि श्रमिक संघों के द्वारा सामूहिक सौदाकारी (collective bargaining) करना संभव हो गया है, श्रमिकों को एक वर्ग के रूप में अपने नियोजकों से यह सब नहीं मिल पाता जितना

की उत्पादन में उनका योगदान होता है। इस अर्थ में पूंजीपतियों और श्रमिकों के बीच के संबंध में शोषण का तत्व निहित होता है।

4 **कीमत तंत्र (Price mechanism) :** पूंजीवादी प्रणाली में किस वस्तु का, किस प्रकार से और किसके लिए उत्पादन किया जाए, इन सबके संबंध में निर्णय उत्पादकों के निजी लाभ को दृष्टि में रखकर किया जाता है, जो स्वयं ही इस बात पर निर्भर करता है कि बाज़ार में वस्तुओं की सापेक्ष लाभप्रदता (relative profitability) क्या है। इस प्रकार इस संबंध में निर्णय का निर्धारण वस्तुओं की कीमत अदा करने की क्षमता के अनुसार होता है तथा इन वस्तुओं के लिए लोगों की जरूरतों के साथ इसका कोई संबंध नहीं होता। इसी इकाई में आगे चलकर कीमत तंत्र के संबंध में आप विस्तार में पढ़ेंगे।

5 **सतत पूंजी संचयन और आर्थिक संकट (Persistent capital accumulation and economic crisis) :** पूंजीवादी उत्पादन की प्रक्रिया उसे कहते हैं जिसके अंतर्गत कोई पूंजीपति अपने कार्य की शुरुआत पूंजी की कुछ मात्रा के साथ करता है और उसका उपयोग वह और अधिक पूंजी पैदा करने के लिए करता है। इस प्रकार की प्रक्रिया के अंत में उसके पास की पूंजी की मात्रा प्रारंभिक पूंजी से कई गुना अधिक हो जाती है। इस प्रक्रिया में प्रथम चरण यह होता है कि कोई पूंजीपति अपने प्रारंभिक पूंजी स्टॉक का उपयोग दो प्रयोजनों से करता है : (1) इसके कुछ अंश को वह उपकरणों, मशीनों और कच्चे माल को खरीदने पर लगाता है और (2) शेष का उपयोग वह श्रम शक्ति को खरीदने के लिए करता है। उत्पादन कार्य के लिए वह श्रम शक्ति के साथ उत्पादन के साधनों को संयोजित करता है। आप पढ़ ही चुके हैं कि मजदूरी के रूप में श्रमिकों को उनका उचित भाग नहीं मिल पाता, अत: पूंजीपतियों के प्रबंध कार्य के आधार पर उन्हें जितना हिस्सा मिलना चाहिए उससे अधिक लाभ कमाने में वे सफल हो जाते हैं। इन लाभों का उपयोग वे पूंजी संचयन तथा उत्पादन में और विस्तार करने के लिए करते हैं, परंतु मांग के पर्याप्त मात्रा में न होने से इस बढ़े हुए उत्पादन का कुछ भाग बाज़ार में बिना बिके हुए भी रह सकता है। इस प्रकार पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक संकट की स्थिति आ जाती है।

6 **वर्ग-विरोध (Class contradiction) :** श्रमिक वर्ग के पारस्परिक विरोध का स्रोत होता है वस्तु के मूल्य का उनके बीच वितरण करने का प्रश्न। किसी वस्तु के कुल मूल्य की अभिव्यक्तियों की जा सकती है :

टी.वी. (T.V.) = एन.वी. + एस.वी. (NV + SV)
जहां टी.वी. (T.V) = कुल मूल्य (Total Value)
एन.वी.(N.V.) = अनिवार्य मूल्य (Necessary Value)
एस.वी.(S.V.) = बेशी मूल्य (Surplus Value)

अनिवार्य मूल्य से अभिप्राय श्रम शक्ति के मूल्य से होता है जो मजदूरी के रूप में श्रमिक को दिया जाता है। बेशी मूल्य का अर्थ होता है श्रमिक द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य (excess value) जो मजदूरी के रूप में उसकी प्राप्ति के बाद भी बचा हुआ अंश होता है और जो पूंजीपति को जाता है। इसलिए श्रमिक एन.वी. (NV) को बढ़ाना चाहते हैं जबकि पूंजीपति एस.वी. (SV) को बढ़ाने का प्रयास करते हैं इस वर्ग विरोध से संघर्ष और भी बढ़ता है और यही जब तीव्र रूप ले लेता है तब यह हिंसक रूप धारण कर सकता है और इस कारण राजनीतिक क्रांति का कारण बन सकता है।

3.4.3 कीमत तंत्र और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का कार्यचालन

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में ऐसी कोई एक एजेंसी नहीं होती जो इस अर्थव्यवस्था की दिन-प्रति-दिन की क्रियाओं को समन्वित करे। यह काम तो लोगों का ही होता है कि उत्पादक, उपभोक्ता तथा श्रम एवं अन्य साधन सेवाओं (factor services) के प्रतिकर्ता के रूप में स्वतंत्र रूप से वे निर्णय लें कि उन्हें किस वस्तु का उत्पादक करना है, किसका उपभोग करना है तथा अपने श्रम एवं अन्य साधन सेवाओं को किसे देना है। फिर भी हम देखते हैं कि परिस्थितियों के सामान्य बने रहने पर लाखों लोगों के स्वतंत्र निर्णय एक दूसरे के साथ मेल खाते हैं। इससे अभिप्राय यह होता है कि गेहूँ और जूते जैसी वस्तुओं के लिए मांग और पूर्ति एक दूसरे के साथ मेल खाती है। यह कैसे हो पाता है इसका स्पष्टीकरण कीमत के प्रक्रिया प्रचालन द्वारा किया जा सकता है।

आप जानते ही हैं कि उत्पादक, उपभोक्ता और साधन सेवाओं के पूर्तिकर्ता के रूप में लोग प्रचलित कीमतों के आधार पर अपनी तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। इसके बारे में खंड 4 में आप विस्तारपूर्वक पढ़ेंगे कि बाज़ार में कीमतों का निर्धारण कैसे होता है। अभी हम

यह मान लेते हैं कि कीमतों का एक सेट प्रचलन में है और इन्हीं कीमतों के आधार पर लोग अपनी तुष्टि को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। चूंकि वस्तुओं के उपभोग में उपयोगिता प्राप्त होती है, अत: उपभोक्ता के रूप में लोग उन वस्तुओं का उपभोग करेंगे जिनकी कीमतों की तुलना में उनसे अधिकतम उपयोगिता मिले। सामान्यत: उपभोग परिवार की आय की सीमा के अंतर्गत ही किया जाता है। उत्पादक के रूप में व्यक्ति अपने कुल लाभ के अधिकतम करने का प्रयास करता है। ऐसा उन वस्तुओं के उत्पादन के द्वारा होता है जिनके लिए मांग होती है। लाभ को अधिकतम करने के लिए लागत को कम से कम करने का प्रयास किया जाता है। ऐसा उत्पादन की उस तकनीक के प्रयोग द्वारा संभव हो पाता है जिसके अंतर्गत वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक आगतों (inputs) का अत्यंत कुशलतापूर्वक मेल हो पाता हो। उत्पादन के साधनों के पूर्तिकर्ता के रूप में व्यक्तियों को मजदूरी, लगान और ब्याज प्राप्त होते हैं। मजदूर की सेवा के बदले मजदूरी, भूमि की सेवा के बदले लगान और पूंजी की सेवाओं के लिए ब्याज दिया जाता है। उदाहरण के रूप में हम मजदूरी के संबंध में चर्चा करेंगे। प्रतियोगी परिस्थितियों में उस क्षेत्र में ऊंची मजदूरी दर होने की आशा की जाती है जिसमें श्रम की मांग अधिक होती है। इसी क्षेत्र में काम करके श्रमिक वर्ग अपनी आय को बढ़ाने का प्रयास करने लगता है और इस प्रकार वह श्रम सेवाओं की मांग और पूर्ति के बीच संतुलन कायम कर सकता है। इस तरह अर्थव्यवस्था के बहुसंख्यक व्यक्तियों के अलग-अलग निर्णयों के बीच सामंजस्य लाने में कीमत प्रक्रिया सहायक होती है। परंतु इससे आपको यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु की मांग और पूर्ति के बीच पूर्ण संतुलन हो जाता है। अर्थव्यवस्था में कुछ असंतुलन तो बने ही रहते हैं। कीमतों में समुचित परिवर्तन करके इन असंतुलनों को दूर किया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी वस्तु की पूर्ति यदि मांग से कम है, तब उसकी कीमत में वृद्धि होने लगती है। कीमत में यह वृद्धि उत्पादकों के लिए इस बात का संकेत होती है कि वे अपनी पूर्ति बढ़ाएँ और उपभोगताओं को संकेत देती है कि वे अपनी मांग कम करें। इस प्रकार मांग और पूर्ति के बीच संतुलन कायम हो सकता है। यदि पूर्ति मांग से अधिक है तब इसके ठीक विपरीत शक्तियाँ कार्य करेंगी।

3.4.4 पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आधुनिक निगम

पंजीवादी अर्थव्यवस्था विकासवादी होती है। शुरू-शुरू में यह पूर्ण प्रतियोगी मॉडल के समीप होती थी और इसमें बहुत बड़ी संख्या में छोटे-छोटे उत्पादक होते थे। धीरे-धीरे अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति आ गई जिसमें थोड़ी सी संख्या में बड़े-बड़े उत्पादक उत्पन्न हो गए। आधुनिक निगम, जो कि आज के विकसित पूंजीवादी देशों में प्रतिनिधि उत्पादन इकाई है इसका जन्म परिवार उद्यम (family enterprise) से हुआ है जो पूंजीवाद के प्रारंभिक चरण में प्रमुख उत्पादन इकाई हुआ करता था। आधुनिक निगम (corporation) के विशिष्ट लक्षणों को निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट किया जा सकता है।

1 **बड़ी मात्रा में पूंजी का उपयोग :** समय बीतने और उत्पादक शक्तियों में विकास के साथ-साथ उत्पादन की तकनीकें अत्यंत जटिल हो गई हैं। उत्पादन की इन जटिल तकनीकों को उपयोग में लाने वाले उद्यमों को स्थापित करने में बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। इसका प्रबंध कुछ थोड़े से व्यक्ति नहीं कर सकते। लेकिन शेयर पूंजी (share capital) जारी करके कोई निगम बाज़ार से साधनों को गतिमान कर सकता है।

2 **प्रबंध से स्वामित्व का संबंध विच्छेद :** आप जानते ही हैं कि कोई निगम शेयरों को जारी करके बाज़ार से पूंजी जुटाता है। लेकिन सभी शेयरधारियों/हिस्सेदारों (shareholders) के लिए आवश्यक नहीं होता कि वे प्रतिष्ठान के प्रबंध कार्य में भी भाग लें। आमतौर पर प्रमुख हिस्सेदार वेतनभोगी पेशेवर व्यक्तियों के सहयोग से निगम का प्रबंध कार्य करते हैं। यह स्थिति एक मात्र व्यापारी (sole trader) या साझेदारी (partnership) फर्मों से भिन्न होती है जिसमें पूंजी इकट्ठी करने तथा प्रबंध करने की जिम्मेदारी एक ही व्यक्ति की होती है।

3 **बड़े पैमाने पर और विविध उत्पादन :** आधुनिक निगम के उत्पादन का पैमाना परिवार उद्यम या साझा फर्मों (partnership firms) से कई गुना बड़ा होता है। इसके अतिरिक्त निगम उत्पादन के अनेक क्षेत्रों में विविध प्रकार के कार्य करता है। चूंकि निगम को इन सभी क्षेत्रों में एक ही समय में घाटा उठाना नहीं पड़ सकता, अत: वह अपने उत्पादन को बहुविध बनाकर अपने दिवाला होने के खतरे को कम कर सकता है।

4 **उत्पादक का प्रभुत्व :** पिछले अनुच्छेद में आप पढ़ चुके हैं कि पूंजीवाद के अंतर्गत उत्पादक उन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं जिनके लिए बाज़ार में मांग होती है। इस स्थिति में उपभोक्ताओं के बाज़ार अधिमान (market preferences) उत्पादन के ढांचे (structure of output) का निर्धारण करते हैं और तब यह कहा जाता है कि उपभोक्ता के प्रभुत्व की

स्थिति है। लेकिन आधुनिक निगम तो बाज़ार में अपने ही अनुरूप मांग स्वरूप (demand pattern) का निर्माण कर लेता है। विज्ञापन के द्वारा वह बाज़ार में अपनी वस्तु के लिए मांग का सृजन कर सकता है। इसे उत्पादक के प्रभुत्व के नाम से जाना जाता है।

बोध प्रश्न ख

1 चार पूंजीवादी देशों की सूची बनाएँ।

i) .... ii) ....

iii) .... iv) ....

2 वे कौन से कारक थे जिनके कारण सामंतवाद का विघटन और पूंजीवाद का जन्म हुआ?

....

....

....

....

3 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) पूंजीवाद के अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होता है।

ii) पूंजीवाद के अंतर्गत श्रम एक वस्तु हो जाता है।

iii) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन क्रियाओं का निदेशन लोगों की आवश्यकताओं के द्वारा नहीं बल्कि निजी लाभ के द्वारा होता है।

iv) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के आकार और स्वरूप का निधारण कीमत प्रक्रिया द्वारा नहीं बल्कि राज्य के आयोजन द्वारा होता है।

v) विकसित देशों में साझा फर्म प्रतिनिधि उत्पादन इकाई होती है।

vi) आधुनिक निगम में स्वामित्व प्रबंध कार्य से पृथक होता है।

3.5 समाजवाद (Socialism)

जैसा कि आप जानते हैं कि समाजवाद की व्याख्या उस आर्थिक प्रणाली के रूप में की जाती है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर संयुक्त स्वामित्व होता है। आज विश्व के प्रमुख समाजवादी देश हैं सोवियत संघ, चीन, हंगरी और चैकोस्लोवाकिया जैसे पूर्वी यूरोप के देश। संयुक्त स्वामित्व के चलते जो समाजवाद की मुख्य विशेषता है, सामाजिक लाभ (social gain) को बढ़ाने में सहायता मिलती है और कुछ थोड़े से व्यक्तियों के व्यक्तिगत लाभ पर रोक लगती है। इस विशेषता के कारण समाजवाद के अंतर्गत सरकारी आयोजन का कार्य क्षेत्र बढ़ जाता है।

3.5.1 समाजवाद का निर्माण

पूंजीवाद से समाजवाद में परिवर्तन सामंतवाद से पूंजीवाद में परिवर्तन की भांति नहीं हुआ। अनुभविक प्रमाणों से पता चलता है कि सामंती संबंधों (feudal relation) के पूर्णतः नष्ट होने के पूर्व ही उत्पादन के पूंजीवादी संबंधों का विकास होने लगा था। परंतु समाजवादी उत्पादन संबंधों की स्थापना तो पूंजीवादी उत्पादन संबंधों के नष्ट हो जाने के बाद ही की जा सकती है। समाजवाद का विकास अपने आप ही नहीं हो सकता, इसे तो करना होता है। समाजवाद का आरंभ समाजवादी क्रांति से होता है जिसके द्वारा राजनीतिक शक्ति को कुछ थोड़े से लोगों के हाथों से छीन कर समाज को दे दी जाती है। इस क्रांति के होने के बाद ही आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी संबंधों को स्थापित किया जा सकता है।

मार्क्स और ऐंजिल्स ने, जिन्होंने ऐतिहासिक भौतिकवाद (historical materialism) के सिद्धांत (जो समाज के विकास को आनुक्रमिक रूप में मानता है) का प्रतिपादन किया था, यह आशा व्यक्त की थी कि समाजवाद पहले प्रौढ़ (mature) पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में ही आएगा परंतु वास्तव में ऐसा नहीं हो पाया। कुछ पिछड़ी पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं का परिवर्तन समाजवादी अर्थव्यवस्था के रूप में हो गया। आज सबसे बड़े समाजवादी देश हैं सोवियत संघ और चीन। इन दोनों ही देशों में जब समाजवादी क्रांति हुई तब ये पूंजीवादी विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में

ही थे। समाजवाद के निर्माण की दृष्टि से यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है। ऐसी अर्थव्यवस्था में समाजवादी निर्माण की समस्याओं को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

1 **समाजवादी शक्ति के समेकन के लिए कमान-क्षेत्र (Commanding heights) पर नियंत्रण** : चूंकि समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर निम्न होता है, अतः ऐसी अर्थव्यवस्था में आधुनिक विनिर्माण (manufacturing) क्षेत्रक तथा आधारिक संरचना (infrastructure) अत्यंत अविकसित होते हैं। फिर भी अर्थव्यवस्था को और अधिक विकसित करने में ये बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार उद्योग, परिवहन और वित्त जैसे क्षेत्रकों को अर्थव्यवस्था की बागडोर या कमान क्षेत्र (commanding heights in economy) कहा जाता है। समाजवादी क्रांति को मजबूत बनाने तथा तेजी से आर्थिक परिवर्तन का आधार तैयार करने के लिए इन देशों के नेता इन कमान क्षेत्रों को शीघ्रातिशीघ्र समाजीकरण करने का प्रयास करते हैं।

2 **समाजवादी संचयन और प्रारंभिक समाजवादी संचयन** : जब कोई पिछड़ी हुई पूंजीवादी अर्थव्यवस्था समाजवादी अर्थव्यवस्था बन जाती है, तब इसके विकास के लिए अर्थव्यवस्था में से ही संसाधनों का संचय करना होता है। इन संसाधनों का सृजन समाजवादी संचयन (socialist accumulation) द्वारा किया जा सकता है या प्रारंभिक समाजवादी संचयन (primitive socialist accumulation) द्वारा। संचयन की इन दो प्रणालियों के बीच अंतर के संबंध में विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि कोई समाजवादी अर्थव्यवस्था क्रांति के तुरंत ही बाद उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण (socialisation) नहीं कर देती। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि कोई न कोई गैर-समाजवादी क्षेत्र (non-socialist sector) बना ही रहता है, विशेषतः व्यापार और कृषि के क्षेत्र में।

समाजवादी संचयन से अभिप्राय होता है समाजवादी क्षेत्र के अंदर से ही संसाधनों का संचयन ताकि इस क्षेत्र का और विस्तार किया जा सके। इसके विपरीत प्रारंभिक समाजवादी संचयन का अर्थ होता है अर्थव्यवस्था के गैर-समाजवादी क्षेत्र में संचयन जिससे समाजवादी क्षेत्र का और विस्तार किया जा सके। समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं के पिछड़े होने के कारण इनके विकास के लिए आवश्यक धन जुटाना आवश्यक होता है और इस कार्य में समाजवादी संचयन की तुलना में गैर-समाजवादी संचयन का अधिक महत्व हो जाता है।

3.5.2 समाजवाद की विशेषताएँ

आप जानते हैं कि इस समय विश्व के अनेक देश समाजवादी है। कहा जा सकता है कि विश्व की लगभग एक तिहाई जनता समाजवादी देशों में रहती है। इनकी विशेषताओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने पर हमें ज्ञात होता है कि इनके बीच बहुत अंतर भी है, फिर भी उनकी आधारिक संस्थान (institutions) एक जैसी ही हैं। समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं :

1 **उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व** : किसी भी समाजवादी अर्थव्यवस्था का मूल आधार होता है उत्पादन के साधनों का सामूहिक स्वामित्व। परंतु इस प्रकार के स्वामित्व से यह अभिप्राय नहीं होता कि सभी साधनों पर संयुक्त स्वामित्व है। इसका अर्थ यह होता है कि पहले महत्वपूर्ण संसाधनों को राज्य के नियंत्रणाधीन लिया जाता है। लगभग सभी समाजवादी देशों में भूमि के छोटे-छोटे टुकड़ों पर निजी स्वामित्व के अधीन कृषि कार्य करने दिया जाता है। राज्य की ओर से यह निर्धारित कर दिया जाता है कि किसी परिवार के निजी स्वामित्व के अधीन भूमि का अधिकतम आकार क्या होगा फिर भी सरकार यह अधिकार अपने पास रखती है कि वह समय के साथ-साथ इस प्रकार के निजी स्वामित्व के अधिकार क्षेत्र को घटा-बढ़ा सके। परंतु इस संबंध में यह स्मरणीय है कि समाजवाद के अंतर्गत इस प्रकार के निजी स्वामित्व को कुछ हद तक चलने तो दिया जाता है लेकिन इस प्रकार के संसाधनों के उपयोग के संबंध में जो नियंत्रण लगे होते हैं वे पूंजीवाद की तुलना में बहुत अधिक होते हैं। उदाहरणार्थ, पूंजीवाद के अंतर्गत कोई व्यक्ति मज़दूर रखकर उससे अपने खेत पर काम करा सकता है। लेकिन समाजवादी अर्थव्यवस्था में ऐसा करने पर निषेध होता है, जिसके फलस्वरूप निजी स्वामित्व के अधीन भूमि पर केवल उस परिवार का सदस्य ही काम कर सकता है। इसका कारण यह है कि समाजवादी अर्थव्यवस्थाएँ ऐसे अवसर को ही समाप्त कर देती है जिससे एक व्यक्ति किसी दूसरे का शोषण कर सके।

2 **अविरोधी प्रणाली-वर्ग-संघर्ष का अभाव** : समाजवादी प्रणाली को अविरोधी प्रणाली (non-antagonistic system) कहा जा सकता है। यह ऐसी प्रणाली है जिसके अंतर्गत समाज के विभिन्न वर्गों के सदस्यों के बीच कोई संघर्ष नहीं होता। आप जानते हैं कि दासप्रथा,

सामतवाद और पूंजीवाद के अंतर्गत सभी संसाधन कुछ लोगों के स्वामित्व-आधीन होते हैं तथा समाज के शेष व्यक्तियों का इन पर कोई अधिकार नहीं होता। इस प्रकार इन प्रणालियों की विशेषता यह है कि इनमें दो वर्ग के व्यक्ति होते हैं : i) वह वर्ग जो संसाधनों का स्वामी होता है तथा ii) वह वर्ग जो संसाधनों का स्वामी नहीं होता। इसलिए इन प्रणालियों में इन दो वर्गों के बीच अपने-अपने हितों के लिए सतत् संघर्ष होता रहा है। लेकिन समाजवाद के अंतर्गत कारखानों, रेलों, खानों आदि महत्वपूर्ण संसाधनों पर सामूहिक स्वामित्व (collective ownership) होता है। इसीलिए समाजवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व के आधार पर लोगों को विभिन्न वर्गों के बीच बांटा नहीं जा सकता। यही कारण है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था वर्ग संघर्ष से मुक्त होती हैं।

3 **आय का न्यायोचित वितरण** : किसी भी व्यक्ति के लिए आय के मुख्यतः दो स्रोत होते हैं। i) भूमि और पूंजी जैसे संसाधनों का स्वामित्व जिससे लगान, लाभ और ब्याज के रूप में आय मिलती है, और ii) बाज़ार में श्रम सेवाओं का विक्रय जिससे मज़दूरी के रूप में आय प्राप्त होती है। समाजवाद के अंतर्गत निजी आय के रूप में केवल मजदूरी-आय (wage income) ही मिलती है जबकि पूंजीवाद के अंतर्गत इन दोनों ही प्रकार की आय होती है। समाजवाद के अंतर्गत वनों जैसे प्राकृतिक संसाधनों पर सामूहिक स्वामित्व होता है, इसलिए इनसे होने वाली आय का वितरण सभी लोगों के बीच होता है। ऐसी आय को सामाजिक लाभ (social dividend) कहा जाता है। इसका वितरण कुल उत्पादन में व्यक्तियों के योगदान के आधार पर किया जा सकता है। लेकिन इस संबंध में कुछ अन्य कारकों के संबंध में भी ध्यान दिया जा सकता है जैसे कि किसी परिवार में व्यक्तियों की संख्या या आश्रितों की संख्या (जैसे बच्चे या वृद्ध व्यक्ति) इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजवादी अर्थव्यवस्था में आय वितरण असमानता मजदूरी आय के कारण हो सकती है जबकि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आय वितरण के कारणों में मजदूरी आय के साथ लगान, लाभ तथा ब्याज आय भी जुड़ सकती है। अनेक देशों के अनुभव से पता चलता है कि आय के वितरण की असमानता मजदूरी-आय के रूप में उतनी नहीं है जितनी कि वह लगान, लाभ और ब्याज आय के रूप में है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आय के न्यायोचित वितरण की दृष्टि से समाजवादी अर्थव्यवस्था किसी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना में अधिक सहायक सिद्ध होती है।

4 **योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned economy) और बाज़ार की सीमित भूमिका** : समाजवादी अर्थव्यवस्था में प्रमुख संसाधन राज्य के स्वामित्व में होते हैं इसलिए उनके उपयोग के संबंध में राज्य को ही निर्णय करना होता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के मुकाबले में समाजवादी अर्थव्यवस्था अधिक योजनाबद्ध होती है। आर्थिक मामलों के संबंध में मुख्य निर्णय एक निकाय करती है जिसे प्रायः केंद्रीय योजना बोर्ड (Central Planning Board) के नाम से जाना जाता है। इसलिए पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की तुलना में समाजवादी अर्थव्यवस्था में निर्णयों के समन्वयक के रूप में बाज़ार का बहुत ही कम महत्व होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था में योजना की भूमिका के संबंध में आप अगले भाग में और पढ़ेंगे।

5 **उपभोग और व्यवसाय के संबंध में चयन की स्वतंत्रता** : किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था में प्रमुख निर्णय तो देश के नेताओं द्वारा लिए जाते हैं फिर भी उपभोग और पेशे के चुनाव के संबंध में व्यक्तियों को स्वतंत्रता प्राप्त होती है। कोई भी व्यक्ति अपनी पसंद की वस्तुओं का उपभोग कर सकता है। फिर भी इस संबंध में शर्त होती है उस व्यक्ति की अपनी आय तथा अर्थव्यवस्था के अंतर्गत वस्तुओं का उपलब्ध होना। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि उपलब्ध वस्तुओं और सेवाओं के दायरे में रहते हुए व्यक्ति को पूरी छूट होती है कि वह अपनी मन पसंद की वस्तु का उपभोग कर सके। वस्तुओं के वितरण के लिए राशन-व्यवस्था समाजवाद की आवश्यक विशेषता नहीं होती। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को यह भी स्वतंत्रता होती है कि वह अपना मन पसंद कार्य कर सके।

समाजवादी अर्थव्यवस्था की ये प्रमुख विशेषताएँ हैं। परंतु इस संबंध में यह स्मरणीय है कि विश्व के सभी समाजवादी देशों में ये समान रूप में विद्यमान नहीं है।

3.5.3 समाजवादी अर्थव्यवस्था में आयोजन की भूमिका

जैसा कि पिछले भाग में हमने देखा है, आयोजन (planning) किसी भी समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता होती है। सामान्य रूप में योजना से अभिप्राय यह होता है कि समन्वित ढंग से आर्थिक निर्णयों को लेने का कार्य केंद्रीय योजना बोर्ड करता है। इस प्रकार समाजवादी अर्थव्यवस्था का कार्यचालन पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से भिन्न होता है जिसमें निर्णय लेने के संबंध में व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में या तो केंद्रीकृत

आयोजन होता है या विकेंद्रीकृत आयोजन (decentralised planning) किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था के निम्नलिखित तीन स्तरों पर लिए निर्णयों के बीच के अंतर को समझने के बाद योजना की इन दो प्रणालियों के बीच के अंतर को समझना सरल हो जाएगा।

1 **समष्टि स्तर पर निर्णय (Decision at the macro level) :** समष्टि स्तर के निर्णय यह निर्धारित करते हैं कि आर्थिक विकास किन क्षेत्रों में किया जाना है। उदाहरणार्थ, इनका संबंध राष्ट्रीय उत्पादन की संवृद्धि दर, उपभोग और निवेश के बीच इसके वितरण और निवेश के क्षेत्रों के बीच वितरण के साथ होता है।

2 **उद्यम स्तर पर निर्णय :** उदाहरणार्थ, ये निर्णय यह निर्धारित करते हैं कि कोई उद्यम (enterprise) किन वस्तुओं का तथा कितनी मात्रा में उत्पादन करेगा। किन उद्यमों से आगतों (inputs) को लेगा तथा किन उद्यमों को वह अपने उत्पादों को देगा।

3 **व्यक्ति पर निर्णय :** इस प्रकार के निर्णयों के दृष्टांत है परिवार की आय के अनुसार परिवार का उपभोग और व्यवसाय का चुनाव। सभी समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में समष्टि स्तर पर निर्णय केंद्रीय योजना बोर्ड लेता है तथा व्यक्ति स्तर के निर्णय को व्यक्तियों के ऊपर छोड़ दिया जाता है। योजना केंद्रीकृत है या विकेंद्रीकृत, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उद्यम के स्तर पर निर्णय लेने का कार्य कौन करता है। यदि केंद्रीय योजना बोर्ड ये निर्णय लेता है तब योजना को केंद्रीकृत माना जाता है। इसके विपरीत उद्यमों को यदि इस बात की छूट दी जाती है कि वह उद्यम स्तर पर निर्णय लें तब उसे विकेंद्रीकृत योजना कहा जाता है। सामान्यतः जब किसी प्रारंभिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में समाजवादी परिवर्तन लाया जाता है तब केंद्रीकृत योजना प्रणाली का आश्रय लिया जाता है। आशा की जाती है कि समय बीतने और समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ अर्थव्यवस्था में और अधिक विकेंद्रीकरण होगा।

आर्थिक आयोजन (economic planning) केंद्रीकृत हो या विकेंद्रीकृत, परंतु इसका मुख्य कार्य होता है अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्याओं का समाधान। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि पूंजीवाद के अंतर्गत कीमत तंत्र के ही समान समाजवाद के अंतर्गत योजना का उपयोग यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि किन वस्तुओं का उत्पादन किया जाए, किस प्रकार किया जाए और किनके लिए किया जाए। योजना आयोग, जिसके जिम्मे यह कार्य होता है, एक ओर तो संसाधनों (भौतिक तथा मानवीय संसाधनों) की कुल प्राप्यता का अंदाजा लगाता है और दूसरी ओर वह यह निर्धारित करने का प्रयास करता है कि अर्थव्यवस्था में कुल कितनी विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं की आवश्यकता होगी। चूँकि अर्थव्यवस्था योजनाबद्ध होती है, अतः इन आवश्यकताओं का आधार प्राथमिकताओं का एक सेट होता है। जिसका निर्धारण देश का राजनीतिक नेतृत्व करता है। इन दोनों के संबंध में अनुमान जब लगा लिया जाता है तब आवश्यकताओं और संसाधनों की प्राप्यता के बीच संतुलन लाने का प्रयास किया जाता है। यह संतुलन सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखकर लाया जाता है, निजी कल्याण को नहीं, जैसा कि पूंजीवाद के अंतर्गत होता है। परंतु निर्णय लेने के संबंध में समन्वय कार्य को इतने बड़े पैमाने पर करना होता है कि किसी भी समय बिंदु पर लाया गया संतुलन पूर्ण नहीं हो पाता। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि विभिन्न वस्तुओं की मांग और पूर्ति के बीच अंतर बना रहता है। आयोजन की तकनीकों को और उन्नत बनाकर इन अंतरों को कम किया जा सकता है।

बोध प्रश्न ग

1 चार प्रमुख समाजवादी देशों की सूची बनाएँ।

i) .... ii) ....

iii) .... iv) ....

2 समाजवाद की प्रमुख विशेषताएँ बताएँ।

....

....

....

....

3 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत?

i) पूंजीवाद के पूर्णतः पतन के पूर्व ही समाजवाद का विकास होने लगता है।

ii) सोवियत संघ एक समाजवादी देश है।

iii) समाजवाद के अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है।

iv) समाजवादी अर्थव्यवस्था में वर्ग-संघर्ष का अभाव होता है।

v) पूंजीवाद की अपेक्षा समाजवाद के अंतर्गत आय का वितरण बहुत अधिक न्यायोचित होता है।

vi) समाजवाद के अंतर्गत बाज़ार की भूमिका प्रमुख होती है।

vii) समाजवाद के अंतर्गत उपभोग संबंधी निर्णय को व्यक्तियों के ऊपर ही छोड़ दिया जाता है।

viii) केंद्रीकृत आयोजन प्रणाली के अंतर्गत उद्यम स्तर पर निर्णय लेने का कार्य स्वयं उद्यम ही करते हैं।

3.6 मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy)

आर्थिक प्रणालियों के संबंध में विवेचन करते समय मिश्रित अर्थव्यवस्था की संकल्पना का उल्लेख अक्सर ही किया जाता है। फिर भी इस शब्द का सही-सही अर्थ बहुतों को स्पष्ट नहीं है। कुछ लोगों का कथन है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था वह प्रणाली है जिसके अंतर्गत पूंजीवाद तथा समाजवाद इन दोनों के ही तत्व साथ-साथ होते हैं। बाज़ार, उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व और उत्पादन के बहुत बड़े भाग का लाभ के प्रयोजन से निजी क्षेत्र में होना आदि ये पूंजीवाद की मुख्य विशेषताएँ मिश्रित अर्थव्यवस्था में विद्यमान रहती हैं। इनके साथ ही साथ सार्वजनिक क्षेत्र भी कार्यरत रहता है। और कुछ सीमा तक आर्थिक आयोजन की प्रणाली तथा वस्तुओं मुद्रा और राजकोषीय संबंधी विभिन्न प्रकार के नियंत्रणों के माध्यम से राज्य आर्थिक क्रियाओं को नियंत्रित करने का प्रयास कर सकता है। समाजवाद के अंतर्गत योजना और नियंत्रण युक्तियों को आमतौर पर काम में लाया जाता है। इसलिए कुछ लोगों का ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत समाजवाद और पूंजीवाद की कुछ विशेषताओं का मेल करके एक ऐसी आर्थिक प्रणाली का निर्माण किया जाता है जो अति उत्तम होती है। परंतु यह दृष्टिकोण सही नहीं है। वास्तव में मिश्रित अर्थव्यवस्था तो पूंजीवाद का ही एक रूप है जिसके अंतर्गत सार्वजनिक और निजी ये दोनों ही क्षेत्र साथ-साथ विद्यमान होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति और कुछ योजना तकनीकों को अपनाने मात्र से ही मिश्रित अर्थव्यवस्था आंशिक रूप में भी समाजवाद की श्रेणी में नहीं आ जाती। सच तो यह है कि किसी मूलतः पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में जैसे ही आर्थिक आयोजन और सार्वजनिक क्षेत्र का प्रवेश किया जाता है, वैसे ही इन दोनों ही के समाजवादी लक्षण लोप हो जाते हैं। फिर भी इस अर्थव्यवस्था का स्वरूप अपने पहले काल के पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के स्वरूप से भिन्न हो ही जाता है।

3.6.1 मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ

मिश्रित अर्थव्यवस्था में शुद्ध पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की अनेक विशेषताएँ होती हैं। ऐसा इसलिए कि मिश्रित अर्थव्यवस्था का निर्माण करते समय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को पूर्णतः नष्ट करने का प्रयास नहीं किया जाता। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की अनिवार्य संस्थाओं को कायम रखते हुए सरकार कुछ नियामक उपायों (regulatory devices) द्वारा केवल उनके कार्यों को नियंत्रित करने का प्रयास करती है। इसीलिए पूंजीवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था के बीच बहुत कुछ समरूपता होती है। इस विवेचन के बाद मिश्रित अर्थव्यवस्था की विशेषताओं को आसानी से जाना जा सकता है जो यों हैं :

1 **उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और लाभ-निर्देशित उत्पादन :** मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत संपत्ति पर अधिकार की गारंटी होती है। इसीलिए लोगों को उत्पादन के साधनों को अपने अधीन रखने की छूट होती है। वे भूमि, औज़ारों, मशीनों, कारखानों, भवनों आदि के मालिक होते हैं। सामान्यतः कृषि भूमि व्यक्तियों के स्वामित्व में होती है। इनमें से कुछ तो कृषक होते हैं और कुछ जमींदार। कृषक उत्पादन कार्य अपने परिवार के उपभोग के लिए करते हैं या बाज़ार के लिए या प्रायः इन दोनों ही के प्रयोजनों से। जमींदार लोग मजदूरों को मजदूरी देकर अपने खेतों पर काम कराते हैं या इन खेतों को काश्तकारों को देकर उनसे लगान वसूल करते हैं। उद्योग क्षेत्र में अधिकतर उत्पादन इकाइयाँ निजी स्वामित्व में होती हैं। लघु और कुटीर उद्योग (small and cottage

industries) तो पूर्णतः निजी स्वामित्व में होते हैं। जहां तक कुछ मूल और भारी उद्योगों (basic and heavy industry) का संबंध है जिन्हें अनेक कारणों से निजी क्षेत्रक में स्थापित नहीं किया जा सकता, उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में विकसित किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकतर मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र के पूरक का कार्य करता है। किसी भी मिश्रित अर्थव्यवस्था के सकल उत्पादन (gross output) का 70 से 90% प्रायः निजी क्षेत्र द्वारा ही उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार के उत्पादन का बहुत बड़ा अंश बाज़ार में विक्रय के लिए होता है। निजी उत्पादक प्रायः अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है अतः उसके कार्य आमतौर पर लाभ कमाने के उद्देश्य से ही होते हैं। यही कारण है कि कोई निजी उत्पादक यदि यह समझता है कि समाज के लिए किसी अति आवश्यक वस्तु के उत्पादक से उसका लाभ अधिकतम नहीं होगा तब वह उसका उत्पादन नहीं करता। इसके विपरीत वह उन वस्तुओं के उत्पादन पर अपना ध्यान लगाता है जिनके लिए बाज़ार में पर्याप्त मात्रा में मांग उपलब्ध है, भले ही ये वस्तुएँ मानव जीवन के लिए बहुत ही कम उपयोगी हों। इन वस्तुओं के उत्पादन पर अपने संसाधनों का बंटवारा करते समय उसका ध्यान लाभ को अधिकतम करने की ही दिशा में होता है।

2 **बाज़ार प्रक्रिया की निर्णायक भूमिका** : मिश्रित अर्थव्यवस्था में बाज़ार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान होता है। ऐसी अर्थव्यवस्था में बाज़ार केवल उपभोक्ता वस्तुओं, कच्चे माल और उत्पादक वस्तुओं के ही लिए नहीं बल्कि श्रम, पूंजी और भूमि जैसे उत्पादन के कारकों के लिए भी होता है। इन सभी वस्तुओं और कारकों की कीमतें होती हैं जिनका निर्धारण प्रायः मांग और पूर्ति की कीमतों की शक्तियों के निर्बाध क्रियाकलाप (free play) द्वारा होता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत कभी-कभी दुर्लभता की स्थितियों में सरकार अनिवार्य वस्तुओं को नियंत्रण में रखने का प्रयास करती है ताकि समाज के सभी व्यक्तियों को ये वस्तुएँ उचित कीमत पर उपलब्ध हो सकें। विभिन्न वस्तुओं और उत्पादन के साधनों की कीमतों तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों के आधार पर ही प्रायः उत्पादक यह निर्णय लेते हैं कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाए, किस प्रकार किया जाए और किसके लिए किया जाए। पूंजीवाद संबंधी अनुच्छेद में इस संबंध में आप पढ़ चुके हैं। पूंजीवाद और मिश्रित अर्थव्यवस्था में बाज़ार की भूमिकाओं के बीच एक मात्र अंतर यही होता है कि पूंजीवाद के अंतर्गत तो बाजार प्रक्रिया पूर्णतः निर्बाध (free) होती है परंतु मिश्रित अर्थव्यवस्था में इसे कुछ राजकीय नियंत्रणों (state controls) के अधीन कार्य करना पडता है जो कभी-कभी अत्यंत कठोर भी हो सकते हैं।

3 **सार्वजनिक क्षेत्र** : मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के साथ-साथ सार्वजनिक क्षेत्र का सह-अस्तित्व होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद के काल में विशेषतः अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक क्षेत्रक के निर्माण की आवश्यकता महसूस की गई। इस युद्ध के बाद जब ये देश स्वतंत्र हुए, तब उन्होंने यह महसूस किया कि उनकी अर्थव्यवस्था ऐसी हालत में नहीं है कि उसके सहारे आर्थिक विकास किया जा सके। इन देशों में परिवहन एवं ऊर्जा क्षेत्र अल्पविकसित थे तथा मूल और पूंजीगत उपस्कर उद्योग (basic and capital equipment industries) नहीं के बराबर थे। निजी क्षेत्र के पास तो इतनी क्षमता थी ही नहीं कि वह इनका विकास कर सके। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में राज्य की ओर से हस्तक्षेप आवश्यक समझा गया, जिससे कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया की शुरुआत की जा सके। इस प्रकार मूल रूप में इन पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक क्षेत्र का सृजन किसी सैद्धांतिक आधार पर नहीं बल्कि ऐतिहासिक आवश्यकताओं के कारण हुआ और इस तरह इन अर्थव्यवस्थाओं ने मिश्रित अर्थव्यवस्था का रूप धारण कर लिया।

4 **आर्थिक आयोजन** : आर्थिक आयोजन को सबसे पहले समाजवादी देशों में अपनाया गया। परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि आर्थिक आयोजन को अपनाने मात्र से ही किसी अर्थव्यवस्था का रूपांतरण समाजवादी अर्थव्यवस्था में हो जाता है। अनेक अल्पविकसित पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओं में संवृद्धि की दर (rate of growth) को बढ़ाने तथा कुछ अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आर्थिक आयोजन का आश्रय लिया जाता है। मूल रूप में किसी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक आयोजन के प्रयोग के फलस्वरूप वह अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था का रूप धारण कर लेती है। मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक आयोजन करते समय आर्थिक प्रोत्साहनों (economic incentives) पर अधिक निर्भर रहा जाता है और निर्देशन (direction) पर कम परंतु निर्देशन की पूर्णतः उपेक्षा भी नहीं की जाती।

3.6.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था के पक्ष में तर्क

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं ने अनुभव किया कि वे उस पथ पर नहीं चल सकते जिसका

अनुसरण आज के विकसित देश कर रहे हैं। उन्हें यह आभास हो गया कि बाज़ार विनियमित प्रणाली (market regulated systems) से उनके उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो पाती। परंतु आर्थिक आयोजन को अपनाने से वे बाज़ार तंत्र की सीमाओं को पार कर सकते हैं।

बाजार विनियमित प्रणाली के साथ निम्नलिखित चार प्रमुख कठिनाइयाँ हैं:

1 बाजार प्रक्रिया में न्याय संगति (equity) की उपेक्षा कर देने की प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि पूंजीवादी देशों में उत्पादन के साधनों के मालिक अत्यंत धनी होते हैं परंतु श्रमिक गरीब होते हैं।

2 बाज़ार निर्णयों से संसाधनों का बंटवारा इस प्रकार नहीं हो पाता कि कम आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के लिए संसाधनों को उपलब्ध कराने से पूर्व अति आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर लिया जाए।

3 बाजार का निष्पादन इस प्रकार नहीं हो पाता कि समस्त मांग (aggregate demand) सदा समस्त पूर्ति (aggregate supply) के बराबर हो। इन दोनों के बीच संतुलन के अभाव में निर्णय लेने के लिए कीमत प्रक्रिया को विश्वसनीय मापदंड नहीं बन सकती।

4 यदि बाज़ार की कार्यवाहियों के फलस्वरूप समस्त मांग और समस्त पूर्ति के बीच संतुलन स्थापित हो जाता है तो इस प्रणाली के अंतर्गत ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो अर्थव्यवस्था को पूर्ण रोज़गार की स्थिति में बनाए रखे।

वस्तुओं और मुद्रा पर नियंत्रण तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कार्यों के रूप में आर्थिक आयोजन द्वारा हस्तक्षेप करके राज्य बाज़ार प्रणाली का इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि अर्थव्यवस्था का कार्य सही ढंग से हो सके। इसके अतिरिक्त आर्थिक आयोजन का उपयोग अर्थव्यवस्था को निर्देशित करने के लिए भी किया जा सकता है। विकास की प्रक्रिया के दौरान यदि गरीबी, बेरोज़गारी तथा आय असमानता की समस्याओं से निपटने की आवश्यकता पड़ती है तो समाज के आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों की भलाई के लिए सरकार बेरोज़गारी तथा गरीबी दूर करने और न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति संबंधी विशेष कार्यक्रमों को भी चला सकती है।

3.6.3 मिश्रित अर्थव्यवस्था की सीमाएँ

मिश्रित अर्थव्यवस्था ने चाहे निर्बाध बाज़ार अर्थव्यवस्था (free market economy) की कुछ समस्याओं का समाधान किया है परंतु यह भी सच है कि इस अर्थव्यवस्था में अनेक दोष भी हैं। इनमें से कुछ प्रमुख दोष इस प्रकार हैं:

1 **मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं का अस्थिर ढांचा** : सभी मिश्रित अर्थव्यवस्थाओं में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र ही साथ-साथ चलते हैं और वे यदाकदा ही एकसा कार्यभाग अदा करते हैं। कभी-कभी एक ही देश में राजनीतिक शक्तियों के पारस्परिक संबंधों में परिवर्तन के साथ-साथ उनके कार्यों में भी परिवर्तन आ जाता है। उदाहरणार्थ, भारतवर्ष में आर्थिक आयोजन की प्रारंभिक अवस्था में सार्वजनिक क्षेत्रक को महत्वपूर्ण कार्य सौंपे गए थे। ऐसा शायद इसलिए कि उस समय पूंजीपति वर्ग आज जैसा सशक्त नहीं था। तब से अब के बीच इन संबंधों में परिवर्तन आ गया है। अब पूंजीपति वर्ग, व्यापारी तथा बड़े कृषक काफी सशक्त हो गए हैं और वे सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को समाप्त करने के प्रयास में लगे हुए हैं। इसके अतिरिक्त उनकी ओर से सतत् रूप से पड़ने वाले दबाव के अधीन नियामक प्रणाली (regulatory system) भी नष्ट होती जा रही है। इससे स्पष्ट रूप से यह पता चलता है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत कम स्थिर प्रणाली है और राजनीतिक दबाव के कारण इसके स्वरूप में परिवर्तन आ जाता है।

2 **आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण** : अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को तेज करने के उद्देश्य से अहस्तक्षेप नीति वाली अर्थव्यवस्थाओं का रूप दिया जा रहा है। लेकिन इस संवृद्धि प्रक्रिया के फलस्वरूप बड़े-बड़े निगमों की स्थापना होती है और आर्थिक शक्ति संकेंद्रण होता है। परिवहन सुविधाओं, ऊर्जा क्षेत्र तथा प्रबंध और तकनॉलाजी में प्रशिक्षण देने वाले व्यावसायिक संस्थाओं (professional institutes) के विकास और सार्वजनिक क्षेत्र में पूंजीगत उपस्कर तथा मूल उद्योगों की स्थापना से संगठित निजी कंपनी क्षेत्र को बहुत बड़े पैमाने पर कार्य करने की प्रेरणा मिलती है। निजी क्षेत्र में पूंजीवादी विकास का नियम चलता है और कुछ समय के दौरान बड़ी फर्में बाज़ार से छोटी फर्मों को समाप्त कर देती हैं। बड़ी फर्मों के पास बहुत अधिक एकाधिकारी शक्ति होती है और वे छोटी फर्मों को अपनी शर्तें मानने को बाध्य कर देती हैं। उपभोक्ताओं को भी सदा घाटा ही उठाना पड़ता है। अधिकाधिक आर्थिक शक्ति प्राप्त करने के प्रयास में बड़ी कंपनियों को केवल बड़े पैमाने की किफायतें (economies of large scale) से ही सहायता नहीं मिलती

बल्कि छोटे उत्पादकों की तुलना में उनकी स्वयं की पूजा इकट्ठा करने की क्षमता भी सहायक होती है। कभी-कभी सरकार की लाइसेंस नीति भी उनके विस्तार कार्यों में सहायक सिद्ध होती है। भारत के दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता है कि एकाधिकारों (monopolies) के और बढ़ने देने पर सरकार रोक तो लगाना चाहती है लेकिन मिश्रित अर्थव्यवस्था की स्वनिर्मित प्रणाली (in-built systems) के कारण आर्थिक शक्ति का और भी संकेंद्रण होता जा रहा है।

3 **नौकरशाही वर्ग, अकुशलता और भ्रष्टाचार** : सार्वजनिक उद्यमों में कार्यकुशलता का स्तर प्रायः निम्न होता है और राजकीय क्षेत्र (state sector) के संबंध में भ्रष्टाचार की शिकायत आम बात है। अनेक अल्पविकसित देशों के सार्वजनिक क्षेत्र में विशेषतः प्रबंध स्तर पर कार्यकुशलता के कम होने का यह है कि इस क्षेत्र के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित प्रबंध संवर्ग (managerial cadre) नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में सार्वजनिक क्षेत्रक के प्रबंध का कार्य सामान्य प्रशासकों को सौंपा जाता है हालांकि उनके पास इसके लिए क्षमता नहीं भी हो सकती है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में विवेकशील नियंत्रण (discretionary controls) के प्रयोग के फलस्वरूप भ्रष्टाचार की गुंजाइश हो जाती है। इसके कारण निर्णय लेने का कार्य दोषपूर्ण हो जाता है और विभिन्न स्तरों पर निर्णयों का कार्य निष्पादन नहीं हो पाता। भ्रष्ट अधिकारी अपने अधिकार का दुरुपयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए करते हैं जिससे सार्वजनिक उद्यम की कार्यकुशलता पर बुरा असर पड़ता है।

4 **सामाजिक न्यास वंचन** : मिश्रित अर्थव्यवस्था में आय असमानताओं और गरीबी को कम करने की क्षमता अधिक नहीं होती। ऐसी अर्थव्यवस्था में जब उत्पादन के साधनों पर निजी क्षेत्र का संयोजन हो जाता है तब आर्थिक असमानता और भी बढ़ने लगती है। ऐसे समाज में गरीबों को न्याय नहीं मिल पाता। चूंकि मिश्रित अर्थव्यवस्था में अमीर और गरीब दोनों ही वर्गों के लोग रहते हैं और राज्य की शक्ति अमीरों के हाथ में होती है, अतः आर्थिक शक्ति के संकेंद्रण की प्रवृत्ति को रोकने में सरकार अपने को असमर्थ पाती है।

5 **पश्चगामी सन्निहित प्रवृत्ति (Built-in tendency to slide back)** : कुछ अर्थशास्त्रियों ने ठीक ही कहा है कि मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवाद का ही भिन्न रूप (variant) है। उनकी दलील यह है कि विकास की प्रारंभिक अवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र जब अपना कार्य कर लेता है, तब उसके बने रहने को अनावश्यक समझा जाता है और अर्थव्यवस्था में बाजार प्रधान अर्थव्यवस्था की ओर लौट जाने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगती है। ऐसी स्थिति में आर्थिक आयोजन की भूमिका को क्षति पहुंचती है और आर्थिक क्रियाओं को निजी क्षेत्र में लेने के लिए दबाव पड़ने लगता है।

बोध प्रश्न घ

1 मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ बताएँ।

....

....

....

....

2 मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था से किस रूप में भिन्न होती है?

....

....

....

....

3 मिश्रित अर्थव्यवस्था और समाजवादी अर्थव्यवस्था में क्या भेद है?

....

....

....

....

4 मिश्रित अर्थव्यवस्था की क्या सीमाएँ हैं?

....

....

....

....

5 निम्नलिखित में कौन सही है और कौन गलत?
   i) मिश्रित अर्थव्यवस्था वास्तव में पूंजीवाद का ही भिन्न रूप है।
   ii) मिश्रित अर्थव्यवस्था के अंतर्गत निजी क्षेत्र का अस्तित्व नहीं होता।
   iii) मिश्रित अर्थव्यवस्था में आर्थिक आयोजन की भूमिका निर्णायक होती है।
   iv) बाज़ार प्रक्रिया न्याय संगति (equity) को सुनिश्चित नहीं करती।
   v) बाज़ार तंत्र अर्थव्यवस्था को सदा ही पूर्ण रोज़गार की स्थिति की ओर ले जाता है।
   vi) मिश्रित अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण होता है।

3.7 सारांश

किसी समाज में आर्थिक प्रणाली का रूप क्या है वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके अंतर्गत उत्पादन शक्तियों और प्रमुख उत्पादन संबंधों के बीच संयोजन किस प्रकार का है। इससे अभिप्राय यह है कि किसी समय बिंदु पर किसी समाज की आर्थिक प्रणाली का निर्धारण मुख्य रूप से इस आधार पर होता है कि उत्पादन के साधनों का स्वामी कौन है तथा श्रम शक्ति की पूर्ति कौन करता है। आर्थिक प्रणाली के चुनाव के संबंध में लोगों को पूर्ण स्वतंत्रता नहीं होती। आर्थिक प्रणाली का विकास या उसकी स्थापना आनुक्रमिक रूप में हुई है। यह अनुक्रम इस प्रकार है : 1) आदिम समाज 2) दासप्रथा 3) सामंतवाद 4) पूंजीवाद और 5) समाजवाद।

पूंजीवाद से अभिप्राय उस आर्थिक प्रणाली से है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है तथा उत्पादन कार्य बाज़ार के लिए किए जाते हैं। श्रम शक्ति एक वस्तु का रूप धारण करती है, अतः विनिमय की अन्य किसी भी वस्तु के ही समान उसका भी क्रय-विक्रय किया जा सकता है। पूंजीवाद का आविर्भाव सामंतवाद से हुआ और उसके विकास में जिन कारकों का योगदान रहा वे इस प्रकार है :

(1) व्यापार और वाणिज्य में तेजी से विस्तार (2) उद्योग में घरेलू उत्पादन प्रणाली, और (3) कृषि में बाड़ाबंदी आंदोलन।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (1) उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व, (2) वस्तु उत्पादन (3) श्रम शक्ति का एक वस्तु का रूप धारण करना, (4) कीमत प्रक्रिया की प्रमुख भूमिका, (5) सतत् पूंजी संचयन और आर्थिक संकट और (6) वर्ग-विरोध। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत प्रक्रिया की भूमिका निर्णायक होती है। इससे आशय यह होता है कि उत्पादक, उपभोक्ता एवं साधन-सेवाओं के प्रतिकर्त्ता की हैसियत से लोग अपनी तुष्टि या आय को अधिकतम करने के उद्देश्य से प्रचलित कीमतों के आधार पर आर्थिक निर्णय लेने का प्रयास करते हैं। आज के पूंजीवाद में निगम (कंपनी) प्रतिनिधि इकाई होता है।

समाजवाद उस आर्थिक प्रणाली को कहा जाता है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर संयुक्त स्वामित्व होता है तथा उत्पादन और वितरण क्रियाएँ सरकारी योजना के अनुसार की जाती हैं। समाजवाद का आविर्भाव पूंजीवाद से नहीं होता। समाजवादी क्रांति के सफल हो जाने के बाद इसका निर्माण करना होता है। समाजवादी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (1) उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व, (2) वर्ग-संघर्ष का अभाव, (3) आय का न्यायोचित वितरण, (4) आर्थिक आयोजन और बाज़ार की सीमित भूमिका और (5) उपभोग और व्यवसाय के संबंध में चयन की स्वतंत्रता। आर्थिक आयोजन किसी समाजवादी अर्थव्यवस्था की अनिवार्य विशेषता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था पूंजीवाद का ही रूप भेद (variant) है और उसकी विशेषता यह है कि उसके अंतर्गत सार्वजनिक और निजी ये दोनों ही क्षेत्र साथ-साथ चलते रहते हैं। उसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (1) उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व और लाभ निर्देशित उत्पादन, (2) बाज़ार प्रक्रिया की निर्णायक भूमिका, (3) सार्वजनिक क्षेत्र और (4) आर्थिक आयोजन। मिश्रित अर्थव्यवस्था के निर्माण की आवश्यकता किसी अर्थव्यवस्था के विफल हो जाने के कारण होता है जो कि आर्थिक निर्णयों के लिए पूर्णतया बाज़ार पर आश्रित होती है। बाज़ार तंत्र संबंधी दोषों को प्रायः किसी न किसी रूप में आर्थिक आयोजन का आश्रय लेकर तथा भौतिक एवं मौद्रिक नियंत्रणों की सहायता से दूर किया जाता है। मिश्रित अर्थव्यवस्था के दोष इस प्रकार हैं : (1) ढांचे की अस्थिरता, (2) आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण, (3) नौकरशाही-अकुशलता और भ्रष्टाचार, (4) सामाजिक न्याय वंचन और (5) पश्चगामी सन्निहित प्रकृति।

3.8 शब्दावली

पूंजीवाद (Capitalism) : वह आर्थिक प्रणाली है जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व होता है और उत्पादन बाज़ार के लिए किया जाता है।

वर्ग-संघर्ष (Class Conflict) : दो वर्गों के बीच संघर्ष, जैसे श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच।

आर्थिक आयोजन (Economic Planning) : राज्य द्वारा आर्थिक क्रियाओं के बारे में समन्वित ढंग से निर्णय लेना और उन निर्णयों को कार्यान्वित करना।

आर्थिक प्रणाली (Economic System) : उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के कुछ निश्चित स्वरूपों पर आधारित उत्पादन के संबंधों के साथ उत्पादन की शक्तियों का संयोजन।

सामंतवाद (Feudalism) : वह आर्थिक प्रणाली जिसमें उत्पादन के मुख्य साधन भूमि पर सम्राट, सामंत और अमीर वर्ग का स्वामित्व होता था तथा वास्तविक कृषि कार्य कृषिदासों (serfs) के द्वारा होता था जो भूमिहीन होते थे।

अहस्तक्षेप नीति (Laissez Faire) : सरकार की ओर से बिना किसी प्रकार के नियंत्रण के आर्थिक क्रियाओं को होने देने की नीति।

बाजार तंत्र (Market Mechanism) : वस्तुओं और साधन सेवाओं के क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच की पारस्परिक क्रियाओं की प्रणाली।

मिश्रित अर्थव्यवस्था (Mixed Economy) : वह आर्थिक प्रणाली जिसके अंतर्गत निजी और सार्वजनिक इन दोनों ही क्षेत्र का सह-अस्तित्व होता है।

योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था (Planned Economy) : वह अर्थव्यवस्था जिसमें निर्णायक भूमिका बाज़ार की नहीं बल्कि आर्थिक आयोजन की होती है।

प्रारंभिक समाजवादी संचयन (Primitive Socialist Accumulation) : समाजवादी क्षेत्र को और अधिक विस्तृत करने के लिए अर्थव्यवस्था के गैर-समाजवादी क्षेत्र में संचयन।

आदिम समाज (Primitive Society) : मानव द्वारा विकसित सर्व प्राचीन संगठन जो आज से लगभग 6-7 हजार वर्ष पहले समाप्त हो गया।

निजी क्षेत्र (Private Sector) : वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व होता है और उत्पादन कार्य लाभ के लिए किया जाता है।

उत्पादक का प्रभुत्व (Producer's Sovereignty) : इससे अभिप्राय यह होता है कि विज्ञापन का आश्रय लेकर उत्पादक अपनी किसी भी उत्पादित वस्तु को बेच सकता है।

उत्पादक शक्तियाँ (Productive Forces) : उत्पादन के साधन और श्रम शक्ति अपनी पारस्परिक क्रिया में।

लाभ अभिप्रेरण (Profit Motive) : लाभ अर्जन का उद्देश्य जो निजी क्षेत्र के उत्पादक को उत्पादन कार्य करने को प्रेरित करता है।

सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) : वह क्षेत्र जिसमें उत्पादन के साधनों पर सरकार का स्वामित्व होता है और उत्पादन कार्य अधिकाधिक जनता के हित के लिए किया जाता है।

घरेलू उत्पादन प्रणाली (Putting-Out System) : वह प्रणाली जिसके अंतर्गत व्यापारी पूंजीपति शिल्पकारों को वस्तुओं के निर्माण के लिए कच्चा माल देते थे और ये शिल्पकार पारिश्रमिक के बदले में अपनी सेवाएँ उपलब्ध कराते थे।

उत्पादन संबंध (Relation of Production) : उत्पादन की प्रक्रिया के अंतर्गत लोगों के बीच होने वाला संबंध।

समाजवाद (Socialism) : वह आर्थिक प्रणाली जिसके अंतर्गत उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व होता है और उत्पादन कार्य समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है।

समाजवादी संचयन (Socialist Accumulation) : समाजवादी क्षेत्र के अंतर्गत संसाधनों का संचयन ताकि इस क्षेत्र का और विस्तार किया जा सके।

बेशी मूल्य (Surplus Value) : श्रमिक द्वारा उत्पादित अतिरिक्त मूल्य जो मजदूरों के रूप में उसकी प्राप्ति के बाद भी बचा हुआ अंश होता है और जो पूंजीपति को जाता है।

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क) 4 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही v) सही
vi) सही vii) गलत viii) गलत

ख) 3 i) गलत ii) सही iii) सही iv) गलत v) गलत vi) सही

ग) 3 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) सही
vi) गलत vii) सही viii) गलत

घ) 5 i) सही ii) गलत iii) गलत iv) सही v) गलत vi) सही

3.10 स्वपरख प्रश्न

1 आर्थिक प्रणाली से आप क्या समझते हैं? विभिन्न आर्थिक प्रणालियों के संबंध में उनके आनुक्रमिक क्रम में चर्चा करें।

2 पूंजीवाद की विशेषताएँ बताएँ। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में कीमत प्रक्रिया की क्या भूमिका होती है, स्पष्ट करें।

3 समाजवाद की विशेषताएँ बताएँ। समाजवादी अर्थव्यवस्था में आर्थिक आयोजन की क्या भूमिका होती है, स्पष्ट करें।

4 पूंजीवाद और समाजवाद के बीच क्या अंतर है? आपके मत से इन दोनों आर्थिक प्रणालियों में कौनसी श्रेष्ठ है? कारण बताएँ।

5 मिश्रित अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं? यह पूंजीवाद से किस रूप में भिन्न होता है?

नोट : इन प्रश्नों से इस एकक को भली भांति समझने में आपको मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन अपना उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

सी.एस. बरला : *उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र* (नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस)

नाथूरामका, लक्ष्मी नारायण : *व्यष्टि अर्थशास्त्र* (मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन, 1984)

सैम्युअलसन, पी.ए. : *अर्थशास्त्र* (दिल्ली : केपिटल बुक हाउस, 1982)

वाटसन, डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी.ए. हालमैन : *मूल्य सिद्धांत एवं उसके उपयोग* (चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

खंड

2

उपभोक्ता व्यवहार तथा मांग का सिद्धांत

इकाई 4

सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम तथा समसीमांत उपयोगिता नियम 5

इकाई 5

अनधिमान वक्र विश्लेषण 29

इकाई 6

उपभोक्ता माँग 58

इकाई 7

माँग की लोच 74

खंड 2 उपभोक्ता व्यवहार तथा माँग का सिद्धांत

खंड 1 में आप आर्थिक प्रणाली की संकल्पना, मूल आर्थिक नियमों और विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों के संबंध में पढ़ चुके हैं। इस खंड में सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम तथा समसीमांत उपयोगिता नियम, अनधिमान वक्र, उपभोक्ता माँग के नियम और माँग की लोच के संबंध में चर्चा की गई है।

इकाई 4 में उपयोगिता के अर्थ, कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता के तुलनात्मक विश्लेषण, ह्रास सीमांत उपयोगिता ह्रास के नियम, समसीमांत उपयोगिता के नियम और उपभोक्ता की बचत की संकल्पना का विवेचन किया गया है।

इकाई 5 में अनधिमान वक्र की संकल्पना, बजट कीमत रेखा के अर्थ, कीमत उपभोग वक्र की व्युत्पत्ति कीमत के प्रभाव को आय और प्रभाव के बीच बंटन और अनधिमान वक्र की सहायता से उपभोक्ता की बचत के माप को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 6 में माँग के अर्थ और उसे प्रभावित करने वाले कारकों, माँग के नियम, माँग वक्र में उतार-चढ़ाव की पहचान और कीमत निर्धारण पर सरकारी नीति के संबंध में माँग के नियम के उपयोग के संबंध में बताया गया है।

इकाई 7 में माँग की लोच, माँग की कीमत लोच, माँग की आय लोच और माँग की कीमत प्रति-लोच संकल्पना, लोच के प्रकार, उसकी माप तथा माँग की कीमत लोच के निर्धारकों और महत्व को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 4 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम तथा समसीमांत उपयोगिता नियम

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उपयोगिता
4.3 कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता
4.4 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम
4.5 मुद्रा की सीमांत उपयोगिता
4.6 ह्रासमान सीमांत उपयोगिता और वस्तु की मांग
 4.6.1 माँग अनुसूची की संकल्पना
 4.6.2 माँग वक्र की संकल्पना
4.7 समसीमांत उपयोगिता नियम
4.8 उपभोक्ता अतिरेक
4.9 सारांश
4.10 शब्दावली
4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.12 स्वपरख प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- उपयोगिता की संकल्पना की व्याख्या कर सकें
- कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता के तुलनात्मक विश्लेषण का विवेचन कर सकें
- ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम और उसकी सीमाओं को स्पष्ट कर सकें
- मुद्रा की सीमांत उपयोगिता का विवेचन कर सकें
- ह्रासमान उपयोगिता नियम और किसी वस्तु की माँग की व्याख्या कर सकें
- समसीमान्त उपयोगिता नियम और उसकी सीमाओं का विवेचन कर सकें तथा उपभोक्ता अतिरेक और उसकी सीमाओं को स्पष्ट कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आप आर्थिक प्रणाली की मूलभूत समस्याओं, मूल आर्थिक नियमों और विभिन्न प्रकार की आर्थिक प्रणालियों के संबंध में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में उपभोक्ता के व्यवहार और माँग के सिद्धांत के संबंध में चर्चा की जाएगी। इसमें आर्थिक तर्क और अध्ययन के क्षेत्रों से संबंधित कुछ मूल सिद्धांत प्रस्तुत किए गए हैं। यह बात ध्यान में रखने की है कि विभिन्न वस्तुओं की कीमतों (i) के निर्धारण और (ii) उनमें होने वाले परिवर्तनों का उन वस्तुओं की (i) माँग और (ii) पूर्ति के साथ स्पष्ट रूप से संबंध होता है।

इसके फलस्वरूप इन तीनों (मांग, पूर्ति और कीमतों) के बीच परस्पर क्रिया सदा ही चलती रहती है–और इस प्रक्रिया के दौरान ये तीनों ही एक दूसरे को प्रभावित करती हैं।

अर्थशास्त्रियों की यह जानने में सदा ही दिलचस्पी रही है कि कीमतों का निर्धारण किस प्रकार होता है तथा उनमें परिवर्तन कैसे होता है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर आमतौर पर वे एक छोटे से और सरल प्रश्न के साथ शुरूआत करते हैं कि किसी एक वस्तु की कीमत (i) का निर्धारण और (ii) उसमें परिवर्तन कैसे होता है। और फिर इसी से संबंधित विश्लेषण और अध्ययन की विधि को कीमतों के विस्तृत क्षेत्र पर लागू कर दिया जाता है।

किसी एक वस्तु की कीमत देखने पर हम पाते हैं कि इसके दो पक्ष हैं–(1) उपभोक्ता इसका भुगतान करते हैं और (2) विक्रेताओं को यह मिलती है। इस खंड में प्रथम पक्ष यानि क्रेताओं के व्यवहार के संबंध में गंभीरतापूर्वक विचार किया जाएगा।

इस कार्य के लिए शुरूआत हम किसी ऐसी उपभोग वस्तु के साथ करते हैं जिसे उपभोक्ता खरीदते हैं (जो वस्तु उत्पादन के लिए "आगत" होती है और जो उत्पादकों द्वारा खरीदी जाती है, उसके संबंध में आगे चलकर विचार किया जाएगा। अभी तो "उपभोक्ताओं" और "क्रेताओं" शब्दों का उपयोग एक-दूसरे के लिए किया जाएगा)। इसी प्रकार इस विश्लेषण के लिए क्रेताओं के पक्ष से जिस क्रेता को लिया जाता है वह अत्यंत सामान्य कोटि का होता है अर्थात् वह अत्यंत सामान्य क्रेता है या समान्य रूप में क्रेताओं का प्रतिनिधि है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि "प्रतिनिधि" क्रेता के व्यवहार से संबंधित निष्कर्षों का विस्तार करके उसे समस्त क्रेताओं पर लागू किया जा सके। यह सब करने के बाद अर्थशास्त्री निम्नलिखित प्रकार के कुछ सरल लेकिन संगत प्रश्नों को उठाते हैं।

कोई सामान्य क्रेता किसी वस्तु को क्यों खरीदता है? वह उस वस्तु के बिना ही अपना काम चलाने की बजाय उसकी कीमत देने को क्यों तैयार रहता है? विभिन्न कीमतों पर वह उस वस्तु की कितनी मात्रा खरीदेगा? इन प्रश्नों के उत्तरों को सामूहिक रूप से विचाराधीन वस्तु के सामान्य क्रेता का "मांग व्यवहार" कहा जाता है। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए अर्थशास्त्री उपयोगिता की संकल्पना से सहायता लेते हैं। इस संकल्पना के संबंध में पहले ही आपको कुछ बताया जा चुका है। इस इकाई में इसके बारे में आपको थोड़ा और बताया जाएगा जिससे सामान्य क्रेता के व्यवहार को समझने और उसे उपयोगी और मानकित रूप में प्रस्तुत करने में आपको मदद मिल सके। उदाहरणार्थ, आप देखते हैं कि उपभोक्ता को एक ओर तो अपनी खरीदी हुई वस्तु से कुछ लाभ होते हैं और दूसरी ओर अपने द्वारा दी हुई कीमत के रूप में वह कुछ उपयोगिता खो देता है। अतः आपको यह समझने में देर नहीं लगेगी कि कोई उपभोक्ता किसी वस्तु को तभी तक खरीदेगा जब तक कि कीमत के रूप में उसके द्वारा खोई हुई उपयोगिता उसे मिलने वाली वस्तु की उपयोगिता से कम हो (या अधिक से अधिक उसके बराबर हो)। आप इस निष्कर्ष पर भी पहुँचते हैं कि वस्तु की उपयोगिता यदि कम है, तब क्रेता उसे कम मात्रा में खरीदेगा। उसी प्रकार उसकी कीमत यदि बढ़ जाती है तब भी वह वस्तु कम मात्रा में खरीदी जाएगी। इस प्रकार किसी सामान्य उपभोक्ता के व्यवहार के स्वरूप को यदि आप मानकित रूप देने की स्थिति में हो जाते हैं, तब उस वस्तु के सभी उपभोक्ताओं पर इसे लागू करने का काम सरल हो जाता है। तब आप यह भी बता सकते हैं कि इस वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर समस्त बाज़ार में इसकी मांग में किस प्रकार से परिवर्तन होता है।

फिर भी किसी वस्तु की माँग के संबंध में आप किसी निष्कर्ष पर पहुँच सकें, इसके पूर्व उपयोगिता की संकल्पना से संबंधित कुछ मूलभूत विषयों के संबंध में ही चर्चा करना आवश्यक है।

4.2 उपयोगिता (Utility)

इस संकल्पना के तत्वों के संबंध में आप पहले ही पढ़ चुके हैं। इससे पहले की एक इकाई में आपको बताया जा चुका है कि **किसी वस्तु की उपयोगिता का अर्थ होता है आवश्यकता को पूरा करने की उसकी शक्ति**। फिर भी अर्थशास्त्र में इस कथन का उपयोग वास्तविक रूप में किया जाए, इसके पूर्व इसके संबंध में काफी स्पष्टीकरण और अनुमान की आवश्यकता होती है। इसके बाद आप उपयोगिता की संकल्पना की सही परिभाषा भी दे सकेंगे।

किसी वस्तु की उपयोगिता उस तुष्टि (Satisfaction) का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी प्राप्ति अभी उपभोक्ता को हुई नहीं है। तुष्टि तो प्रत्याशित ही होती है। इसीलिए इसमें अनिश्चितता का तत्व प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है कि किसी वस्तु से जितनी तुष्टि मिलने की आशा की जाती है, वास्तव में उतनी मात्रा में नहीं मिल पाती। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि **तुष्टि और उपयोगिता समानार्थक नहीं हैं। उपयोगिता प्रत्याशित तुष्टि होती है एवं तुष्टि प्राप्त उपयोगिता होती है।** परन्तु इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी वस्तु को खरीदने (या न खरीदने) के संबंध में किसी उपभोक्ता का निर्णय उस वस्तु की **उपयोगिता** पर निर्भर करता है, **तुष्टि** पर नहीं। उपयोगिता (प्रत्याशित तुष्टि) ही उसे इस बात के लिए प्रेरित करती है कि वह उसकी कीमत दे और उसे प्राप्त करे। यह बात सही है कि किसी वस्तु की उपयोगिता के संबंध में उपभोक्ता जो अनुमान लगाता है उसके संबंध में उस पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है, जैसे कि उसके पहले के अनुभव, अन्य क्रेताओं के अनुभव, विक्रेताओं द्वारा अपनाई जाने वाली प्रचार एवं विक्रय संबंधी अन्य विधियाँ, आदि। फिर भी सबसे बड़ी बात यह है कि कोई व्यक्ति किसी वस्तु को खरीदेगा या नहीं इसके संबंध में अंतिम निर्णय इस आधार पर होता है कि उस वस्तु की उपयोगिता के संबंध में वह क्या अनुमान लगाता है। उपभोक्ता की तुष्टि तो उपभोग करने के बाद ही होती है, परन्तु किसी वस्तु का उपभोग करने से पहले तो उसे खरीदना होता है।

किसी वस्तु की उपयोगिता की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह **स्थिर** नहीं होती। यह विभिन्न उपभोक्ताओं के लिए अलग-अलग होती है तथा एक ही उपभोक्ता के लिए भी यह विभिन्न समयों एवं विभिन्न स्थितियों में अलग-अलग होती है। इसके कारणों को समझना कठिन नहीं है।

1 किसी उपभोक्ता के लिए किसी वस्तु की उपयोगिता उसकी आवश्यकता की तीव्रता पर निर्भर करती है जिसकी तुष्टि उससे होती है। आसानी से हम यह देख सकते हैं कि सभी उपभोक्ता एक ही आवश्यकता को समान तीव्रता से महसूस नहीं करते। उदाहरणार्थ, ब्रेड के सभी उपभोक्ताओं को प्रातःकाल में समान रूप से जरूरत नहीं होती।

2 किसी वस्तु की उपयोगिता से यह अभिप्राय होता है कि कोई उपभोक्ता उसके उपभोग से कितनी तुष्टि पाने की आशा करता है। इसके संबंध में भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओं के अनुमान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। उपयोगिता के संबंध में किसी उपभोक्ता द्वारा लगाया गया अनुमान इस बात पर निर्भर करता है कि अपनी परिस्थितियों को वह किस प्रकार से देखता है। फिर भी हम जानते हैं कि किसी स्थिति के संबंध में निर्णय लेने और इसे मात्रात्मक रूप देने के संबंध में कोई मानकित विधि नहीं है। एक ही उपभोक्ता दी हुई परिस्थितियों को विभिन्न प्रकार से देख सकता है। किसी प्यासे व्यक्ति को जब पानी का एक कप मिलता है, तब वह यह मान सकता है कि अगले 48 घंटों तक उसे पानी की एक बूंद भी नहीं मिलेगी या वह यह सोच सकता है कि उसे जितने पानी की आवश्यकता होगी उतना उसे मिलेगा। अतः उसके लिए पानी की उपयोगिता दूसरी स्थिति की अपेक्षा पहली स्थिति में अधिक होगी।

3 ऐसा नहीं होता कि किसी वस्तु के संबंध में सभी उपभोक्ताओं की पसंद एक जैसी हो। अन्य बातों के समान रहने पर जो व्यक्ति अंडों को पसंद करता है उसके लिए उसकी उपयोगिता अधिक होगी और जो पसंद नहीं करता उसके लिए कम होगी उसी प्रकार

किसी दवा की उपयोगिता केवल उसी व्यक्ति के लिए होती है जिसके लिए वह बताई जाती है।

4 उपभोक्ता को जिन परिस्थितियों का सामना करना होता है, वे बदलती रहती हैं। मौसम, निवास-स्थान एवं अन्य अनेक चीजों में परिवर्तन के कारण किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता की आवश्यकता में भी कुछ बदलाव आ जाता है और इस कारण उसकी उपयोगिता में परिवर्तन हो जाता है।

5 इस बात से सभी सहमत हैं कि किसी आवश्यकता को पूरा करने के लिए जब किसी वस्तु का लगातार उपयोग होता है तब आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है। इसका अर्थ यह है कि उपभोग में आने वाली वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों से मिलने वाली तुष्टि घटती जाती है। इस कारण उपयोगिता भी घट जाती है।

उपयोगिता की संकल्पना की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता उसके माप के संबंध में है। उन इकाइयों के संबंध में आप जानते हैं कि जिनमें लम्बाई, परिमाण, वजन, समय एवं अन्य मात्राओं को मापा जाता है। अन्य विज्ञानों के ही समान आर्थिक विश्लेषण के काम में लाई जाने वाली मात्राओं और चरों (variables) के माप के लिए भी माप की इकाइयों का चयन करना होता है। उपयोगिता की संकल्पना की भी किन्हीं मानक इकाइयों (standard units) में माप करने की जरूरत पड़ती है। लेकिन ऐसा करना इसलिए संभव नहीं हो पाता कि किसी वस्तु की उपयोगिता मानसिक मूल्यांकन का प्रतिनिधित्व करती है अर्थात् उपभोक्ता का यह विचार कि इससे उसे कितनी तुष्टि मिलने की आशा है। दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपयोगिता की माप निरपेक्ष (absolute), या गणनांक (oordinal) शब्दों में करना संभव नहीं है। अधिक से अधिक कोई उपभोक्ता यही कह सकता है कि किसी वस्तु की दो मात्राओं में से उसके लिए किसकी अधिक उपयोगिता है या क और ख नामक दो वस्तुओं में से किसमें या उनके संयोजन में उसके लिए अधिक उपयोगिता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कोई उपभोक्ता उपयोगिताओं को आरोही या अवरोही क्रम में रख सकता है अर्थात् उपयोगिता की माप क्रम सूचक (ordinal) शब्दों में की जा सकती है। इन्हें गणनावाचक रूप में बताना संभव नहीं होता। इसका एक अत्यंत महत्वपूर्ण अर्थ भी है। चूँकि आप निरपेक्ष शब्दों में माप नहीं सकते कि "अ" और "आ" नामक दो भिन्न-भिन्न उपभोक्ताओं के लिए "क" नामक किसी वस्तु की एक इकाई में जितनी उपयोगिता है, अतः आप यह भी नहीं कह सकते कि "क" से किस उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता मिलती है। अर्थशास्त्रीय शब्दों में कहा जाता है वि **उपयोगिता की अंतर्वैयक्तिक तुलना** interpersonal Comparison संभव नहीं है।

फिर भी यह स्मरणीय है कि अध्ययन के इस चरण में विश्लेषण की सरलता के लिए यह मानकर चलना आवश्यक है कि उपयोगिता की माप गणनावाचक या निरपेक्ष रूप में की जा सकती है। उपयोगिता की अंतर्वैयक्तिक तुलना की संभावना और ऐसी ही कुछ अन्य बातों को भी मानकर चलना होगा। परन्तु इकाई 5 में आपको उपयोगिता की क्रमसूचक माप के संबंध में बताया जाएगा और उसी के आधार पर उपभोक्ता के व्यवहार के विश्लेषण को प्रस्तुत किया जाएगा।

किसी उपभोक्ता के लिए कोई वस्तु उपयोगी है, इसका यह अर्थ नहीं होता कि वह उसके लिए लाभकारी या उपयोगी है और इसलिए उसे इसका उपयोग करना चाहिए। उपभोक्ता के लिए कोई वस्तु तब तक उपयोगी होती है, जब तक उसे विश्वास होता है कि अपनी किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसका वह उपयोग कर सकता है। इस प्रकार कोई हानिकारक वस्तु भी उपयोगी हो सकती है। कुछ नशीली औषधियाँ भी सेवन करने वालों के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक मानी जाती हैं, फिर भी नशेबाजों के लिए इनकी उपयोगिता है। धूम्रपान फेफड़ों के लिए हानिकारक माना जाता है, फिर भी असंख्य व्यक्ति इसमें अपना पैसा लगाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपयोगिता की संकल्पना का कोई नैतिक आशय नहीं होता।

4.3 कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता

एक संख्यात्मक दृष्टांत की सहायता से आप इन संकल्पनाओं को सरलता से समझ सकते हैं। मान लें कि अन्य बातों के समान रहने पर "क" नामक किसी उपभोक्ता द्वारा केलों के निरन्तर प्रयोग की उपयोगिता को तालिका 4.1 में दिखाया गया है। आप इस तालिका में देखते हैं कि उपभोक्ता के लिए प्रथम केले में 25 इकाई उपयोगिता है, द्वितीय में 18 इकाई, आदि-आदि। पांचवें केले में उसके लिए 3 इकाई उपयोगिता है। छठे केले में उसके लिए कोई भी उपयोगिता नहीं है और सातवें केले में दो इकाई की ऋणात्मक उपयोगिता या अनुपयोगिता (disutility) है। इसका अर्थ यह है कि सातवें केले से उपभोक्ता को केवल किसी संतुष्टि के न मिलने की ही आशा नहीं होती, बल्कि वह यह भी सोचता है कि उससे उसे असंतुष्टि भी होगी। किसी उपभोक्ता द्वारा प्राप्त किसी वस्तु की अंतिम इकाई की उपयोगिता को सीमांत उपयोगिता (marginal utility) कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि किसी वस्तु की MU का पता लगाते समय यह देखना होता है कि उपभोक्ता ने वह वस्तु कितनी मात्रा में प्राप्त की है। तालिका 4.1 का कालम 2 देखें। यदि उपभोक्ता केवल एक ही केला खरीदता है तब केवल उसी केले की उपयोगिता अर्थात् 25 इकाइयाँ सीमांत उपयोगिता हैं। यदि उपभोक्ता दो केले खरीदता है, तब दूसरे केले की उपयोगिता अर्थात् 18 इकाइयाँ सीमांत उपयोगिता है। उसी प्रकार पाँच केले खरीदने पर पांचवें केले की सीमांत उपयोगिता 3 इकाइयाँ हैं, छः केले खरीदने पर छठे केले की सीमान्त उपयोगिता शून्य है और सातवें केले की स्थिति में यह ऋण दो इकाइयाँ हैं। एक के बाद एक केले को प्राप्त करने पर उसकी सीमांत उपयोगिता (marginal utility) क्यों गिरती जाती है इसका स्पष्टीकरण इसी इकाई में आगे चलकर किया जाएगा।

किसी उपभोक्ता द्वारा प्राप्त किसी वस्तु की सभी इकाइयों की उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता (total utility) कहा जाता है। तालिका 4.1 में दिए गए दृष्टांत में यदि उपभोक्ता तीन केले लेता है तब उसकी कुल उपयोगिता 55 (25 + 18 + 12) है। इस तालिका के कालम 4 में केलों की क्रम संख्या के लिए TU को दिया गया है। इससे आप देख सकते हैं कि क्रमागत सीमांत उपयोगिताओं का योग कुल उपयोगिता है तथा सीमांत उपयोगिता का अर्थ है वस्तु की अंतिम इकाई को प्राप्त करने के फलस्वरूप कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि। अतः MU यदि शून्य है तो TU में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस उदाहरण में हम देखते हैं कि जब छठे केले को लिया जाता है तब TU 65 इकाइयाँ ही बनी रहती है। यदि MUc ऋणात्मक है, तब TU में गिरावट आती है जैसा कि सातवें केले के सेवन करने पर।

तालिका 4.1

उपभोक्ता "क" के लिए केलों की उपयोगिता

वस्तु	सीमांत उपयोगिता (MU)	औसत उपयोगिता (AU)	कुल उपयोगिता (TU)
1	2	3	4
पहला केला	25	25	25
दूसरा केला	18	21.5	43
तीसरा केला	12	18.3	55
चौथा केला	7	15.5	62
पांचवां केला	3	13	65
छठा केला	0	10.8	65
सातवां केला	(—) 2	9	63

किसी वस्तु की कुल संख्या से मिलने वाली उपयोगिता को उस संख्या से भाग देने पर औसत उपयोगिता (average utility) प्राप्त होती है। तालिका 4.1 के कॉलम 3 में औसत उपयोगिता के अंक दिए गए हैं। यह याद रहे कि सीमांत उपयोगिता की अपेक्षा औसत उपयोगिता में कम परिवर्तन होता है (या अधिक से अधिक बराबर होता है)। ऐसा इसलिए होता है कि औसत उपयोगिता निकालते समय सीमांत उपयोगिता के कारण कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि उस वस्तु की समस्त इकाइयों के बीच बंट जाती है। उदाहरणार्थ, उपभोक्ता को जब तीसरा केला मिलता है तब सीमांत उपयोगिता 18 से गिरकर 12 इकाई हो जाती है अर्थात् इसमें 6 इकाइयों की कमी होती है लेकिन औसत उपयोगिता 21.5 इकाइयों से गिरकर 18.3 इकाइयाँ होती है। अर्थात् यह गिरावट मात्र 3.2 इकाइयों की है। उसी प्रकार सातवें केले को लेने पर सीमांत उपयोगिता में दो इकाइयों की कमी होती है परन्तु औसत उपयोगिता में केवल 1.8 इकाइयों की ही कमी होती है।

इस संबंध में स्मरणीय है कि किसी वस्तु की प्रथम इकाई को प्राप्त करने की स्थिति में उपयोगिता संबंधी ये तीनों के माप बराबर होते हैं। इस उदाहरण में यह 25 इकाइयाँ हैं।

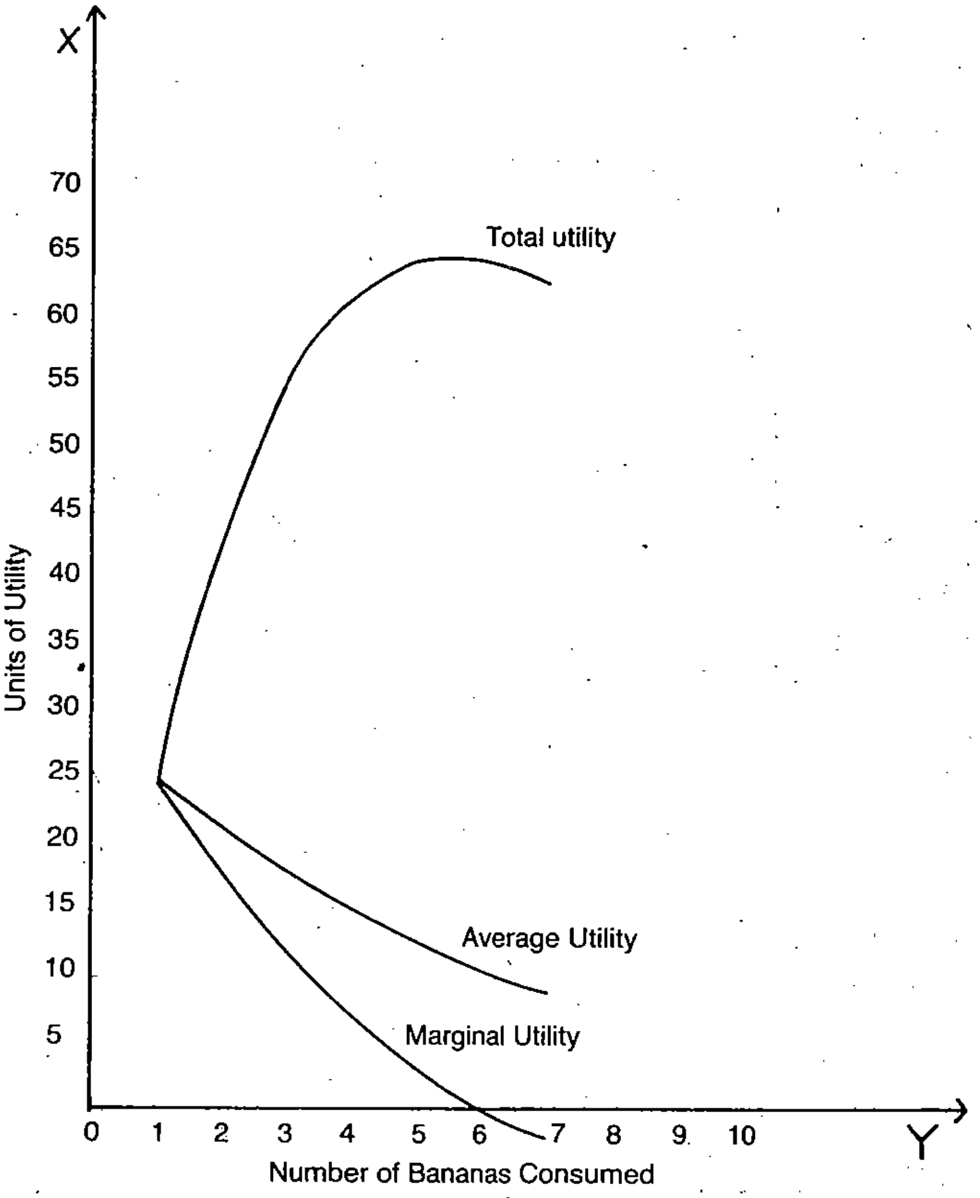

चित्र 4.1

केलों की कुल, औसत और सीमांत उपयोगिता को रेखाचित्र द्वारा भी दिखाया जा सकता है। चित्र 4.1 में देखें। केलों की संख्याओं x–अक्ष पर दिखाया गया है तथा उपयोगिता की इकाइयों का माप y–अक्ष पर किया गया है। जैसे कि आशा थी, कि उपयोगिता के तीनों ही वक्रों का प्रारंभ एक ही बिंदु से होता है। औसत और सीमांत उपयोगिता के वक्रों में तो

सतत गिरावट होती जाती है लेकिन कुल उपयोगिता वक्र के साथ ऐसा नहीं होता। यह तब तक ऊपर उठता जाता है जब तक सीमांत उपयोगिता धनात्मक है तथा सीमांत उपयोगिता वक्र x–अक्ष के ऊपर है। जब सीमांत वक्र x–अक्ष को काटता है तब कुल उपयोगिता वक्र का ऊपर उठना रुक जाता है और जब सीमांत उपयोगिता वक्र x–अक्ष के नीचे आता है तब कुल उपयोगिता वक्र भी गिरने लगता है।

बोध प्रश्न क

1 निम्नलिखित सही हैं या गलत?

i) उपयोगिता और तुष्टि समानार्थक है।

ii) उपयोगिता व्यक्तिपरक (subjective) वस्तु होती है।

iii) उपयोगिता की माप निरपेक्ष रूप में की जा सकती है।

iv) किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए जब किसी वस्तु का लगातार उपयोग होता है तब उसकी सीमांत उपयोगिता गिर जाती है।

v) सीमांत उपयोगिताओं का योग कुल उपयोगिता होती है।

vi) किसी वस्तु की अंतिम इकाई के फलस्वरूप कुल उपयोगिता में हुई वृद्धि को सीमांत उपयोगिता कहा जाता है।

vii) यदि कोई वस्तु किसी उपभोक्ता के लिए उपयोगी है तब वह उसके उपभोग के लिए खतरनाक भी होती है।

2 कोष्ठक में दिए गए शब्दों के साथ रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

i) किसी वस्तु को खरीदने के संबंध में किसी उपभोक्ता का निर्णय उसकी.........पर निर्भर करता है। (उपयोगिता/तुष्टि)

ii) उपयोगिता..........मात्रा है। (स्थिर, परिवर्तनीय)

iii) उपयोगिता.........तुष्टि है : तुष्टि........उपयोगिता है। (प्रत्याशित, प्राप्त)

iv) उपयोगिता की माप केवल.........शब्दों में ही की जा सकती है। (गणनावाचक, क्रमसूचक)

v) उपयोगिता की अंतर्वैयक्तिक तुलना तभी संभव है जब उपयोगिता की माप........रूप में की जा सके। (क्रमसूचक, गणनावाचक)

4.4 सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Utility)

आवश्यकताओं की इस प्रमुख विशेषता के संबंध में आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि किसी दी हुई आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया के दौरान उस प्रक्रिया को यदि रोक नहीं दिया जाता तो उस आवश्यकता की पूर्णतः पूर्ति की जा सकती है। जैसा कि मार्शल ने "प्रिंसिपॅल्स ऑफ इकनोमिक्स" नामक अपनी प्रख्यात पुस्तक में लिखा है : "आवश्यकताएं तो अनेक हैं परन्तु इनमें से प्रत्येक की अपनी-अपनी सीमाएं भी हैं"। आप यह भी जानते हैं कि किसी वस्तु की उपयोगिता आवश्यकता पूरा करने की उसकी क्षमता होती है। इन दोनों ही को एक साथ रखने पर उपयोगिता के संबंध में अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण नियम कायम किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को यदि वस्तु की एक के बाद एक इकाइयाँ प्राप्त होती हैं, तब अन्य बातों के समान रहने पर पूरी की जाने वाली आवश्यकता की तीव्रता घटती जाती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आवश्यकता के पूरा होने से जो तुष्टि मिलती है उसकी मात्रा घटती जाती है। विचारणीय वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई से जितनी तुष्टि मिलने की आशा की जाती है, वह पहले कई इकाइयों से मिलने वाली तुष्टि

से कम होती है। इसका अर्थ है कि उपभोक्ता को जैसे-जैसे किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयाँ प्राप्त होती हैं, वैसे-वैसे उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता घटती जाती है।

इसी तथ्य को सीमांत उपयोगिता ह्रास नियम या **ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम (Law of Diminishing Marginal Utility) या तृप्य आवश्यकता नियम (Law of Satiable Wants)** के रूप में बताया जाता है। इस नियम के अनुसार **"यदि अन्य बातें समान रहें तो व्यक्ति जैसे-जैसे किसी वस्तु की अधिकाधिक मात्रा का उपभोग करता है, अतिरिक्त इकाइयों से उसे पहले की इकाइयों की अपेक्षा कम संतुष्टि मिलती है"** ध्यान देने की बात यह है कि यह आवश्यक नहीं है कि सीमांत उपयोगिता में गिरावट एक समान दर से हो। सामान्य रूप में होता यह है कि पहले की इकाइयों के लिए सीमांत दर तेजी से गिरती है, जबकि बाद की इकाइयों के लिए गिरावट धीरे-धीरे होती है। लेकिन सदा ही ऐसा होना आवश्यक नहीं होता। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने की बात है कि वस्तु की मात्रा यदि बहुत बढ़ जाती है, तब सीमांत उपयोगिता शून्य या ऋणात्मक (Negative) हो सकती है। ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन के एक मूल तथ्य और सामान्य अनुभव का वर्णन करता है। उदाहरणार्थ, ऐसे एक व्यक्ति के संबंध में विचार करें, जो अत्यंत प्यासा है और प्यास बुझाने के लिए उसे एक के बाद एक कप पानी दिया जाता है। यह स्पष्ट है कि उसे दूसरे कप की अपेक्षा पहले कप से अधिक तृप्ति मिलेगी तथा तीसरे कप की अपेक्षा दूसरे कप से अधिक। आगे भी यह क्रम चलता रहेगा। इस प्रकार उसकी प्यास पूर्णतः बुझ जाएगी और उसके लिए पानी की उपयोगिता शून्य हो जाएगी। उसके बाद उसे यदि एक और कप पानी पीने को बाध्य किया जाता है, तब अनुपयोगिता की स्थिति आ सकती है। तालिका 4.1 में दिए गए केले का दृष्टांत इसी नियम का चित्रण करता है।

अब हम ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम से संबंधित एक अन्य बात के संबंध में विचार करें। किसी विशेष वस्तु का उपयोग किन्हीं एक या दो आवश्यकताओं की ही पूर्ति के लिए किया जा सकता है, सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं। यदि एक ही वस्तु के उपयोग से सभी आवश्यकताओं को पूरा करना संभव होता, तो सीमांत उपयोगिता घटती नहीं क्योंकि मानवीय आवश्यकताएँ असीमित होती हैं तथा वे बार-बार उत्पन्न होती रहती हैं। अनेक आवश्यकताओं को पूरा करने से उनकी सामूहिक तीव्रता में कमी नहीं होती। किसी वस्तु के उपयोग से तो एक या उससे अधिक कुछ दी गई आवश्यकताओं की तीव्रता घटती है। इसी को दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कोई दी हुई वस्तु ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम का पालन करती है क्योंकि यह पूर्णतया अन्य वस्तुओं को स्थानापन्न नहीं कर सकती (जो अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक होती है), लेकिन किसी व्यक्ति की समस्त आय अर्थात् समस्त वस्तुओं के मेल के लिए इस नियम का पालन करना आवश्यक नहीं होता।

सीमाएं

ऐसी अनेक परिस्थितियाँ हैं जिनमें ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम को लागू नहीं किया जा सकता। इस नियम की सीमाएँ "अन्य बातें समान रहें" नामक उक्ति के उल्लंघन में सीमित हैं जिनसे यह अभिप्राय है कि ऐसा कुछ भी नहीं होना चाहिए जिससे उन आवश्यकताओं की तीव्रता बढ़े जिनकी पूर्ति के लिए विचारणीय वस्तु का उपयोग किया जा रहा है। परन्तु अन्य बातें समान नहीं भी रह सकती हैं, आवश्यकताओं की पूर्ति के दौरान उनकी तीव्रता बढ़ भी सकती है और ऐसा होने की स्थिति में ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम का उल्लंघन भी हो जाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नियम की सीमाएँ वे सामान्य कारण हैं जिनके फलस्वरूप आवश्यकताओं की पूर्ति की प्रक्रिया के दौरान ही उनकी तीव्रता बढ़ जाती है और इस प्रकार वस्तु की सीमांत उपयोगिता में वृद्धि हो जाती है। इस नियम की सीमाएँ निम्नलिखित हैं :

1) **उपयुक्त इकाइयाँ :** ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम को लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि उपभोक्ता को वस्तु की पूर्ति उपयुक्त इकाइयों में की जाए। उदाहरणार्थ, जूते दोनों पैरों के होने चाहिए, एक ही पैर के नहीं। घरों के लिए वाल पेपर ऐसा होना चाहिए कि कम से कम कोई एक भाग उससे ढक जाए। इस संबंध में

मार्शल ने अल्पकालिक संगीत सभा या अवकाश का जिक्र किया है। थोड़े ही समय तक संगीत सुनने से उसे और भी सुनने की इच्छा हो सकती है जिससे इसकी सीमांत उपयोगिता बढ़ जाती है। उसी प्रकार थोड़े ही समय के अवकाश से इसके प्रति इच्छा और भी तीव्र हो सकती है जिससे अवकाश की सीमांत उपयोगिता बढ़ जाती है।

2) **समय कारक**: किसी वस्तु की दो इकाइयों के उपभोग के बीच यदि समय गुजरने दिया जाता है तब आवश्यकता की पुनरावृत्ति हो सकती है या उसकी तीव्रता बढ़ सकती है। दूसरी चपाती का उपभोग यदि दूसरे दिन किया जाए, तो उससे अधिक उपयोगिता मिल सकती है। उसी प्रकार किसी व्यक्ति को यदि समय पर दूसरा कप जल उपलब्ध नहीं होता है तब वह और भी अधिक प्यासा हो जाता है जिसके फलस्वरूप उसके लिए दूसरे कप की उपयोगिता बढ़ जाती है।

3) **रुचि, फैशन और आय** : समय गुजरने के साथ इनमें परिवर्तन आ जाता है और इस प्रकार ये आवश्यकता की तीव्रता को बदल देती हैं। फिर भी यह आवश्यक नहीं कि ये कारक आवश्यकता को और तेज़ करें, वे तीव्रता को कम भी कर सकते हैं। सभी यह जानते हैं कि फैशन में परिवर्तन के फलस्वरूप किसी वस्तु की स्वीकार्यता में परिवर्तन आ जाता है जिससे इस वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है कि अधिकाधिक लोग इसे चाहते हैं और वह भी बड़ी मात्रा में। इसके विपरीत कुछ वस्तुएँ फैशन से बाहर चली जाती हैं अतः उनकी उपयोगिता कम हो जाती है। इसी प्रकार व्यक्ति की रुचि (अधिमान) में भी बदलाव आ सकता है।

   किसी वस्तु की उपयोगिता को प्रभावित करने वाला एक बहुत बड़ा कारक है उपभोक्ता की आय। आमतौर पर कुछ वस्तुओं का उपयोग अधिकतः निर्धन लोग ही करते हैं, जैसे कि मोटे अनाज, सस्ते कपड़े, आदि। इसीलिए इन्हें घटिया वस्तुएँ या "गरीब लोगों की वस्तुएँ"(Inferior goods) कहते हैं। जिस व्यक्ति की आय बढ़ जाती है वह इन वस्तुओं का उपभोग छोड़कर तथाकथित सामान्य (Normal) या बढ़िया (Superior) वस्तुओं का उपभोग करना चाहेगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यक्ति की आय में परिवर्तन हो जाने से उसके लिए किसी वस्तु की उपयोगिता में भी परिवर्तन हो जाता है, हालांकि वस्तु का स्टॉक पहले जैसा ही बना रहता है।

4) **वस्तु की प्रत्याशित उपलब्धि**: यदि कोई व्यक्ति यह सोचता है कि आगे आने वाली अवधि में कोई वस्तु कम मात्रा में उपलब्ध हो पाएगी, तब उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता बढ़ जाती है। उदाहरणार्थ, कोई प्यासा व्यक्ति एक कप जल पीने के बाद यदि यह सोचता है कि अगले कुछ दिनों में उसे जल नहीं मिलेगा, तब उसके लिए दूसरे कप की सीमांत उपयोगिता बढ़ जाएगी।

5) **किसी वस्तु को भोगने की क्षमता**: ऐसा अक्सर होता है कि किसी वस्तु के उपभोग के दौरान उस संबंध में व्यक्ति की क्षमता में परिवर्तन आ जाता है। इस स्थिति में भी ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम लागू नहीं होता। जैसे कि किसी विशेष प्रकार के संगीत को सुन रहा व्यक्ति, उसे दूसरी या तीसरी बार सुनने पर और भी अधिक आनन्द उठा सकता है।

6) **दुर्लभ वस्तुओं का संग्रह**: बहुमूल्य सिक्के, चित्र जैसी कुछ वस्तुएँ अपनी ही प्रकार की होती हैं। उनका स्थान उनके जैसी अन्य कोई वस्तु नहीं ले सकती और उनसे संग्रहकर्त्ता को अत्यधिक आनन्द मिलता है। वह इन वस्तुओं का जितना ही अधिक संग्रह करता है, उसके आनन्द की भावना, सामाजिक प्रतिष्ठा, ज्ञान तथा उसके जीवन के ऐसे ही अन्य पक्षों में और भी सम्पन्नता आती जाती है। ऐसी स्थिति में सीमांत उपयोगिता नियम लागू नहीं होता।

7) **संबद्ध वस्तुओं की प्राप्यता में परिवर्तन**: कुछ वस्तुएँ एक-दूसरे से संबंधित होती हैं। उदाहरणार्थ, किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किन्हीं विशेष प्रकार की दो वस्तुओं का एक ही साथ होना जरूरी होता है। इन्हें पूरक वस्तुएँ (Complementary commodities) कहते हैं। ऐसी स्थिति में इनमें से एक का ही उपलब्ध होना उपभोक्ता के लिए बेकार होता है, लेकिन इसके उपलब्ध होने से पूरक वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है। इस प्रकार के अनेक दृष्टांत दिए जा सकते हैं जिनमें एक वस्तु की प्राप्यता

दूसरी वस्तु की उपयोगिता को बढ़ा देती है। जैसे बिजली के पंखे और बिजली, कलम और स्याही, खाना पकाने का तेल और कच्चे खाद्य पदार्थ, आदि।

पूरक वस्तुओं के विपरीत कुछ वस्तुएँ एक-दूसरे की स्थानापन्न होती हैं अर्थात् उनका उपयोग उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए किया जाता है। जैसे भूख मिटाने के लिए एक खाद्य पदार्थ के स्थान पर किसी दूसरे खाद्य पदार्थ का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार कोई वस्तु जब अधिक मात्रा में प्राप्त होती है, तब उसकी स्थानापन्न वस्तु की क्षमता घट जाती है, इसके विपरीत भी ऐसा ही होता है।

8) **अन्य व्यक्तियों के संबंध में स्थिति:** मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अतः समाज में उसकी जो स्थिति होती है उसका प्रभाव वस्तुओं और सेवाओं को प्राप्त करने और उनका उपभोग करने की उसकी इच्छा पर गहरे रूप में पड़ता है। इसलिए समाज में अन्य व्यक्तियों को जब कोई वस्तु कम या अधिक मात्रा में उपलब्ध होने लगती है, तब विचाराधीन व्यक्ति के लिए उस वस्तु की उपयोगिता में भी परिवर्तन आ जाता है। किन्तु ध्यान रहे कि ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम की उपयुक्त सीमाएँ इस नियम के मूल रूप में उपयोग का उल्लंघन नहीं करती। यह नियम मूल रूप में तो लागू होता ही है। ये सीमाएँ तो केवल इस तथ्य को उजागर करती हैं और इस नियम से संबंधित शर्तों का बोध कराती हैं जिनकी अनुपस्थिति में प्रायः संतुष्टि की प्रक्रिया के दौरान आवश्यकता की तीव्रता बढ़ जाती है। परन्तु इस नियम की मान्यताएँ यदि कायम रहें, तो नियम अवश्य ही लागू होगा।

4.5 मुद्रा की सीमांत उपयोगिता (Marginal Utility of Money)

अब हमारे सम्मुख एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम मुद्रा पर लागू होता है? निम्नलिखित कारणों से इसके संबंध में अनेक मतभेद हैं।

आमतौर पर मुद्रा कुछ शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। बाजार में जो भी वस्तु बिक्री के लिए होती है, उसे खरीदने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। पहले हम देख चुके हैं कि व्यक्ति की आवश्यकता को एक-एक करके तो पूर्णतः संतुष्ट किया जा सकता है परन्तु सभी आवश्यकताओं को एक ही साथ पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थितियों में किसी व्यक्ति के पास जब मुद्रा बड़ी मात्रा में है, तब उसकी सीमांत उपयोगिता में कमी क्यों होती है? परन्तु कुछ विचारक इस तर्क से सहमत नहीं होते। वे हमारे दिन-प्रतिदिन के आम अनुभव का हवाला देते हुए कहते हैं कि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि के साथ ही साथ उसकी सीमांत उपयोगिता भी गिर जाती है। उदाहरण के रूप में उनका कहना है कि जिस व्यक्ति के पास मुद्रा बहुत बड़ी मात्रा में है वह एक छोटे से सिक्के के खो जाने की परवाह नहीं करेगा। परन्तु उसी के पास मुद्रा यदि कम मात्रा में है, तब वह इस सिक्के को ढूंढने का प्रयास करेगा। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण देकर यह बताया जाता है कि ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम मुद्रा पर भी लागू होता है। मार्शल की भी यही धारणा थी कि यह नियम मुद्रा पर लागू होता है। फिर भी उपभोक्ता व्यवहार और मांग के सिद्धांत के संबंध में चर्चा करते समय यह मानकर चलते हैं कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर होती है। उनके लिए यह मान्यता इसलिए आवश्यक हो गई कि किसी वस्तु को खरीदते समय उपभोक्ता इसकी उपयोगिता की तुलना उस वस्तु की उपयोगिता के साथ करता है जिसे इस वस्तु के सीमांत के रूप में उसे खोना पड़ता है। कीमत सदा ही मुद्रा के रूप में दी जाती है और सभी उपभोक्ता प्रति इकाई के लिए समान कीमत देते हैं (यह सोचते हुए कि उनके द्वारा प्राप्त सीमांत उपयोगिता भिन्न-भिन्न हो सकती है)।

4.6 ह्रासमान सीमांत उपयोगिता और वस्तु की माँग (Diminishing Marginal Utility and Demand for a Commodity)

किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता की माँग के साथ उसकी सीमांत उपयोगिता का घनिष्ट संबंध होता है। बाजार में बिक्री के संबंध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उपभोक्ता किसी वस्तु की सभी इकाइयों की खरीद एक ही कीमत पर करता है। विवेकी व्यक्ति के रूप में उपभोक्ता चाहता है कि "क" नामक किसी वस्तु की एक और इकाई की खरीद वह तभी करें जब कीमत के रूप में उसके द्वारा दी गई उपयोगिता मिलने वाली वस्तु की उपयोगिता से कम हो अर्थात् कीमत सीमांत उपयोगिता से कम हो। इसके अतिरिक्त यह भी जरूरी है कि कीमत यदि सीमांत उपयोगिता से अधिक है जब वह उस इकाई को न खरीदे। कीमत और सीमांत उपयोगिता यदि समान है, तब उपभोक्ता खरीदने के प्रति उदासीन रहता है, वह उस इकाई को खरीद भी सकता है या नहीं भी खरीद सकता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उपभोक्ता जो कीमत देने को तैयार रहता है वह वस्तु की सीमांत उपयोगिता से कभी भी अधिक नहीं होती। उसी प्रकार किसी उपभोक्ता को जब किसी वस्तु को अधिक मात्रा में खरीदना है तब वह जो कीमत देने को तैयार है उसमें कमी होनी चाहिए (क्योंकि किसी वस्तु को जब अधिक मात्रा में खरीदा जाता है तब उसकी सीमांत उपयोगिता कम हो जाती है) इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु की कीमत यदि गिरती है, तब एक ऐसी स्थिति आती है कि वस्तु की सीमांत उपयोगिता उसकी कीमत से अधिक होगी और उपभोक्ता उसे और अधिक मात्रा में खरीदेगा।

तालिका 4.1 का दृष्टांत लें। इस तालिका के कालम 2 में उपभोक्ता के लिए केलों की उपयोगिता को दिखाया गया है। मान लें कि एक केले की कीमत उपयोगिता की 12 इकाइयाँ हैं। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता पहले केले की कीमत के रूप में 12 इकाई उपयोगिता देता है परन्तु उसे इस केले से 25 इकाई उपयोगिता प्राप्त होती है। अतः उसे कुल 13 इकाई उपयोगिता का अतिरेक प्राप्त होता है। उसी प्रकार उसे दूसरे केले से 18—12 = 6 इकाई उपयोगिता का लाभ होता है। परन्तु तीसरे केले की उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर है अतः वह उसे खरीद या नहीं खरीद सकता है। इसके विपरीत कीमत यदि गिरकर उपयोगिता की 12 और 7 इकाइयों के बीच रहती है, तब उपभोक्ता तीसरे केले को भी खरीदेगा। उसी प्रकार कीमत यदि और घटती है, तब वह और अधिक केले खरीदेगा और यदि बढ़ती है, तब कम केले खरीदेगा। इस संबंध में सामान्य नियम इस प्रकार है : **वस्तु की कीमत जब दी हुई होती है तब उपभोक्ता उसकी वह मात्रा खरीदने का निर्णय लेता है जिससे उसकी सीमांत उपयोगिता और कीमत समान हो जाए।** इस दृष्टांत में उपभोक्ता के लिए सदा संभव नहीं हो पाता कि वह इन दोनों को समान कर सके क्योंकि एक ही समय में सीमांत उपयोगिता में बहुत बड़ी मात्रा में परिवर्तन होता है। फिर भी उपर्युक्त कथन मूल रूप में सही ही बना रहता है और इसे **माँग के नियम** का रूप दिया जा सकता है। इस नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत के गिरने पर उसकी माँग (अर्थात् किसी समय अवधि में खरीदी गई मात्रा) बढ़ती है और कीमत बढ़ने पर माँग घटती है। अब तक जो चर्चा हो चुकी है, उसमें कुछ संशोधन की आवश्यकता है। बाजार में किसी वस्तु की कीमत उपयोगिता की इकाइयों में नहीं, बल्कि मुद्रा की इकाइयों में व्यक्त की जाती है, प्राप्त की जाती है तथा चुकाई जाती है। प्रत्येक क्रेता एक ही मुद्रा में कीमत देता है (हालाँकि इसकी उपयोगिता में बदलने पर अलग-अलग खरीददार के लिए अलग-अलग कीमत हो सकती है) अतः यह आवश्यक हो जाता है कि क्रेता के व्यवहार को मुद्रा के रूप में व्यक्त किया जाए। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हमें यह जानना चाहिए कि किसी दी हुई कीमत पर कोई उपभोक्ता कितनी वस्तु खरीदना चाहेगा और वस्तु की किसी दी हुई मात्रा के लिए वह कितनी कीमत देने को तैयार होगा। इस कार्य के लिए यह मान लिया जाता है कि क्रेता के पास कितनी भी मुद्रा क्यों न हो परन्तु उसकी सीमांत उपयोगिता स्थिर बनी रहती है। इस प्रकार हम बता सकते हैं कि विचारणीय वस्तु की विभिन्न मात्राओं के लिए कोई उपभोक्ता कितनी कीमत देने को तैयार होगा। तालिका 4.1 को यदि हम देखें और यह मान लें कि उपभोक्ता के लिए प्रत्येक रुपये की सीमांत

उपयोगिता एक समान है। जैसे 10 इकाइयाँ। तब यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। इस आधार पर तालिका 4.2 के कालम 3 में रुपये के रूप में केलों की सीमांत उपयोगिता को दिखाया गया है।

तालिका 4.2

केलों की सीमांत उपयोगिता

केलों की संख्या	सीमांत उपयोगिता (उपयोगिता की इकाइयों में)	सीमांत उपयोगिता (रुपयों में)
1	2	3
1	25	2.50
2	18	1.80
3	12	1.20
4	7	0.70
5	3	0.30
6	0	0.00
7	(—) 2	(—) 0.20

इस प्रकार एक केले के साथ सीमांत उपयोगिता 2.50 रु. है, दो केलों के साथ यह 1.80 रु. है, इत्यादि। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक केले की कीमत यदि 70 पैसे है तब उपभोक्ता तीन केले खरीदेगा और चौथे केले को वह खरीद सकता है या नहीं भी खरीद सकता है। 30 पैसे से कम कीमत होने पर उपभोक्ता पाँच केले खरीदेगा।

4.6.1 मांग अनुसूची (Demand Schedule) की संकल्पना

(16) 05-2

मांग अनुसूची में उपभोक्ता के व्यवहार को अनुसूची (या तालिका) के रूप में दिखाया गया है। इसमें दो कालम हैं। पहले कालम में विचारणीय वस्तु की प्रति इकाई की विकल्प कीमतों को दिखाया गया है। दूसरे कालम में यह दिखाया गया है कि विभिन्न कीमतों पर उपभोक्ता किसी वस्तु को कितनी मात्रा में (समय की प्रत्येक अवधि में) खरीदने को तैयार होगा। तालिका 4.3 में किसी उपभोक्ता द्वारा संतरे की माँग अनुसूची का एक विशिष्ट दृष्टांत दिया गया है। इनमें से प्रत्येक जोड़ (कीमत और संतरे की संख्या का) यह दिखाता है कि किसी दी हुई कीमत पर उपभोक्ता कितने संतरे खरीदने को तैयार होगा तथा संतरे की किसी दी हुई मात्रा के लिए कोई उपभोक्ता अधिकतम कितनी कीमत देने को तैयार होगा। इस प्रकार संतरे की कीमत यदि प्रति संतरा 50 पैसे है तब उपभोक्ता 15 संतरे खरीदने को तैयार रहता है। इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि 15 संतरे खरीदने के लिए वह प्रति संतरा 50 पैसे से अधिक कीमत देने को तैयार नहीं है। इस संबंध में यह याद रहे कि प्रतिरूपी माँग अनुसूची यह बताती है कि कीमत के गिरते जाने की स्थिति में वस्तु की माँग की मात्रा बढ़ती जाती है तथा इसके विपरीत कीमत के बढ़ने पर वस्तु की माँग की मात्रा घटती जाती है। यह बात तालिका 4.3 से स्पष्ट होगी।

तालिका 4.3

संतरे के लिए मांग अनुसूची

प्रति इकाई कीमत (रुपये में)	संतरे की मांग (मात्रा इकाइयों में)
1.00	4
0.90	5
0.80	6
0.70	8

0.60	11
0.50	15
0.40	20
0.30	24
0.20	30

4.6.2 मांग वक्र (Demand Curve) की संकल्पना

किसी उपभोक्ता के माँग व्यवहार को रेखाचित्र द्वारा माँग वक्र के रूप में भी दिखाया जा सकता है। माँग वक्र वह वक्र है जिस पर कीमत तथा माँगी गयी वस्तु के सभी जोड़ों को अंकित किया जाता है। चित्र 4.2 में 'D' ऐसा ही एक वक्र है जो तालिका 4.3 की माँग अनुसूची को चित्रित करता है। प्रति संतरे की कीमत को y–अक्ष पर तथा संतरे की माँग मात्रा को x–अक्ष पर दिखाया गया है।

यदि आम माँग वक्र के किसी बिंदु को लें और दोनों अक्षों पर लंब (perpendiculars) खींचें तब x–अक्ष से उस बिंदु की लंब दूरी संतरे की कीमत को तथा Y–अक्ष से लंब दूरी उस कीमत पर खरीदे जाने वाले संतरों की मात्रा को व्यक्त करती है। उदाहरणार्थ, माँग वक्र पर P बिंदु को लेकर PM और PA यह दो लंब खीचें। जब प्रति संतरे की कीमत PM(=OA.) तथा संतरों की माँग की मात्रा OM(=AP) है। इस संबंध में स्मरणीय है कि सामान्य मांग वक्र की ढलान बाएँ से दायें जाते हुए नीचे की ओर होती है। ऐसा इसलिए होता है कि वस्तु की माँग की मात्रा तथा प्रति इकाई कीमत का रुख विपरीत दिशाओं में होता है। इसीलिए कहा जाता है कि माँग वक्र की ढलान ऋणात्मक होती है।

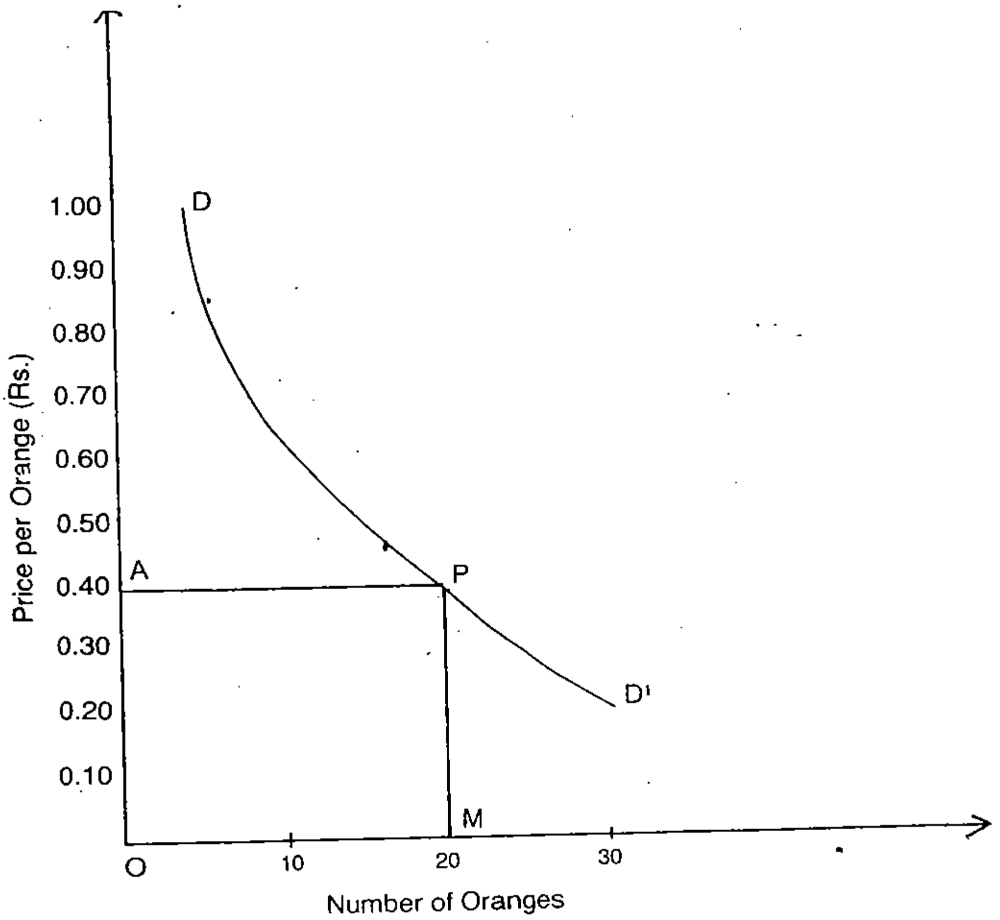

बोध प्रश्न ख

1 निम्नलिखित सही हैं या गलत?

i) किसी आवश्यकता को पूर्णतः कभी भी पूरा नहीं किया जा सकता।

ii) किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता में गिरावट सदा एक दर से होती है।

iii) किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता ऋणात्मक हो सकती है।

iv) किसी वस्तु का प्रत्याशित उपलब्धि प्रभाव उसकी सीमांत उपयोगिता पर पड़ता है।

v) उपभोक्ता की रुचि, फैशन और आय में परिवर्तन के कारण किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता में सदा ही वृद्धि हो जाती है।

vi) घटिया वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं।

vii) माँग वक्र बनाने के लिए मान लिया जाता है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर बनी रहती है।

viii) माँग वक्र माँग अनुसूची की रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुति है।

2 दिए हुए शब्दों की सहायता से रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

i) यदि किसी एक वस्तु के उपलब्ध होने से दूसरी वस्तु की उपयोगिता बढ़ जाती है तब वे दोनों वस्तुएँ एक दूसरे की......हैं।

ii) यदि किसी एक वस्तु के उपलब्ध होने से दूसरी वस्तु की उपयोगिता घट जाती है, तब वे दोनों वस्तुएँ एक-दूसरे के......हैं।

iii) ....के बढ़ने से उपभोक्ता के लिए......वस्तुओं की उपयोगिता कम हो जाती है।

iv) यदि हम मान लें कि मुद्रा की.......है तब किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता वक्र की सहायता से उसका मांग वक्र बनाया जा सकता है।

v) किसी दी हुई वस्तु के लिए क्रेता एक समान कीमत का भुगतान.......के रूप में नहीं बल्कि......के रूप में करता है।

vi) माँग के नियम के अनुसार किसी दी हुई समय अवधि में कीमत के......पर खरीदी जाने वाली वस्तु की मात्रा में......होती है और कीमत के......पर उसमें.......होती है।

दिए गए शब्द : स्थिर, सीमांत उपयोगिता, उपयोगिता, बढ़ना, घटना, स्थानापन्न, घटिया, बढ़िया, पूरक, मुद्रा

4.7 समसीमांत उपयोगिता नियम (Law of Equi-Marginal Utility)

हम पहले ही देख चुके हैं कि उपभोक्ता के सम्मुख अनेक आवश्यकताएँ होती हैं और उन सबकी वह पूर्ति नहीं कर सकता। उसकी आय सीमित होती है इसलिए उसे चुनाव करना पड़ता है अर्थात् उसे यह निर्णय करना होता है कि वह किस आवश्यकता की पूर्ति करे और किसे छोड़ दे। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक नहीं कि चुनी गई आवश्यकताओं की पूर्ति पूर्णतः की जाए। इनमें से कुछ या सभी की पूर्ति आंशिक रूप में भी की जा सकती है। उपभोक्ता को इसके संबंध में निर्णय करना पड़ता है।

उपभोक्ता इसके संबंध में क्या करेगा? वह कैसे निर्णय लेगा कि किस आवश्यकता को किस मात्रा में पूरा किया जाए। इन प्रश्नों का उत्तर उस उद्देश्य में निहित होता है जिससे

वह उपभोग व्यय करता है। यदि वह विवेकी व्यक्ति है तो उसका उद्देश्य होगा कि अपने व्यय से वह अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करे। हम यह मानकर चलेंगे कि वह विवेकी व्यक्ति है।

किसी एक वस्तु के संदर्भ में विवेकी उपभोक्ता के व्यवहार स्वरूप से आप पहले ही परिचित हो चुके हैं। वहां यह मान लिया जाता है कि उपभोक्ता के लिए संबंधित वस्तु की कीमत निश्चित होती है और उसे यह तय करना होता है कि उसे कितनी इकाइयों को खरीदना है। ऐसी स्थिति में उस वस्तु को वह तब तक खरीदता रहता है, जब तक उसकी सीमांत उपयोगिता कीमत से कम नहीं हो जाती।

इस तर्क प्रणाली में अब एक संशोधन की आवश्यकता है। पहले तो यह मान लिया गया था कि उपभोक्ता किसी वस्तु का क्रय उसकी एक-एक इकाई के आधार पर करता है और मुद्रा की एक दी हुई राशि को वह खरीदी हुए प्रत्येक इकाई पर लगाता है, परन्तु अब हम यह मान लेते हैं कि वह मुद्रा का व्यय एक-एक रुपये के हिसाब से करता है और जो भी वस्तु खरीदता है, उसकी एक दी हुई मात्रा उसे प्राप्त होती है। हम यह मान लें कि उपभोक्ता को क, ख, ग और घ नामक चार वस्तुओं में से चुनाव करना है और इनमें से प्रत्येक वस्तु पर ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम लागू होता है। अब पहले रुपये को खर्च करने के संबंध में निर्णय लेते समय वह उस वस्तु को चुनता है जिससे उसे अधिकतम उपयोगिता मिले। साथ ही साथ उसे यह भी देखना होता है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता खरीदी गई वस्तु की सीमांत उपयोगिता से अधिक न हो पाए। उसी प्रकार पहले रुपये को खर्च करने के बाद उपभोक्ता यह देखने लगता है कि किस वस्तु पर वह अपना दूसरा रुपया लगाए जिससे उसे अधिकाधिक उपयोगिता की प्राप्ति हो। इसी प्रकार वह अपने अन्य रुपयों के संबंध में भी करता है। एक दृष्टांत में इसे स्पष्ट किया जाएगा। तालिका 4.4 में A, B, C और D नामक चार वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता अनुसूची प्रस्तुत की गयी है।.

तालिका 4.4

व्यय	वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता			
	क	ख	ग	घ
पहला रुपया	30	35	36	26
दूसरा रुपया	25	28	29	23
तीसरा रुपया	20	22	19	20
चौथा रुपया	17	18	10	17
पाँचवा रुपया	12	15	5	14
छठा रुपया	8	10	2	11
सातवाँ रुपया	4	7	0	8

इस प्रकार हम देखते हैं कि "क" पर पहला रुपया खर्च करने पर 30 इकाइयाँ उपयोगिता मिलती है, दूसरे रुपए से 25 इकाइयाँ उपयोगिता मिलती है और इसी प्रकार यह क्रम चलता है। सातवें रुपए को खर्च करने पर "क" से केवल 4 इकाइयाँ उपयोगिता मिल पाती हैं। इसके विपरीत "ख" वस्तु पर इन रुपयों को खर्च करने पर क्रमशः 35, 28, 22, 18, 15, 10 और 7 इकाइयाँ उपयोगिता मिलती है। इसी प्रकार आप "ग" और "घ" वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता अंकों के अर्थ को भी समझ सकते हैं।

मान लें कि उपभोक्ता को इन वस्तुओं पर कुल सात रुपये खर्च करने हैं। इनमें किस पर वह पहला रुपया लगाये? स्पष्ट है कि वह वस्तु "ग" है क्योंकि इस पर उसे अधिकतम 36 इकाइयाँ उपयोगिता मिलती है। उसी प्रकार दूसरा रुपया वस्तु "ख" पर खर्च होना चाहिए जिससे उसे 35 इकाइयाँ उपयोगिता मिलती है। तीसरा रुपया वस्तु "क" पर (30 इकाइयाँ उपयोगिता), चौथा रुपया फिर वस्तु "ग" पर (29 इकाइयाँ उपयोगिता), पांचवाँ

रुपया वस्तु "ख" पर (28 इकाइयाँ उपयोगिता), छठा रुपया वस्तु घ पर (26 इकाइयाँ उपयोगिता) और सातवाँ रुपया वस्तु "क" पर (25 इकाइयाँ उपयोगिता)। यदि वह और रुपये खर्च करने का निर्णय लेता है तब उसे इन विकल्पी वस्तुओं के बीच से इसी नियम के अनुसार क्रय करना होगा। फिर भी यह नहीं भूलना चाहिए कि खर्च किए गए अंतिम रुपए से प्राप्त सीमांत उपयोगिता रुपए की सीमांत उपयोगिता के बराबर होनी चाहिए या उससे अधिक। इस प्रकार सातवाँ रुपया तभी खर्च किया जाएगा जबकि इसकी सीमांत उपयोगिता 25 इकाइयों से अधिक न हो।

यदि हम यह मान लें कि उपभोक्ता को 12 रुपए खर्च करने हैं, तो इस दृष्टांत को आगे भी बढ़ाया जा सकता है। उस स्थिति में 12वाँ रुपया वस्तु "ग" पर खर्च होगा और इन चारों वस्तुओं में से प्रत्येक पर 3 रुपये खर्च होंगे। उसी प्रकार 13वाँ रुपया वस्तु "ख" पर जाएगा। परन्तु 14वें रुपए का क्या होगा? इसे "क" या "घ" पर लगाया जा सकता है। परन्तु यदि वह 15 रुपए खर्च करता है तब 14वें और 15वें रुपए से "क" और "घ" वस्तुएँ खरीदी जाएँगी।

इस विश्लेषण में निहित एक शर्त को ध्यान में रखना चाहिए, जिसे समझते तो सभी हैं, पर उसके संबंध में जिक्र शायद ही किया जाता है। शर्त यह है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता वस्तु भी सीमांत उपयोगिता से अधिक नहीं हो। इस प्रकार उपभोक्ता जब 14 रुपए खर्च करता है तब उसे 17 इकाई सीमांत उपयोगिता प्राप्त होती है। अत: मुद्रा की सीमांत उपयोगिता यदि 17 इकाई से अधिक है तब वह 14वें रुपए को खर्च नहीं करेगा।

उपभोक्ता उपर्युक्त व्यवहारस्वरूप का पालन इसलिए करता है कि उसे यथासंभव अधिकतम तुष्टि मिल सके। इस संदर्भ में वह समसीमांत उपयोगिता नियम का पालन कर रहा है (वह विभिन्न क्रयों की सीमांत उपयोगिता को परस्पर एक-दूसरे के एवं खर्च की जाने वाली मुद्रा की सीमांत उपयोगिता के बराबर करना चाहता है)। इस सिद्धांत को **स्नानापन्न का नियम (Law of Substitution), अनधिमान नियम (Law of Indifference), मितव्ययिता नियम (Law of Economy of Expenditure) और अधिकतम तुष्टि नियम (Law of Maximum Satisfaction)** भी कहा जाता है।

केवल दो वस्तुओं "क" और "ख" के संबंध में विचार करते हुए (सरलता के लिए) समसीमांत उपयोगिता नियम को आरेखीय रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। चित्र 4.3 में सीमांत उपयोगिता की माप y-अक्ष पर की गई है। वस्तु "क" पर खर्च की गई मुद्रा

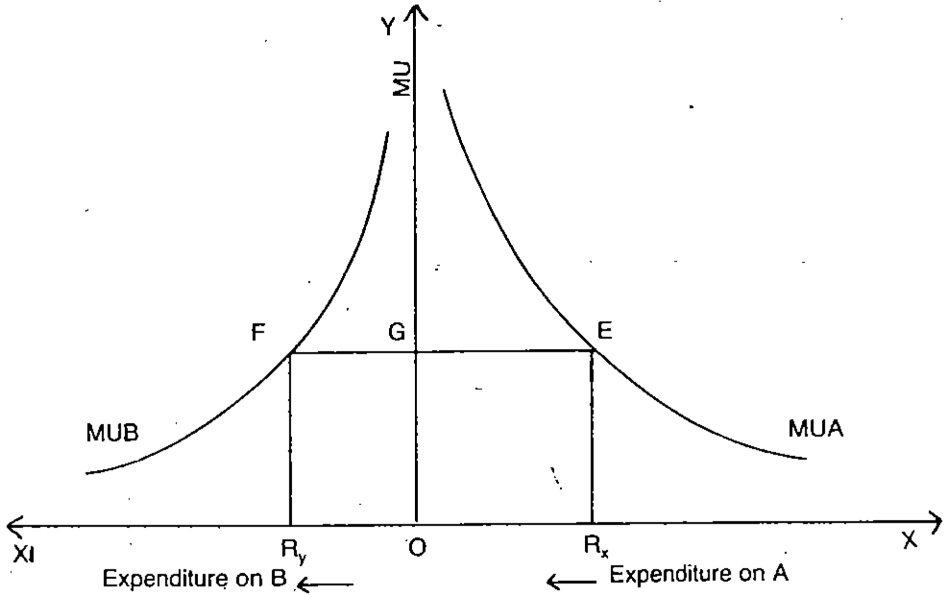

चित्र : 4.3

राशि की माप x-अक्ष पर आरम्भ बिंदु (point of origin) से दायीं ओर की जाती है और वस्तु "क" तदनुरूप सीमांत उपयोगिता वक्र (corresponding MU curve) है। उसी प्रकार वस्तु "ख" पर खर्च की गई मुद्रा राशि की माप x-अक्ष पर आरम्भ-बिंदु से बाईं ओर की जाती है और MUB वस्तु "ख" का तदनुरूप सीमांत उपयोगिता वक्र है। फिर x-अक्ष के समांतर एक सरल रेखा इस प्रकार खींची जाती है कि MUA और MUB के साथ इसके प्रतिच्छेद बिंदुओं (Points of Intersection) की दूरी खर्च की जाने वाली मुद्रा की राशि के बराबर हो। इस प्रकार उपभोक्ता जब EF राशि को खर्च करता है तब उसके GE भाग "क" वस्तु पर और FG भाग "ख" वस्तु पर लगाए जाते हैं। उपभोक्ता अपने व्यय को एक वस्तु से हटा कर दूसरी वस्तु पर करने से अपनी कुल तुष्टि में वृद्धि नहीं कर सकता।

सामान्यतः उपभोक्ता एक रुपये में एक वस्तु को नहीं खरीद पाता। उसके सामने विकल्प होता है कि वह वस्तु की पूरी इकाई को खरीदे या खरीद बिल्कुल ही न करे। इसके अतिरिक्त विभिन्न वस्तुओं की कीमतें एक दूसरे से भिन्न होती है। अतः किसी वस्तु की खरीद पर लगाए गए प्रति रुपए की सीमांत उपयोगिता को जानने के लिए खरीदी गई वस्तु की आखिरी इकाई की उपयोगिता (वस्तु की सीमांत उपयोगिता) को उस वस्तु की कीमत से भाग दिया जाता है। उदाहरण के रूप में यह इस प्रकार होगा : वस्तु "क" के लिए MUA/PA, वस्तु "ख" के लिए MU_B/P_B और इसी तरह आगे भी।

समसीमांत उपयोगिता नियम के अनुसार उपभोक्ता इस बात का प्रयास करता है कि ये अनुपात आपस में एक दूसरे के बराबर और मुद्रा की MU के भी बराबर हों। उदाहरण के रूप में ये इस प्रकार होगा।

$$\frac{MU_A}{P_A} = \frac{MU_B}{P_B} = \frac{MU_C}{P_C} \ldots \text{मुद्रा की सीमांत उपयोगिता}$$

सीमाएँ

जहाँ तक इस नियम की सीमाओं का प्रश्न है, यह नियम अर्थशास्त्र के अन्य नियमों की भांति ही हैं और इसकी कई सीमाएँ हैं।

1 हमने मान लिया था कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर अपने धन को अत्यंत छोटी-छोटी मात्राओं में खर्च कर सकता है। परन्तु ऐसा करना सदा संभव नहीं होता। प्रायः हमें पूरी वस्तु को खरीदना होता है क्योंकि वह आंशिक रूप में बेची नहीं जाती या उसे उस रूप में खरीदना बेकार होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि तकनीकी या आर्थिक कारणों की वजह से अनेक वस्तुएँ छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त करना संभव नहीं। उनका क्रय सामूहिक रूप में करना होता है या बिल्कुल ही नहीं। अतः वस्तुओं के क्रय पर बहुत बड़ी राशि को खर्च करना होता है। इसे ही दूसरे रूप में कहा जा सकता है कि बहुत सी वस्तुओं की खरीद एक-मुश्त करनी पड़ती है, और इनमें कमी-बेशी की गुंजाइश नहीं होती। इस स्थिति में उपभोक्ता प्रायः विभिन्न प्रयोगों में सीमांत उपयोगिताओं को बराबर नहीं कर पाता।

2 उपभोक्ता की अज्ञानता एक-दूसरे प्रकार की समस्या को उत्पन्न कर देती है। सामान्य उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं का सही-सही अनुमान नहीं लगा सकता है और न ही उनकी परस्पर तुलना कर पाता है। उसका मार्ग निर्देशन तो प्रायः उसकी आदतों, भूतकाल में किए उसके व्यवहार एवं अन्य उपभोक्ताओं के व्यवहार द्वारा होता है।

3 एक दूसरी समस्या विभिन्न उपभोग वस्तुओं के जीवन-चक्र (life cycle) (अर्थात् उनका उपयोग कितनी बार किया जा सकता है) के कारण उपस्थित होती है। कुछ वस्तुओं का केवल एक ही जीवन-चक्र होता है अर्थात् उनका उपभोग केवल एक ही उपयोग में हो जाता है। अन्य वस्तुओं का बहु-चक्रीय उपयोग है। उनका बार-बार उपयोग किया जाता है। इन्हें टिकाऊ उपभोग वस्तुएँ (consumer durables) कहते हैं। एक-चक्रीय वस्तुओं के दृष्टांत हैं: ब्रेड, ईंधन, बिजली, आदि। उसी प्रकार बहु-चक्रीय वस्तुओं के दृष्टांत हैं : मोटर गाड़ियाँ, स्कूटर, बर्तन, कपड़े, जूते आदि। इस सिलसिले में एक समस्या यह है कि टिकाऊ उपभोग वस्तुओं का खर्च तो एक समय-विशेष पर

करना पड़ता है। परन्तु इनसे मिलने वाली उपयोगिता से आगे की कई अवधियों में भी लाभ पहुँचता है, अतः उपभोक्ता के सम्मुख कठिन समस्या यह होती है कि वह इन विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं द्वारा प्रत्येक अवधि में की जाने वाली सेवाओं की सीमांत उपयोगिता को एक दूसरे के बराबर कैसे करें।

4 इस नियम की दूसरी सीमा अनेक वस्तुओं के परस्पर संबंधित होने से उत्पन्न होती है। वे या तो स्थानापन्न वस्तुएँ हैं या पूरक वस्तुएँ (complementary goods) होती हैं। परन्तु इस नियम के अंतर्गत उन्हें एक दूसरे से स्वतंत्र माना जाता है। यह भी मान लिया जाता है कि उनमें प्रत्येक वस्तु से मिलने वाली उपयोगिता उसी की मात्रा के ऊपर निर्भर करती है, अन्य वस्तुओं पर नहीं।

5 ऐसा समझा जाता है कि उपभोक्ता को जब अत्यंत कम रकम खर्च करनी होती है, तब वह विभिन्न वस्तुओं की सीमांत उपयोगिताओं के बीच तुलना करने का प्रयास नहीं करता। इस संदर्भ में वह अपने व्यवहार के स्वरूप में इस नियम की उपेक्षा कर देता है।

फिर भी यह ध्यान रहे कि उपर्युक्त सीमाओं के बावजूद समसीमांत उपयोगिता नियम की मूल प्रमाणिकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। इस नियम में यदि कोई कमी-बेशी है, तो वह वास्तव में इसके प्रयोग के संबंध में है।

4.8 उपभोक्ता अतिरेक (Consumer's Surplus)

'उपभोक्ता अतिरेक' की संकल्पना का प्रतिपादन मार्शल ने किया। आप पहले देख चुके हैं कि प्रत्येक उपभोक्ता किसी वस्तु को उतनी मात्रा में खरीदने का प्रयास करता है जिसके लिए उस वस्तु की सीमांत उपयोगिता अर्थात् वस्तु की अंतिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता और कीमत बराबर हो जाए। आप यह भी जानते हैं कि प्रत्येक वस्तु पर ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम लागू होता है। उपभोक्ता किसी वस्तु को जितनी अधिक मात्रा में खरीदता जाता है, उसकी सीमांत उपयोगिता कम होती जाती है। अतः किसी वस्तु की सीमांत (या अंतिम) इकाई से प्राप्त उपयोगिता उसके लिए दी गई कीमत के तो बराबर होती है परन्तु सीमांत-पूर्व (intra marginal) इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता के बराबर नहीं होती। वह कीमत से अधिक होती है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अंतिम इकाई से प्राप्त उपयोगिता के लिए तो उपभोक्ता पूरी कीमत देता है परन्तु पहले की इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता की तुलना में अपेक्षाकृत कम कीमत अदा करता है। इस प्रकार उपभोक्ता को अतिरेक प्राप्त होता है। तालिका 4.2 में दी गई केलों की सीमांत उपयोगिता का दृष्टांत लेकर हम यह मान लें कि एक केले की कीमत 7 इकाइयाँ उपयोगिता है, उस स्थिति में निम्नलिखित प्रकार से तर्क किया जा सकता है; प्रथम केले के बिना ही अपना काम चलाने की बजाय उपभोक्ता उसके लिए 25 इकाइयाँ उपयोगिता देने को तैयार रहता है। परन्तु बाजार में केला उसे 7 इकाइयों में ही मिल जाता है। इस प्रकार उसे उपयोगिता की 18 इकाइयाँ कोई कीमत दिए बिना ही मिल जाती हैं। प्रथम केले से यह उसका उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त होता है। (उपयोगिता में मापा हुआ) उसी प्रकार दूसरे केले से उसे 18 इकाइयाँ उपयोगिता मिलती है। परन्तु उसकी कीमत उसे 7 इकाइयाँ ही देनी होती है। अतः दूसरे केले से उपभोक्ता को उपयोगिता की 11 इकाइयों के समान उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त होता है। इसी तरह तीसरे केले से 4 इकाइयाँ उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त होती हैं और चौथे केले से उपभोक्ता की अतिरेक शून्य है। इस प्रकार उपभोक्ता को मिलने वाली कुल उपभोक्ता अतिरेक उपयोगिता की 34 इकाइयों के बराबर होता है।

आप स्वयं ही देख सकते हैं कि केले की कीमत को घटाकर यदि उपयोगिता की 3 इकाइयाँ कर दी जाएं तब उपभोक्ता अतिरेक अधिक हो जाएगी। इस स्थिति में पाँचवें केले से यह शून्य होती है लेकिन इसके पहले के केलों से मिलने वाला उपभोक्ता अतिरेक क्रमशः 22, 15, 9 और 4 (अर्थात् कुल 50) इकाइयाँ उपयोगिता होगा। मार्शल के शब्दों में "वह

(उपभोक्ता) किसी वस्तु की जो कीमत वास्तव में चुकाता है उसके ऊपर उस कीमत का आधिक्य, जिसे वह उस वस्तु के बिना ही अपना काम चलाने की बजाय देने को तैयार है, इस बेशी तुष्टि (surplus satisfaction) की आर्थिक माप है। इसे उपभोक्ता अतिरेक कहा जाता है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के लिए जितनी कीमत देने को तैयार रहता है और वास्तव में जो कीमत वह देता है इन दोनों के बीच के अंतर को उपभोक्ता अतिरेक कहा जाता है। **इस अतिरेक की माप उपयोगिता के रूप में किया जा सकता है या मुद्रा के रूप में।** ऊपर इसकी जो व्याख्या की गई है उसमें माप उपयोगिता की इकाइयों के रूप में की गई है। एक रेखाचित्र की सहायता से इस संकलपना को स्पष्ट किया जाएगा।

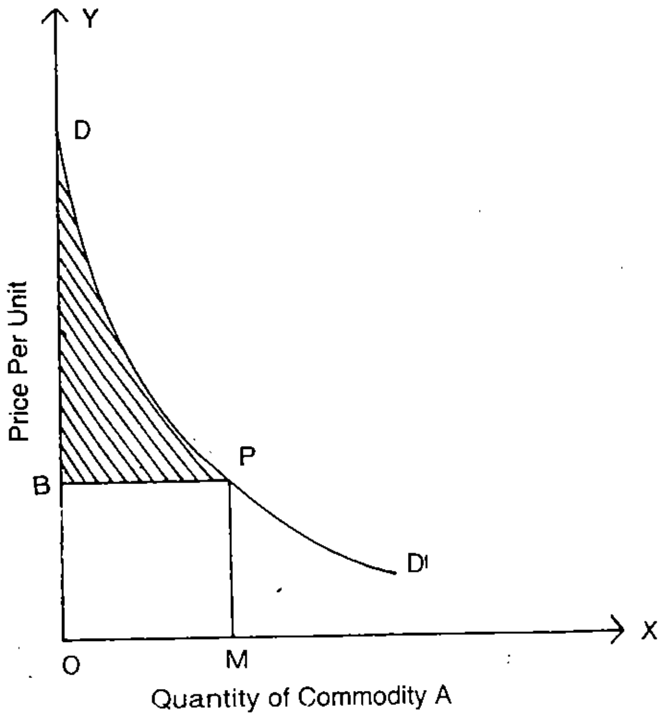

चित्र 4.4

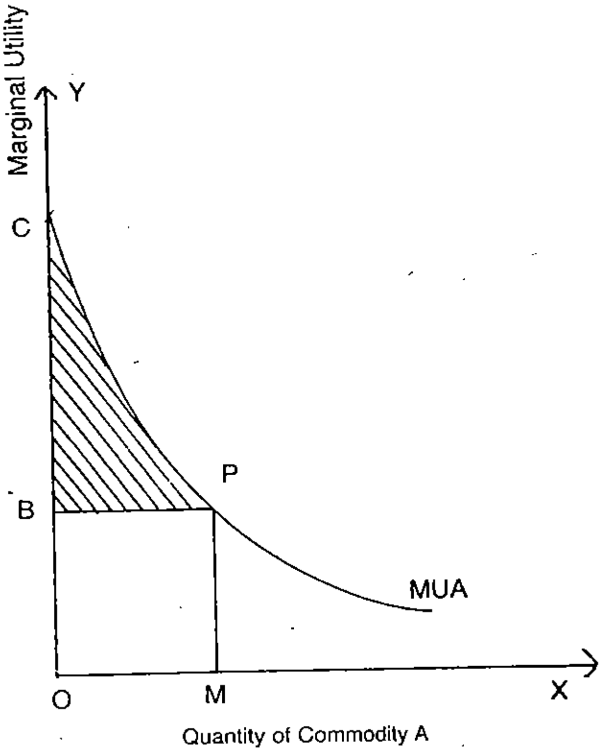

चित्र 4.5

चित्र 4.4 x-अक्ष पर वस्तु "क" की मात्रा की माप की गई है और y-अक्ष पर इसकी सीमांत उपयोगिता की माप की गई है। वस्तु "क" का सीमांत वक्र MU_A है। मान लें कि इसकी प्रति इकाई कीमत OB है। उस स्थिति में उपभोक्ता प्रति इकाई PM (OB) कीमत पर OM मात्रा में इस वस्तु को खरीदता है और इस प्रकार वह OBPM इकाइयाँ उपयोगिता के बराबर कुल कीमत देता है। उसे जितनी कुल उपयोगिता मिलती है उसे MU वक्र के नीचे दिखाया गया है अर्थात् OBCPM क्षेत्र के अंतर्गत। इस प्रकार छायित क्षेत्र BCP उपभोक्ता अतिरेक है।

उपभोक्ता अतिरेक की संकलपना की अभिव्यक्ति मुद्रा की इकाइयों में भी सरलता से की जा सकती है। इसके लिए वस्तु एवं उसकी कीमत इन दोनों को ही **मुद्रा के रूप में दिखाया जाता है।** इसका चित्रण सामान्य माँग वक्र की सहायता से किया जा सकता है। चित्र 4.5 में DD ऐसा ही मांग वक्र है। यहाँ पर वस्तु की मात्रा को x-अक्ष पर और प्रति इकाई कीमत को y-अक्ष पर मापा गया है। मान लें कि प्रति इकाई कीमत OBC=PM है।

तब उपभोक्ता वस्तु की OM इकाइयों को खरीदता है और PM की दर से प्रति इकाई की कीमत देता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुल कीमत के रूप में वह OBPM

मात्रा में मुद्रा का भुगतान करता है। लेकिन जैसा कि माँग वक्र से पता चलता है, उस वस्तु की OM मात्रा के बिना ही अपना काम चलाने की बजाय उसे खरीदने के लिए वह कुल OBDPM कीमत देने को तैयार है। अतः उसका उपभोक्ता अतिरेक है OBDPM— OBPM= छायित क्षेत्र BDP मुद्रा राशि।

इस संबंध में यह ध्यान रहे कि उपभोक्ता अतिरेक उपभोक्ता की बुद्धिमता के कारण नहीं होती। यह तो बाज़ार की शक्तियों के फलस्वरूप होती है जो उसे यह अवसर प्रदान करती हैं कि वह मूल्य चुकाए बिना ही लाभान्वित हो जाए। इसका संबंध एक ओर तो उपभोक्ता की माँग के साथ होता है और दूसरी ओर यह वस्तु की पूर्ति के साथ होता है जिसके कारण वह वस्तु एक दी हुई कीमत पर उपलब्ध होती है। नीचे इसे विस्तारपूर्वक बताया जा रहा है।

1 विचाराधीन उपभोक्ता की किसी वस्तु की माँग की स्थिति **माँग वक्र की अवस्थिति** और **ढलान** को निर्धारित करती है। यदि वस्तु आवश्यक होती है तब मांग वक्र की शुरूआत y-अक्ष पर किसी अधिक ऊंचे बिंदु से होती है। इसका अर्थ यह होता है कि वस्तु की प्रारंभिक इकाई (इकाइयों) के लिए उपभोक्ता अधिक कीमत देने को तैयार रहता है, बजाय इसके कि वह इस वस्तु के बिना ही अपना काम चलाए। इन वस्तुओं के दृष्टांत हैं नमक एवं अन्य खाद्य पदार्थ। इसी प्रकार माँग वक्र की ढलान इस बात पर निर्भर करती है कि वस्तु की सीमांत उपयोगिता कितनी तेज़ी से गिरती है। यदि सीमांत उपयोगिता में गिरावट धीरे-धीरे होती है, तब माँग वक्र भी धीरे-धीरे गिरेगा और उपभोक्ता वस्तु की खरीद अधिक मात्रा में कर सकेगा (जब तक सीमांत उपयोगिता गिरकर वस्तु की कीमत के बराबर हो जाए)। इसके विपरीत सीमांत उपयोगिता में गिरावट यदि तेजी से होती है, तब माँग वक्र भी तेजी से गिरेगा। ऐसी स्थिति में उपभोक्ता वस्तु की खरीद बहुत कम मात्रा में कर सकेगा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तु की कीमत यदि दी हुई है, तब उपभोक्ता अतिरेक उस स्थिति में अधिक होगा जब कि :

   i) माँग वक्र की शुरूआत ऊंची प्रारंभिक कीमत से होती है जिसे देने के लिए उपभोक्ता तैयार होता है; और
   ii) माँग वक्र की ढलान कम होती है।

2 उपभोक्ता अतिरेक को प्रभावित करने वाली दूसरी प्रकार की शक्तियाँ पूर्ति पक्ष में कार्य करती हैं। प्रतिस्पर्धी बाजार (इस शब्द का अर्थ आप अगली इकाई में पढ़ेंगे) की स्थिति में किसी दी हुई कीमत पर उपभोक्ता किसी वस्तु की खरीद जितनी भी मात्रा में करना चाहे कर सकता है। बाजार उसे अधिकतम संभव उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त करने की अनुमति देता है। इसके विपरीत अस्पर्धी (Non-competitive) स्थिति में किसी वस्तु की कीमत खरीदी गई मात्रा पर निर्भर करती है। इस स्थिति में वस्तु की प्रारंभिक इकाइयों के लिए उपभोक्ता अधिक कीमत देने को बाध्य हो सकता है। यद्यपि उसके द्वारा दी जाने वाली औसत कीमत गिरती है, परन्तु जैसे-जैसे वह अधिक खरीद करता है और अतिरिक्त इकाइयों के लिए कम कीमत देता है, वैसे-वैसे उसका उपभोक्ता अतिरेक उतना नहीं हो पाता जितना कि नियत कीमत की स्थिति में होता। उसे इस प्रकार भी भुगतान करना पड़ सकता है कि उसे उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त ही न हो।

उपभोक्ता अतिरेक के इस तर्क का विस्तार आप दो या दो से अधिक वस्तुओं और समस्त बाजार के दो या उससे अधिक उपभोक्ताओं तक कर सकते हैं। लेकिन इस प्रकार से विस्तार करना सदा सरल नहीं होता और कभी-कभी तो इसमें अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। उदाहरणार्थ, जब आप दो वस्तुओं की खरीद के फलस्वरूप होने वाले उपभोक्ता अतिरेक के संबंध में विचार करते हैं, तब अनुभव करते हैं कि इसका योग दोनों वस्तुओं के अलग-अलग होने वाले उपभोक्ता अतिरेक के योग से भिन्न होता है। ऐसा इसलिए होता है कि वस्तुएँ **स्थानापन्न** या **पूरक** हो सकती हैं, एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं। आप जानते हैं कि जब दो वस्तुएँ स्वतंत्र नहीं होती (अर्थात् जब वे स्थानापन्न या पूरक के रूप में परस्पर

संबंधित होती हैं) तब एक की उपयोगिता दूसरे की मात्रा से प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त उनके पारस्परिक संबंध की शक्ति के अनुसार यह प्रभाव बहुत अधिक हो सकता है या अत्यंत कम। इसी प्रकार दो या इससे अधिक उपभोक्ताओं पर इस विश्लेषण का विस्तार करने पर भी कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

उपभोक्ता अतिरेक की संकल्पना शास्त्रीय वाक्-चातुर्य मात्र ही नहीं है। यद्यपि बिल्कुल सही-सही तौर पर इसका माप करना कठिन है और समस्त बाजार में जब इसका विस्तार किया जाता है तब अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं फिर भी इसके अनेक व्यावहारिक उपयोग भी हैं। उदाहरणार्थ, अधिकारियों को मालूम है कि आवश्यक वस्तुओं से बहुत अधिक उपभोक्ता अतिरेक मिलता है अतः उन्हें चाहिए कि इन वस्तुओं पर कर न लगाकर आराम और विलास की वस्तुओं पर कर लगायें। उन वस्तुओं पर भी कर नहीं लगाना चाहिए जिन पर निर्धन लोग अपने परिवारिक बजट का एक बहुत बड़ा भाग खर्च करते हैं। उसी प्रकार व्यवसायी वर्ग उन वस्तुओं के लिए अधिक कीमत ले सकता है जिनकी माँग प्रबल होती है और जिनके बिना अपना काम चलाने की बजाए लोग अधिक कीमत देने को तैयार हैं।

बोध प्रश्न ग

1 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत?

i) समसीमांत उपयोगिता नियम किसी विवेकी व्यक्ति के उस व्यवहार का चित्रण करता है जो वह दिए हुए व्यय से अपनी तुष्टि को अधिकतम करने के लिए करता है।

ii) उपभोग के दौरान उपयोगिता को अधिकतम करने के लिए समसीमांत उपयोगिता नियम को लागू करने में उपभोक्ता सदा ही सफल होता है।

iii) समसीमांत उपयोगिता नियम के अनुसार उपभोक्ता सदा ही सस्ती वस्तु को खरीदता है।

iv) समसीमांत उपयोगिता नियम के प्रयोग में खरीदी गई वस्तु की सीमांत उपयोगिता मुद्रा की सीमांत उपयोगिता से अधिक हो सकती है।

v) समसीमांत उपयोगिता नियम के लागू होने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता अनुसूचियाँ एक समान हों।

vi) समसीमांत उपयोगिता नियम के अनुसार कोई उपभोक्ता सभी वस्तुओं पर समान राशि में मुद्रा का व्यय करता है।

vii) महाकाय वस्तुएँ (Lumpy Commodities) वे हैं जिनकी खरीद बड़ी इकाइयों में की जाती है।

viii) उपभोक्ता अतिरेक से अभिप्राय उन वस्तुओं से होता है जो कीमत दिए बिना ही उपभोक्ता को मिल जाती है।

ix) उपभोक्ता अतिरेक इसलिए प्राप्त होता है कि किसी वस्तु से उपभोक्ता को जितनी उपयोगिता मिलती है, उतनी उसे कीमत नहीं देनी पड़ती।

2 रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

i) समसीमांत उपयोगिता नियम के लागू होने के लिए आवश्यक होता है कि वस्तुएँ.....हों। (महाकाय/पूर्णविभाज्य)

ii) परस्पर संबंधित वस्तुओं के संबंध में समसीमांत उपयोगिता नियम की.....नहीं रह जाती। (मान्यता/यथार्थता)

iii) किसी वस्तु के लिए कोई उपभोक्ता जो कीमत देने को.....और वास्तव में जो कीमत देता है, उन दोनों के बीच के.....को उपभोक्ता अतिरेक कहा जाता है। (आधिक्य/कमी, मजबूर/तैयार)

iv) उपभोक्ता अतिरेक.....के कारण होता है और इसी के फलस्वरूप पूरी कीमत चुकाए बिना ही उपभोक्ता को पूर्ण तुष्टि मिल सकती है। (अवसर/क्रेता की कृपा)

v) सामान्यत: आराम की वस्तुओं की अपेक्षा आवश्यक वस्तुओं में.....उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त होता है। (अधिक/कम)

4.9 सारांश

सामान्य कीमतों के निर्धारण और उनमें होने वाले परिवर्तनों को समझने के प्रति अर्थशास्त्रियों की दिलचस्पी रहती है। परन्तु वे शुरूआत किसी एक वस्तु की कीमत से करते हैं और यह पता चलता है कि उस वस्तु की कीमत का निर्धारण माँग और पूर्ति शक्तियों के पारस्परिक प्रभाव के फलस्वरूप होता है।

किसी एक वस्तु के माँग पक्ष का विश्लेषण एक प्रतिनिधि उपभोक्ता के व्यवहार के साथ किया जाता है। उपभोक्ता किसी वस्तु को खरीदता और उसकी कीमत इसलिए देता है कि वह उसके लिए उपयोगी होती है।

उपयोगिता वस्तु से मिलने वाली प्रत्याशित तुष्टि होती है। इसकी मात्रा सदा घटती-बढ़ती रहती है। यह व्यक्तिपरक वस्तु है और इसकी माप निरपेक्ष (Absolute) या गणनावाचक (Cordinal) रूप में नहीं की जा सकती। इसे तो केवल क्रमसूचक रूप में ही मापा जा सकता है। इसीलिए उपयोगिता की अंतर्वैयक्तिक तुलना करना संभव नहीं। किसी वस्तु के उपयोगी होने का अर्थ यह नहीं होता कि वह उपभोक्ता के लिए लाभकर भी है। ऐसा हो भी सकता है या नहीं भी। किसी वस्तु की उपयोगिता को कुल, औसत या सीमांत के रूप में कल्पित किया जा सकता है। किसी वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता के योग को कुल उपयोगिता कहा जाता है। कुल उपयोगिता को वस्तु की कुल इकाइयों से भाग देने पर औसत उपयोगिता प्राप्त होती है। अंतिम इकाई की उपयोगिता अर्थात् इस अंतिम इकाई के फलस्वरूप कुल उपयोगिता में होने वाले योग को सीमांत उपयोगिता कहा जाता है। कुल उपयोगिता में वृद्धि तभी तक होती रहती है जब तक कि सीमांत उपयोगिता धनात्मक रहती है। रहती है।

प्रत्येक वस्तु पर ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम लागू होता है, हालाँकि इस नियम की अनेक सीमाएँ भी हैं। जहाँ तक मुद्रा का संबंध है, इस बात पर मतभेद है कि मुद्रा की मात्रा में वृद्धि होने के साथ-साथ उसकी सीमांत उपयोगिता घटती है या नहीं। मार्शल के अनुसार यह नियम मुद्रा पर भी लागू होता है, यद्यपि विश्लेषण में सरलता के लिए उसने मान लिया कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर बनी रहती है।

किसी वस्तु की सीमांत उपयोगिता में होने वाले परिवर्तनों से हमें प्रतिनिधि उपभोक्ता के व्यवहार को जानने में भी सहायता मिलती है। हम यह मान लेते हैं कि उपभोक्ता विवेकी व्यक्ति है और यह भी कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर रहती है और इस आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसका सदा यही प्रयास रहता है कि वस्तु की सीमांत उपयोगिता उसकी कीमत के बराबर हो जाए। इसी के आधार पर वस्तु की माँग अनुसूची बनाई जाती है जिसे माँग वक्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। यही निष्कर्ष सुविख्यात माँग के नियम के रूप में जाना जाता है जो बताता है कि किसी वस्तु की माँग और उसकी कीमत के बीच विपरीत संबंध होता है। जब कीमत गिरती है तब माँग में वृद्धि होती है और इसके विपरीत भी ऐसा ही होता है। इसीलिए माँग वक्र नीचे दायीं ओर झुकता है अर्थात् इसकी ढलान ऋणात्मक होती है।

उपभोक्ता के व्यवहार का विस्तार करके हम सम्सीमांत उपयोगिता नियम पर आते हैं जिसे अधिकतम तुष्टि नियम, अर्धमान नियम और स्थानापन्न नियम के नाम से भी जाना जाता है। इस नियम से अभिप्राय यह है कि किसी उपभोक्ता के सम्मुख जब अनेक

वस्तुएँ होती हैं, तब उन पर वह अपनी कुल आय का वितरण इस प्रकार करता है कि प्रत्येक वस्तु से मिलने वाली सीमांत उपयोगिता बराबर हो। दो वस्तुओं के लिए इस नियम को रेखाचित्र के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ता अतिरेक की संकल्पना इस तथ्य का स्पष्टीकरण करती है कि सामान्यतः कोई उपभोक्ता अपने क्रय के लिए जितनी कीमत देने को तैयार रहता है उससे कम कीमत उसे देनी पड़ती है। किसी वस्तु के बिना ही अपना काम चलाने की बजाय वह जितनी कीमत देने को तैयार रहता है और वास्तव में जितनी कीमत चुकाता है, इन दोनों के बीच के अंतर के रूप में होने वाले आधिक्य को उपभोक्ता अतिरेक कहा जाता है। इसे उपयोगिता या मुद्रा के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है और मापा जा सकता है। पहली स्थिति में सीमांत उपयोगिता वक्र को काम में लाया जाता है और दूसरी स्थिति में मांग वक्र को। उपभोक्ता अतिरेक की मात्रा जिन बातों पर निर्भर करती है, वो हैं : माँग वक्र की स्थिति और ढलाव तथा बाजार में पूर्ति स्थिति। समस्त बाजार तक इस संकल्पना का विस्तार करना तो कठिन है, फिर भी इसका अत्यधिक व्यावहारिक उपयोग है। उदाहरणार्थ अधिकारी कर में कम से कम कमी करने के लिए कर ढांचे में समंजन कर सकते हैं। इसके विपरीत उपभोक्ता अपने लाभ को बढ़ाने के लिए इस संकल्पना का उपयोग कर सकते हैं।

4.10 शब्दावली

औसत उपयोगिता : किसी वस्तु की कुल उपयोगिता को उसकी इकाइयों से भाग देने से प्राप्त उपयोगिता।

गणनावाचक माप : निरपेक्ष पदों या संख्यात्मक इकाइयों में माप।

उपभोक्ता अतिरेक : किसी वस्तु की उपयोगिता का वह अंश जो उपभोक्ता को कीमत चुकाने के बाद आधिक्य के रूप में मिलता है। मुद्रा के रूप में इससे अभिप्राय होता है कि किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता जो कीमत देने को तैयार है और वास्तव में जितनी देता है, इन दोनों के बीच अंतर के रूप में होने वाला आधिक्य।

माँग वक्र : माँग अनुसूची का रेखाचित्र के रूप में प्रस्तुतीकरण।

माँग अनुसूची : विभिन्न निर्दिष्ट कीमतों पर किसी वस्तु के लिए विभिन्न मात्राओं में होने वाली माँग का तालिका के रूप में प्रस्तुतीकरण।

अनुपयोगिता (Disutility), **अतुष्टि** (Dissatisfaction), **ऋणात्मक उपयोगिता** (Negative Utility): इस शब्द से अभिप्राय यह होता है कि विचाराधीन वस्तु के उपभोग से तुष्टि में कमी होती है और उसके फलस्वरूप कुल उपयोगिता घटती है।

घटिया (निर्धन लोगों की) वस्तुएँ (Inferior poormen's goods): वे वस्तुएँ जिनके संबंध में धारणा है कि उनकी खरीद केवल निम्न आय वाले व्यक्ति ही करते हैं। अतः अपनी आय के बढ़ने पर उपभोक्ता इन वस्तुओं के लिए माँग को कम कर देता है।

उपयोगिता की अंतर्वैयक्तिक तुलना (Inter personal Compasion of Utility): इससे अभिप्राय है दो व्यक्तियों को मिलने वाली उपयोगिता के बीच तुलना। इस प्रकार की तुलना केवल उपयोगिता के गणनावाचक माप की स्थिति में ही की जा सकती है।

माँग का नियम (Law of Demand): यह उस प्रवृत्ति का विवरण है कि किसी वस्तु की कीमत के बढ़ने पर उसके लिए माँग घट जाती है तथा कीमत के घटने पर माँग बढ़ जाती है।

महाकाय वस्तुएँ (Lumpy goods/commodities): वे वस्तुएँ जिनकी खरीद छोटी मात्रा में (अर्थात् कम राशि में व्यय के साथ) नहीं की जा सकती।

ह्रासमान सीमांत उपयोगिता या तृप्य आवश्यकता नियम (Law of diminishing marginal utility or law of satiable wants): यह नियम कि किसी दी हुई आवश्यकता की पूर्ति पूर्णतः

की जा सकती है अत: जैसे-जैसे किसी वस्तु को अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त किया जाता है, वैसे-वैसे उसकी सीमांत उपयोगिता कम होती जाती है।

समसीमांत उपयोगिता नियम (Law of Equi-marginal Utility): यह नियम कि कोई विवेकी उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं पर अपने कुल व्यय का वितरण इस प्रकार करने का प्रयास करता है कि सभी वस्तुओं से प्राप्त प्रति रुपया सीमांत उपयोगिता बराबर हो।

सीमांत उपयोगिता: किसी वस्तु की अंतिम इकाई की उपयोगिता। किसी वस्तु की एक और इकाई के आ जाने के कारण यह कुल उपयोगिता में हुआ योग है।

वक्र की ऋणात्मक ढलान: यह इस तथ्य का द्योतक है कि दो पक्षों पर मापित मात्राओं के बीच विपरीत संबंध होता है, जब एक में वृद्धि होती है तब दूसरे में कमी होती है।

क्रमसूचक माप: उपयोगिता की मात्राओं का आरोही या अवरोही क्रम में विन्यास। इस क्रम में रखे गए दो उपयोगिता परिमाणों से यह तो पता चलता है कि कौन अधिक है, पर यह पता नहीं चलता कि कितना अधिक है।

कुल उपयोगिता : उपभोग की गई वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का योग।

उपयोगिता: किसी वस्तु अथवा सेवा की मानव इच्छा या आवश्यकता को तुष्ट करने की क्षमता, किसी वस्तु अथवा सेवा से प्रत्याशित तुष्टि।

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 1 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) सही v) सही vi) सही vii) गलत

2 i) उपयोगिता ii) परिवर्तनीय iii) प्रत्याशित, प्राप्त iv) क्रम सूचक v) गणनावाचक

ख 1 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही v) गलत vi) गलत vii) सही viii) सही

2 i) पूरक ii) स्थानापन्न iii) आय, घटिया iv) स्थिर सीमांत उपयोगिता, स्थिर v) उपयोगिता, मुद्रा vi) बढ़ने, कमी, घटने, वृद्धि

ग 1 i) सही ii) गलत iii) गलत iv) सही v) गलत vi) गलत vii) सही viii) गलत ix) सही

2 i) पूर्ण विभाज्य ii) यथार्थता iii) तैयार रहता है, आधिक्य iv) अवसर v) अधिक

4.12 स्वपरख प्रश्न

1 कुल उपयोगिता, औसत उपयोगिता और सीमांत उपयोगिता के बीच अंतर बताएँ।

2 ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम (तृप्य आवश्यकता नियम) और उसकी सीमाओं के संबंध में बताएँ।

3 ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम को क्या मुद्रा पर लागू किया जा सकता है? अपने उत्तर को स्पष्ट करें।

4 समसीमांत उपयोगिता नियम का आलोचनात्मक परीक्षण करें।

5 (क) एक वस्तु (ख) दो या उससे अधिक वस्तुओं (ग) दो या उससे अधिक क्रेताओं के संदर्भ में उपभोक्ता अतिरेक की संकल्पना की मान्यता के संबंध में चर्चा करें।

6 उपभोक्ता अतिरेक की संकल्पना की व्याख्या करें। इसकी सीमाएँ क्या हैं?

नोट : इन प्रश्नों से इस इकाई को भली भांति समझने में आपको मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। परन्तु अपना उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें क्योंकि ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 5 अनधिमान वक्र विश्लेषण (Indifference Curves Analysis)

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 उपयोगिता विश्लेषण की सीमाएँ
5.3 अधिमान मापक
5.4 अनधिमान वक्र
5.5 अनधिमान वक्रों की मान्यताएँ
5.6 अनधिमान वक्रों की विशेषताएँ
5.7 स्थानापत्ति की सीमांत दर
5.8 उपभोक्ता का संतुलन
5.9 आय-उपभोग वक्र
5.10 कीमत-उपभोग वक्र
5.11 आय तथा स्थानापत्ति प्रभावों का पृथक्करण
5.12 उपभोक्ता मांग वक्र की व्युत्पत्ति
5.13 उपभोक्ता अतिरेक
5.14 अनधिमान वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता
5.15 सारांश
5.16 शब्दावली
5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.18 स्वपरख प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाइ का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपभोक्ताओं के मांग-व्यवहार के उपयोगिता विश्लेषण की कमियों को बता सकें
- अधिमान मापक की अवधारणा का वर्णन कर सकें
- अनधिमान वक्र की अवधारणा और इसकी विभिन्न मान्यताओं की विवेचना कर सकें
- अनधिमान वक्रों की विशेषताओं का उल्लेख कर सकें
- बजट-कीमत रेखा अवधारणा और इसके उपयोगों का वर्णन कर सकें
- आय-उपभोग वक्र का अर्थ और उसकी व्युत्पत्ति की विधि बता सकें
- आय के प्रभाव, स्थानापत्ति के प्रभाव और कीमत के प्रभाव में अंतर स्पष्ट कर सकें
- कीमत के प्रभाव, आय के प्रभाव और स्थानापत्ति के प्रभाव में भेद कर सकें
- कीमत उपभोग वक्र से उपभोग मांग वक्र बना सकें
- समभाव वक्रों की सहायता से उपभोक्ता अतिरेक को माप सकें
- मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण पर अनधिमान वक्रों की श्रेष्ठता की व्याख्या कर सकें।

5.1 प्रस्तावना

इकाई 4 में आपने प्रतिनिधि विवेकशील उपभोक्ता के व्यवहार की जानकारी प्राप्त की है। उसके व्यवहार का विश्लेषण उपयोगिता की अवधारणा पर आधारित था। कुछ महत्वपूर्ण मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए आप उसके व्यवहार को एक प्रमाणिक प्रारूप दे सके थे। आप यह कह सके थे कि वह एक वस्तु की अपनी मांग की मात्रा उसकी कीमत में वृद्धि होने पर कम करेगा और कीमत में कमी होने पर उसकी मात्रा में वृद्धि करेगा। इसी प्रकार, आपने यह भी पढ़ा कि जब वह अपनी कुल आय को बहुत सी वस्तुओं पर व्यय करना चाहेगा, तो सभी वस्तुओं पर व्यय किए गए रुपये की अंतिम इकाई से उसको प्राप्त होने वाली उपयोगिता समान होगी। उसके व्यवहार को सम-सीमांत उपयोगिता नियम में ढाला गया जो प्रतीक रूप में इस प्रकार व्यक्त किया गया है।

$$\frac{MUx}{Px} = \frac{MUy}{Py} = \frac{MUz}{Pz} = \text{मुद्रा की सीमांत उपयोगिता}$$

उपभोक्ता के व्यवहार का यह विश्लेषण आपको मांग के नियम को खोज निकालने और उससे संबंधित कुछ अन्य बातों को समझने में सहायक हुआ है। किंतु इस प्रक्रिया में आपको कुछ मान्यताओं का सहारा लेना पड़ा है जो अत्यधिक अव्यावहारिक मानी गई हैं।

परिणामस्वरूप, उपयोगिता विश्लेषण पर आधारित निष्कर्षों में तीन कमियाँ पाई गई हैं–

i) यह विश्लेषण अव्यावहारिक मान्यताओं पर आधारित है, अतः यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि विश्लेषण के निष्कर्ष यथार्थता का बोध करा पाते हैं या नहीं। कभी-कभी वे भ्रामक भी हो सकते हैं।

ii) उपयोगिता विश्लेषण कुछ महत्वपूर्ण बातों को जैसे घटिया वस्तुओं के संबंध में मांग और कीमत का संबंध, नहीं बता पाता।

iii) यह किसी वस्तु की मांग को प्रभावित करने वाली महत्वपूर्ण शक्तियों पर भी ध्यान नहीं दे पाता।

अतः अर्थशास्त्रियों के लिए यह स्वाभाविक ही था, कि वे मार्शल द्वारा प्रतिपादित उपयोगिता विश्लेषण की कमियों को दूर करने का प्रयास करें और विश्लेषण को एक परिष्कृत रूप दें। उन्होंने इसके लिए अनधिमान वक्रों का विकास किया। इस इकाई में आप अनधिमान वक्रों की अवधारणा का, उनसे संबंधित विभिन्न पहलुओं का तथा उपभोक्ता के व्यवहार पर उनको लागू करने के बारे में अध्ययन करेंगे।

5.2 उपयोगिता विश्लेषण की सीमाएँ

अनधिमान वक्र विश्लेषण की जानकारी प्राप्त करने से पहले आपके लिए उपयोगिता विश्लेषण की सीमाओं को एक व्यवस्थित रूप में जान लेना आवश्यक होगा। अतः अनधिमान समभाव वक्रों की जानकारी से पूर्व इनके बारे में आइए संक्षेप में जान लें।

i) आप इस तथ्य से भली प्रकार परिचित हैं कि उपयोगिता व्यक्तिपरक (subjective) होती है। यह निरपेक्ष और मात्रिक रूप में नहीं मापी जा सकती। यह केवल क्रमसूचक रूप में व्यक्त की जा सकती है। किंतु आज भी यह मान्यता है कि उपयोगिता मात्रिक रूप में मापी जा सकती है।

ii) उपयोगिता विश्लेषण की दूसरी सीमा यह है कि इसमें मुद्रा की सीमांत उपयोगिता को स्थिर माना गया है। इकाई-4 में आपने सभी पहलुओं से यह जानकारी प्राप्त कर ली है कि ह्रासमान सीमांत उपयोगिता नियम मुद्रा पर लागू नहीं होता। यहाँ तक कि मार्शल का भी यही विचार है। किंतु जब उपभोक्ता के मांग विषयक व्यवहार की

बा॰ उठती है तो यह मानकर चला जाता है कि मुद्रा की सीमांत उपयोगिता स्थिर रहती है।

ii) उपयोगिता के मात्रिक मापन की मान्यता के कारण, इस विश्लेषण का विस्तार करने पर यह भी कहा जा सकता है कि उपयोगिता की पारस्परिक तुलना भी संभव है। इस दशा में, आप यह कहने में समर्थ हो सकते हैं कि दो व्यक्तियों, उदाहरण के लिए, अ और ब में से कौन कितनी अधिक निश्चित वस्तु से उपयोगिता प्राप्त करता है। वैज्ञानिक आधार पर उपयोगिता की पारस्परिक तुलना करना संभव नहीं है, क्योंकि उपयोगिता को निरपेक्ष रूप में मापा नहीं जा सकता।

iv) मांग की उपयोगिता विश्लेषण गिफिन विरोधाभास (Giffin Paradox) की व्याख्या नहीं कर सकता। गिफिन ने यह तथ्य प्रस्तुत किया कि रोटी की मांग उसकी कीमत में वृद्धि होने पर भी बढ़ती है। इस तथ्य की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की। उनके समय में इंग्लैंड में श्रमिक अत्यधिक निर्धन थे। रोटी उनके जीवन की आवश्यक वस्तु थी और उन्हें अपनी आय का बहुत बड़ा भाग इसको प्राप्त करने के लिए व्यय करना पड़ता था। रोटी की कीमत में वृद्धि होने पर निर्धन श्रमिक के पास अन्य खाद्य वस्तुओं को जो श्रेष्ठ मानी जाती थी तथा महंगी थी, प्राप्त करने के लिए पर्याप्त द्रव्य नहीं बच पाता था। परिणामस्वरूप, निर्धन श्रमिक को अन्य खाद्य पदार्थों की मांग को कम करना पड़ा तथा रोटी की मात्रा का अधिक उपभोग करना पड़ा जो अन्य खाद्य वस्तुओं की अपेक्षा सस्ती थीं। इसी प्रकार, अर्थशास्त्रियों ने ज्ञात किया कि वस्तु की मांग न केवल उसकी वर्तमान कीमत और सीमांत उपयोगिता से प्रभावित होती है, वरन् उसकी कीमत में प्रत्याशित परिवर्तन से भी प्रभावित होती है।

v) मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण उपभोक्ता की आय में होने वाले परिवर्तनों का वस्तु की मांग पर पड़ने वाले प्रभाव को पृथक रूप से नहीं बतला पाता। यथार्थ तो यह है कि मांग बहुत से कारणों से प्रभावित होती है। आय में होने वाले परिवर्तन उनमें से एक कारण है। जब एक वस्तु की कीमत गिरती है (बढ़ती है) तो इसका अर्थ यह होता है कि उपभोक्ता अन्य वस्तुओं की मात्रा साथ में अधिक (अथवा कम) खरीदने में समर्थ हो जाता है।

vi) मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण की एक अन्य कमी यह भी है कि यह संबंधित वस्तुओं की बात पर ध्यान नहीं दे पाता अथवा वे वस्तुएँ जो या तो पूरक वस्तुएँ अथवा स्थानापन्न वस्तुएं कहलाती हैं इसके क्षेत्र में नहीं आती। उपभोक्ता के मांग विषयक व्यवहार और वस्तु के मांग वक्र की व्याख्या करते हुए वक्रों की अवधारणा मार्शल के उपयोगिता विश्लेषण की बहुत सी कमियों को दूर करती है।

5.3 अधिमान मापक (A Scale of Preferences)

यह अवधारणा अनधिमान वक्रों के विश्लेषण की आधारशिला है। इसकी यह मान्यता है कि एक उपभोक्ता के पास बहुत सी वस्तुओं के विकल्प जोड़ (जैसे x तथा y) होते हैं। कुछ और भी निम्नलिखित मान्यताएँ हैं–

i) उपभोक्ता उपयोगिता अथवा संतुष्टि का निरपेक्ष इकाइयों में मापन नहीं कर पाता। अत: वस्तुओं के किन्हीं दो जोड़ों जैसे x तथा y के बीच वह केवल इतना ही बतला पाता है कि प्रथम जोड़ के दूसरे जोड़ की तुलना में उसे अधिक अथवा बराबर अथवा कम उपयोगिता प्राप्त हुई है। अस्तु, वह अवरोही अथवा आरोही क्रम में वरीयता के आधार पर कितने ही संयोजनों को चुन सकता है। किंतु वह, किन्हीं दो संयोजनों/जोड़ों से प्राप्त होने वाली उपयोगिता में अंतर की मात्रा नहीं बतला पाता।

ii) उपभोक्ता सदैव उस संयोजन का चुनाव करता है जिससे उसे अधिकतम कुल संतुष्टि प्राप्त हो। इस प्रकार जब वस्तुओं के सभी विचारणीय संभव संयोजन (अर्थात् x तथा y) क्रमबद्ध कर लिए जाते हैं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उपभोक्ता ने वस्तुओं के

सभी वैकल्पिक संयोजनों को पृथक-पृथक समूहों में वर्गीकृत कर लिया है जिससे प्रत्येक समूह में आने वाले सभी संयोजनों से प्राप्त होने वाली कुल अनुमानित संतुष्टि समान रहती है। यह भी देखने को मिलता है कि समूहों को उपयोगिता के अवरोही अथवा आरोही क्रम में रखा जाता है। यह भी मान्यता है कि उपभोक्ता एक विवेकी व्यक्ति है, अतः वह संयोजनों के समूहों में से प्रत्येक से अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने वाले समूह का चुनाव करेगा, कम संतुष्टि प्रदान करने वाले समूह का नहीं. तथा एक ही समूह के वैकल्पिक संयोजनों के लिए उसकी वरीयता समान रहेगी (अर्थात् उनके बीच वरीयता के दृष्टिकोण से वह उदासीन रहेगा)। सभी संयोजनों का इस प्रकार क्रम से निर्धारण उपभोक्ता का अधिमान मापक (scale of preferences) कहा जाता है।

आपको यह ध्यान रहना चाहिए कि उपयोगिता के अधिमान की मापन की अवधारणा का उपरोक्त वर्णन कुछ निर्धारित शर्तों अथवा मान्यताओं पर आधारित है।

i) अधिमान के आधार पर विभिन्न संयोजनों का क्रमवार निर्धारण करते समय, उपभोक्ता उन वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए उनकी लागत (अथवा कीमत) पर विचार नहीं करता। वह केवल प्रत्येक संयोजन से प्राप्त होने वाली कुल अनुमानित संतुष्टि के विषय पर ही विचार करता है।

ii) यह मान्यता अंतर्निहित है कि संबंधित उपभोक्ता वैकल्पिक संयोजनों को प्राप्त होने वाली अनुमानित संतुष्टि के आधार पर क्रमवार व्यवस्थित करने में सक्षम है। अर्थात् वह प्रत्येक संयोजन से प्राप्त होने वाली अपेक्षित संतष्टि का उचित अनुमान लगा सकता है।

iii) उपभोक्ता कम संतुष्टि की तुलना में अधिक संतुष्टि को प्राप्त करने का इच्छुक रहता है। इस प्रकार उसका व्यवहार विवेकपूर्ण रहता है।

iv) उपभोक्ता के व्यवहार में एकरूपता होती है। उदाहरण के लिए यदि वह संयोजन 2 की अपेक्षा संयोजन 1 को तथा संयोजन 3 की अपेक्षा संयोजन 2 को वरीयता देता है, तो वह संयोजन 3 की अपेक्षा, संयोजन 1 को ही वरीयता देगा।

5.4 अनधिमान वक्र (Indifference Curves)

अनधिमान वक्र वस्तुओं के वैकल्पिक संयोजनों को प्रस्तुत करने की एक ग्राफिय तथा सरल विधि है, जिसमें उपभोक्ता के अनुसार, सभी संयोजनों के समान संतुष्टि प्राप्त होने की आशा होती है। यदि ये सभी संयोजन एक तालिका के रूप में प्रस्तुत किए जाएँ, तो यह अनधिमान तालिका (Indifference Schedule) कहलाएगा तथा इस तालिका का ग्राफ द्वारा प्रदर्शन अनधिमान वक्र कहलाएगा। सरलता तथा स्पष्टता के लिए अनधिमान अथवा उदासीनता वक्र दो वस्तुओं x तथा y के समूह पर ही विचार करता है। हम यहाँ इस अवधारणा को भली प्रकार समझने के लिएं अनधिमान तालिका तथा इस पर आधारित अनधिमान वक्र का एक काल्पनिक उदाहरण तालिका 5.1 में ले रहे हैं।

तालिका 5.1

एक उपभोक्ता की अनधिमान तालिका

संयोजन संख्या	संतरों की संख्या	केलों की संख्या
1	50	2
2	36	3
3	29	4
4	24	5
5	20	6

6	17	7
7	15	8
8	14	9

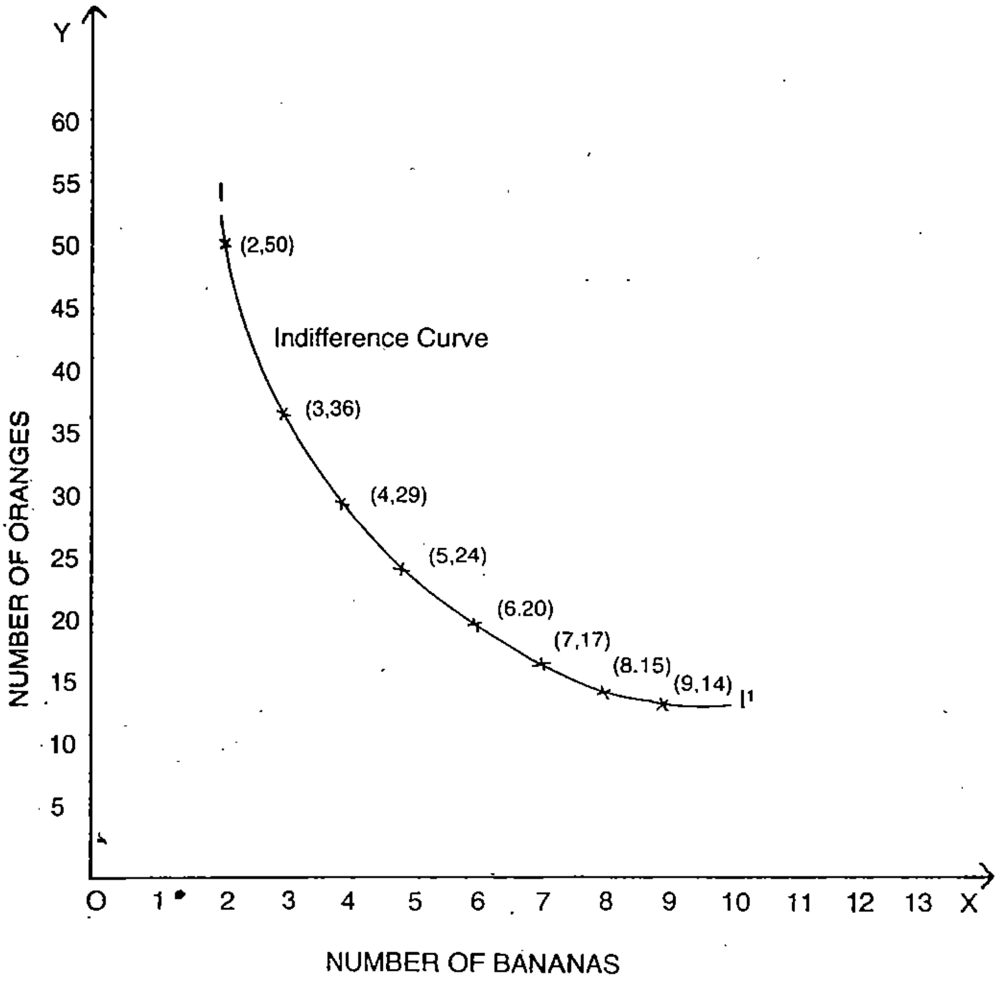

चित्र 5.1

तालिका 5.1 के अनुसार उक्त स्थिति में उपभोक्ता को केले तथा संतरों के विभिन्न संयोजनों से प्राप्त होने वाली कुल संतुष्टि की समान प्राप्त मात्रा होगी। उदाहरण के लिए, 50 संतरों तथा 2 केलों के संयोजन से मिलने वाली कुल संतुष्टि 36 संतरों तथा 3 केलों अथवा 29 संतरों तथा 4 केलों आदि से प्राप्त होने वाली कुल संतुष्टि के समान ही रहेगी। चित्र 5.1 में ये ही संयोजन दर्शाए गए हैं तथा इनको आपस में मिलाने से हमें अनधिमान वक्र मिल जाता है। आप अनधिमान सूची में कुछ विशेषताओं को देखेंगे, जिनका वर्णन इस इकाई के अंत में किया जाएगा। इस प्रकार आपने देखा कि अधिक केलों के साथ कम संतरों का और अधिक संतरों के साथ कम केलों का संयोजन है। आप यह भी देखेंगे कि केलों का संतरों से (अथवा विपरीत) स्थानापन्न अथवा बदलना समान दर पर नहीं हुआ है। अत: प्रत्येक अतिरिक्त केले के लिए उपभोक्ता संतरों की थोड़ी सी मात्रा को त्यागने के लिए तैयार हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक अतिरिक्त संतरे के लिए वह केलों की थोड़ी मात्रा त्यागने के लिए तैयार हो जाता है। इसका कारण यह है कि चित्र 5.1 में दिखलाया गया अनधिमान वक्र एक निश्चित आकृति लिए हुए है जो न केवल ऋणात्मक ढलान (negative slope) है (आप इस शब्द के अर्थ से परिचित हैं) वरन् उद्गम के उन्नतोदर भी हैं (अर्थात्, मूल अथवा उद्गम की ओर वक्रता है)।

आपने पहले देखा है कि एक उपभोक्ता x और y वस्तुओं के सभी वैकल्पिक संयोजनों का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकता है कि एक समूह में दिए गए सभी संयोजनों की कुल

उपयोगिता समान रहती है। ऐसे किसी एक समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला वक्र अनधिमान वक्र कहलाता है। यह एक वर्ग अथवा समूह है, अतः बड़ी संख्या में समभाव वक्रों को इस विधि से बनाया जा सकता है कि प्रत्येक वक्र से एक समूह में दिए गए x तथा y वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों से प्राप्त कुल उपयोगिता समान बनी रहती है।

इस विधि से प्राप्त अनधिमान वक्रों का एक सैट **अनधिमान वक्र चित्र** अथवा **अनधिमान वक्रों का एक तंत्र** अथवा **अनधिमान वक्रों का एक परिवार कहलाता है।** इस इकाई में आप एक अनधिमान वक्र तथा अनधिमान चित्र की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

बोध प्रश्न क

1 अनधिमान वक्र की परिभाषा कीजिये।

....

....

....

2 निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

i) उपभोक्ता के मांग व्यवहार की उपयोगिता विश्लेषण विचारधारा जबकि यह मानकर चलती है कि वह विवेकपूर्ण व्यवहार करती है, अनधिमान वक्र विचारधारा की ऐसी कोई मान्यता नहीं है।

ii) उपयोगिता विचारधारा मांग पर आय के प्रभाव पर विचार करती है।

iii) गिफिन विरोधाभास का कहना है कि लोग वस्तुओं का क्रय निरंतर करते रहते हैं यद्यपि उन्हें इनकी आवश्यकता नहीं होती।

iv) दो वस्तुएँ, x तथा y संबंधित तभी रहती हैं जब एक की मांग में वृद्धि के साथ दूसरी की मांग में भी वृद्धि होती है।

v) घटिया वस्तुएँ वे हैं जिनकी मांग उपभोक्ताओं की आय में वृद्धि होने पर घट जाती है।

vi) मार्शल का उपयोगिता विश्लेषण संबंधित वस्तुओं पर विचार नहीं करता।

vii) उपयोगिता के मूलभूत मापन की मान्यता पर अनधिमान वक्र बनाया जा सकता है।

3 कोष्टक में दिए हुए शब्दों/वाक्यों में से उपयुक्त को चुन कर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) अनधिमान वक्र x तथा y वस्तुओं में वैकल्पिक संयोजनों को इस प्रकार प्रदर्शित करता है कि प्रत्येक संयोजन से प्राप्त होने वाली कुल संतुष्टि...रहती है।

ii) विभिन्न संयोजनों को वरीयता क्रम में व्यवस्थित करते समय एक उपभोक्ता वस्तुओं को प्राप्त करने की लागत पर विचार...करता।

iii) वरीयता का अधिक्रम निर्धारित करते समय, एक उपभोक्ता x तथा y वस्तुओं के समूहों के सभी विकल्पों का वर्गीकरण इस प्रकार करता है कि समूह से संबंधित संयोजनों की...उतनी ही रहती है।

iv) एक उपभोक्ता x तथा y दो वस्तुओं के वैकल्पिक संयोजनों की अपेक्षित संतुष्टि की तुलना करते समय यह कह सकता है कि कौन सा संयोजन अधिक संतुष्टि प्रदान करता है किंतु यह नहीं कह सकता कि और...कितना।

(वही, अधिक, नहीं, कुल संतुष्टि, क्यों)

5.5 अनधिमान वक्रों की मान्यताएँ (Assumptions)

अर्थशास्त्र के अन्य किसी भाग की ही भांति अनधिमान वक्र विश्लेषण भी कुछ मान्यताओं पर आधारित है, जो अपनी शक्ति का क्षेत्र, परिचालन क्षेत्र तथा कमियों का ज्ञान भी कराती हैं।

1 पहली मान्यता यह है कि उपभोक्ता दो वस्तुओं के संयोजनों को लेकर ही चलता है, अर्थात् x तथा y वस्तु। यह सीमा को अत्यधिक संकुचित करने वाली मान्यता है क्योंकि व्यवहार में उपभोक्ता बहुत सी वस्तुओं का प्रयोग करता है। यह संकुचित क्षेत्र वाली मान्यता अनधिमान समभाव वक्रों का रेखाचित्रीय प्रदर्शन सरल बनाती है। ज्यामितिक रूप में भी हम अधिकतम तीन आयामों (Three dimensions) वाला रेखाचित्र बना सकते हैं जबकि दो आधार वाले रेखाचित्र से व्याख्या अधिक सरलतापूर्वक की जा सकती है। अर्थशास्त्रियों को केवल दो वस्तुओं के आधार पर टिके अनधिमान वक्रों की कमियों का आभास है, इसीलिए वे इस कमी को दूर करने के लिए एक वस्तु ऐसी चुनते हैं जिसको संयुक्त वस्तु (composite commodity) कहते हैं अर्थात् ऐसी वस्तु जो अन्य वस्तुओं का भी सामूहिक रूप से एक निश्चित अनुपात में अथवा अधिक सरलतापूर्वक द्रव्य द्वारा प्रतिनिधित्व करती है। यह x वस्तु तथा द्रव्य के वैकल्पिक संयोजन को इस प्रकार प्रकट करती है कि उपभोक्ता प्रत्येक संयोजन से समान कुल संतुष्टि प्राप्त करता है।

2 अनधिमान वक्रों की विचारधारा की दूसरी मान्यता यह है कि उपयोगिता का मापन केवल क्रमसूचक रूप में किया जा सकता है। आपको इस अवधारणा की जानकारी है, अतः इसकी और अधिक विस्तृत चर्चा करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

3 अनधिमान वक्रों की विचारधारा की एक अन्य महत्वपूर्ण मान्यता यह है कि x तथा y दोनों ही वस्तुएँ सकारात्मक सीमांत उपयोगिता वाली हैं। इसका अर्थ यह है कि x तथा y वस्तुओं का कोई भी संयोजन लेने पर यदि एक वस्तु की मात्रा में वृद्धि की जाती है, तो दोनों वस्तुओं से प्राप्त होने वाली कुल सामूहिक संतुष्टि में वृद्धि होगी। अतः उसी स्तर पर कुल संतुष्टि को बनाए रखने के लिए, दूसरी वस्तु की मात्रा में कमी करनी होगी। दूसरे शब्दों में, x वस्तु की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि होने पर y वस्तु की मात्रा मैं कमी करनी होगी और y वस्तु की मात्रा में प्रत्येक वृद्धि x वस्तु की मात्रा में कमी लाएगी।

4 यह भी मान्यता है कि दोनों वस्तुएँ x तथा y क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता नियम का पालन करती हैं। एक वस्तु द्रव्य होने पर भी इस नियम का पालन होता है। मान लीजिए, x वस्तु की मात्रा में एक इकाई की वृद्धि कर नया संयोजन बनाया जाता है। क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता के कारण कुल उपयोगिता में वृद्धि घटती हुई दर पर होगी। अतः y वस्तु की मात्रा में कमी भी घटती हुई दर से होगी अर्थात् उपभोक्ता y वस्तु की घटती हुई मात्रा का त्याग कर x की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए उद्यत हो जाता है। फिर, y वस्तु की सीमांत उपयोगिता उसके स्टॉक में कमी होने पर बढ़ती जाती है, अतः उपभोक्ता y वस्तु की ओर भी थोड़ी-थोड़ी मात्रा का त्याग x वस्तु की अतिरिक्त इकाई के लिए करता रहेगा।

5 x तथा y दोनों वस्तुएँ पूर्णरूप से विभाज्य हैं। इसका अर्थ यह है कि x तथा y दोनों ही वस्तुओं की मात्राओं में वृद्धि (कमी) थोड़ी-थोड़ी मात्रा में की जा सकती है और कुल संतुष्टि में होने वाला फलस्वरूप परिवर्तन बहुत थोड़ा होगा।

5.6 अनधिमान वक्रों की विशेषताएँ (Properties)

अनधिमान वक्रों की कुछ विशेषताएँ (गुण अथवा लक्षण) होती हैं, जो मान्यताओं से प्रभावित होती हैं तथा इन मान्यताओं पर ही अनधिमान वक्रों की विचारधारा आधारित है और इनसे ही अनधिमान वक्र बनाए जाते हैं।

1 **अनधिमान वक्र नीचे दाहिनी ओर को झुकता है:** अनधिमान वक्र का झुकाव ऋणात्मक होता है। इस गुण का अर्थ यह है कि X वस्तु की इकाई में वृद्धि Y वस्तु की मात्रा में कमी लाती है। यह गुण इस मान्यता पर आधारित है कि दोनों ही वस्तुएँ X तथा Y की सीमांत उपयोगिता धनात्मक है। परिणामस्वरूप, जब X वस्तु की अधिक मात्रा के कारण कुल उपयोगिता में वृद्धि होती है तो Y वस्तु की मात्रा में कमी होने से कुल उपयोगिता समान मात्रा में कम हो जाती है। इस बात को चित्र 5.1 में दर्शाया गया है।

2 **अनधिमान वक्र आरम्भ बिंदु की ओर उन्नतोदर (convex) होते हैं।** अर्थात् आरम्भ बिंदु की ओर इसका आंतरिक वक्र रूप होता है। आप इस बात को समझने के लिए इस मान्यता को याद रखें कि दोनों ही वस्तुएँ X तथा Y क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता नियम का पालन करती हैं।

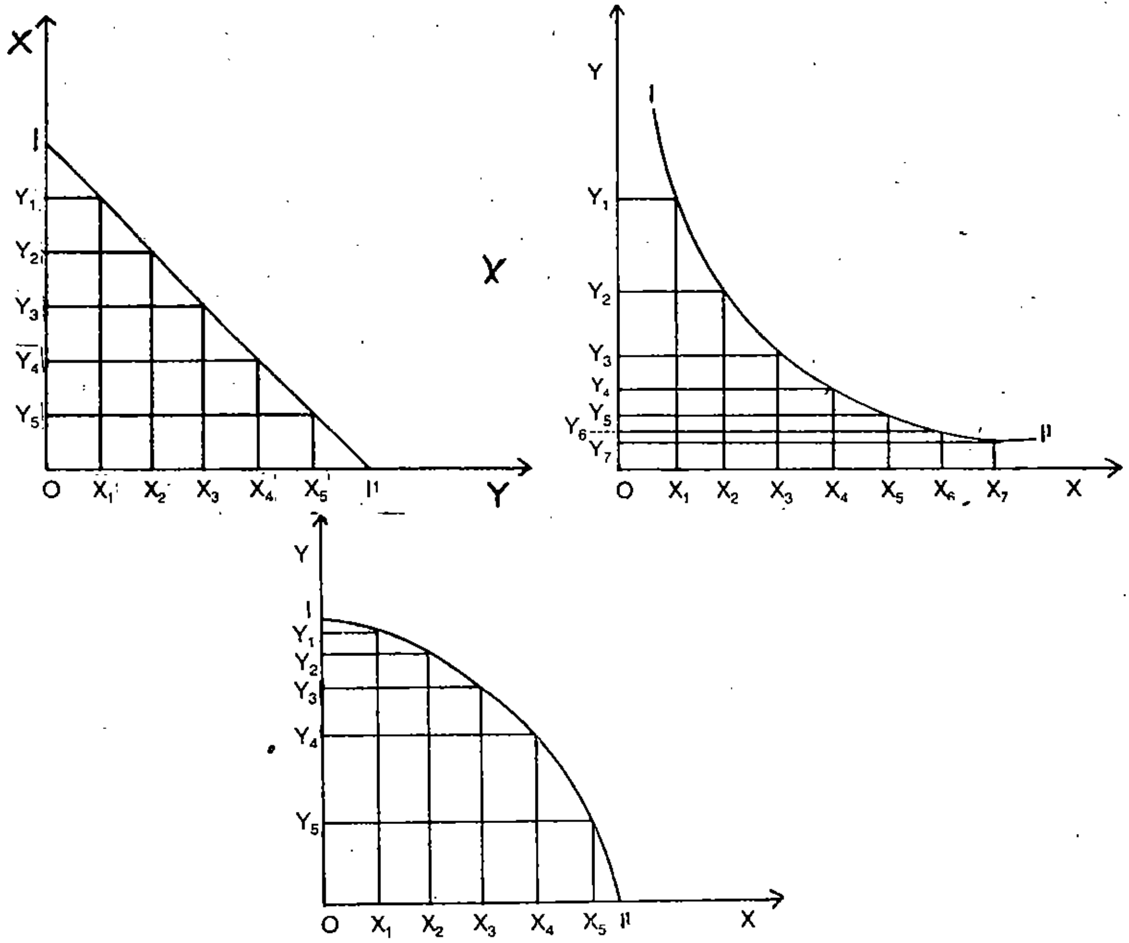

(चित्र 5.2 क 5.2 ख तथा 5.2 ग)

अब आप चित्र 5.2 क, 5.2 ख, 5.2 ग को देखिए। इन तीनों ही चित्रों में अनधिमान वक्र का झुकाव नीचे दाहिनी ओर को है। किंतु आकृति 5.2 ख में ही अनधिमान वक्र

मूल के उन्नतोदर है। चित्र 5.2 क में अनधिमान वक्र एक सीधी रेखा है जिसका अर्थ यह है कि Y वस्तु की इकाइयों में कमी X वस्तु की मात्रा में वृद्धि के बराबर है। यह स्थिति तब होती है जब दोनों ही वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता स्थिर रहती है। चूंकि Y वस्तु की सीमांत उपयोगिता भी स्थिर रहती है, अतः कुल उपयोगिता में होने वाली कमी और परिणामस्वरूप X वस्तु की मात्रा में होने वाली कमी भी समान होनी चाहिए। चित्र 5.2 क में अनुपात इस प्रकार दर्शाए गए हैं–

$$\frac{Y_1 Y_2}{X_1 X_2} = \frac{Y_2 Y_3}{X_2 X_3} = \frac{Y_3 Y_4}{X_3 X_4} = \;.....$$

इसके विपरीत आकृति 5.2 ख को देखिए। जब X वस्तु की मात्रा में एक समय में एक इकाई की वृद्धि की जाती है तब Y वस्तु की कमी की मात्रा गिरती जाती है ($Y_1 Y_2$, $Y_2 Y_3$, $Y_3 Y_4$ .....) यह इसलिए है कि क्रमागत सीमांत उपयोगिता नियम अपना काम कर रहा है। जैसे-जैसे उपभोक्ता के पास X वस्तु के स्टॉक में वृद्धि हो जाती है, इसकी सीमांत उपयोगिता गिरती जाती है तथा कुल उपयोगिता में वृद्धि बहुत कम मात्रा में होती है। फलस्वरूप, Y वस्तु की मात्रा में भी घटती दर से कमी आती है। इसका कारण यह है कि इसकी सीमांत उपयोगिता, उपभोक्ता के पास स्टॉक में कमी आने से बढ़ती जाती है। चित्र 5.2 ख में अनुपात इस प्रकार दर्शाए गए हैं–

$$\frac{Y_1 Y_2}{X_1 X_2} > \frac{Y_2 Y_3}{X_2 X_3} > \frac{Y_3 Y_4}{X_3 X_4} > .....$$

अब आप तीसरी स्थिति पर भी विचार कर लीजिए अर्थात्, ऐसी स्थिति जिसमें वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने पर उसकी सीमांत उपयोगिता में निरंतर वृद्धि होती जाती है। यह पूर्णतः एक भ्रमात्मक मान्यता है। किंतु इसको यहाँ अनधिमान वक्र की आकृति दिखाने के लिए ही प्रयोग किया जा रहा है। इस स्थिति में हम देखते हैं कि X वस्तु की इकाई में क्रमशः वृद्धि करने पर Y वस्तु की मात्रा में तीव्रता से कमी होती है। चित्र 5.2 ग में यह बात निम्नलिखित ढंग से दर्शाई गई है–

$$\frac{Y_1 Y_2}{X_1 X_2} > \frac{Y_2 Y_3}{X_2 X_3} > \frac{Y_3 Y_4}{X_3 X_4} \;.....$$

इस व्याख्या को एक संकेत के रूप में समझाना लाभदायक होगा। मान लीजिए MUx और MUy क्रमशः X और Y की सीमांत उपयोगिता को प्रदर्शित करती है। तब X की एक इकाई की सीमांत उपयोगिता (जो Δx से संकेतिक की जा रही है) को कुल उपयोगिता में जोड़ देने पर MUx तथा X वस्तु में हुए परिवर्तन की मात्रा का गुणनफल इसका बोध कराएगा, अर्थात् यह MUx. Δx होगा। इसी प्रकार कुल उपयोगिता में कमी का MUy. Δy से बोध होगा। एक ही अनधिमान वक्र पर दो संयोजनों के होने पर कुल उपयोगिता में वृद्धि उसमें होने वाली कमी के बराबर होनी चाहिए, अर्थात्,

$$MUx.\ \Delta x = MUy.\ \Delta y$$

अथवा

$$\frac{MUx}{MUy} = \frac{\Delta y}{\Delta x} \qquad .....(1)$$

अब आप समीकरण (1) को देखिए। $\Delta y/\Delta x$ के अनुपात का मूल्य y की मात्रा का बोध कराता है जो उपभोक्ता x वस्तु की एक अधिक इकाई प्राप्त करने के लिए त्यागने को तैयार रहता है। यदि x तथा y की मात्रा में परिवर्तन होने पर MUx तथा MUy में परिवर्तन नहीं होता, तो $\Delta y/\Delta x$ का अनुपात नहीं बदलेगा। उपभोक्ता x वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों को प्राप्त करने के लिए y वस्तु की उतनी ही इकाइयाँ त्यागने के लिए तैयार रहेगा। इन परिस्थितियों में, अनधिमान वक्र एक सीधी रेखा में रहता है। इसे चित्र 5.2 क में दिखाया गया हैं। इसके विपरीत यदि x तथा y दोनों ही

की सीमांत उपयोगिता घट रही है, तब जैसे ही x वस्तु की मात्रा (स्टॉक) में वृद्धि होती है, MUx में गिरावट होगी और जब y वस्तु की मात्रा में उपभोक्ता के पास कमी हो जाती है तब MUy में वृद्धि हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि MUx/MVy का अनुपात घटता जाता है। अर्थात्, उपभोक्ता y की घटती हुई मात्रा को x की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई के बदले त्यागने के लिए तैयार हो जाता है। अतः इस दशा में, अनधिमान वक्र आरम्भ बिंदु की ओर उन्नतोदर रहता है। यह चित्र 5.2 ख में दिखाया गया है। दूसरी ओर, यदि x तथा y दोनों ही वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता में वृद्धि हो रही हो, तो x की मात्रा (स्टॉक) में वृद्धि होने से उसकी सीमांत उपयोगिता में वृद्धि होगी, जबकि y की मात्रा में कमी होने पर y की सीमांत उपयोगिता में कमी होगी। इस स्थिति में MUx/MUy के अनुपात में मूल्य में वृद्धि होगी। जिससे उपभोक्ता y की अधिक मात्रा x की प्रत्येक अतिरिक्त मात्रा प्राप्ति के लिए देने को तैयार हो जाएगा। सीमांत उपयोगिता के इस व्यवहार से अनधिमान वक्र आरम्भ बिंदु की ओर नतोदर (Concave) हो जायेगा। यह चित्र 5.2 ग में दिखाया गया है। आप देखेंगे कि **यहाँ चर्चित की गई तीन स्थितियों में अनधिमान वक्र पर लागू होने वाली विशेषता इसका आरम्भ बिंदु की ओर उन्नतोदर होना है।** न तो यह **सीधी रेखा है और न ही उद्गम की ओर वक्रित है।**

3 **कोई भी दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को नहीं काटते:** अनधिमान वक्र की इस विशेषता का आधार x और y दोनों ही वस्तुओं की सकारात्मक सीमांत उपयोगिता का होना है। जब ये क्रम एक दूसरे को काटते हैं, तो यह विशेषता अनुपालित नहीं होगी। इस विशेषता के तथ्य को चित्र 5.3 की सहायता से समझाया जा सकता है। मान लीजिए, दो अनधिमान वक्र I तथा II एक दूसरे को P बिंदु पर काटते हैं। समभाव वक्र I पर A बिंदु लें तथा इस बिंदु से x शीर्ष पर एक लम्ब डालें जो अनधिमान वक्र II को B बिंदु पर काटता है।

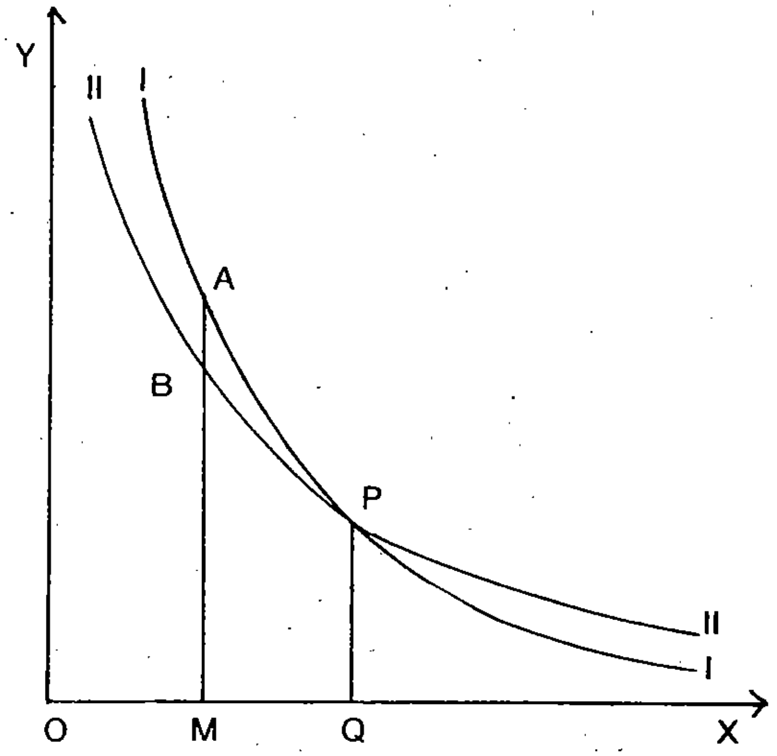

चित्र : 5.3

देखिए, दोनों ही बिंदु P तथा A अनधिमान वक्र I पर ही हैं, अतः इन दोनों बिंदुओं द्वारा व्यक्त संयोजन एक सी ही संतुष्टि प्रदान करेंगे।

अर्थात् x का OQ और y का PQ, x के OM और y के AM के बराबर होंगे ... (2)

इसी प्रकार P तथा B दोनों बिंदु भी अनधिमान II पर हैं जिससे x का OQ और y का PQ, x के OM और y के BM के बराबर हैं......(3)

समीकरण (2) तथा (3) से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि.....

xका Om और y का AM, x के OM और y के BM के बराबर हैं, अर्थात् y का AM, y के BM के बराबर है।

अब y की दो विभिन्न मात्राएँ AM तथा BM उतनी ही कुल संतुष्टि तब जुटा पाएंगी जब y की अतिरिक्त मात्रा AB की उपयोगिता शून्य रहे। यह बात इस मान्यता को काट देती है कि y की सकारात्मक सीमांत उपयोगिता है। दूसरे शब्दों में, P बिंदु दो विभिन्न अनधिमान वक्रों पर एक साथ नहीं हो सकता, अतः एक दूसरे को काटने का बिंदु नहीं बन सकता। अथवा इस बात को दूसरे ढंग से कहा जा सकता है कि कोई भी दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को नहीं काट सकते।

4 **अनधिमान वक्र निरंतर है (Continuous):** इसका अर्थ यह है कि समभाव वक्र में कोई भी अंतराल नहीं होता है। इस विशेषता का आधार यह मान्यता है कि x तथा y दोनों ही वस्तुएँ पूर्णतः विभाज्य होती हैं और उनकी मात्राओं में छोटे-छोटे भागों में परिवर्तन किया जा सकता है।

5 **अनधिमान वक्र एक दूसरे के समानान्तर नहीं होते:** यद्यपि कोई दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को नहीं काटते तथापि वे एक दूसरे के समानान्तर भी नहीं होते। दोनों अनधिमान वक्रों की शीर्ष तथा समतल, दोनों की दूरी आगे बढ़ने के साथ बदलती रहती है। इस विशेषता का आधार यह मान्यता है कि x तथा y दोनों ही वस्तुओं पर क्रमागत घटती हुई सीमांत स्थानापन्न दर (marginal rate of substitution) लागू होती है, फलस्वरूप अनधिमान वक्र उद्गम की ओर उन्नतोदर रहते हैं।

6 **ऊंचे स्थान वाले अनधिमान वक्र की कुल संतुष्टि अपेक्षाकृत अधिक होती है:** एक ऊंचे स्थान वाला अनधिमान वक्र वह है जो आरम्भ बिंदु से अधिक दूरी पर होता है। बिल्कुल बायीं ओर वाले वक्र (अतः आरम्भ बिंदु से समीप) से तुलना करने पर, इसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार होती हैं।

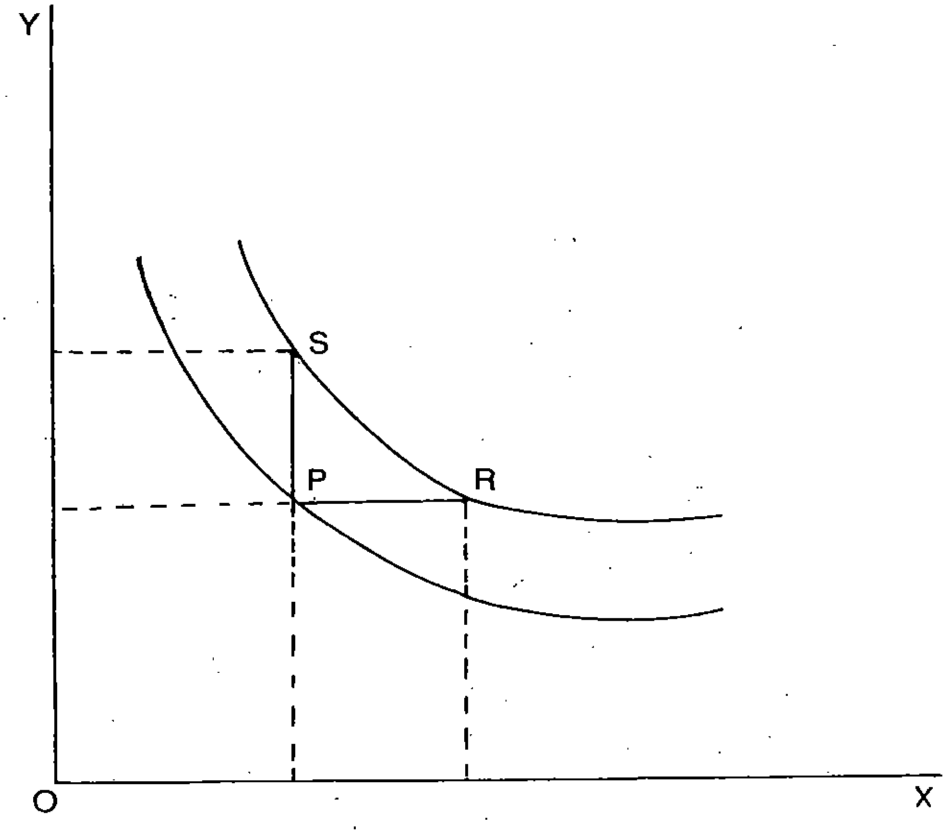

ऊपर वाले अनधिमान वक्र पर P बिंदु लीजिए और दाईं ओर समतल चलते हुए ऊंचे स्थान वाले अनधिमान वक्र पर R बिंदु तक आइए, अब P तथा R बिंदु पर दोनों संयोजनों में y वस्तु की समान मात्रा होगी किंतु R बिंदु वाले संयोजन में X वस्तु की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होगी, अतः इस संयोजन की कुल संतुष्टि अधिक होगी। इसी प्रकार, यदि आप P बिंदु से शीर्ष की ओर चलें और ऊंचे स्थान वाले अनधिमान वक्र पर S बिंदु तक पहुँचे। तब दोनों ही बिंदु P तथा S के संयोजनों में X वस्तु की मात्रा समान होगी, किंतु Y वस्तु की मात्रा S बिंदु वाले संयोजन में अधिक होगी। अतः S बिंदु वाला संयोजन अधिक व कुल संतुष्टि प्रदान करेगा। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्गम से दूर वाले अनधिमान वक्रों में कुल संतुष्टि अधिक होती है।

5.7 स्थानापत्ति की सीमांत दर (Marginal Rate of Sub-stitution

अनधिमान वक्र विश्लेषण में यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवधारणा मानी जाती है। X के लिए स्थानापत्ति की Y की सीमांत दर (MRS) उपभोक्ता द्वारा X वस्तु की एक अतिरिक्त मात्रा के बदले Y वस्तु को त्यागने की मात्रा का मापन करती है। इस इकाई के पूर्व भाग में आपने देखा है कि इस प्रकार की दर $\Delta y/\Delta x$ के अनुपात अथवा दर के अलावा कुछ भी नहीं है, जो सदैव MUx/MUy के बराबर रहती है। अन्य शब्दों में, Y के लिए X वस्तु की MRS, X वस्तु और Y वस्तु की सीमांत उपयोगिता के अनुपात के सदैव समान रहती है। चूँकि दोनों वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता बदलती रहती हैं, अतः MRS भी बदलती रहती है। यह ध्यान में रखिए कि जब हम (Y के लिए X की MRS के स्थान पर) X के लिए Y की MRS की बात करते हैं, तो हम ऐसी परिस्थिति के बारे में चर्चा करते हैं जिसमें उपभोक्ता (X के स्थान पर) Y वस्तु की अतिरिक्त मात्राओं को प्राप्त करता है ओर (Y के स्थान पर) X की मात्राओं का त्याग करता है। फलस्वरूप, X के लिए Y वस्तु की MRS, $-x/\Delta y$ तथा MUy/MUx के अनुपात के बराबर हैं।

यह ध्यान रहे कि उपभोक्ता के पास X वस्तु की मात्रा के स्टॉक में वृद्धि होने पर X के लिए Y की MRS घटती जाती है, क्योंकि इससे MUx में गिरावट आती है, तथा MUy में वृद्धि होती है, परिणामस्वरूप अनुपात में गिरावट। फिर, **ज्यामितिक विधि से** MRS

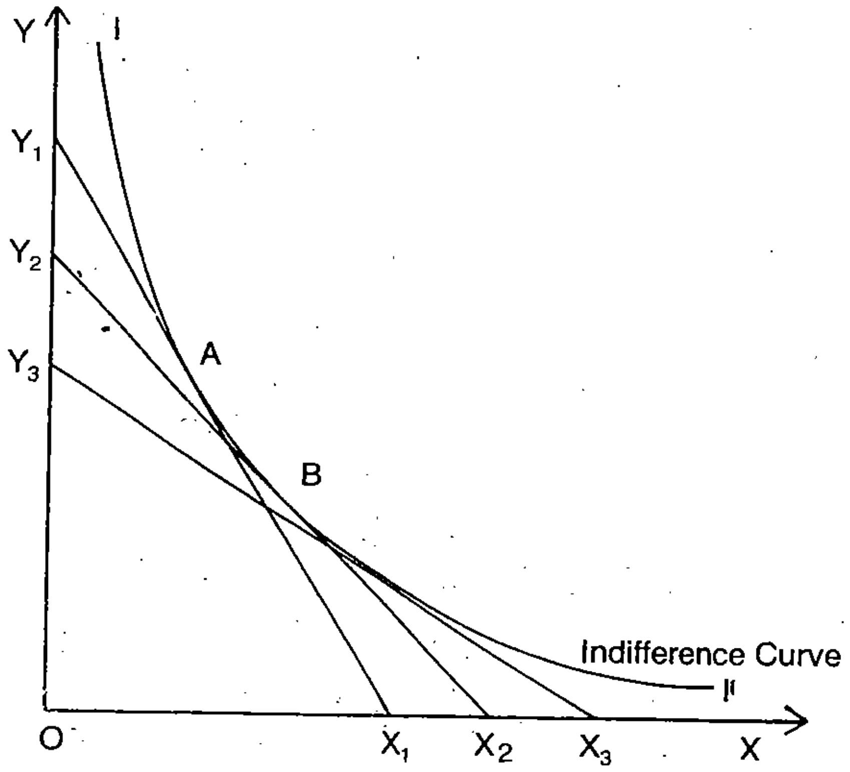

समभाव वक्र पर स्पर्श रेखा (tangent) **का ढलान प्रदर्शित होती है।** अनधिमान वक्र की उन्नतोदरता तथा Y के लिए X की MRS की गिरती हुई प्रवृति एक ही बात है। जैसे-जैसे हम एक समभाव वक्र पर बाएँ से दाएँ की ओर चलते जाते हैं (और परिणामस्वरूप X की मात्रा में वृद्धि होती जाती है), हमको ज्ञात होता जाता है कि बाद में खींची जाने वाली स्पर्श रेखा (tangents) का झुकाव गिरता जाता है। चित्र 5.4 में यह प्रदर्शित किया गया है। A बिंदु पर Y के लिए X की MRS, A बिंदु पर खींची गई स्पर्श रेखा (tangent) के झुकाव से अर्थात् OY_1/OX_1 के अनुपात प्रदर्शित होती है। इसी प्रकार, Y के लिए X की MRS बिंदु B पर OY_2/OX_2 से प्रदर्शित की गई है, जो कि OY_1/OX_2 से कम है। Y के लिए X की MRS बिंदु C पर अभी भी कम है और OY_3/OX_3 के बराबर है।

तालिका 5.2

MRS की गणना (Calculation)

संयोजन संख्या	संतरों की संख्या (Y)	केलों की संख्या (X)	Δy	Δx	Δy/Δx	Δx/Δy
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1	50	2	-14	1	-14	-0.07
2	36	3	- 7	1	- 7	-0.14
3	29	4	- 5	1	- 5	-0.20
4	24	5	- 4	1	- 4	-0.25
5	20	6	- 3	1	- 3	-0.33
6	17	7	- 2	1	- 2	-0.50
7	15	8	- 1	1	- 1	-1.00
8	14	9	अनु.	अनु.	अनु.	अनु.

अनु. = अनुपलब्ध

अनधिमान सूची जो तालिका 5.1 में दी हुई है को देखिए तथा उससे MRS की गणना कीजिए। इसके लिए आपको एक संयोजन से दूसरे संयोजन में X तथा Y वस्तुओं की मात्रा में होने वाले परिवर्तन (अर्थात् ΔX और ΔY) के मूल्यों को ज्ञात करना होगा। यहाँ Y वस्तु की वह मात्रा जो उपभोक्ता ΔX के लिए देने को तैयार है ΔY प्रदर्शित करती है। एक बार जब इस प्रकार का विनिमय होता है, तो ΔY का मूल्य, जो उपभोक्ता ΔX के लिए देने को तैयार है, परिवर्तित हो जाता है। अतः जब उपभोक्ता संयोजन संख्या 1 (50 संतरे तथा 2 केले) के संयोजन को चुनता है, तो वह 1 केले के लिए 14 संतरे देने के लिए तैयार हो जाता है। इसी प्रकार जब वह संयोजन सं. 3 को चुनता है, तो वह 1 केले के लिए केवल 5 संतरे ही देने के लिए तैयार होता है। संतरों तथा केलों की ये संख्याएँ अर्थात् ΔY तथा ΔX तालिका 5.2 के स्तम्भ सं. 5 और 6 में दर्शाए गए मूल्य ΔY/ΔX के अनुपात को अर्थात् Y के लिए X की MRS को बोधित करते हैं। इस अनुपात के ऋणात्मक चिन्ह को यदि अनदेखा कर दिया जाता है तो इस स्थिति में MRS/14 लिखी जायेगी (—) 14 नहीं। इसी प्रकार, जब उपभोक्ता संयोजन सं. 2 को पसंद करता है तब संतरों के लिए केलों की उसकी MRS है। इसी प्रकार अन्य संयोजनों की गणना की गई है।

केलों के लिए संतरों की MRS की गणना संतरों की मात्रा में वृद्धि से केलों की मात्रा में होने वाली कमी के आधार पर की गई है। इस स्थिति में अनुपात Δx/ΔY है। केलों के लिए संतरों की क्रमशः MRS तालिका 5.2 की स्तम्भ सं. 7 में दिखाई गई है। संयोजन सं. 8 में केलों के लिए संतरों की MRS 1/1 अथवा 1 है, संयोजन सं. 7 में यह 1/2 अथवा 0.50 है, संयोजन सं. 6 में यह 1/3 अथवा 0.33 है और इसी प्रकार इसकी आगे गणना की गई है। यहाँ भी आप देख रहे हैं कि उपभोक्ता द्वारा केले के स्थान पर संतरों

का अधिक चुनाव करने पर MRS की दर गिरती जा रही है। प्रत्येक एक अतिरिक्त संतरे के लिए उपभोक्ता पहले की अपेक्षा केले की कम मात्रा देने के लिए तैयार हो रहा है।

बोध प्रश्न ख

1 अनधिमान वक्र की महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

2 स्थानापत्ति की सीमांत दर का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

3 निम्नलिखित कथनों में कौन सा सही कथन है व कौन सा गलत, बताइए।

i) अनधिमान वक्र विचारधारा की मान्यता है कि X वस्तु पर क्रमगत ह्रास सीमांत नियम लागू होता किंतु द्रव्य पर नहीं। ....

ii) अनधिमान वक्र विश्लेषण में दोनों ही वस्तुएँ X तथा Y पूर्णरूप से विभाजित की जा सकती हैं। ....

iii) अनधिमान वक्र बनाते समय यह मानकर चला जाता है कि एक वस्तु की सीमांत उपयोगिता सकारात्मक है और दूसरी वस्तु की नकारात्मक। ....

iv) एक अनधिमान वक्र का झुकाव सदैव नीचे की ओर होता है किंतु यह आरम्भ बिंदु की ओर नतोदर (concave) भी हो सकता है। ....

v) दो अनधिमान वक्र सदैव एक दूसरे के समानान्तर होते हैं। ....

vi) दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को कभी भी नहीं काट सकते। ....

vii) अनधिमान वक्र की आरम्भ-बिंदु की ओर उन्नतोदरता तथा MRS का गिरना, दोनों ही एक बात हैं जो विभिन्न रूपों में कही जाती है। ....

viii) जैसे-जैसे हम बाएँ से दाएँ की ओर जाते हैं, सीधी रेखा वाले अनधिमान वक्र में "MRS" गिरती जाती है। ....

ix) अनधिमान वक्र में MRS एक निश्चित बिंदु पर खींची गई स्पर्श रेखा के झुकाव के बराबर होती है। ....

4 उपयुक्त शब्दों/वाक्यांशों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) X तथा Y की MRS को....द्वारा परिभाषित X वस्तु की अतिरिक्त इकाई के लिए किया जाता है, जिसे उपभोक्ता सीमांत बिंदु पर त्यागने के लिए तैयार रहता है।

ii) X तथा Y की MRS गिरती है, क्योंकि X तथा Y दोनों ही पर.... लागू होता है।

iii) अनधिमान वक्र की उन्नतोदरता इस मान्यता पर आधारित है कि दोनों ही वस्तुएँ....का अनुपालन करती हैं।

iv) यदि MRS स्थिर रहती है तो समभाव वक्र....रहेगी।

v) दोनों वस्तुएँ X तथा Y....इस मान्यता पर अनधिमान वक्र निरंतर बना रहता है।

5.8 उपभोक्ता का संतुलन (Consumer's Equilibrium)

उपभोक्ता संतुलन का निर्धारण किस प्रकार होता है, इसको समझना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि इसके वगैर निश्चित वस्तु X के लिए मांग वक्र बनाना तथा उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण करना संभव नहीं है। उपभोक्ता-संतुलन की अवधारणा से उपभोक्ता की उस स्थिति का ज्ञान होता है जो यह निश्चित आय तथा निश्चित कीमत पर प्राप्त करता है तथा आय तथा कीमत में परिवर्तन न होने के समय तक पूर्व-स्थिति को बनाए रखता है। उपभोक्ता के संतुलन की स्थिति से आशय यह है कि उपभोक्ता X वस्तु की कितनी मात्रा खरीदना चाहेगा और इसके लिए Y वस्तु (द्रव्य) की कितनी मात्रा देना चाहेगा, और कितनी Y (द्रव्य) की मात्रा वह अपने पास रखना चाहेगा।

बजट-कीमत रेखा (Budget-Price Line)

बजट कीमत रेखा की अवधारणा का ज्ञान उपभोक्ता-संतुलन का विश्लेषण करने के लिए आवश्यक है और विभिन्न नामों से–"कीमत रेखा" "बजट रेखा" अथवा "बजट-कीमत रेखा" के नाम से जानी जाती है। हम अपनी चर्चा में बजट कीमत रेखा BPL का प्रयोग करेंगे।

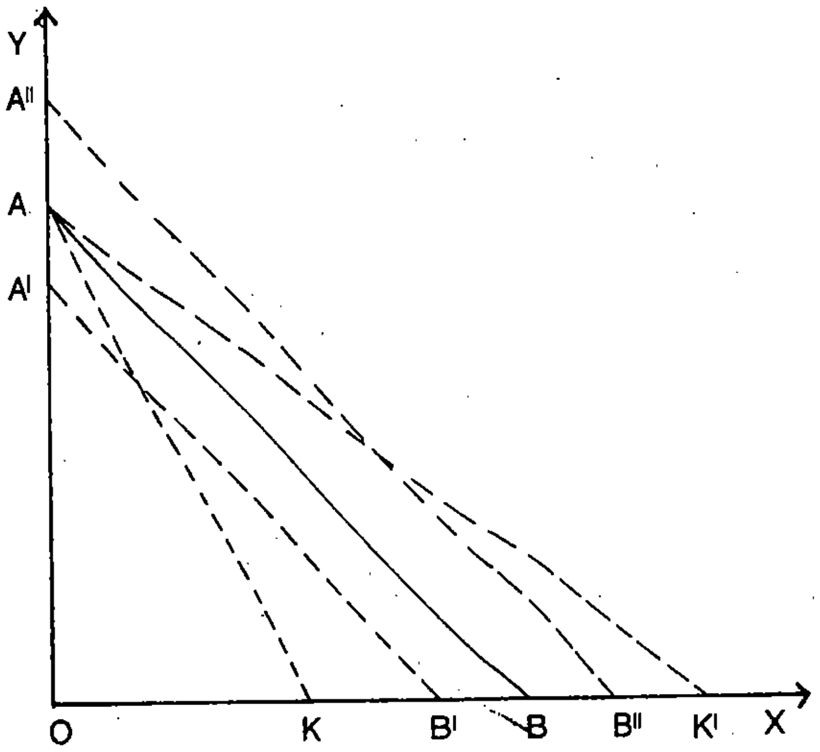

चित्र 5.5

एक उपभोक्ता की बजट कीमत रेखा X तथा Y के विभिन्न संयोजनों को जो बाज़ार के अनुसार संभव हो सकते हैं, प्रदर्शित करती है। अपने एक सिरे पर यह रेखा X वस्तु से रहित Y वस्तु की अधिकतम मात्रा (चित्र 5.5 में A बिंदु) तथा दूसरे सिरे पर Y वस्तु से रहित X वस्तु की अधिकतम मात्रा (चित्र 5.5 में B बिंदु) प्रदर्शित करती है। इन दोनों बिंदुओं को मिलाने वाली सीधी रेखा (अर्थात् AB सीधी रेखा) बजट कीमत रेखा है तथा उपभोक्ता को मिलने वाले X तथा Y के सभी वैकल्पिक संयोजनों को प्रदर्शित करती है। उपभोक्ता जितनी X वस्तु की मात्रा चाहता है ले सकता है (किंतु OB अधिकतम सीमा होगी)। उसे OA/OB प्रति इकाई की दर से कीमत चुकानी होगी। उदाहरण के लिए, चित्र 5.6 में यदि उपभोक्ता X वस्तु की OM इकाई चाहता है, तो उसे Y की AQ मात्रा

इसके लिए चुकानी होगी और उसके पास X वस्तु की OM मात्रा तथा Y वस्तु की OQ मात्रा का संयोजन होगा। याद रहे X की प्रति इकाई की कीमत BPL की ढलान है।

इस संबंध में इन बातों पर भी ध्यान दीजिए। यदि उपभोक्ता की आय OA तक गिर जाती है, तो नई BPL A' B' हो जाएगी। किंतु यदि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है, किंतु X वस्तु सस्ती हो जाती है, तो इस स्थिति में उपभोक्ता X का अधिक मात्रा में क्रय कर सकेगा मान लीजिए OK, तब BPL सिरे A पर घूमती रहेगी और AK' की स्थिति में आ जाएगी। इसी प्रकार, यदि X वस्तु की कीमत में वृद्धि हो जाती है, तब उपभोक्ता X वस्तु का कम मात्रा में क्रय कर पायेगा। मान लीजिए OK तथा BPL की स्थिति AK पर होगी। अतः आपको याद रखना चाहिए कि जब उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होता है, किंतु X वस्तु की कीमत में परिवर्तन नहीं होता, तब नई BPL, पुरानी BPL के समानान्तर रहती है और उसकी ढलान भी पहले जैसी ही रहती है। दूसरी ओर यदि उपभोक्ता की आय स्थिर रहती है किंतु X वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है, तो नई BPL की ढलान भी बदल जाती है। इस स्थिति में भी यह Y अक्ष पर पुराने बिंदु A से ही प्रारम्भ होगी किंतु X अक्ष को विभिन्न बिंदुओं पर स्पर्श करेगी। आपको यह भी याद रखना चाहिए कि एक निश्चित BPL एक ही और केवल एक ही अनधिमान वक्र पर स्पर्श रेखा (tangent) होगी। यह या तो अन्य सभी अनधिमान वक्रों को काटती हुई जाएगी अथवा उनको छुएगी भी नहीं। एक बार जब एक BPL एक अनधिमान वक्र को काटती है, तो यह दूसरी बार भी काटेगी क्योंकि पहले वाली एक सीधी रेखा है और बाद वाली आरम्भ-बिंदु की ओर उन्नतोदर (convex) है। चित्र 5.6 से बजट-कीमत रेखा AB अनधिमान वक्र III पर स्पर्श-रेखा है। यह वक्र I तथा II को काटती है लेकिन III को छूती भी नहीं। यदि आप एक ऐसी BPL खींचने का प्रयास करें, जो दो विभिन्न अनधिमान वक्रों पर स्पर्श रेखा हो, तो आप देखेंगे कि यह दोनों अनधिमान वक्रों को काटती हुई जाएंगी, किंतु आप यह भी जानते हैं कि कोई दो उदासीनता वक्र एक-दूसरे को नहीं काटते हैं।

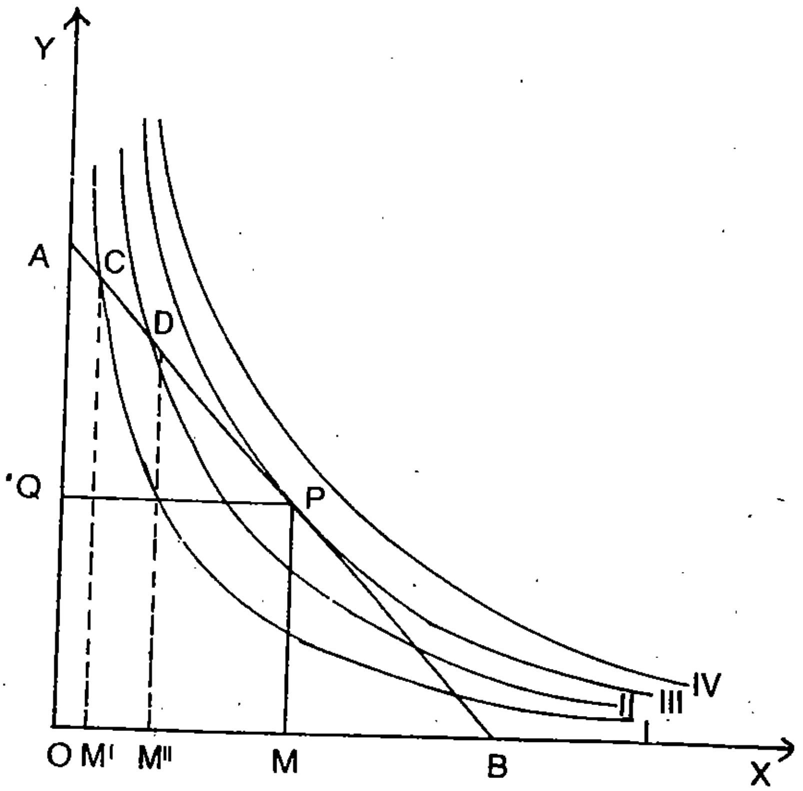

चित्र 5.6

इस इकाई में आप पहले जान चुके हैं कि एक ऊँचे स्थान वाला उदासीनता वक्र कुल संतुष्टि का अधिक बोध कराता है। अतः उपभोक्ता विवेकी होने के कारण बाज़ार की

परिस्थितियों को देखते हुए ऊँचे से ऊँचे अनधिमान वक्र तक पहुँचने का प्रयास करेगा (इसका अर्थ यह हुआ कि BPL जिस वक्र तक उसे पहुंचा सकती है, उस तक वह पहुँचेगा) अधिकतम संतुष्टि की स्थिति BPL तथा अनधिमान वक्र के बीच पड़ने वाले स्पर्श रेखा के बिंदु पर प्राप्त होगी। चित्र 5.6 को देखिए। AB उपभोक्ता की BPL है। बाज़ार की दशा उसे X तथा Y के संयोजन को प्राप्त कराती है, जो AB बिंदु से प्रदर्शित होता है। O एक ऐसा ही बिंदु है जिससे उपभोक्ता X वस्तु की OM' मात्रा, Y वस्तु की OM मात्रा के बदले प्राप्त कर पाता है। किंतु दाहिनी ओर चलने पर (अर्थात्, X वस्तु की मात्रा में वृद्धि तथा Y वस्तु की मात्रा में कमी करने पर) उपभोक्ता ऊंचे समभाव वक्र तक पहुँच सकता है। उदाहरण के लिए, D बिंदु से प्रदर्शित संयोजन का चुनाव करने पर वह समभाव वक्र II पर पहुँच सकता है। यह आसानी से देखा जा सकता है कि उपभोक्ता को दाहिनी ओर तब तक बढ़ते रहना चाहिए जब तक कि वह P बिंदु तक नहीं पहुँच जाता और P बिंदु अनधिमान वक्र III पर है। किंतु उसे P की दाहिनी, ओर (P तथा B के बीच) नहीं बढ़ना चाहिए; क्योंकि ऐसा करने से वह फिर से नीचे समभाव वक्र पर आ जाएगा। याद रहे यद्यपि उपभोक्ता और भी ऊँचे अनधिमान वक्र अर्थात् IV पर पहुँचने की इच्छा रखता है, तथापि ऐसा करना उसके लिए संभव नहीं होगा, क्योंकि बाज़ार की परिस्थितियाँ उसे ऐसा नहीं करने देंगी। अस्तु, हम देखते हैं कि संतुलन की स्थिति में उपभोक्ता X वस्तु की OM मात्रा खरीदता है और उसके लिए AO कीमत चुकाता है। उसके पास X वस्तु की OM मात्रा तथा Y वस्तु की PM मात्रा रह जाती है। संतुलन बिंदु पर Y के लिए X वस्तु की MRS मात्रा तथा X वस्तु की कीमत दोनों समान रहेंगी। यही बात इस प्रकार भी कही जा सकती है कि BPL की ढलान तथा समभाव वक्र की ढलान संतुलन बिंदु पर समान रहती है।

5.9 आय-उपभोग वक्र (Income Consumption Curve)

आप पहले देख चुके हैं कि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने और X वस्तु की निर्धारित कीमत बनी रहने पर BPL का झुकाव बदल जाता है और यह अपनी प्रारम्भिक स्थिति के

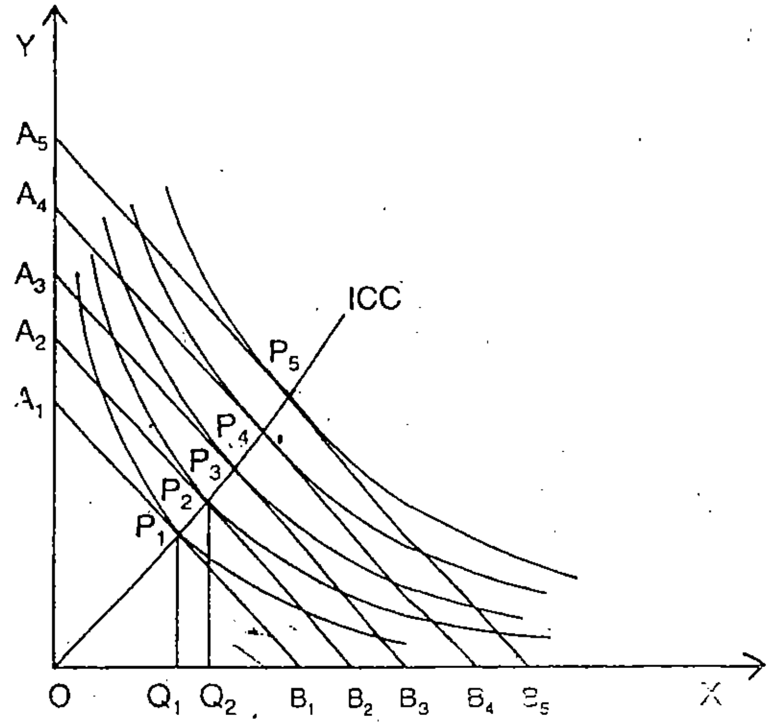

चित्र 5.7

समानांतर आ जाता है। BPL के बदलते रहने पर हर बार उपभोक्ता संतुलन के लिए एक नए बिंदु पर पहुँच जाता है, जो नए समभाव वक्र पर BPL से स्पर्श रेखा (tangent) खींचने से मिलता है। साम्य (Equilibrium) के इन सभी बिंदुओं का स्थान आय-उपभोग वक्र (ICC) कहलाता है। नोट कीजिए कि ICC का आरंभ बिंदु O से प्रारम्भ होता है। उपभोक्ता की आय शून्य होने पर यह स्थान साम्य-बिंदु होगा और तब उसके पास X तथा Y वस्तुओं की कोई मात्रा नहीं होगी। फिर, आप जानते हैं कि **उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने से X वस्तु की मांग में होने वाला परिवर्तन आय का प्रभाव कहलाता है।** चित्र 5.7 में एक प्रारूपिक ICC OP_1 P_2 P_3 P_4 P_5 द्वारा प्रदर्शित किया गया है। जैसे-जैसे उपभोक्ता की आय OA_1 से OA_2.........तक बढ़ती है, BPL A_1 B_1 से हटकर A_2 B_2.........तक पहुँच जाता है.........और साम्य बिंदु P_1 से P_2 पर हट जाती है। देखिए और ध्यान दीजिए कि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने से वह X वस्तु की OQ_1 मात्रा के स्थान पर OQ_2 मात्रा खरीदता है, और साम्य बिंदु P_1 से हटकर P_2 हो जाती है। X वस्तु की बढ़ी हुई मांग (Q_1 Q_2) आय का प्रभाव बतलाती है क्योंकि उपभोक्ता की आय OA_1 से बढ़कर OA_2 हो जाती है।

याद रखिए, ICC का सीधी रेखा के रूप में बना रहना आवश्यक नहीं है। अधिकांशत: यह सीधी रेखा नहीं रहेगी। एक और महत्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि X वस्तु घटिया किस्म की है तो एक बिंदु से आगे आय में वृद्धि होने पर उस वस्तु की मांग गिरने लगेगी। परिणामस्वरूप, ICC की ढलान Y अक्ष रेखा की ओर हो जाएगी जो यह प्रदर्शित करेगी कि आय में वृद्धि होने पर उपभोक्ता X वस्तु की कम मात्रा की मांग कर रहा है। दूसरे शब्दों में, वस्तुएँ घटिया होने पर, आय का प्रभाव, एक बिंदु के परे, नकारात्मक होने लगता है। (यह नकारात्मक इसलिए कहा जाता है क्योंकि प्रत्याशित प्रभाव के यह विपरीत है)

5.10 कीमत-उपभोग वक्र (Price Consumption Curve)

उपभोक्ता की आय में होने वाला परिवर्तन X वस्तु की कीमत में होने वाले परिवर्तन के समान ही है। आपने देखा X वस्तु की कीमत में परिवर्तन हो जाने पर BPL की ढलान बदल जाती है, किंतु Y अक्ष पर इसका आरम्भ बिंदु O स्थिर रहता है, वह नहीं बदलता। बदलते हुए BPL'S पर उपभोक्ता की साम्य की स्थिति में भी परिवर्तन होता जाता है और इन सभी बिंदुओं का बिंदु-पथ (locus) कीमत-उपभोग वक्र (PCC) कहलाता है। PCC को चित्र 5.8 में दिखाया गया है। जब उपभोक्ता की आय OA थी तब AB_1 तथा BPL था। X वस्तु की प्रति इकाई कीमत OA/OB_1 थी तथा P_1 बिंदु साम्य स्थिति का प्रदर्शन करता है।

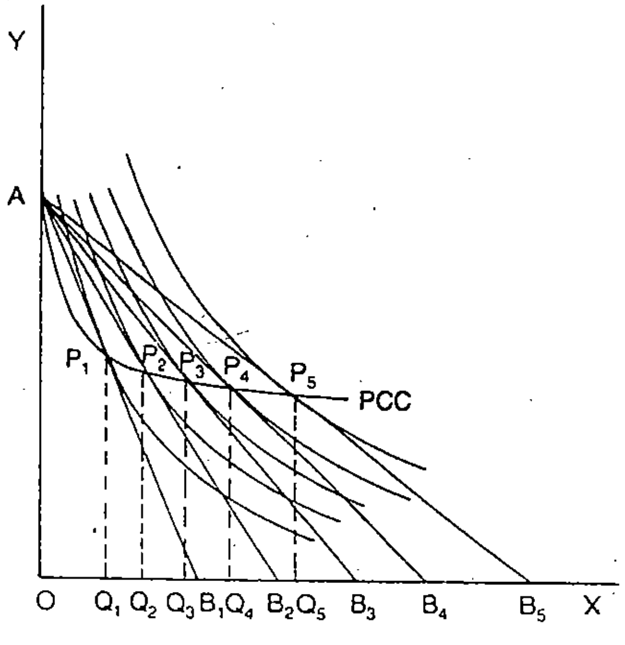

चित्र 5.8

मान लीजिए अब X वस्तु की कीमत गिर जाती है और अब उपभोक्ता OB_1 के स्थान पर OB_2 वस्तु खरीद लेता है तथा नया OB_2 नया BPL हो जाता है और जिससे तदनुरूप साम्य स्थिति P_2 बिंदु बन जाती है। इसी प्रकार की स्थिति P_3, P_4, आदि में होती है। इन बिंदुओं को रेखा द्वारा मिलाने से PCC वक्र बन जाता है। ध्यान दीजिए, यह वक्र A बिंदु से आरम्भ होता है। इसका कारण यह है कि जब X वस्तु की कीमत में अत्यधिक वृद्धि होती है तो उपभोक्ता अपनी समस्त आय व्यय करने के उपरांत भी कुछ नहीं के बराबर ही X वस्तु का क्रय कर पाएगा। तब BPL लगभग Y अक्ष के निकट पहुँच जाएगा। ऐसी दशा में उपभोक्ता को विचार करना ही होगा कि वह इस ऊँची कीमत पर X वस्तु की कोई मात्रा न खरीदे और तब साम्य बिंदु A बिंदु पर ही होगा।

यह वर्णन हमें स्थानापत्ति प्रभाव की (substitution effect) अवधारणा पर विचार कराता है। स्थानापत्ति प्रभाव शब्द X वस्तु की मांग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन के विषय में बतलाता है, जबकि उपभोक्ता की आय में परिवर्तन नहीं होता किंतु X वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है। यह बात एक चित्र की सहायता से अच्छी प्रकार से समझी जा सकती है।

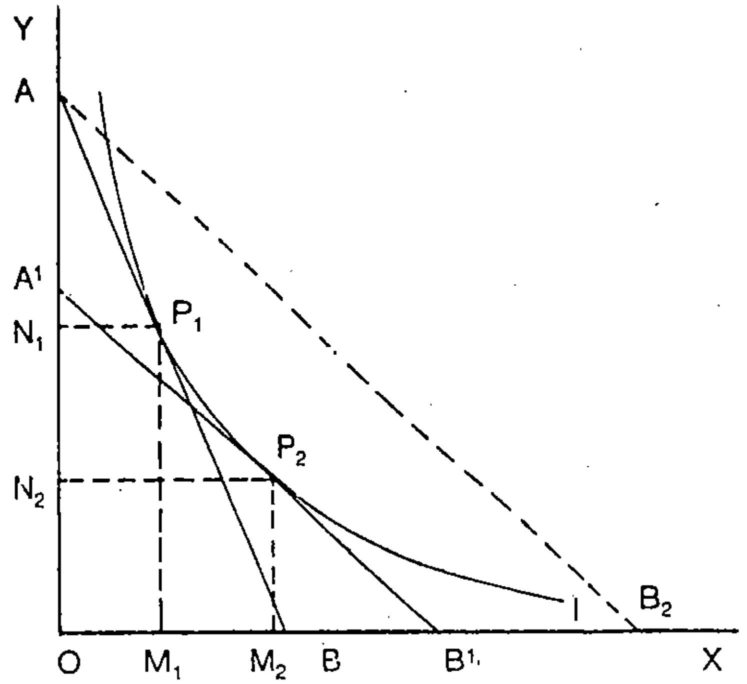

चित्र 5.9

चित्र 5.9 में उपभोक्ता का AB वक्र उसका BPL है। इसकी साम्य स्थिति P_1 बिंदु प्रदर्शित करती है। यह बिंदु यह बतलाता है कि उपभोक्ता अपनी मौद्रिक आय से X वस्तु की OM_1 मात्रा के लिए AN_1 कीमत चुकाकर ON_1 अपने पास बचाकर रख लेता है। उसकी वास्तविक आय में कोई परिवर्तन नहीं हो रहा है, इस मान्यता का अर्थ यह है कि उपभोक्ता-साम्य की स्थिति में परिवर्तन होने के उपरांत भी उसी अनधिमान वक्र पर बना हुआ है। ऐसी स्थिति में, अतः जब X वस्तु सस्ती हो जाती है, तो वह OB_2 मात्रा क्रय कर लेता है, इस मान्यता के साथ कि उसकी मौद्रिक आय OA बनी रहती है। किंतु X वस्तु की कीमत गिर जाने पर उसकी मौद्रिक आय में भी कमी (OA से OA_1) हो रही है जिससे उपभोक्ता साम्य स्थिति में परिवर्तन होने पर भी उसी अनधिमान वक्र पर बना रहता है। नई साम्य स्थिति में (P_2) विंदु पहले ही अनधिमान वक्र पर है। परिणामस्वरूप BPL जो पुराने BPL के समानान्तर है। **क्षतिपूरक BPL (Compensatory BPL) कहलाता है।**

X वस्तु की क्रय की गई मात्रा निश्चय ही OM_1 से बढ़कर OM_2 तक पहुँच जाती है। वस्तु की मात्रा की यह वृद्धि $M_1 M_2$ स्थानापत्ति प्रभाव को बतलाती हैं। ध्यान दीजिए, जबकि उपभोक्ता को X वस्तु की अतिरिक्त मात्रा $M_1 M_2$ मिलती है, उसे Y वस्तु की

$N_1 N_2$ मात्रा का त्याग करना पड़ता है। आपको याद रखना चाहिए कि X वस्तु पर स्थानापत्ति प्रभाव सदैव सकारात्मक ही होता है। इसका अर्थ यह है कि यह प्रभाव प्रत्याशित दिशा की ओर ही होता है। दूसरे शब्दों में, कीमत में कमी X वस्तु की मांग में वृद्धि करती है तथा इसकी कीमत में वृद्धि मांग में कमी लाती है।

5.11 आय तथा स्थानापत्ति प्रभावों का पृथक्करण

X वस्तु की कीमत में कमी का अर्थ है कि उपभोक्ता अन्य वस्तुओं की मात्रा उतनी ही रखने के बाद भी X वस्तु की अधिक मात्रा क्रय कर सकता है। वह उतनी ही रकम व्यय करने के उपरांत X वस्तु की अधिक मात्रा क्रय कर सकता है, अथवा वह X वस्तु की उतनी ही मात्रा के साथ अन्य वस्तुओं की अधिक मात्रा क्रय कर सकता है, अथवा वह X तथा अन्य सभी वस्तुओं की अधिक मात्रा क्रय कर सकता है। आप किसी भी रूप में इस बात पर विचार करें, इसका अर्थ यह है कि उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो जाती है तथा वह ऊँचे अनधिमान वक्र पर पहुँच सकता है। इसी प्रकार, Y वस्तु की कीमत में वृद्धि का अर्थ होगा उसकी वास्तविक आय में कमी और इस स्थिति में वह नीचे के अनधिमान वक्र पर आ जाता है।

अतः X वस्तु की कीमत में कमी होने से उसकी मांग पर दो कारणों से प्रभाव प्रड़ता है—

1 अन्य वस्तुओं की तुलना में X वस्तु सस्ती हो जाती है; तथा
2 उपभोक्ता की वास्तविक आय में वृद्धि हो जाती है।

जैसा कि आप पहले देख चुके हैं, प्रथम कारक अर्थात् कीमत में कमी के कारण X वस्तु की मांग में होने वाले परिवर्तन स्थानापत्ति प्रभाव (substitution effect) कहलाता है तथा द्वितीय कारक के कारण मांग में होने वाला परिवर्तन आय प्रभाव (income effect) कहलाता है। X वस्तु की कुल मात्रा में होने वाला परितर्वन दोनों प्रकार के परिवर्तन का योग करके जाना जा सकता है तथा यह कीमत प्रभाव (price effect) कहलाता है। दूसरे शब्दों में **कीमत प्रभाव = आय प्रभाव ± स्थानापत्ति प्रभाव (price effect = income effect ± substitution effect)। आय प्रभाव के नकारात्मक होने पर भी यह समीकरण इसी प्रकार रहेगा।**

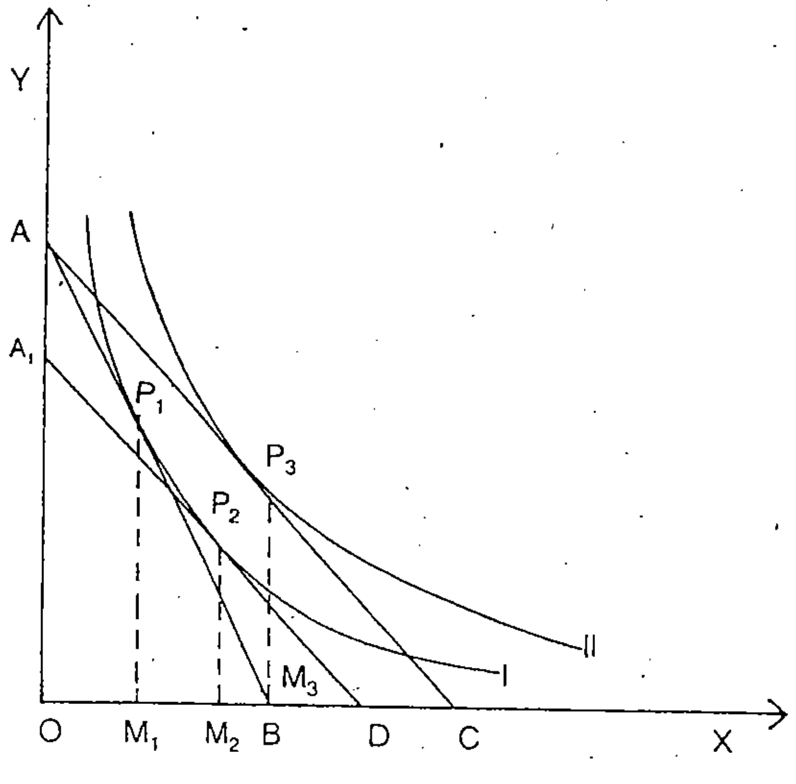

चित्र 5.10

आपको याद होगा कि स्थानापत्ति प्रभाव सदैव सकारात्मक रहता है, जबकि आय प्रभाव, प्रयोग की जाने वाली वस्तु की प्रकृति के अनुसार सकारात्मक भी हो सकता है तथा नकारात्मक भी। X वस्तु की कीमत में परितर्वन होने के कारण उसकी मांग में होने वाले परिवर्तन (अर्थात् कीमत प्रभाव) को आय प्रभाव और स्थानापत्ति प्रभाव के अंगों में किस प्रकार बाँटा जा सकता है? X वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने, किंतु उपभोक्ता की वास्तविक आय में कोई परिवर्तन न होने की दशा में मांग में होने वाले परिवर्तन को ज्ञात कर उपरोक्त प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है। जैसा कि आप पहले जान चुके हैं, यह स्थानापत्ति प्रभाव का ज्ञान करायेगा।

X वस्तु की मांग में होने वाला परिवर्तन आय प्रभाव होगा क्योंकि, इस दशा में उपभोक्ता एक समभाव वक्र से हट कर दूसरे पर जा रहा है (इस स्थिति में कीमत में हो चुके परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया जाएगा)। यह स्थिति चित्र 5.10 में दर्शाई जा रही है।

P_1 उपभोक्ता की प्रारम्भिक साम्य-स्थिति को प्रकट कर रहा है। जब X वस्तु की कीमत गिरती है और BPL हटकर AB से AC तक आ जाती है, तब उपभोक्ता एक नई साम्य स्थिति पर पहुँच जाता है जो P_3 से स्पष्ट की गई है। अतः X वस्तु की मांग में परिवर्तन अर्थात् $M_1 M_3$ कीमत प्रभाव प्रकट कर रहा है। अब, यदि X वस्तु की कीमत गिर जाती है लेकिन उपभोक्ता की आय भी थोड़ी कम हो जाती है, तब नयी BPL, A, D होगी, और उपभोक्ता की साम्य स्थिति उसी अनधिमान वक्र पर P_2 बिंदु होगी तथा X वस्तु की मांग में परिणामस्वरूप होने वाला परिवर्तन M, M_2 आय का प्रभाव होगा। याद रहे यह भी संभव है कि $M_1 M_2$, $M_1 M_3$ के बराबर हो, इस दशा में आय का प्रभाव शून्य होगा। यह भी सम्भव है कि यदि स्थानापत्ति प्रभाव $M_1 M_3$ से अधिक हो, तब आय प्रभाव नकारात्मक होगा जो चित्र 5.11 में दिखाया गया है।

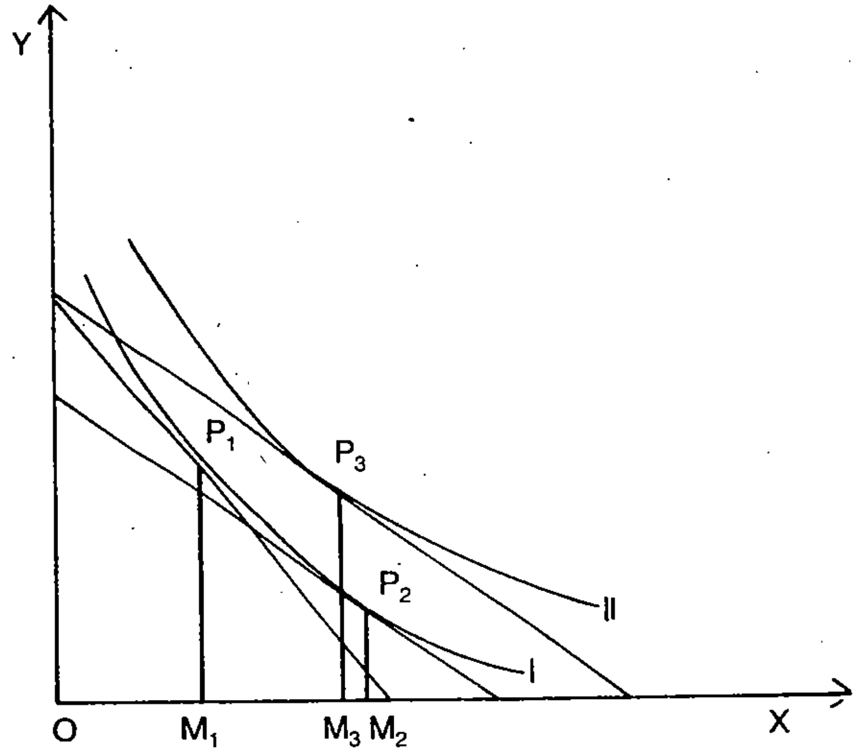

चित्र 5.11

बोध प्रश्न ग

1 उपभोक्ता की साम्य स्थिति की परिभाषा बतलाइए?

....

....

....

2 बजट कीमत रेखा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

3 निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

i) एक बजट कीमत रेखा एक तथा केवल एक अनधिमान वक्र पर स्पर्श रेखा हो सकती है। ....

ii) उपभोक्ता की साम्य स्थिति का विश्लेषण यह बतलाता है कि जरूरी नही है कि यह संभव उच्चतम अनधिमान वक्र पर पहुँच ही जाता है। ....

iii) एक आय-उपभोग वक्र सदैव सीधी रेखा होती है। ....

iv) एक आय-उपभोग वक्र सदैव ग्राफ के आरम्भ बिंदु O से ही प्रारम्भ होता है। ....

v) उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने के कारण वस्तु की मांग में होने वाला परितर्वन आय प्रभाव कहा जाता है। ....

vi) आय का प्रभाव सदैव सकारात्मक होता है। ....

vii) स्थानापत्ति प्रभाव कभी भी कीमत प्रभाव से अधिक नहीं होता। ....

viii) घटिया किस्म की वस्तु की दशा में स्थानापत्ति प्रभाव सदैव कीमत प्रभाव से अधिक होता है। ....

4 उपयुक्त शब्दों/वाक्यांशों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) कीमत उपभोग वक्र, अनधिमान वक्रों पर बजट कीमत-रेखा की स्पर्श-रेखा बिंदुओं का लोकस या बिंदु-पथ होता है, जब **पूर्वोक्त** परिवर्तनों के कारण अपना पहला स्थान बदल लेता है।

ii) आय उपभोक्ता वक्र उदासीनता वक्रों पर बजट कीमत रेखा की स्पर्श रेखा बिंदुओं का लोकस होता है, जब . . . परिवर्तनों के कारण पहला अपना स्थान बदल लेता है।

iii) कीमत उपभोग वक्र तथा बजट कीमत रेखा. . . अक्ष पर एक ही बिंदु से प्रारम्भ होती है।

iv) स्थानापत्ति प्रभाव एक वस्तु की मांग में होने वाले परिवर्तन को बतलाता है जब उसकी कीमत में परिवर्तन होता है किंतु उपभोक्ता की आय में. . .परिवर्तन होता है।

5.12 उपभोक्ता मांग वक्र की व्युत्पत्ति (Deriviation of Consumer's Demand Curve)

मांग वक्र में वस्तु की प्रति इकाई कीमत Y अक्ष पर तथा मांग की जाने वाली वस्तु की इकाइयाँ X अक्ष पर दर्शाई जाती हैं। कीमत उपभोग वक्र का उपयोग मांग वक्र बनाने के लिए किया जा सकता है। चित्र 5.8 में जब उपभोक्ता की साम्य स्थिति P_1 बिंदु पर होती है, वह X वस्तु की OQ_1 इकाई की मांग करता है। इस प्रकार X वस्तु की मांग की जाने वाली इकाइयों का ज्ञान हो सकता है। प्रति इकाई कीमत को जानने के लिए, हम बजट कीमत रेखा के झुकाव का प्रयोग करते हैं, जो इस स्थिति में OA/OB_1 हैं। इसी प्रकार,

साम्य स्थिति P_2 बिंदु से मांगी जाने वाली X वस्तु की इकाई OQ_2 तथा प्रति इकाई कीमत OA/OB_2 है। उसी प्रकार से चलते हुए, मांग की इकाई तथा कीमत का तीसरा जोड़ा (OQ_3, OA/OB_3) और चौथा जोड़ा (OQ_4, OA/OB_4) है। एक बार मांग की इकाई तथा कीमत से सभी जोड़ों का अनुमान लगाने के पश्चात् इन सभी को एक ग्राफ पर अंकित कर लिया जाता है, तत्पश्चात् इन सभी बिंदुओं को मिलाने से एक मांग वक्र बन जाता है।

5.13 उपभोक्ता अतिरेक (Consumer's Surplus)

अनधिमान वक्र की तकनीक का उपभोक्ता अतिरेक को मापने के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है। चित्र 5.12 में यह दर्शाया गया है। पहले की ही भांति उपभोक्ता की आय मान लीजिए OA है तथा उसकी बजट कीमत रेखा AB है। साम्य स्थिति P बतलाती है कि उपभोक्ता X वस्तु की OM इकाइयाँ क्रय करता है तथा उसके लिए AC कीमत चुकाता है और शेष OC अपने पास बचा लेता है। X तथा Y के इन सभी जोड़ों को जिनकी उपयोगिता X वस्तु की शून्य मात्रा तथा Y वस्तु की OA मात्रा के जोड़े के बराबर है, लेकर एक अनधिमान वक्र बनाइये। चित्र में इस अनधिमान वक्र को I से चिन्हित किया गया है। चित्र में यह दर्शाया गया है कि उपभोक्ता के लिए X वस्तु की शून्य इकाई के साथ Y वस्तु की OA इकाई की उपयोगिता, X वस्तु की OM इकाई के साथ Y वस्तु की P_1M इकाई की उपयोगिता के बराबर ही होगी। अर्थात्, उपभोक्ता X की OM इकाइयों के लिए AD कीमत चुकाने के लिए तैयार है, वह इसको त्यागना नहीं चाहेगा। किंतु वास्तव में वह केवल AC कीमत ही चुकाता है। इस प्रकार, वह जो कुछ चुकाने के लिए तैयार है तथा जो कुछ चुकाता है का आधिक्य AD—AC = CD से प्रदर्शित किया गया है। मुद्रा रूप में (अथवा Y वस्तु के रूप में) मापी जाने वाली यही उपभोक्ता अतिरेक है।

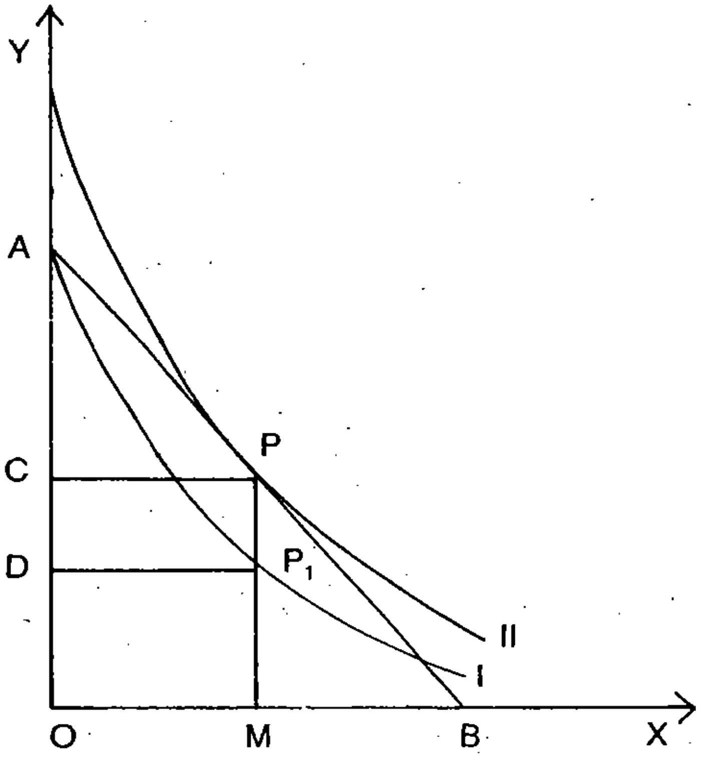

चित्र 5.12

5.14 अनधिमान वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता

यह प्रायः कहा जाता है कि मांग विश्लेषण विचारधारा की तुलना में अनधिमान वक्र विश्लेषण विचारधारा श्रेष्ठ है। किंतु यह पूर्णरूप से सही नहीं है। सच तो यह है कि जहाँ यह समभाव वक्र में मांग विश्लेषण की मान्यताओं को दूर करती है, वहाँ इस विचारधारा में अपनी कुछ कमियाँ भी पाई जाती है। आपको यह भी याद रहे कि दोनों विचारधाराओं में कुछ लक्षण समान हैं तथा वे इस दिशा में समान मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए, दोनों ही विचारधाराओं में उपयोगिता की विद्यमानता तथा क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता नियम को स्वीकारा गया है। दोनों विचारधाराओं में केवल एक अंतर है—उपयोगिता विश्लेषण विचारधारा में मुद्रा की सीमांत उपयोगिता को स्थिर माना गया है (यह इकाई 4 में बतलाया जा चुका है)। जबकि अनधिमान वक्र विचारधारा में सीमांत उपयोगिता की स्थिरता की मान्यता को त्याग दिया गया है तथा विश्लेषण को मुद्रा की क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता पर आधारित किया गया है। इसी प्रकार, दोनों ही विचारधाराएँ उपभोक्ता को विवेकी मानकर चलती हैं। दोनों ही आगे भी यह मानकर चलती हैं कि उपभोक्ता वस्तुओं की मात्रा की उपयोगिता का अनुमान एक विस्तृत क्षेत्र को ध्यान में रखकर लगाते हैं अर्थात् वह न केवल प्राप्त वस्तुओं की मात्रा अथवा समीप की वस्तुओं से अनुमानिक उपयोगिता का ज्ञान रखता है, वरन् विस्तृत रूप में विभिन्न वस्तुओं के विषय में भी ज्ञान रखता है।

फिर भी अनधिमान वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता उपयोगिता विश्लेषण की तुलना में निम्नलिखित आधार पर मानी जाती है—

1 उपयोगिता विचारधारा यह मानकर चलती है कि उपयोगिता का मूलभूत रूप में मापन किया जा सकता है, किंतु अनधिमान वक्र विश्लेषण विचारधारा की ऐसी कोई मान्यता नहीं है।

2 अनधिमान वक्र विश्लेषण उपभोक्ता की आय में हुए परिवर्तन का उसकी मांग पर पड़ने वाले प्रभाव को बता पाता है, किंतु उपयोगिता विश्लेषण यह नहीं बता पाता।

3 मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता की मान्यता पर उदासीनता वक्र विश्लेषण में विचार नहीं किया जाता। इस कारण अनधिमान वक्र विश्लेषण अधिक वास्तविक बन जाता है।

4 अनधिमान वक्र विश्लेषण घटिया वस्तुओं पर भी विचार कर लेता है। यह वस्तु की कीमत में कमी आने से उसकी मांग पर पड़ने वाले प्रभाव अथवा उपभोक्ता की आय में वृद्धि होने से मांग पर पड़ने वाले प्रभाव पर भी विचार करता है तथा इसके कारणों की भी व्याख्या करता है।

5 जबकि मार्शल की उपयोगिता विश्लेषण की मान्यता है कि दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं की उपयोगिताएँ एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं, अनधिमान वक्र विश्लेषण में इस मान्यता की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। पूरक तथा स्थानापत्ति वस्तुओं का इस विश्लेषण में स्वतः ही विचार हो जाता है।

किंतु अनधिमान वक्र विश्लेषण की श्रेष्ठता यहीं समाप्त हो जाती है। इस विश्लेषण में कुछ कमियाँ भी हैं, जिनके कारण उपयोगिता विश्लेषण की ही भांति, वरन् कभी-कमी अधिक भी, अव्यवहारिक एवं अवास्तविक हो जाता है।

1 यह मान लेना पड़ेगा कि उपयोगिता को यथार्थ तथा मात्रिक रूप में नहीं पाया जा सकता, इसका सापेक्षिक एवं मोटे रूप में लोग आकलन कर लेते हैं जो उनके अनुभव पर आधारित होता है। वे किसी भी वस्तु, मान लीजिए X की उपयोगिता को किसी दूसरी वस्तु की उपयोगिता से तुलना करते हुए यह कह सकते हैं कि X वस्तु की उपयोगिता अन्य वस्तु से 50% अधिक है।

2 स्थानापत्ति की क्रमशः घटती हुई सीमांत दर की आधारभूत विचारधारा मार्शल के क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता नियम से ही उत्पन्न हुई है।

3 अनधिमान वक्र विश्लेषण केवल दो वस्तुओं तक ही सीमित रहता है। बहुत अधिक वस्तुओं के होने की दशा में, वस्तु को संयुक्त वस्तु (composite commodity) मानकर चलना होता है जिसे मुद्रा के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि संयुक्त वस्तु के क्षेत्र में आने वाली सभी वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि अथवा कभी एक साथ तथा एक से ही अनुपात में होती है।

4 अनधिमान वक्र विश्लेषण एक अत्यंत अव्यवहारिक मान्यता को लेकर चलता है कि दोनों वस्तुएँ X तथा Y पूर्णरूप से विभाज्य हैं। वास्तव में, उपभोक्ता को इकाइयों का एक समूह दिखाई देता है। परिणामस्वरूप, अनधिमान वक्रों की निरंतरता सम्भव नहीं रह पाती तथा सामीप्य रखने वाले बड़ी संख्या में अनधिमान वक्रों का एक तंत्र भी नहीं बन पाता।

5 अनधिमान वक्र विश्लेषण की मान्यता यह भी है कि उपभोक्ता अपने अनधिमान का पूर्ण चित्र बना सकता है। किंतु व्यवहार में यह संभव नहीं है। एक उपभोक्ता अपनी विद्यमान स्थिति के आसपास की स्थिति को ध्यान में रखकर केवल अपने अनधिमानों (preferences) को ही बतला सकता है।

6 यह विश्लेषण यह भी बतलाने में असफल रहता है कि एक व्यक्ति के अपने अधिमानों का क्रम तेजी से बदलता रहता है। दूसरे शब्दों में, अधिमानों का क्रम यदि बना लिया जाता है तो उसमें भी निरंतर परिवर्तन करने की आवश्यकता हो जाती है।

7 भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के अनधिमान वक्रों का समूहीकरण नहीं किया जा सकता। उनमें जुड़ने की विशेषता नहीं पाई जाती। परिणामस्वरूप, सम्पूर्ण समाज के अधिमानों के क्रम को बनाना संभव नहीं हो पाता। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था अथवा अन्य किसी और संयुक्त स्तर पर दिए जाने वाले अभ्यासों तथा लिए जाने वाले निर्णयों का यह आधार कि अधिमानों का योग किया जा सकता है यह एक अवैज्ञानिक मान्यता बनकर रह जाती है। इस संदर्भ में उपयोगिता विश्लेषण का स्थान अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हो जाता है, क्योंकि इसका आधार जनता के विचार हैं जो जनसाधारण के एकत्रित अनुभवों तथा अवलोकनों पर टिके हुए हैं।

8 सम्पूर्ण अनधिमान वक्र विश्लेषण सैद्धांतिक रूप में प्रतिपादित कारक-प्रभाव संबंधों पर आधारित है। इन अभ्यासों में बहुत कम प्रयोगाश्रित (empirical) अर्थात् प्रयोगों द्वारा पुष्ट अथवा तथ्यों पर आधारित हैं। इसी प्रकार, विश्लेषण का यह तंत्र उपयुक्त तथ्यों के संकलन का उचित प्रयोग किए जाने की बात को भी पूरा नहीं कर पाता।

बोध प्रश्न घ

1 निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

i) अनधिमान वक्र विश्लेषण द्वारा उपभोक्ता अतिरेक को मुद्रा में मापा जा सकता है। ......

ii) एक उपभोक्ता को उपभोक्ता अतिरेक एक उदासीनता वक्र से दूसरे पर पहुँचने पर ही प्राप्त होती है। ......

iii) कीमत उपभोग वक्र तथा माँग वक्र एक ही हैं, उनमें कोई अंतर नहीं है। .....

iv) उपभोक्ता द्वारा X वस्तु की कुछ मात्रा क्रय करने के उपरांत उसके पास बची कुछ मुद्रा उपभोक्ता अतिरेक कहलाता है। ......

v) उपयोगिता विश्लेषण में, दो वस्तुओं X तथा Y की उपयोगिताएँ एक दूसरे से भिन्न-भिन्न मानी जाती हैं। ......

vi) एक व्यक्ति के अधिमानों के क्रय में परिवर्तन नहीं होता है। ....

2 उपयुक्त शब्दों/वाक्यांशों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

i) बजट कीमत रेखा... X वस्तु की प्रति इकाई कीमत का मापन करती है।

ii) उपयोगिता विश्लेषण...वस्तुओं के बारे में विचार नहीं करता, जबकि अनधिमान वक्र करता है।

iii) अनधिमान वक्र विचारधारा यह मानकर चलती है कि एक उपभोक्ता अपने समस्त...को चित्रित कर लेता है।

5.15 सारांश

उपयोगिता विश्लेषण पर आधारित उपभोक्ता के व्यवहार का विश्लेषण कुछ मूलभूत कमियों से ग्रसित है। ये कमियाँ अव्यावहारिक मान्यताओं से जुड़ी हुई हैं जो उक्त विश्लेषण की आधारशिला हैं। ये सीमाएँ, आधारभूत रूप में उपयोगिता के मापन की बात, मुद्रा की स्थिर सीमांत उपयोगिता, उपयोगिता की पारस्परिक तुलना, घटिया वस्तुओं के मांग व्यवहार को व्यक्त करने में असमर्थता की बात, आय का प्रभाव इत्यादि से संबंधित है। अनधिमान वक्रों की विचारधारा इन कमियों को दूर करने का प्रयास है।

अधिमानों के पैमाने की अवधारणा अनधिमान वक्रों की विचारधारा का आधार है। यह मान्यता है कि एक उपभोक्ता दो वस्तुओं X तथा Y के सभी संभव संयोजनों को सामूहिक रूप में वर्गीकृत कर सकता है तथा इन सभी संयोजनों की कुल संतुष्टि उपभोक्ता के लिए समान होती है। उपभोक्ता स्वतः ही विभिन्न समूहों को कम तथा अधिक संतुष्टि के आधार पर क्रमबद्ध कर लेता है।

एक अनधिमान वक्र X तथा Y वस्तुओं के विभिन्न संयोजनों का एक ग्राफिय चित्र है जो उपभोक्ता द्वारा इन संयोजनों से प्राप्त होने वाली संतुष्टि का बोध कराता है। तालिका के रूप में, इन संयोजनों को अनधिमान सूची (indifference schedule) कहा जाता है। अनधिमान वक्रों को कुछ मान्यताओं के आधार पर बनाया जाता है, अर्थात्, (i) उपयोगिता को आधारभूत रूप में मापा जा सकता है, (ii) केवल दो ही वस्तु X तथा Y होती हैं, (iii) Y वस्तु संयुक्त वस्तु अथवा मुद्रा होती हैं, (iv) X तथा Y दोनों ही वस्तुओं की सीमांत उपयोगिता धनात्मक होती हैं, दोनों ही वस्तुओं X तथा Y पर क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता नियम लागू होता है, तथा दोनों ही वस्तुएँ X तथा Y पूर्णरूप से विभाज्य होती हैं।

इन मान्यताओं के आधार पर अनधिमान वक्रों में कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–(i) अनधिमान वक्र की ढलान नकारात्मक होती है, (ii) आरम्भ बिंदु पर यह उन्नतोदर होता है, (iii) यह निरंतरता रखता है, (iv) दो अनधिमान वक्र एक दूसरे को काटते नहीं हैं, (v) हम बहुत से अनधिमान वक्रों का एक तंत्र भी बना सकते हैं, (vi) आरम्भ बिंदु से दूरी वाला अनधिमान वक्र अधिक संतुष्टि प्रदान करता है।

X तथा Y की MRS की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि यह X वस्तु की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता द्वारा सीमांत बिंदु पर Y वस्तु की त्यागने वाली मात्रा है। यह $\Delta y/\Delta x$ का अनुपात है तथा MUx/MUy के बराबर होता है। X के लिए Y वस्तु की MRS इसी प्रकार सीमांत बिंदु पर X की त्यागी जाने वाली मात्रा का बोध कराती है, जो उपभोक्ता Y वस्तु की अतिरिक्त मात्रा के लिए त्याग करने को तैयार रहता है। यह $\Delta x/\Delta y$ का अनुपात है तथा MUy/MUx के बराबर होता है। X वस्तु की इकाई मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ Y के साथ X की MRS गिरती जाती है। इसी प्रकार उपभोक्ता के पास Y वस्तु की इकाई की मात्रा में वृद्धि के साथ-साथ X के लिए Y की MRS गिरती जाती है।

उपभोक्ता की बजट कीमत रेखा एक सीधी रेखा होती है जो बाजार की परिस्थिति में उपभोक्ता के X तथा Y के संयोजनों के विकल्पों का बोध कराती है। Y अक्ष पर इस रेखा का उद्गम उपभोक्ता की आय से जो Y से व्यक्त की जाती है, निर्धारित होता है

तथा इसका X अक्ष पर मिलने का बिंदु, उपभोक्ता द्वारा अपनी समस्त आय व्यय करने के उपरांत X की खरीदी जा सकने वाली मात्रा निर्धारित करता है। बजट कीमत रेखा की ढलान X वस्तु की प्रति इकाई की कीमत के समान रहती है। जब उपभोक्ता की आय बदलती है, तब बजट-कीमत रेखा अपनी पूर्व स्थिति के समानान्तर बदलती है तथा अपनी ढलान को बनाए रखती है। जब X की कीमत में परिवर्तन होता है, तब बजट-कीमत रेखा की ढलान Y अक्ष पर उसी आरम्भ बिंदु से बदल जाता है। जब X वस्तु की कीमत उपभोक्ता की आय द्वारा कमी पूरा करते हुए परिवर्तित होती है, तब बजट कीमत रेखा की अपनी स्थिति तथा ढलान दोनों ही बदल जाते हैं।

एक बजट कीमत रेखा केवल एक ही उदासीनता वक्र पर स्पर्श रेखा बन सकती है। स्पर्श रेखा का बिंदु उपभोक्ता की साम्य स्थिति भी होती है।

X वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने के कारण जब बजट कीमत रेखा अपने स्थान से हटती है, तब स्पर्श रेखा के सभी बिंदुओं का लोकस (locus) कीमत-उपभोग वक्र कहलाता है। इसी प्रकार, जब उपभोक्ता की आय के कारण बजट रेखा अपने स्थान से हटती है, तब स्पर्श रेखा के सभी बिंदुओं का लोकस आय उपभोग वक्र कहलाता है। Y अक्ष पर बजट कीमत रेखा के आरम्भ बिंदु से ही PCC आरम्भ होता है। ICC वक्र आरम्भ बिंदु O से शुरू होता है। X वस्तु का मांग वक्र और PCC एक ही नहीं है, उनमें अंतर है। PCC द्वारा प्रदर्शित इकाइयों की मांगी हुई मात्रा को पढ़कर तथा बजट कीमत रेखा के सादृश्य ढालों को उनकी प्रति इकाई कीमत मानकर मांग वक्र बनाया जा सकता है।

अनधिमान वक्रों द्वारा उपभोक्ता अतिरेक को भी मापा जा सकता है। इसके लिए वास्तविक चुकाई गई कीमत और वस्तु को प्राप्त करने के लिए चुकाने के लिए तैयार कीमत की तुलना की जाती है। इन दोनों कीमतों का अंतर अब उपभोक्ता अतिरेक कहलाता है।

उपयोगिता विचारधारा तथा अनधिमान वक्रों की विचारधारा की मान्यताओं तथा सीमाओं द्वारा दोनों विचारधाराओं की तुलना की जा सकती है। यह देखा जा चुका है कि यद्यपि अनधिमान वक्र विचारधारा द्वारा उपयोगिता विश्लेषण की बहुत सी कमियाँ दूर हो जाती हैं, तथापि इसमें भी अपनी बहुत सी कमियाँ पाई जाती हैं। एक महत्वपूर्ण कमी इस विचारधारा में यह है कि यह सांख्यिकीय अवलोकन पर आधारित नहीं है, तथा सांख्यिकीय अंवेषण के लिए प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है।

5.16 शब्दावली

संयुक्त पदार्थ (वस्तु): वह वस्तु है जिसमें बहुत सी वस्तुएँ इस (X वस्तु के अलावा) एक साथ इस प्रकार मिली रहती हैं कि इसकी प्रत्येक इकाई में, X वस्तु (पदार्थो) के अलावा, अन्य वस्तुओं की मात्रा बराबर रहती है। इस प्रकार का संयुक्त पदार्थ साधारणतः मुद्रा का बोध कराता है क्योंकि सभी के द्वारा मान्य क्रय शक्ति मुद्रा में निहित है।

अनधिमान वक्र : अनधिमान सूची का ग्राफ द्वारा प्रदर्शन।

अनधिमान सूची : X तथा Y के समान संतुष्टि प्रदान करने वाले सभी संयोजनो का तालिका के रूप में प्रदर्शन।

बजट कीमत रेखा (BPL): यह एक सीधी रेखा वाला ग्राफ है जो X तथा Y के विभिन्न संयोजनों को बताता है जिनको अपनी निर्धारित आय तथा बाजार की परिस्थिति के अनुसार X वस्तु की कीमत को देखते हुए उपभोक्ता क्रय करने के लिए तैयार रहता है।

उपभोक्ता अतिरेक : एक निर्धारित वस्तु X की मात्रा को प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता द्वारा चुकाई जाने वाली तथा चुकाई गई वास्तविक कीमत का आधिक्य होता है।

क्षतिपूरक बजट कीमत रेखा: बजट कीमत रेखा जो X वस्तु की कीमत में कमी तथा उपभोक्ता की आय में पूरक कमी जिसके कारण वह उसी अनधिमान वक्र पर बनी रहती है।

गिफिन का विरोधाभास: यह एक विरोधाभास की स्थिति प्रकट करता है जिसमें वस्तु की कीमतों में वृद्धि होने पर मांग में भी वृद्धि होती है।

आय उपभोग वक्र: यह बजट कीमत रेखा का उदासीनता वक्रों पर सभी स्पर्श रेखा बिंदुओं का लोकस होता है जब उपभोक्ता की बजट कीमत रेखा, उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने के कारण अपने स्थान से हटती जाती है।

आय का प्रभाव: उपभोक्ता की आय में परिवर्तन होने के कारण, वस्तु की कीमत अपरिवर्तित रहने पर, वस्तु की मांग में होने वाला परिवर्तन।

स्थानापत्ति की सीमांत दर: X की अतिरिक्त इकाई प्राप्त करने के लिए उपभोक्ता द्वारा Y की मात्रा को त्यागना X तथा Y की MRS की परिभाषा है। यह $\Delta Y/\Delta X$ का अनुपात है तथा MUx/MUy के भी समान है।

कीमत उपभोग वक्र: यह बजट कीमत रेखा के समभाव वक्रों पर स्पर्श रेखा के सभी बिंदुओं का पथ है जहाँ X वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से बजट कीमत रेखा हटती जाती है।

कीमत प्रभाव: किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने से मांग में होने वाला परिवर्तन।

संबधित वस्तुएँ (पदार्थ): ऐसी वस्तुएँ (पदार्थ) जिनकी उपयोगिता और परिणामस्वरूप उनकी मांग एक दूसरे से पृथक नहीं होती है। ऐसी वस्तुएँ पूरक अथवा स्थानापन्न हो सकती हैं।

अधिमान का पैमाना: X तथा Y वस्तुओं के समूहों में वैकल्पिक संयोजनों के वर्गीकरण का यह बोध कराता है जिससे एक समूह से संबंधित सभी संयोजनों की संतुष्टि का योग समान रहता है, तथा विभिन्न समूहों को "अधिक" अथवा "कम" संतुष्टि के आधार पर क्रमबद्ध किया जाता है।

स्थानापत्ति प्रभाव: उपभोक्ता की वास्तविक आय उतनी ही रहने पर एक वस्तु की मांग में होने वाला परिवर्तन, परंतु विचाराधीन वस्तु की कीमत में परिवर्तन होता है।

5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 i) गलत, ii) गलत, iii) गलत, iv) गलत, v) सही, vi) सही, vii) सही।

3 i) वही, ii) नहीं iii) कुल संतुष्टि iv) अधिक।

ख 3 i) गलत, ii) सही, iii) गलत, iv) गलत, v) गलत, vi) सही, vii) सही, viii) गलत, ix) सही

4 i) Y की मात्रा, ii) क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता, iii) क्रमागत ह्रास सीमांत उपयोगिता, iv) सीधी रेखा, v) पूर्ण रूप से विभाज्य।

ग 3 i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iv) सही, v) सही, vi) गलत, vii) गलत, viii) सही,

4 i) वस्तु की कीमत, ii) उपभोक्ता की आय, iii) Y, iv) प्रतिकारी।

घ 1 i) सही, ii) गलत, iii) गलत, iv) गलत, v) सही, vi) गलत।

2 i) झुकाव, ii) घटिया अथवा संबंधित iii) अधिमानों का पैमाना।

5.18 स्वपरख प्रश्न

1 अनधिमान वक्र विचारधारा की मान्यताओं का वर्णन कीजिए।

2 अनधिमान वक्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए तथा उन मान्यताओं का उल्लेख कीजिए जिनके आधार पर समभाव वक्र बनाए जाते हैं।

3 स्थानापत्ति की सीमांत दर का क्या अर्थ है? X वस्तु की मात्रा में वृद्धि होने पर Y वस्तु के लिए X की स्थानापत्ति सीमांत दर क्यों गिरती है?

4 कीमत-उपभोग वक्र की अवधारणा का अर्थ स्पष्ट कीजिए। यह कहाँ से आरम्भ होता है और क्यों?

5 आय उपभोग वक्र का क्या अर्थ है? यह कहाँ से आरम्भ होता है और क्यों?

6 अनधिमान वक्रों की सहायता से एक उपभोक्ता की साम्य स्थिति किस प्रकार प्राप्त होती है? व्याख्या कीजिए।

7 बतलाइए कि बजट कीमत रेखा केवल एक ही अनधिमान वक्र पर स्पर्श रेखा बनती है।

8 आय का प्रभाव, स्थानापत्ति प्रभाव तथा कीमत प्रभाव का चित्रों की सहायता से वर्णन कीजिए। वह विधि भी बतलाइये जिसके द्वारा कीमत प्रभाव को आय तथा स्थानापत्ति प्रभावों में विभाजित किया जा सकता है?

9 उपभोक्ता अतिरेक की विचारधारा का वर्णन कीजिए तथा यह भी बतलाइए कि यह उदासीनता वक्रों द्वारा किस प्रकार ज्ञात किया जा सकता है?

10 उपयोगिता विश्लेषण पर अनधिमान वक्र विश्लेषण की तथाकथित श्रेष्ठता पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को भली प्रकार समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। किंतु इनके उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजिए। ये प्रश्न केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 6 उपभोक्ता माँग

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य
6.1 प्रस्तावना
6.2 माँग की प्रकृति
6.3 माँग के निर्धारक
6.3.1 उपभोक्ता की माँग के निर्धारक
6.3.2 बाजार की माँग के निर्धारक
6.4 माँग का नियम
6.4.1 माँग अनुसूची
6.4.2 माँग वक्र
6.4.3 माँग के नियम की व्याख्या
6.5 माँग में परिवर्तन और माँग की मात्रा में परिवर्तन
6.6 माँग का नियम और सरकारी नीति
6.7 सारांश
6.8 शब्दावली
6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.10 स्वपरख प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- माँग की व्याख्या कर सकें
- आवश्यकता और माँग के बीच अन्तर बता सकें
- किसी वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कारणों का उल्लेख कर सकें
- किसी वस्तु, किसी उपभोक्ता तथा किसी बाजार के लिए माँग में भेद कर सकें
- माँग के नियम का वर्णन कर सकें
- माँग अनुसूची और माँग वक्र की सहायता से माँग के नियम की व्याख्या कर सकें
- माँग के नियम को लागू होने के कारणों को बता सकें
- माँग वक्र के परिवर्तन और माँग वक्र के साथ-साथ होने वाले परिवर्तनों की व्याख्या कर सकें
- कीमत निर्धारण के संबंध में सरकारी नीति के लिए माँग के नियम के उपयोग बता सकें।

6.1 प्रस्तावना

इकाई 5 में आप अनधिमान वक्र (indifference curves) की संकल्पना के संबंध में पढ़ चुके हैं। इस इकाई में आपको माँग अनुसूची और माँग वक्र के साथ माँग के नियम के संबंध में बताया जाएगा। आप यह भी पढ़ेंगे कि किसी वस्तु की माँग पर किन कारकों का प्रभाव पड़ता है, माँग का नियम कैसे कार्य करता है और वस्तुओं की कीमत-निर्धारण में सरकार के लिए इस नियम का क्या उपयोग है।

6.2 माँग की प्रकृति

सबसे पहले हमें आवश्यकता और माँग के बीच अन्तर को समझना चाहिए। किसी वस्तु की आवश्यकता से अभिप्राय यह होता है कि कोई व्यक्ति उस वस्तु को प्राप्त करने का इच्छुक-मात्र है। इस संदर्भ में यह आवश्यक नहीं होता कि उसे खरीदने के लिए उसके पास क्रय शक्ति भी है। यह उपभोक्ता द्वारा बाजार का चक्कर लगाने की भांति ही है। उसके पास खरीदने के लिए रुपया हो या न हो परन्तु वह बाजार में चक्कर लगाकर वस्तुओं को देखता है तथा उपभोग या संग्रह के लिए उन्हें प्राप्त करना चाहता है। इसके विपरीत किसी वस्तु की माँग से अभिप्राय यह होता है कि कोई व्यक्ति उसे प्राप्त करने को इच्छुक है तथा उसे खरीदने के लिए उसके पास पर्याप्त क्रय शक्ति भी है। आर्थिक सिद्धांत में हमारा संबंध वस्तु की आवश्यकता के साथ नहीं बल्कि उसकी माँग के साथ होता है। कोई व्यक्ति किसी वस्तु को जितनी मात्रा में खरीदना चाहता है और उतनी मात्रा में खरीदने के लिए उसके पास क्रय शक्ति भी होती है उसे उस वस्तु की माँग की मात्रा कहा जाता है।

वस्तु की माँग की मात्रा के संबंध में तीन बातें अत्यत महत्वपूर्ण हैं जो सदा ध्यान में रखनी चाहिएं। पहली बात तो यह है कि हम माँग की उस मात्रा के संबंध में विचार करते हैं जिसे उपभोक्ता खरीदना चाहता है, उस मात्रा के संबंध में नहीं जिसे खरीदने में वह सफल होता है। इस प्रकार माँग की मात्रा (quantity demanded) इच्छित क्रय (desired purchase) है और वास्तव में खरीदी गई मात्रा वास्तविक क्रय (actual purchase) है। दूसरी बात यह है कि माँग की मात्रा को सदा प्रवाह के रूप में लिया जाता है जिसको एक समय अवधि के अंतर्गत मापा जा सकता है—उदाहरणार्थ जब हम कहते हैं कि माँग या माँग की मात्रा 10 संतरों के लिए है तब उससे अभिप्राय प्रति दिन या प्रति सप्ताह आदि से होता है। हमारा संबंध इक्के-दुक्के क्रय के साथ नहीं होता बल्कि क्रय के सतत प्रवाह के साथ होता है। इस संबंध में समस्या तब उठती है जब हम मोटर गाड़ी या स्टीरियो जैसी टिकाऊ उपभोग वस्तुओं की बात करते हैं। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएँ (durable consumer goods) किसी एक समय विशेष पर खरीदी जाती हैं। अत: यह क्रय प्रवाह जैसा नहीं लगता। परन्तु हम इन वस्तुओं द्वारा की गई सेवा के संबंध में विचार करें तब इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यदि एक स्टीरियो खरीदा जाता है तब आशा की जाती है कि वह 5 वर्ष या 60 महीनों तक चलेगा। इस प्रकार लगभग 60 मास चलने वाले स्टीरियो का प्रति मास उपभोग साठवाँ भाग (1/60) है। और उसकी कीमत यदि 10,000 रु. है तब मुद्रा के रूप में स्टीरियो का प्रति मास उपभोग 10,000/60 रु. = 166.60 रु. है। अंत में तीसरी बात यह है कि किसी वस्तु की माँग की मात्रा का कोई आर्थिक अभिप्राय किसी दी हुई कीमत पर ही होता है। उदाहरणार्थ, यदि केवल इतना ही कहा जाए कि संतरे की माँग की मात्रा प्रति सप्ताह 10 इकाइयाँ हैं, तब उससे कोई अर्थ नहीं निकलता। इसके संबंध में आवश्यक होता है कि प्रति दर्जन या प्रति इकाई संतरे की कीमत भी बताई जाए। संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रति दर्जन 12 रु. की दर से प्रति सप्ताह 10 संतरे की माँग है। यही पूर्ण और सार्थक वक्तव्य है और व्यष्टि-अर्थशास्त्र (Micro-economic Theory) के सिद्धांत में इसी का उपयोग किया जाता है।

6.3 माँग के निर्धारक (Determinants of Demand)

किसी वस्तु की माँग पर अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इनके संबंध में विस्तारपूर्वक चर्चा की जा रही है।

6.3.1 उपभोक्ता की माँग के निर्धारक

किसी उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की माँग अथवा किसी वस्तु की माँग की मात्रा अनेक कारकों पर निर्भर करती है। वस्तु की मांग को प्रभावित करने वाले कुछ कारक निम्नलिखित हैं:

1 **वस्तु की कीमत**: कोई उपभोक्ता किसी वस्तु की कितनी मात्रा की माँग करता है इस पर उस वस्तु की कीमत का प्रमुख रूप से प्रभाव पड़ता है। सामान्य रूप में वस्तु की कीमत के अधिक होने पर उस वस्तु की माँग कम होती है। जैसा कि आगे चलकर स्पष्ट किया जाएगा, इसे माँग के नियम का क्रियाशील होना कहा जाएगा। माँग के नियम के संबंध में सदा ही यह मान लिया जाता है कि माँग को प्रभावित करने वाले अन्य कारक स्थिर रहते हैं।

2 **उपभोक्ता की आय की मात्रा**: वस्तु की माँग उपभोक्ता की आय की मात्रा से भी प्रभावित होती है। उपभोक्ता की आय के बढ़ जाने पर यदि वह अधिक मात्रा में उस वस्तु की माँग करने लगता है तब उसे "सामान्य वस्तु" कहा जाता है। परन्तु कभी-कभी आय के बढ़ जाने पर वस्तु की माँग की मात्रा घट भी जाती है। ऐसा घटिया वस्तुओं (inferior goods) के संबंध में संभव होता है।

3 **अन्य वस्तुओं की कीमतें**: किसी वस्तु की माँग पर अन्य वस्तुओं की कीमतों का भी प्रभाव पड़ता है। कुछ स्थितियों में अन्य वस्तुओं की कीमतों के बढ़ने पर विचारणीय वस्तु की माँग बढ़ जाती है, परन्तु कुछ अन्य स्थितियों में अन्य वस्तुओं की कीमतों के बढ़ने पर इस वस्तु की माँग घट जाती है। पहली स्थिति स्थानापन्न वस्तुओं (substitutes) के संबंध में होती है और दूसरी स्थिति "पूरक वस्तुओं" (complementary goods) के संबंध में। चाय और काफी स्थानापन्न वस्तुओं के दृष्टांत हैं तथा मोटर गाड़ी एवं पेट्रोल या पैन और स्याही पूरक वस्तुओं के दृष्टांत हैं।

4 **उपभोक्ता की रुचि**: किसी वस्तु के लिए माँग उपभोक्ता की रुचि से भी प्रभावित होती है। यदि किसी विशेष वस्तु के प्रति किसी उपभोक्ता की रुचि हो, तो वह उस वस्तु की अधिक मात्रा में माँग करने लगेगा। उसी प्रकार यदि किसी विशेष वस्तु के प्रति किसी उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन हो गया है, तब किसी विशेष कीमत पर उस वस्तु की कम मात्रा में माँग करेगा।

रुचि में परिवर्तन को एक दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। लोग अब रंगीन टी.वी. देखना पसंद करने लगे हैं, अतः इसकी कीमत के बढ़ने पर भी वे अधिकाधिक रंगीन टी. वी. खरीदेंगे। लोग अब काली और सफेद टी वी. की अपेक्षा रंगीन टी.वी. देखना अधिक पसंद करने लगे हैं। अतः काली और सफेद टी.वी. की कीमत के घट जाने पर भी वे उसे कम मात्रा में ही खरीदेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि किसी वस्तु के लिए किसी उपभोक्ता की माँग पर जिन कारकों का प्रभाव पड़ता है, वे निम्नलिखित हैं:

1 विचारणीय वस्तु की कीमत
2 अन्य वस्तुओं की कीमतें
3 उपभोक्ता की आय और
4 उपभोक्ताओं की रुचि

इन कारकों को माँग फलन (demand function) के रूप में भी लिखा जा सकता है। माँग फलन वह अभिव्यक्ति है जिसके द्वारा किसी परतंत्र चर (dependent variable) को अन्य परतंत्र चरों पर आश्रित दिखाया जाता है। मान लें कि वस्तु X की मांग को प्रतीक D_X द्वारा, इसकी कीमत के प्रतीक P_X द्वारा, वस्तु X के अतिरिक्त L,M,N. . . Z नामक अन्य वस्तुओं की कीमतों को प्रतीक $P_L, P_M, P_N \ldots P_Z$ द्वारा, उपभोक्ता की आय को Y द्वारा और इन वस्तुओं के प्रति रुचि को T द्वारा दिखाया जाता है। इस स्थिति में माँग फलन को यों दिखाया जा सकता है :

$$D_X = f(P_X, P_L, P_M, P_N \ldots P_Z, Y, T)$$

यदि वस्तु X की माँग को प्रभावित करने वाले सभी कारकों में एक ही साथ परिवर्तन होने दिया जाता है तब स्थिति अत्यंत जटिल हो जाएगी। इसीलिए सामान्यतः एक ही कारक में परिवर्तन होने दिया जाता है। ऐसा यह मानकर किया जाता है कि अन्य सभी कारक अपरिवर्तित रहते हैं, अर्थात् अर्थशास्त्रियों के शब्दों में "यदि अन्य परिस्थितियाँ पूर्ववत् रहें" ('ceteis paribus')।

6.3.2 बाजार की माँग के निर्धारक

यदि किसी वस्तु की कीमत दी हुई हो तब हम किसी उपभोक्ता द्वारा उस वस्तु की माँग को अथवा वस्तु की माँग की मात्रा को जान सकते हैं। यदि बाजार में इस वस्तु को खरीदने वाले सभी संभावित उपभोक्ताओं की माँग अथवा माँग की मात्रा को एक साथ जोड़ दिया जाता है, तब इस वस्तु की बाजार माँग (market demand) प्राप्त होती है। किसी वस्तु के लिए किसी उपभोक्ता की माँग का निर्धारण जो कारक करते हैं उन्हीं के द्वारा उस वस्तु को बाजार माँग का भी निर्धारण होता है। इनके अतिरिक्त दो और भी कारकों को शामिल किया जाता है जो निम्नलिखित हैं:

1 **जनसंख्या का आकार:** यदि अन्य कारक पूर्ववत रहें, तो जनसंख्या का आकार जितना भी बड़ा होगा, किसी वस्तु की माँग उतनी ही अधिक होने की संभावना रहेगी। स्वयं जनसंख्या का आकार भी अन्य अनेक कारकों पर निर्भर होता है। किसी देश की जनसंख्या में वृद्धि मुख्यतः जन्म दर और मृत्यु दर द्वारा निर्धारित होती है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि मृत्यु दर में गिरावट जन्म दर से पहले शुरू होती है। फिर भी जनसंख्या में वृद्धि दर इन दोनों ही कारकों का प्रभाव पड़ता है। उत्प्रवासन (emigration) और आप्रवासन (immigration) का भी जनसंख्या पर थोड़ा बहुत प्रभाव है। किसी छोटे देश के लिए ये कारक महत्वपूर्ण हो सकते हैं लेकिन भारत जैसे बहुत बड़ी आबादी (1988 में 80 करोड़) वाले देश के लिए उत्प्रवासन/आप्रवासन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

2 **आय वितरण:** इस संकल्पना को स्पष्ट करना थोड़ा कठिन कार्य है। सरल शब्दों में इसका अर्थ यह होता है कि राष्ट्रीय आय (किसी अर्थव्यवस्था के नागरिकों की एक वर्ष की कारक आय) का वितरण निम्न और उच्च वर्ग के लोगों के बीच कैसे हो रहा है। इसे एक दृष्टांत द्वारा स्पष्ट किया जाएगा। मान लें कि स्थिति "क" में देश के सबसे अधिक निर्धन लोगों को, जो कुल आबादी का 10 प्रतिशत हैं, अर्थव्यवस्था की राष्ट्रीय आय का 2 प्रतिशत जाता है और सबसे धनी लोगों को, जो कुल आबादी के 10 प्रतिशत प्राप्त हैं, राष्ट्रीय आय का 60 प्रतिशत प्राप्त है। इसके विरुद्ध एक अन्य स्थिति "ख" है, जिसमें देश के सबसे अधिक निर्धन लोगों को, जो कुल आबादी का 10 प्रतिशत हैं, राष्ट्रीय आय का 9 प्रतिशत प्राप्त है और सबसे धनी 10 प्रतिशत लोगों को 30 प्रतिशत प्राप्त है, उपर्युक्त "क" को आय का अत्यधिक असमान वितरण की स्थिति कहा जाता है।

स्थिति "क" में सबसे अधिक सम्पन्न आबादी के 10 प्रतिशत लोग कुल माँग के 60 प्रतिशत पर अपना प्रभुत्व जमा सकते हैं जबकि स्थिति "ख" में सबसे अधिक सम्पन्न आबादी के 10 प्रतिशत लोग कुल माँग के 30 प्रतिशत को ही अपने नियंत्रण में रख सकते हैं। स्थिति "ख" की अपेक्षा स्थिति "क" आय के अधिक असमान वितरण की स्थिति होती है।

आय का वितरण जितना ही अधिक असमान होगा, सपन्न व्यक्तियों द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं की मांग भी उतनी ही अधिक होगी। मोटरगाड़ी, फ्रिज, एयरकंडीशनर आदि वस्तुएं ऐसी वस्तुओं की श्रेणी में आती हैं। परन्तु आय के वितरण में जितनी ही कम असमानता होगी, अपेक्षाकृत निर्धन लोगों द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं के लिए माँग उतनी ही अधिक होगी। चावल और गेहूँ जैसे खाद्य पदार्थ, बिजली के पंखे, साइकिल आदि इन्हीं वस्तुओं की श्रेणी में आते हैं।

किसी वस्तु की बाजार माँग जिन कारकों द्वारा निर्धारित होती है वे संक्षेप में यों हैं:

i) विचारणीय वस्तु की कीमत
ii) अन्य वस्तुओं की कीमतें
iii) उपभोक्ताओं की आय
iv) उपभोक्ताओं की रुचियाँ
v) जनसंख्या का आकार
vi) आय वितरण

कार्यात्मक रूप में बाजार माँग फलन को यों प्रस्तुत किया जा सकता है।

$MD_x = f(P_x, P_L, P_M, P_N \ldots P_Z, Y, T, N, Y_D)$

जहां पर प्रतीक $P_X, P_L, P_N \ldots P_Z, Y, T$ को 6.3.1 में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है तथा वस्तु X की बाजार माँग MD_X है, आबादी का आकार N है और आय वितरण YD है।

बोध प्रश्न क

1 किसी वस्तु की आवश्यकता और माँग के बीच में अंतर बताएँ।

....

....

....

2 किसी उपभोक्ता की किसी वस्तु की माँग के निर्धारक क्या हैं?

....

....

....

3 किसी वस्तु की बाजार माँग किन कारकों से प्रभावित होती हैं?

....

....

....

4 निम्नलिखित कारक किन छः श्रेणियों ($P_X, P_L, P_M, P_N \ldots P_Z, Y, T, N, Y_D$) के अंतर्गत आते हैं:

i) खरीदारी के लिए पेपर बैग को पसंद न करना।

ii) डीप फ्रीज सुविधाओं की कीमत के गिरने से ताजी सब्जियों का दाम गिर जाना....

iii) बाल पेन की कीमत के गिरने से बाल पेन के लिए माँग बढ़ जाना ....

iv) उपभोक्ता की आय पर कर में वृद्धि .....

v) धनी व्यक्तियों का और धनी होते जाना और निर्धनों का और निर्धन होते जाना।

vi) जन्म दर का स्थिर बने रहना और मृत्यु दर का गिरना

5 निम्नलिखित सही हैं या गलत?

i) वस्तु की माँग और आवश्यकता के बीच कोई अंतर नहीं होता।

ii) करोल बाग में एक सप्ताह के अंतर्गत 5000 कमीजों की माँग है।

iii) प्रति पैंट 250 रु. कीमत होने की स्थिति में कमला नगर में एक सप्ताह के अंतर्गत 10,000 पैंटों की माँग है।

iv) किसी वस्तु की कीमत के घटने पर उसकी माँग बढ़ जाती है।

v) पैन की कीमत के बढ़ने पर स्याही की माँग बढ़ जाती है।

vi) किसी व्यक्ति पर अधिक आय कर लगाने के परिणामस्वरूप उसकी और अधिक वस्तुओं को खरीदने की क्षमता बढ़ जाती है।

vii) आय वितरण के और असमान होने की स्थिति में खाद्य पदार्थों की माँग बढ़ जाती है।

viii) जनसंख्या के आकार के बढ़ने के साथ-साथ वस्तुओं की माँग घट जाती है।

6.4 माँग का नियम (The Law of Demand)

जैसा कि 6.3 में बताया गया है किसी वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कारकों में सबसे प्रमुख कारक है विचारणीय वस्तु की कीमत। सामान्य रूप में अन्य वस्तुओं की कीमतों, उपभोक्ता की आय और उसकी रुचि के यथावत् रहने पर किसी वस्तु की कीमत के गिरने पर माँग बढ़ जाती है और कीमतों के बढ़ने पर माँग कम हो जाती है। इस प्रवृत्ति के कारण को 6.4.3 में स्पष्ट किया जाएगा। वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच के इस संबंध को "माँग का नियम" कहा जाता है। संक्षेप में माँग के नियम की परिभाषा इस प्रकार है: अन्य बातें समान रहने पर किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है।

6.4.1 माँग अनुसूची (Demand Schedule)

माँग के नियम के प्रयोग के लिए काल्पनिक अंकों को लें। नीचे की तालिका 6.1 में माँग के नियम के प्रयोग को दिखाया गया है। इसी तालिका को माँग अनुसूची कहते हैं।

तालिका 6.1

सेब के लिए उपभोक्ता की माँग अनुसूची

एक सेब की कीमत (रु. में)	प्रति सप्ताह सेब की माँग की मात्रा (इकाइयों में)
1	15
2	12
3	8
4	3

तालिका 6.1 में कीमत और माँग की मात्रा के चार संयोजनों को दिखाया गया है। इस तालिका को देखने पर हम आसानी से यह अनुमान लगा सकते हैं कि सेब की कीमत जैसे-जैसे बढ़ती जाती है वैसे-वैसे उसके लिए उपभोक्ता की माँग घटती जाती है। इस प्रकार अंकों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि इन पर माँग का नियम लागू होता है।

6.4.2 माँग वक्र (Demand Curve)

जैसा कि चित्र 6.1 में दिखाया गया है सूचना को एक रेखा चित्र की सहायता से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

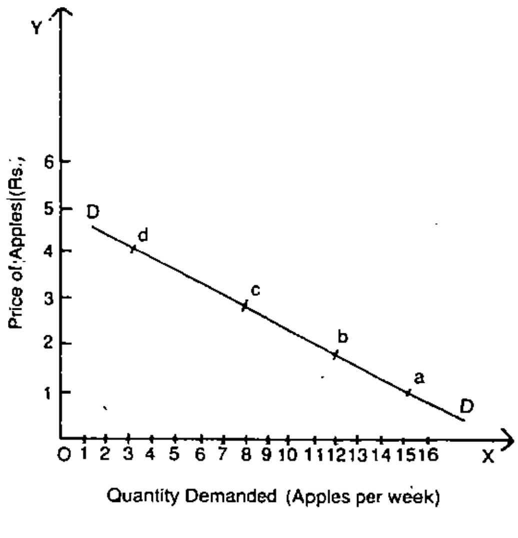

चित्र 6.1

Y-अक्ष पर रुपये में सेब की कीमत की माप दिखायी गयी है, और x-अक्ष पर किसी उपभोक्ता की प्रति सप्ताह सेब की माँग की मात्रा को मापा गया है। इस तालिका का प्रथम संयोजन उस बिन्दु पर है जहां प्रति सेब 1 रुपया कीमत होने की स्थिति में 15 सेब की माँग होती है। उसी प्रकार बिन्दु b, c, d क्रमशः कीमत 2 रुपये–12 सेब की माँग, 3 रुपये– 8 सेब की माँग और 4 रुपये–3 सेबों की माँग का प्रतिनिधित्व करते हैं। a,b,c, और d बिन्दुओं को मिलाने से जो वक्र बनता है, उसे माँग वक्र कहते हैं। इस प्रकार DD माँग वक्र है।

माँग वक्र की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि यह बाएं से दायीं और अधोमुखी होता है। चित्र 6.1 में माँग वक्र को सीधी रेखा के रूप में दिखाया गया है। लेकिन माँग वक्र के लिए सदा सीधी रेखा के रूप में होना आवश्यक नहीं होता। जैसा कि चित्र 6.2 में दिखाया गया है यह रेखा वक्रों के रूप में भी हो सकती है।

माँग वक्र सीधी रेखा के रूप में है, या वक्र रेखा के रूप में यह इस बात पर निर्भर करता है कि वस्तु की कीमत के घटने पर उसकी माँग की मात्रा में कितनी वृद्धि होती है और कीमत के बढ़ने पर माँग की मात्रा में कितनी कमी होती है। चित्र 6.1 को लिया जाए या चित्र 6.2 को, इन दोनों ही स्थितियों में माँग का नियम लागू होता है।

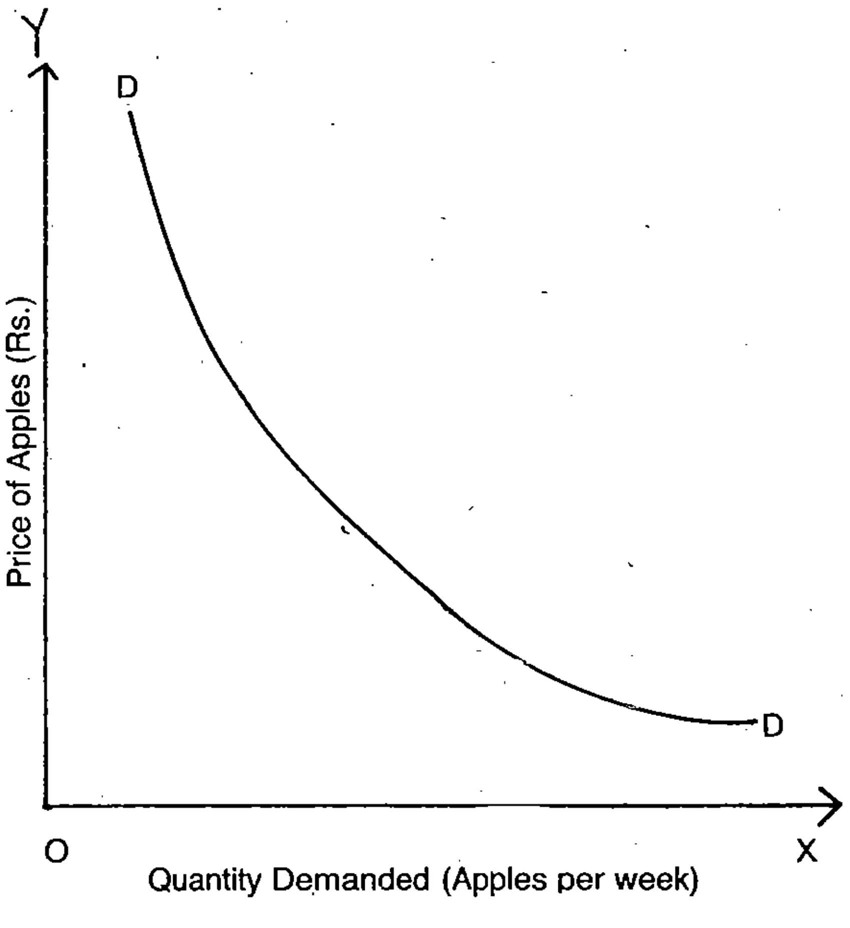

चित्र 6.2

6.4.3 माँग के नियम की व्याख्या

तालिका 6.1 में कीमत और माँग की मात्रा के अंकों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि कीमत के घटने पर माँग की मात्रा में वृद्धि होती है। माँग के नियम के लागू होने के कारणों के संबंध में विचार करें। इकाई 5 में छात्रों को कीमत प्रभाव (price effect), स्थानापत्ति प्रभाव (substitution effect) और आय प्रभाव (income effect) की संकल्पना के संबंध में बताया जा चुका है। इन संकल्पनाओं का प्रयोग यह देखने के लिए किया जाएगा, किसी वस्तु की कीमत के घटने के साथ-साथ उसकी माँग में वृद्धि क्यों होती है। यदि अन्य फलों की कीमतें स्थिर रहती हैं, पर आम की कीमत घट जाती है तब उपभोक्ता अन्य

फलों की खरीद को घटाकर अधिक मात्रा में आम खरीदता है। ऐसा इसलिए होता है कि अन्य फलों की तुलना में उसे आम खरीदना सस्ता लगता है। इसे दूसरी तरह से इस प्रकार कहा जा सकता है कि आम जब सस्ता हो जाता है तब उपभोक्ता उसे अन्य फलों के स्थान पर खरीदता है। इस प्रभाव को "स्थानापत्ति प्रभाव" कहा जाता है इसी कारण से आम के दाम के घटने पर उपभोक्ता अधिक आम खरीदता है, बशर्ते कि अन्य फलों की कीमतें पहले जैसी ही बनी रहें।

उसी प्रकार उपभोक्ता की मौद्रिक-आय (money income) यदि दी हुई है, तब आम की कीमत के घटने पर उस दी हुई मौद्रिक आय की क्रय शक्ति बढ़ जाती है। या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आम की कीमत जब घट जाती है तब आय के दिए हुए होने के कारण उसकी वास्तविक आय बढ़ जाती है। इस प्रकार वह उसी मौद्रिक आय से और अधिक आय खरीद सकता है और इसके फलस्वरूप आम की माँग में वृद्धि की प्रवृत्ति हो जाती है। वस्तु की माँग घटने के साथ-साथ वास्तविक आय में होने वाली उस वृद्धि को "आय प्रभाव" (income effect) कहा जाता है। किसी वस्तु की माँग की मात्रा पर द्रव्य आय में वृद्धि का जो प्रभाव पड़ता है वह वास्तविक आय में वृद्धि जैसा ही होता है। सामान्यतः किसी उपभोक्ता की मौद्रिक आय अर्थात् वास्तविक आय में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है, वैसे-वैसे किसी वस्तु की माँग भी बढ़ती जाती है। मौद्रिक आय का वास्तविक आय के बढ़ने से जिस वस्तु की माँग में वृद्धि हो जाती है, उसे "सामान्य वस्तु" (normal commodity) कहा जाता है। ऐसी स्थिति में होने वाले आय प्रभाव को धनात्मक (positive) आय प्रभाव कहा जाता है। यह धनात्मक इसलिए होता है कि आय और माँग की मात्रा के बीच प्रत्यक्ष संबंध होता है। परन्तु जब मौद्रिक या वास्तविक आय में वृद्धि के फलस्वरूप किसी वस्तु की माँग की मात्रा कम हो जाती है, तब वह ऋणात्मक (negative) आय प्रभाव की स्थिति होती है। "घटिया वस्तु" कही जाने वाली वस्तुओं के संबंध में ऋणात्मक आय प्रभाव पड़ता है। लाइटर की तुलना में दियासलाई "घटिया वस्तु" का एक दृष्टांत है।

स्थानापत्ति प्रभाव और आय प्रभाव को यदि एक साथ जोड़ दिया जाता है, तब कीमत प्रभाव की स्थिति बन जाती है जो किसी वस्तु की कीमत के साथ उस वस्तु की माँग की मात्रा का संबंध कायम करती है। इस संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन होने पर स्थानापत्ति प्रभाव और आय प्रभाव आनुक्रमिक रूप से नहीं पड़ते। वास्तविकता तो यह है कि वस्तु की कीमत में परिवर्तन होते ही ये दोनों ही प्रकार के प्रभाव एक ही साथ कार्य करने लगते हैं।

"स्थानापत्ति प्रभाव" और "आय प्रभाव" यदि दिए हुए हैं (और इन दोनों ही को एक साथ लेने पर "कीमत प्रभाव" पड़ता है) तब तीन प्रकार की स्थिति आ सकती है (1) स्थानापत्ति प्रभाव सदा ही इस प्रकार कार्य करता है कि किसी वस्तु की कीमत के घटने पर उसकी माँग की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। स्थानापत्ति प्रभाव के साथ ही साथ यदि आय प्रभाव को भी लिया जाता है और कुल प्रभाव यदि धनात्मक होता है, (जैसा कि किसी सामान्य वस्तु के साथ होता है) तब माँग का नियम अनिवार्यतः लागू होता है। (2) स्थानापत्ति प्रभाव दिया हुआ होने पर यदि आय प्रभाव ऋणात्मक होता है (जो "घटिया वस्तु" के साथ होता है) तब भी माँग का नियम लागू होता है, परंतु इस संबंध में शर्त यह हैं कि ऋणात्मक आय प्रभाव की तुलना में स्थानापत्ति प्रभाव अधिक हो या अधिक शक्तिशाली हो। (3) स्थानापत्ति प्रभाव दिया हुआ होने पर यदि आय प्रभाव ऋणात्मक होता है (जो घटिया वस्तु के साथ होता है) परन्तु वह स्थानापत्ति प्रभाव की तुलना में अधिक होता है या उससे अधिक शक्तिशाली होता है, तब माँग का नियम लागू नहीं होता।

"गिफन वस्तु" (Giffen goods) की स्थिति में स्थानापत्ति प्रभाव पर ऋणात्मक आय प्रभाव का हावी होना संभव है। गिफन उस व्यक्ति का नाम है जिसने सर्वप्रथम उस विरोधाभास के संबंध में चर्चा की कि वस्तु की कीमत के घटने पर उसकी माँग की मात्रा में वृद्धि होना आवश्यक नहीं होता। "गिफन वस्तु" का एक दृष्टांत बाजरा है। क्योंकि उपभोक्ता की आय जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे वह बाजरा के उपभोग को कम करता जाता है और गेहूँ के उपभोग को बढ़ाता जाता है, अर्थात् बाजरा की कीमत के घटने पर भी उसके लिए माँग कम होती जाती है।

6.5 माँग में परिवर्तन और माँग की मात्रा में परिवर्तन

जैसा कि 6.3.1 में स्पष्ट किया जा चुका है, किसी उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की माँग अर्थात् माँग की मात्रा का निर्धारण जिन कारकों द्वारा होता है वे हैं वस्तु की कीमत, विचारणीय वस्तु को छोड़कर अन्य वस्तुओं की कीमतें, उपभोक्ता की आय तथा वस्तु को खरीदने वाले उपभोक्ता की रुचि में परिवर्तन।

वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप जब उसकी माँग में परिवर्तन होता है, तब उसे "माँग में परिवर्तन" कहा जाता है। इसके विपरीत जब वस्तु की कीमत को छोड़कर अन्य कारकों में परिवर्तन के फलस्वरूप माँग में परिवर्तन होता है तब उसे "म.ंग की मात्रा में परिवर्तन" कहा जाता है।

माँग में परिवर्तन से अभिप्राय है कि कीमत के गिरने के फलस्वरूप वस्तु की माँग की मात्रा बढ़ गई या उसकी कीमत के बढ़ने के फलस्वरूप वस्तु की माँग की मात्रा घट गई। वस्तु की कीमत के घटने के फलस्वरूप उसकी माँग की मात्रा के बढ़ने को "माँग का विस्तार" (extension in demand) कहा जाता है और उसकी कीमत में वृद्धि के फलस्वरूप माँग की मात्रा के घटने को "माँग का संकुचन" (contraction of demand) कहा जाता है। माँग के विस्तार और संकुचन को चित्र 6.3 में स्पष्ट किया गया है।

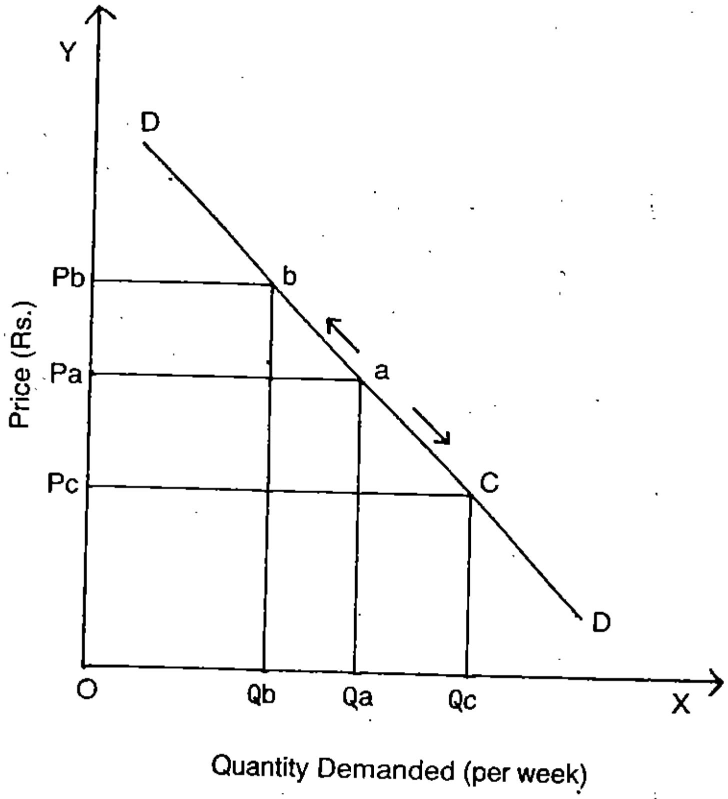

चित्र 6.3

X-अक्ष पर वस्तु की माँग की मात्रा मापी गई है और Y-अक्ष पर वस्तु की कीमत को रुपयों में मापा गया है। DD माँग वक्र है। माँग वक्र के बिन्दु 'a' पर हम देखते हैं OP कीमत पर वस्तु की OQa मात्रा की माँग की जाती है। जब कीमत गिरकर OPc हो जाती है, तब माँग OQc हो जाती है। DD माँग वक्र पर बिन्दु 'a' से बिन्दु 'c' को होने वाले उस परिवर्तन को "माँग का विस्तार" कहा जाता है। 'a' से 'c' तक जाने वाले तीर के चिन्ह द्वारा भी उसे दर्शाया गया है। उसी प्रकार वस्तु की कीमत बढ़कर जब OPb हो जाती है, तब माँग में गिरावट OQb तक हो जाती है। इस प्रकार DD माँग वक्र पर 'a'

में 'b' तक होने वाले परिवर्तन को "माँग संकुचन" कहा जाता है या किसी दिए हुए माँग वक्र पर होने वाले उतार-चढ़ाव को **माँग में परिवर्तन** कहा जाता है।

नीचे दिए गए चित्र 6.4 की सहायता से माँग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट किया गया है।

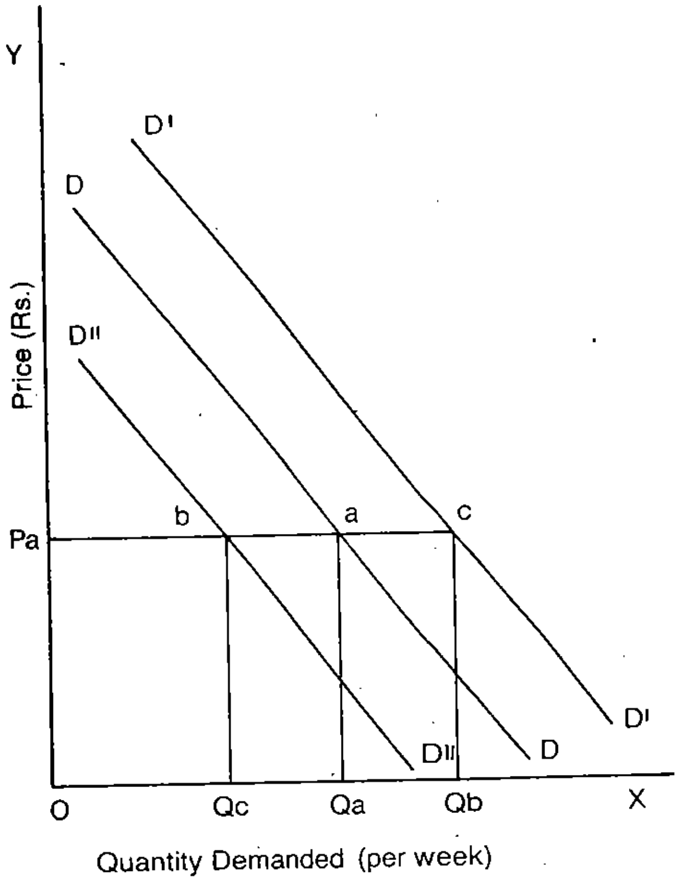

चित्र 6.4

सामान्य रूप से ही किसी वस्तु की मात्रा को X-अक्ष पर मापा जाता है और Y-अक्ष पर उस वस्तु की कीमत रुपयों में मापी जाती है। कीमत Pa पर माँग वक्र DD के 'a' बिन्दु पर OQa मात्रा में वस्तु की माँग की जाती है और इसी कीमत OPa पर माँग वक्र D'D' के 'C' बिन्दु पर माँग की मात्रा बढ़कर OQb हो जाती है। माँग में इस वृद्धि को "माँग की मात्रा में वृद्धि" कहा जाता है। उसी प्रकार माँग वक्र D"D" के 'b' बिन्दु पर OPa कीमत पर माँग की मात्रा घटकर OQc हो जाती है। OQa से OQc तक माँग में इस परिवर्तन को 'माँग की मात्रा में कमी' कहा जाता है। अर्थात् माँग वक्र में परिवर्तन यदि प्रारंभिक माँग की दायीं ओर होती है तब उसे "माँग की मात्रा में वृद्धि" कहा जाता है और ऐसा परिवर्तन यदि बायीं ओर होता है तब उसे माँग की मात्रा में कमी कहा जाता है। माँग वक्र के स्थान परिवर्तन के अनेक कारण होते हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित हैं:

1 माँग की मात्रा में वृद्धि अर्थात् माँग वक्र का दायीं ओर स्थानांतरण उपभोक्ता की मौद्रिक आय में वृद्धि के फलस्वरूप हो सकता है। उपभोक्ता की मौद्रिक आय यदि बढ़ जाती है तब दी हुई कीमत पर ही वह वस्तु की अधिक मात्रा की माँग कर सकता है। उसी प्रकार माँग की मात्रा में कमी अर्थात् माँग वक्र का बायीं ओर स्थानांतरण उपभोक्ता की मौद्रिक आय में कमी होने के कारण हो सकता है।

2 माँग वक्र का दायीं ओर स्थानांतरण किसी स्थानापन्न वस्तु की कीमत के बढ़ने या किसी पूरक वस्तु की कीमत के घटने के फलस्वरूप भी हो सकता है। उसी प्रकार माँग

वक्र का बायीं ओर स्थानांतरण स्थानापन्न वस्तु की कीमत के घटने या पूरक वस्तु की कीमत के बढ़ने के कारण हो सकता है।

3 यदि उपभोक्ता किसी वस्तु को पसंद करने लगा है तब उसकी कीमत के ज्यों का त्यों बने रहने के बावजूद भी वह उसकी अधिक मात्रा में माँग कर सकता है। इस प्रकार माँग वक्र के दायीं ओर स्थानांतरण का कारण यह हो सकता है कि उपभोक्ता संबंधित वस्तु को पसंद करने लगा है। उसी प्रकार माँग वक्र का बायीं ओर जाने का कारण यह हो सकता है कि संबंधित वस्तु के प्रति उपभोक्ता की रुचि कम हो गई है। इस संबंध में यह स्मरणीय है कि यहाँ पर हम केवल व्यक्ति के माँग वक्र में उतार-चढ़ाव के संबंध में ही विचार कर रहे हैं। बाजार माँग वक्र और उसमें उतार-चढ़ाव के संबंध में यहाँ विचार नहीं किया गया है।

6.6 माँग का नियम और सरकारी नीति

वस्तुओं की कीमतों के निर्धारण के संबंध में सरकारी नीति निर्धारण में माँग के नियम से बहुत सहायता मिल सकती है। सरकारी नीति में माँग के नियम के कुछ प्रमुख प्रयोग निम्नलिखित हैं।

1 **किसी वस्तु की कीमतों का निर्धारण:** सामान्य रूप से ही क्रमशः X-अक्ष और Y-अक्ष पर वस्तु की मात्रा और उसकी कीमत को मापा गया है। OP_0 कीमत पर OQ_0 मात्रा में वस्तु की माँग है। मान लें कि वस्तु का उत्पादन OQ_1 मात्रा में हो रहा है जिसका प्रतिनिधित्व सीधी रेखा SQ_1 करती है जो Y-अक्ष के समानान्तर है और यह बताती है कि वस्तु की कीमत में उतार-चढ़ाव होने के साथ उसके उत्पादन की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं आता। सरकार यदि उत्पादन की पूरी मात्रा को बेचना चाहती है तो ऐसा करने के लिए उसके पास एक मात्र उपाय यही है कि वह कीमत को घटाकर OP_0 से OP_1 कर दे। सरकार ऐसा कर सकती है क्योंकि वह जानती है कि मांग का नियम इस वस्तु पर लागू होता है।

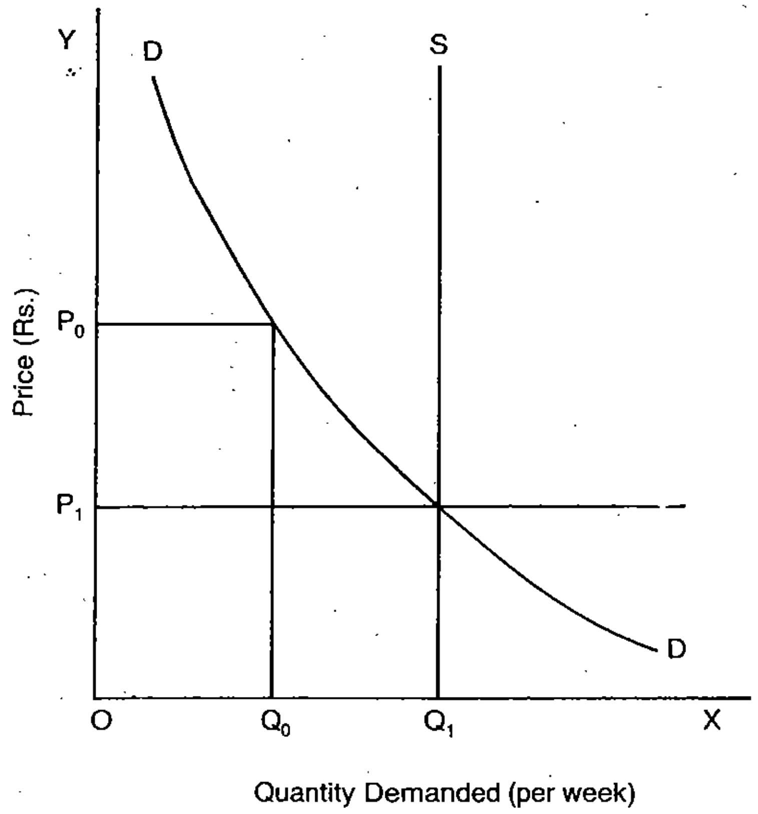

चित्र 6.5

2 **आर्थिक सहायता या कर की घोषणा:** सरकार उत्पादकों को नकद रूप में जो सहायता देती है उसे आर्थिक सहायता (subsidy) कहा जाता है। मान लें कि अर्थव्यवस्था के पास उत्पादन करने की क्षमता तो बहुत है लेकिन किसी कारण से पर्याप्त मात्रा में माँग नहीं हो रही है। इस स्थिति में सरकार उत्पादकों के लिए आर्थिक सहायता की घोषणा कर सकती है जिससे वस्तु की अधिक माँग की स्थिति लाई जा सके। उसी प्रकार वस्तु के लिए माँग की तुलना में यदि उत्पादन क्षमता कम है तब सरकार उस वस्तु पर कर लगा सकती है जिससे वस्तु की माँग कम हो जाए।

3 **माँग का नियम और उपभोक्ता अतिरेक:** इकाई 4 में आप उपभोक्ता अतिरेक की संकल्पना के संबंध में पढ़ चुके हैं। कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के बिना ही अपना काम चलाने के बजाय उसके लिए जो कीमत देने को तैयार रहता है और वास्तव में वह जितनी कीमत देता है, इन दोनों के बीच के अंतर को उपभोक्ता अतिरेक (Consumer's Surplus) कहा जाता है। इसकी माप चित्र 6.6 में की गई है।

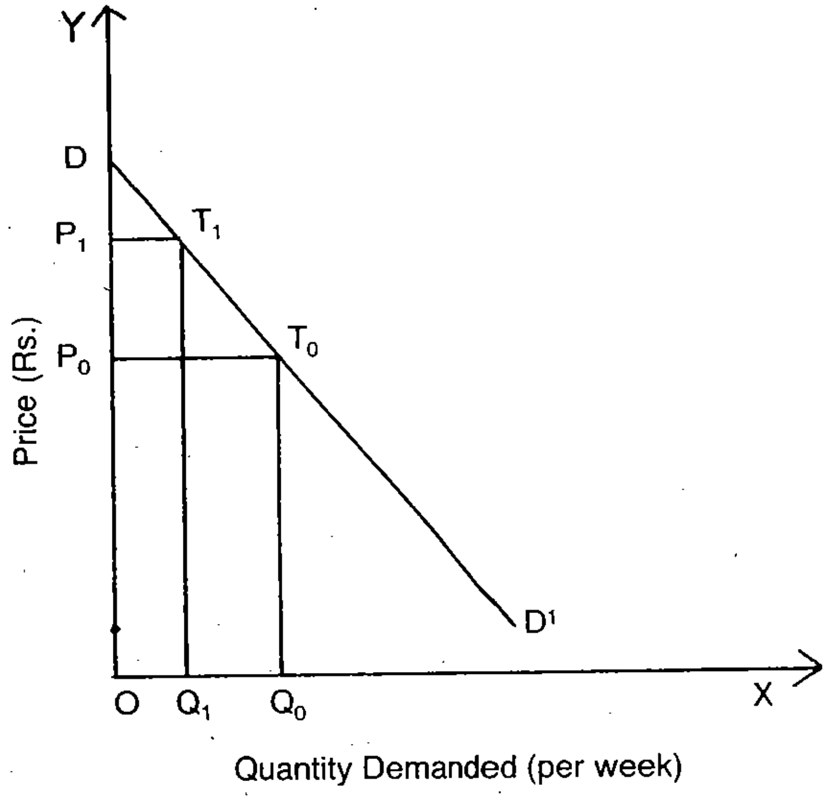

चित्र 6.6

माँग वक्र DD′ के दिए हुए होने पर OP_0 कीमत पर माँग की मात्रा OQ_0 है तथा उपभोक्ता अतिरेक P_0T_0D है। मान लें कि सरकार महसूस करती है कि उपभोक्ताओं को अधिक उपभोक्ता अतिरेक प्राप्त हो रहा है। इस स्थिति में वह वस्तु की कीमत को बढ़ाकर OP_1 कर सकती है। इसके फलस्वरूप उपभोक्ता अतिरेक घटकर P_1T_1D हो जाएगी। कीमत में इस प्रकार की वृद्धि कर लगाकर की जा सकती है। कर लगाया जाए या न लगाया जाए, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि लगाए गए कर के संबंध में उपभोक्ता अतिरेक में कितनी कमी हो रही है। उदाहरणार्थ, चित्र 6.6 में हम देखते हैं कि उपभोक्ता की बचत में $P_1P_0T_0T_1$ की कमी हो रही है। उपभोक्ता की बचत में होने वाली इस क्षति की तुलना सरकार को कर से प्राप्त होने वाली आय से करनी होगी। कर तभी लगाया जाएगा जबकि उपभोक्ता अतिरेक में होने वाली कमी की तुलना में कर से प्राप्त होने वाली आय अधिक हो। उसी प्रकार सरकार यदि किसी वस्तु के लिए आर्थिक सहायता देने का निर्णय लेती है, तो ऐसा तभी किया जाएगा जबकि सरकार द्वारा दिए जाने वाले आर्थिक सहायता की मात्रा की तुलना में उपभोक्ता अतिरेक से होने वाले लाभ की मात्रा अधिक हो।

बोध प्रश्न ख

1 माँग वक्र के साथ-साथ परिवर्तन और माँग वक्र के स्थान-परिवर्तन के बीच अंतर बताएं।

....

....

....

2 माँग में विस्तार और माँग में वृद्धि के बीच भेद बताएं।

....

....

....

3 कीमत वृद्धि के स्थानापत्ति और आय प्रभावों की सहायता से माँग के नियम के अपवादों का स्पष्टीकरण करें।

....

....

....

4 माँग अनुसूची के प्रयोग के द्वारा माँग संकुचन और माँग में कमी की व्याख्या करें।

....

....

....

5 वस्तु के कीमत निर्धारण के संबंध में सरकार को माँग के नियम से किस प्रकार से सहायता मिलती है?

6 निम्नलिखित **सही** हैं या **गलत**?

i) माँग के नियम के अनुसार किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा कें बीच विपरीत संबंध होता है।

ii) माँग वक्र सदा ही सीधी रेखा के रूप में होता है बायीं से दायीं ओर अधोमुखी होती है।

iii) यदि स्थानापत्ति प्रभाव धनात्मक आय प्रभाव पर हावी होता है, तब माँग का नियम लागू नहीं हो पाता।

iv) स्थानापत्ति प्रभाव + कीमत प्रभाव = आय प्रभाव।

v) यदि स्थानापन्न वस्तु की कीमत गिर जाती है तब वस्तु की माँग की मात्रा घट जाती है।

vi) रुचि में परिवर्तन के फलस्वरूप माँग वक्र के साथ-साथ परिवर्तन होने लगता है।

vii) यदि सरकार द्वारा दिए जाने वाले आर्थिक सहायता की मात्रा की तुलना में उपभोक्ता अतिरेक में वृद्धि कम होती है, तब उद्योग को आर्थिक सहायता देना आवश्यक होता है।

viii) यदि किसी विशेष कीमत पर की जाने वाली माँग की मात्रा की तुलना में उत्पादन की मात्रा अधिक है, तब सरकार को चाहिए कि वह वस्तु की कीमत कम कर दे।

6.7 सारांश

किसी वस्तु की माँग एक प्रवाह है जिसकी माप एक समय अवधि के अंतर्गत की जाती है, क्रय शक्ति से इसे समर्थन प्राप्त होता है तथा इसकी अभिव्यक्ति सदा ही कीमत के संदर्भ में की जाती है। किसी वस्तु के लिए उपभोक्ता की माँग को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। ये कारक हैं–विचारणीय वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय, अन्य वस्तुओं की कीमतें और उपभोक्ता की रुचि। बाजार माँग पर दो और कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। ये हैं–जनसंख्या का आकार और आय का वितरण।

माँग के नियम के अनुसार अन्य बातों के पूर्ववत रहने पर वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है। माँग के नियम की व्याख्या माँग अनुसूची की सहायता से की जा सकती है। जिसमें विभिन्न कीमतों पर वस्तु की माँग की मात्रा को बताया जाता है। माँग के नियम की व्याख्या माँग वक्र की सहायता से भी की जा सकती है। जो बायीं से दायीं ओर इस प्रकार से अधोमुखी होता है कि x-अक्ष पर वस्तु की माँग की मात्रा को तथा y-अक्ष पर वस्तु की कीमत को मापा जाता है।

माँग के नियम की व्याख्या **स्थानापत्ति प्रभाव** और **आय प्रभाव** के बीच भेद करके की जाती है और इन दोनों प्रभावों के योग को कीमत प्रभाव कहा जाता है। "सामान्य वस्तु" के लिए आय प्रभाव धनात्मक होता है जबकि उपभोक्ता की आय एवं वस्तु की माँग की मात्रा के बीच प्रत्यक्ष संबंध होता है। "घटिया वस्तु" के लिए आय प्रभाव ऋणात्मक होता है जब कि उपभोक्ता की आय और वस्तु की माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है। यदि आय प्रभाव ऋणात्मक है और वह स्थानापत्ति प्रभाव पर हावी है, तब यह स्थिति माँग के नियम का अपवाद होती है। स्थानापत्ति प्रभाव एवं आय प्रभाव दोनों एक ही साथ कार्य करते हैं।

माँग वक्र के साथ के परिवर्तन और माँग वक्र के स्थान परिवर्तन के बीच भेद है। यदि हम माँग वक्र के साथ-साथ दायीं ओर चलते हैं तब वह माँग में विस्तार की स्थिति होती है और यदि माँग वक्र की किसी दी हुई बिन्दु से बायीं ओर गति होती है, तब माँग में संकुचन की स्थिति होती है। यदि माँग वक्र दायीं ओर ऊपर हो जाता है तब उससे अभिप्राय यह होता है कि किसी दी हुई कीमत पर अधिक मात्रा में माँग है। इसे माँग की मात्रा में वृद्धि कहा जाता है। उसी प्रकार माँग वक्र का बायीं ओर नीचे हो जाने से अभिप्राय यह होता है कि माँग की मात्रा घट गई है। माँग की मात्रा में कमी या वृद्धि विचारणीय वस्तु की कीमत में परिवर्तन को छोड़कर अन्य कारणों के परिणामस्वरूप होती है या रुचि में परिवर्तन के कारण ऐसा होता है।

माँग के नियम का प्रयोग वस्तु की कीमत के निर्धारण में सरकार की सहायता कर सकता है। यदि किसी विशेष कीमत पर वस्तु की माँग की अपेक्षा उत्पादन की मात्रा अधिक है तब सरकार के लिए यह इस बात का सूचक है कि वह वस्तु की कीमत को घटा दे। किसी वस्तु के संबंध में आर्थिक सहायता देने या उस पर कर लगाने के बारे में निर्णय लेने में भी यह नियम सरकार की सहायता करता है।

6.8 शब्दावली

माँग में परिवर्तन: माँग वक्र के किसी विशेष बिन्दु के संबंध में माँग वक्र के साथ होने वाला उतार-चढ़ाव।

माँग की मात्रा में परिवर्तन: विचारणीय वस्तु की कीमत को छोड़कर अन्य कारकों के कारण स्वयं माँग वक्र में स्थान-परिवर्तन।

उपभोक्ता अतिरेक: कोई उपभोक्ता किसी वस्तु के बिना अपना काम चलाने के बजाय

उसके लिए जो कीमत देने को तैयार रहता है और वास्तव में जिस कीमत पर उसे खरीदता है, इन दोनों के बीच अंतर को उपभोक्ता अतिरेक कहा जाता है।

माँग वक्र: कोई रेखा या वक्र जिस पर वस्तु की कीमतों और उसकी माँग की मात्रा के विभिन्न संयोजनों को दिखाया जाता है, सामान्यतः यह बायीं से दायीं ओर अधोमुखी होता है।

प्रवाह चर: वह चर जिसका माप केवल किसी समय अवधि के दौरान ही किया जा सकता है।

गिफन वस्तुएँ: वह वस्तु जिसमें वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच प्रत्यक्ष संबंध होता है।

घटिया वस्तुएँ: वह वस्तु जिसमें उपभोक्ता की आय और वस्तु की माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है।

आय प्रभाव: इससे यह पता चलता है कि वस्तु की माँग की मात्रा पर उपभोक्ता की आय में परिवर्तन का क्या प्रभाव पड़ता है।

आय वितरण: समाज के विभिन्न आय वर्ग के लोगों के बीच राष्ट्रीय आय का प्रतिशत वितरण।

माँग का नियम: इस नियम के अनुसार अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच विपरीत का संबंध होता है।

सामान्य वस्तु: वह वस्तु जिसके संबंध में उपभोक्ता की आय और वस्तु की माँग की मात्रा के बीच प्रत्यक्ष संबंध होता है।

आर्थिक सहायता: सरकार द्वारा उत्पादक को दी जाने वाली नकद सहायता जिसके आधार पर वह उपभोक्ता से अपेक्षाकृत कम कीमत ले सके।

स्थानापत्ति प्रभाव: इससे यह पता चलता है कि अन्य वस्तुओं की कीमतों के पूर्ववत् बने रहने पर किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन हो जाता है तब उपभोक्ता एक वस्तु के स्थान पर किसी दूसरी वस्तु को खरीदता है

आवश्यकता: किसी वस्तु को प्राप्त करने की किसी उपभोक्ता की इच्छा। इसके लिए आवश्यक नहीं होता कि उस वस्तु को खरीदने के लिए उपभोक्ता के पास क्रय शक्ति भी हो।

माँग अनुसूची: एक तालिका जिसमें किसी वस्तु की विभिन्न कीमत स्तरों पर उसकी माँग की मात्रा को दिखाया जाता है।

माँग: क्रय शक्ति द्वारा समर्थित किसी वस्तु की आवश्यकता।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 i) रुचि ii) अन्य वस्तुओं की कीमतें iii) बाल पेनों की कीमत
iv) उपभोक्ता की आय v) आय का वितरण vi) जनसंख्या

5 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) गलत v) गलत
vi) गलत vii) गलत viii) गलत

ख 6 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) गलत v) सही
vi) गलत vii) गलत viii) सही

6.10 स्वपरख प्रश्न

1 बाजार के लिए किसी वस्तु की माँग के प्रमुख निर्धारक बताइए।

2 माँग अनुसूची और माँग वक्र की सहायता से माँग के नियम की व्याख्या करें।

3 कीमत वृद्धि के स्थानापत्ति और आय प्रभावों के बीच अंतर बताएँ।

4 स्थानापत्ति और आय प्रभावों के बीच के भेद का प्रयोग करते हुए माँग के नियम के अपवादों का स्पष्टीकरण करें।

5 घटिया वस्तु और गिफन वस्तु के बीच अंतर बताएँ।

6 कीमत नीति तथा कर एवं आर्थिक सहायता नीति के निर्धारण के संबंध में सरकार माँग के नियम का किस प्रकार से उपयोग कर सकती है।

नोट: इन प्रश्नों से आपको इस इकाई को भलीभांति समझने में मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन ये उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 7 मांग की लोच (Elasticity of Demand)

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 मांग की लोच की संकल्पना
  7.2.1 मांग की कीमत लोच
  7.2.2 मांग की आय लोच
  7.2.3 मांग की कीमत प्रति-लोच
7.3 मांग की कीमत लोच की माप
7.4 मांग की कीमत लोच के निर्धारक
7.5 मांग की कीमत लोच का महत्व
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.9 स्वपरख प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- माँग की लोच की संरचना को स्पष्ट कर सकें
- माँग की कीमत लोच, माँग की आय लोच और माँग की कीमत प्रति-लोच की पहचान कर सकें
- माँग की कीमत लोच की माप की विभिन्न विधियों का वर्णन कर सकें
- इकाई (Unitary) कीमत लोचदार माँग वक्र की पहचान कर सकें
- कीमत लोच को निर्धारित करने वाले कारकों के संबंध में बता सकें
- माँग की कीमत लोच के महत्व को स्पष्ट कर सकें।

7.1 प्रस्तावना

इकाई 6 में आप माँग के नियम और उन कारकों के संबंध में पढ़ चुके हैं जिन पर किसी वस्तु की माँग की मात्रा निर्भर करती है। इस इकाई में आपको बताया जाएगा कि किसी वस्तु की माँग की मात्रा पर वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय और अन्य वस्तुओं की कीमतों का कहाँ तक प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में आप माँग की कीमत लोच (price elasticity of demand), माँग की आय लोच (income elasticity of demand),और माँग की प्रति लाच (cross elasticity of demand) के बारे में पढ़ेंगे। आप यह भी पढ़ेंगे कि किसी वस्तु की माँग की कीमत लोच किन कारणों पर निर्भर करती है तथा विभिन्न सरकारी नीतियों के संबंध में माँग की कीमत लोच का कहां तक महत्व है।

7.2 माँग की लोच की संकल्पना (Concept of Elasticity of Demand)

माँग की लोच से अभिप्राय है चर वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय या विचारणीय वस्तु के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की कीमत में दिए हुए परिवर्तन के परिणामस्वरूप माँग की मात्रा में परिवर्तन। लोच की माप सदा ही किसी स्वतंत्र चर (Independent variable) में दिए हुए प्रतिशत या आनुपातिक परिवर्तन के फलस्वरूप किसी आश्रित चर (Dependent variable) में होने वाले प्रतिशत या आनुपातिक परिवर्तन के रूप में की जाती है।

इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि किसी वस्तु की माँग तो विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है फिर भी माँग का नियम तो हमें यह बताता है कि वस्तु की माँग और कीमत के बीच विपरीत संबंध है। ऐसा इसलिए संभव हो पाता है कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों को पूर्ववत् मान लिया जाता है। तकनीकी शब्दों में इस स्थिति को आंशिक संतुलन दृष्टिकोण (partial equilibrium approach) कहा जाता है। इसे आंशिक इसलिए कहा जाता है कि किसी वस्तु की माँग को प्रभावित करने वाले कारकों में एक ही साथ परिवर्तन नहीं होने दिया जाता। यह मान लेना संभव है कि विचारणीय वस्तु और अन्य वस्तुओं की कीमत अपरिवर्तित रहती हैं और फिर हम वस्तु की माँग और माँग करने वाले व्यक्ति की आय के बीच संबंध प्राप्त कर सकते हैं। उसी प्रकार हम यह मान सकते हैं कि वस्तु की कीमत और उपभोक्ता की आय में भी परिवर्तन नहीं होता और फिर वस्तु की माँग और विचारणीय वस्तु के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की कीमत के बीच संबंध प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरी ओर लोच की संकल्पना वस्तु की माँग और वस्तु की कीमत या उपभोक्ता की आय या विचारणीय वस्तु के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु की कीमत के बीच के संबंध को जानने का प्रयास करती है परन्तु इस दौरान उपर्युक्त तीन कारकों में से केवल एक में परिवर्तन होने दिया जाता है और शेष दो को अपरिवर्तित रखा जाता है। इस प्रकार इस इकाई में हम लोच की तीन संकल्पनाओं के संबंध में विचार करेंगे। ये हैं (1) माँग की कीमत-लोच (2) माँग की आय लोच और (3) माँग की प्रति-लोच।

7.2.1 माँग की कीमत लोच (Price Elasticity of Demand)

मांग की कीमत लोच किसी वस्तु की कीमत में दिए हुए (प्रतिशत या आनुपातिक) **परिवर्तन के फलस्वरूप उसकी माँग की मात्रा में हुए सापेक्ष परिवर्तन का माप करती है।** इसे यों भी कहा जा सकता है कि माँग की कीमत लोच किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप हुई उसकी माँग की मात्रा की सापेक्ष परिवर्तन है। दूसरे शब्दों में इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार की जा सकती है कि किसी वस्तु की माँग की मात्रा में हुए आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन को उसकी कीमत में हुए आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने पर माँग की कीमत लोच प्राप्त होती है।

मान लें कि माँग की लोच का निरूपण Ped के द्वारा होता है जहां P कीमत के लिए ed माँग की लोच के लिए है। तब

$$\text{Ped} = \frac{\text{किसी वस्तु की माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

किसी चर के आनुपातिक परिवर्तन को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। यह कार्य एक दृष्टांत की सहायता से किया जा सकता है। मान लें कि माँग की मात्रा 20 इकाइयाँ हैं और यह बढ़ कर 30 इकाइयाँ हो जाती है। तब माँग की गई मात्रा (30 इकाइयों में से) माँग की पहले की मात्रा (20 इकाइयाँ) को घटाने पर माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन प्राप्त होता है। इस प्रकार की मात्रा के इस बचे हुए अंक (30-20) को माँग की मात्रा के पहले के अंक (20 इकाइयों) से भाग देने पर $\frac{30-20}{20}$ या $\frac{10}{20}$ माँग की मात्रा में

आनुपातिक परिवर्तन है। उसी प्रकार किसी वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन को भी एक दृष्टांत की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। मान लें कि वस्तु की कीमत प्रति इकाई 3 रुपये है और यह गिरकर 2 रु. हो जाती है। तब नई कीमत (2 रु.) में से पहले की कीमत (3 रु.) को घटाने पर कीमत में आनुपातिक परिवर्तन प्राप्त होता है। इस प्रकार इस बचे हुए अंक (2 रु.—3 रु.)
को मूल कीमत (3 रु.) से भाग देने पर $\frac{2\text{ रु.}-3\text{ रु.}}{3\text{ रु.}}$ या $\frac{-1\text{ रु.}}{3\text{ रु.}}$
कीमत में आनुपातिक परिवर्तन है।

आनुपातिक परिवर्तन की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों (Symbols) को काम में लाया जा सकता है। मान लें कि माँग की नई मात्रा और माँग की पहले की मात्रा के बीच अंतर का निरूपण प्रतीक ΔD द्वारा और मूल माँग का निरूपण प्रतीक D द्वारा होता है। तब वस्तु की माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{\Delta D}{D}$ है। उसी प्रकार नई कीमत और पहली कीमत के बीच के अंतर का निरूपण प्रतीक ΔP द्वारा और मूल कीमत का निरूपण प्रतीक P द्वारा होता है। इस स्थिति में कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\frac{\Delta P}{P}$ हुआ।

यदि किसी वस्तु की माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन $\left(\frac{\Delta D}{D}\right)$ को कीमत में आनुपातिक परिवर्तन $\left(\frac{\Delta P}{P}\right)$ से भाग दिया जाता है, तब मांग की कीमत लोच Ped है:

$$Ped = \frac{\frac{\Delta D}{D}}{\frac{\Delta P}{P}}$$

उपर्युक्त अभिव्यक्ति का निरूपण इस प्रकार भी किया जा सकता है:

$$Ped = \frac{\Delta D}{D} \times \frac{P}{\Delta P} \quad \text{या} \quad Ped = \frac{\Delta D}{\Delta P} \times \frac{P}{D}$$

चूंकि किसी वस्तु की कीमत और उसकी माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है, इसलिए हर (denominator) या अंश (numerator) में ऋण चिह्न आता है। अत: अंततोगत्वा माँग की कीमत लोच (Ped) का निरूपण यों किया जा सकता है:

$$Ped = \frac{\Delta D}{\Delta P} \times \frac{P}{D}$$

मांग की कीमत लोच को जानने के लिए उपर्युक्त दृष्टांत में दिए गए अंकों को सूत्र के रूप में रखा जा सकता है। इस मांग की कीमत लोच (Ped) इस प्रकार होगी:

$$Ped = \frac{\Delta D}{\Delta P} \times \frac{P}{D}$$
$$= \frac{10}{-1} \times \frac{2}{20} = -1$$

इस स्थिति में माँग की कीमत लोच ऋणात्मक है जिससे यह पता चलता है कि कीमत और माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है।

इस संबंध में यह बता देना आवश्यक है कि माँग की कीमत लोच को जानने की उपर्युक्त प्रणाली कीमत और माँग की मात्रा में होने वाले **अत्यंत अल्प** परिवर्तन के संबंध में ही लागू और उपर्युक्त होती है। उपर्युक्त प्रणाली को माँग की "बिंदु" कीमत लोच (point price elasticity of demand) कहा जाता है।

7.2.2 माँग की आय लोच (Income Elasticity of Demand)

माँग की आय लोच से अभिप्राय होता है किसी वस्तु की माँग करने वाले उपभोक्ता की

आय में परिवर्तन के प्रति वस्तु की माँग की मात्रा की सापेक्ष परिवर्तन। वस्तु की माँग की मात्रा में होने वाले आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन को उस वस्तु की माँग करने वाले उपभोक्ता की आय में होने वाले आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर माँग की आय लोच प्राप्त की जाती है। माँग की आय लोच (Yed)के निरूपण के लिए हम प्रतीकों का प्रयोग करेंगे जहां Y आय के लिए तथा ed मांग की लोच के लिए है।

$$\text{इस प्रकार Yed} = \frac{\text{माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{आय में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\frac{\Delta D}{D}}{\frac{\Delta Y}{Y}}$$

$$= \frac{\Delta D}{D} \times \frac{P}{\Delta Y}$$

$$= \frac{\Delta D}{\Delta Y} \times \frac{Y}{D}$$

जहां उपभोक्ता की आय में परिवर्तन के लिए ΔY है, मूल आय Y है, वस्तु की माँग की मात्रा में परिवर्तन के लिए ΔD है और D मूल माँग है।

संख्यात्मक दृष्टांत की सहायता से माँग की आय लोच को स्पष्ट किया जा सकता है। माँग की आय लोच के परिकलन के लिए उदाहरण 1 को ध्यानपूर्वक देखें

उदाहरण 1

आय (रु. में)	मांग की मात्रा (इकाइयों में)
500	20
510	21

आय में परिवर्तन 510−500=10 है, माँग की मात्रा में परिवर्तन 21−20=1 है, मूल आय 500 रु. है और माँग की मूल मात्रा 20 है।

माँग की आय लोच (Yed) इस प्रकार है :

$$\text{Yed} = \frac{\Delta D}{\Delta Y} \times \frac{Y}{D}$$

$$= \frac{1}{10} \times \frac{500}{20}$$

$$= +\ 2.5$$

इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि गुणांक के साथ कोई ऋण चिह्न नहीं लगाया जाता। ऐसा इसलिए कि हमने यह मान लिया है कि वस्तु की माँग की मात्रा और माँग करने वाले उपभोक्ता की आय के बीच प्रत्यक्ष संबंध होता है।

कभी-कभी माँग की मात्रा और उपभोक्ता की आय के बीच विपरीत संबंध भी होता है। इस परिकलन (Calculation) के लिए उदाहरण 2 देखें।

उदाहरण 2

आय (रु. में)	मांग की मात्रा (इकाइयों में)
500	21
510	20

माँग की आय लोच है :

$$Yed = \frac{\Delta D}{\Delta Y} \times \frac{Y}{D}$$

$$= \frac{-1}{10} \times \frac{500}{21}$$

$$= -2.38$$

इस स्थिति में माँग की आय लोच गुणांक (Co-efficient) के साथ ऋण चिन्ह लगाया जाता है क्योंकि आय जब 500 रु. से बढ़कर 510 रु. हो जाती है, तब माँग की मात्रा 21 से घटकर 20 हो जाती है अर्थात् किसी वस्तु की माँग की मात्रा और माँग करने वाले उपभोक्ता की आय के बीच विपरीत संबंध होता है।

जिस वस्तु के संबंध में माँग की मात्रा और उपभोक्ता की आय के बीच सीधा संबंध होता है, उसे "सामान्य वस्तु" कहा जाता है। जब वस्तु की माँग की मात्रा और उपभोक्ता की आय के बीच विपरीत का संबंध होता है उसे घटिया वस्तु की स्थिति कहा जाता है।

7.2.3 माँग की कीमत प्रति-लोच (Price Cross Elasticity of Demand)

मांग की कीमत प्रति लोच से अभिप्राय होता है किसी दी हुई वस्तु की माँग की मात्रा में सापेक्ष परिवर्तन। अर्थात् किसी वस्तु (जैसे X) की माँग की मात्रा में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन को संबंधित वस्तु (जैसे Y) की कीमत में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने पर यह लोच प्राप्त मांग की कीमत प्रतिलोच होती है। मांग की कीमत प्रति लोच (Ced) के निरूपण के लिए प्रतीकों का प्रयोग करें, जहां C कीमत के लिए और ed माँग की लोच के लिए है। इस प्रकार Ced यों होगी:

$$= \frac{X \text{ वस्तु की माँग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{Y \text{ वस्तु की कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$= \frac{\frac{\Delta DX}{DX}}{\frac{\Delta PY}{PY}}$$

$$= \frac{ADX}{DX} \times \frac{PY}{\Delta PY}$$

$$= \frac{\Delta DX}{\Delta PY} \times \frac{PY}{DX}$$

जहां ΔDx वस्तु X की मांग की मात्रा में परिवर्तन है, ΔPy वस्तु Y की कीमत में परिवर्तन है, Py वस्तु Y की मूल कीमत है तथा Dx वस्तु X की मूल कीमत है। मांग की प्रतिलोच को एक दृष्टांत की सहायता से दिखाया जा सकता है। मान लें कि चाय की कीमत प्रति 1,000 ग्राम 20 रु. है जो घटकर 19 रु. हो जाती है तब मांग के नियम के अनुसार एक सप्ताह के अंतर्गत चाय की मांग 500 ग्राम से बढ़कर 600 ग्राम हो जाएगी। कॉफी चाय की स्थानापन्न वस्तु है। यदि काफी की कीमत में कोई परिवर्तन नहीं होता, तब इसके लिए मांग की मात्रा 200 ग्राम से घटकर 150 ग्राम हो जाएगी। ऐसा इसलिए होता है कि चाय की मांग की मात्रा एक पैकेट से बढ़कर दो पैकेट हो गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रति पैकेट चाय की कीमत का 20 रु. से घटकर 19 रु. हो जाने के फलस्वरूप काफी की मांग की मात्रा 200 ग्राम से घटकर 150 ग्राम हो गई है।

माँग की कीमत प्रति लोच को एक संख्यात्मक दृष्टांत की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। माँग की कीमत प्रति लोच के परिकलन के लिए उदाहरण 3 को ध्यानपूर्वक देखें।

उदाहरण 3

चाय की कीमत (रु. में)	काफी की मांग की मात्रा (ग्रामों में)
20	200
19	150

काफी की मांग की मात्रा में परिवर्तन 150−200 = −50 है, चाय की कीमत में परिवर्तन 19−20 = −1, काफी की मूल मांग की मात्रा 200 ग्राम और चाय की मूल कीमत 20 रु. है। इस प्रकार की मांग की कीमत प्रतिलोच (Ced) है:

$$Ced = \frac{\Delta Dx}{\Delta Py} \times \frac{Py}{Dx}$$

जहां काफी x हैं और चाय y है। इस प्रकार

$$Ced = \frac{-50}{-1} \times \frac{20}{200}$$
$$= 5$$

इस संबंध में ध्यान देने योग्य बात यह है कि मांग की कीमत प्रति लोच का गुणांक धनात्मक है अर्थात् चाय की कीमत और काफी की मांग की मात्रा के बीच धनात्मक (positive) संबंध है। मांग की कीमत प्रति लोच का गुणांक जब भी धनात्मक होता है, तब. वस्तुएं आपस में स्थानापन्न होती हैं, अर्थात् उपर्युक्त स्थिति में चाय और काफी स्थानापन्न वस्तुएँ (substitutes) हैं।

अब पूरक वस्तुओं (complementary goods) के संबंध में विचार करेंगे। इसके लिए एक दृष्टांत लेते हैं। एक वस्तु कार है और प्रति कार की कीमत 80,000 रु. है जो गिरकर 75,000 रु. हो जाती है। मांग के नियम के अनुसार किसी समाज में कार की मांग की मात्रा 1,000 से बढ़कर 1,100 हो सकती है। मान लें कि पेट्रोल की कीमत प्रति लीटर 8 रु. बनी रहती है। अत: कार की मात्रा का 1,000 से बढ़कर 1100 हो जाने के कारण पेट्रोल की प्रति मास मांग 5,000 लीटर से बढ़कर 5,500 लीटर हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कार की लागत में 80,000 रु. में 75,000 रु. की गिरावट के कारण पेट्रोल की प्रति मास मांग की मात्रा 5,000 लीटर से बढ़कर 5,500 लीटर हो जाती है।

मांग की कीमत प्रतिलोच को एक दृष्टांत की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। इसे उदाहरण 4 में दिखाया गया है।

उदाहरण 4

कार की कीमत (रु. में)	पेट्रोल की मांग की मात्रा (लीटरों में)
80,000	5,000
75,000	5,500

पेट्रोल की माँग की मात्रा में परिवर्तन 5,500−5,000= 500 लीटर है, कार की कीमत में परिवर्तन 75,000 रु.−80,000 रु. = −5,000 रु. पेट्रोल की मूल माँग की मात्रा 5,000 लीटर और कार की मूल कीमत 80,000 रु. है। इस प्रकार माँग की कीमत प्रति लोच (Ced) है:

$$Ced = \frac{\Delta Dx}{\Delta Py} \times \frac{Py}{Dx}$$

जहां X पेट्रोल है और Y कार है।

$$Ced = \frac{500}{-5,000} \times \frac{80,000}{5,000}$$
$$= -1.6$$

यहां पर माँग की कीमत प्रतिलोच का गुणांक घनात्मक है अर्थात् कार की कीमत और पेट्रोल की माँग की मात्रा के बीच विपरीत संबंध होता है। माँग की कीमत प्रतिलोच जब भी ऋणात्मक होती है तब पूरक वस्तुओं की स्थिति होती है अर्थात् उपर्युक्त स्थिति में कार और पेट्रोल पूरक वस्तुएँ हैं।

बोध प्रश्न क

1 माँग की कीमत लोच से क्या अभिप्राय होता है?

....

....

2 माँग की कीमत लोच और मांग की आय लोच के बीच क्या भेद है?

....

....

3 माँग की कीमत लोच और मांग की कीमत प्रति लोच के बीच अंतर बताएं।

....

....

4 माँग की कीमत लोच और मांग की कीमत प्रति लोच का गुणांक ऋणात्मक कब होता है?

....

....

5 माँग की कीमत लोच का गुणांक किस स्थिति में धनात्मक होता है?

....

....

6 निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

i) माँग की आय लोच सदा धनात्मक होती है। .....

ii) माँग की कीमत प्रति लोच का गुणांक सदा ऋणात्मक होता है। .....

iii) माँग की कीमत लोच को निर्धारित करते समय उपभोक्ता की आय को परिवर्तनशील मान लिया जाता है। .....

iv) स्थानापन्न वस्तुओं की स्थिति में मांग की कीमत प्रति लोच का गुणांक ऋणात्मक होता है। .....

v) पूरक वस्तुओं की स्थिति में मांग की कीमत प्रतिलोच का गुणांक धनात्मक होता है। .....

vi) "घटिया वस्तुओं" की स्थिति में मांग की कीमत प्रतिलोच का गुणांक धनात्मक होता है। .....

vii) "सामान्य वस्तुओं" की स्थिति में मांग की कीमत प्रति लोच का गुणांक धनात्मक होता है। .....

viii) मांग की कीमत लोच के संबंध में जब जानकारी हो जाती है तब वस्तुओं की कीमत में उतार-चढ़ाव होने दिया जाता है। .....

7.3 माँग की कीमत लोच की माप (Measurement of Price Elasticity of Demand)

माँग की कीमत लोच के माप के लिए अनेक प्रणालियां हैं। इनमें से कुछ प्रमुख प्रणालियों का अब हम वर्णन करेंगे:

1 **बिंदु प्रणाली (Point Method)**: इस प्रणाली के संबंध में 7.2.1 में विचार किया जा चुका है। इस संबंध में याद रखने की मुख्य बात यह है कि इसका प्रयोग तभी किया जाता है, जब कीमत और मांग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन "अत्यंत अल्प" होते हैं।

2 **व्यय प्रणाली (Outlay Method)**: मांग की कीमत लोच को मापने के लिए व्यय प्रणाली का प्रयोग उस स्थिति में किया जाता है जब कि कीमत और मांग में होने वाला परिवर्तन बहुत छोटा नहीं होता। व्यय प्रणाली के संबंध में दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि मांग की कीमत लोच को जानने में इससे कोई सहायता नहीं मिल सकती। यह प्रणाली तो केवल निम्नलिखित तीन स्थितियों के बीच भेद करने में सहायता करती है,

i) क्या मांग की कीमत लोच इकाई के समान है,
ii) क्या मांग की कीमत लोच इकाई से अधिक है, और
iii) क्या मांग की कीमत लोच इकाई से कम है।

इस प्रणाली को संख्यात्मक दृष्टांतों की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। इस कार्य के लिए उदाहरण 5, 6 और 7 को देखें।

उदाहरण 5

कीमत रु. में	किसी वस्तु की मांग की मात्रा इकाई	रु. में व्यय
5	20	$5 \times 20 = 100$
4	25	$4 \times 25 = 100$

उदाहरण 6

कीमत रु. में	किसी वस्तु की मांग की मात्रा इकाई	रु. में व्यय
5	20	$5 \times 20 = 100$
4	22	$4 \times 22 = 88$

उदाहरण 7

कीमत रु. में	किसी वस्तु की मांग की मात्रा इकाई	रु. में व्यय
5	20	$5 \times 20 = 100$
4	30	$4 \times 30 = 120$

उदाहरण 5, 6 और 7 में हम देखते हैं कि जब किसी वस्तु की कीमत 5 रु. से गिरकर 4 रु. हो जाती है तब वस्तु की मांग की मात्रा में वृद्धि हो जाती है लेकिन तब भी उस वस्तु पर व्यय होने वाली कुल रकम अर्थात् व्यय पहले जैसे ही 100 बनी रहती है। इस स्थिति को **मांग की इकाई कीमत लोच (unity price elasticity of demand)** कहा जाता है। उदाहरण 6 में वस्तु की कीमत जब 5 रु. से गिरकर 4 रु. हो जाती है तब उस पर व्यय होने वाली कुल रकम अर्थात् व्यय 100 रु. से घटकर 88 रु. हो जाती है।

यह मांग की **इकाई से कम कीमत लोच की स्थिति होती है**। अंततः उदाहरण 7 में हम देखते हैं कि वस्तु की कीमत जब 5 रु. से गिरकर 4 रु. हो जाती है, तब उस वस्तु पर

व्यय होने वाली कुल रकम अर्थात् 100 रु. से बढ़कर 120 रु. हो जाती है, यह **मांग की इकाई से अधिक कीमत लोच की स्थिति होती है**। इस प्रणाली को चित्र 7.1 की सहायता से भी स्पष्ट किया गया है।

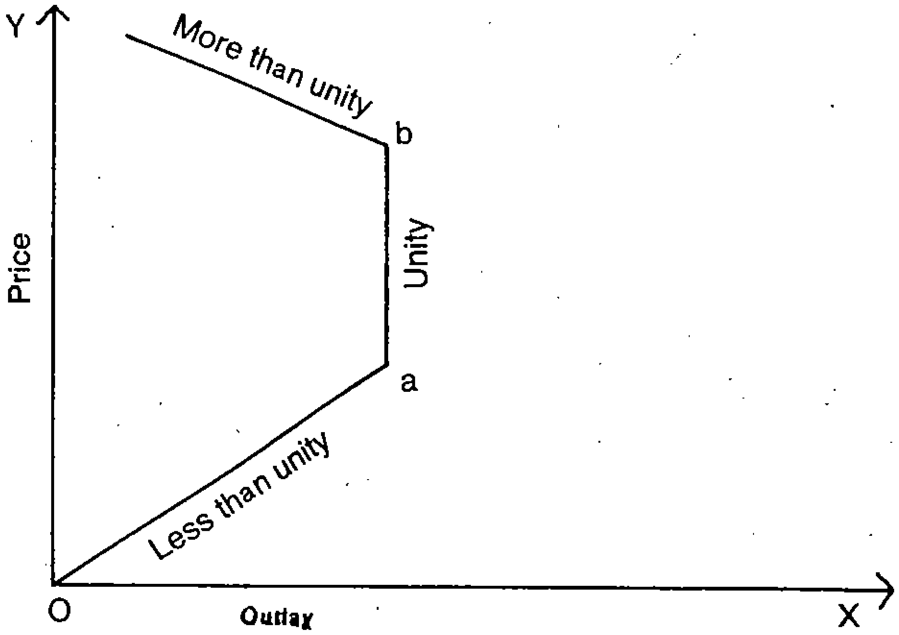

चित्र 7.1

X-अक्ष पर व्यय की तथा Y-अक्ष पर वस्तु की कीमत मापी गई है। O से a तक इकाई से कम की स्थिति है क्योंकि वस्तु की कीमत और व्यय के बीच प्रत्यक्ष संबंध है। a से b तक मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर है। क्योंकि वस्तु कीमत के बदलने पर भी व्यय पहले जैसा ही बना रहता है। अंत में b से c के बीच मांग की कीमत लोच इकाई से अधिक है क्योंकि वस्तु की कीमत और व्यय के बीच विपरीत संबंध है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वस्तु की कीमत जब बढ़ती है, तब व्यय भी अधिक हो जाता है। यह भी मांग की लोच का इकाई से कम होने की स्थिति होती है। उसी प्रकार कीमत जब बढ़ जाती है और व्यय पहले जैसा ही बना रहता है तब भी मांग की कीमत लोच का इकाई के बराबर होने की स्थिति होती है। अंत में जब वस्तु की कीमत बढ़ती है और व्यय कम होता है, तब वह भी मांग की कीमत लोच की इकाई से अधिक होने की स्थिति होती है।

3 **ज्यामितीय प्रणाली** (Geometrical Method): इस प्रणाली को चित्र 7.2 की सहायता से स्पष्ट किया गया है।

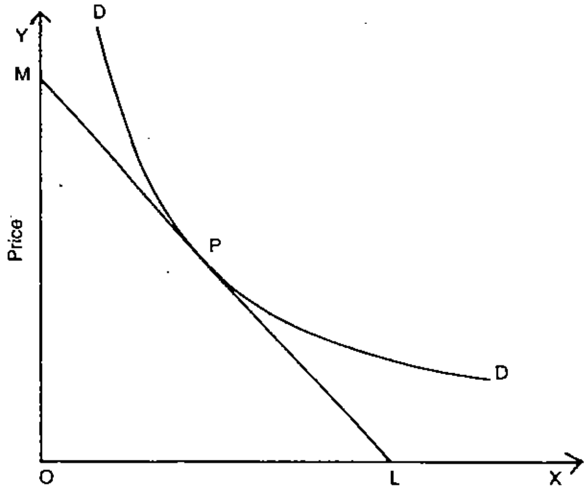

चित्र 7.2

X-अक्ष पर वस्तु की मात्रा की तथा Y-अक्ष पर वस्तु की कीमत मापी गई है। DD मांग वक्र है। मान लें कि मांग वक्र के P बिंदु पर हम मांग की कीमत लोच को जानना चाहते हैं। तब P बिंदु पर मांग वक्र की एक स्पर्श रेखा खींचे जो X-अक्ष को L पर और Y-अक्ष पर M को काटती है। इस स्थिति में मांग की कीमत लोच LP/PM हुई। P बिंदु यदि L और M के बीच है तब LP = PM या मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर है। यदि P बिंदु M की अपेक्षा L के समीप है तब LP < PM या मांग की कीमत लोच इकाई से कम है। अंत में P बिंदु यदि L की अपेक्षा M के समीप है तब LP > PM या मांग की कीमत लोच इकाई से अधिक है।

मांग की कीमत लोच और मांग वक्र

मांग वक्र को देखकर हम उसके स्वरूप के संबंध में जान सकते हैं, अर्थात् वह लोचदार, लोचहीन, अधिक लोचदार, पूर्ण लोचदार, पूर्ण लोचहीन में से क्या है। चित्र 7.3 देखें।

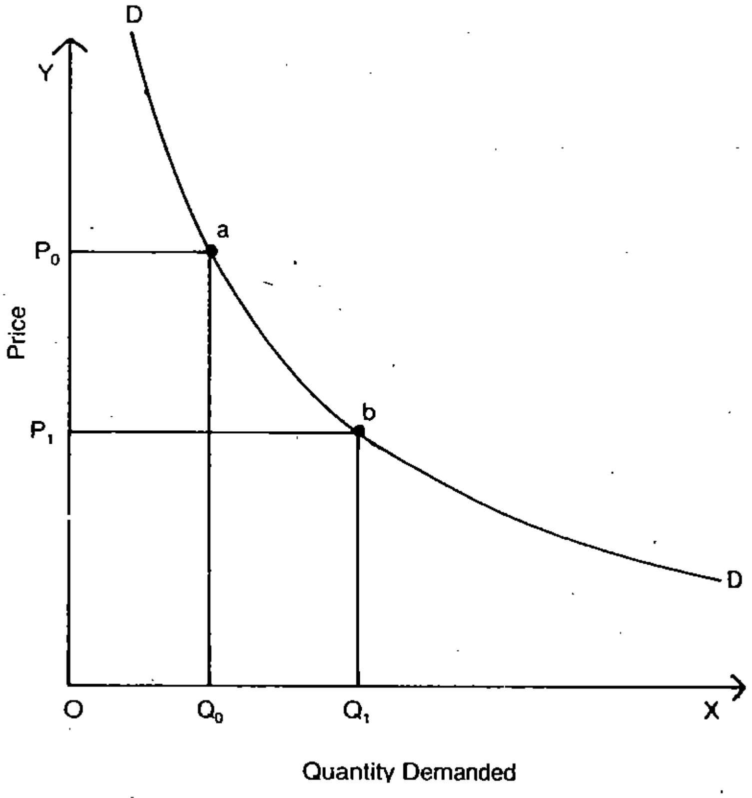

चित्र 7.3

सामान्य तरह से ही कीमत की माप Y-अक्ष पर तथा मांग की मात्रा की माप X-अक्ष पर की जाती है। e e रेखा पूर्ण लोचहीन मांग की स्थिति को दर्शाती है क्योंकि वस्तु की कीमत के बदलने से उसकी मांग की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं आता। a a रेखा पूर्ण लोचदार मांग की स्थिति को दर्शाती है, क्योंकि दी हुई oa कीमत पर हम जितनी भी अधिक मात्रा में चाहें, उतनी ही मांग कर सकते हैं। d d रेखा अत्यंत लोचहीन है क्योंकि वह पूर्ण लोचहीन मांग वक्र के अधिक समीप है या कीमत में दिए हुए परिवर्तन के फलस्वरूप मांग की मात्रा में भी अपेक्षाकृत कम परिवर्तन आता है। b b रेखा अत्यंत लोचदार है क्योंकि वह पूर्ण लोचदार रेखा के अधिक समीप है या क्योंकि कीमत में दिए हुए परिवर्तन के फलस्वरूप वस्तु की मांग की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होती है। c c रेखा संयत रूप से (moderately) लोचदार है। चित्र 7.3 को देखकर हम कुछ सामान्यीकरण कर सकते हैं। मांग वक्र जितना ही कम प्रवण (steep) होगा, मांग उतनी ही अधिक लोचदार होने की प्रवृत्ति उसमें होगी, या मांग वक्र जितना ही अधिक प्रवण होगा मांग उतनी ही कम लोचदार होने की प्रवृत्ति उसमें होगी।

इकाई कीमत लोचदार मांग वक्र की स्थिति (Unit Price Elastic Demand Curve)

7.3 में दी गई व्यय प्रणाली का प्रयोग करते हुए हम इकाई कीमत मांग वक्र स्थिति के संबंध में चर्चा कर सकते हैं। चित्र 7.4 को देखें।

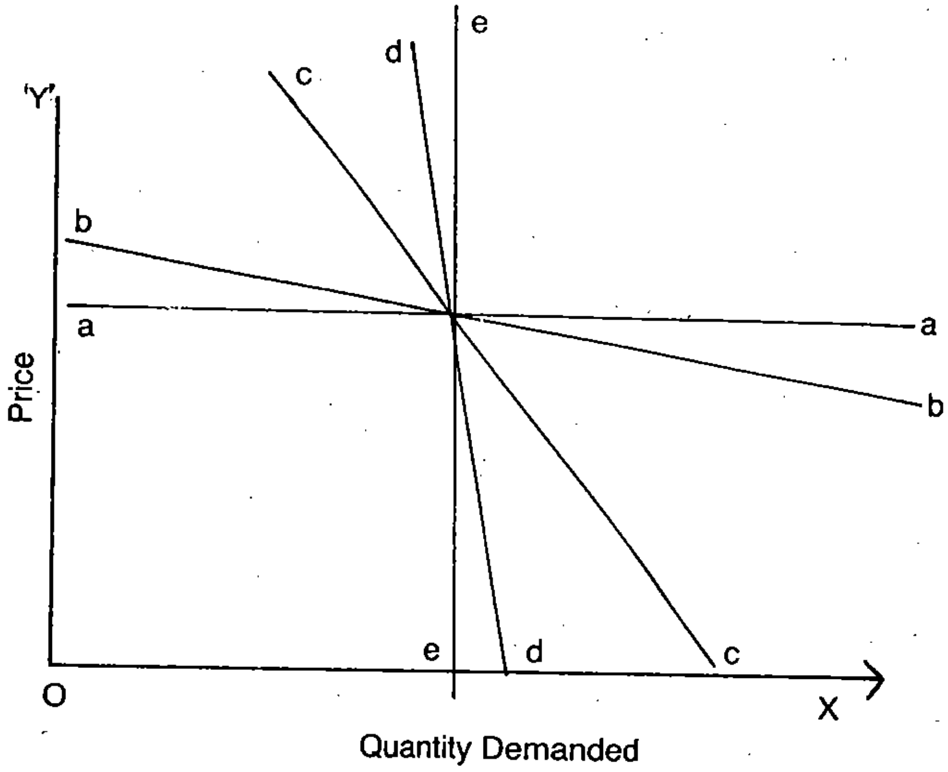

चित्र 7.4

X-अक्ष पर वस्तु की माप की मात्रा तथा Y-अक्ष पर कीमत मापी गई है। DD मांग वक्र है। मांग वक्र के a बिंदु पर OP_o कीमत पर OQ_o मात्रा की मांग की जाती है। वस्तु पर व्यय की जाने वाली कुल रकम अर्थात् व्यय $OP_o \times OQ_o$ है जो ज्यामितीय रूप से उस आयत के क्षेत्र के बराबर है जिसकी भुजाएं OPa और OQ के बराबर हैं। इस क्षेत्र को $OQ_o\ aP_o$ द्वारा दिखाया गया है। वस्तु की कीमत यदि गिरकर OP_1 हो जाती है जिस पर OQ_1 मात्रा में वस्तु की माँग की जाती है, जिसे मांग वक्र के b बिंदु पर दिखाया गया है, तब $OQ_1\ bp_1$ कुल व्यय को व्यक्त करता है। a पर होने वाला व्यय $OQ_o\ aP_o$ यदि b पर होने वाले व्यय $OQ_1\ bP_1$ के बराबर है, तब a और b बिंदु पर मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर होगी। यदि ऐसे सभी आयतों को बनाया जाता है जिनके क्षेत्रफल एक दूसरे के बराबर हैं, तब ऐसे सभी बिंदुओं को एक-दूसरे से मिलाने वाला वक्र ऐसा मांग वक्र प्रस्तुत करता है जिसकी सभी बिंदुओं पर मांग की कीमत लोच समान होती है। इस वक्र को ऐसा माँग वक्र कहा जाता है जिसकी माँग की कीमत लोच इकाई के बराबर होती है। इस माँग वक्र को आयताकार हाइपरबोला (Rectangular Hyperbola) के नाम से भी जाना जाता है।

7.4 मांग की कीमत लोच के निर्धारक (Determinants of Pric Elasticity of Demand)

किसी वस्तु की कीमत लोच अनेक कारकों पर निर्भर करती है। मांग की कीमत लोच पर प्रभाव डालने वाले कुछ प्रमुख कारकों के संबंध में नीचे चर्चा की जा रही है:

1 **वस्तु का स्वरूप**: वस्तुओं को सामान्यतः तीन श्रेणियों में बांटा जाता है (i) आवश्यक वस्तुएं (necessaries), (ii) आरामदायक वस्तुएं (comforts), और विलास वस्तुएं (luxuries)। यदि वस्तु आवश्यक है तब मांग की कीमत लोच कम होती है। इस संबंध में हम गेहूं का दृष्टांत ले सकते हैं। यदि इसकी कीमत बढ़ जाती है, तब भी इसकी मांग की मात्रा में बहुत कमी करना संभव न हो सकेगा अतः गेहूं के लिए मांग अपेक्षाकृत कम लोचदार होती है। जहां तक आरामदायक वस्तुओं का संबंध है, इसकी कीमत में जब उतार-चढ़ाव होता है, तब उपभोक्ता मांग की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तन कर लेता है अतः यह अधिक लोचदार है। विलास वस्तुओं का क्रय तो उच्च आय वर्ग के लोग करते हैं। अतः इन वस्तुओं की कीमत में परितर्वन के साथ-साथ मांग में बहुत परिवर्तन नहीं होता इसलिए इन वस्तुओं की मांग कम लोचदार होती है।

2 **स्थानापन्न वस्तुओं की संख्या**: जिन वस्तुओं की स्थानापन्न वस्तुएं कम होती हैं या जिनका स्थान अन्य वस्तुएं भली-भांति नहीं ले सकती हैं उनमें मांग की कीमत लोच कम होती है इनके दृष्टांत हैं गेहूं और नमक। जिन वस्तुओं की स्थानापन्न वस्तुएं बहुत सी हैं, उनकी मांग की कीमत लोच अपेक्षाकृत अधिक होती है। उदाहरणार्थ, ऊन की स्थानापन्न वस्तुएं कपास, सेंथेटिक आदि हैं। ऐसी वस्तुओं की कीमत लोच अपेक्षाकृत अधिक होती है।

3 **वस्तुओं के उपयोग की संख्या**: किसी वस्तु के संभावित उपयोग की संख्या जितनी ही अधिक होती है उसकी मांग की कीमत लोच उतनी ही अधिक होती है। जैसे कोयले का उपयोग बिजली पैदा करने, घरेलू कार्यों एवं औद्योगिक कार्यों में हो सकता है अतः इसकी मांग की कीमत लोच मक्खन जैसी वस्तु से अधिक होती है जिसका एक या कुछ ही उपयोग होते हैं।

4 **वस्तु का कीमत स्तर**: मांग की कीमत लोच पर कीमत स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। दियासलाई जैसी सस्ती वस्तुओं की मांग की कीमत लोच कम होती है। कार जैसी वस्तुओं की कीमत तो चाहे बहुत अधिक होती है फिर भी उनकी मांग की कीमत लोच इसलिए कम होती है कि मांग उच्च आय वर्ग के लोग ही करते हैं। "पंखों" जैसी मध्यम कीमत स्तर की वस्तुओं की मांग की कीमत लोच अपेक्षाकृत अधिक होती है।

और भी अनेक कारक हैं जो मांग की कीमत लोच का निर्धारण करते हैं। परंतु इस संबंध में सबसे अधिक याद रखने योग्य बात यह है कि किसी वस्तु की मांग की कीमत लोच को कम या अधिक बताने के पूर्व इस पर प्रभाव डालने वाले सभी कारकों को एक साथ लेना आवश्यक होता है।

7.5 मांग की कीमत लोच का महत्व

अनेक नीति निर्णयों के संबंध में मांग की कीमत लोच का बहुत अधिक महत्व होता है। पृथक-पृथक् वस्तु बाजारों (commodity markets) के संबंध में सरकारी नीति के निर्धारण में यह विशेषतः उपयोगी सिद्ध होती है। नीचे कुछ प्रमुख क्षेत्रों की चर्चा की जा रही है जिनमें मांग की कीमत लोच के महत्व को देखा जा सकता है:

1 **एकाधिकारी द्वारा कीमत नियतन (Price fixation by monopolist)**: एकाधिकारी सदा यही चाहता है कि वह उपभोक्ता से अधिकाधिक कीमत ले। यदि वह देखता है कि जिस वस्तु को वह बेच रहा है, उसकी मांग की कीमत लोच कम है तब वह कीमत को बढ़ा देता है। लेकिन जिस वस्तु की मांग की कीमत लोच अपेक्षाकृत अधिक है, उसकी कीमत वह नहीं बढ़ा सकता।

2 **सरकार का कीमत समर्थन (Price support) प्रोग्राम**: सामान्यतः गेहूं, चावल जैसे कृषि पदार्थों की मांग की कीमत लोच अपेक्षाकृत कम होती है। इसका अर्थ यह होता है कि

अच्छे मानसून जैसे कारणों से पूर्ति के बढ़ जाने से कीमत में अपेक्षाकृत अधिक गिरावट आती है। इससे कृषकों की आय कम हो जाती है। उनके हित की रक्षा के लिए सरकार कीमत समर्थन प्रोग्राम की घोषणा कर सकती है जिससे उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की कीमत को एक विशेष स्तर से नीचे न जाने दिया जाए। इसके फलस्वरूप ऐसी स्थिति आ सकती है कि सरकार द्वारा घोषित कीमत पर वस्तु की मांग की अपेक्षा उसकी पूर्ति की मात्रा अधिक हो जाए। अतः सरकार को इस बात के लिए तैयार रहना होता है कि वह पूर्ति में होने वाले आधिक्य को इस कीमत पर कृषकों से स्वयं ही खरीद ले। उसी प्रकार किसी कारण से यदि किसी ऐसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा में कमी हो जाती है जिसकी मांग की कीमत लोच कम होती है, तब उस वस्तु की कीमत बढ़ जाएगी और उपभोक्ता को अपेक्षाकृत अधिक कीमत देने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। इस स्थिति में उपभोक्ता के हित की रक्षा के लिए सरकार **उच्चतम निर्धारित कीमत** (ceiling price) की घोषणा कर सकती है जिससे अधिक कीमत कृषक नहीं ले सकते। सरकार जब भी कोई कीमत नियत करती है जो उस कीमत से कम होती है जो अन्यथा बाजार में प्रचलित होती, तब इस नियत कीमत पर होने वाली पूर्ति की मात्रा की अपेक्षा मांग की मात्रा अधिक हो जाती है। वस्तु की इस अतिरिक्त मांग की पूर्ति के लिए सरकार के सम्मुख दो ही विकल्प होते हैं–(1) अपने गोदामों से वस्तुओं के स्टॉक को निकाले या (2) विदेशों से इन वस्तुओं का आयात करे।

3 **अप्रत्यक्ष करों का कर-आपात (Incidence of indirect taxes):** सरकार वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर लगाती है। जब भी कोई अप्रत्यक्ष कर लगाया जाता है तब इसके भार का वहन अंशतः तो उपभोक्ता करते हैं और अंशतः स्वयं उत्पादक करते हैं। उपभोक्ता और उत्पादक पर पड़ने वाले अप्रत्यक्ष कर भार का अंश निम्नलिखित पर निर्भर होता है $= \dfrac{\text{पूर्ति की कीमत लोच}}{\text{मांग की कीमत लोच}}$

एक ऐसी स्थिति का दृष्टांत लें जहां मांग वक्र पूर्णतया लोचहीन है। ऐसी स्थिति में पूर्ति वक्र का आकार जैसा भी क्यों न हो परंतु अप्रत्यक्ष कर का पूरा-पूरा भार उपभोक्ता को वहन करना होगा। इसके विपरीत मांग वक्र यदि पूर्णतया लोचदार है तब अप्रत्यक्ष कर का पूरा-पूरा भार उत्पादक या पूर्तिकार वहन करेगा। इन दोनों के बीच की स्थिति के संबंध में निर्णय पूर्ति को कीमत लोच और मांग की कीमत लोच के अनुपात के द्वारा होता है।

बोध प्रश्न ख

1 मांग की कीमत लोच की माप की बिंदु प्रणाली किसे कहते हैं?

....

....

2 संख्यात्मक दृष्टांत को लेकर व्यय प्रणाली (outlay method) की व्याख्या करें।

....

....

3 सिद्ध करें कि समस्त मांग वक्र पर मांग की कीमत लोच एक जैसी नहीं रहती।

....

....

4 कीमत लोचदार मांग और कीमत लोचहीन मांग से क्या अभिप्राय होता है?

....

5 मांग वक्र पर मांग की इकाई कीमत लोच कब होती है?

....

....

6 उन तीन कारकों के संबंध में बताएं जिन पर किसी वस्तु की मांग की कीमत लोच निर्भर करती है।

....

....

7 सरकार के कीमत समर्थन प्रोग्राम में मांग की कीमत लोच के उपयोग के संबंध बताएं।

....

....

8 निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

i) यदि वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है और इसके परिणामस्वरूप कुल व्यय कम हो जाता है, तो मांग की कीमत-लोच इकाई से कम होती है। ......

ii) व्यय प्रणाली का प्रयोग करते हुए हम मांग की लोच कभी भी इकाई के बराबर प्राप्त नहीं कर सकते। .....

iii) किसी टेढ़े हुए मांग वक्र की कीमत-लोच सदा इकाई के समान होती है। .....
है। .....

iv) जितनी मांग वक्र की ढलान कम होगी, उतनी ही मांग की कीमत लोच अधिक होगी। .....

v) वस्तु के स्वरूप का मांग की कीमत लोच पर प्रभाव नहीं पड़ता। .....

vi) जितनी कम किसी वस्तु की स्थानापन्न वस्तुएं होती हैं, उतनी ही अधिक मांग की लोच होती है। .....

vii) कीमत समर्थन प्रोग्राम वह स्थिति है जिसमें उत्पादक को यह इजाजत नहीं होती कि वह सरकार द्वारा घोषित कीमत से कम कीमत वसूल करे। .....

viii) यदि पूर्ति वक्र दिया हुआ हो, तो जितनी मांग वक्र की कीमत-लोच कम होगी, उतना ही उपभोक्ता पर अप्रत्यक्ष कर का अधिक भार होगा। .....

9 कोष्ठक में दिए गए शब्दों में से उचित शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

i) व्यय प्रणाली तब इस्तेमाल की जाती है, जब कीमत और मांग में परिवर्तन...है। (छोटे/बड़े)

ii) जब वस्तु की कीमत में वृद्धि के साथ कुल व्यय भी बढ़ जाता है, तो यह परिस्थिति है जिसमें मांग की लोच... है। (इकाई से कम/इकाई से अधिक)

iii) यदि वस्तु के संभव प्रयोगों की संख्या अधिक होती है, तो इसकी मांग की लोच...होती है। (कम/अधिक)

iv) सरकार उच्चतम कीमत की घोषणा करती है जिससे ... (उपभोक्ता के हितों की रक्षा की जा सके/लाभ कमाया जाए)

v) अप्रत्यक्ष करों का भार अंशतः उपभोक्ता और...उत्पादक द्वारा सहन किया जाता है। (आंशिक/पूर्ण)

7.6 सारांश

मांग की लोच की संकल्पना से अभिप्राय होता है किसी स्वतंत्र चर में दिए हुए परिवर्तन के प्रति मांग में परिवर्तन । यह स्वतंत्र चर विचारणीय वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय और विचारणीय वस्तु से संबंधित किसी अन्य वस्तु की कीमत के रूप में हो सकता है।

मांग की कीमत लोच से अभिप्राय होता है वस्तु की कीमत में दिए हुए आनुपातिक परिवर्तन के प्रति उसकी मांग में परिवर्तन। मांग की आय लोच का अर्थ है उपभोक्ता की आय में दिए हुए परिवर्तन के प्रति वस्तु की मांग में परिवर्तन। मांग की कीमत प्रति लोच से अभिप्राय होता है विचारणीय वस्तु को छोड़कर किसी अन्य वस्तु की कीमत में दिए हुए परिवर्तन के प्रति मांग में परिवर्तन। अन्य वस्तु विचारणीय वस्तु की स्थानापन्न हो सकती है या उसका पूरक। सामान्य तौर पर मांग की कीमत लोच का गुणांक ऋणात्मक होता है। लेकिन मांग की आय और कीमत प्रति लोच का गुणांक धनात्मक भी हो सकता है और ऋणात्मक भी।

मांग की कीमत लोच की माप बिंदु प्रणाली से की जा सकती है जिसका प्रयोग तब किया जाता है जब कीमत और मांग की मात्रा में होने वाले परिवर्तन अत्यंत अल्प मात्रा में होते हैं। व्यय प्रणाली का प्रयोग मांग की कीमत लोच की दिशा को जानने के लिए किया जाता है जो इकाई के बराबर इकाई से अधिक या इकाई से कम हो सकती है। ज्यामितीय प्रणाली का प्रयोग मांग वक्र से किसी दिए हुए बिंदु पर मांग की कीमत लोच को जानने के लिए किया जाता है। ऐसा भी मांग वक्र हो सकता है जिसके समस्त वक्र पर एक समान मांग की कीमत लोच हो। इस मांग वक्र को "आयताकार हाइपरबोला" कहा जाता है।

वस्तु का स्वरूप–आवश्यक, आरामदायक या विलास की, दी हुई वस्तु की स्थानापन्न वस्तुओं की संख्या, किसी वस्तु का उपयोग कितनी बार किया जा सकता है और वस्तु का कीमत स्तर, ये सभी उन कारकों के स्रोत होते हैं, जिन पर किसी वस्तु की मांग की कीमत लोच निर्भर करती है।

मांग की कीमत लोच की संकल्पना का उपयोग अनेक प्रकार से किया जा सकता है। किसी वस्तु की समर्थित कीमत और उच्चतम निर्धारित कीमत को निश्चित करने में इससे सरकार को मदद मिलती है। कीमतों को निश्चित करने में इससे एकाधिकारियों को भी सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त यह जानने में भी इससे सहायता मिलती है कि अप्रत्यक्ष कर का कितना अंश उपभोक्ताओं को वहन करना होगा।

7.7 शब्दावली

उच्चतम निर्धारित कीमत: सरकार द्वारा नियत किसी वस्तु की कीमत जिसके ऊपर कीमत को नहीं बढ़ाया जा सकता।

पूरक वस्तु: वह वस्तु जिसकी मांग का विचारणीय वस्तु की मांग के साथ सीधा संबंध होता है।

परतंत्र चर: वह चर जिसमें परिवर्तन तभी होता है जबकि स्वतंत्र चर में भी परिवर्तन हो।

मांग की लोच : यह किसी वस्तु की कीमत या उपभोक्ता की आय या विचारणीय वस्तु से संबंधित किसी अन्य वस्तु की कीमत तथा वस्तु की मांग की मात्रा के बीच संबंध को व्यक्त करती है।

निम्नतम निर्धारित कीमत: सरकार द्वारा नियत किसी वस्तु की वह कीमत जिसके नीचे कीमत को गिरने नहीं दिया जाता।

मांग की आय लोच: उपभोक्ता की आय में दिए हुए आनुपातिक परिवर्तन के प्रति मांग में परिवर्तन।

स्वतंत्र चर: वह चर जिसमें स्वतंत्र रूप से परिवर्तन हो सके।

अप्रत्यक्ष कर: सरकार द्वारा लगाया गया वह कर जिसके भार का अंतरण उस व्यक्ति पर भी किया जा सकता है जिस पर यह कर लगाया ही नहीं गया हो।

एकाधिकारी: वह उत्पादक जो किसी वस्तु की समस्त पूर्ति को नियंत्रित करता है।

व्यय: किसी दी हुई कीमत पर किसी वस्तु को खरीदने में लगाई गई कुल राशि।

मांग की कीमत प्रतिलोच: विचारणीय वस्तु से संबंधित किसी अन्य वस्तु की कीमत में हुए आनुपातिक परिवर्तन के प्रति मांग में परिवर्तन।

मांग की कीमत लोच: किसी वस्तु की कीमत में दिए हुए परिवर्तन के प्रति उसकी मांग में परिवर्तन।

आयताकार हाइपरबोला: वह वक्र जिसमें बनाए गए प्रत्येक आयत का क्षेत्रफल एक समान हो।

स्थानापन्न वस्तु: वह वस्तु जिसकी मांग और विचारणीय वस्तु की मांग के बीच विपरीत संबंध होता है।

7.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 6 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) गलत v) गलत
vi) गलत vii) सही viii) गलत

ख 8 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) गलत v) गलत
vi) गलत vii) सही viii) सही

9 i) बड़ा ii) इकाई से कम iii) बड़ा
iv) उपभोक्ता के हित की रक्षा के लिए v) अंशतः

7.9 स्वपरख प्रश्न

1 मांग की कीमत लोच, मांग की आय लोच और मांग की कीमत प्रति लोच की संकल्पना के संबंध में बताएं।

2 मांग की कीमत लोच को जानने के लिए व्यय प्रणाली के संबंध में चर्चा करें।

3 इकाई लोचदार मांग वक्र के संबंध में बताएं।

4 किसी स्थानापन्न वस्तु और पूरक वस्तु की मांग की कीमत प्रति लोच की व्याख्या करें।

5 मांग की कीमत लोच के प्रमुख निर्धारक क्या हैं?

6 मांग की कीमत लोच की संकल्पना के कुछ उपयोगों के संबंध में बताएं।

नोट: इन प्रश्नों से इस इकाई को भली भांति समझने में आपको मदद मिलेगी। इनका उत्तर लिखने का प्रयास करें। लेकिन ये उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. बरला: **उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र** (नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका: **व्यष्टि अर्थशास्त्र** (मेरठ: मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)

पी.ए. सैम्युलसन: **अर्थशास्त्र**–दसवां संस्करण (दिल्ली: कैपिटल बुक हाउस, 1982)

डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए. हालमैन: **मूल्य सिद्धांत एवं उसके उपयोग** (चण्डीगढ़: हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

खंड
3

उत्पादन के सिद्धांत

इकाई 8

उत्पादन फलन– I 5

इकाई 9

उत्पादन फलन– II 18

इकाई 10

पूर्ति का नियम तथा पूर्ति की लोच 34

इकाई 11

लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र 50

खंड 3 उत्पादन के सिद्धांत

खंड 2 में आपने उपभोक्ता के व्यवहार और मांग के सिद्धांत का अध्ययन किया है। बुनियादी आर्थिक नियमों को समझने के लिए उत्पादन फलन और पूर्ति के नियम का भी उतना ही महत्व है। इस खंड में चार इकाइयाँ हैं। इनमें आप उत्पादन फलन, पूर्ति के नियम, पूर्ति की लोच और लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र के बारे में पढ़ेंगे।

इकाई 8 : इस इकाई में उत्पादन सिद्धांत, परिवर्ती अनुपातों के नियम और सीमांत प्रतिफल ह्रास नियम का वर्णन किया गया है।

इकाई 9 : इस इकाई में अनुमापी प्रतिफल के नियम, समोत्पाद वक्र और समान लागत तथा बड़े पैमाने की किफायतों और अलाभों का वर्णन किया गया है।

इकाई 10 : इसमें पूर्ति के नियम और पूर्ति की लोच का विवेचन किया गया है।

इकाई 11 : इसमें लागत के सिद्धांत और विभिन्न लागत वक्रों का विवेचन किया गया है।

इकाई 8 उत्पादन फलन-I

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 उत्पादन का अर्थ
8.3 उत्पादन का सिद्धांत
  8.3.1 उत्पादन के सिद्धांत की प्रासंगिकता
  8.3.2 उत्पादन फलन
  8.3.3 नियत और परिवर्ती आगतें
  8.3.4 अल्पकाल और दीर्घकाल
8.4 परिवर्ती अनुपातों का नियम
  8.4.1 नियत और परिवर्ती अनुपात
  8.4.2 परिवर्ती अनुपातों के नियम का विवरण
  8.4.3 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद
  8.4.4 उत्पादन की तीन अवस्थाएँ
8.5 सीमांत प्रतिफल ह्रास नियम
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.9 स्वपरख प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि आपः

- उत्पादन की परिभाषा दे सकें
- उत्पादन के सिद्धांत की विषयवस्तु को प्रस्तुत कर सकें
- अल्पकाल और दीर्घकाल में उत्पादन फलन के स्वरूप के बीच के अंतर को स्पष्ट कर सकें
- परिवर्ती अनुपातों के नियम की व्याख्या कर सकें
- परिवर्ती अनुपातों के नियम की विभिन्न अवस्थाओं को पहचान सकें
- ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम की व्याख्या कर सकें।

8.1 प्रस्तावना

उत्पादन किसी भी अर्थव्यवस्था की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। आर्थिक सिद्धांत के किसी भी छात्र/छात्रा के लिए उत्पादन के अर्थ एवं आगतों और निर्गतों के बीच के संबंध को जानना आवश्यक होता है। इस इकाई में आपको उत्पादन के सिद्धांत की विषय-वस्तु एवं उसकी प्रासंगिकता तथा एक परिवर्ती आगत के साथ उत्पादन के संबंध में बताया जाएगा। इसमें आप परिवर्ती अनुपातों के नियम और ह्रासमान सीमांत प्रतिफल नियम के संबंध में भी पढ़ेंगे। परिवर्ती अनुपातों के नियम और ह्रासमान प्रतिफल के नियम को स्पष्ट करने के लिए कुल, औसत और सीमांत उत्पादों की संकल्पना के संबंध में भी बताया जाएगा।

8.2 उत्पादन का अर्थ

उत्पादन का अर्थ होता है उपयोग में आने योग्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं और सेवाओं का निर्माण। दूसरे शब्दों में, उत्पादन से अभिप्राय होता है आगतों (श्रम, मशीनों, कच्चे माल) का निर्गतों के रूप में रूपांतरण। उत्पादन की प्रक्रिया के लिए आवश्यक नहीं होता कि कच्चे माल का मूर्त वस्तुओं (tangible goods) के रूप में भौतिक रूपांतरण किया जाए। इस प्रक्रिया में आगत (सेवाएँ) और निर्गत, दोनों ही अमूर्त (intangible) हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, कानून और चिकित्सा सेवाओं संबंधी आगत और निर्गत, दोनों ही अमूर्त होते हैं।

उत्पादन के अंतर्गत केवल भौतिक वस्तुओं का निर्माण ही नहीं आता, बल्कि वकील, केश-प्रसाधक (hair dressers), संगीतज्ञ आदि भी उत्पादन कार्य करते हैं।

उत्पादन प्रक्रिया अनेक रूप ले सकती है। जो उत्पादन इकाई अध-बनी (semi-finished) वस्तुओं को बनाने के लिए कच्चे माल को खरीदने का काम करती है, वह भी उत्पादन कार्य में लगी होती है। उसी प्रकार, कोई फैक्टरी यदि तैयार माल बनाने के लिए अधबनी वस्तुओं को खरीदती है, वह उत्पादन कार्य करती है। किसी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना सेवाओं का उत्पादन होता है। कोयले का व्यापारी तो कोयले को खान से बाज़ार तक ले जाने का ही काम करता है। उसी प्रकार, कुछ मछुआरे मछली को केवल बाज़ार तक पहुँचाने का ही काम करते हैं। इन दोनों ही प्रकार के व्यक्तियों के कार्य उत्पादन के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि ये सेवाओं का उत्पादन करते हैं। भविष्य में बेचने के लिए वस्तुओं को संग्रह करके रखना भी उत्पादन होता है। इस प्रकार थोक विक्रय, खुदरा विक्रय, डिब्बाबंदी आदि उत्पादन कार्य के दृष्टांत हैं। व्यापक रूप में उत्पादन से अभिप्राय होता है "उपयोगिता का निर्माण"। इकाई -4 में "उपयोगिता" के संबंध में पहले ही बताया जा चुका है।

8.3 उत्पादन का सिद्धांत

निर्गतों को बनाने के लिए आगतों का प्रयोग करना उत्पादन कार्य के अंतर्गत आता है। उत्पादन के सिद्धांत का प्रारंभ विशिष्ट इंजीनियरिंग सूचना के साथ होता है। यदि हमारे पास कुछ श्रमिक हैं, कुछ भूमि है और मशीन तथा कच्चे माल जैसी अन्य आगतों का कुछ भाग है तो यह कैसे पता चलेगा कि इनसे हम किसी वस्तु की कितनी मात्रा तैयार कर सकेंगे। इसके लिए हमें तकनीकी अवस्था का एक विशिष्ट स्तर मानते हुए दी हुई आगतों के आधार पर अधिकतम निर्गतों का हिसाब लगाना होगा।

उत्पादन के सिद्धांत के अंतर्गत उत्पादन के नियम अर्थात् आगतों और निर्गतों के बीच के संबंध में सामान्यीकरण से संबंधित नियम आते हैं। इस प्रकार, उत्पादन के सिद्धांत की विषय-वस्तु के अंतर्गत आगतों और निर्गतों के बीच के भौतिक संबंधों का सामान्य विवरण आता है। "आगत" शब्द के अंतर्गत वे सभी वस्तुएँ आती हैं, जिनका उपयोग वस्तुओं या सेवाओं के उत्पादन के लिए किया जाता है। कुछ आगतें ऐसी वस्तुओं और सेवाओं के रूप में होती हैं जिनका उत्पादन उसी अर्थव्यवस्था के कोई अन्य उत्पादक कर रहे होते हैं। ऐसी वस्तुएँ मध्यवर्ती आगतें (intermediate inputs) कही जाती हैं। भूमि, श्रम, पूँजी और उद्यम जैसी अन्य वस्तुएँ प्राथमिक (primary) आगतों के नाम से जानी जाती हैं। प्राथमिक आगतों को उत्पादन के कारक (factors of production) भी कहा जाता है। कुर्सी बनाने वाले बढ़ई का दृष्टांत लेने पर हम पाते हैं कि उसके उपयोग में आने वाली लकड़ी, कीलें, बेंत, पॉलिश जैसी वस्तुएँ मध्यवर्ती आगतें हैं तथा उसका अपना श्रम, कार्य स्थान, उसके काम में आने वाले उपकरण और कुर्सी बनाने की पहल करना प्राथमिक आगतों के उदाहरण हैं।

8.3.1 उत्पादन के सिद्धांत की प्रासंगिकता

समष्टि और व्यष्टि इन दोनों ही स्तरों पर उत्पादन का सिद्धांत प्रासंगिक होता है। निम्नलिखित वे चार महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं, जिनमें उत्पादन का सिद्धांत प्रासंगिक सिद्ध होता है :

1 **कीमत सिद्धांत :** लागतों और उत्पादन की मात्रा के बीच के संबंध के विश्लेषण के लिए उत्पादन का सिद्धांत आधार प्रस्तुत करता है। आगतों की कीमतें उत्पादन की लागतों को प्रभावित करती हैं और इस प्रकार उत्पादित वस्तुओं की कीमतों को निर्धारित करने में उनका योगदान होता है। इसी प्रकार, उत्पादन का सिद्धांत किसी फर्म की उत्पादन के कारकों के लिए माँग के सिद्धांत के लिए आधार प्रस्तुत करता है। उत्पादन के कारकों के लिए माँग और उनकी पूर्ति के द्वारा इन कारकों की कीमतों का निर्धारण होता है।

2 **फर्म का सिद्धांत :** उत्पादन के सिद्धांत का फर्म के सिद्धांत के साथ भी गहरा संबंध होता है। फर्म के सिद्धांत का मुख्य संबंध फर्म के उस स्तर को निर्धारित करने से होता है जो कुल लाभ को अधिकतम कर सके। कुल लाभ से अभिप्राय होता है कुल आय और कुल लागत के बीच का अंतर। उत्पादन के उस स्तर को प्राप्त करने के लिए जिसपर कुल लाभ अधिकतम होता हो, उत्पादन के सीमांत एवं औसत लागतों की संकल्पनाओं की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन की सीमांत और औसत लागतों में जो परिवर्तन होते हैं, उनका निर्धारण उत्पादन के कारकों की कीमतों के अतिरिक्त आगतों और निर्गतों के बीच के भौतिक संबंध के द्वारा होता है।

3 **कारकों के लिए माँग :** उत्पादन का सिद्धांत उन शक्तियों का स्पष्टीकरण करता है, जो कारकों की सीमांत उत्पादिता को निर्धारित करती है और फिर यह उत्पादिता इन कारकों के लिए माँग का निर्धारण करती है।

उत्पादन के किसी कारक के लिए माँग उन प्रमुख शक्तियों में से एक है, जो किसी कारक की कीमत को निर्धारित करती हैं।

4 वितरण का सिद्धांत : उत्पादन का सिद्धांत वितरण के समष्टि सिद्धांत के लिए भी उतना ही प्रासंगिक होता है। उत्पादन के विभिन्न कारकों के कुल वितरण अंशों (distributive shares) को जानने में इससे सहायता मिलती है। किसी अर्थव्यवस्था की दी हुई आय में हमारे लिए यह जानना महत्वपूर्ण होता है कि राष्ट्रीय आय में मज़दूरी, लाभ और लगान के क्या अंश हैं। इन अंशों को तभी निकाला जा सकता है, जबकि हमें यह मालूम हो कि विभिन्न कारकों के लिए कितनी माँग है तथा उनमें से प्रत्येक के उपयोग के लिए क्या कीमत देनी पड़ रही है।

8.3.2 उत्पादन फलन

उत्पादन के सिद्धांत में निहित आगत-निर्गत संबंधों के स्पष्टीकरण के लिए विश्लेषण के जिस साधन को काम में लाया जाता है, उसे उत्पादन फलन (production function) कहा जाता है। उत्पादन फलन आगतों और निर्गतों की मात्राओं के बीच कार्यात्मक संबंध को अभिव्यक्त करता है अर्थात् उत्पादन फलन किसी उत्पादन की इकाई के भौतिक आगतों और निर्गतों के बीच के कार्यात्मक संबंध को दिखाता है। यह बताता है कि आगतों और तकनीक की दी हुई मात्राओं के साथ किसी समय इकाई के अंतर्गत किसी वस्तु की कितनी अधिकतम भौतिक मात्रा का उत्पादन किया जा सकता है। उत्पादन फलन अनुसूची या तालिका, ग्राफ रेखा या वक्र या बीजगणितीय समीकरण के रूप में हो सकता है। लेकिन उत्पादन फलन के प्रत्येक रूप को किसी दूसरे रूप में बदला जा सकता है क्योंकि ये सभी रूप इसको अभिव्यक्त करने की विभिन्न युक्तियाँ हैं :

उत्पादन फलन के बीजगणितीय रूप को प्रस्तुत करने के लिए हम मान लेते हैं कि कोई स्वर्ण खनन (mining) फर्म स्वर्ण उत्पादन कार्य में केवल दो आगतों को काम में ला रही है — पूँजी (K) और श्रम (L)। अतः इसके उत्पादन फलन के सामान्य रूप की बीजगणितीय अभिव्यक्तियों की जा सकती है —

$$Q = f(K . L)$$

(जहाँ Q- प्रत्येक समय इकाई में उत्पादित स्वर्ण की मात्रा, K- प्रत्येक समय इकाई में नियोजित पूँजी और L- प्रत्येक समय इकाई में नियोजित श्रम)।

उपर्युक्त उत्पादन फलन से अभिप्राय यह है कि स्वर्ण के उत्पादन के लिए पूँजी K की कुल मात्रा और कुल नियोजित श्रम L का दिया हुआ होने पर उत्पादन किए जा सकने वाले स्वर्ण की अधिकतम मात्रा Q होगी। एक दूसरा दृष्टांत लकड़ी की मेज़ बनाने का लेते हैं। मान लीजिए कि कोई फर्म प्रति दिन मेज़ें बनाने का काम करती है। इसके उत्पादन फलन के अंतर्गत मेज़ों की वह अधिकतम संख्या होगी जिनका उत्पादन लकड़ी, वार्निश, श्रम, समय, मशीनें आदि विभिन्न आगतों की सहायता से होता है।

उत्पादन फलन के संबंध में दो बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है -

i) उत्पादन फलन पर किसी विशेष समय अवधि के संदर्भ में विचार करना आवश्यक होता है। उत्पादन फलन आगतों के प्रवाह की अभिव्यक्ति करता है, जिसके प्रवाह के फलस्वरूप एक विशेष समय अवधि में निर्गतों का प्रवाह होता है।

ii) किसी उत्पादन इकाई के उत्पादन फलन का निर्धारण तकनीक की अवस्था के द्वारा होता है। तकनीक जब उन्नत हो जाती है तब उत्पादन फलन में भी परिवर्तन हो जाता है और उसके फलस्वरूप दिए हुए आगतों की सहायता से निर्गतों का अधिक प्रवाह किया जा सकता है या दिए हुए निर्गत प्रवाह के उत्पादन के लिए कम आगतों का ही प्रयोग किया जा सकता है।

8.3.3 नियत और परिवर्ती आगतें (fixed and variable inputs)

उत्पादन प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि आगतों का वर्गीकरण नियत और परिवर्ती आगतों के बीच किया जाए। नियत आगत उसे कहा जाता है जिसकी मात्रा में उस समय तुरन्त परिवर्तन करना संभव नहीं होता, जबकि बाज़ार स्थितियाँ सूचित करती हैं कि उत्पादन में शीघ्र परिवर्तन लाना वांछनीय है। हमारे सम्मुख ऐसी स्थिति विश्लेषण की सरलता के कारण आती है, इसलिए नहीं कि कोई भी आगत सदा के लिए बिल्कुल ही नियत होती है। भवन, मशीनें और प्रबंध उन आगतों के कुछ दृष्टांत हैं, जिनमें शीघ्रता से कमी या बेशी करना संभव नहीं हो पाता।

इसके विपरीत, परिवर्ती आगत वह होती है जिसकी मात्रा में तब तुरन्त ही परिवर्तन लाया जा सके, जबकि ऐसा करना निर्गत में वांछनीय परिवर्तन के प्रत्युत्तर में आवश्यक हो। परिवर्ती आगतों के दृष्टांत हैं अकुशल तथा अर्ध-कुशल श्रम एवं कच्चे माल की आगतें।

8.3.4 अल्पकाल और दीर्घकाल

नियत और परिवर्ती आगतों के बीच अंतर के अनुरूप ही अल्पकाल और दीर्घकाल की भी संकल्पना होती है। अल्पकाल वह समय अवधि है जिसके अंतर्गत कुछ उत्पादन-कारकों की आगतें नियत होती हैं जबकि कुछ की परिवर्तनीय होती है इस प्रकार, अल्पकाल में निर्गतों में होने वाला परिवर्तन परिवर्ती आगतों के प्रयोग में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप होता है। उदाहरणार्थ, कोई उत्पादन इकाई यदि अल्पकाल में अपने उत्पादन का विस्तार करना चाहती है तब आम तौर पर इसका अर्थ यह होता है कि प्लांट और उपस्कर (equipment) को पूर्ववत् बनाए रखकर श्रमिकों से अधिक घंटे काम लिया जाए। उसी प्रकार, अल्पकाल में उत्पाद को यदि कम करना है तब कुछ श्रेणी के श्रमिकों को काम से निकाला जा सकता है, परन्तु भवन और मशीनों जैसे नियत कारकों का उपयोग तुरन्त ही बंद नहीं किया जा सकता।

दीर्घकाल वह समय अवधि होती है, जिसमें सभी आगतों को परिवर्ती मान लिया जाता है। दीर्घकाल में उत्पादन में परिवर्तन इस प्रकार किया जाता है कि उत्पादक को अधिकतम लाभ हो सके। उदाहरणार्थ, अल्पकाल में तो वर्तमान प्लांट को अधिक घंटे काम में लाकर ही कोई उत्पादक उत्पादन बढ़ा सकता है। ऐसा करने के लिए उसे श्रमिकों को समयोपरांत दर पर पारिश्रमिक देना होगा। परन्तु दीर्घकाल में लाभकर यों हो सकता है कि अधिक प्लांटों को स्थापित करके उत्पादन क्षमता बढ़ाई जाए और श्रमिकों से सामान्य घंटों तक ही काम कराया जाए। उत्पादन के सिद्धांत के लिए अल्पकाल और दीर्घकाल के बीच का यह अंतर अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे क्रमशः अल्पकालिक उत्पादन फलन और दीर्घकालिक उत्पादन फलन के संबंध में जानकारी होती है।

बोध प्रश्न क

1 गोचर और अगोचर वस्तुओं के उत्पादन से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

2 प्राथमिक आगतें क्या हैं ?

....

....

....

3 उत्पादन फलन किसे कहते हैं ?

....

....

....

4 निम्नलिखित का नियत और परिवर्ती आगतों के बीच वर्गीकरण कीजिए।

आगत	वर्गीकरण
i) कच्चे माल	....
ii) कुशल श्रमिक	....
iii) फैक्टरीकार्यालय	....
iv) प्रबंध	....
v) मशीनें	....
vi) पर्यवेक्षी कर्मचारी	....
vii) अकुशल श्रमिक	....
viii) औज़ार	....

5 निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत :

i) उत्पादन के अंतर्गत केवल गोचर वस्तुएँ आती हैं।

ii) अर्ध-निर्मित वस्तुओं को बनाना उत्पादन के अंतर्गत आता है।

iii) उत्पादन के अंतर्गत केवल वे वस्तुएँ और सेवाएँ आती हैं जिनका बाज़ार में विनिमय होता है।

iv) वस्तुओं के प्रवाह के उत्पादन के लिए किसी फर्म को केवल भूमि, श्रम और पूँजी की आवश्यकता होती है।

v) नियत और परिवर्ती आगतों के बीच का भेद केवल दीर्घकाल के लिए ही होता है।

vi) किसी फर्म द्वारा एक सप्ताह में किया गया उत्पादन अल्पकालिक कहा जाता है।

vii) किस फर्म द्वारा एक माह के अंतर्गत किया गया उत्पादन दीर्घकालिक कहा जाता है।

viii) कोई फर्म आगतों का उपयोग जिस अनुपात में करती है वह अल्पकाल में स्थिर बना रहता है।

8.4 परिवर्ती अनुपातों का नियम (The Law of Variable Proportion)

इस इकाई में केवल अल्पकालिक उत्पादन के सिद्धांत के संबंध में चर्चा की जाएगी। हम यह विश्लेषण करेंगे कि नियत और आगतों की विशिष्ट मात्रा के साथ यदि किसी परिवर्ती आगत की विभिन्न मात्राओं का मेल किया जाता है तब निर्गत (उत्पादन) की मात्राओं के संबंध में क्या होगा। किसी परिवर्ती आगत या आगतों की परिवर्ती मात्रा के साथ यदि एक या एक से अधिक आगतों की नियत मात्रा का मेल किया जाता है तब परिवर्ती अनुपातों की स्थिति आती है। एक कृषक का दृष्टांत लेते हैं। जो खेत जोतने वाले दो श्रमिकों और एक ट्रैक्टर की सहायता से एक हैक्टेयर भूमि पर 200 किलोग्राम गेहूँ उपजाता है। यदि भूमि का आकार एक हैक्टेयर ही बना रहता है और ट्रैक्टर की संख्या भी एक ही बनी रहती है, परन्तु दो के स्थान पर तीन श्रमिकों से काम लिया जाता है, तब गेहूँ का उत्पादन 200 किलोग्राम के स्थान पर 300 किलोग्राम हो सकता है। यहाँ पर हुआ यह कि पहली स्थिति में भूमि और ट्रैक्टर (नियत आगतों) के साथ श्रमिकों (परिवर्ती आगत) का अनुपात 2 : 1 है तथा गेहूँ का उत्पादन 200 कि.ग्रा. है, परन्तु दूसरी स्थिति में भूमि और ट्रैक्टर (नियत आगतों) के साथ श्रमिकों (परिवर्ती आगत) का अनुपात बढ़कर 3 : 1 हो गया और गेहूँ का उत्पादन बढ़कर 300 कि.ग्रा. हो गया। इस प्रकार नियत आगतों के साथ परिवर्ती अनुपातों का जब मेल किया जाता है, तब कुल उत्पादन में एक निश्चित स्वरूप का पालन किया जाता है, जिसे परिवर्ती अनुपातों का नियम कहा जाता है।

इस नियम का मुख्य अर्थ यह है कि अन्य आगतों को स्थिर या नियत रखते हुए यदि परिवर्ती आगतों की इकाइयों की संख्या में वृद्धि की जाती है तब निर्गत में परिवर्तन किस प्रकार होगा।

8.4.1 नियत और परिवर्ती अनुपात (fixed and variable proportions)

नियत अनुपात उत्पादन से तात्पर्य आगतों के एक ऐसे अनुपात से है जिसका उपयोग निर्गत के एक स्तर के उत्पादन के लिए किया जा सकता है। यदि उत्पादन में वृद्धि की जाती है तब आगतों में भी इस प्रकार से वृद्धि करनी होगी कि नियत आगत अनुपात को कायम रखा जा सके। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि 4 श्रमिकों और एक मशीन के मेल से किसी वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन होता है। यदि 200 इकाइयों का उत्पादन करना है तब नियत अनुपात उत्पादन के लिए 8 श्रमिक-मशीन अनुपात 4:1 का ही बना रहेगा। नियत अनुपात उत्पादन की स्थिति देखने में तो सामान्य सी लग सकती है, लेकिन यथार्थ रूप में ऐसे अनुपातों के दृष्टांत कम ही देखने में आते हैं। परिवर्ती अनुपातों की स्थिति में उत्पादन अल्पकाल तथा दीर्घकाल, दोनों ही का विशेषता सूचक है। अल्पकाल में कुछ ऐसी स्थितियाँ हो सकती हैं, जबकि उत्पादन नियत अनुपातों के ही अधीन होता है, जैसे एक व्यक्ति एक फावड़े की सहायता से यदि एक खाई खोदता है तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि उसी व्यक्ति को यदि एक और फावड़ा दे दिया जाए तो वह और अधिक खाई खोद सकेगा। अल्पकाल में भी परिवर्ती अनुपातों के उत्पादन की कुछ स्थितियाँ होती हैं।

8.4.2 परिवर्ती अनुपातों के नियम का विवरण

परिवर्ती अनुपातों का नियम तब लागू होता है जब नियत और परिवर्ती आगतों के बीच के अनुपात को बदल दिया जाता है। इस नियम के अनुसार अन्य आगतों की मात्राओं को स्थिर रखते हुए जब किसी परिवर्ती आगत

की मात्रा में उतनी ही मात्रा और बढ़ा दी जाती है, तब कुल उत्पादन में तो वृद्धि होगी, लेकिन एक बिन्दु के बाद यह वृद्धि ह्रासमान दर से होगी। इस नियम की अभिव्यक्ति एक अन्य प्रकार से भी की जा सकती है। नियत कारकों की मात्राओं को स्थिर रखते हुए जब परिवर्ती कारक की अधिकाधिक इकाइयों का प्रयोग किया जाता है तब एक ऐसा बिन्दु आ जाता है जिसके आगे पहले सीमांत उत्पाद, फिर औसत उत्पाद और अंत में कुल उत्पाद में कमी होने लगती है। परिवर्ती अनुपातों के नियम को समझने के लिए छात्रों के लिए आवश्यक है कि वे पहले कुल, औसत और सीमांत उत्पादों की संकल्पनाओं को भली भांति समझ लें।

8.4.3 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद

परिवर्ती अनुपातों के नियम के विश्लेषण से पूर्व छात्र/छात्राओं के लिए आवश्यक है कि वे कुल, औसत और सीमांत उत्पादों की संकल्पनाओं को स्पष्ट रूप से समझ लें। हम एक कृषक का दृष्टांत लेते हैं, जिसके पास 4 हैक्टेयर भूमि और एक ट्रैक्टर है तथा वह काम पर लगाए जाने वाले श्रमिकों की संख्या में कमी-बेशी करता रहता है। भौतिक इकाइयों अर्थात् टनों में इसके खेत से गेहूँ के उत्पादन स्तर का हम विश्लेषण करेंगे।

कुल उत्पाद या कुल उत्पादन का अर्थ है विभिन्न संख्याओं में श्रमिकों से काम लेने के फलस्वरूप किया गया कुल भौतिक उत्पादन, जबकि औसत उत्पाद या औसत उत्पादन का अर्थ होता है कुल उत्पादन में श्रमिकों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त उत्पादन। इसके विपरीत, सीमांत उत्पाद अर्थात् सीमांत उत्पादन से अभिप्राय होता है एक और श्रमिक को काम पर लगाने से प्राप्त अतिरिक्त उत्पाद की मात्रा। उदाहरणार्थ, कोई कृषक यदि एक श्रमिक को काम पर लगाता है और गेहूँ का उत्पादन 10 टन होता है तथा दो श्रमिकों को काम पर लगाने पर कुल उत्पादन 24 टन गेहूँ होता है तब दूसरे श्रमिक का सीमांत उत्पादन 14 टन गेहूँ होगा। तालिका 8.1 को ध्यान से देखिए।

तालिका 8.1

4 हैक्टेयर भूमि पर टनों में गेहूँ का उत्पादन

श्रमिकों की संख्या	कुल उत्पादन
1	10
2	24
3	39
4	52
5	61
6	66
7	66
8	64

इस तालिका में आप देख सकते हैं कि 4 हैक्टेयर भूमि पर विभिन्न संख्या में श्रमिकों को काम पर लगाने पर गेहूँ के कुल उत्पादन में किस प्रकार परिवर्तन होता है। श्रमिकों की संख्या जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, कुल उत्पादन में भी वैसे-वैसे वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार छः श्रमिकों को काम में लगाने पर उत्पादन अधिकतम अर्थात् 66 टन हो जाता है। सातवें श्रमिक को लगाने पर उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती। इसके बावजूद आठ श्रमिकों को यदि काम पर लगाया जाता है, तब कुल उत्पादन गिरकर 64 टन हो जाता है।

तालिका 8.1 में दी गई सूचना को चित्र 8.1 में दिखाया गया है, जिसमें अक्ष x पर श्रमिकों की संख्या को तथा अक्ष y पर गेहूँ के कुल उत्पादन को टनों में दिया गया है। विभिन्न संख्या के श्रमिकों द्वारा उत्पादित उत्पादन स्तर को वक्र द्वारा दिखाया गया है। रेखा पर दिए अंक इस बात के द्योतक हैं कि विभिन्न संख्या के श्रमिकों का उत्पादन स्तर क्या है। उदाहरणार्थ (10, 1) का अभिप्राय है कि एक श्रमिक 10 टन माल का उत्पादन करता है। उसी प्रकार (24, 2) का अभिप्राय यह है कि 2 श्रमिक 24 टन माल का उत्पादन करते हैं।

चित्र 8.1

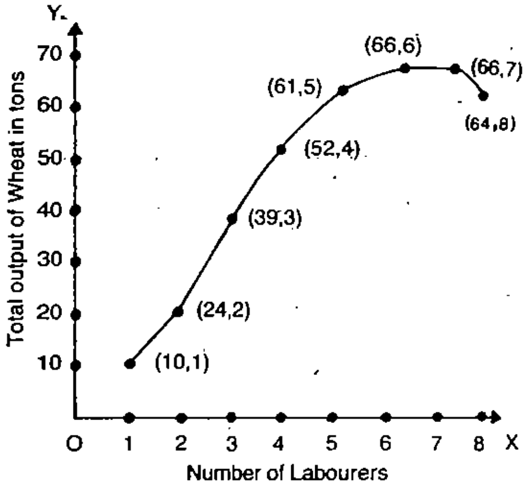

तालिका 8.1 से हमें औसत उत्पाद और सीमांत उत्पाद के संबंध में सूचना प्राप्त होती है, जैसा कि तालिका 8.2 में दिखाया गया है और चित्र 8.2 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 8.2

4 हैक्टेयर भूमि पर टनों में गेहूँ का कुल, औसत और सीमांत उत्पादन

1 श्रमिकों की संख्या	2 भूमि-श्रमिक अनुपात	3 कुल उत्पादन	4 श्रमिक का औसत उत्पाद	5 श्रमिकों का सीमांत उत्पाद
1	4.00	10.00	10.00	—
2	2.00	24.00	12.00	14.00
3	1.33	39.00	13.00	15.00
4	1.00	52.00	13.00	13.00
5	0.80	61.00	12.20	9.00
6	0.67	66.00	11.00	5.00
7	0.57	66.00	9.40	0.00
8	0.50	64.00	8.00	– 2.00

तालिका 8.2 में नियोजित श्रमिकों की संख्या, भूमि-श्रमिक अनुपात, कुल उत्पादन, औसत उत्पाद और सीमांत उत्पाद को दिखाया गया है। कॉलम-2 में भूमि-श्रमिक अनुपात दिए गए हैं। भूमि का क्षेत्र 4 हैक्टेयर नियत है तथा नियोजित श्रमिकों की संख्या बढ़ती जाती है। नियोजित श्रमिकों के विभिन्न स्तरों पर भूमि-श्रमिक अनुपात को जानने के लिए हम 4 हैक्टेयर भूमि को नियोजित श्रमिकों की संख्या से भाग देते हैं। कॉलम-3 को कॉलम-1 के अंकों से भाग देने पर औसत उत्पाद प्राप्त होता है। सीमांत उत्पाद को जानने के लिए x श्रमिकों द्वारा

चित्र 8.2

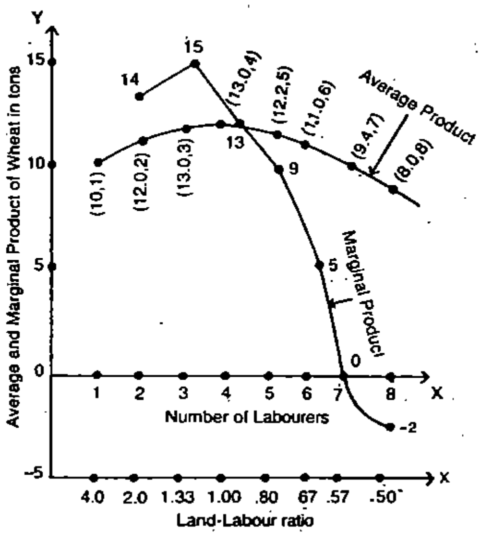

उत्पादित कुल उत्पादन को x + 1 श्रमिकों द्वारा उत्पादित कुल उत्पादन में से घटाते हैं, जहाँ x 1, 2, 3............7 हो सकता है ।

तालिका 8.2 में दिए गए औसत और सीमांत उत्पाद के अंकों तथा भूमि-श्रमिक अनुपातों और नियोजित श्रमिकों की संख्या को चित्र 8.2 में दिखाया गया है। x-अक्ष पर नियोजित श्रमिकों की संख्या को तथा y -अक्ष पर गेहूँ के औसत और सीमांत उत्पाद को टनों में मापा गया है। x-अक्ष के नीचे नियोजित श्रमिकों की प्रत्येक संख्या से संबंधित भूमि-श्रमिक अनुपातों को दिखाया गया है। नियोजित श्रमिकों की संख्या और औसत उत्पाद से संबंधित संख्याओं को औसत उत्पाद वक्र द्वारा दिखाया गया है तथा सीमांत उत्पाद संख्याओं को सीमांत उत्पाद वक्र द्वारा दिखाया गया है। आसानी से हम देख सकते हैं कि शुरू-शुरू में सीमांत उत्पाद बढ़ता है, 3 श्रमिकों को काम पर लगाने की स्थिति में यह अधिकतम अर्थात् 15 हो जाता है। उसके बाद यह लगातार गिरता जाता है और 7 श्रमिकों के काम पर होने की स्थिति में यह शून्य हो जाता है तथा आठवें श्रमिक को काम पर रखने की स्थिति में यह (–) 2 के बराबर हो जाता है। 3 श्रमिकों को काम पर रखने की स्थिति तक औसत उत्पाद में वृद्धि होती जाती है, 4 श्रमिकों के काम पर होने की स्थिति में यह सीमांत उत्पाद (13) के बराबर हो जाता है और उसके बाद यह गिरता जाता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि उद्गम से हम जैसे-जैसे दूर हटते जाते हैं, वैसे-वैसे भूमि-श्रमिक अनुपात भी गिरता जाता है।

8.4.4 उत्पादन की तीन अवस्थाएँ

उपर्युक्त में से हम उत्पादन की तीन अवस्थाओं को आसानी से पहचान सकते हैं। चित्र 8.3 को देखें जिसमें

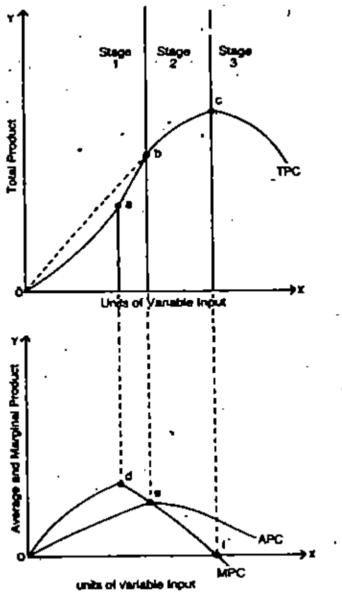

कुल उत्पाद वक्र के बिन्दु 'a' तक से हम प्रारंभ करते हैं। जैसे-जैसे अधिकाधिक परिवर्ती आगतों को काम में लाया जाता है, वैसे-वैसे कुल उत्पाद में वर्धमान दर से वृद्धि होती जाती है। बिन्दु 'a' से बिन्दु 'b' तक कुल उत्पाद में वृद्धि तो होती है, लेकिन ह्रासमान दर से होती है और बिन्दु 'b' से बिन्दु 'c' तक कुल उत्पादन में वृद्धि की दर में कमी बड़ी तेजी से होती है। बिन्दु 'c' पर कुल उत्पादन अधिकतम हो जाता है और उसके बाद इसमें कमी होने लगती है। सीमांत उत्पाद पहले बढ़ता है, बिन्दु 'd' पर यह अधिकतम हो जाता है, जो ह्रासमान सीमांत वस्तु-प्रतिफल (diminishing marginal physical returns) का भी बिन्दु है, उसके बाद यह गिरने लगता है। एक बिन्दु के बाद यह ऋणात्मक हो जाता है। औसत उत्पादन में तब तक वृद्धि होती जाती है, जब तक कि वह बिन्दु 'e' पर अधिकतम नहीं हो जाता। इस बिन्दु पर सीमांत और औसत उत्पाद बराबर होते हैं। इसके बाद इसमें कमी होती जाती है और जब कुल उत्पाद शून्य हो जाता है तब औसत उत्पाद भी शून्य हो जाता है।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर हम कह सकते है कि उत्पादन की निम्नलिखित तीन अवस्थाएँ होती हैं :

i) अवस्था-1 बिन्दु-2 के बाएँ परिवर्ती आगत के प्रयोग के अनुकूल होती है, जहाँ औसत उत्पाद अधिकतम होता है।

ii) अवस्था-2 बिन्दु e और बिन्दु f के बीच परिवर्ती आगत के प्रयोग के अनुकूल होती है, जहाँ परिवर्ती आगत का सीमांत उत्पाद शून्य हो जाता है।

iii) अवस्था-3 बिन्दु e के दाएँ परिवर्ती आगत के प्रयोग के अनुकूल होती है, जहां परिवर्ती आगत का सीमांत उत्पाद ऋणात्मक होता है।

कुल, सीमांत और औसत उत्पादों की बढ़ती, गिरती एवं ऋणात्मक दशाएँ, परिवर्ती अनुपातों के नियम की विभिन्न अवस्थाएँ होती हैं। कुल उत्पाद में पहले बड़ी तेजी से वृद्धि होती है और यह ह्रासमान वृद्धि दर से अपने चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है और उसके बाद उत्पादन में गिरावट आने लगती है।

8.5 सीमांत प्रतिफल ह्रास नियम (Law of Diminishing Marginal Returns)

चित्र 8.3 में आपने देखा है कि एक बिन्दु तक ऐसी स्थिति होती है कि परिवर्ती आगत की अधिकाधिक इकाइयों का जैसे-जैसे प्रयोग किया जाता है, वैसे-वैसे कुल, औसत और सीमांत उत्पाद में वृद्धि होती जाती है। इसे ही एक अन्य प्रकार से यों कहा जा सकता है कि बिन्दु 'a' तक कुल उत्पाद में वर्धमान दर से वृद्धि होती है। 'a' बिन्दु के आगे और 'e' बिन्दु तक हम देखते हैं कि सीमांत उत्पाद में गिरावट होने लगती है और बिन्दु 'f' पर यह शून्य हो जाता है। बिन्दु 'e' के आगे औसत उत्पाद में गिरावट होने लगती है (जहाँ पर औसत उत्पाद और सीमांत उत्पाद बराबर हो जाते हैं) लेकिन बिन्दु 'a' से बिन्दु 'c' तक क्योंकि सीमांत उत्पाद गिरता है अतः कुल उत्पाद में वृद्धि तो होती है, लेकिन ऐसा ह्रासमान दर से होता है। कुल उत्पाद में ह्रासमान दर से वृद्धि या सीमांत उत्पाद में गिरावट की इस स्थिति को ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम का प्रयोग कहा जाता है। यह भी कहा जा सकता है कि ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम परिवर्ती अनुपातों के नियम की विशेष स्थिति है। उसी प्रकार, 'a' बिन्दु तक हम देखते हैं कि कुल उत्पाद में वर्धमान दर से वृद्धि होती है या सीमांत उत्पाद बढ़ता है। इसे वर्धमान सीमांत प्रतिफल कहा जाता है। शुरू-शुरू में प्रत्येक उद्योग इस प्रकार कार्य करता है कि वह नियत आगतों का सर्वोत्तम उपयोग कर सके और इस प्रकार वह बढ़ती दर से कुल उत्पाद में वृद्धि या सीमांत उत्पाद में वृद्धि का लाभ उठा सके। और एक सीमा के बाद जब नियत आगत के प्रति परिवर्ती अनुपात अनुकूलतम हो जाता है तब उसके लिए यह संभव नहीं हो पाता कि वह वर्धमान सीमांत प्रतिफल का लाभ उठा सके। नियत आगतों के साथ जैसे-जैसे अधिकाधिक परिवर्ती आगतों को लगाया जाता है, कुल उत्पाद में वृद्धि तो होती जाती है; परन्तु यह वृद्धि ह्रासमान दर से होती है, जिसका अर्थ यह होता है कि ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम कार्य कर रहा है। ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम अनेक धारणाओं के अधीन लागू होता है, जो इस प्रकार हैं :

1 विभिन्न आगतों का संयोजन जिन विभिन्न अनुपातों में किया जाता है, उनमें परिवर्तन करना संभव है।

2 केवल एक आगत परिवर्ती तथा अन्य आगतें स्थिर होती हैं।

3 किसी परिवर्ती आगत की सभी इकाइयाँ सजातीय (homogenous) होती हैं।

4 प्रौद्योगिकी में कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि उत्पादन तकनीक बदलती है, तब कुल उत्पाद वक्र उर्ध्वगामी (upwards) हो जाएगा।

5 आगत-कीमतों में कोई परिवर्तन नहीं होता।

कुछ धारणाओं के साथ ह्रासमान सीमांत प्रतिफल नियम अनेक उत्पादन क्रियाओं पर लागू होता है। कुछ उत्पादन क्रियाओं पर यह शीघ्रता से लागू होता है और कुछ पर विलम्ब से। उद्योग कार्यों की अपेक्षा कृषि कार्यों पर यह शीघ्रता से लागू होता है, क्योंकि कृषि के संबंध में भूमि जैसे प्राकृतिक कारकों की भूमिका प्रमुख होती है; जबकि उद्योग के संबंध में मानव-निर्मित कारकों की भूमिका अधिक होती हैं।

यह नियम नदी-मछुआरों की स्थिति पर भी लागू होता है, जहाँ पर अतिरिक्त श्रम के उपयोग से पकड़ी जाने वाली मछलियों की संख्या में श्रम के अनुपात में वृद्धि नहीं होती। उसी प्रकार खदानों (quarries) और ईंटों की चिमनियों के कार्यों में और अधिक श्रमिकों को लगाए जाने पर ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम लागू होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि खदान कार्य जितना ही गहरा होता जाता है उत्पादन के अनुपात में लागत में भी उतनी ही वृद्धि होती जाती है। यह नियम भवन निर्माण के संबंध में भी लागू होता है, जहाँ पर ऊँची मंजिलों की अट्टालिकाओं (sky-scrapers) को बनाने के सिलसिले में कृत्रिम प्रकाश, वेन्टिलेशन, लिफ्ट आदि की व्यवस्था के लिए और खर्च करने होते हैं। इससे अभिप्राय यह होता है कि लागत का बढ़ना और ह्रासमान सीमांत प्रतिफल नियम का लागू होना। यह कहना सही नहीं होगा कि यह नियम केवल कृषि पर ही लागू होता

है। यह तो सभी प्रकार के उद्योगों पर भी लागू होता है। प्रौद्योगिकी में और सुधार करके कुछ समय तक के लिए तो इस नियम के लागू होने की प्रक्रिया को रोका जा सकता है परन्तु अंततः एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि ह्रासमान सीमांत प्रतिकूल नियम लागू होने की शुरुआत हो जाती है।

बोध प्रश्न ख

1 परिवर्ती अनुपातों के नियम वर्णन कीजिए।

....

....

....

2 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद की परिभाषा बताइए।

....

....

....

3 निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलतः

i) दीर्घकाल में नियत आगतें नियत बनी रहती हैं।

ii) अल्पकाल में प्रायः कारक अनुपात नियत होते हैं।

iii) उत्पादन की अवस्था I ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के अनुरूप होती है।

iv) जब औसत उत्पाद शून्य के बराबर होता है, तब कुल उत्पाद अधिकतम होती है।

v) जब औसत उत्पाद अधिकतम होता है; तब सीमांत उत्पाद औसत उत्पाद से अधिक होता है।

vi) ह्रासमान सीमांत प्रतिफल की स्थिति औसत प्रतिफल से पहले आती है।

vii) ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम केवल कृषि पर ही लागू होता है।

viii) परिवर्ती अनुपातों का नियम ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम की विशेष स्थिति है।

4 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

परिवर्ती आगत की इकाइयाँ	कुल उत्पाद	औसत उत्पाद	सीमांत उत्पाद
9	1, 146	— —	— —
10	1, 234	— —	— —
11	1, 314	— —	— —
12	1, 384	— —	— —
13	1, 444	— —	— —

8.6 सारांश

उत्पादन से अभिप्राय होता है विभिन्न उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं का निर्माण। उत्पादन के सिद्धांत के अंतर्गत आगतों को निर्गतों के रूप में बदलने के संबंध में विवेचन किया जाता है।

उत्पादन के सिद्धांत का संबंध कीमत सिद्धांत, फर्म के सिद्धांत, उत्पादन के कारकों के लिए माँग के सिद्धांत तथा व्यष्टि स्तर पर कारक शेयरों के सिद्धांत के साथ होता है। उत्पादन फलन से अभिप्राय होता है आगतों और निर्गतों की मात्राओं के बीच कार्यात्मक संबंध। $Q = (K . L)$ उत्पादन का सामान्य रूप होता है।

आगतें नियत हो सकती हैं या परिवर्ती। अल्पकाल में कुछ आगतें नियत होती हैं और कुछ को परिवर्ती माना जा सकता है। दीर्घकाल में सभी आगतें परिवर्ती होती हैं।

परिवर्ती अनुपातों का नियम अल्पकाल में उत्पादन के नियम का लागू होना होता है। हम मान लेते हैं कि इस नियम के लागू होने के लिए नियत अनुपातों के विपरीत परिवर्ती अनुपातों की स्थिति कायम रहती है। परिवर्ती अनुपातों के नियम से अभिप्राय होता है कि अन्य आगतों की मात्राओं को स्थिर रखते हुए जब किसी परिवर्ती आगत की मात्रा में उतनी ही और मात्रा बढ़ा दी जाती है तब कुल उत्पादन में वृद्धि तो होगी लेकिन एक बिन्दु के बाद यह वृद्धि ह्रासमान दर से होगी। शुरू-शुरू में कुल उत्पाद में बड़ी तेजी से वृद्धि होती है, उसके बाद जब नियत आगतों के साथ किसी परिवर्ती आगत का संयोजन किया जाता है तब यह वृद्धि दर गिर जाती है। सीमांत उत्पाद पहले बढ़ता है, फिर अधिकतम होता है और फिर वह तब तक गिरता जाता है, जब तक कि वह किसी परिवर्ती आगत के उपयोग के फलस्वरूप शून्य नहीं हो जाता।

उत्पाद की तीन अवस्थाएँ होती हैं। अवस्था-1 उस बिन्दु के बाएँ परिवर्ती आगत के प्रयोग के अनुकूल होती है, जहाँ औसत उत्पाद अधिकतम होता है। अवस्था-2 वह स्थिति होती है, जहाँ परिवर्ती आगत का सीमांत उत्पाद शून्य हो जाता है और अवस्था-3 उस बिन्दु के अनुकूल होती है, जहां परिवर्ती आगत का सीमांत उत्पाद ऋणात्मक होता है। ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम परिवर्ती अनुपातों के नियम की विशेष स्थिति होता है। ह्रासमान सीमांत प्रतिफल नियम उस बिन्दु पर लागू होता है जहाँ पर परिवर्ती आगत के प्रयोग से सीमांत वस्तु उत्पाद अधिकतम हो जाता है। इस नियम का आधार दो प्रमुख धारणाएँ हैं : (1) प्रौद्योगिकी में कोई परिवर्तन नहीं होता; और (2) परिवर्ती आगत की सभी इकाइयाँ सजातीय (homogenous) होती हैं।

यह नियम कृषि, मछली पकड़ने के व्यवसाय, उद्योग आदि क्षेत्रों पर लागू होता है। लगभग सभी उत्पादन क्रियाओं में इसका उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। प्रौद्योगिकी में सुधार करके कुछ समय के लिए तो इस नियम के लागू होने की प्रक्रिया को रोका जा सकता है, लेकिन अंततः यह लागू होने ही लगता है।

8.7 शब्दावली

औसत उत्पाद : कुल वस्तु उत्पाद में परिवर्ती आगतों की इकाइयों से भाग देने पर प्राप्त संख्या।

नियत आगतें : वे आगतें जिनकी मात्रा में उसी समय कोई परिवर्तन नहीं होता जबकि उस उत्पादन में तुरन्त परिवर्तन आ जाता है जिनमें इनका प्रयोग आगत के रूप में किया जाता है।

सजातीय इकाई : वह इकाई जो किसी कारक या आगत की अन्य इकाई के संबंध में उसी के समान होती है।

आगतें : वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में लगने वाली सभी वस्तुएँ या सेवाएँ।

मध्यवर्ती वस्तुएं : किसी अर्थव्यवस्था के अन्य उत्पादकों द्वारा उत्पादित या अन्य देशों से मंगवाई गई आगतें।

दीर्घकाल : वह समय अवधि जिसमें सभी आगतों को परिवर्ती माना जाता है।

सीमांत उत्पाद : किसी परिवर्ती आगत की एक और इकाई के प्रयोग के फलस्वरूप कुल वस्तु उत्पाद में हुई वृद्धि ।

समष्टि सिद्धांत : राष्ट्रीय आय, रोज़गार, राष्ट्रीय आय में कारक शेयर आदि जैसे कुल चरों (variables) को स्पष्ट करने वाला सिद्धांत।

उत्पादन : विभिन्न उपयोगी वस्तुओं और सेवाओं का निर्माण।

उत्पादन फलन : आगतों और निर्गतों की मात्राओं के बीच का कार्यात्मक संबंध।

प्राथमिक आगतें : भूमि, श्रम, पूंजी और उद्यम द्वारा दी गई सेवाओं के रूप में आगतें।

अर्ध-निर्मित उत्पाद : कच्चे माल और तैयार माल के बीच की अवस्था का उत्पाद।

अल्पकाल : वह समय अवधि जिसमें उत्पादन के कारकों के कुछ आगतें नियत होती हैं और कुछ को परिवर्ती माना जा सकता है।

प्रौद्योगिकी : यह स्पष्ट करती है कि उत्पाद के किसी स्तर तक पहुँचने के लिए विभिन्न आगतों का सही संयोजन किस प्रकार किया जा सकता है।

परिवर्ती आगतें : वे आगतें जिनकी मात्रा में निर्गतों की मात्रा के साथ-साथ परिवर्तन हो जाता है।

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 i) परिवर्ती ii) परिवर्ती iii) नियत iv) नियत v) नियत vi) नियत vii) परिवर्ती viii) परिवर्ती/नियत

5 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) गलत v) गलत vi) गलत vii) गलत viii) गलत

ख 3 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही v) गलत vi) सही vii) गलत viii) गलत

4

औसत उत्पाद	सीमांत उत्पाद
127.3	-
123.4	88
119.4	80
115.3	70
111.3	60
106.7	50

8.9 स्वपरख प्रश्न

1 उत्पादन की परिभाषा बताइए। उत्पादन का सिद्धांत क्या है ?

2 प्राथमिक और मध्यवर्ती आगतों के बीच अंतर बताइए।

3 अनेक क्षेत्रों में उत्पादन के सिद्धांत के औचित्य की व्याख्या कीजिए।

4 उत्पादन फलन की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।

5 नियत और परिवर्ती आगतों के बीच अंतर बताइए। उत्पादन के सिद्धांत में इस अंतर का क्या महत्व है ?

6 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद की सहायता से परिवर्ती अनुपातों के नियम की व्याख्या कीजिए।

7 ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम की व्याख्या कीजिए। उसकी धारणाएँ भी बताइए। क्या कृषि पर भी यह नियम लागू होता है ?

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए ये प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 9 उत्पादन फलन-II

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 अनुमापी प्रतिफल के नियम
  9.2.1 अनुमापी प्रतिफल के नियम का विवरण
  9.2.2 उत्पादन फलन और अनुमापी प्रतिफल
9.3 समोत्पाद वक्र और समान लागत
  9.3.1 समोत्पाद वक्र
  9.3.2 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर
  9.3.3 समोत्पाद वक्र के लक्षण
  9.3.4 समान लागत के लक्षण
  9.3.5 कारकों का न्यूनतम लागत संयोजन
9.4 समोत्पाद वक्र और अनुमापी प्रतिफल के नियम
  9.4.1 स्थिर अनुमापी प्रतिफल
  9.4.2 वर्धमान अनुमापी प्रतिफल
  9.4.3 ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल
9.5 बड़े पैमाने की किफायतें और अलाभ
  9.5.1 बड़े पैमाने की किफायतें
  9.5.2 बड़े पैमाने के अलाभ
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.9 स्वपरख प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप :

- अनुमापी प्रतिफल के नियमों की व्याख्या कर सकें
- उत्पादन फलन का विवरण दे सकें
- समोत्पाद वक्र और समान लागत वक्र का विवरण दे सकें
- समोत्पाद वक्र के लक्षणों को बता सकें
- कारकों के न्यूनतम लागत संयोजन की पहचान कर सकें
- बड़े पैमाने की किफायतों और बड़े पैमाने के अलाभ के स्वरूप के बीच के अंतर को स्पष्ट कर सकें
- समोत्पाद वक्रों और अनुमापी प्रतिफल के बीच के संबंध के बारे में बता सकें।

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि कारक अनुपातों में परिवर्तन होने से कुल उत्पादन में परिवर्तन आता है । किसी एक या कुछ कारकों की मात्रा को नियत रखकर तथा अन्य कारकों की मात्रा में हेर-फेर करके कारक अनुपातों में परिवर्तन किया जाता है। इस इकाई में आप अनुमापी प्रतिफल के नियमों के स्वरूप के संबंध में पढ़ेंगे, जबकि सभी कारकों में वृद्धि दिए हुए अनुपात में की जाती है। अनुमापी प्रतिफल के नियमों की व्याख्या उत्पादन फलन, संख्यात्मक दृष्टांतों और समोत्पाद वक्रों की सहायता से की जाएगी। यह भी विवेचन किया जाएगा कि कोई उत्पादक फर्म कारकों के न्यूनतम लागत संयोजन के संबंध में कैसे निर्णय करती है। वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति की व्याख्या के लिए बड़े पैमाने की किफायतों के संबंध में विचार किया जाएगा। अंत में बड़े पैमाने के अलाभ की संकल्पना के संबंध में भी विचार किया जाएगा।

9.2 अनुमापी प्रतिफल के नियम (The Laws of Return to Scale)

दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत का संबंध आगत-निर्गत के बीच के संबंध की उस स्थिति के साथ होता है जिसके अंतर्गत सभी आगतें परिवर्ती कारक होती हैं। दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत निर्गतों में होने वाले उन परिवर्तनों का विश्लेषण करता है, जबकि किसी विशेष उत्पादन फलन में सभी कारकों या आगतों में एक साथ परिवर्तन किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत के अंतर्गत निर्गत के उस व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो परिमाण में होने वाले परिवर्तनों के उत्तर में किए जाते हैं। परिमाण में होने वाली वृद्धि का यह अर्थ होता है कि सभी आगतों या कारकों में एक ही अनुपात में वृद्धि की जाती है। परिमाण में वृद्धि तब होती है, जब कारक अनुपातों को अपरिवर्तित रखकर सभी कारकों या आगतों में वृद्धि की जाती है। दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत अनुमापी प्रतिफल के नियमों का दूसरा नाम है और इस प्रकार यह परिमाण में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करने का प्रयास है। इसे और अधिक सही ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनुमापी प्रतिफल का नियम यह स्पष्ट करता है कि सभी आगतों में होने वाली एक साथ और समानुपातिक वृद्धि कुल उत्पादन को उसके विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार प्रभावित करती है।

9.2.1 अनुमापी प्रतिफल के नियम का विवरण

जब कोई उत्पादन इकाई अपने सभी आगतों में समानुपातिक वृद्धि करती है, तब तकनीकी रूप में तीन संभावनाएँ होती हैं, अर्थात् कुल उत्पादन में समानुपातिक वृद्धि हो सकती है, अनुपात से अधिक वृद्धि हो सकती है या अनुपात से कम वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार, अनुमापी प्रतिफल के तीन नियम होते हैं, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है :

1 **स्थिर अनुमापी प्रतिफल** (constant returns to scale) : यदि कोई उत्पादन इकाई अपनी सभी आगतों में एक दी हुई मात्रा में वृद्धि करती है (जैसे x %) और कुल उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि होती है (जैसे U x %) तब उसका अभिप्राय होता है कि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है। उदाहरणार्थ, यदि सभी आगतों को दुगुना करने से कुल उत्पादन भी दुगुना हो जाता है। ऐसा होना तभी संभव हो सकता है यदि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति हो। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि आगतों में होने वाली वृद्धि के अनुपात में होती है, तब उससे अभिप्राय होता है कि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

2 **वर्धमान अनुमापी प्रतिफल** (increasing returns to scale) : यदि कोई उत्पादन इकाई अपने सभी आगतों में वृद्धि x % में करती है और उसके फलस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि x % से अधिक होती है, तब वह वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। उदाहरणार्थ, यदि सभी आगतों को दुगुना करने के फलस्वरूप कुल उत्पादन में दुगुनी से अधिक वृद्धि होती है, ऐसा होना तभी संभव हो सकता है यदि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति हो। संक्षेप में, इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि आगतों में होने वाली समानुपातिक वृद्धि से अधिक हो तब उसका अर्थ यह होता है कि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

3 **ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल** (diminishing returns to scale) : यदि कोई उत्पादन इकाई अपने सभी आगतों में वृद्धि x % में करती है और उसके फलस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि x % से कम होती है तब उसका अभिप्राय यह होता है कि ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति है। उदाहरणार्थ, यदि सभी आगतों को दुगुना करने के फलस्वरूप कुल उत्पादन में दुगुनी से कम वृद्धि होती है। ऐसा होना तभी संभव हो सकता है यदि ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति हो। संक्षेप में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि आगतों में होने वाली समानुपातिक वृद्धि से कम है तब उसका अर्थ यह होता है कि ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

9.2.2 उत्पादन फलन और अनुमापी प्रतिफल (production function and returns to scale)

अनुमापी प्रतिफल के नियमों की और अधिक सही ढंग से व्याख्या उत्पादन फलन की सहायता से की जा सकती है, जिसके संबंध में इकाई-8 में पहले ही बताया जा चुका है। हम एक ऐसा उत्पादन मॉडल लेते हैं, जिसमें पूंजी (K) और श्रम (L) नामक केवल दो परिवर्ती आगतें तथा एक वस्तु x है। इस स्थिति में उत्पादन फलन की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जा सकती है :

$Qx = f(K,L)$

जहाँ Qx वस्तु x की मात्रा का सूचक है, तथा K पूंजी का और L नियोजित श्रम का द्योतक है। हम यह भी मान लेते हैं कि K और L दोनों ही में एक ही अनुपात k में वृद्धि की जाती है। यह संभव है कि यदि आगतों में अनुपात k में वृद्धि की जाती है, तब कुल उत्पादन में अनुपात k में वृद्धि नहीं भी हो सकती है। मान लीजिए कि अनुपातों का प्रतिनिधित्व ऐसे अनुपात में करते हैं कि उत्पादन में वृद्धि h हो। ऐसी स्थिति में उत्पादन फलन की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जा सकती है :

$$h\,Qx = f(pK, pL)$$

जहाँ पर आगतों K और L में p–समय वृद्धि के फलस्वरूप Qx में h–समय वृद्धि का द्योतक h है। अनुपात h, p के बराबर, उससे अधिक या उससे कम हो सकता है। तदनुसार हमारे सम्मुख अनुमापी प्रतिफल के तीन नियम आते हैं :

i) यदि $h = p$ तब उत्पादन फलन स्थिर अनुमापी प्रतिफल का द्योतक है।

ii) यदि $h > p$ तब उत्पादन फलन वर्धमान अनुमापी प्रतिफल का द्योतक है।

iii) यदि $h < p$ तब उत्पादन फलन ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल का द्योतक है।

अनुमापी प्रतिफल के तीन नियमों की व्याख्या के लिए हम एक संख्यात्मक दृष्टांत लेते हैं। मान लीजिए कि कोई उत्पादन इकाई 5 श्रमिकों और एक मशीन को काम पर लगाती है, जिसके फलस्वरूप किसी वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन होता है। यह भी मान लेते हैं कि हम एक दीर्घकालिक स्थिति के संबंध में विचार कर रहे हैं जिसमें श्रम और मशीनें दोनों ही परिवर्ती आगतें हैं। हम मान लेते हैं कि उत्पादन इकाई श्रम और पूंजी की मात्रा को दुगुनी करके 10 श्रमिकों और 2 मशीनों से काम लेती है। इस स्थिति में यदि उत्पादन की मात्रा 200 इकाइयाँ हो जाती है तब इसका अर्थ होता है कि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है क्योंकि श्रम और पूंजी में 100% वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन में 100% वृद्धि हो गई।

फिर हम यह मान लेते हैं कि 10 श्रमिकों और 2 मशीनों को काम पर लगाने से कुल उत्पादन 300 इकाइयों तक हो जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि श्रम और पूँजी में 100% की वृद्धि से उत्पादन में वृद्धि 200% हो गई। इसे वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है। उसी प्रकार, हम मान लेते हैं कि 10 श्रमिकों और 2 मशीनों को काम पर लगाने से उत्पादन में वृद्धि होकर 150 इकाइयाँ हो जाती हैं। इस स्थिति में श्रम और पूँजी में 100% वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन में 50% की वृद्धि हुई। इसे ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है।

9.3 समोत्पाद वक्र और समान लागत (Isoquants and Isocosts)

उत्पादन फलन को प्रस्तुत करने की विभिन्न प्रणालियाँ हैं। इसका प्रस्तुतीकरण तालिकाओं, गणितीय समीकरणों तथा कुल, औसत और सीमांत उत्पाद वक्रों के द्वारा किया जा सकता है। यदि दो कारकों या आगतों को स्पष्ट रूप में दिखाना होता है, तब उत्पादन फलन को समोत्पाद वक्रों (equal product curves यानि isoquants) के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। किसी उत्पादन इकाई के अनुकूलतम कारक संयोजन (optional factors combination) को जानने के लिए, जो स्वयं भी उत्पादन के सिद्धांत का महत्वपूर्ण अंग है, हमें समोत्पाद वक्रों के अतिरिक्त समान लागतों के संबंध में भी विचार करना होगा।

9.3.1 समोत्पाद वक्र

समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है, जिस पर दो कारकों, जैसे श्रम और पूँजी, के विभिन्न संयोजनों से प्रति समय इकाई में समान उत्पादन स्तर प्राप्त होता है। नीचे की तालिका 9.1 में किसी वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करने वाली एक फर्म की एक प्राक्कलनात्मक समोत्पाद सारणी को प्रस्तुत किया है।

तालिका 9.1

समोत्पाद वक्र का सारणीबद्ध प्रस्तुतीकरण

संयोजन	श्रम लागत	पूंजी लागत	कुल उत्पादन (इकाइयों में)
a	5	9	100
b	10	6	100
c	15	4	100
d	20	3	100

तालिका 9.1 में दी गई सूचना को चित्र 9.1 में प्रस्तुत किया गया है जिनमें श्रम इकाइयों की माप x–अक्ष पर तथा पूंजी इकाइयों की माप y–अक्ष पर की गई है। बिन्दु a श्रम की 5 इकाइयों और पूंजी की 9 इकाइयों के संयोजन का प्रतिनिधित्व करता है, जो 100 इकाइयाँ उत्पादित करते हैं। उसी प्रकार, बिन्दु b श्रम की 10 इकाइयों और पूंजी की 6 इकाइयों के संयोजन का प्रतिनिधित्व करता है जिससे 100 इकाइयाँ उत्पादित होती हैं। इसी प्रकार, इस चित्र में बिन्दु c और d को भी दिखाया गया है। a, b, c और d बिन्दु को मिलाने पर समोत्पाद वक्र बनता है।

चित्र 9.1

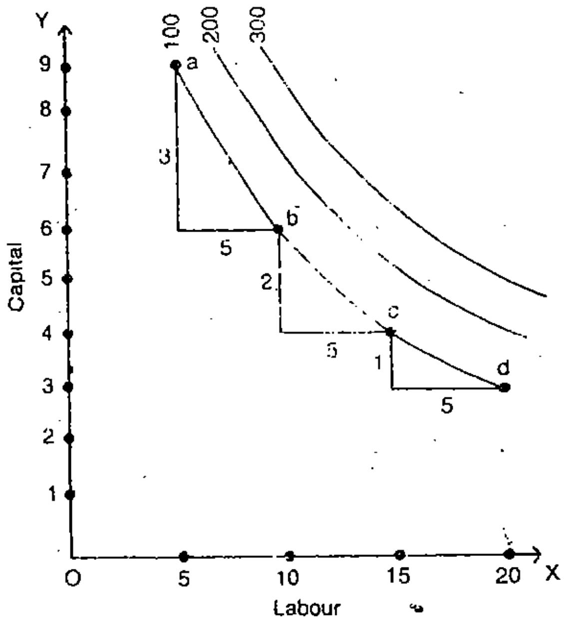

विभिन्न परिमाणों में उत्पादन को प्रस्तुत करने वाले अनेक समोत्पाद वक्रों को समोत्पाद मानचित्र कहा जाता है। चित्र 9.1 में क्रमशः 100 इकाइयों, 200 इकाइयों और 300 इकाइयों को प्रस्तुत करने वाले तीन समोत्पाद वक्रों को दिया गया है, जिन इकाइयों का उत्पादन श्रम और पूँजी के इन दो कारकों के किन्हीं भिन्न संयोजनों की सहायता से भी किया जा सकता है।

9.3.2 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर

यह स्मरणीय है कि समोत्पाद वक्र के साथ-साथ गति का यह अर्थ होता है कि किसी एक कारक का दूसरे कारक के लिए प्रतिस्थापन किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, बिन्दु a से बिन्दु b तक गति का अभिप्राय यह होता है कि 3 इकाई पूंजी के लिए 5 इकाई श्रम का प्रतिस्थापन किया जा रहा है या दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह होता है कि पूँजी की 3 इकाइयाँ उतना ही उत्पादन कर सकती हैं जितना कि श्रम की 5 इकाइयाँ कर सकती हैं। जिस दर से एक कारक दूसरे कारक का स्थान ले सकता है, उसे **तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर** कहा जाता है। **सामान्य शब्दों में पूंजी के लिए श्रम की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है - उत्पादन के स्तर का ज्यों का त्यों बने रहने की स्थिति में पूंजी की वह मात्रा जिसका स्थान श्रम की एक इकाई ले सके।**

ध्यान देने की बात यह है कि समोत्पाद वक्र के बिन्दु a से बिन्दु d की ओर हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे पूँजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर गिरती जाती है। उदाहरणार्थ, a से b की ओर बढ़ने पर हम पाते हैं कि 2 इकाई पूँजी के लिए 5 इकाई श्रम का प्रतिस्थापन होता है तथा c से d की ओर बढ़ने पर एक इकाई पूंजी के लिए 5 इकाई श्रम का प्रतिस्थापन होता है। समोत्पाद वक्र पर बाईं से दाईं ओर बढ़ने पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर जिस दर से गिरती है वह उस मात्रा का मापक है, जितना कि दो कारकों का

परस्पर प्रतिस्थापन किया जा सकता है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर के गिरने की दर जितनी ही कम होगी, दो कारकों के बीच स्थानापत्ति योग्यता (substitutability) उतनी ही अधिक होगी।

चरम स्थिति में यदि दो कारकों के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर रहती है, तब ये दो कारक परस्पर पूर्ण स्थानापन्न होते हैं। अतः समोत्पाद वक्र बाईं से दाईं ओर गिरते हुए सीधी रेखा के रूप में होगा। वास्तव में श्रम के लिए पूँजी का प्रतिस्थापन जैसे-जैसे अधिकाधिक होगा वैसे-वैसे तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर कम होती जाएगी। इसीलिए समोत्पाद वक्र केन्द्र की ओर उत्तल (convex) होता है, जैसा कि चित्र 9.1 में दिखाया गया है।

पूँजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की अभिव्यक्ति पूँजी के सीमांत वस्तु उत्पाद और श्रम के सीमांत वस्तु उत्पाद के बीच के अनुपात के रूप में भी की जा सकती है (जैसा कि इकाई -8 में बताया जा चुका है)। इस नतीजे पर हम निम्नलिखित प्रकार से पहुँचते हैं :

पूँजी में कमी × पूँजी का सीमांत वस्तु उत्पाद = श्रम में वृद्धि × श्रम का सीमांत वस्तु उत्पाद या $\Delta K . MPK = L . MPL$

या $\frac{\Delta K}{\Delta L} = \frac{MP}{MPK}$ लेकिन $\frac{\Delta K}{\Delta L}$ पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर है जिसकी अभिव्यक्ति $\frac{MRTS}{LK}$ के रूप में की जाती है। अतः $\frac{MRTS}{LK} = \frac{MPL}{MPK}$

सरल शब्दों में उपर्युक्त संबंध ये यह आशय होता है कि किसी समोत्पाद वक्र के बिन्दु a से बिन्दु d की ओर हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे अधिकाधिक श्रमिकों को काम पर लगाया जाएगा, श्रम का सीमांत वस्तु उत्पाद कम होगा तथा कुल उत्पादन में वृद्धि, श्रम और श्रम के सीमांत वस्तु उत्पाद में परिवर्तन के फलस्वरूप होगी। इसके अतिरिक्त, अधिकाधिक श्रमिकों को जैसे-जैसे काम पर लगाया जाएगा, वैसे-वैसे कम पूँजी लगाई जाएगी, परन्तु पूँजी के सीमांत वस्तु उत्पाद में वृद्धि होगी और कुल उत्पादन में वृद्धि पूँजी में परिवर्तन और पूँजी के सीमांत वस्तु उत्पादन के गुणनफल के रूप में होगी। चूँकि समोत्पाद वक्र पर कुल उत्पादन अपरिवर्तित रहता है, अतः हम उत्पादन में कमी को उत्पादन में वृद्धि के बराबर मानते हैं और इस प्रकार जैसा कि ऊपर दिखाया गया है हम परिणाम $\frac{MRTS}{LK} = \frac{MPL}{MPK}$ तक पहुँचते हैं। इसलिए तकनीकी प्रतिस्थापन की ह्रासमान सीमांत दर का सिद्धांत ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम का विस्तार मात्र है, जो श्रम और पूँजी की सीमांत वस्तु उत्पादिता के बीच के संबंधों तक होता है। इसके अतिरिक्त, हम यह भी देख सकते हैं कि कुल उत्पादन के उसी स्तर को बनाए रखने के लिए कम से कम मात्रा में पूँजी का स्थान श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ किस प्रकार लेती हैं।

9.3.3 समोत्पाद वक्र के लक्षण

अनधिमान वक्र (indifference curve) की संकल्पना के संबंध में इकाई-5 में पहले ही बताया जा चुका है। समोत्पाद वक्र के लक्षण अनधिमान वक्र के लक्षणों के ही जैसे हैं। समोत्पाद वक्र के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है :

1 समोत्पाद वक्र बाईं से दाईं ओर नीचे की ओर गिरता है अर्थात् इसकी ढलान ऋणात्मक होती है। ऐसा इसलिए होता है कि एक आगत की मात्रा को जब बढ़ाया जाता है तब दूसरे आगत की मात्रा को घटाना होता है जिससे कुल उत्पादन स्थिर बना रहे।

2 दो समोत्पाद वक्र एक-दूसरे को काट नहीं सकते। यदि वे एक-दूसरे को काटें तब उसका अर्थ यह होगा कि कटान बिन्दु पर दो आगतों के दिए हुए संयोजन से दो भिन्न स्तरों में उत्पादन होगा। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि उत्पादन की तकनीकों में जब तक परिवर्तन नहीं होता तब तक एक ही आगत संयोजन से दो भिन्न स्तरों में उत्पादन कैसे हो सकता है।

3 समोत्पाद वक्र केन्द्र की ओर उत्तल होता है। इसकी उत्तलता का कारण है तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का ह्रासमान होना। समोत्पाद वक्र की उत्तलता से अभिप्राय यह भी होता है कि ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम लागू हो रहा है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर ह्रासमान इसलिए होती है कि किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में विभिन्न कारक एक-दूसरे के अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं। समोत्पाद वक्र सामान्यतः केन्द्र की ओर उत्तल होता है।

दो कारकों के पूर्ण स्थानापन्न होने की स्थिति में समोत्पाद वक्र का आकार जैसा होता है, उसे चित्र 9.2 में दिखाया गया है।

चित्र 9.2

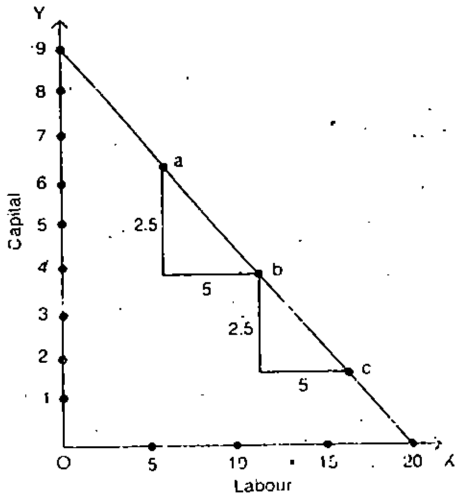

जब दो कारक एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होते हैं, तब इनमें से प्रत्येक का प्रयोग दूसरे के स्थान पर भली-भांति किया जा सकता है। इसीलिए दो पूर्ण स्थानापन्न कारकों के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर बनी रहती है। ऐसी स्थिति में समोत्पाद वक्र का आकार सीधी रेखा के रूप में होता है। चित्र 9.2 को देखने पर हम पाते हैं कि बिन्दु a से बिन्दु b की ओर या बिन्दु b से बिन्दु c की ओर बढ़ने पर श्रम की पांच और इकाइयों को काम पर लगाने के लिए पूँजी की 2.5 इकाइयों को कम करना पड़ता है।

समोत्पाद वक्र के आकार के एक अन्य अपवाद की स्थिति वह होती है जब कारक पूर्णतः पूरक (perfect complements) होते हैं। इसे चित्र 9.3 में दिखाया गया है। इसमें हम देखते हैं कि समोत्पाद वक्र समकोण (right angle) के रूप में है। पूर्ण पूरक कारक वे होते हैं जिनका कि उत्पादन की प्रक्रिया में नियत अनुपात में संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार श्रम की 5 इकाइयाँ और पूंजी की 2 इकाइयाँ मिलकर Q स्तर का उत्पादन करती हैं। इनमें से एक कारक अर्थात् पूंजी की मात्रा को यदि बढ़ा दिया जाए परन्तु श्रम की मात्रा में समानुपातिक वृद्धि न की जाए तब उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हो पाएगी।

चित्र 9.3

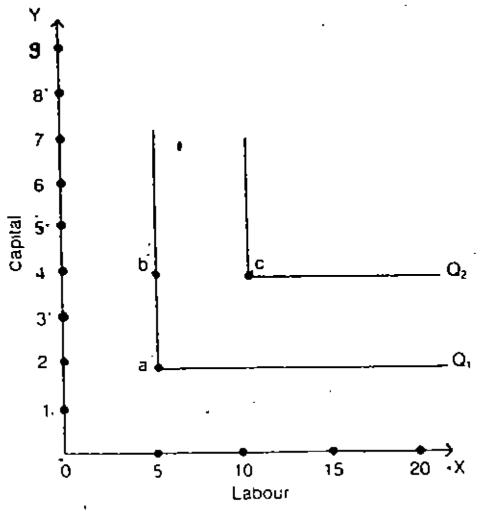

बिन्दु a पर श्रम की 5 इकाइयों और पूंजी की 2 इकाइयों के मेल से उत्पादन होता है। जैसा कि बिन्दु b से दिखाया गया है, पूँजी की मात्रा को बढ़ाकर यदि 4 कर दिया जाए तो भी उत्पादन Q_1 ही बना रहेगा। ऐसा इसलिए क्योंकि उत्पादन Q_2 मात्रा में करने के लिए श्रम की मात्रा को बढ़ाकर 10 इकाइयाँ करना आवश्यक है, जैसा कि बिन्दु C द्वारा दिखाया गया है।

9.3.4 समान लागत के लक्षण

दो कारकों के उत्पादन को समोत्पाद वक्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। कारकों की कीमतों का प्रतिनिधित्व समान लागत रेखा करती है। किसी दिए हुए स्तर के उत्पादन के लिए कोई उत्पादन इकाई कारकों के किस संयोजन का चयन करती है यह जानने के लिए समान लागत रेखा के संबंध में जानकारी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

समान लागत रेखा दो कारकों या आगतों के उन विभिन्न संयोजनों को दिखाती है, जिनका क्रय कोई उत्पादन इकाई दी हुई मुद्रा या बजट से कर सकती है।

चित्र 9.4

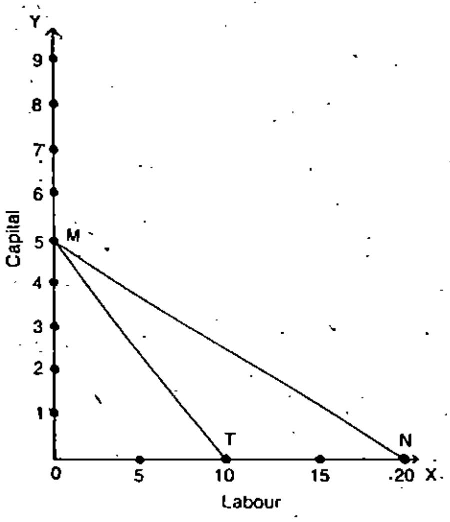

समान लागत रेखा को खींचने की विधि अत्यन्त सरल है। हम मान लेते हैं कि किसी उत्पादक फर्म के सम्मुख श्रम और पूंजी की कीमतें दी हुई होती हैं। मान लेते हैं कि किसी फर्म को 100 रुपये खर्च करने हैं। मज़दूरी दर यदि 5 रुपए प्रति श्रमिक है और ये सभी रुपए श्रम पर ही लगाने हैं तब काम पर लगाए जाने वाले मज़दूरों की अधिकतम संख्या $100 \div 5 = 20$ होगी। तदनुसार 20 को x अक्ष पर लिख लीजिए। उसी प्रकार, पूंजी की कीमत यदि प्रति इकाई 20 रुपए है तब अधिकतम 5 इकाई पूंजी खरीदी जा सकती है। अब y अक्ष पर 5 लिख लीजिए। फिर 5 और 20 को मिला दीजिए। इसके फलस्वरूप एक सीधी रेखा बनेगी, जिसे समान लागत रेखा कहा जाता है। यदि फर्म के पास की मुद्रा या व्यय की मात्रा कम होती है, तब समान लागत रेखा MN के समांतर नीचे की ओर आएगी और इसके विपरीत, यदि फर्म के पास की मुद्रा या व्यय की मात्रा बढ़ जाती है, तब यह रेखा के समांतर ऊपर की ओर जाएगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि समान लागत रेखा दो बातों पर निर्भर करती है: (i) उत्पादन के कारकों की कीमतें; और (ii) उत्पादक इकाई द्वारा कारकों पर किया जाने वाला कुल व्यय। समान लागत रेखा की ढलान अर्थात् $\frac{OM}{ON}$ श्रम और पूँजी की कीमतों के अनुपात अर्थात

$\frac{OM}{ON} = \frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{पूंजी की कीमत}}$ को प्रदर्शित करती है।

व्यय के ज्यों का त्यों बने रहने की स्थिति में यदि कारकों की कीमतों में परिवर्तन होता है, तब समान लागत रेखा में भी परिवर्तन आ जाएगा। उदाहरणार्थ, यदि व्यय सौ रुपया ही बना रहता है, परन्तु श्रम की कीमत दुगुनी होकर प्रति इकाई 5 रुपए से बढ़कर 10 रुपए हो जाती है तब फर्म केवल 10 श्रमिकों को काम पर लगा पाएगी।

पूँजी की कीमत ज्यों की त्यों बनी रहती है। अब नई समान लागत रेखा MT होगी अर्थात् दो कारकों की कीमतों का अनुपात पहले के $\frac{OM}{ON}$ से ऊपर उठकर $\frac{OM}{OT}$ हो जाएगा।

9.3.5 कारकों का न्यूनतम लागत संयोजन (least cost combination of factors)

उत्पादन की तकनीकी स्थितियों को चित्रित करने वाले समोत्पाद वक्र के मानचित्र और कुल व्यय के विभिन्न स्तरों (श्रम और पूँजी की कीमतों का दिया हुआ होने पर) को चित्रित करने वाले समान लागत के मानचित्र का दिया हुआ होने पर आगतों के चयन के संबंध में हम उत्पादक संतुलन प्राप्त कर सकते हैं। उत्पादक की इच्छा हो सकती है कि वह दिए हुए स्तर के उत्पादन की लागत को न्यूनतम करे या दी हुई लागत पर उत्पादन स्तर को अधिकतम सीमा तक ले जाए। हम एक ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें उत्पादक ने उत्पादन के स्तर के संबंध में पहले से ही निर्णय कर लिया है और वह कारकों के उस संयोजन को जानना चाहता है जिससे कुल उत्पादन लागत इतनी कम हो जाए कि कुल लाभ अधिकतम हो सके। चित्र 9.5 के बिन्दु P पर उत्पादक के संतुलन को प्रस्तुत किया गया है जिसपर उत्पादन स्तर Q_1 को प्राप्त करने के लिए श्रम की 10 इकाइयों और पूंजी की 2 .5 इकाइयों को काम में लाया जाता है।

चित्र 9.5

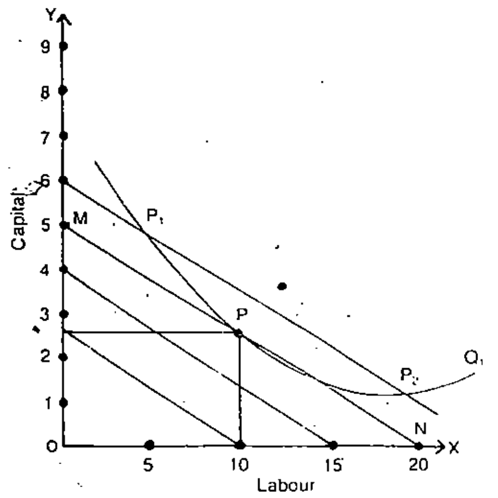

स्तर Q_1 का उत्पादन P, P_1, P_2 जैसे किसी भी कारक संयोजन द्वारा किया जा सकता है, जो पूंजी समोत्पाद वक्र पर हैं। हम देख सकते हैं कि बिन्दु P पर कुल लागत न्यूनतम है जहाँ पर उत्पादन Q_1 को चित्रित करने वाले समोत्पाद वक्र की स्पर्श रेखा समान लागत रेखा MN है। किसी भी अन्य बिन्दु पर लागत न्यूनतम नहीं है, इसलिए यह स्पष्ट है कि समान लागत रेखा के साथ वाले दिए हुए समोत्पाद वक्र के स्पर्श बिन्दु से दिए हुए उत्पाद Q_1 के उत्पादन के लिए कारकों का न्यूनतम लागत संयोजन प्राप्त होता है।

पहले ही दिखाया जा चुका है कि समान लागत रेखा की ढलान श्रम की कीमत और पूंजी की कीमत के बीच के अनुपात को चित्रित करती है। इसके अतिरिक्त समोत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर की स्पर्श रेखा की ढलान पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को बताती है। इस प्रकार बिन्दु P पर समान लागत रेखा और समोत्पाद वक्र पर स्पर्श रेखा की ढलान एक ही होती है, अर्थात्

$$\frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{पूँजी की कीमत}} = \frac{MRTS}{LK} = \frac{MPL}{MPK}$$

बोध प्रश्न क

1 अनुमापी प्रतिफल से क्या अभिप्राय होता है ?

....

....

....

....

2 समोत्पाद वक्र क्या है ?

....

....

....

....

3 समान लागत रेखा क्या है ?

....

....

....

....

4 समोत्पाद वक्र के तीन प्रमुख लक्षणों को बताइए।

....

....

....

....

5 बताइए कि निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलतः

i) अनुमापी प्रतिफल में सभी आगतों में एक समान अनुपात में परिवर्तन होता है।

ii) दीर्घकाल में केवल स्थिर अनुमापी प्रतिफल मिलता है।

iii) यदि किसी फर्म के सभी आगतों में 5% की वृद्धि करने पर उत्पादन में वृद्धि 10% की होती है, तब उसमें ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल का नियम लागू हो रहा है।

iv) तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर सदा दो कारकों के कीमत अनुपात के बराबर होती है।

v) पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं की स्थिति में समोत्पाद वक्र L आकार का होता है।

vi) समोत्पाद वक्र केन्द्र की ओर उत्तल इसलिए होता है कि तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर बनी रहती है।

9.4 समोत्पाद वक्र और अनुमापी प्रतिफल के नियम (isoquants and Laws of Return to Scale)

समोत्पाद वक्र की संकल्पना का प्रयोग अनुमापी प्रतिफल को अभिव्यक्त करने के लिए किया जा सकता है। चित्र 9.6 में हम देखेंगे कि अनुमापी प्रतिफल का चित्रण किस प्रकार किया गया है। 100, 200, 300 और 400 इकाइयों के उत्पादन स्तर को दिखाने वाले चार समोत्पाद वक्रों को बनाया गया है। रेखा OS केन्द्र से होकर जाती है। चूँकि OS रेखा केन्द्र से होकर जाती है, अतः श्रम और पूंजी के बीच का अनुपात सदा एक समान बना रहता है, हालाँकि श्रम और पूंजी की निरपेक्ष मात्रा सदा बढ़ती जाती है। अतः OS रेखा के साथ-साथ श्रम और पूंजी में वृद्धि परिमाण में वृद्धि को दिखाती है।

चित्र 9.6

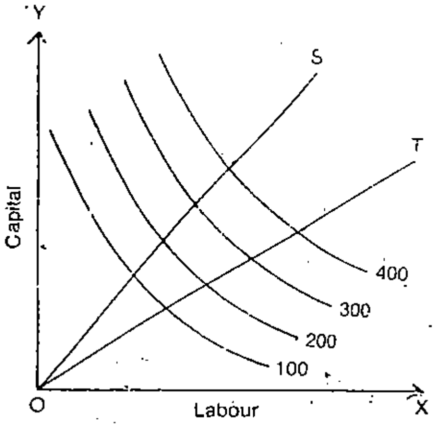

9.4.1 स्थिर अनुमापी प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

उत्पादन में वृद्धि यदि उसी अनुपात में होती है, जिस अनुपात में सभी कारकों में वृद्धि की जाती है, तब वह स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। चित्र 9.7 में समोत्पाद वक्र की सहायता से स्थिर अनुमापी प्रतिफल को दिखाया गया है।

चित्र 9.7

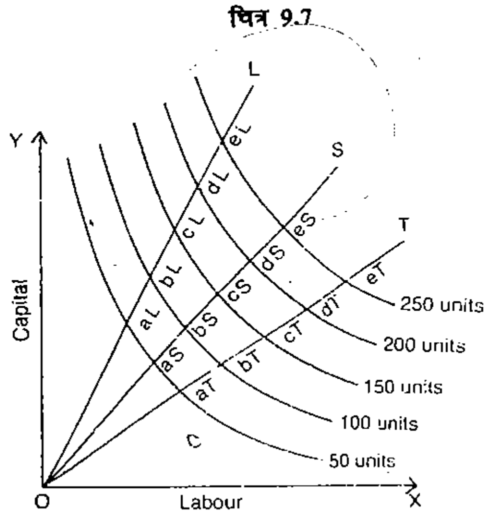

50, 100, 150, 200 और 250 इकाइयों के उत्पादन को दिखाने वाले पांच समोत्पाद वक्रों को खींचा गया है, जिसके x–अक्ष पर श्रम को और y–अक्ष पर पूंजी को लिया गया है। OL, OS और OT नामक तीन अर्ध-रेखाओं (Rays) को केन्द्र से खींचा गया है। देखा जा सकता है कि क्रमिक समोत्पाद वक्र किसी अर्ध-रेखा के S, T या L पर सम-दूरस्थ (Equidistant) होते हैं। इस प्रकार, OS अर्ध-रेखा पर $a_s\,b_s = b_s c_s = c_s\,d_s = d_s\,a_s$। उसी प्रकार अर्ध रेखा OT पर $a_T\,b_T = b_T c_T = c_T d_T = d_T\,a_T$ है। अंत में यदि हम OL अर्ध-रेखा के संबंध में विचार करें तब $a_L\,b_L = b_L c_L = c_L\,d_L = d_L a_L$ है। पाँच क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की उसी दूरी का अर्थ यह होता है कि श्रम और पूंजी में वृद्धि यदि समान अनुपात में की जाती है, तब उत्पादन में भी वृद्धि उसी अनुपात में होगी।

9.4.2 वर्धमान अनुमापी प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

वर्धमान अनुमापी प्रतिफल से अभिप्राय यह होता है कि सभी आगतों या कारकों में वृद्धि जिस अनुपात में होती है, उसकी अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि अधिक अनुपात में होती है। चित्र 9.8 में समोत्पाद वक्रों की सहायता से वर्धमान अनुमापी प्रतिफल को दिखाया गया है।

चित्र 9.8

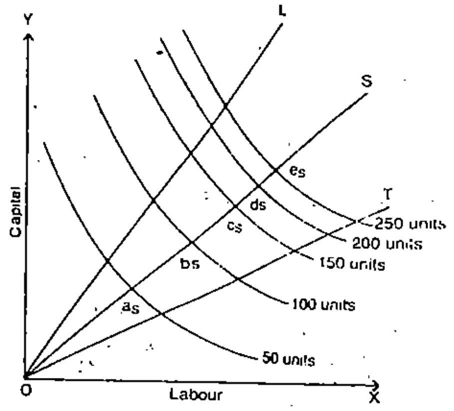

x–अक्ष पर श्रम को तथा y–अक्ष पर पूँजी को लेकर 50, 100, 150, 200 और 250 इकाइयों के उत्पादन का चित्रण करने वाले पाँच समोत्पाद वक्रों को खींचा गया है। अर्ध-रेखा OS को केन्द्र से खींचा गया है और यह देखा जा सकता है कि अर्ध रेखा OS के साथ क्रमिक समोत्पाद वक्र कम होती हुई दूरी पर है। हम देखते हैं कि $a_s c_s < a_s b_s$; $c_s d_s < b_s c_s$ और $d_s e_s < c_s d_s$। OF और DL नामक अन्य अर्ध रेखाओं पर भी यही लागू होगा। इसे हम वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति इसलिए मानते हैं कि आगतों (श्रम और पूँजी) में वृद्धि को कम करते जाने पर भी प्रत्येक स्तर पर उत्पादन में समान वृद्धि होती है।

9.4.3 ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल (Diminishing Returns to Scale)

सभी आगतों में वृद्धि जिस अनुपात में की जाती है, उसकी अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि यदि कम अनुपात में होती है, तब उसे ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है। चित्र 9.9 में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल को दिखाया गया है।

चित्र 9.9

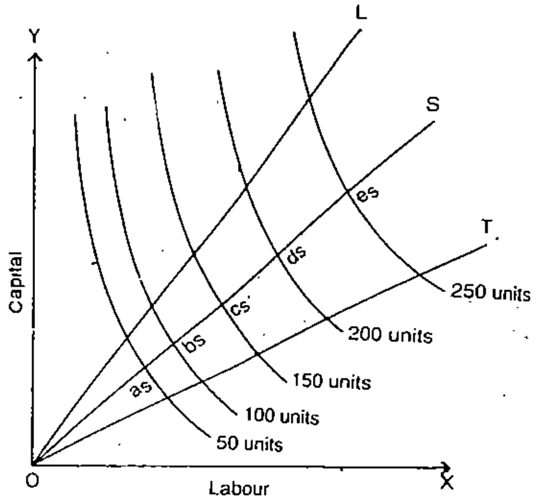

x–अक्ष पर श्रम को तथा y–अक्ष पर पूँजी को लेकर 50, 100, 150, 200 और 250 इकाइयों के उत्पादन को चित्रित करने वाले समोत्पाद वक्रों को खींचा गया है। अर्ध रेखा OS को केन्द्र O से खींचा गया है। इसमें देखा

जा सकता है कि क्रमिक समोत्पाद वक्र अर्ध रेखा OS के साथ-साथ बढ़ती हुई दूरी पर है। हम देखते हैं कि $b_s c_s > a_s b_s$, $c_s d_s > b_s c_s$ और $d_s c_s < c_s d_s$ । अन्य अर्ध रेखाओं के संबंध में भी ऐसा ही होगा। इसे ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति इसलिए माना जाता है क्योंकि आगतों (श्रम और पूंजी) में अधिकाधिक वृद्धि करने पर भी प्रत्येक स्तर पर उत्पादन में समान ही वृद्धि होती है। आपको यह नहीं समझना चाहिए कि विभिन्न उत्पादन फलन विभिन्न प्रकार के (स्थिर, वर्धमान या ह्रासमान) अनुमापी प्रतिफल को प्रदर्शित करते हैं। सामान्यतः एक ही उत्पादन फलन में वर्धमान, स्थिर और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की तीनों ही अवस्थाएँ आती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कोई उत्पादक फर्म जब उत्पादन कार्य की शुरूआत दीर्घकाल को नज़र में रखकर करती है या जब इसके परिमाण में वृद्धि होती है, तब यह फर्म पहले वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की अवस्था से गुजरती है, उसके बाद इसमें स्थिर अनुमापी प्रतिफल की अवस्था आती है और एक सीमा के बाद अंत में जब यह फर्म अपना विस्तार कार्य जारी रखती है, तब ह्रासमान प्रतिफल की प्रक्रिया की शुरूआत हो जाती है। वर्धमान, स्थिर और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल के इस सिलसिले के कारणों का विश्लेषण अगले भाग में किया जाएगा।

9.5 बड़े पैमाने की किफायतें और अलाभ (Economies and Diseconomies of Scale)

यह जानना महत्वपूर्ण है कि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति क्यों होती है और अंत में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की शुरूआत क्यों होती है। बड़े पैमाने की किफायतों को वर्धमान अनुमापी प्रतिफल के लिए उत्तरदायी माना जाता है, परन्तु ऐसी किफायतें अनिश्चित अवधि तक जारी नहीं रह सकती। कुछ समय बाद बड़े पैमाने के अलाभ की स्थिति आ जाती है, जिस कारण ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की शुरूआत हो जाती है।

9.5.1 बड़े पैमाने की किफायतें (Economies of Scale)

बड़े पैमाने की किफायतें उन लाभों को कहा जाता है जो किसी प्लांट को अपने आकार को बढ़ाने और अपने कार्यों में विस्तार करने के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं। बड़े पैमाने की किफायतों के चलते कोई फर्म इस स्थिति में हो जाती है कि वह कारक आगतों में जितनी वृद्धि करती है, उससे अधिक अनुपात में वह उत्पादन प्राप्त कर सके या आगतों की कीमतों को चुकाने के बाद और अधिक लाभ कमा सके। अनुकूलतम दृष्टि से देखा जाए तो प्लांट के आकार को बढ़ाने से उत्पादन की औसत लागत को कम किया जा सकता है। बड़े पैमाने की इन किफायतों को आंतरिक किफायतें (Internal Economies) भी कहा जाता है, क्योंकि ये किसी विशेष उत्पादक इकाई के लिए विशेष प्रकार की होती है और वह इकाई अपने उत्पादन के आकार को बढ़ाकर इन्हें प्राप्त करती है। बड़े पैमाने की कुछ किफायतों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1 **उच्च कोटि का विशेषीकरण और श्रम विभाजन :** उत्पादन का आकार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मशीनों और श्रम के संबंध में अधिकाधिक विशेषीकरण लाना संभव हो जाता है। विशिष्ट (Specialised) मशीनों और श्रम के प्रयोग के चलते प्रति इकाई आगतों की उत्पादिता बढ़ जाती है। संचित प्रभावों के कारण अनुमापी प्रतिफल में बढ़ोतरी होती जाती है। उत्पादन का आकार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अधिकाधिक श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है तथा उत्पादक इकाइयों को विशेषीकरण और श्रम विभाजन के अवसर प्राप्त होते हैं। जिस प्लांट का आकार बड़ा होता है, वह बड़ी मात्रा में श्रमिकों को काम पर लगा सकता है। इसके फलस्वरूप, वह प्रत्येक श्रमिक को किसी विशेष कार्य के लिए विशेषज्ञता प्राप्त करा सकता है जिससे वह श्रमिक अपने कार्य में कुशल हो जाता है और एक कार्य से दूसरे कार्य में जाने और अपने औजारों को बदलने में उसे समय नष्ट नहीं करना पड़ता। इस प्रकार, हम देखते हैं कि उत्पादन के आकार को बढ़ाने से बहुत बचत होती है। विशेषीकरण मशीनों के भी संबंध में हो सकता है, जिन्हें कोई फर्म किन्हीं विशेष कार्यों के लिए तैयार करती है।

2 **तकनीकी अविभाज्यताएँ** (Technical indivisibility) **:** उत्पादन की प्रक्रिया में काम में आने वाले कुछ कारक न्यूनतम आकार में उपलब्ध होते हैं। मशीनों के औज़ारों के संबंध में ऐसा विशेषतः होता है। उनका पूर्णतः उपयोग तभी किया जा सकता है जबकि उत्पादन बड़े आकार पर किया जाए। लेकिन उनके अविभाज्य या एकमुश्त (lumpy) होने के कारण उनका प्रयोग उत्पादन के छोटे स्तर पर भी करना होता है। छोटे आकार के उत्पादन में प्रयोग के लिए उनके आकार को उत्पादन में प्रयोग के लिए इन आगतों को विभाजित नहीं किया जा सकता। यदि उत्पादन का आकार अत्यन्त छोटा हो तो भी इनमें इन कारकों की अविभाज्यता के कारण इनका उपयोग एक न्यूनतम मात्रा में करना होता है। इसलिए सभी आगतों को बढ़ाकर जब उत्पादन के पैमाने को यदि उत्पादन का आकार अत्यन्त छोटा हो तो भी इनमें इन कारकों की अविभाज्यता के कारण इनका उपयोग एक न्यूनतम मात्रा में करना होता है। इसलिए सभी आगतों को बढ़ाकर जब उत्पादन के पैमाने को

बढ़ाया जाता है, तब एक-एक कारक की उत्पादिता बढ़ जाती है और इस प्रकार वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की क्रिया लागू हो जाती है।

3 **प्रबंधकीय किफायतें :** विशिष्ट मशीनों के ही समान प्रबंधकीय कौशल भी अविभाज्य होता है। मान लीजिए कि कोई प्रबंधक एक सप्ताह में 10,000 इकाइयों के उत्पादन की देख-रेख कर सकता है। लेकिन जिस फर्म में वह काम कर रहा है, वहाँ उसे एक सप्ताह में केवल 5,000 इकाइयों के उत्पादन की ही देख-रेख करनी पड़ रही है। इस प्रकार प्रबंध-लागत कम इकाइयों पर ही विभाजित हो रही है। अतः, हम देखते हैं कि उस फर्म में जब तक 10,000 इकाइयों का उत्पादन होगा, तब तक प्रति इकाई लागत घटती चली जाएगी अर्थात् श्रम और पूँजी आगतों को अधिक मात्रा में लगाने पर समानुपातिक दृष्टि से उत्पादन में अधिक वृद्धि होगी। किसी उत्पादक इकाई को कितनी प्रबंधकीय किफायतें प्राप्त होती हैं, यह प्रबंधक की कुशलता पर निर्भर करता है।

4 **श्रेष्ठ मशीनें :** उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने से श्रेष्ठ प्रकार की तथा अधिक विशिष्ट मशीनों के प्रयोग के फलस्वरूप कारकों की कुशलता बढ़ जाती है। अतः कोई कारक यदि एकमुश्त नहीं हो तथा सभी कारकों में समानुपातिक वृद्धि की जा सकती हो तो भी वर्धमान प्रतिफल की स्थिति लागू हो सकती है। ऐसा इसलिए कि और अधिक श्रेष्ठ तथा विशिष्ट मशीनों को काम में लाया जा सकता है। प्रारंभ में वर्धमान प्रतिफल होने का एक अन्य कारण है तकनीक की दृष्टि से और अधिक कुशल मशीनों का प्लांट में लगाने की संभावना का होना।

5 **आयामात्मक संबंध** (Dimensional relations) **:** वर्धमान अनुमापी प्रतिफल आयामात्मक संबंधों का भी विषय है। उदाहरणार्थ यदि किसी कमरे के आकार को $10' \times 5' = 50$ व.फी. से बढ़ाकर $20' \times 10' = 200$ व.फ़ी. कर दिया जाता है तब कमरे का क्षेत्रफल दुगुने से भी अधिक हो जाता है। उसी प्रकार ईंटो तथा उनके साथ लगने वाली अन्य वस्तुओं की मात्रा को जब दुगुना कर दिया जाता है तब गोदाम की क्षमता दुगुनी से अधिक हो जाती है। यह वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। उसी प्रकार, पाइप की मोटाई यदि दुगुनी कर दी जाती है, तब जल का प्रवाह दुगुने से अधिक हो जाता है। इसी तर्क के आधार पर श्रम और पूंजी की मात्रा को दुगुना करने से उत्पादन दुगुने से अधिक हो जाता है।

9.5.2 बड़े पैमाने के अलाभ (Diseconomies)

बड़े पैमाने के अलाभ उन क्षतियों को कहा जाता है, जो किसी प्लांट द्वारा अपने आकार को बढ़ाने या अपने उत्पादन के पैमाने को एक विशेष स्तर से अधिक करने के फलस्वरूप उन्हें उठाना पड़ता है। बड़े पैमाने के अलाभों को आंतरिक अलाभ भी कहा जाता है, क्योंकि वे किसी विशेष उत्पादक इकाई के लिए विशेष प्रकार के होते हैं। बड़े पैमाने के कुछ अलाभों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1 **कुशल प्रबंध की सीमाएँ :** किसी उत्पादक इकाई का प्रबंध करने के अंतर्गत उत्पादन, विक्रय, विज्ञापन, परिवहन आदि क्रियाओं का नियंत्रण और समन्वय संबंधी कार्य आते हैं। किसी प्लांट का आकार जब एक सीमा के आगे बढ़ जाता है, तब शीर्षस्थ प्रबंधकों को मजबूर होकर निचले स्तर के प्रबंधकों को कुछ दायित्व और अधिकार सौंपने पड़ते हैं। इसके फलस्वरूप नियंत्रण ढीला पड़ने लगता है और कार्य-कुशलता भी घटने लगती है। यदि सभी परिवर्ती कारकों में दिए हुए अनुपात में वृद्धि कर दी जाए तब भी कुल उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती।

2 **प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता :** यदि उत्पादन की परिभाषा प्राकृतिक संसाधनों को खान से निकालने के रूप में की जाए तब यह कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरणार्थ, कोयले की खान के प्लांट को यदि दुगुना कर दिया जाए तब उसके फलस्वरूप कोयले का उत्पादन दुगुना नहीं भी हो सकता है। ऐसा इसलिए कि खान में कोयला सीमित मात्रा में होता है या कोयले के भंडार तक नीचे जाना संभव नहीं हो पाता। उसी प्रकार, मछली पकड़ने के लिए नौकाओं आदि की मात्रा यदि दुगुनी कर दी जाती है तब भी पकड़ी जाने वाली मछलियों की मात्रा दुगुनी नहीं भी हो सकती। ऐसा इसलिए कि मछलियाँ पकड़ने का काम जब बड़े पैमाने पर किया जाता है तब उनकी प्राप्यता घट भी सकती है।

यह बताना अत्यन्त कठिन है कि बड़े पैमाने के अलाभ की शुरुआत कब होती है और वे इतने अधिक प्रबल कब हो जाते हैं कि बड़े पैमाने की किफायतों से अधिक हो जाएँ। इस संबंध में इतना तो स्पष्ट है कि बड़े पैमाने के अलाभ महत्वपूर्ण तब हो जाते हैं जब बड़े पैमाने की किफायतें नगण्य हो जाती हैं। प्रबंध की कुशलता जब कम होने लगती है तो भी बड़े पैमाने की प्रौद्योगिकीय किफायतों का प्रभाव अलाभों पर उत्पादन के बहुत व्यापक क्षेत्रों पर पड़ सकता है। बड़े पैमाने के अलाभ मुख्यतः प्रबंध सम्बन्धी कारक के कारण होते हैं, जबकि बड़े पैमाने की किफायतें प्रौद्योगिकीय, प्रबंधकीय, तकनीकी या व्यक्तिगत कारणों से होती हैं।

बोध प्रश्न ख

1 बड़े पैमाने की किफायतें क्या हैं ?

....

....

....

2 बड़े पैमाने की प्रबंधकीय और प्रौद्योगिकीय किफायतों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

3 बड़े पैमाने के अलाभ क्या हैं ?

....

....

....

4 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) उत्पादन में वृद्धि यदि उसी अनुपात में होती है, जिस अनुपात में सभी आगतों में वृद्धि की जाती है, तब उसे .... अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है ।

ii) यदि क्रमिक समोत्पाद वक्र केन्द्र से प्रारंभ होने वाली अर्ध रेखा के ऊपर घटती हुई दूरी पर चले जाते हैं तब वहाँ .... अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है ।

iii) यदि कुल उत्पादन की तुलना में आवश्यक आगतों में बढ़ते हुए अनुपात में वृद्धि होती है, तब वहाँ .... अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है ।

iv) किसी फर्म में पहले ....अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है, फिर .... अनुमापी प्रतिफल की और अंततः .... अनुमापी प्रतिफल की।

v) किसी फर्म को बड़े पैमाने की किफायतों की प्राप्ति केवल उसके उत्पादन के .... को बढ़ाने के साथ ही होती है।

vi) पूँजी का एकमुश्त होना बड़े पैमाने की .... का कारण होता है ।

vii) बड़े पैमाने के अलाभ के कारण ....अनुमापी .... है ।

viii) किसी फर्म में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति .... में आती है ।

9.6 सारांश

दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत का संबंध आगत-निर्गत के बीच के संबंध की उस स्थिति के साथ होता है, जिसके अंतर्गत सभी आगतें या कारक परिवर्ती कारक होते हैं। दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत के अंतर्गत अनुमापी प्रतिफल के नियमों के संबंध में अध्ययन किया जाता है।

अनुमापी प्रतिफल के तीन नियम हैं : (1) स्थिर अनुमापी प्रतिफल, (2) वर्धमान अनुमापी प्रतिफल, और (3) ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल।

स्थिर अनुमापी प्रतिफल तब होते हैं, जब आगतों या कारकों में होने वाली वृद्धि के ही अनुपात में कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। वर्धमान अनुमापी प्रतिफल का नियम तब लागू होता है, जब आगतों में होने वाली वृद्धि से अधिक अनुपात में कुल उत्पादन में वृद्धि होती है और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति तब होती है, जब आगतों में होने वाली वृद्धि से कम अनुपात में कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। अनुमापी प्रतिफल के नियमों की व्याख्या उत्पादन फलन की सहायता से की जा सकती है।

समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है, जिस पर दो कारकों, जैसे श्रम और पूंजी, के विभिन्न संयोजनों से प्रति समय इकाई में समान उत्पादन स्तर प्राप्त होता है। समोत्पाद वक्र बाएँ से दाईं ओर नीचे की ओर गिरता है। दो समोत्पादक वक्र एक-दूसरे को काट नहीं सकते। यह केन्द्र की ओर उत्तल होता है। समोत्पाद वक्र की उत्तलता से यह अभिप्राय होता है कि किसी कारक की अधिकाधिक इकाई का जैसे-जैसे प्रयोग किया जाता है, वैसे-वैसे दो कारकों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर गिरती जाती है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर, जैसे पूंजी के लिए श्रम, की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है — उत्पादन के स्तर के ज्यों का त्यों बने रहने की स्थिति में पूंजी की वह मात्रा जिसका स्थान श्रम की एक इकाई ले सके। पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर पूंजी के लिए श्रम के सीमांत वस्तु उत्पाद के अनुपात के बराबर होती है। समोत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर खींचे गए ढाल स्पर्श रेखा (slope tangent) द्वारा भी इसे दिखाया जाता है।

दो कारकों के पूर्ण स्थानापन्न होने की स्थिति में समोत्पाद वक्र सीधी रेखा के रूप में होता है, जिसका अर्थ यह होता है कि तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर होती है। दो कारक यदि परस्पर पूर्ण पूरक होते हैं, तब समोत्पाद वक्र L आकार का होता है।

समान लागत रेखा दो कारकों के उन विभिन्न संयोजनों को प्रस्तुत करती है, जिनका क्रय दी हुई मुद्रा या बजट से किया जा सके। समान लागत रेखा की ढलान श्रम और पूंजी के बीच के कीमत अनुपात को बताती है। समोत्पाद वक्र और समान लागत के मानचित्र का दिया हुआ होने पर कोई उत्पादक कारकों के उस संयोजन को प्राप्त कर सकता है, जिससे उत्पादन की कुल लागत न्यूनतम हो जाए और कुल लाभ अधिकतम हो जाए। ऐसा उस बिन्दु पर होता है, जहाँ पर श्रम और पूंजी की कीमतों का अनुपात पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की उस सीमांत दर के बराबर होती है, जो श्रम और पूंजी के सीमांत वस्तु उत्पाद के अनुपात के भी बराबर होती है।

अनुमापी प्रतिफल के नियमों को समोत्पाद वक्रों की सहायता से प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की दूरी केन्द्र से जाती हुई अर्ध रेखा के साथ-साथ बराबर बनी रहती है, तब वह स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। यदि क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की क्रमिक दूरी कम होती जाती है, तब वह वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। उसी प्रकार, यदि क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की क्रमिक दूरी बढ़ती जाती है तब वह ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है।

किसी उत्पादक फर्म में पहले वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है, फिर स्थिर अनुमापी प्रतिफल की और अंत में उत्पादन के आकार के बढ़ते जाने पर ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति आती है।

वर्धमान अनुमापी प्रतिफल बड़े पैमाने की उन किफ़ायतों के कारण होते हैं, जो किसी उत्पादक इकाई द्वारा अपने कार्यों के आकार को बढ़ाने से होने वाले लाभ के रूप में होती हैं। बड़े पैमाने की किफायतों के होने के कारण हैं : (1) उच्च कोटि का विशेषीकरण और श्रम विभाजन, (2) तकनीकी अविभाज्यता या कुछ कारकों का एकमुश्त होना, (3) सीमांत अविभाज्यता, (4) उच्च कोटि की तकनीकों का प्रयोग, और (5) आयामात्मक संबंध।

बड़े पैमाने के अलाभ या उत्पादन के आकार को बढ़ाने से होने वाली क्षतियों का मुख्य कारण यह है कि उत्पादन की इकाइयों की विभिन्न क्रियाओं पर प्रबंध का नियंत्रण धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। कभी-कभी बड़े पैमाने के अलाभ प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता के कारण भी होते हैं। बड़े पैमाने के अलाभों से पता चलता है कि ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

9.7 शब्दावली

स्थिर अनुमानी प्रतिफल : सभी आगतों में एक ही साथ तथा समानुपातिक वृद्धि के फलस्वरूप कुल उत्पादन में होने वाली समानुपातिक वृद्धि।

समोत्पाद वक्र की उत्तलता : किसी समोत्पादक वक्र पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर के कम होते जाने की प्रवृत्ति।

बड़े पैमाने के अलाभ : किसी उत्पादन इकाई द्वारा अपने कार्यों के आकार को बढ़ाने के फलस्वरूप उसे होने वाली क्षति।

उत्पादक का संतुलन : उत्पादन का दिया हुआ होने पर उत्पादक कारकों का संयोजन इस प्रकार करना चाहता है कि कुल लागत न्यूनतम हो सके या आगत के दिया हुआ होने पर वह उस स्तर पर उत्पादन करना चाहता है कि कुल लाभ अधिकतम हो सके।

बड़े पैमाने की किफायतें : किसी उत्पादन इकाई को मिलने वाले वे लाभ जो उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने के फलस्वरूप होते हैं।

वर्धमान अनुमापी प्रतिफल : सभी आगतों में एक साथ तथा समानुपातिक वृद्धि के फलस्वरूप कुल उत्पादन में अनुपात से अधिक होने वाली वृद्धि।

समोत्पाद वक्र: वह वक्र जिसपर दो कारकों के विभिन्न संयोजनों के कारण प्रति समय इकाई एक समान स्तर पर उत्पादन होता है।

समान लागत रेखा: दो कारकों के विभिन्न संयोजन, जिनका क्रय किसी दी हुई मुद्रा या बजट से किया जा सके।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर : किसी कारक की वह मात्रा जिसका स्थान किसी अन्य कारक की एक इकाई ले सके तथा उत्पादन का स्तर ज्यों का त्यों बना रहे।

पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएँ : जब दो कारकों के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर बनी रहती है।

पूर्ण पूरक : दो कारकों का संयोजन जिस अनुपात में किया जाता है, वे स्थिर होते हैं।

अर्ध रेखा : केन्द्र से जाती हुई रेखा, जो समोत्पाद वक्र को काटती है।

अनुमापी प्रतिफल : सभी आगतों में साथ-साथ तथा समानुपातिक वृद्धि जो कुल उत्पादन को प्रभावित करती है।

समोत्पाद वक्र की ढलान : किसी अन्य कारक के लिए किसी कारक के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर।

तकनीकी अविभाज्यता : वह कारक जिसका विभाजन मनचाहे ढंग से छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में नहीं किया जा सकता।

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 5 i) सही ii) गलत iii) सही iv) गलत v) गलत vi) गलत

ख 4 i) स्थिर ii) वर्धमान iii) ह्रासमान iv) वर्धमान, स्थिर, ह्रासमान v) पैमाना vi) किफायतें vii) ह्रासमान viii) अंतिम अवस्था

9.9 स्वपरख प्रश्न

1 अनुमापी प्रतिफल से क्या अभिप्राय होता है ?

2 समोत्पाद वक्र और समान लागत की संकल्पनाओं की व्याख्या कीजिए।

3 उत्पादन फलन की सहायता से अनुमापी प्रतिफल की व्याख्या कीजिए।

4 समोत्पाद वक्र की सहायता से वर्धमान और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

5 समोत्पाद वक्र और समान लागत की सहायता से दिए हुए स्तर के उत्पादन के लिए कारकों के न्यूनतम लागत संयोजन की व्याख्या कीजिए।

6 श्रम के लिए पूँजी के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की व्याख्या चित्र द्वारा कीजिए।

7 समोत्पाद वक्र के क्या लक्षण हैं ?

8 यदि दो कारक पूर्ण स्थानापन्न और पूर्ण पूरक हैं, तब उनका समोत्पाद वक्र निकालिए।

9 बड़े पैमाने की किफायतों से क्या अभिप्राय होता है ? वर्धमान अनुमापी प्रतिफल का स्पष्टीकरण वे किस प्रकार करती हैं ?

10 बड़े पैमाने की किफायतें मुख्यतः कौन-कौन सी हैं ?

11 बड़े पैमाने के अलाभ की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 10 पूर्ति का नियम तथा पूर्ति की लोच

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 पूर्ति की अवधारणा
10.3 पूर्ति का नियम
    10.3.1 पूर्ति फलन
    10.3.2 पूर्ति सारणी
    10.3.3 पूर्ति वक्र
    10.3.4 पूर्ति के नियम के अपवाद
10.4 पूर्ति में परिवर्तन बनाम पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन
    10.4.1 पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन
    10.4.2 पूर्ति में परिवर्तन
    10.4.3 पूर्ति वक्र क्यों विवर्तित होता है ?
10.5 पूर्ति की लोच
    10.5.1 अवधारणा और मापन
    10.5.2 विभिन्न पूर्ति की लोचों को दर्शाते हुए विभिन्न पूर्ति वक्र
    10.5.3 पूर्ति की लोच के निर्धारक
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.9 स्वपरख प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- "वस्तु की पूर्ति" का अर्थ स्पष्ट कर सकें
- वस्तु की पूर्ति के निर्धारकों की सूची बना सकें
- पूर्ति फलन की अवधारणा का वर्णन कर सकें
- पूर्ति अनुसूची की अवधारणा की व्याख्या कर सकें
- पूर्ति वक्र बना सकें
- पूर्ति में परिवर्तन तथा पूर्ती की मात्रा में परिवर्तन के अंतर को स्पष्ट कर सकें
- पूर्ति की लोच की अवधारणा की व्याख्या कर सकें
- पूर्ति की लोच पर आधारित विभिन्न प्रकार के पूर्ति वक्रों में भेद स्पष्ट कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा था कि जैसे-जैसे उत्पादन के साधनों की मात्रा में कुछ प्रतिशत वृद्धि होती है तो इनका कुल उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि से उस वस्तु के उत्पादन के संबंध में उत्पादक की क्या प्रतिक्रिया होती है। पूर्ति फलन, पूर्ति अनुसूची और पूर्ति वक्र से आपको परिचित कराते हुए, पूर्ति के नियम का अध्ययन किया जाएगा। वस्तु की पूर्ति के विभिन्न निर्धारक भी बताए जाएंगे और मुख्य निर्धारक के रूप में वस्तु की कीमत तथा वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य निर्धारकों में भेद दिखलाया जाएगा। आपको पूर्ति की लोच की अवधारणा और इसके निर्धारकों के बारे में भी बताया जाएगा।

10.2 पूर्ति की अवधारणा (The Concept of Supply)

पूर्ति (supply) से तात्पर्य वस्तु की उस मात्रा से है जो उत्पादक एक दी हुई कीमत पर प्रति समय इकाई (निश्चित अवधि में) उत्पादित करने और बेचने के इच्छुक हैं। पूर्ति शब्द के निम्नलिखित लक्षण हैं :

1 वस्तु की पूर्ति उसकी इच्छित मात्रा के रूप में व्यक्त की जाती है।

2 वस्तु की पूर्ति हमेशा कीमत के संदर्भ में होती है जिस पर इच्छित मात्रा में सप्लाई की जाती है। उदाहरण के लिए यह कहना कि कम्बलों के उत्पादक 1,000 कम्बलों की सप्लाई कर रहे हैं, अर्थशास्त्रीय दृष्टि से अर्थहीन है। लेकिन यदि यह कहा जाए उत्पादक 500 रु॰ प्रति कम्बल की कीमत पर 1,000 कम्बल सप्लाई कर रहे हैं तो "सप्लाई" शब्द अर्थशास्त्रीय अर्थ व्यक्त करने लगेगा।

3 पूर्ति को हमेशा एक प्रवाह के रूप में मापा जाता है या इसे एक समय इकाई के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है। यह समय इकाई एक दिन, एक सप्ताह, एक पखवाड़ा, एक महीना या एक वर्ष या कोई अन्य समयावधि हो सकती है।

एक उदाहरण लेते हैं। इस कथन पर विचार कीजिए : दिसम्बर, 1988 में उत्पादकों ने 500 रु॰ प्रति कम्बल की दर से 1000 कम्बल सप्लाई किए। इस कथन में सप्लाई की गई मात्रा, प्रति इकाई कीमत जिस पर ये मात्रा सप्लाई की गई और समयावधि जिसके दौरान ये मात्रा सप्लाई की गई, इन सभी का उल्लेख किया गया है। अतः, वस्तु की पूर्ति के बारे में यह एक पूर्ण कथन है।

पूर्ति के निर्धारक (Determinants of Supply)

वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक हैं। इन सभी कारकों में एक साथ होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव का विश्लेषण करना बहुत कठिन है। इसलिए, सामान्यतः हम ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों में से केवल एक में परिवर्तन होता है और यह मान लेते हैं कि अन्य कारकों में परिवर्तन नहीं होता। और फिर उस कारक में परिवर्तन का उत्पादक या उत्पादकों द्वारा सप्लाई की गई मात्रा पर प्रभाव मालूम करते हैं। हमने यही तरीका इकाई-6 में अपनाया था जब माँग के नियम पर विचार किया था। वहाँ हमने यह माना था कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त माँग को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों में कोई परिवर्तन नहीं होता और वस्तु की माँगी गई मात्रा उसकी कीमत पर निर्भर करती है। वस्तु की पूर्ति या सप्लाई की गई मात्रा को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारकों में से कुछ कारक निम्नलिखित हैं :

1 **सप्लाई की गई वस्तु की कीमत :** वस्तु की कीमत माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है और जो भी कीमत निर्धारित होती है उसे एक स्वतंत्र चर कहा जाता है। एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन उस वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करता है। साधारणतया, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर वस्तु की कीमत जितनी ऊँची होगी उस वस्तु का उत्पादन करना या सप्लाई करना उतना ही अधिक लाभप्रद होगा। वस्तु की कीमत और पूर्ति के सीधे संबंध को "पूर्ति का नियम" भी कहा जाता है।

2 **उत्पादन के साधनों की कीमत या उत्पादन लागत :** एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए जिन उत्पादन के साधनों का प्रयोग किया जाता है उनकी कीमत में वृद्धि, उत्पादन लागत को बढ़ा देती है। यदि यह मान लें कि बिक्री से प्राप्तियाँ अपरिवर्तित रहती हैं तो ऐसी स्थिति में लाभ कम हो जाएंगे। वस्तु की उत्पादन लागत में वृद्धि उस वस्तु के उत्पादन करने या सप्लाई करने को निरुत्साहित करती है। इसी प्रकार वस्तु की उत्पादन लागत में कमी उस वस्तु के उत्पादन या सप्लाई करने को प्रोत्साहित करती है।

उत्पादन के एक साधन की कीमत में परिवर्तन से विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की सापेक्षिक लाभप्रदता बदल जाएगी। इसके कारण उत्पादक एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का उत्पादन करने लगेंगे और इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं की पूर्ति में परिवर्तन हो जाएगा। उदाहरण के लिए, भूमि की कीमत में कमी का कृषि उत्पाद की उत्पादन लागत पर तो काफी बड़ा प्रभाव पड़ेगा परंतु टेलीविजन की उत्पादन लागत पर बहुत कम प्रभाव पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, अन्य साधनों की तुलना में जिस साधन का सापेक्षिक रूप में किसी वस्तु के उत्पादन में अधिक प्रयोग होता है उसकी कीमत में परिवर्तन का उस वस्तु की उत्पादन लागत और पूर्ति पर अधिक प्रभाव पड़ेगा।

3 **अन्य वस्तुओं की कीमतें :** अन्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि उस वस्तु, जिसकी कीमत नहीं बढ़ी है, के उत्पादन को कम आकर्षक बना देगी। अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर भी जैसे-जैसे अन्य वस्तुओं की कीमतें बढ़ेंगी एक वस्तु का उत्पादन और सप्लाई घट जाएगी। इसके विपरीत एक वस्तु का उत्पादन व सप्लाई बढ़ जाएगी जैसे-जैसे अन्य वस्तुओं की कीमतें घटेंगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सामान्यतः एक उत्पादक उत्पादन के लिए उस वस्तु को चुनता है जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक उत्पादक टेलीविजन का उत्पादन करने का निर्णय इसलिए लेता है क्योंकि

किसी अन्य वस्तु के उत्पादन की तुलना में इसमें वह अधिक लाभ अर्जित कर सकेगा। अब मान लीजिए बाज़ार में वातानुकूलक की कीमत बढ़ जाती है। अतः टेलीविजन की तुलना में वातानुकूलक का उत्पादन करना अधिक लाभप्रद हो सकता है। इससे उत्पादक टेलीविजन का उत्पादन धीरे-धीरे घटाने और वातानुकूलक का उत्पादन बढ़ाने को प्रोत्साहित होगा। अतः वातानुकूलक की कीमत में वृद्धि के कारण टेलीविजन का उत्पादन व पूर्ति घट जाती है।

4 **प्रौद्योगिकी की स्थिति :** जानकारी समय के साथ बदलती रहती है। और इसके साथ-साथ एक वस्तु के उत्पादन के तरीके में भी परिवर्तन आते हैं। उत्पादन के साधनों और उत्पादन करने के तरीकों के बारे में ज्ञान में वृद्धि से पहले से उत्पादित की जा रही और बहुत सी नई किस्म की वस्तुओं की उत्पादन लागत घटती है। उदाहरण के लिए, इलैक्ट्रॉनिक उद्योग ट्रांज़िस्टर पर निर्भर करता है जिसने टेलीविजन और कम्प्यूटर जैसे अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के उत्पादन और पूर्ति में क्रांति पैदा कर दी है। इस प्रकार जैसे-जैसे ज्ञानवर्द्धन हुआ विभिन्न वस्तओं जिनमें नई प्रौद्योगिकी के ज़रिए नया ज्ञान शामिल हो जाता है, की पूर्ति भी बढ़ती है।

5 **उत्पादक का उद्देश्य :** उत्पादक किस उद्देश्य से उत्पादन करता है इस बात का भी वस्तु की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। उत्पादक का उद्देश्य कुल लाभों को अधिकतम करना हो सकता है या बिक्री को अधिकतम करना हो सकता है या दीर्घकाल में बाज़ार पर छा जाना हो सकता है। यदि उत्पादक अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहता है तो वह वस्तु की उतनी मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाएगा जिससे उसे अधिकतम लाभ मिले। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह और अधिक उत्पादन नहीं कर सकता । लेकिन वह और अधिक उत्पादन इसलिए नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने से उसका लाभ घट सकता है। अब मान लीजिए उत्पादक का उद्देश्य लाभ की बजाय बिक्री को अधिकतम करना है, ऐसी स्थिति में वह अल्पकाल में अधिकतम लाभ से कम का लक्ष्य निर्धारित कर सकता है। वह उत्पादन और पूर्ति बढ़ाता जाएगा जब तक कि उसके लक्ष्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। बिक्री को अधिकतम करने का उद्देश्य दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करने की इच्छा से प्रेरित होता है। इस प्रकार यदि उत्पादक जोखिम उठाने में अनिच्छुक हैं तब ऐसी किसी भी वस्तु के कम उत्पादन की आशा की जाएगी जिसमें जोखिम अधिक है।

6 **अन्य कारक :** पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य बहुत से कारक हो सकते हैं। सरकार की नीति में सम्भावित परिवर्तन, युद्ध का डर, जलवायु संबंधी आकस्मिक परिवर्तन, कीमतों में सम्भावित परिवर्तन, आय की बढ़ती हुई असमानताएँ आदि जो किसी खास किस्म की वस्तुओं की माँग को प्रभावित करती हैं जिससे उनका उत्पादन अधिक लाभप्रद हो जाए, अन्य कारकों के कुछ उदाहरण हैं।

10.3 पूर्ति का नियम (The Law of Supply)

मान लीजिए उत्पादक का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। कुल आय और कुल लागत का अन्तर लाभ कहलाता है। वस्तु की कीमत को उसकी बेची गई मात्रा से गुणा करने पर कुल आय निकलती है। उत्पादन की औसत लागत को उत्पादित मात्रा से गुणा करने पर कुल लागत आ जाती है। ऊँची कीमत पर अधिक लाभ प्राप्त होंगे बशर्ते कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों में कोई प्ररिवर्तन न हो। इसलिए यदि उत्पादक को अपनी वस्तु की ऊँची कीमत मिलने की सम्भावना है तो वह अधिक सप्लाई करने को इच्छुक होगा। इसी प्रकार यदि उत्पादक को अपनी वस्तु की कम कीमत मिलने की सम्भावना है तो वह कम सप्लाई करने को इच्छुक होगा। अतः हम वस्तु की कीमत और सप्लाई की गई मात्रा में सीधा संबंध देखते हैं। वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति के बीच सीधे संबंध को पूर्ति का नियम कहते हैं। यह नियम बताता है कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य सभी कारक पूर्ववत् रहने पर, जैसे-जैसे किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, उस वस्तु की प्रति समय इकाई सप्लाई की गई मात्रा में भी वृद्धि होती है और कीमत में कमी होने से सप्लाई की गई मात्रा में कमी होती है। पूर्ति का नियम "अन्य कारक पूर्ववत् रहते हैं" इस मान्यता के अन्तर्गत लागू होता है।

वस्तु की कीमत और पूर्ति के इस सीधे संबंध में पूर्ति में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन के कारण होता है। अतः कीमत में वृद्धि कारण है और पूर्ति में वृद्धि उसका परिणाम। दूसरे शब्दों में, कीमत को एक स्वतंत्र चर माना गया है जबकि पूर्ति को परतंत्र चर माना गया है। यह समझना जरुरी है कि यदि हम कहें "कीमत बढ़ने से पूर्ति बढ़ती है" तो ठीक है लेकिन यह कहना कि पूर्ति बढ़ने से कीमत बढ़ती है, गलत है।

10.3.1 पूर्ति फलन (Supply Function)

पूर्ति फलन एक वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की संक्षिप्त अभिव्यक्ति है। इस प्रकार एक वस्तु की पूर्ति को उसकी कीमत, अन्य वस्तुओं की कीमत, उत्पादन के साधनों की कीमत, प्रौद्योगिकी, उत्पादक के उद्देश्य के फलन के रूप में लिखा जा सकता है या गणितीय ढंग से हम पूर्ति फलन को निम्नलिखित रूप में लिख सकते हैं :

$Q_1S = f(P_1, P_2, P_3 \ldots\ldots P_n, F_1 \ldots\ldots\ldots\ldots F_n, T, O, OF)$

Q_1 S वस्तु की पूर्ति का प्रतीक है, P_1 इस वस्तु की कीमत है, $P_2, P_3 \ldots\ldots\ldots P_n$ अन्य वस्तुओं की कीमतें हैं, $F_1 \ldots\ldots F_n$ उत्पादन के सभी साधनों की कीमते हैं T प्रौद्योगिकी की स्थिति है O उत्पादक का उद्देश्य और OF पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों का प्रतीक है। पूर्ति के नियम में हम Q_1S और $f(P_1)$ के बीच जो संबंध है केवल उसमें दिलचस्पी रखते हैं, अन्य बातें पूर्ववत् रहती हैं। पूर्ति के नियम में हम यह बताते हैं कि किसी वस्तु की उत्पादित और बिक्री के लिए प्रस्तुत मात्रा वस्तु की कीमत बढ़ने के साथ बढ़ती है और कीमत कम होने पर घटती है (अर्थात् सप्लाई की गई मात्रा और कीमत एक दूसरे के साथ सीधे परिवर्तित होती हैं), अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर। इस संबंध में एक सामान्य स्पष्टीकरण यह है कि वस्तु की कीमतें बढ़ने से अधिक लाभ अर्जित करने की सम्भावनाएँ अधिक हैं, और इसलिए बिक्री के लिए अधिक मात्रा प्रस्तुत की जाती है।

10.3.2 पूर्ति सारणी (Supply Schedule)

पूर्ति सारणी किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी उन मात्राओं को दर्शाती है जो उत्पादक प्रति समय इकाई, प्रत्येक कीमत पर सप्लाई करने के लिए इच्छुक है, और यह इस मान्यता पर आधारित है कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक पूर्ववत् रहते हैं। काल्पनिक आंकड़ों पर आधारित एक पूर्ति सारणी नीचे दी गई है जो पूर्ति के नियम द्वारा बताई गई कीमत और सप्लाई की मात्रा के संबंध को उदाहरण के रूप में स्पष्ट करती है।

तालिका 10.1

पेन के उत्पादन की पूर्ति सारणी

कीमत (रु.) प्रति पेन	प्रति माह सप्लाई की गई मात्रा (हजारों में)
2	25
3	40
4	50
5	60
6	70

यह अनुसूची दर्शाती है कि 2 रु. प्रति पेन की कीमत पर उत्पादक 25 हज़ार पेन प्रति माह सप्लाई करने का इच्छुक है और 3 रु. प्रति पेन की कीमत पर वह प्रति माह 40 हज़ार पेन सप्लाई करने का इच्छुक है और जैसे-जैसे पेन की कीमत बढ़ती जाती है वह प्रति माह पेन की अधिकाधिक मात्रा सप्लाई करने का इच्छुक है, जैसा कि पूर्ति सारणी में दिखाया गया है। यह पूर्ति सारणी इस प्रकार बनाई गई है जिससे कि प्रति पेन कीमत और प्रति हजार सप्लाई की गई मात्रा का सीधा संबंध दिखाया जा सके।

10.3.3 पूर्ति वक्र (Supply Curve)

तालिका 10.1 के आँकड़ों को हम एक ग्राफ पेपर पर अंकित कर सकते हैं। चित्र 10.1 में y-अक्ष पर कीमत अंकित की गई है और x-अक्ष पर सप्लाई की गई मात्रा।

तालिका में दिखाई गई कीमत व मात्रा के पांच संयोगों को अंकित करने पर पांच बिंदु, प्रत्येक संयोग के अनुरूप एक बिन्दु, चित्र में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए बिन्दु a वही सूचना प्रदान करता है जो कि तालिका की पहली पंक्ति में दी हुई है। यानि जब कीमत 2 रु. प्रति पेन है, 25,000 पेन प्रति माह बिक्री के लिए प्रस्तुत किए जाएंगे। इसी प्रकार ग्राफ पर बिन्दु b, c, d और e तालिका की क्रमशः तीसरी, चौथी, पाँचवीं और छठी पंक्ति के अनुरूप हैं। पूर्ति वक्र S एक निष्कोण (smooth) वक्र है जो क्रमशः बिन्दु a, b, c, d और e को मिलाने से बनी है। यह वक्र प्रत्येक कीमत पर पेन की वह मात्रा दर्शाता है जिसका उत्पादन किया जाएगा और

जो बिक्री के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। संक्षेप में, एक वस्तु का पूर्ति वक्र उस वस्तु की कीमत और इस कीमत पर वह मात्रा जो उत्पादक उत्पादित या विक्रय करना चाहते हैं के संबंध को दर्शाता है। यह वक्र इस मान्यता पर खींचा गया है कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक (वस्तु की कीमत के अलावा) पूर्ववत् रहते हैं (अर्थात् वे अपरिवर्तित रहते हैं)। पूर्ति वक्र का बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर जाना यह दर्शाता है कि जितनी अधिक कीमत होगी उतनी ही अधिक मात्रा उत्पादक सप्लाई करेंगे। यदि पूर्ति वक्र को y-अक्ष की ओर बढ़ाया जाए तो ये 0 (मूल बिन्दु) से गुजर भी सकता है और नहीं भी। यदि यह 0 से गुजरता है तो इस बिन्दु पर यह दर्शाता है कि शून्य कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा भी शून्य है, यदि यह 0 से नहीं गुजरता तो यह दर्शाता है कि जब तक कीमत एक स्तर तक नहीं बढ़ती (इस स्तर को दिखाने वाला बिन्दु जिस पर पूर्ति वक्र y-अक्ष को काटता है चित्र 10.1 में नहीं दिखाया गया है) पूर्ति शून्य रहेगी। ऊपर की ओर ढालू पूर्ति वक्र पूर्ति के नियम को चित्र द्वारा दर्शाती है।

चित्र - 10.1

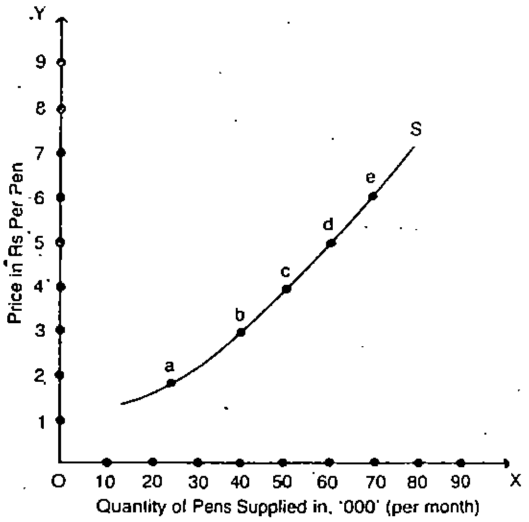

10.3.4 पूर्ति के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Supply)

साधारणतया पूर्ति का नियम कीमत और सप्लाई की गयी मात्रा के बीच सीधे संबंध को दर्शाता है। लेकिन इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं। ऐसे कुछ अपवाद नीचे दिए गए हैं :

1 **लाभों को अधिकतम न करना :** कुछ स्थितियों में यह संभव है कि उद्यम अधिकतम लाभ के उद्देश्य को ध्यान में रखकर काम न करे। ऐसी स्थितियों में कीमत में वृद्धि न होने पर भी सप्लाई की गई मात्रा बढ़ सकती है। उदाहरण के लिए यदि कीमत अपरिवर्तित रहने पर भी फर्म बिक्री को अधिकतम करना चाहती है तो यह बिक्री बढ़ाना पसन्द कर सकती है ताकि कुल आय बढ़ाई जा सके। कभी-कभी फर्म की दिलचस्पी दीर्घकाल में लाभों को अधिकतम करने में हो सकती है और अल्पकाल में किसी अन्य उद्देश्य को ध्यान में रख सकती है। इसी प्रकार यदि एक फर्म कई कम्पनियों को नियंत्रित कर रही है तो उसका उद्देश्य सभी कम्पनियों के लाभों के योग को अधिकतम करना हो सकता है। इस प्रकार विभिन्न उत्पादित वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु के लिये पूर्ति का नियम लागू न हो, यह संभव है।

2 **कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक पूर्ववत् न रहें :** पूर्ति का नियम इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य सभी कारक पूर्ववत् रहते हैं। वास्तव में ये कारक पूर्ववत् नहीं रहते। उदाहरण के लिए यदि अन्य वस्तुओं की कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति नजर आती है तो किसी वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा एक दी हुई कीमत पर घट सकती है। प्रौद्योगिकी की स्थिति में परिवर्तन भी किसी

वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन ला सकता है चाहे उस वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

बोध प्रश्न क

1 रिक्त स्थानों को भरिए।

i) उत्पादक ....कीमत की तुलना में ....कीमत पर सप्लाई अधिक करते हैं।

ii) एक पूर्ति वक्र का ढलान ....होती है।

iii) एक पूर्ति सारणी एक वस्तु की ....का एक निश्चित समय के दौरान उसकी विक्रय के लिए प्रस्तुत की गई .... के साथ संबंध दिखलाती है।

iv) एक पूर्ति वक्र एक वस्तु की ....का एक निश्चित समयावधि के दौरान उसकी बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई.................. के साथ संबंध को दर्शाता है।

v) अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, यदि किसी वस्तु की कीमत ....तो उसकी बिक्री से प्राप्त लाभ कम हो जाएँगे।

vi) पूर्ति का नियम यह बताता है कि "अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, किसी वस्तु की कीमत और उसकी सप्लाई की गई मात्रा में ....संबंध है"।

2 बताइए निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत।

i) पूर्ति का नियम यह बताता है कि किसी वस्तु की पूर्ति और उसकी कीमत के बीच एक संबंध है।

ii) पूर्ति का नियम यह बताता है कि अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, किसी वस्तु की कीमत और प्रति समय इकाई उसकी सप्लाई की गई मात्रा के बीच सीधा संबंध है।

iii) पूर्ति से तात्पर्य निश्चित समयावधि के दौरान एक कीमत पर वस्तु की बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा से है।

iv) पूर्ति से तात्पर्य निश्चित समयावधि के दौरान एक कीमत पर वस्तु की बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा से है।

v) उत्पादन के एक खास क्षेत्र में प्रौद्योगिकी में विकास से उत्पादन लागत में वृद्धि संभव है।

vi) पहले से मौजूद उत्पादक क्रिया का नए तरीके से संघटन प्रौद्योगिकी विकास नहीं है।

vii) पूर्ति एक स्टॉक अवधारणा है।

viii) प्रत्येक फर्म का केवल लाभ को अधिकतम करना ही उद्देश्य हो सकता है।

3 पूर्ति का नियम क्या है ?

....

....

....

....

....

4 पूर्ति का नियम लागू करने के लिए वस्तु की कीमत को छोड़कर वे कौन से अन्य कारक हैं जिनका पूर्ववत् रहना जरूरी है ?

....

....

....

....

....

5 पूर्ति सारणी और पूर्ति वक्र में क्या अंतर हैं ?

....

....

....

....

....

10.4 पूर्ति में परिवर्तन बनाम पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन (Changes in Supply Versus Changes in Quantity Supplied)

इस इकाई के भाग 10.2 और 10.3 में पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों को दो श्रेणियों में बांटा गया है : (क) उस वस्तु की कीमत जिसकी पूर्ति पर विचार किया जा रहा है और (ख) वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक। पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बीच इस विभेद के आधार पर हम वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन और पूर्ति में परिवर्तन में विभेद करते हैं। यदि किसी वस्तु की कीमत परिवर्तित होती है और उसके अनुरूप उसके उत्पादन या बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा में परिवर्तन होता है तो हम इसे सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन कहते हैं। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों के कारण वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन होता है तो हम इसे पूर्ति में परिवर्तन कहते हैं।

10.4.1 पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन या पूर्ति वक्र पर संचलन (Changes in Quantity Supplied or Movement along a Supply Centre)

अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, जब केवल वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उसकी बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा में परिवर्तन होता है तो इसे सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन कहा जाता है। सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन दो प्रकार का होता है :

1 जब किसी वस्तु की कीमत घटती है और इसकी सप्लाई की मात्रा भी घटती है तो इसे **"पूर्ति का संकुचन"** कहते हैं, बशर्ते कि पूर्ति का नियम लागू होता हो।

2 जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है और इसकी सप्लाई की मात्रा बढ़ती है तो इसे **"पूर्ति का विस्तार"** कहते हैं, बशर्ते कि पूर्ति का नियम लागू होता है।

पूर्ति का संकुचन और विस्तार चित्र 10.2 में दिखाया गया है।

चित्र 10.2

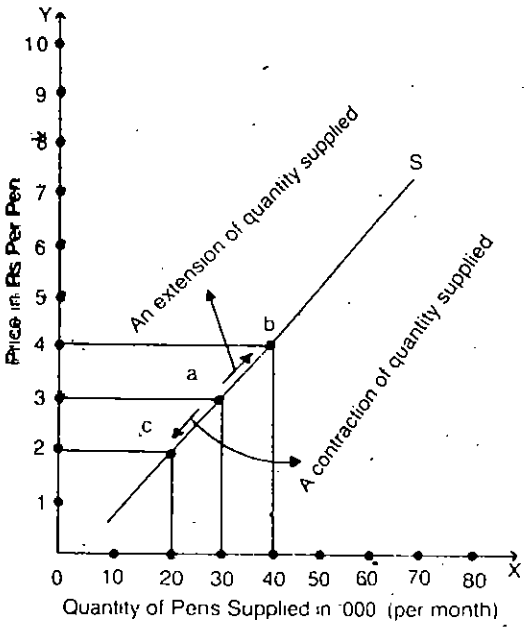

x-अक्ष पर पेनों की सप्लाई की मात्रा को मापा गया है और y-अक्ष पर कीमत प्रति पेन मापी गई है। S वक्र अपेक्षित पूर्ति वक्र है। पूर्ति वक्र पर बिन्दु a पेन की कीमत 3 रु· दर्शाता है और इसकी सप्लाई की मात्रा 30,000 पेन है। जैसे ही कीमत घटकर 2 रु· होती है सप्लाई की गई मात्रा घटकर 20,000 पेन हो जाती है और जब कीमत बढ़ कर 4 रु· हो जाती है तो सप्लाई की गई मात्रा बढ़कर 40,000 हो जाती है। कीमत का 3 रु· से कम होकर 2 रु· होना और इसके साथ सप्लाई की गई मात्रा का 30,000 से घटकर 20,000 होना, पूर्ति का संकुचन कहलाता है। चित्र में बिन्दु a से c पर संचलन पूर्ति के संकुचन को दर्शाता है। इसी प्रकार बिन्दु a से b पर संचलन पूर्ति के विस्तार को दर्शाता है क्योंकि इसका अर्थ है कि कीमत 3 रु· से 4 रु· होने के साथ सप्लाई की गई मात्रा 30,000 से 40,000 तक बढ़ जाती है।

इस प्रकार अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन केवल उस वस्तु की कीमत में परिवर्तन का परिणाम है।

10.4.2 पूर्ति में परिवर्तन या पूर्ति वक्र का विवर्तन

पूर्ति में परिवर्तन का अर्थ है कि प्रत्येक कीमत पर पहले से भिन्न मात्रा सप्लाई की जाएगी। पूर्ति में परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं :

1 **पूर्ति में कमी :** जब स्थिर कीमत पर किसी वस्तु की सप्लाई की मात्रा घट जाती है तो इसे पूर्ति में कमी कहते हैं। यदि इसे चित्र पर दिखाया जाय तो पूर्ति वक्र का बाई ओर विवर्तन हो जाएगा।

2 **पूर्ति में वृद्धि :** जब स्थिर कीमत पर किसी वस्तु की सप्लाई की मात्रा बढ़ जाती है तो इसे पूर्ति में वृद्धि कहते हैं। ऐसी स्थिति में पूर्ति वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है।

पूर्ति में ये दोनों प्रकार के परिवर्तन चित्र 10.3 में दिखाए गए हैं। इस चित्र में यह देखा जा सकता है कि जैसे-जैसे हम S वक्र के बिन्दु a से a´ की ओर जाते हैं, 3 रु· कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा 30,000 से घटकर 20,000 हो जाती है। इसी प्रकार 2 रु· कीमत पर S वक्र के बिन्दु C' पर पूर्ति 20,000 थी जो बिन्दु C´ पर घटकर 10,000 हो जाती है।

चित्र 10.3

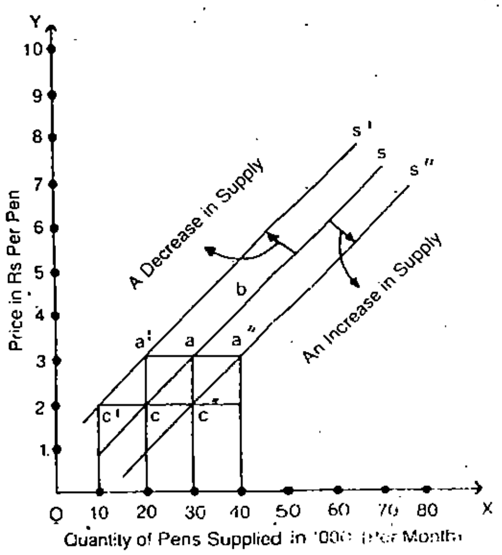

यदि बिन्दु C´ और बिन्दु a´ को मिला दिया जाए तो एक नया पूर्ति वक्र S´ बन जाता है। पूर्ति वक्र S से S´ पर विर्वतन पूर्ति में कमी कहलाता है। इसकी बजाए यदि हम S वक्र के a बिन्दु से a" बिन्दु पर जाएँ तो 3

रु. कीमत पर पूर्ति 30,000 से बढ़कर 40,000 हो जाती है। 2 रु. कीमत पर जैसे ही हम C बिन्दु से C'' पर जाते हैं पूर्ति 20,000 से बढ़कर 30,000 हो जाती है। यदि C'' और a'' जैसे बिन्दुओं को मिला दिया जाए तो एक नया पूर्ति वक्र S'' बन जाता हैं। पूर्ति वक्र का S से S'' पर विवर्तन पूर्ति में वृद्धि कहलाता है। संक्षेप में, पूर्ति में वृद्धि का अर्थ है पूर्ति वक्र का दायीं ओर से विवर्तित होना जो यह दिखाता है कि प्रत्येक कीमत पर उत्पादक पहले से अधिक मात्रा सप्लाई करने को इच्छुक है। दूसरी ओर, पूर्ति में कमी का अर्थ है पूर्ति वक्र का बायीं ओर विवर्तित होना जो यह बताता है कि प्रत्येक कीमत पर उत्पादक पहले से कम मात्रा सप्लाई करने को इच्छुक है।

10.4.3 पूर्ति वक्र क्यों विवर्तित होता है ? (Why Supply Curve Shifts)

पूर्ति के विस्तार और संकुचन के कारणों का विश्लेषण पहले ही इस इकाई के भाग 10.4.1 में किया जा चुका है। पूर्ति में परिवर्तन (वृद्धि और कमी दोनों ही) के निम्नलिखित कारण हैं :

1 **अन्य वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन :** अन्य वस्तुओं की कीमत में कमी विचाराधीन वस्तु की हर कीमत पर पूर्ति बढ़ा देती है क्योंकि अन्य वस्तुओं की सप्लाई करने से सापेक्षिक रूप में लाभ कम हो जाते हैं। अन्य वस्तुओं की कीमत में वृद्धि विचाराधीन वस्तु की हर कीमत पर पूर्ति घटा देती है।

2 **उत्पादन के साधनों की कीमत में परिवर्तन :** जिन उत्पादन के साधनों का उत्पादन में प्रयोग किया जा रहा है उनकी कीमतों में वृद्धि से वस्तु की प्रत्येक कीमत पर पूर्ति को घटाने की प्रवृत्ति होती है। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है और दी हुई कीमत पर लाभ घट जाते हैं। इसके विपरीत वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कीमत में कमी उस वस्तु की प्रत्येक कीमत पर पूर्ति को बढ़ाती है।

3 **प्रौद्योगिकी में परिवर्तन :** प्रौद्योगिकी में सुधार से साधारणतया उत्पादन लागत घटती है और वस्तु की प्रत्येक कीमत पर उत्पादक उस वस्तु का अधिक उत्पादन करने को प्रवृत्त होता है। इसके विपरीत, प्रौद्योगिकी में गुणह्रास (जिसकी सम्भावना बहुत कम होती है) प्रत्येक कीमत पर वस्तु की पूर्ति को कम करेगा।

4 **अन्य कारकों में परिवर्तन या परिवर्तन की सम्भावना :** सरकार की कर संबंधी नीति में परिवर्तन या ब्याज की दर में परिवर्तन या युद्ध का भय या आय और धन की बदलती हुई असमानताएँ खास किस्म की वस्तुओं की माँग को प्रभावित करती हैं जिससे इनका उत्पादन करना अधिक या कम लाभप्रद हो जाता है।

कभी-कभी इन कारणों से भी पूर्ति में परिवर्तन हो सकता है। अतः अन्य कारकों में परिवर्तन से यदि उत्पादक अधिक लाभ की आशा करते हैं तो प्रत्येक कीमत पर पूर्ति में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत, अन्य कारकों में परिवर्तन के कारण यदि उत्पादक कम लाभ की आशा करते हैं तो प्रत्येक कीमत पर पूर्ति घट जाएगी।

बोध प्रश्न ख

1 बताइए निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत :

i) पूर्ति के विस्तार से तात्पर्य एक दी हुई कीमत पर अधिक पूर्ति है।

ii) पूर्ति में वृद्धि और पूर्ति का विस्तार दोनों का अर्थ एक ही है।

iii) सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के कारण होता है।

iv) वस्तु की कीमत में कमी होने से पूर्ति में वृद्धि होती है।

v) पूर्ति वक्र पर संचलन पूर्ति के नियम का प्रचलन दिखाता है।

vi) पूर्ति वक्र में बायीं ओर विवर्तन पूर्ति में वृद्धि दर्शाता है।

vii) वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों के कारण पूर्ति वक्र में विवर्तन होता है।

2 "पूर्ति के विस्तार" और "पूर्ति में वृद्धि" में क्या अंतर है ?

....

....

....

....

....

२ उपयुक्त पूर्ति सारणियों की सहायता से पूर्ति में वृद्धि और कमी दिखाइए।

....

....

....

....

....

10.5 पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply)

पूर्ति का नियम हमें बताता है कि अन्य बाते पूर्ववत् रहने पर, वस्तु की कीमत और उसकी सप्लाई की गई मात्रा में सीधा संबंध है। कीमत में परिवर्तन की जिस हद तक सप्लाई की गई मात्रा पर प्रतिक्रिया होती है, माँग की लोच उसे मापती है।

10.5.1 अवधारणा और मापन (Concept and Measurement)

पूर्ति की लोच को सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन और वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है।

$$\text{पूर्ति की लोच} = \frac{\text{वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

यानि वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन को वस्तु की कीमत में हुए प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने से पूर्ति की लोच आ जाती है।

$$\text{सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन} = \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक पूर्ति}} \times 100$$

$$\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन} = \frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक कीमत}} \times 100$$

$$\text{अतः पूर्ति की लोच} = \frac{\frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}} \times 100}{\frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक कीमत}} \times 100}$$

$$\text{या } \frac{\frac{\Delta S}{S} \times 100}{\frac{\Delta P}{P} \times 100}$$

$$= \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}} \times \frac{\text{प्रारंभिक कीमत}}{\text{कीमत में परिवर्तन}}$$

$$\text{या } \frac{\Delta S}{S} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$\text{या } \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{P}{S}$$

$$= \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{कीमत में परिवर्तन}} \times \frac{\text{प्रारंभिक कीमत}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}}$$

तालिका 10.1 के उदाहरण की सहायता से पूर्ति की लोच को स्पष्ट किया जा सकता है। पेन की कीमत 2 रु. से बढ़कर 3 रु. हो जाती है और पेनों की सप्लाई की गई मात्रा 25,000 से बढ़कर 40,000 हो जाती है। ऊपर बताए गए सूत्र के द्वारा हम पूर्ति की लोच निकाल सकते हैं।

$$\text{पूर्ति की लोच} = \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{कीमत में परिवर्तन}} \times \frac{\text{प्रारंभिक कीमत}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}}$$

$$= \frac{40000 - 25000}{3 - 2} \times \frac{2}{25000}$$

$$= \frac{15000}{1} \times \frac{2}{25000}$$

$$= \frac{30}{25} \qquad = 1.2$$

पूर्ति की लोच 1.2 है। इसका अर्थ है कि यदि पेनों की कीमत 1 प्रतिशत बढ़े तो पेनों की सप्लाई की मात्रा में 1.2 प्रतिशत वृद्धि होती है। यह लोचदार पूर्ति की स्थिति है। यदि पूर्ति की लोच 1 से कम है तो इसे बेलोचदार पूर्ति कहते हैं। जब पूर्ति की लोच 1 हो तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है। जब पूर्ति की लोच शून्य हो तो यह पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति की स्थिति है और अन्त में जब पूर्ति की लोच अनन्त हो तो यह पूर्णतया लोचदार पूर्ति की स्थिति है।

10.5.2 विभिन्न पूर्ति की लोचों को दर्शाते हुए विभिन्न पूर्ति वक्र

चित्र 10.4 में पूर्ति की लोच के 5 उदाहरण दिखाए गए हैं। शून्य लोच या पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति चित्र 10.4 द्वारा दिखायी गई है, इसमें कीमत में परिवर्तन होने से सप्लाई की गई मात्रा नहीं बदलती। ऐसा तब होता है जब उत्पादक एक दी हुई मात्रा ही उत्पादित करते हैं, बाज़ार में वस्तु की चाहे जो भी कीमत हो। अनन्त लोच की स्थिति चित्र 10.4 द्वारा दिखाई गई है, इसमें OP कीमत पर बाज़ार में जितनी भी माँग है उतनी सप्लाई करने को तैयार हैं और OP से कम कीमत पर सप्लाई शून्य है। यदि कीमत OP से थोड़ी सी भी कम हो तो सप्लाई शून्य होगी और यदि यह कीमत OP से थोड़ा भी बढ़ जाए तो सप्लाई शून्य से बढ़कर अनन्त हो जाएगी।

चित्र 10.4

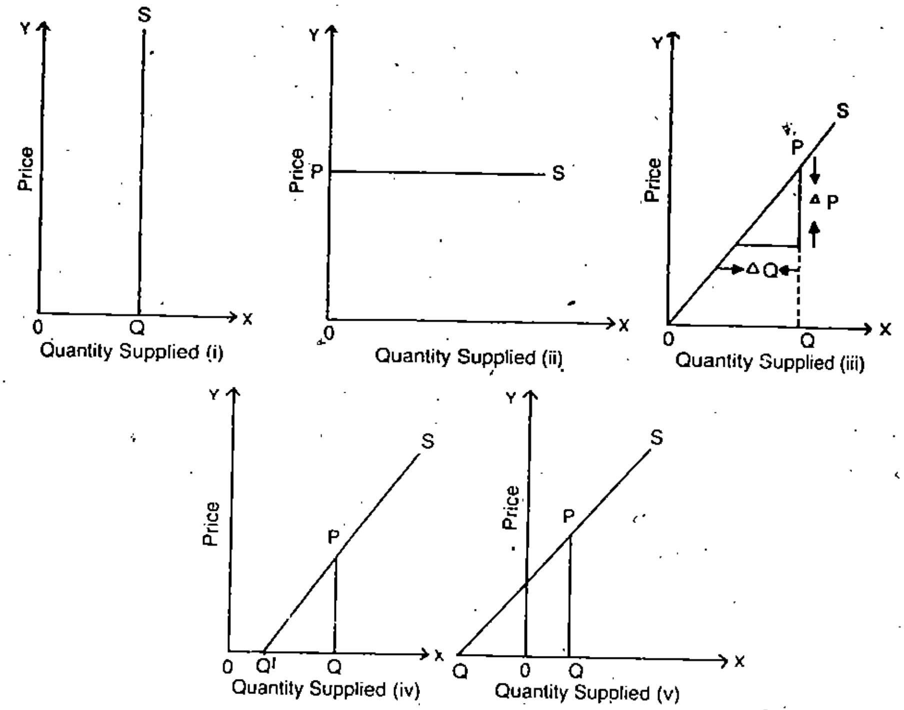

इकाई के बराबर पूर्ति लोच की स्थिति चित्र 10.4 में दिखायी गई है। कोई भी सरल रेखीय पूर्ति वक्र जो मूल बिन्दु से गुज़रता है उसकी पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होगी। इसे आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। चित्र

में दो त्रिभुजों, एक जिसकी भुजाएँ ΔQ और ΔP हैं और दूसरी जिसकी भुजाएँ OQ और QP हैं पर ध्यान दीजिए ये दोनों त्रिभुज समरूप हैं। अतः इनकी भुजाओं का अनुपात बराबर है।

यानि,

$$\frac{QP}{\Delta P} = \frac{OQ}{\Delta Q}$$

या $$\frac{\Delta Q}{\Delta P} = \frac{OQ}{QP} \qquad \text{..... (i)}$$

इस इकाई के 10.5.1 में दिया गया पूर्ति की लोच

$$= \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{P}{S}$$

चित्र 10.4 के आधार पर पूर्ति की लोच को इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{QP}{OQ}$$

$\frac{\Delta Q}{\Delta P}$ को $\frac{OQ}{QP}$ के द्वारा समीकरण (i) में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं कि

$$\frac{OQ}{QP} \times \frac{QP}{OQ} = 1$$

पूर्ति की लोच का 1 के बराबर होने का अर्थ है कि यदि कीमत में 5-प्रतिशत वृद्धि होती है तो सप्लाई की गई मात्रा में भी 5 प्रतिशत वृद्धि होगी।

चित्र 10.4 इकाई से कम लोच या बेलोचदार पूर्ति को दर्शाता है। P बिन्दु पर Es

$$= \frac{Q'Q}{PQ} \times \frac{PQ}{OQ}$$

$$= \frac{Q'Q}{OQ} \text{ or} < 1 \text{ चूंकि } Q'Q < OQ$$

चित्र 10.4 इकाई से अधिक या लोचदार पूर्ति की स्थिति को दर्शाता है। P बिन्दु पर Es

$$= \frac{Q'Q}{PQ} \times \frac{PQ}{OQ}$$

$$= \frac{Q'Q}{OQ} \text{ or} > 1 \text{ चूंकि } Q'Q > OQ$$

इस प्रकार यदि एक सरल रेखीय पूर्ति वक्र मात्रा अक्ष यानि x-अक्ष से गुजरता है तो पूर्ति की लोच इकाई से कम है। दूसरी ओर, यदि एक सरल रेखीय वक्र कीमत अक्ष यानि y-अक्ष से गुजरता है तो पूर्ति की लोच इकाई से अधिक है। और यदि यह मूल बिन्दु से गुजरती है तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है। यदि पूर्ति वक्र सरल रेखा नहीं है बल्कि वक्ररेखी है तो पूर्ति वक्र के किसी विशेष बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम करने के लिए हम उस बिन्दु पर पूर्ति वक्र का स्पर्शज्या (tangent) खींचते हैं और फिर देखते हैं कि यह स्पर्शज्या मूल बिन्दु से गुजरता है या x-अक्ष या y-अक्ष से। यह चित्र 10.5 में दिखाया गया है।

चित्र 10.5

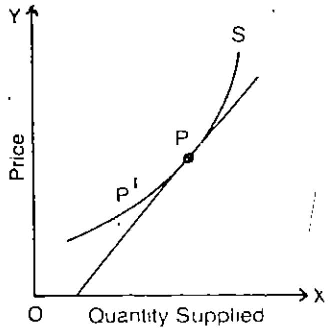

चित्र 10.5 में पूर्ति वक्र वक्ररेखी है और हम P बिन्दु पर पूर्ति की लोच निकालना चाहते हैं। P बिन्दु पर पूर्ति वक्र को छूता हुआ जो स्पर्शज्या खींचा गया है वह मूल बिन्दु से गुजरता है। अतः पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है।

10.5.3 पूर्ति की लोच के निर्धारक (Determinants of Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच बहुत से कारकों पर निर्भर करती है। और किसी वस्तु की पूर्ति की लोच पर टिप्पणी करने से पहले इन सभी कारकों को एक साथ ध्यान में रखना होता है। कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं :

1 **उत्पादन में परिवर्तन का लागतों पर प्रभाव :** जब उत्पादन बढ़ता है तो कुल लागतों के बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। लेकिन ये एक समान दर से नहीं बढ़तीं। सामान्यतः शुरू में कुल लागत घटती हुई दर से बढ़ती है, उसके बाद स्थिर दर से और अन्त में बढ़ती हुई दर से। यदि उत्पादन बढ़ने पर उत्पादन लागत तेजी से बढ़ती है, तो कीमतों में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा कम होगी। अतः पूर्ति कम लोचदार होगी। दूसरी ओर, यदि उत्पादन बढ़ने पर कुल लागत धीरे-धीरे बढ़ती है तो कीमत वृद्धि जिससे लाभ बढ़ते हैं, से सप्लाई की गई मात्रा में अधिक वृद्धि होगी और इसलिए पूर्ति अधिक लोचदार होगी।

2 **वस्तु की प्रकृति :** प्रकृति के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण (i) जल्दी नाशवान और (ii) टिकाऊ, वस्तुओं में किया जा सकता है। जल्दी नष्ट होने वाली वस्तुओं का संग्रह नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उनकी कीमतों में परिवर्तन का उनकी पूर्ति पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। अतः जल्दी नाशवान वस्तुओं की पूर्ति बेलोचदार होती है। दूसरी ओर टिकाऊ वस्तुओं का संग्रह किया जा सकता है, और इनकी कीमतों में परिवर्तन का इनकी पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। इन वस्तुओं की पूर्ति सापेक्षिक रूप में लोचदार होती है।

3 **समय :** वस्तु की पूर्ति का आधार उत्पादन होता है जिसमें समय अन्तराल होता है। यदि संयंत्र का आकार दिया हुआ है, तो प्रौद्योगिकी आदि के रूप में अन्य सामंजस्य सम्भव नहीं होते। ऐसी स्थिति में कीमत में परिवर्तन की उत्पादक पर प्रभावी प्रतिक्रिया नहीं होती। अतः अल्पकाल में वस्तु की पूर्ति कम लोचदार होती है। दीर्घकाल में जबकि संयन्त्र का आकार बदला जा सकता है और प्रौद्योगिकी परिवर्तन करने दिये जाते हैं तो कीमत में परिवर्तन का पूर्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और पूर्ति अधिक लोचदार होती है।

4 **कीमत संबंधी संभावनाएँ :** भविष्य में कीमतों के बारे में संभावनाएँ भी पूर्ति को प्रभावित करती हैं। यदि उत्पादक ये उम्मीद करते हैं कि भविष्य में कीमतों को एक निश्चित स्तर से नीचे नहीं जाने दिया जाएगा तो उन्हें अधिक उत्पादन करने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त यदि उत्पादक भविष्य में कीमतों में वृद्धि की आशा करते हैं तो वे अपने पास अधिक स्टॉक रख सकते हैं और बाज़ार में सप्लाई कम कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में पूर्ति बेलोचदार होगी। यदि भविष्य में कीमतों में कमी होने की सम्भावना है तो पूर्ति अधिक लोचदार होगी।

5 **उत्पादन प्रणाली की प्रकृति :** यदि वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन प्रणाली साधारण है तो कीमत में वृद्धि का उत्पादकों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वे सप्लाई बढ़ा देते हैं जिससे पूर्ति अधिक लोचदार हो जाती है। उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन प्रणाली जितनी अधिक जटिल और दुर्बल होगी उतना ही बढ़ती हुई कीमतों का पूर्ति पर प्रभाव कम होगा और इसलिए उतनी ही कम पूर्ति की लोच होगी।

बोध प्रश्न ग

1 पूर्ति की लोच क्या है ?

....

....

....

....

....

2 पूर्ति की लोच के निर्धारक क्या हैं ?

....

....

....

....

....

3 बताइए, निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत :

i) पूर्ति की लोच पूर्ति के नियम के लागू होने के कारणों को समझाती है ।

ii) पूर्ति के नियम के लागू न होने पर भी पूर्ति की लोच मालूम की जा सकती है ।

iii) पूर्ति की लोच सप्लाई की गई मात्रा में दिए हुए प्रतिशत परिवर्तन की वस्तु की कीमत पर प्रतिक्रिया होती है ।

iv) लोचदार पूर्ति का तात्पर्य है कि जब कीमत में एक दिए हुए प्रतिशत परिवर्तन के कारण सप्लाई की मात्रा में उतने ही प्रतिशत वृद्धि होती है ।

v) पूर्णतया लोचदार माँग वक्र y-अक्ष के समानान्तर होता है ।

vi) बेलोचदार पूर्ति वक्र मात्रा-अक्ष से गुजरता है ।

vii) एक वक्ररेखी पूर्ति वक्र पर सर्वत्र ही पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होती है ।

viii) किसी वस्तु का अल्पकालिक पूर्ति वक्र साधारणतया दीर्घकालिक पूर्ति वक्र से कम लोचदार होता है ।

10.6 सारांश

किसी वस्तु की पूर्ति हमेशा (क) वस्तु की कीमत (ख) उस कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा और (ग) एक समय के दौरान सप्लाई की मात्रा के संदर्भ में होती है । वस्तु की पूर्ति, (क) वस्तु की कीमत (ख) अन्य वस्तुओं की कीमतें (ग) वस्तु की उत्पादन लागत (घ) उत्पादक को उपलब्ध तकनीकी ज्ञान (ङ) उत्पादकों के उद्देश्य और (च) अन्य कारकों जैसे सरकार की नीतियाँ, युद्ध का भय, आय व धन की बढ़ती हुई असमानताएँ आदि से निर्धारित होती है ।

पूर्ति का नियम अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, वस्तु की कीमत और उसकी प्रति समय इकाई सप्लाई की गई मात्रा से सीधे संबंध को दर्शाता है ।

पूर्ति फलन उन कारकों को बताता है जिन पर वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा निर्भर करती है । एक पूर्ति अनुसूची विभिन्न कीमतों और प्रत्येक कीमत पर वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा को दिखाती है । एक पूर्ति वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर होता है । जब पूर्ति में परिवर्तन वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक या कारकों के प्रभाव के कारण होता है तो पूर्ति वक्र विवर्तित हो जाता है । पूर्ति वक्र पर संचलन का अर्थ है केवल कीमत में परिवर्तन के कारण मात्रा में परिवर्तन, पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक पूर्ववत् रहते हैं ।

पूर्ति वक्र में दायीं ओर विवर्तन "पूर्ति में वृद्धि" की स्थिति को दर्शाता है और पूर्ति वक्र में बायीं ओर विवर्तन "पूर्ति में कमी" की स्थिति को दर्शाता है । पूर्ति वक्र पर दायीं ओर संचलन "पूर्ति में विस्तार" की स्थिति है और पूर्ति वक्र पर बाई ओर संचलन "पूर्ति में संकुचन" की स्थिति को दर्शाता है ।

पूर्ति की लोच मालूम करने के लिए सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन को वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से भाग कर देते हैं । पूर्ति की लोच इकाई के बराबर, उससे कम या उससे अधिक हो सकती है । पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति की स्थिति में पूर्ति की लोच शून्य होती है और पूर्णतया लोचदार पूर्ति की स्थिति में पूर्ति की लोच अनन्त होती है । पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति वक्र कीमत अक्ष के समानान्तर होता है और पूर्णतया लोचदार पूर्ति वक्र मात्रा अक्ष के समानान्तर होता है । इकाई लोच वाला पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है और मूल बिन्दु से गुजरता है । इकाई से कम लोच वाला पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है और मात्रा-अक्ष से गुजरता है । इकाई से अधिक लोच वाला पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है और कीमत अक्ष से गुजरता है ।

वक्र रेखी (curvilinear) पूर्ति वक्र के किसी एक बिन्दु पर पूर्ति की लोच निकालने के लिए उस बिन्दु से पूर्ति वक्र पर एक स्पर्शज्या खींचते हैं । उत्पादन में परिवर्तन का लागतों पर प्रभाव, वस्तु की प्रकृति, समय, कीमत की सम्भावनाएँ और उत्पादन प्रणाली की प्रकृति पूर्ति की लोच के निर्धारक हैं ।

10.7 शब्दावली

पूर्ति में परिवर्तन : यह एक दी हुई कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन है।

सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन : यह वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन है।

पूर्ति में संकुचन: वस्तु की कीमत के गिरने के कारण उसकी सप्लाई की गई मात्रा में कमी।

वक्ररेखी पूर्ति वक्र : पूर्ति वक्र जो एक सरल रेखा नहीं होती।

पूर्ति में कमी : दी हुई कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा में कमी।

पूर्ति की लोच : वस्तु की कीमत में एक दिए हुए प्रतिशत परिवर्तन की जिस हद तक सप्लाई की गई मात्रा पर प्रतिक्रिया होती है।

लोचदार पूर्ति : जब सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से अधिक है।

पूर्ति में विस्तार: वस्तु की कीमत के चढ़ने के कारण उसकी सप्लाई की गई मात्रा में वृद्धि।

प्रवाह चर : कोई भी चर जिसका मापन काफी समय से किया गया है।

आय की असमानताएँ : अर्थव्यवस्था के विभिन्न आय वर्गों के बीच आय का वितरण।

पूर्ति में वृद्धि : वस्तु की दी हुई कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा में वृद्धि।

बेलोचदार पूर्ति : सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन, वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से कम होता है।

पूर्ति का नियम : यह वस्तु की कीमत और इसकी सप्लाई की गई मात्रा के बीच सीधा संबंध है, पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक (वस्तु की कीमत को छोड़कर) पूर्ववत् रहते हैं।

पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति : सप्लाई की गई मात्रा विभिन्न कीमतों पर स्थिर रहती है।

पूर्ति : एक दिए हुए समय में वस्तु की वह मात्रा जो उत्पादक एक कीमत पर बेचने को तैयार होंगे।

पूर्ति फलन : यह सप्लाई की गई मात्रा को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बीच फलन संबंध है।

पूर्ति सारणी : एक तालिका जिसमें दो कॉलम होते हैं, एक में वस्तु की विभिन्न कीमतें दिखाते हैं और दूसरे में प्रत्येक कीमत पर एक दिए हुए समय में वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा दिखाते हैं।

पूर्ति वक्र: एक वक्र जो पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों के पूर्ववत् रहने पर, वस्तु की कीमत और एक दी हुई समयावधि में उसकी सप्लाई की गई मात्रा के संबंध को दर्शाता है। पूर्ति वक्र दो विमितीय रेखाचित्र पर खींची जाती है जिसमें x-अक्ष पर सप्लाई की गई मात्रा और y-अक्ष पर वस्तु की कीमत मापी जाती है।

प्रौद्योगिकी : वस्तु या सेवा के उत्पादन के लिए प्रयोग में लाई गई प्रणाली।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क	1	i) कम, अधिक	ii) ऊपर की ओर	iii) कीमत, मात्रा	
		iv) कीमत, मात्रा	v) घंटे	vi) सीधा	
	2	i) गलत	ii) सही	iii) गलत	iv) सही
		v) गलत	vi) गलत	vii) गलत	viii) गलत
ख	1	i) गलत	ii) गलत	iii) गलत	iv) गलत
		v) सही	vi) गलत	vii) सही	
ग	3	i) गलत	ii) सही	iii) गलत	iv) गलत
		v) गलत	vi) सही	vii) गलत	viii) सही

10.9 स्वपरख प्रश्न

1. पूर्ति शब्द का क्या अर्थ है ? उदाहरण की सहायता से उत्तर दीजिए।
2. किसी वस्तु की पूर्ति के विभिन्न निर्धारकों को स्पष्ट कीजिए।
3. पूर्ति का नियम समझाइए। इसके अपवाद बताइए।
4. "पूर्ति का विस्तार" और "पूर्ति का संकुचन" में भेद कीजिए। इनके उदाहरण भी दीजिए।
5. पूर्ति वक्र पर संचलन का महत्व बताते हुए, इसमें तथा पूर्ति वक्र के विवर्तन में भेद कीजिए।
6. पूर्ति की लोच का क्या अर्थ है ?
7. पूर्णतया लोचदार, पूर्णतया बेलोचदार, इकाई लोच वाला, बेलोचदार और लोचदार पूर्ति वक्रों में भेद दिखाने के लिए चित्रों का प्रयोग कीजिए।
8. किसी वस्तु की पूर्ति की लोच के मुख्य निर्धारक तत्त्व क्या हैं ?

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 11 लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 लागतों का सिद्धांत
11.3 आर्थिक लागतें
11.4 अल्पकालीन लागत वक्र
   11.4.1 कुल, स्थिर और परिवर्ती लागतें
   11.4.2 सीमांत लागत
   11.4.3 लागत सारणी
   11.4.4 कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र
   11.4.5 औसत कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र तथा सीमांत लागत वक्र
   11.4.6 औसत परिवर्ती लागत वक्र की आकृति
   11.4.7 अल्पकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?
11.5 दीर्घकालीन लागत वक्र
   11.5.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र
   11.5.2 दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र
   11.5.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?
11.6 अन्य लागतें
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.10 स्वपरख प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- लागत को निर्धारित करने वाले कारकों को पहचान सकें
- विभिन्न प्रकार की लागतों में भेद कर सकें
- अल्पकालीन लागत वक्रों की आकृति को अनुरेखित कर सकें
- सीमांत लागत समझ सकें
- स्थिर और परिवर्ती लागतों में भेद कर सकें
- लागत सारणी बना सकें
- विभिन्न संबंधित लागत वक्र खींच सकें
- यह समझ सकें कि औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों होता है
- अल्पकालीन लागत और दीर्घकालीन लागत में संबंध का पता लगा सकें।

11.1 प्रस्तावना

9 व 10 इकाइयों में आपने उत्पादन के साधनों और उत्पादन में संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त की। उत्पादन करने के लिए साधन किसी कीमत पर ही उपलब्ध होते हैं। अतः एक समय के दौरान केवल लागत लगाकर ही उत्पादन सम्भव है। उत्पादक इस लागत को न्यूनतम करना चाहेगा। इस इकाई में आप लागत के निर्धारकों (determinants) का अध्ययन करेंगे। लेखा लागतों, आर्थिक लागतों, अवसर लागत, निजी लागत, सामाजिक लागत और वास्तविक लागत की अवधारणाओं को समझाया जाएगा। अल्पकालीन औसत लागत, अल्पकालीन सीमांत लागत, स्थिर व परिवर्ती लागतों और दीर्घकालीन लागतों के बारे में भी जानकारी दी जाएगी। उत्पादन के स्तर में परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न कीमतें किस प्रकार बदलती हैं ? इस प्रश्न का उत्तर भी इस इकाई का एक हिस्सा है।

11.2 लागतों का सिद्धांत

एक उत्पादन करने वाली फर्म का लागतों का सिद्धांत कुल लागत का उत्पादन के स्तर से संबंध बतलाता है। हम उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत दिखाते हुए एक तालिका बना सकते हैं। यह तालिका लागत सारणी कहलाती है। इसी प्रकार लागतों को एक गणितीय रूप में व्यक्त किया जा सकता है, जिसे लागत फलन कहते हैं । और अन्त में, उत्पादन और कुल लागत के संबंध को एक वक्र के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जिसे कुल लागत वक्र कहते है। एक फर्म की उत्पादन लागत निम्नलिखित कारकों से निर्धारित होती है :

1 **उत्पादन की भौतिक स्थिति :** एक फर्म का उत्पादन, उत्पादन के साधनों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिनके उत्पादन के एक विशेष स्तर के लिये आवश्यकता होती है। यह सूचना हमें उत्पादन फलन से मिलती है जिसकी जानकारी आपको 8 और 9 इकाइयों में पहले ही दी जा चुकी है।

2 **उत्पादन के साधनों की कीमतें :** इसमें कोई शक नहीं कि उत्पादन के एक स्तर को प्राप्त करने के लिये आवश्यक, भौतिक साधन की जानकारी उत्पादन फलन की प्रकृति से मिलती है। लेकिन ये साधन एक फर्म को एक खास कीमत पर उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिये, श्रम एक खास मजदूरी पर उपलब्ध होता है, पूंजी एक खास ब्याज पर और भूमि एक खास लगान पर। इसी प्रकार उद्यमी लाभ के लिये काम करता है। मज़दूरी, ब्याज, लगान और लाभ के निर्धारण पर इकाई 18 और 19 में विचार किया जाएगा। उत्पादन के लिये प्रयोग की गई एक साधन की भौतिक इकाइयों को उसकी कीमत से गुणा करने पर उस साधन की कुल लागत पता लग जाती है। सभी साधनों की लागतों का योग कुल उत्पादन लागत कहलाता है।

3 **साधनों का कुशलतम उपयोग :** उत्पादन के किसी स्तर को प्राप्त करने के लिये न्यूनतम लागत संयोग की प्रक्रिया के बारे में आपको इकाई 9 में बताया गया था। सम लागत रेखा की समउत्पाद रेखा से स्पर्शिता हमें साधनों के न्यूनतम लागत संयोग देती है। यह भी स्पष्ट किया गया था कि स्पर्शिता का अर्थ है तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का साधनों की कीमतों के अनुपात के बराबर होना। इस प्रकार, यदि फर्म का उद्देश्य लागतों को कम करना है तो हमें उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत पता लग सकती है। यह मान्यता है कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर के लिये फर्म साधनों का न्यूनतम लागत संयोग चुनती है। दूसरे शब्दों में फर्म साधनों का वह संयोग चुनती है जो एक दिये हुए उत्पादन स्तर के अनुरूप विस्तार पथ पर होता है।

11.3 आर्थिक लागतें (Economic Costs)

आर्थिक सिद्धांत में आर्थिक लागत की अवधारणा का प्रयोग होता है। इसमें स्पष्ट और अस्पष्ट लागतें शामिल होती हैं। स्पष्ट लागत में विभिन्न उत्पादक साधनों जैसे भूमि, श्रम, भूमि और कच्चे माल के सप्लायरों को उद्यमी द्वारा किये गये भुगतान और खर्चे आते हैं। इस प्रकार, फर्म द्वारा किराये पर लिया गया इमारत का किराया, काम पर लगाये गये श्रमिकों की मज़दूरी, व्यापार करने के लिये उधार ली गई पूँजी पर ब्याज और कच्चे माल के लिये दी गई कीमत और काम में लाए गए ईंधन एवं शक्ति इत्यादि, ये सब मिलकर ही स्पष्ट लागत कहलाते हैं।

अस्पष्ट लागतों में ये आते हैं : (क) उद्यमी द्वारा अपने व्यापार में लगाई गई अपनी ही पूँजी पर सामान्य प्रतिफल जो वह अर्जित कर सकता था यदि वह इस पूँजी को अपने व्यापार की बजाय कहीं और लगाता। मान लीजिये एक उत्पादक व्यापार शुरु करने के लिए अपने व्यक्तिगत साधनों में से 10,000 रु॰ का निवेश करता है । यदि वह यह पूंजी कहीं और लगाता तो मान लीजिए वह प्रति वर्ष 1,000 रु॰ प्रतिफल के रूप में प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार 1,000 रु॰ अस्पष्ट लागत का एक हिस्सा है। और (ख) मज़दूरी और वेतन जो उद्यमी अर्जित कर सकता था यदि वह अपनी सेवाओं को किसी और को बेचता। फिर मान लीजिए उद्यमी स्वयं का व्यापार शुरु करने की बजाय किसी अन्य फर्म में मैनेजर की हैसियत से 2,000 रु॰ प्रति माह के वेतन पर काम करने का निर्णय लेता है, तो 2,000 रु॰ भी अस्पष्ट लागत का हिस्सा है। किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन में लगी स्पष्ट लागत वह राशि है जो कि उद्यमी अपनी पूँजी और समय सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में लगाकर अर्जित कर सकता था। यदि अस्पष्ट लागत दी हुई हो तो आर्थिक लागत = स्पष्ट लागत + अस्पष्ट लागत।

एक अर्थशास्त्री जब भी लागतों का ज़िक्र करता है तो उसके मन में आर्थिक लागतों की अवधारणा होती है। इसके अनुसार आर्थिक लाभ = कुल आगम (कीमत × बेची गई मात्रा) – कुल आर्थिक लागत। यदि कुल आगम कुल आर्थिक लागत के बराबर भी हो तब भी फर्म को कुछ लाभ प्राप्त होते हैं (जिन्हें सामान्य लाभ कहते हैं और जो

अस्पष्ट लागतों के बराबर होते हैं), यद्यपि आर्थिक लाभ शून्य के बराबर हैं। इकाई 13 में आप इसके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न क

1. आर्थिक लागतें क्या है ?

....

....

....

2. स्पष्ट और अस्पष्ट लागतों में भेद कीजिये।

....

....

....

3. रिक्त स्थान भरिए :

i) एक अर्थशास्त्री के लिये लागतों का अर्थ है ....।

ii) जब कुल आगम, कुल आर्थिक लागतों के बराबर होता है तो आर्थिक लाभ ....होते हैं।

iii) आर्थिक लागतें = ... + ...।

iv) एक फर्म द्वारा श्रमिकों को दी गई मज़दूरी ....लागत है।

v) यदि एक उद्यमी अपना व्यापार करने की बजाय किसी अन्य फर्म में काम करता है और 2,000 रु॰ प्रति माह वेतन पाता है तो 2,000 रु॰ .... है।

11.4 अल्पकालीन लागत वक्र (Short-run Cost Curves)

विश्लेषणात्मक दृष्टि से अल्प काल को एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें उत्पादन का स्तर परिवर्तित होने पर भी कुछ साधनों की मात्रा में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ये साधन, जिन्हें परिवर्तित नहीं किया जा सकता, स्थिर साधन कहलाते हैं। ऐसे साधन भी होते हैं जो अधिक उत्पादन के लिए बढ़ाये जाते हैं और कम उत्पादन के लिये घटाये जाते हैं। वे साधन जिनकी मात्रा अल्पकाल में परिवर्तित की जा सकती है, परिवर्ती साधन कहलाते हैं। अल्प काल को एक पंचाग अवधि (Calendar Period) नहीं समझना चाहिए। अल्प काल की मुख्य विशेषता यह है कि कुछ साधन स्थिर होते हैं और अन्य साधन परिवर्ती होते हैं।

11.4.1 कुल स्थिर और परिवर्ती लागतें

स्थिर लागतें (fixed costs) वे लागतें होती हैं जिनमें उत्पादन में परिवर्तन के साथ परिवर्तन नहीं होता। यह भी कहा जा सकता है कि स्थिर लागतें स्थिर साधनों को काम पर लगाने की लागते हैं। स्थिर साधनों में अल्पकाल में कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः इन साधनों पर लगी लागतों में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। स्थिर साधनों को काम पर लगाने की कुल लागत को कुल स्थिर लागत कहते हैं। स्थिर लागत में (i) प्रशासनिक कर्मचारियों का वेतन (ii) इमारत का किराया (iii) और पूँजी पर ब्याज शामिल किये जाते हैं।

परिवर्ती लागतें (variable costs) वे सब लागते हैं जिनका उत्पादन के स्तर के साथ सीधा संबंध है, जो उत्पादन बढ़ने पर बढ़ती हैं और उत्पादन घटने पर घटती हैं। दूसरे शब्दों में परिवर्ती लागतें परिवर्ती साधनों पर लगी लागतें हैं। परिवर्ती साधनों पर लगी कुल लागत को कुल परिवर्ती लागत कहते हैं। परिवर्ती लागतों को प्रत्यक्ष लागतें या मूल लागतें भी कहते हैं। परिवर्ती लागतों के अंतर्गत (i) कच्चे माल की लागत (ii) मशीन व संयंत्र चलाने की लागत जैसे कि ईंधन, नित्यक्रम अनुरक्षण (iii) अप्रशिक्षित और अर्धप्रशिक्षित श्रम की लागत आदि आते है। **उत्पादन के किसी स्तर को उत्पादित करने की कुल लागत, कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्ती लागत का योग है।** परिभाषा के अनुसार स्थिर लागत स्थिर रहती है; अतः कुल लागतों में परिवर्तन केवल कुल परिवर्ती लागतों में परिवर्तन के कारण हो सकता है।

कुल लागत को कुल उत्पादन से भाग देने पर औसत लागत, जिसे औसत कुल लागत (average total cost) भी कहते हैं, आ जाती है। कुल स्थिर लागत को उत्पादित इकाइयों से भाग देने पर औसत स्थिर लागत आ

जाती है। कुल परिवर्ती लागत को उत्पादित इकाइयों से भाग देने पर औसत परिवर्ती लागत आ जाती है। औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत को जोड़ने से भी औसत कुल लागत निकाली जा सकती है।

विभिन्न लागतों के संबंध का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है :

कुल लागत = कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्ती लागत

$$\text{औसत कुल लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

$$\text{औसत स्थिर लागत} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्ती लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

औसत कुल लागत = औसत स्थिर लागत + औसत परिवर्ती लागत

11.4.2 सीमांत लागत

सीमांत लागत (marginal cost) लागत की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। कुल उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि करने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे सीमांत लागत कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए एक वस्तु की 10 इकाइयाँ उत्पादित करने की कुल लागत 1,000 रु· है और उसी वस्तु की 11 इकाइयाँ उत्पादित करने की कुल लागत 1,100 रु· है, तो ग्यारहवीं इकाई उत्पादित करने की सीमांत लागत 100 रु· (1,100 – 1,000) होगी। दूसरे शब्दों में, सीमांत लागत (x+1) वीं इकाई की = कुल लागत (x+1) इकाइयों की – कुल लागत (x इकाई की), (यहाँ x का अर्थ है उत्पादन की इकाइयाँ)।

क्योंकि अल्पकाल में केवल परिवर्ती लागतें बदलती हैं, अतः सीमांत लागत (x+1) वीं इकाई की = कुल परिवर्ती लागत (x-1 इकाइयों की) - कुल परिवर्ती लागत ((x) इकाइयों की)

यदि किसी वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन ठीक एक इकाई का नहीं होता तो

$$\text{सीमांत लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्ती लागत में परिवर्तन}}{\text{कुल उत्पादन में परिवर्तन}}$$

11.4.3 लागत सारणी

विभिन्न उत्पादन के स्तर पर ऊपर बताई गई विभिन्न लागतों को तालिका 11.1 में दिखाया गया है। इसमें आंकड़े काल्पनिक हैं।

तालिका 11.1

उत्पादन की मात्रा (इकाइयों में) (1)	कुल स्थिर लागत (रु·) (2)	कुल परिवर्ती लागत (रु·) (3)	कुल लागत (रु·) (4)	औसत स्थिर लागत (रु·) (5)	औसत परिवर्ती लागत (रु.) (6)	औसत कुल लागत (रु·) (7)	सीमान्त लागत (रु·) (8)
0	400	–	400	–	–	–	–
1	400	40	440	400	40	440	40
2	400	64	464	200	32	232	24
3	400	84	484	133.33	28	161.33	20
4	400	104	504	100	26	126	20
5	400	120	520	80	24	104	16
6	400	144	544	66.67	24	90.67	24
7	400	182	582	57.14	26	83.14	38

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
8	400	224	624	50	28	78	42
9	400	288	688	44.44	32	76.44	64
10	400	360	760	40	36	76	72
11	400	436	836	36.36	39.64	76	76
12	400	521.60	921.60	33.33	43.48	76.81	85.60
13	400	640	1040	30.76	49.24	80	118.40
14	400	792.80	1192.80	28.56	56.64	85.20	152.80
15	400	998	1398	26.68	66.52	93.20	205.20
16	400	1296	1696	25	81	106	298
17	400	1674	2074	23.52	98.48	122	378
18	400	2156	2556	22.24	119.76	142	482
19	400	2792	3192	21.04	146.96	168	636
20	400	3600	4000	20	180	200	808

तालिका 11.1 में परिकलन निम्नलिखित तरीके से किये गये हैं :

1 कॉलम 2 में दिखाई गई कुल स्थिर लागत 400 रु॰ ली गई है और उत्पादन का स्तर कितना भी हो ये 400 रु॰ ही रहती है।

2 कॉलम 3 में दी गई कुल परिवर्ती लागत उत्पादन वृद्धि के साथ बढ़ रही है।

3 कॉलम 4 में दिखाई गई कुल लागत उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कॉलम 2 और 3 (यानि कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्ती लागत) का योग है। उदाहरण के लिये जब उत्पादन 2 इकाई है तो कुल स्थिर लागत 400 रु॰ है और कुल परिवर्ती लागत 64 रु॰, अतः कुल लागत 464 रु॰ (400 रु॰ + 64 रु॰) है।

4 कॉलम 5 में दी गई कुल स्थिर लागत कॉलम 2 में दी गई कुल स्थिर लागत को कॉलम 1 में दिये गये उत्पादन से भाग देने पर आई है। उदाहरण के लिए उत्पादन की 3 इकाई पर औसत स्थिर लागत $= \frac{400}{3}$ रु॰ = 133·33 रु॰ है।

5 कॉलम 6 में दी गई औसत परिवर्ती लागत कॉलम 3 की कुल परिवर्तन लागत का कॉलम 1 में दिये गए उत्पादन से भाग देने पर आई है। उदाहरण के लिए, जब उत्पादन 4 इकाई है तो कुल परिवर्ती लागत 104 रु॰ है, अतः औसत परिवर्ती लागत $= \frac{104}{4} = 26$ रु. है।

6 कॉलम 7 में दी गई औसत कुल लागत निकालने के लिए कॉलम 4 में दी गई कुल लागत को कॉलम 1 में दिये उत्पादन से भाग दिया गया है। उदाहरण के लिए जब उत्पादन 5 इकाइयाँ है तो कुल लागत 520 रु॰ है, अतः औसत कुल लागत $= \frac{520}{5}$ रु॰ = 104 रु॰ है। औसत कुल लागत कॉलम 5 की औसत स्थिर लागत और कॉलम 6 की औसत परिवर्ती लागत को जोड़कर भी निकाली जा सकती है। जब उत्पादन 5 इकाई है तो औसत स्थिर लागत 80 रु॰ है और औसत परिवर्ती लागत = 24 रु॰ है, अतः औसत कुल लागत = 80 + 24 रु॰ = 104 रु॰ है।

7 कॉलम 8 में दी गई सीमांत लागत दिये हुए उत्पादन की कुल लागत को उस उत्पादन में एक इकाई बढ़ाने पर जो कुल लागत है उसमें से घटाने पर आ जाती है। उदाहरण के लिए कॉलम 4 में दी गई उत्पादन की 4 इकाइयों की कुल लागत 504 रु॰ है और 5 इकाइयों (4+1 = 5) की कुल लागत 520 रु॰ है, अतः 5वीं इकाई की सीमांत लागत = 520 रु॰ – 504 रु॰ = 16रु॰ है।

सीमांत लागत कुल परिवर्ती लागत के आंकड़ों से भी निकाली जा सकती है। उत्पादन की 5 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 120 रु॰ है और 4 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 104 रु॰ है, अतः पांचवी इकाई की सीमांत लागत = 120 रु॰ – 104 रु॰ = 16 रु॰ है।

11.4.4 कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र

तालिका 11.1 में दी गई सूचना को दो हिस्सों में चित्रित किया जाएगा। इस भाग में कॉलम 1, 2, 3 और 4 में दिये गये आँकड़ों को कुल स्थिर लागत वक्र (TFCC), कुल परिवर्ती लागत वक्र (TVCC) और कुल लागत वक्र (TCC) की सहायता से चित्रित किया जाएगा जैसा कि चित्र 11.1 में दिखाया गया है।

चित्र 11.1

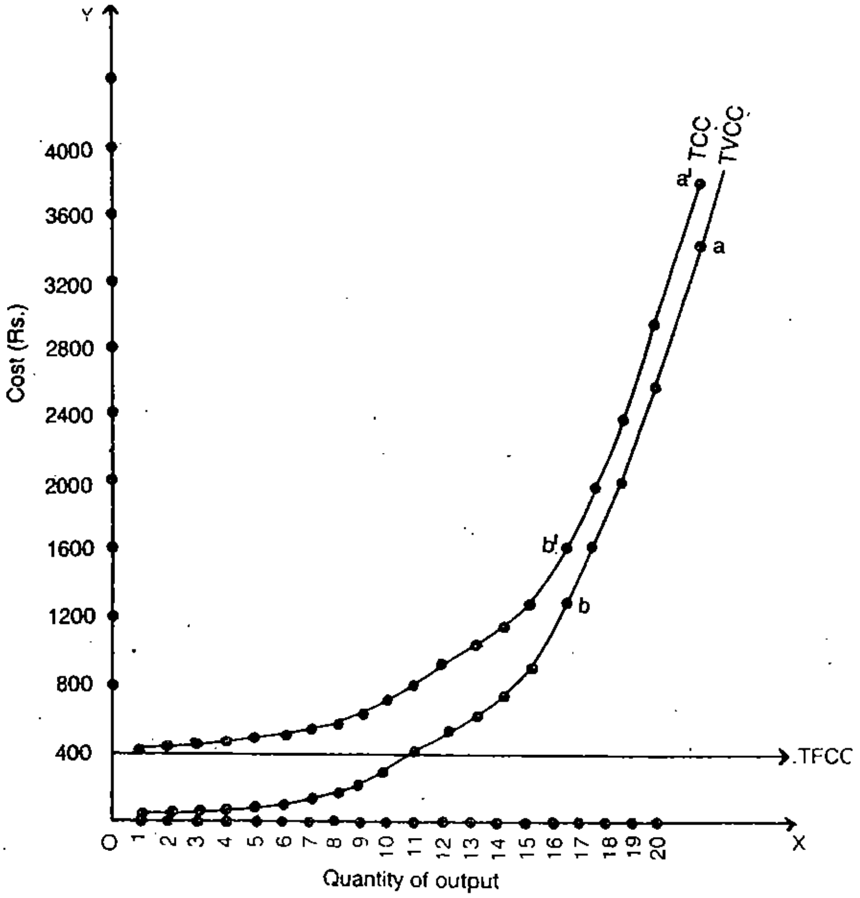

x-अक्ष पर उत्पादन की मात्रा मापी गई है और y-अक्ष पर लागत (रु. में) मापी गई है। उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कुल स्थिर लागत 400 रु. रहती है। तदनुसार TFCC x-अक्ष के समानान्तर है। जब उत्पादन शून्य है तब भी कुल स्थिर लागत 400 रु. है और यह शुरू से अंत तक इतनी ही रहती है। उत्पादन की मात्रा बढ़ने पर कुल परिवर्ती लागत बढ़ती है। अतः उत्पादन की प्रत्येक मात्रा के अनुरूप कुल परिवर्ती लागत y-अक्ष पर मापी जाती है। उत्पादन के प्रत्येक स्तर की कुल परिवर्ती लागत ग्राफ़ पर एक बिंदु द्वारा दर्शायी जाती है। उदाहरण के लिए TVCC पर बिंदु a उत्पादन की 20 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 3,600 रु. दिखाता है। इसी प्रकार TVCC पर बिंदु b उत्पादन की 16 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 1,296 रु. दर्शाता है। उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत (कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्ती लागत) को दर्शाने वाले बिंदुओं को मिलाने से कुल लागत वक्र (TCC) बन जाता है। उदाहरण के लिये उत्पादन की 20 इकाइयों की कुल लागत 4,000 रु. है और यह बिंदु a' द्वारा दर्शायी गई है। उत्पादन के इस स्तर पर कुल परिवर्ती लागत 3,600 रु. है और कुल स्थिर लागत 400 रु. है और इन दोनों का योग यानि कुल लागत (3,600 + 400) 4,000रु. है। इसके अतिरिक्त, यदि उत्पादन 16 इकाइयाँ हैं, तो इसकी कुल परिवर्ती लागत 1,296 रु. है और कुल स्थिर लागत 400 रु. है और इस प्रकार लागत 1,696 रु. है जो बिंदु a' b' द्वारा दर्शायी गई है। a' और b' जैसे सभी बिंदुओं को मिलाने से TCC बन जाती है। TCC पर भी TVCC की तरह 20 बिंदु हैं।

11.4.5 औसत कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र तथा सीमांत लागत वक्र

तालिका 11.1 में कॉलम 5, 6, 7 और 8 में दिए गए आँकड़े को ग्राफ पर क्रमशः औसत कुल लागत वक्र, औसत स्थिर लागत वक्र, औसत परिवर्ती लागत वक्र और सीमांत लागत वक्र खींच कर चित्रित किया जा सकता है। ये वक्र चित्र 11.2 में दिखायी गई हैं।

चित्र 11.1में TFCC एक समस्तर रेखा है (यानि ऐसी रेखा जो OX अक्ष के समानांतर है) क्योंकि उत्पादन के सभी स्तरों पर कुल स्थिर लागत स्थिर रहती है। TVCC यह दर्शाती है कि कुल परिवर्ती लागत उत्पादन में वृद्धि के साथ पहले घटती हुई दर पर बढ़ती है और फिर बढ़ती हुई दर पर बढ़ती है। कुल परिवर्ती लागत में वृद्धि की दर TVCC के ढलान से पता लग जाती है। AVCC में इस प्रकार के परिवर्तनों के कारणों का विश्लेषण भाग 11.4.6 में किया जाएगा। TCC और TVCC में शीर्ष (vertical) फ़ासला उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल स्थिर लागत दर्शाता है। TCC और TVCC में शीर्ष फ़ासला एक जैसा रहता है क्योंकि अल्प काल में कुल स्थिर लागत स्थिर रहती है चाहे उत्पादन का स्तर कितना भी हो।

चित्र 11.2

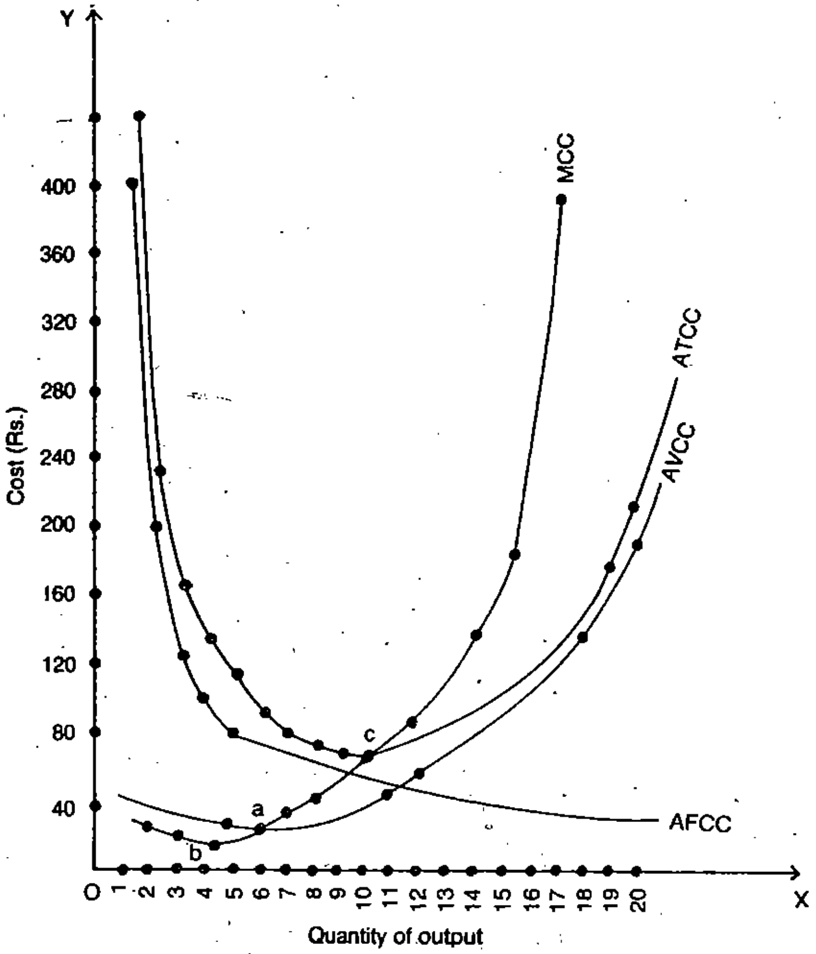

चित्र 11.2 में औसत स्थिर लागत को AFCC की सहायता से दिखाया गया है। औसत स्थिर लागत लगातार गिरती हुई दिखायी गई है जो यह सूचित करती है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है औसत स्थिर लागत घटती है, हालाँकि कुल स्थिर लागत स्थिर है, क्योंकि

$$\text{औसत स्थिर लागत} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

औसत परिवर्ती लागत पहले घटती है, बिंदु a पर न्यूनतम होती है और इसके बाद बढ़ती है। जब औसत परिवर्ती लागत बिंदु a पर न्यूनतम होती है तो सीमांत लागत औसत परिवर्ती लागत के बराबर होती है। औसत कुल लागत पहले गिरती है, बिंदु c पर न्यूनतम होती है और उसके बाद बढ़ती है। जब औसत कुल लागत न्यूनतम होती है जो कि बिंदु c पर है तो सीमांत लागत, औसत कुल लागत के बराबर होती है। इसके अतिरिक्त, सीमांत लागत पहले गिरती है, बिंदु b पर न्यूनतम होती है और उसके बाद बढ़ती है। इस प्रकार सीमांत लागत औसत परिवर्ती लागत और औसत कुल लागत दोनों के बराबर होती है जब ये दोनों अपने न्यूनतम स्तर पर होती हैं।

चित्र 11.2 में यह ध्यान रखने योग्य है कि

(1) AVCC और ATCC दोनों के गिरते हुए भाग में सीमांत लागत वक्र (MCC) इन दोनों के नीचे रहता है । इन दोनों वक्रों के ऊपर जाते हुए भाग में MCC इन दोनों के ऊपर रहता है। (2) जैसे-जैसे AFCC क्षैतिज अक्ष (x-अक्ष) के पास आता जाता है, AVCC, ATCC के नज़दीक आता जाता है। उत्पादन के एक दिये हुए स्तर पर ATCC और AVCC के बीच का फासला औसत स्थिर लागत को दर्शाता है और क्योंकि उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ औसत स्थिर लागत घटती जाती है, ATCC और AVCC के बीच का फासला घटता जाता है। इस प्रकार यदि ATCC और AVCC दिए हुए हों तो AFCC की आकृति हमेशा पता लग सकती है। (3) उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत के योग को जो बिंदु दर्शाते हैं उन्हें मिलाने से ATCC बन जाता है। (4) ATCC U आकृति का होती है जो यह सूचित करता है कि अल्पकाल में जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है, औसत लागत बिंदु c तक घटता जाता है और उसके बाद बढ़ने लगता है। (5) उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ AVCC और MCC में गिरने की प्रवृत्ति दिखाई देती है और अंत में ये उठने लगती है। AVCC की तुलना में MCC के न्यूनतम बिंदु पर उत्पादन का स्तर कम होता है। उदाहरण के लिए सीमांत लागत (MC) उत्पादन की 5 इकाइयों पर न्यूनतम है और औसत परिवर्ती लागत उत्पादन की 6 इकाइयों पर न्यूनतम है। दूसरी ओर, औसत लागत उत्पादन की 11 इकाइयों पर न्यूनतम है।

11.4.6 औसत परिवर्ती लागत वक्र (AVCC) की आकृति

यह विश्लेषण करना कि औसत परिवर्ती लागत पहले घटती क्यों है और अंत में बढ़ने क्यों लगती है, बहुत महत्वपूर्ण है। परिवर्ती अनुपातों के नियम (जिस पर इकाई 9 में विचार किया गया था) का लागू होना औसत परिवर्ती लागत में इस प्रकार के परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। यही बात एक आसान तरीके से समीकरणों के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है।

$$\text{औसत परिचर्ती लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्ती लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

$$AVC = \frac{TVC}{Q} \qquad \text{(i)}$$

कुल परिवर्ती लागत = परिवर्ती साधन की कीमत × परिवर्ती साधन की मात्रा

अतः समीकरण (i) को निम्नलिखित समीकरण का रूप दिया जा सकता है।

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \frac{\text{परिवर्ती साधन की कीमत} \times \text{परिवर्ती साधन की मात्रा}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

अथवा

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \text{परिवर्ती साधन की कीमत} \left(\frac{\text{परिवर्ती साधन की मात्रा}}{\text{कुल उत्पादन}}\right)$$

$$AVC = P\left(\frac{V}{Q}\right) \qquad \text{(ii)}$$

अगर कुल उत्पादन की मात्रा को परिवर्ती साधन की मात्रा से भाग दें तो परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद मालूम हो जायेगा, अतः

$$\frac{\text{परिवर्ती साधन की मात्रा}}{\text{कुल उत्पादन}} = \frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}$$

इस समीकरण के आधार पर समीकरण (ii) को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है :

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \text{परिवर्ती साधन की कीमत} \left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}\right)$$

$$AVC = P\,\frac{(1)}{AP_V} \qquad \text{(iii)}$$

परिवर्ती अनुपातों का नियम हमें यह बताता है कि जैसे-जैसे परिवर्ती साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है, शुरू में परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद बढ़ता है और उत्पाद की दी हुई कीमत पर परिवर्ती साधन की कीमत $\left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}\right)$ घटने लगता है। एक स्तर के बाद परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद घटने लगता है, जिससे परिवर्ती साधन की कीमत $\left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}\right)$ बढ़ता है। अतः औसत परिवर्ती लागत पहले घटती है, न्यूनतम हो जाती है और अंत में बढ़ती है जिससे U आकृति का वक्र बन जाता है।

11.4.7 अल्पकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?

औसत लागत वक्र सामान्यतः U आकृति का होता है। इसका कारण यह ही है कि औसत लागत वक्र, औसत स्थिर लागत वक्र व औसत परिवर्ती लागत वक्र इन दोनों से ही बना है। उत्पादन बढ़ने के साथ औसत लागत लगातार घटती है और औसत परिवर्ती लागत पहले घटती है, न्यूनतम हो जाती है और फिर बढ़ती है। शुरू में जब औसत परिवर्ती लागत घटती है, (औसत स्थिर लागत तो घटती ही है) तो इस कारण औरत कुल लागत घटती है। अतः शुरू में ATCC नीचे की ओर ढालू होता है, जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है। फिर औसत परिवर्ती लागत बढ़ने लगती है। लेकिन औसत स्थिर लागत का घटना जारी रहता है और जब तक औसत परिवर्ती लागत में वृद्धि औसत स्थिर लागत में कमी से कम है, औसत कुल लागत का घटना जारी रहेगा। अंत में, जब औसत परिवर्ती लागत में वृद्धि औसत स्थिर लागत में कमी से अधिक हो जाती है तो औसत कुल लागत बढ़ने लग जाती है और इस प्रकार ATCC U-आकृति का बन जाता है। MCC (सीमांत लागत वक्र) भी U आकृति का होता है। इसका कारण यह है कि परिवर्ती अनुपातों के नियम के अनुसार एक परिवर्ती साधन का सीमांत उत्पाद सामान्यतः पहले बढ़ता है, अधिकतम हो जाता है और अंत में घटता है।

हमें यह पता है कि :

$$\text{सीमांत लागत} = \text{परिवर्ती साधन की कीमत} \times \left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का सीमांत उत्पाद}}\right)$$

अतः सीमांत लागत, जो कि उत्पादन को एक इकाई बढ़ाने पर कुल लागत या कुल परिवर्ती लागत में वृद्धि है, पहले घटती है, न्यूनतम हो जाती है और इसके बाद बढ़ती है। इस प्रकार सीमांत लागत वक्र (MCC) भी U आकृति का होता है।

बोध प्रश्न ख

1 औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत में भेद कीजिए।

....

....

2 निम्नलिखित तालिका को पूरा कीजिए :

उत्पादन की इकाइयाँ	कुल स्थिर लागत रु.	कुल परिवर्ती लागत रु.	कुल लागत रु.	सीमांत लागत रु.
0	100	-	-	-
1	-	-	-	40
2	-	-	-	30
3	-	-	-	50
4	-	-	-	60
5	-	-	-	70

3 **बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :**

i) जब सीमांत लागत न्यूनतम होती है तो औसत परिवर्ती लागत सीमांत लागत के बराबर होती है। ....

ii) जब सीमांत लागत शुरू में घटने लगती है तो औसत परिवर्ती लागत बढ़ने लगती है। ....

iii) जब औसत उत्पाद बढ़ रहा है तो औसत परिवर्ती लागत घट रही है। ....

iv) उत्पादन के बढ़ने पर भी औसत स्थिर लागत उतनी ही रहती है। ....

v) जब सीमांत लागत बढ़ती है तो औसत स्थिर लागत घटती है। ....

vi) जैसे-जैसे औसत परिवर्ती लागत घटती है, औसत कुल लागत भी कम होती है। ....

vii) जब औसत कुल लागत घट रही है तो सीमांत लागत नहीं बढ़ सकती। ....

viii) उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत कुल लागत वक्र (ATCC) और औसत परिवर्ती लागत वक्र (AVCC) के बीच का फासला केवल दीर्घ काल में घटता है। ....

ix) औसत कुल लागत = औसत स्थिर लागत + औसत परिवर्ती लागत। अतः सीमांत लागत = सीमांत स्थिर लागत + सीमांत परिवर्ती लागत। ....

x) जब कुल लागत अधिकतम होती है तो सीमांत लागत शून्य होती है। ....

4 औसत कुल लागत वक्र (ATCC) के U-आकृति का होने का क्या आधार है ?

....

....

....

5 सीमांत लागत और औसत लागत वक्रों के बीच क्या संबंध है ? रेखाचित्र के आधार पर संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

11.5 दीर्घकालीन लागत वक्र (Long-run Cost Curves)

दीर्घकाल एक ऐसी समयावधि है जिसमें उत्पादन के सभी साधन परिवर्ती होते हैं। दीर्घकाल भविष्य का वह समय भी है जब उद्यमी उत्पादन में परिवर्तन इस तरह से नियोजित कर सकता है जो कि उसे अधिकतम लाभदायक हो। अल्पकाल में संयंत्र स्थिर होता है और उद्यमी अधिक उत्पादन इस संयंत्र का प्रतिदिन अधिक समय प्रयोग करके ही प्राप्त कर सकता है। दीर्घकाल में वह उत्पादक क्षमता बढ़ाने की योजना भी बना सकता है। मशीन के प्रयोग के समय को अपरिवर्तित रखते हुए यह कहना ठीक होगा **कि दीर्घकाल उन सभी सम्भव अल्पकालीन स्थितियों से बना है जिनमें से उद्यमी या अन्य आर्थिक एजेंट चुनाव कर सकते हैं।** अधिकांश नियोजन सामान्यतः दीर्घकाल में किया जाता है जबकि वास्तविक प्रचलन अल्पकाल में होता है। इकाई 9 में साधनों का न्यूनतम लागत संयोग पहले ही समझाया जा चुका है। हम यह मान्यता करते हैं कि दीर्घकाल में प्रत्येक वैकल्पिक उत्पादन साधनों के न्यूनतम लागत संयोग द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। साधन कीमतों के पता होने पर, एक दिये हुए उत्पादन स्तर की कीमत निकाली जा सकती है और इस प्रकार एक दीर्घकालीन लागत वक्र खींचा जा सकता है। दीर्घकालीन कुल लागत वक्र के पता होने पर, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र खींचे जा सकते हैं।

11.5.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

दीर्घकाल में कोई भी साधन स्थिर नहीं होता और उत्पादन बढ़ाने के लिए सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। अल्पकाल में संयंत्र का आकार स्थिर होता है और इसे बढ़ाया नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में अल्प काल में यदि उत्पादन का स्तर परिवर्तित करना हो तो पूंजीगत उपकरण के आकार को नहीं बदल सकते। दीर्घकाल में उत्पादन को बढ़ाने या घटाने के लिए हमें संयंत्र के आकार को बदलने की अनुमति होती है। उत्पादन का न्यूनतम लागत संयोग पता होने पर, दीर्घकालीन लागत वक्र उत्पादन और दीर्घकालीन उत्पादन लागत के बीच फलनात्मक संबंध दर्शाता है।

$$\text{दीर्घकालीन औसत लागत} = \frac{\text{दीर्घकालीन कुल लागत}}{\text{दीर्घकालीन नियोजित उत्पादन की मात्रा}}$$

यह समझने के लिए कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र कैसे प्राप्त किया जाता है हम दो अल्पकालीन औसत लागत वक्रों पर विचार करते हैं। ये चित्र 11.3 में दिखाये गये हैं।

चित्र 11.3

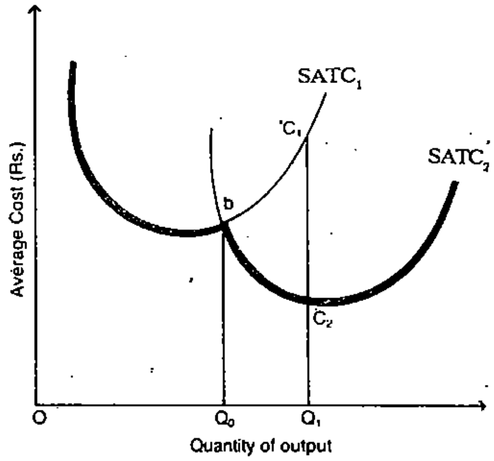

दो अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_1$ और $SATC_2$ खींचे गये हैं। इन लागत वक्रों को संयंत्र वक्र भी कहा जाता है। अल्पकाल में संयंत्र का आकार पता होने पर फर्म केवल अल्पकालीन औसत लागत वक्र पर ही क्रियाशील हो सकती है। हमने यह माना है कि तकनीकी रूप से संयंत्र के केवल ये दो आकार ही सम्भव हैं। $SATC_1$ अल्पकालीन औसत लागत वक्र है और फर्म परिवर्ती साधनों की मात्रा को बदल कर उत्पादन बढ़ा या घटा सकती है। उदाहरण के लिए अल्पकाल में OQ_1 मात्रा उत्पादित करने के लिए अल्पकालीन औसत लागत Q_1C_1 होगी जैसा कि $SATC_1$ द्वारा बताया गया है। फर्म OQ_1 उत्पादन Q_1C_1 औसत लागत पर ही कर सकती हैं, उसके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। दीर्घकाल में फर्म के पास विकल्प है, वह पहले से बड़े आकार का संयंत्र लगा सकती है, ये संयंत्र $SATC_2$ द्वारा दर्शाया गया है। फर्म उतना ही यानि OQ_1 उत्पादन Q_1C_2 औसत लागत पर उत्पादित कर सकती है जैसा कि $SATC_2$ से पता चलता है। दीर्घकाल में फर्म इस बात की जाँच करेगी कि उत्पादन के एक दिये हुए स्तर को न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित करने के लिए वह किस अल्पकालीन औसत लागत वक्र पर क्रियाशील हो। इस प्रकार अल्पकाल में OQ_1 उत्पादन के स्तर की औसत उत्पादन लागत Q_1C_1 होगी और दीर्घकाल में यह घटकर Q_1C_2 हो जाएगी। चित्र 11.3 में यह स्पष्ट है कि उत्पादन के OQ_0 स्तर तक फर्म अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_1$ पर क्रियाशील होगा, हालाँकि यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_2$ पर भी क्रियाशील हो सकता है। लेकिन उत्पादन के OQ_0 स्तर तक $SATC_1$ पर क्रियाशील होने से $SATC_2$ की तुलना में कम लागत पर उत्पादन होता है अतः उत्पादन के OQ_0 स्तर तक फर्म $SATC_1$ पर ही क्रियाशील होगी। दूसरे शब्दों में उत्पादन के OQ_0 स्तर तक छोटा संयंत्र $SATC_1$, बड़े संयंत्र $SATC_2$ की तुलना में ज्यादा किफ़ायती है। हमने केवल दो संयंत्रों वाला उदाहरण लिया है। बहुत से संयंत्रों वाली स्थिति भी आसानी से चित्रित की जा सकती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दीर्घकाल में फर्म उस संयंत्र का प्रयोग करेगी जिससे एक दिये हुए उत्पादन स्तर को उत्पादित करने की न्यूनतम संभव प्रति इकाई लागत आए। दो संयंत्रों की स्थिति, जो चित्र 11.3 में दिखाई गई है, में गहरी रेखा वाला वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है। यह दीर्घकालीन वक्र सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के कुछ खंडों से बना है।

यदि संयंत्र के आकार को अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका अर्थ है संयंत्रों की संख्या अनंत होना तो इनके अनुरूप अनंत अल्पकालीन औसत लागत वक्र होगा, तब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अविच्छिन्न होगा। इस प्रकार का अविच्छिन्न दीर्घकालीन औसत लागत वक्र चित्र 11.4 में दिखाया गया है।

चित्र 11.4

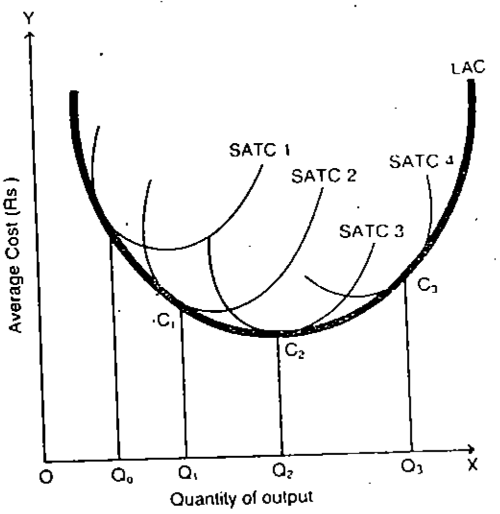

$SATC_1$, $SATC_2$, $SATC_3$ और $SATC_4$ अल्पकालीन औसत वक्र हैं और दीर्घकालीन औसत लागत वक्र गहरी रेखा द्वारा दर्शाया गया है। यदि फर्म दीर्घकाल में उत्पादन के खास स्तर उत्पादित करना चाहती है तो दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर एक बिंदु उस उत्पादन के स्तर के अनुरूप चुनेगी और फिर एक उपयुक्त संयंत्र बनाने की योजना बनाएगी जिसे अल्पकालीन औसत लागत वक्र पर क्रियाशील किया जा सके।

चित्र 11.4 में यह दिखाया गया है कि उत्पादन की OQ_0 मात्रा उत्पादित करने के लिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC पर इसके अनुरूप बिंदु Co है जिस पर LAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_1$ को स्पर्श करता है। अतः यदि फर्म OQ_0 मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाती है तो यह $SATC_1$ के अनुरूप एक संयंत्र बनाएगी और इस वक्र के Co बिंदु पर क्रियाशील होगी। यदि फर्म OQ_1 मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाती है तो यह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC पर C_1 बिंदु के अनुरूप है। $SATC_2$, LAC को C_1 बिंदु पर स्पर्श करता है। इसी प्रकार हम यह बता सकते हैं कि C_2 और C_3 बिंदुओं पर क्रमशः OQ_2 और OQ_3 मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाई गई है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर प्रत्येक बिंदु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण वक्र भी कहते हैं क्योंकि यह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के एक सेट का आवरण करता है।

यह भी स्पष्ट है कि बड़े स्तर का उत्पादन बड़े आकार के संयंत्र के द्वारा न्यूनतम कीमत पर किया जा सकता है । जबकि छोटे स्तर का उत्पादन छोटे आकार के संयंत्र से न्यूनतम कीमत पर किया जा सकता है।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के बारे में कुछ टिप्पणियाँ आसानी से की जा सकती हैं। (1) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर प्रत्येक बिंदु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है। (2) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC सभी अल्पकालीन लागत वक्रों के न्यूनतम बिंदुओं को स्पर्श नहीं करता। (3) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी U आकृति का होता है, हालाँकि यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र से अधिक चौड़ा होता है। (4) जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र गिर रहा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिंदु के बांयी ओर किसी बिंदु पर उसे स्पर्श करता है या यह कहिए कि अल्पकालीन औसत लागत वक्र के गिरते हुए भाग में किसी बिंदु पर उसे स्पर्श करता है। (5) जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ऊपर की ओर उठ रहा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिंदु के दांयी ओर

किसी बिंदु पर या उसके ऊपर की ओर जाते हुए भाग में किसी बिंदु पर उसे स्पर्श करेगा। (6) जब दीर्घकालीन लागत वक्र एक क्षैतिज सरल रेखा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिंदु पर स्पर्श करेगा।

11.5.2 दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र हमें उत्पादन के विभिन्न स्तरों को उत्पादित करने की प्रति इकाई न्यूनतम लागत बताता है। दूसरी ओर, दीर्घकालीन सीमांत लागत हमें उत्पादन के बढ़ाने पर लागत में होने वाली न्यूनतम वृद्धि की राशि बताती है या उत्पादन के घटाने पर लागत में होने वाली अधिकतम कमी की राशि बताती है। चित्र 11.5 की सहायता से अल्पकालीन सीमांत लागत और दीर्घकालीन लागत के बीच संबंध स्पष्ट किया गया है।

चित्र 11.5

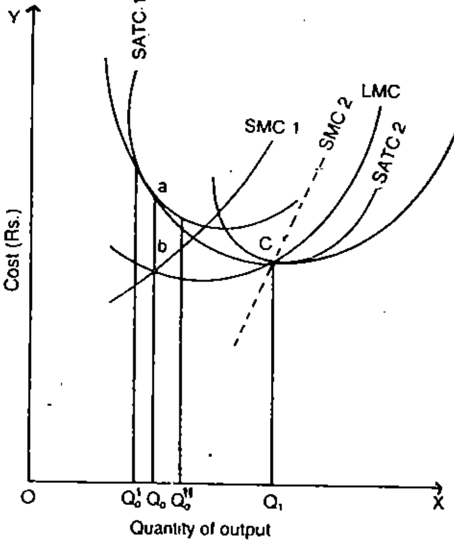

उत्पादन के OQ_0 स्तर पर SATC और LAC बराबर हैं यानि अल्पकालीन कुल आगत और दीर्घकालीन कुल लागत बराबर है। उत्पादन के OQ^1 स्तर पर $SATC_1$, LAC से अधिक है। इसलिए अल्पकालीन कुल लागत दीर्घकालीन कुल लागत से अधिक है। जैसे ही उत्पादन का स्तर OQ^1_0 से बढ़ाकर OQ_0 किया जाता है दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होगी। इसे एक उदाहरण की सहायता से दिखाया जा सकता है। मान लीजिए उत्पादन के OQ^1_0 स्तर पर दीर्घकालीन कुल लागत 500 रु· है और अल्पकालीन कुल लागत 600 रु· है। उत्पादन के OQ_0 स्तर पर ये 650 रु· है। जैसे ही उत्पादन का स्तर OQ^1_0 से बढ़ाकर OQ_0 किया गया अल्पकालीन सीमांत लागत 50 रु· है और दीर्घकालीन सीमांत लागत 150 रु· हो गई। जब उत्पादन का स्तर OQ_0 से बढ़ाकर OQ^{11}_0 किया जाता है, अल्पकालीन सीमांत लागत दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक होगी।

दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र LAC को उसके न्यूनतम बिंदु पर काटता है और इस न्यूनतम बिंदु पर दीर्घकालीन औसत लागत के समाप्त होने वाला केवल एक ही अल्पकालीन औसत लागत वक्र (चित्र 11.5 में $SATC_2$) होगा। बिंदु c पर $SATC_2$, LAC को स्पर्श करता है और यह वह बिंदु भी है जिस पर $SATC_2$ और LAC न्यूनतम हैं। इस प्रकार c बिंदु पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत के बराबर है। अतः दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र LAC के न्यूनतम बिंदु से गुज़रता है। b और c जैसे बिंदुओं को मिलाने से दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र बन जाता है। दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र भी U आकृति का होगा और यह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिंदु पर काटेगा।

11.5.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?

भाग 11.4.7 में अल्पकालीन औसत लागत वक्र के U-आकृति के होने के कारण बताए जा चुके हैं। इकाई 9 में पैमाने के वर्धमान और ह्रासमान प्रतिफलों के नियम समझाते समय पैमाने की मितव्ययता और अपमितव्ययता की अवधारणाओं के बारे में बताया था। वही कारक यानी पैमाने की मितव्ययताएँ जिनके कारण पैमाने के वर्धमान प्रतिफल होते हैं, उसी कारण से दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का ढलान उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ नीचे की ओर आता हुआ होता है। इसी प्रकार पैमाने की अपमितव्ययता जो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल को स्पष्ट करती है यह भी स्पष्ट करती है कि अंत में उत्पादन का स्तर बढ़ने के साथ-साथ दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का ढलान ऊपर की ओर जाने लगता है। यह ध्यान रखें कि हमने साधनों की कीमतों को स्थिर माना है।

बोध प्रश्न ग

1 दीर्घकालीन औसत लागत किसे कहते हैं ? यह अल्पकालीन औसत लागत से किस प्रकार भिन्न है ?

....

....

....

2 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) दीर्घकालीन कुल लागत स्थिर होती है।

ii) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का होता है।

iii) दीर्घकालीन औसत लागत अल्पकालीन औसत लागतों का योग है।

iv) उस बिंदु को ध्यान में रखते हुए जहाँ अल्पकालीन औसत लागत दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर है, उत्पादन के घटने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होती है।

v) जो कारक अल्पकालीन औसत लागत वक्र की U आकृति को स्पष्ट करते हैं वही दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की U आकृति को स्पष्ट करते हैं।

vi) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र हमेशा अल्पकालीन लागत वक्रों को उनके न्यूनतम बिंदुओं पर स्पर्श करता है।

vii) पैमाने के वर्धमान प्रतिफलों और ह्रासमान दीर्घकालीन औसत लागत में कोई संबंध नहीं होता।

viii) अल्पकालीन औसत लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र से कम चौड़ा U-आकृति का होता है।

3 वे कौन से कारक हैं जिनसे दीर्घकालीन औसत लागत ह्रासमान होती है ?

....

....

....

4 छह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों की सहायता से एक दीर्घकालीन लागत वक्र खींचिए।

....

....

....

11.6 अन्य लागतें

कुछ अन्य लागतें होती हैं जिनका प्रयोग आर्थिक सिद्धांत में सामान्यतः नहीं किया जाता।

1 **लेखाविधि लागतें** (Accounting costs) : ये वे लागतें हैं जो एक लेखाकार वस्तु या सेवा की उत्पादन लागत निकालते समय ध्यान में रखेगा। उद्यमी द्वारा विभिन्न उत्पादक साधनों जैसे भूमि, श्रम, पूंजी और कच्चा माल आदि के सप्लायरों को दिया गया भुगतान इन लागतों में शामिल होता है। इस प्रकार फर्म द्वारा किराये पर दिया गया इमारत का किराया, श्रमिकों को दी गई मज़दूरी, व्यापार करने के लिए उधार ली गई

राशि या पूँजी पर दिया गया ब्याज, ईंधन, बिजली और कच्चे माल की दी गई कीमतें, ये सब मिलकर लेखाविधि लागतें कहलाएँगी। ये वे लागते हैं जिनका भुगतान फर्म के उद्‌यमी द्वारा किया जाता है। इन लागतों को स्पष्ट लागतें भी कहते हैं।

2 **अवसर लागत** (Opportunity costs) : आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में अवसर लागत की अवधारणा का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी वस्तु जैसे गेहूँ को उत्पादित करने का अवसर लागत किसी अन्य वस्तु जैसे चावल की वह मात्रा है, जिसे, साधनों का गेहूँ के (चावल की बजाय) उत्पादन करने के लिए, प्रयोग करने पर, त्यागना पड़ेगा। एक दूसरा उदाहरण लेते हैं, वे साधन जिनका प्रयोग कूलर के लोहे के फ्रेम बनाने के लिए किया जाता है, उन्हीं से लोहे की बाल्टियाँ भी बनाई जाती हैं। इसलिए कूलर के एक लोहे के फ्रेम की अवसर लागत लोहे की बाल्टियों का त्याग किया गया वह उत्पादन है जो उन्हीं साधनों से उत्पादित किया जा सकता था जिससे कि कूलर के एक लोहे के फ्रेम का उत्पादन किया जाता है।

अवसर लागत की परिभाषा देते समय दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। (1) किसी चीज की अवसर लागत केवल त्यागा गया सर्वोत्तम विकल्प है। एक वस्तु की अवसर लागत कोई भी अन्य वैकल्पिक वस्तु नहीं है जिसका उत्पादन किया जा सकता था। ये केवल अन्य सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु है जिसका वही साधन उत्पादन कर सकते थे। और (2) एक वस्तु की अवसर लागत को उस सर्वोत्तम वैकल्पिक वस्तु के रूप में देखा जाना चाहिए जिसका उतनी ही राशि (या साधनों के उतने ही मौद्रिक मूल्य) से उत्पादन किया जा सकता था। अवसर लागत की अवधारणा को समझने के लिए उतनी ही राशि की शर्त आवश्यक होती है। यह ज़रूरी नहीं है कि एक वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक साधनों से उस वस्तु की सर्वोत्तम वैकल्पिक वस्तु का उत्पादन भी किया जा सके। उदाहरण के लिए, गेहूँ के उत्पादन के लिए भूमि, श्रम, पानी, उर्वरक, गेहूँ के बीज आदि का प्रयोग किया जाता है लेकिन चावल का उत्पादन करने के लिए बीजों को छोड़कर उन्हीं साधनों की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार एक उत्पादन करने वाली फर्म बिना संयंत्र और उपकरण या श्रम को बदले, एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का उत्पादन कर सकती है लेकिन इसके लिए उसे भिन्न प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार एक वस्तु के उत्पादन की अवसर लागत निकालने के लिए साधनों का मौद्रिक मूल्य लेना पड़ेगा। अर्थव्यवस्था के साधन सीमित होते हैं और इनसे सभी वस्तुओं का एक साथ पर्याप्त मात्रा में उत्पादन नहीं किया जा सकता। इसलिये यदि उनका प्रयोग एक वस्तु के उत्पादन के लिए किया जाता है तो उन्हें अन्य उपयोगों से हटाना पड़ेगा। इस प्रकार एक वस्तु की लागत त्यागा गया विकल्प है।

अवसर लागत की अवधारणा का आर्थिक समस्याओं के लिए विस्तृत उपयोग है। साधन कीमतों के निर्धारण में यह लागू होती है। सार्वजनिक व्यय और निजी उपयोग में इसका उपयोग किया जा सकता है। एक विद्यार्थी के लिये सिनेमा देखने की लागत एक किताब हो सकती है जिसे उसे सिनेमा देखने के लिए त्यागना पड़ेगा। समाज के लिए बंदूक बनाने की फैक्ट्री लगाने की लागत पार्क और सड़कें हो सकती हैं जिनको त्यागना पड़ेगा। अवसर लागत वस्तु की कीमत के लिये भी स्पष्टीकरण देती है। साधन सेवाएं दुर्लभ होती हैं और उनके वैकल्पिक उपयोग हो सकते हैं। इसलिये इन साधनों से जो वस्तु उत्पादित होती है उसकी कीमत होती है। अगर ये साधन प्रचुर मात्रा में होते, तो किसी विकल्प का त्याग नहीं करना पड़ता, और कोई अवसर लागत या कोई कीमत नहीं होती। किसी भी चीज की कीमत उसकी अवसर लागत के कारण होती है।

अवसर लागत की अवधारणा उन साधनों पर लागू नहीं होती जो स्थिर या विशिष्ट हैं। एक विशिष्ट या स्थिर साधन वह होता है जिसका प्रयोग एक विशिष्ट वस्तु के उत्पादन के लिये ही किया जा सकता है और इसलिये इसकी अवसर लागत शून्य होती है। यदि साधनों को वैकल्पिक व्यवसायों में जाने से रोका जाता है या वे स्वयं जाने से हिचकिचाते हैं तो उनकी कीमत अवसर लागत को प्रतिबिम्बित नहीं करती। इसी प्रकार त्यागे गये विकल्पों का बहुधा साफ तौर से पता नहीं लगता। उदाहरण के लिये मशीन का, एक बार लगाने के बाद कोई वैकल्पिक उपयोग नहीं है और कोई अवसर लागत नहीं है। ये अवसर लागत की अवधारणा की कुछ सीमाएं हैं।

3 **निजी लागत** (Private costs) : वस्तु के उत्पादन को एक व्यक्तिगत उद्‌यमी या फर्म के दृष्टिकोण से देखा जा सकता है जो कि लाभों को अधिकतम करने का प्रयत्न कर रही है या यह कह सकते हैं कि निजी लाभों को अधिकतम करने के लिये प्रयत्नशील है। निजी लाभों को मालूम करने के लिये जिन लागतों को ध्यान में रखा जाता है उन्हें निजी लागतें कहते हैं। इसमें स्पष्ट और अस्पष्ट दोनों लागतें शामिल की जाती हैं। उदाहरण के लिये, मान लीजिये एक निर्यातकर्ता 1,000 कमीजें उत्पादित करना चाहता है, इसके लिये वह जो जमीन, श्रम, पूंजी और कच्चा माल खरीदता है उस पर हुआ खर्च स्पष्ट लागत है। वह अपना समय और पैसा भी लगाता है जिसे यदि वह निर्यात व्यापार में नहीं लगाता तो कहीं और लगाता। ये लागतें अस्पष्ट लागतें हैं। यदि 1,000 कमीजें बनाने की स्पष्ट और अस्पष्ट लागतों को जोड़ लें तो

निजी लागतें आ जाएँगी। निजी लागत की अवधारणा लागत को एक विशेष उत्पादक के दृष्टिकोण से देखती है। निजी लाभ विशुद्ध आर्थिक निजी लाभ हो सकते हैं या लेखाविधि निजी लाभ। किसी वस्तु के उत्पादन से अर्जित विशुद्ध आर्थिक निजी लाभ जानने के लिये लेखाविधि निजी लाभ में से उद्यमी द्वारा वस्तु के उत्पादन के लिये लगाये गये समय और पैसे के सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग से जो अर्जित किया जा सकता था उसे घटा देते हैं। वस्तु के विक्रय से प्राप्त आगम में से स्पष्ट लागत घटाने पर लेखाविधि निजी लाभ आ जाते हैं।

4 **सामाजिक लागत** (Social costs) : निजी लागत की तुलना में सामाजिक लागत की अवधारणा अधिक विस्तृत है। सामाजिक लागत को पूरे समाज के दृष्टिकोण से देखा जा सकता है न कि वस्तु का उत्पादन करने वाले व्यक्ति की दृष्टि से। सामाजिक लागत, सामाजिक लाभ प्राप्त करने के लिये, मालूम की जाती है। किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन से समाज के अन्य सदस्यों को कुछ लाभ या हानि होती है। ये लाभ मुफ्त में उपलब्ध होते हैं और इसलिये जिन्हें भी ये प्राप्त होते हैं उन्हें उत्पादक को कुछ नहीं देना पड़ता। उदाहरण के लिये, कच्चे माल और तैयार माल के लाने ले जाने को सुविधाजनक बनाने के लिये एक उत्पादक एक सड़क बना सकता है जिसे वह मुख्य मार्ग से जोड़ दे। यह सड़क अन्य लोगों द्वारा भी उपयोग में लाई जा सकती है और इसके लिये वे उत्पादक को कोई मुआवजा नहीं देंगे। इसी प्रकार एक वस्तु के उत्पादन से दूसरों को असुविधा हो सकती है और उत्पादक इस असुविधा के लिये उन्हें कोई मुआवज़ा नहीं देगा। एक ऐसी फर्म जिसके उत्पादन करने से धुंआ होता है, इस असुविधा का एक उदाहरण है, क्योंकि धुएँ से लोगों के कपड़े गंदे होते हैं और स्वास्थ्य खराब होता है। अतः उन्हें कपड़ों की धुलाई और दवाइयों आदि पर अधिक व्यय करना पड़ता है लेकिन ये फर्म उन्हें इसके लिये कोई पैसा नहीं देती।

पहली स्थिति में जब कुछ व्यक्तियों को लाभ मिलता है और उसके लिये उन्हें कुछ देना नहीं पड़ता तो निजी लागत सामाजिक लागत से अधिक होती है। इसके विपरीत दूसरी स्थिति में जब वस्तु के उत्पादन से अन्यों को असुविधा होती है और इसके लिये उन्हें कुछ नहीं दिया जाता तो निजी लागत सामाजिक लागत से कम होती है। सामाजिक लागत और निजी लागत में अंतर बाध्यताओं (externalities) (लाभ या हानि जिसके लिये कुछ देना नहीं पड़ता या कुछ प्राप्त नहीं होता) के कारण उत्पन्न होता है।

सामाजिक लागत वह लागत है जो समाज को उठानी पड़ती है जब इसके साधन एक दी हुई वस्तु के उत्पादन के लिये प्रयोग किये जाते हैं। सामाजिक लागत की अवधारणा का अवसर लागत से निकट संबंध है। यदि यह मान लें कि दिये हुए साधन वस्तु 1 और 2 दोनों के उत्पादन के लिये प्रयोग किये जा सकते हैं, तो इन साधनों से वस्तु 1 की एक इकाई उत्पादित करने की सामाजिक लागत वस्तु 2 की वे इकाइयाँ हैं जिनका उत्पादन त्यागना पड़ेगा। बंदूकों के उत्पादन की सामाजिक लागत उनके उत्पादन के लिये खरीदे गए साधनों और कच्चे माल पर किया गया खर्च नहीं है। जिन साधनों से बंदूकें उत्पादित की जाती हैं उनसे जो अन्य असैनिक वस्तुएँ जैसे डबलरोटी, मक्खन, कारें आदि उत्पादित की जा सकती थी, वे बंदूकों के उत्पादन की सामाजिक लागत है। बंदूकों का उत्पादन करने के लिये समाज को कुछ असैनिक वस्तुओं और सेवाओं को त्यागना पड़ेगा और यह त्यागा गया उत्पादन ही बंदूकों के उत्पादन की सामाजिक लागत का उचित माप है। इस अर्थ में एक वस्तु के उत्पादन की सामाजिक लागत उसकी अवसर लागत ही है।

5 **वास्तविक लागत** (Real costs) : ये लागतें वे भुगतान हैं जो उत्पादन के साधनों को अपनी सेवाएँ प्रदान करने के लिये किये गये परिश्रम व प्रयत्नों के मुआवजे के रूप में दिये जाते हैं। उदाहरण के लिये, श्रम जब उत्पादन में कार्यरत होता है तो इससे उसको होने वाली असुविधा और उसके परिश्रम के रूप में वास्तविक लागत निकाली जाती है। इसी प्रकार बचत और पूंजी संचय के लिये जो त्याग करना पड़ता है वह पूंजी की वास्तविक लागत है। अवधारणा के रूप में वास्तविक लागत की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। लेकिन ये फर्म की उत्पादन लागत में अधिक महत्व नहीं रखती क्योंकि ये एक भावनात्मक अवधारणा है और इसमें परिशुद्धता की कमी है। लेकिन श्रम के परिश्रम और उसकी असुविधा के लिये जिस हद तक मजदूरी दी जाती है और त्याग के लिये ब्याज दिया जाता है, वास्तविक लागतें स्पष्ट लागतों में शामिल की जाती हैं। वास्तव में वास्तविक लागतें कभी कभार ही उत्पादन के मौद्रिक खर्चे के बराबर होती है। इस इकाई के इस भाग में बताई गई लागत की विभिन्न अवधारणाओं के विभिन्न अर्थ हैं और इनमें से प्रत्येक का प्रयोग एक विशेष आर्थिक समस्या का विश्लेषण करने के लिये एक उपकरण के रूप में किया जाता है। लागत की वह अवधारणा, जो सबसे महत्वपूर्ण है और जिसका अर्थशास्त्री बहुधा प्रयोग करते हैं, आर्थिक लागत है। इकाई 13, 14, 15, 16 में क्रमशः पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition) में, एकाधिकार (monopoly) में, एकाधिकारी प्रतियोगिता (monopolistic competition) में और अल्पाधिकार (oligarchy) में फर्म के संतुलन का विश्लेषण करने के लिये आर्थिक लागत की अवधारणा का ही प्रयोग किया जाएगा।

बोध प्रश्न घ

1 लेखाविधि लागत क्या है ?

....

....

....

2 लेखाविधि लागत और आर्थिक लागत में मुख्य भेद क्या है ?

....

....

....

3 अवसर लागत क्या है ?

....

....

....

4 निजी लागत और सामाजिक लागत में भेद दिखलाइए ?

....

....

....

5 निम्नलिखित को लेखाविधि लागत, आर्थिक लागत, अवसर लागत और सामाजिक लागतों में वर्गीकृत कीजिये :

लागत	वर्गीकरण
i) मैनेजर का वेतन	....
ii) उद्योग के अपशिष्ट जिन्हें नदी में फेंक दिया गया	....
iii) उद्यमी का वेतन जो वह किसी अन्य फर्म में मैनेजर की हैसियत से काम करके प्राप्त कर सकता था	....
iv) Y वस्तु की 15 इकाइयों के रूप में X वस्तु की 10 इकाइयों की लागत	....

11.7 सारांश

एक उत्पादक फर्म की लागतों का सिद्धांत उत्पादन और कुल लागत का संबंध दिखाता है। उत्पादन की भौतिक दशा, उत्पादन के साधनों की कीमतें और इन साधनों का किस हद तक कुशलतम उपयोग किया गया है, ये सब मिलकर फर्म की उत्पादन लागत को निर्धारित करते हैं। लागतों की बहुत सी अवधारणाएँ हैं जैसे लेखाविधि लागतें, आर्थिक लागतें, अवसर लागतें, निजी लागतें, सामाजिक लागतें और वास्तविक लागतें।

अल्पकाल में लागतों को दो श्रेणियों में बाँटा जाता है, स्थिर लागतें और परिवर्ती लागतें। स्थिर लागतें उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती। परिवर्तित लागतें वे लागते हैं जो उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती हैं और उत्पादन के घटने के साथ घटती हैं। कुल स्थिर लागतों को कुल उत्पादन से भाग देने पर औसत स्थिर लागत आ जाती है। इसी प्रकार, कुल परिवर्ती लागत को कुल उत्पादन से भाग देने पर औसत परिवर्ती लागत पता लग जाती है।

उत्पादन में एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि होने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे सीमांत लागत कहते हैं। उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि से कुल परिवर्ती लागत में होने वाली वृद्धि के रूप में भी सीमांत लागत की परिभाषा दी जा सकती है। कुल लागत, कुल स्थिर लागत, कुल परिवर्ती लागत, औसत कुल लागत, औसत परिवर्ती लागत, औसत स्थिर लागत और सीमांत लागत इन सभी को ग्राफों की सहायता से रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ कुल औसत लागत वक्र और कुल परिवर्ती लागत वक्र के बीच की दूरी घटती जाती है और ये यह बात को दर्शाता है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत स्थिर लागत घटती जाती है। उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ परिवर्ती लागत पहले घटती है, फिर न्यूनतम हो जाती है और अंत में बढ़ने लगती है। औसत कुल लागत वक्र सामान्यतः U-आकृति का होता है।

दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्ती होते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से प्राप्त किया जाता है। दीर्घकाल में विभिन्न उत्पादन स्तरों के लिये विभिन्न आकार के संयंत्रों को लगाने की योजना बनाई जाती है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण वक्र भी कहते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर प्रत्येक बिंदु किसी न किसी अल्पकालीन औसत वक्र को स्पर्श करता है। दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र, एक इकाई से उत्पादन बढ़ाने पर लागत में होने वाली न्यूनतम वृद्धि दर्शाता है। यह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसे न्यूनतम बिंदु पर काटता है और केवल एक ही अल्पकालीन औसत लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की समाप्ति होती है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी U-आकृति का होता है लेकिन ये अल्पकालीन लागत वक्र से अधिक चौड़ा होता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र शुरू में पैमाने की मितव्ययताओं के कारण नीचे की ओर आता है और अंत में क्योंकि मितव्ययताओं का स्थान अपमितव्ययताएँ ले लेती हैं इसलिये ऊपर की ओर जाने लगता है।

11.8 शब्दावली

लेखा लागतें : उत्पादक द्वारा विभिन्न उत्पादन के साधनों को किया गया भुगतान।

औसत स्थिर लागत : $\dfrac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$

औसत परिवर्ती लागत : $\dfrac{\text{कुल परिवर्ती लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$

औसत कुल लागत : $\dfrac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$

बड़े पैमाने के अलाभ : जब उत्पादन बढ़ता है तो फर्म द्वारा लागत में हुई हानियाँ।

बड़े पैमाने की किफायतें : जब उत्पादन बढ़ता है तो फर्म द्वारा लागत में हुए फायदे।

आर्थिक लागत : लेखाविधि लागतों के साथ अस्पष्ट लागतें जिनमें पूँजी का सामान्य प्रतिफल और यदि उद्यमी अपनी सेवाएँ दूसरे को बेचे तो उसकी मज़दूरी या वेतन शामिल होता है।

स्थिर लागतें : मशीन, संयंत्र आदि स्थिर साधनों को काम पर लगाने पर खर्च की गई लागतें।

सीमांत लागत : उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि से कुल आगत में हुई वृद्धि।

अवसर लागत : एक वस्तु का उत्पादन करने के लिये किसी अन्य वस्तु की वह मात्रा जिसका त्याग करना पड़ेगा और जो पहली वस्तु के उत्पादन में लगे साधनों से उत्पादित हो सकती है।

निजी लागतें : निजी लाभों को निकालने के लिए ध्यान में रखी गई लागत।

वास्तविक लागतें : उत्पादक के साधनों को किया गया भुगतान जो इनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में निहित परिश्रम और प्रयत्नों का मुआवजा है।

सामाजिक लागत : सामाजिक लाभ मालूम करने के लिये निकाली गई या एक वस्तु या सेवा के उत्पादन के लिये पूरे समाज द्वारा उठाई गई लागत।

कुल लागत : कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्ती लागत का योग।

परिवर्ती लागत : परिवर्ती साधनों जैसे अप्रशिक्षित काम, कच्चे माल आदि पर आई लागत।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) आर्थिक लागतें (ii) शून्य (iii) स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें (iv) स्पष्ट (v) अस्पष्ट लागत

ख 2

कुल स्थिर लागत रु.	कुल परिवर्ती लागत रु.	कुल लागत रु.	सीमांत लागत रु.
100	-	100	-
100	40	140	40
100	70	170	30
100	120	220	50
100	180	280	60
100	250	350	70

3 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) सही (vii) गलत (viii) गलत (ix) गलत (x) सही

ग 2 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) गलत (viii) सही

घ 5 (i) लेखाविधि लागत (ii) सामाजिक लागत (iii) आर्थिक लागत (iv) अवसर लागत

11.10 स्वपरख प्रश्न

1 निम्नलिखित में भेद कीजिए।

i) स्थिर और परिवर्ती लागत
ii) अल्पकालीन औसत लागत और दीर्घकालीन औसत लागत
iii) औसत लागत और सीमांत लागत
iv) आर्थिक लागतें और लेखाविधि लागतें
v) स्पष्ट लागतें और अस्पष्ट लागतें
vi) निजी लागतें और सामाजिक लागतें

2 सीमांत लागत की अवधारणा की परिभाषा दीजिये। औसत लागत और सीमांत लागत में क्या संबंध हैं ?

3 औसत कुल लागत और औसत परिवर्ती लागत में क्या संबंध हैं ? चित्रों का प्रयोग कीजिये।

4 अल्पकालीन औसत लागत वक्र U-आकृति का क्यों होता है ?

5 औसत परिवर्ती लागत वक्र की आकृति स्पष्ट कीजिये।

6 अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से दीर्घकालीन औसत लागत वक्र कैसे खींचते हैं ? उपयुक्त चित्रों का प्रयोग कीजिये।

7 अल्पकालीन सीमांत लागत और दीर्घकालीन सीमांत लागत में क्या संबंध है ?

8 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की U-आकृति के लिये जिम्मेवार कारकों को स्पष्ट कीजिये।

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परंतु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एस· सी· बरला : *उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र*
(नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : व्यष्टि अर्थशास्त्र
(मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)

पी· ए· सैम्युलसन : *अर्थशास्त्र* दसवां संस्करण
(दिल्ली : कैपिटल बुक हाउस, 1982)

डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए· हॉलमैन : *मूल्य सिद्धांत एवं उसके उपयोग* (चण्डीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)

एस· के· मिश्र : *आर्थिक प्रणालियां एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र*
(प्रगति पब्लिकेशंस, दिल्ली : 1988)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

खंड

4

कीमत का सिद्धांत

इकाई 12
संतुलन की संकल्पना तथा शर्तें 5

इकाई 13
पूर्ण प्रतियोगिता 21

इकाई 14
एकाधिकार 34

इकाई 15
एकाधिकारी प्रतियोगिता 48

इकाई 16
अल्पाधिकार 65

खंड 4 कीमत का सिद्धांत

खंड 3 में आप उत्पादन फलन, पूर्ति के नियम, पूर्ति लोच और लागत सिद्धांत के संबंध में पढ़ चुके हैं। आर्थिक सिद्धांत का एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र है "कीमत का निर्धारण"। इस खंड में आप देखेंगे कि कोई फर्म अपने उत्पादन के स्तर और अपनी उत्पादित वस्तुओं की कीमत का निर्धारण किस प्रकार करती है। इसे ही और सही ढंग से यों कहा जा सकता है कि वह संतुलन की संकल्पना के अनुसार चलते हुए पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत का निर्धारण करती है।

इकाई 12 में संतुलन की संकल्पना, बाज़ार और कीमत, बाज़ार ढांचे और बाज़ार संतुलन के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 13 में पूर्ण प्रतियोगिता की संकल्पना तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत किसी फर्म और उद्योग के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन का स्पष्टीकरण किया गया है।

इकाई 14 में एकाधिकार की संकल्पना, एकाधिकार के अंतर्गत अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन, कीमत निर्धारण और एकाधिकार के विनियमन के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 15 में एकाधिकारी प्रतियोगिता की संकल्पना तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 16 में अल्पाधिकार की विशेषताओं, अल्पाधिकारी उद्योग में कीमत और उत्पाद संतुलन और अल्पाधिकारियों के संकेंद्रण और कपट समझौते के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 12 संतुलन की संकल्पना तथा शर्तें

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 संतुलन की संकल्पना
12.3 संतुलन का महत्व
12.4 संतुलन की विधियां
12.5 बाज़ार का अर्थ
12.6 संतुलन की मूलभूत शर्तें
12.7 बाज़ार और कीमतें
12.8 बाज़ार का स्वरूप
12.9 बाज़ार का स्वरूप और आय फलन
12.10 सारांश
12.11 शब्दावली
12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.13 स्व-परख प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- संतुलन का अर्थ बता सकें
- संतुलन को जिन विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, उन्हें समझ सकें
- यह जान सकें कि संतुलन बाज़ार में मांग और पूर्ति में समानता स्थापित करने में कैसे सहायक होता है
- यह बता सकें कि मांग और पूर्ति को सारणियों और वक्रों के द्वारा क्यों और कैसे व्यक्त किया जाना चाहिए
- यह समझ सकें कि कौन-सी विशेषताएं बाज़ार के स्वरूप को निर्धारित करती हैं
- यह विश्लेषण कर सकें कि किसी दिए हुए बाज़ार के स्वरूप और मांग वक्र के बीच कैसे संबंध स्थापित हो पाता है
- विभिन्न बाज़ार स्थितियों में औसत और सीमान्त आय के व्यवहार का विश्लेषण कर सकें।

12.1 प्रस्तावना

पिछली चार इकाइयों में आप यह पढ़ चुके हैं कि उत्पादन शक्तियां अल्पकाल और दीर्घकाल में कैसे क्रियाशील होती हैं और विभिन्न स्थितियों में बाज़ार में किस स्तर तक उत्पादन उपलब्ध हो पाएगा।

बाज़ार क्रेताओं और विक्रेताओं में संबंध स्थापित करता है। कीमत तंत्र से संतुलन कीमत (equilibrium price) निर्धारित होती है जो किसी वस्तु के उत्पादन के स्तर और उसकी मांग के निर्धारण में सहायक होती है। कारक बाज़ार (factor market) में उत्पादन के कारकों की कीमत और आय का वितरण भी कीमत तंत्र द्वारा निर्धारित होता है। उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं का कितनी मात्रा में उपभोग करेंगे, अपनी आय का कितना भाग अपनी आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से पूरा करने पर खर्च करेंगे और कितनी बचत करेंगे ये सभी बातें भी कीमत तंत्र द्वारा निर्धारित होती हैं। इस प्रकार कीमत तंत्र अर्थव्यवस्था में संसाधनों के आबंटन को निर्धारित करता है।

ऊंची कीमत पर वस्तु की आपूर्ति की मात्रा बढ़ती है और मांग की मात्रा घटती है। इससे कीमत में घटने की प्रवृत्ति होती है और यह प्रवृत्ति उस समय तक बनी रहती है जब तक कि पूर्ति मांग के बराबर न हो जाए। यदि कीमत इस स्तर से नीचे गिर जाती है तो इससे बिल्कुल विपरीत स्थिति उत्पन्न हो जाती है यानि मांग पूर्ति से अधिक हो जाती है जिससे कीमत में बढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ती है और यह प्रवृत्ति भी उस समय तक बनी रहती है जब तक कि पूर्ति मांग के बराबर न हो जाए। इस इकाई में आप संतुलन और उसके विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.2 संतुलन की संकल्पना

संतुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें विरोधी शक्तियां एक-दूसरे को संतुलित कर देती हैं जिससे कि प्रणाली या तो गतिहीन हो जाती है या स्थिर मार्ग की ओर अग्रसर होती है। आर्थिक शक्तियों के संतुलित होने की प्रवृति का यह अर्थ नहीं है कि वे स्थिर होती हैं। संतुलन की प्रवृति से हमारा तात्पर्य यह है कि यदि असंतुलन की स्थिति है तो आर्थिक शक्तियां अवश्य ही ऐसी स्थितियां उत्पन्न करेंगी जिससे संतुलन स्थापित हो जाएगा। उदाहरण के लिये, यदि वस्तु की मांग की मात्रा उसकी आपूर्ति की मात्रा से कम है तो वस्तु की कीमत गिर जाएगी। इससे विक्रेताओं को या तो लाभ कम होगा या यह भी हो सकता है कि उन्हें हानि होने लगे। ऐसी स्थिति में वे उत्पादन को तब तक घटाने पर मजबूर होंगे जब तक कि वह मांग के बराबर न हो जाए। यदि वस्तु की मांग की गई मात्रा उसकी आपूर्ति की मात्रा से अधिक है तो कीमत में बढ़ने की प्रवृति होगी। इस प्रकार यदि बाह्य शक्तियां हस्तक्षेप न करें तो अर्थव्यवस्था में आर्थिक शक्तियों में संतुलित होने की प्रवृति निहित होती है।

12.3 संतुलन का महत्व

यह ध्यान रखें कि आर्थिक शक्तियों के संतुलन में होने की प्रवृति का यह अर्थ नहीं है कि संतुलन अच्छा है या बुरा है। जैसा कि ब्रिटिश अर्थशास्त्री लिओनल रॉबिन्स ने कहा था, "संतुलन तो केवल संतुलन है इसकी पुष्टि के बारे में कोई उपच्छाया नहीं है" यह अपने आप में न तो प्रशंसनीय है और न ही निंदनीय। इसे केवल बाजार शक्तियों को समय के साथ-साथ अपने आप को संतुलित करने की प्रवृति के रूप में समझना चाहिए।

12.4 संतुलन की विधियां

आर्थिक शक्तियों के बीच संतुलन की प्रवृति को समय के संदर्भ में देखना होता है। यह हो सकता है कि आज उत्पादन बाज़ार की आवश्यकता से अधिक हो लेकिन आने वाले समय में ऐसा न हो। यदि आज उत्पादन अत्यधिक है तो विभिन्न तरीकों के द्वारा इसे बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार संतुलन में लाने की कोशिश की जाती है। लेकिन ऐसा एकदम नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में संतुलन लाने के लिये समायोजन करने होंगे। लेकिन ऐसे समायोजनों में समय लगेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी भी प्रकार का तत्कालिक समायोजन असम्भव है। यह काफी हद तक उन उत्पादन शक्तियों के संगठन पर निर्भर करता है जो कि इस वस्तु के उत्पादन को निर्धारित करती है। मान लीजिए एक उत्पादक बहुत जल्दी नष्ट होने वाली किसी वस्तु का उत्पादन करता है। इस उत्पादक के सामने ऐसी स्थिति आ सकती है कि उत्पादन बाज़ार की आवश्यकता से अधिक हो, वह इस वस्तु को स्टोर भी नहीं कर सकता क्योंकि यह जल्दी ही नष्ट होने वाली वस्तु है। अतः वह इसे जिस भी कीमत पर बिके, बेच देगा या इसे नष्ट कर देगा। इसे नष्ट करना, कम कीमत पर बेचने से ज्यादा हानिकारक है। अतः इस वस्तु का उत्पादक इसे जितनी भी कम कीमत पर बिके, बेचकर अपने उत्पादन को बाज़ार की आवश्यकता के बराबर कर देता है। इस प्रकार के समायोजन से संतुलन स्थापित हो जाता है और यह समायोजन लगभग तुरंत सम्भव है और इसमें बहुत ही कम समय लगता है। इसे क्षणिक संतुलन कहा जा सकता है।

ऐसी वस्तुएं जो नष्टवान नहीं है और यदि उनका उत्पादन बाज़ार की आवश्यकता से अधिक है तो उन्हें स्टोर किया जा सकता है। और उन्हें भविष्य में बेचा जा सकता है। यदि बाज़ार की आवश्यकता उत्पादन से अधिक है तो कुछ हद तक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। ऐसा तभी संभव होगा जब उत्पादक के पास इतना समय हो कि वह इसके लिये आवश्यक अतिरिक्त कच्चे माल, श्रम, बिजली आदि की व्यवस्था कर सके। यदि उत्पादक को कुछ समय मिले तो वह आर्थिक शक्तियों में संतुलन स्थापित करने के लिये वह उत्पादन में समायोजन कर सकता है। जब वस्तु की मांग की मात्रा उसकी आपूर्ति की मात्रा से अधिक है तो अल्पकालीन संतुलन संभव है बशर्ते कि उत्पादक को कम से कम इतना समय मिले कि वह अधिक कच्चे माल व श्रम की व्यवस्था कर सके।

तीसरा समायोजन वह होगा जब स्थिर पूंजी की मात्रा को परिवर्तित करना पड़े। यदि आपूर्ति अधिक है तो स्थिर पूंजी को घटाना होगा। यदि पूंजी कम है तो स्थिर पूंजी की मात्रा को बढ़ाना होगा। फैक्टरी की मशीन और उपकरणों में ऐसे परिवर्तन केवल दीर्घकाल में ही सम्भव हो सकते हैं और इस तरह दीर्घकालीन संतुलन संभव हो जाता है। संक्षेप में ऊपर बताई गई तीन स्थितियां निम्नलिखित हैं:

i) क्षणिक समायोजन प्रक्रिया से संबंधित संतुलन जिसे क्षणिक संतुलन (momentary equilibrium) कहा जाता है।

ii) अल्पकालीन समायोजन प्रक्रिया जिसमें मशीन व उपस्कर को छोड़कर अन्य साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया द्वारा संतुलन को अल्पकालीन संतुलन (short period equilibrium) कहा जाता है।

iii) मशीन और उपकरण में समायोजन द्वारा लाए गए संतुलन को दीर्घकालीन संतुलन (long period equilibrium) कहा जाता है।

व्यष्टिगत और समष्टिगत संतुलन (Micro and Macro Equilibrium)

संतुलन के लिए आर्थिक शक्तियों का संतुलित होना आवश्यक होता है। लेकिन आर्थिक शक्तियां इतनी विस्तृत हैं कि जब तक उन्हें एक-दायरे में सीमित करके न देखा जाए तब तक उनके अर्थपूर्ण संतुलन की कल्पना करना संभव नहीं है। इसलिए अर्थशास्त्र में आर्थिक शक्तियों के संबंध में व्यष्टिगत या समष्टिगत रूपों में बात करना सुविधाजनक है। समष्टिगत शक्तियां राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था या अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से संबंधित हो सकती हैं। व्यष्टिगत शक्तियां एक फर्म या उद्योग से संबंधित होती हैं। यह स्पष्ट है कि आर्थिक शक्तियों के व्यष्टिगत संतुलन के द्वारा हम एक छोटे क्षेत्र को बड़े क्षेत्र से अलग कर सकते हैं, एक वस्तु से क्षेत्र को सारी वस्तुओं से संबंधित क्षेत्र से अलग कर सकते हैं। इस प्रकार के विभाजन से बहुधा हम यह मान लेते हैं कि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्तर पर आर्थिक शक्तियां या तो स्थैतिक (static) हैं या यदि वे गतिक (dynamic) भी हैं तो भी वे व्यष्टिगत शक्तियों को प्रभावित नहीं करतीं। ऐसी मान्यताएं एक अच्छे व्यष्टिगत आर्थिक विश्लेषण के लिये की जाती है। व्यष्टिगत या समष्टिगत स्थिति के संदर्भ में आर्थिक शक्तियां हमें व्यष्टिगत संतुलन या समष्टिगत संतुलन प्रदान करती हैं। व्यष्टिगत और समष्टिगत संतुलन दोनों में ही अल्पकालीन और दीर्घकालीन समायोजन बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इस आधार पर हम अल्पकालीन व्यष्टिगत, संतुलन, दीर्घकालीन समष्टिगत संतुलन की चर्चा कर सकते हैं।

स्थैतिक और गतिक संतुलन (Static & Dynamic Equilibrium)

एक और बात ध्यान देने योग्य है कि आर्थिक शक्तियों में संतुलन का विश्लेषण यह मानकर किया जाता है कि आर्थिक शक्तियां परिवर्तनशील हैं और समय के साथ-साथ वास्तव में परिवर्तित हो रही हैं। यह भी माना जाता है कि ये स्थिर हैं और इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। जब आर्थिक शक्तियों में संतुलन के विश्लेषण की मान्यता उनमें समय के साथ परिवर्तन को होना होता है तब उसे गतिक संतुलन का विश्लेषण करना कहते हैं। दूसरी ओर, जब आर्थिक शक्तियों में किसी प्रकार के परिवर्तन की कल्पना नहीं की जाती उस स्थिति में आर्थिक शक्तियों में संतुलन का अध्ययन स्थैतिक संतुलन का अध्ययन कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि हम यह मान लें कि उपभोक्ता की रुचि और आय में या पूंजी के स्टॉक में कोई परिवर्तन नहीं होता तो हम कहेंगे कि हम स्थैतिक संतुलन का विश्लेषण कर रहे हैं। दूसरी ओर यदि इन सब में समय के दौरान परिवर्तन होता है तो हम गतिक संतुलन का विश्लेषण कर रहे हैं।

अतः संतुलन का अध्ययन व विश्लेषण करने के विभिन्न तरीके हैं। समायोजन के लिये उपलब्ध समय के आधार पर ऐसा किया जा सकता है। उन सीमाओं के आधार पर जिसमें आर्थिक शक्तियां कार्यरत हैं और इन शक्तियों में स्थिरता या परिवर्तनशीलता के आधार पर भी अध्ययन या विश्लेषण किया जा सकता है।

12.5 बाज़ार का अर्थ

संतुलन का अर्थ जानने के बाद बाजार का अर्थ जानना आवश्यक है क्योंकि संतुलन का अध्ययन बाज़ार के संदर्भ में किया जाता है। क्रेताओं और विक्रेताओं की पारस्परिक क्रियाओं की स्थिति को ही बाज़ार कहते हैं। बाज़ार का तात्पर्य एक या एक जैसी वस्तुओं के क्रेताओं और विक्रेताओं का सम्पर्क में आना होता है। यह सम्भव है कि विक्रेता साबुन की एक किस्म का व्यापार करते हों और क्रेता साबुन की किसी अन्य किस्म, जो कि पहली किस्म का स्थानापन्न है, में दिलचस्पी रखते हों। ऐसे क्रेताओं और विक्रेताओं से बाजार बन जाता है। बाजार के लिये किसी एक भौगोलिक क्षेत्र का होना आवश्यक नहीं है। क्रेता और विक्रेता में परस्पर दूरी हो सकती है। वास्तव में यदि यातायात और संचार के साधन विकसित हों तो क्रेताओं और विक्रेताओं के एक दूसरे से बहुत दूर होने पर भी उनमें सम्पर्क स्थापित हो सकते हैं।

विभिन्न बाज़ारों की विशेषताएं विभिन्न हो सकती हैं। विभिन्न बाजारों में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या विभिन्न हो सकती है, एक क्रेता और बहुत से विक्रेता हो सकते हैं या एक विक्रेता और बहुत से क्रेता हो सकते हैं, क्रेता और विक्रेता दोनों की संख्या अधिक हो सकती है या एक की संख्या कम और दूसरी की संख्या अधिक हो सकती है।

हम आगे चलकर देखेंगे कि विभिन्न बाज़ारों में विक्रेताओं की संख्या किस प्रकार बाज़ार संतुलन के निर्धारण को प्रभावित करती है।

12.6 संतुलन की मूलभूत शर्तें

साधारणतया बाज़ार के संदर्भ में संतुलन का अर्थ है विक्रेताओं और क्रेताओं की आर्थिक शक्तियों के बीच संतुलन। वस्तु बाज़ार में वस्तुओं की मांग और पूर्ति पर विचार किया जाता है और कारक बाज़ार में कारक की मांग और आपूर्ति पर विचार किया जाता है। यहां हम वस्तु बाज़ार का विश्लेषण करेंगे। अतः जिन आर्थिक शक्तियों पर विचार किया जाएगा वे वस्तुओं की मांग व आपूर्ति की हैं।

जब हम संतुलन के संदर्भ में मांग और आपूर्ति की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य वास्तव में मांग की गई या आपूर्ति की गई वस्तु की मात्रा से नहीं है बल्कि इससे भिन्न अर्थों में हम मांग व आपूर्ति शब्दों का प्रयोग करते हैं। वास्तव में संतुलन के संदर्भ में आपूर्ति वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की एक सूची या सारणी है जो उत्पादक विभिन्न सम्भव कीमतों पर बेचना चाहेंगे। इसी प्रकार मांग वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की एक सूची या सारणी है जिन्हें क्रेता विभिन्न संभव कीमतों पर खरीदना चाहेंगे। इस प्रकार जितनी मात्रा वास्तव में बिकी वह आपूर्ति नहीं है बल्कि आपूर्ति विभिन्न कीमतों पर अभिप्रेत बिक्री की एक तालिका है। इसी प्रकार वास्तव में जितनी मांग की गई वह मांग नहीं है बल्कि विभिन्न कीमतों पर की जाने वाली मांग की मात्रा की तालिका है। उदाहरण के लिये यह सम्भव है कि डबलरोटी की कीमत 4 रु. प्रति इकाई होने पर विक्रेता इसकी 50,000 इकाइयां बेचना चाहते हैं जबकि क्रेता 50,000 से कम इकाइयां खरीदना चाहते हैं। इसी प्रकार अन्य बहुत सी कीमतों पर अभिप्रेत क्रय व विक्रय की मात्रा असमान हो सकती है। संतुलन केवल उस कीमत पर स्थापित होगा जिस पर विक्रेता जितनी मात्रा बेचना चाहते हैं क्रेता जितनी मात्रा खरीदना चाहते हैं, ये दोनों बराबर हों।

बाज़ार संतुलन क्रेताओं की अभिप्रेत खरीद और विक्रेताओं की अभिप्रेत बिक्री का संतुलन है। विक्रेता बाज़ार में विभिन्न संभव कीमतों का अनुमान लगाता है और फिर यह निश्चय करता है कि कितना संभव कीमत पर कितनी मात्रा की आपूर्ति करना लाभप्रद होगा। इस प्रकार पूर्ति-सारणी यह दर्शाती है कि विक्रेता के अनुमान से

विभिन्न कीमतों पर कितनी आपूर्ति करना अत्यधिक लाभप्रद होगा।

इसी प्रकार क्रेता भी यह निश्चय करता है कि वस्तु की विभिन्न कीमतों पर कितनी मात्रा खरीदना लाभप्रद होगा। क्रेता वस्तु की दी हुई कीमत पर उससे मिलने वाली उपयोगिता या संतुष्टि को ध्यान में रखता है। संतुलन का अर्थ होगा अभिप्रेत बिक्री और अभिप्रेत खरीद का बराबर होना।

वस्तु की मांग और आपूर्ति में विस्तार या संकुचन करने की इच्छा का न होना संतुलन की विशेषता है। जब एक विक्रेता एक इकाई की आपूर्ति में वृद्धि करना चाहता है तो वह वस्तु की कीमत और उसकी सीमान्त लागत की तुलना करता है (वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं)। इसी प्रकार उपभोक्ता वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की खरीद में वृद्धि करने से पहले वस्तु की कीमत और उसकी सीमान्त उपयोगिता की तुलना करता है। (वस्तु की अतिरिक्त इकाई खरीदने पर कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं)। अतः हम यह कह सकते हैं कि मांग और आपूर्ति में संकुचन और विस्तार का न होना बाज़ार संतुलन की ओर संकेत करता है। इसका अर्थ है कि वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त लागत के बराबर है और इसके साथ-साथ वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर है।

मांग और आपूर्ति की सारणियों को वक्रों की सहायता से दर्शाया जा सकता है। मांग वक्र और आपूर्ति वक्र एक दूसरे को जहां काटते हैं उस बिन्दु से वह कीमत पता लग जाती है जिस पर अभिप्रेत मांग और अभिप्रेत आपूर्ति बराबर है। इस कीमत को संतुलन कीमत कहते हैं। मांग सारणी से मांग वक्र खींचा जाता है और आपूर्ति सारणी से आपूर्ति वक्र खींचा जाता है।

इस प्रकार बाज़ार में संतुलन मांग और आपूर्ति से निर्धारित होता है। मांग और आपूर्ति की वास्तविक मात्रा से नहीं बल्कि विभिन्न कीमतों पर क्रेताओं और विक्रेताओं की विभिन्न मंशाओं को दर्शाने वाली मात्राओं की श्रृंखला से।

निम्नलिखित तालिका मांग और आपूर्ति की सारणियों को दर्शाती है:

तालिका 12.1
मांग और आपूर्ति की सारणी

अभिप्रेत आपूर्ति (इकाइयों में)	प्रत्याशित कीमत (पैसों में)	अभिप्रेत मांग (इकाइयों में)
10	50	2
9	49	3
8	48	4
7	47	5
6	46	6
5	45	7
4	44	8
3	43	9
2	42	10
1	41	11

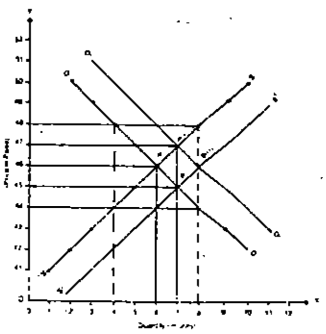

तालिका 12.1 को देखिए। इसमें D.D. मांग वक्र है और S.S. आपूर्ति वक्र है। 48 पैसे

की कीमत पर आपूर्ति की गई मात्रा 8 है और मांग की गई मात्रा 4 है। इसमें कीमत घटने लगती है और यह जब घटकर 46 पैसे हो जाती है तो आपूर्ति की गई मात्रा और मांग की गई मात्रा बराबर हो जाती हैं। ये दोनों 6 इकाई हैं इसी प्रकार 44 पैसे कीमत पर मांग की गई मात्रा 8 है और आपूर्ति की गई मात्रा 4 है और इस स्थिति में कीमत बढ़ने लगती है और उस समय तक बढ़ती है जब तक यह 46 पैसे नहीं हो जाती। इस कीमत पर फिर मांग की गई मात्रा और आपूर्ति की गई मात्रा दोनों 6 हैं, यानि बराबर हैं। इस प्रकार संतुलन कीमत या वस्तु की बाज़ार कीमत 46 पैसे हैं।

बोध प्रश्न क

1 संतुलन से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2 व्यष्टिगत और समष्टिगत संतुलन में भेद कीजिए।

....

....

....

3 स्थैतिक और गतिक संतुलन में क्या अन्तर है?

....

....

....

4 रिक्त स्थानों को भरिए।

i) यदि मांग की गई मात्रा, आपूर्ति की गई मात्रा से ...... होती है तो कीमत में बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। (अधिक/कम)

ii) अल्पकालीन समायोजन प्रक्रिया से सम्बद्ध संतुलन .... कहलाता है। (अल्पकालीन संतुलन/दीर्घकालीन संतुलन)

iii) समय के दौरान बदलती हुई आर्थिक शक्तियों के संतुलन के विश्लेषण को ...... कहते हैं (स्थैतिक संतुलन/गतिक संतुलन)।

iv) स्थैतिक संतुलन में आर्थिक शक्तियों को ...... माना जाता है। (परिवर्तनीय/अपरिवर्तनीय)

v) बाज़ार संतुलन क्रेताओं और विक्रेताओं के अभिप्रेत क्रय और ...... के बीच संतुलन है (अभिप्रेत विक्रय/अभिप्रेत मांग)

12.7 बाज़ार और कीमतें

मान लीजिए क्रेता आय बढ़ने के कारण या किसी वस्तु के अधिक लोकप्रिय होने के कारण या अन्य किसी कारण से उस वस्तु की प्रत्येक सम्भावित कीमतों पर पहले से अधिक मांग करने के इच्छुक हैं। ऐसी स्थिति में मांग वक्र का दायीं ओर विचलन हो जाता है और नया मांग वक्र D′D′ बन जाता है। यह मांग वक्र पूर्ति वक्र SS को P′ बिन्दु पर काटता है और नयी संतुलन कीमत 47 पैसे हो जाती है जो कि पहली संतुलन कीमत (46 पैसे) से अधिक है। इस प्रकार यदि पूर्ति वक्र अपरिवर्तित रहे तो भी मांग में वृद्धि कीमत को बढ़ा देती है।

इसी तरह कच्चे माल की बेहतर उपलब्धि या किसी अन्य कारण से यदि विक्रेता वस्तु

की प्रत्येक सम्भावित कीमत पर उसकी पहले से अधिक आपूर्ति कर सकता है तो आपूर्ति वक्र का दायीं ओर विचलन हो जाता है और आपूर्ति वक्र S'S' हो जाता है। यह पूर्ति वक्र मांग वक्र DD को P' बिन्दु पर काटता है और नयी कीमत 45 पैसे होगी जो पहली कीमत (46 पैसे) से कम है। इस तरह यदि मांग वक्र अपरिवर्तित रहे तो पूर्ति में वृद्धि कीमत को कम कर देगी।

यह ध्यान रखें कि जब मांग वक्र का विचलन हुआ तो पूर्ति वक्र अपरिवर्तित रहा और जब आपूर्ति वक्र का विचलन हुआ तो मांग वक्र अपरिवर्तित रहा। यदि दोनों वक्रों का चिचलन होता है तो कीमत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रत्येक वक्र में किस मात्रा में विचलन हुआ। चित्र 12.1 को देखिए, इसमें नये मांग वक्र और नये पूर्ति वक्र एक दूसरे को P" बिन्दु पर काटते हैं और नयी कीमत 46 पैसे है तथा मांग की गई व पूर्ति की गई मात्रा 8 इकाइयां हैं।

मांग और आपूर्ति एक व्यक्तिगत फर्म की हो सकती है या उद्योग की। एक फर्म द्वारा बनाई गई वस्तु के क्रेताओं के मांग वक्रों के समस्तर (horizontal) योग से फर्म के लिये संबद्ध मांग वक्र बन जाता है। फर्म का आपूर्ति वक्र विभिन्न कीमतों पर अभिप्रेत आपूर्ति दर्शाता है। यदि हम एक उद्योग का अध्ययन कर रहे हैं तो मांग वक्र इस उद्योग की वस्तु के सभी क्रेताओं के मांग वक्रों का योग होगा। उद्योग का आपूर्ति वक्र उस उद्योग की सभी फर्मों के पूर्ति वक्रों का योग होगा। फर्म और उद्योग के मांग और पूर्ति वक्रों में यह अन्तर चित्र 12.2 और 12.3 में दर्शाया गया है।

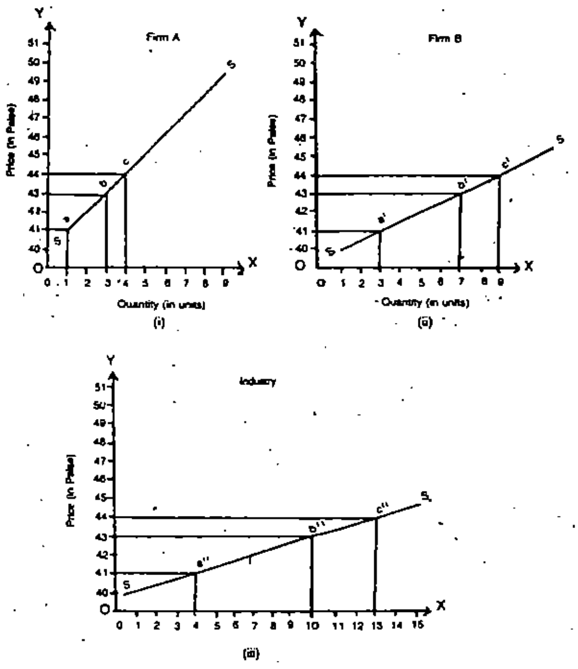

चित्र 12.2(i), फर्म A और चित्र 12.2(ii) फर्म B के पूर्ति वक्र दर्शाते हैं। यहां Y-अक्ष पर कीमत और X-अक्ष पर मात्रा दर्शायी गयी है। फर्म A की तुलना में फर्म B की आपूर्ति वक्र अधिक चपटा दिखाया गया है। एक उद्योग में A और B के अतिरिक्त अन्य फर्में भी हो सकती हैं। उद्योग फर्मों का समूह होता है। उद्योग का आपूर्ति वक्र चित्र 12.2(iii) में दिखाया गया है। चित्र 12.2(i) में यह दिखाया गया है कि जब कीमत 41 पैसे है तो फर्म A द्वारा सप्लाई की गई मात्रा 1 इकाई है। इसी प्रकार फर्म a' बिन्दु पर फर्म B इकाई आपूर्ति करती है। यदि उद्योग में केवल A और B दो फर्में हों तो 41 पैसे कीमत पर उद्योग की आपूर्ति 1+3=4 होगी जो चित्र 12.2(iii) में a" बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार 43 और 44 पैसे कीमतों पर उद्योग द्वारा आपूर्ति मालूम की गयी है जो क्रमशः 10(3+7) और 13(4+9) इकाई है। यदि a", b" और c" जैसे बिन्दुओं को मिलाता हुआ एक वक्र खींचा जाए तो वह उद्योग का आपूर्ति वक्र होगा जो चित्र 12.2(iii) में दिखाया गया है।

चित्र 12.3(i) और 12.3(ii) क्रमशः क्रेता A और क्रेता B का मांग वक्र दर्शाता है और उद्योग का मांग वक्र चित्र (iii) में दर्शाया गया है। उद्योग का मांग वक्र खींचने का वही तरीका है जो उद्योग का पूर्ति वक्र खींचने के लिये अपनाया गया है।

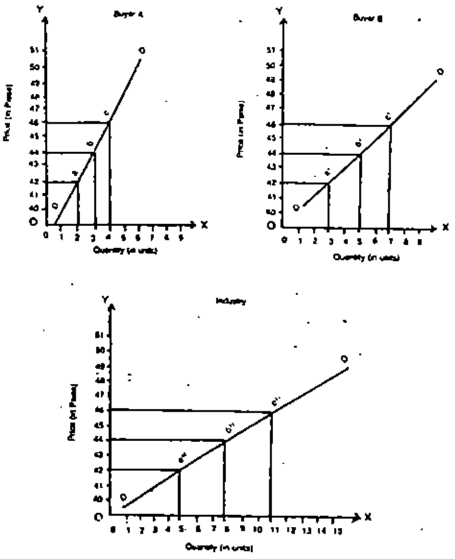

संतुलन की संकल्तना में यह निश्चित है कि आर्थिक शक्तियों में संतुलन होने की प्रवृति होती है। इसका अर्थ यह है कि यदि बाज़ार में कोई कीमत संतुलन कीमत नहीं है तो इसमें परिवर्तन की प्रवृति होगी ताकि अन्त में संतुलन कीमत स्थापित हो जाए बशर्ते कि संतुलन स्थिर हो।

अल्फ्रेड मार्शल ने दीर्घकाल में "संतुलन कीमत" के लिये "सामान्य कीमत" शब्द का प्रयोग किया। बाज़ार कीमत या तो किसी समय में बाज़ार में प्रचलित यथार्थ कीमत होगी या अल्पकाल में प्रचलित कीमत होगी। दोनों में से प्रत्येक में परिवर्तन की प्रवृति होगी क्योंकि सामान्य कीमत के लिये आवश्यक समायोजन केवल दीर्घकाल में किये जा सकेंगे।

12.8 बाज़ार का स्वरूप

बाज़ार के लिये क्रेताओं और विक्रेताओं दोनों का होना आवश्यक है। इन दोनों की संख्या के आधार पर बाज़ार के विभिन्न रूप हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएं भी बाज़ार के स्वरूप को निर्धारित करती हैं। ये हैं: i) मांग की कीमत लोच (price elasticity of demand), ii) मांग की प्रति लोच (cross elasticity of demand), iii) वस्तु की प्रकृति, और iv) प्रवेश की स्वतंत्रता।

विभिन्न वस्तुओं में परिवर्तन की उनकी मांग पर प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है। दूसरे शब्दों में विभिन्न वस्तुओं की मांग की लोच भिन्न होती है। जब वस्तु की कीमत के बढ़ने से उसकी मांग में बहुत कमी होती है तो इसकी मांग अधिक लोचदार कही जाती है। कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी कीमत बढ़ने से उनकी मांग नहीं घटती या बहुत कम घटती है। ऐसी वस्तुओं की मांग बेलोचदार या कम लोचदार कही जाती है। ये विशेषताएं विक्रेता की कीमत को परिवर्तित करने की सामर्थ्य को सीमित करती हैं वस्तु की मांग की कीमत लोच जितनी अधिक होगी, बाज़ार पर उतना ही कम विक्रेता का नियंत्रण होगा और उतनी ही तेज़ी से हम पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति की ओर अग्रसर होंगे। लोच कम होने पर बाज़ार एकाधिकार की ओर अग्रसर होगा।

प्रति लोच का अर्थ है कि एक वस्तु की मांग उसकी स्थानापन्न वस्तु (substitute) की कीमत में परिवर्तन के कारण बदलती है। चाय की मांग कॉफी की कीमत में परिवर्तन के कारण बदल सकती है। क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे की स्थानापन्न वस्तुएं हैं। यदि चाय की आपूर्ति लोच अधिक है तो चाय का विक्रेता इसकी कीमत नहीं बढ़ाएगा, लेकिन यदि प्रति लोच कम है तो वह कीमत में परिवर्तन कर सकता है और इस प्रकार हम अधिक प्रतियोगिता से कम प्रतियोगिता की स्थिति की ओर अग्रसर होंगे।

वस्तु की प्रकृति से हमारा आशय है कि वस्तु समरूप (homogeneous) हैं या विशिष्ट (differentiate)। समरूप वस्तु से तात्पर्य है कि सभी विक्रेता जो वस्तु बेच रहे हैं वह

हर तरह से एक जैसी है। विशिष्ट वस्तु से तात्पर्य ऐसी वस्तु से है जो वस्तु तो एक ही है लेकिन उसकी सभी इकाइयां समरूप नहीं हैं बल्कि विभिन्न विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली यह वस्तु कुछ भिन्न है जैसे उसके रंग अलग हो सकते हैं, आकार अलग हो सकते हैं आदि। गेहूं समरूप वस्तु का उदाहरण हो सकता है जबकि टूथ पेस्ट विशिष्ट वस्तु का उदाहरण।

यदि एक विक्रेता वही वस्तु बेच रहा है जो अन्य विक्रेता बेच रहे हैं तो अन्य विक्रेता जिस कीमत पर इसे बेच रहे हैं उससे अधिक कीमत पर वह इसे नहीं बेच सकता और इस प्रकार विक्रेताओं में अधिक प्रतिस्पर्धा होगी। यदि वह विशिष्ट वस्तु जैसे टूथ पेस्ट का कोई दूसरा ब्रांड बेच रहा है तो वह बिना अपनी बिक्री को कम किये अन्य विक्रेताओं की तुलना में ऊंची कीमत पर इसे बेच सकता है। जिस हद तक विक्रेता का कीमत पर नियंत्रण बढ़ता है उसी हद तक बाज़ार में प्रतिस्पर्धा होती है।

प्रवेश की स्वतंत्रता प्रतिस्पर्धा के लिये महत्वपूर्ण है। मान लीजिए एक विक्रेता किन्हीं कारणों से कीमत बढ़ाकर अधिक लाभ प्राप्त करने लगता है। यदि उद्योग में प्रवेश की स्वतंत्रता हो तो नये विक्रेता बाज़ार में आ जाएंगे और इस विक्रेता के लिये अधिक लाभ प्राप्त करते रहना सम्भव नहीं होगा और इस प्रकार बाज़ार में प्रतिस्पर्धा बढ़ जाएगी। यदि प्रवेश प्रतिबन्धित है तो उस हद तक प्रतिस्पर्धा भी प्रतिबन्धित होगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, मांग पूर्णतया लोचदार होती है, मांग की प्रति-लोच अनन्त होती है, वस्तु समरूप होती है, बाज़ार में फर्मों को प्रवेश की स्वतंत्रता होती है और क्रेताओं और विक्रेताओं को बाज़ार का पूर्ण ज्ञान होता है।

अल्पाधिकार (oligopoly) में, विक्रेताओं की संख्या कम होती है, मांग की लोच और मांग की प्रति लोच दोनों कम होती हैं, वस्तु समरूप भी हो सकती है और विशेष भी और प्रवेश आसान होता है।

एकाधिकार में, मांग की लोच कम होती है, मांग की प्रति लोच शून्य होती है, वस्तु समरूप होती है और उसकी कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती, केवल एक विक्रेता होता है और अन्य विक्रेता बाज़ार में प्रवेश नहीं कर सकते।

पूर्ण प्रतियोगिता को छोड़कर बाज़ार के अन्य तीनों स्वरूप यानि एकाधिकारी प्रतियोगिता (monopolistic competition) अल्पाधिकार और एकाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रतीक हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए कोई भी एक क्रेता या विक्रेता बाज़ार में वस्तु की क़ीमत को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता। दूसरे शब्दों में, किसी भी एक विक्रेता के लिए मांग वक्र पूर्णतया लोचदार यानि X-अक्ष के समानान्तर होता है जैसाकि चित्र 12.4(i) में दिखाया गया है। दूसरी ओर, एकाधिकारी प्रतियोगिता का एकाधिकार या अल्पाधिकार में विक्रेता के लिये मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होती है जैसा कि चित्र 12.4(ii) में दिखाया गया है।

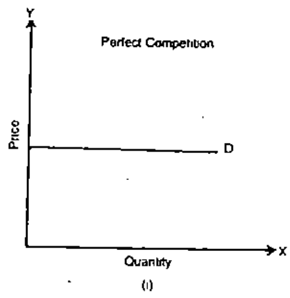

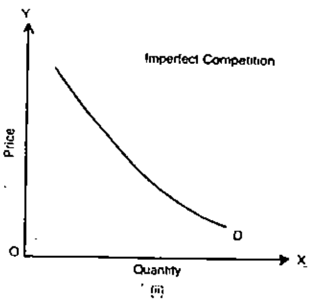

12.9 बाज़ार का स्वरूप और आय फलन

बाज़ार में संतुलन के निर्धारण के लिए न केवल पूर्ति और पूर्तिकर्ताओं की क़ीमतों की सारणी की आवश्यकता होती है बल्कि मांग और क्रेताओं की कीमतों की सारणी भी

आवश्यक होता है।

क्रेताओं की कीमत वह औसत आय है जो पूर्तिकर्ताओं वस्तु की एक इकाई बेचकर अर्जित करता है। जब बेची गई कुल इकाइयों की कीमत के औसत आय से गुणा करते हैं तो गुणनफल कुल आय कहलाती है। पूर्तिकर्ता को वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचने से जो आय प्राप्त होती है उसे सीमान्त आय कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि विक्रेता दो इकाइयां बेचता है तो दूसरी इकाई से प्राप्त आय मालूम करने के लिये दो इकाइयों से प्राप्त कुल आय में से एक इकाई से प्राप्त आय को घटा देगा। यदि कीमत 50 पैसे है तो दो इकाई बेचने से कुल आय 100 पैसे होगी। चूंकि इकाई को बेचने से आय 50 पैसे है, अतः दूसरी इकाई बेचने से प्राप्त आय (100 – 50)=50 पैसे होगी। यह सीमान्त आय है। इसे तालिका 12.2 में दिखाया गया है।

तालिका 12.2
पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की कुल आय, औसत आय और सीमान्त आय

मात्रा	औसत आय (कीमत) (AR)	कुल आय (TR)	सीमान्त आय (MR)
1	50	50	50
2	50	100	50
3	50	150	50
4	50	200	50
5	50	250	50
6	50	300	50
7	50	350	50
8	50	400	50
9	50	450	50
10	50	500	50

किसी फर्म की कीमत या औसत आय स्थिर बनी रहती है। कीमत या औसत आय इसलिए स्थिर रहती है कि पूर्ण प्रतियोगिता में कोई एक पूर्तिकर्ता किसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा को बदलकर कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता। एक फर्म की आपूर्ति बाज़ार की कुल आपूर्ति का एक छोटा सा भाग होती है इसलिए इसे बाज़ार कीमत को स्वीकार करना पड़ता है। वह इस दी हुई कीमत पर जितनी मात्रा चाहे बेच सकता है लेकिन वह कीमत को बदल नहीं सकता। इसलिए समस्तर मांग वक्र पूर्ण प्रतियोगिता की एक विशेषता है। मांग वक्र यह दर्शाता है कि विभिन्न कीमतों पर क्रेताओं की मांग कितनी होगी, न केवल बल्कि यह भी बताता है कि वे किन कीमतों पर इसे खरीदना चाहते हैं। इस प्रकार मांग वक्र क्रेताओं का कीमत वक्र भी है। चूंकि कीमत विक्रेता के लिये औसत आय है इसलिए मांग वक्र ही औसत आय वक्र तथा कीमत वक्र कहलाता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में औसत आय वक्र समस्तर होती है।

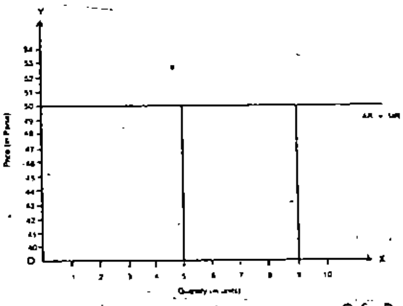

चित्र 12.5 में मांग वक्र D समस्तर है। मांग या आपूर्ति कितनी भी हो, कीमत या औसत आय स्थिर रहती है यानि 50 पैसे ही रहती है। तालिका 12.2 में दिखाया गया है कि पूर्ति में वृद्धि होने पर भी कीमत या औसत आय स्थिर रहती है और सीमान्त आय औसत आय के बराबर है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में बिक्री के विभिन्न स्तरों पर औसत आय वक्र ही सीमान्त आय वक्र भी होता है।

यह ध्यान रखिए कि पूर्ण प्रतियोगिता में किसी एक फर्म के लिये ही मांग वक्र समस्तर होता है और वह फर्म दी हुई कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। लेकिन सभी विक्रेता मिलकर कीमत को प्रभावित नहीं कर सकते हैं इसलिए पूरे उद्योग का मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होता है, समस्तर नहीं होता।

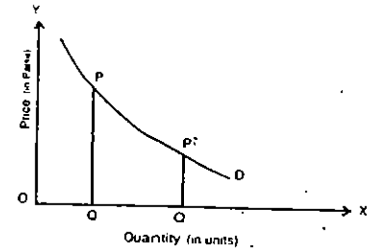

चित्र 12.6 को देखें जिसमें किसी उद्योग के मांग वक्र को दिया गया है। जब पूर्ति OQ है तो कीमत PQ है और जब पूर्ति OQ' है तो कीमत P'Q' है। जब पूर्ति अधिक है (OQ') तो कीमत P'Q' कम है और जब पूर्ति कम है (OQ) तो कीमत अधिक है (PQ)। इस प्रकार अधिक मात्रा केवल कम कीमत पर बेची जा सकती है, अधिक कीमत पर नहीं। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का मांग वक्र बायें से दांये नीचे की ओर ढालू होता है लेकिन फर्म का मांग वक्र समस्तर होता है।

अब हम अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आय वक्र या मांग वक्र का विश्लेषण करेंगे। अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म कीमत को प्रभावित कर सकती है अतः आशा की जाती है कि वह उत्पादन के स्तर को परिवर्तित कर सकती है और उसके अनुसार कीमत को परिवर्तित कर सकती है। यह अधिक मात्रा कम कीमत पर बेच सकती है और यदि ऊंची कीमत निर्धारित करती है तो बिक्री कम होगी। क्रेता अधिक मांग केवल कम कीमत पर ही करेंगे, अतः अधिक बिक्री केवल कम कीमत पर ही सम्भव होगी। यदि आपूर्ति कम हो तो क्रेता वस्तु के लिये अधिक कीमत देने को राजी हो जाएंगे। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का औसत आय वक्र बांये से दांये की ओर गिरेगा जैसा कि चित्र 12.7 में दिखाया गया है।

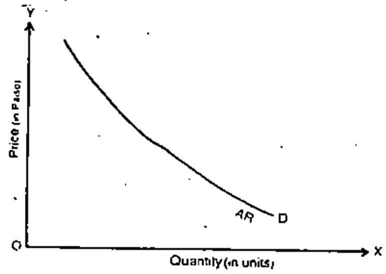

अपूर्ण प्रतियोगिता में भी फर्म की सीमान्त आय उसी तरीके से निकाली जाएगी जैसे कि पूर्ण प्रतियोगिता में निकाली थी। मान लीजिए आपूर्ति 1 इकाई है और कीमत 50 पैसे है और जब आपूर्ति 2 इकाई है तो कीमत 49 पैसे है। सीमान्त आय दूसरी इकाई से प्राप्त कुल आय और पहली इकाई से प्राप्त कुल आय के अन्तर 98 पैसे – 50 पैसे = 48 पैसे है। इस प्रकार जब औसत आय गिरती है तो सीमान्त आय औसत आय से कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त जैसा कि तालिका 12.3 में दिखाया गया है, औसत आय के साथ-साथ जब सीमान्त आय घटती है तो सीमान्त आय में कमी अधिक तेज दर से होती है और अधिक उत्पादन की मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ औसत और सीमान्त आय का अन्तर बढ़ता जाता है।

तालिका 12.3
अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की कुल आय, औसत आय और सीमान्त आय

मात्रा (इकाइयों में)	औसत आय (पैसे में) AR	कुल आय (पैसे में) TR	सीमान्त आय (पैसे में) MR
1	50	50	50
2	49	98	48
3	48	144	46
4	47	188	44
5	46	230	42
6	45	270	40
7	44	308	38
8	43	344	36
9	42	378	34
10	41	410	32

अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत और सीमान्त आय वक्रों को चित्र 12.8 में दिखाया गया है।

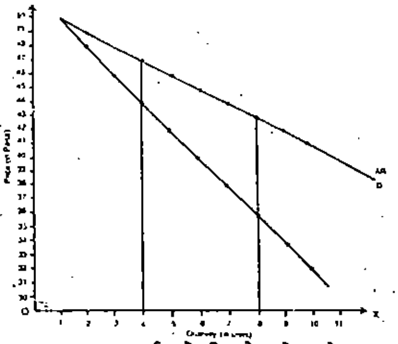

जब मात्रा 4 इकाई से बढ़कर 8 इकाई होती है तो औसत आय 47 पैसे से घटकर 43 पैसे हो जाती है और सीमान्त आय 44 पैसे से घटकर 36 पैसे हो जाती है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन के स्तर में वृद्धि के साथ औसत और सीमान्त आय में अन्तर बढ़ जाता है।

अल्पाधिकार

अल्पाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता का विशिष्ट उदाहरण है। यह एक ऐसी बाज़ार स्थिति है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि प्रत्येक विक्रेता का बाज़ार मांग के एक बड़े भाग पर नियंत्रण होता है और वह कीमत में परिवर्तन कर सकता है लेकिन वह इसके फलस्वरूप होने वाली प्रतिद्वन्द्वी फर्मों की प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। कभी-कभी अल्पाधिकार में विक्रेता आपस में सांठ-गांठ करते हैं ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकें। सांठ-गांठ करके वे कीमतों में हेर-फेर करते हैं। वे कीमतेतर प्रतिस्पर्धा (non-price competition) के द्वारा भी अपनी बिक्री अधिकतम करने की कोशिश करते हैं।

जब कोई कीमत संबंधी सांठ-गांठ नहीं होती तो प्रत्येक विक्रेता अपनी कीमत निश्चित करने का प्रयत्न करता है। इस स्थिति पर विचार करने से पहले हम फिर से याद करें कि अपूर्ण प्रतियोगिता की सामान्य स्थितियों में औसत आय वक्र कैसा होता है। यह वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होता है जो यह दर्शाता है कि पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि के साथ औसत आय कम होती है और पूर्ति की गई मात्रा कम हो तो औसत आय अधिक होगी। इसका कारण यह है कि कम कीमत पर सभी विक्रेता अधिक मात्रा बेचने को राजी रहते हैं। कोई भी विक्रेता कीमत के द्वारा प्रतिस्पर्धा नहीं करना चाहता। इसलिए एक प्रतिनिधिक फर्म की औसत और सीमान्त आय वक्रें नीचे की ओर ढालू होते हैं।

अल्पाधिकार में, कीमत-प्रतिस्पर्धा के कारण इन वक्रों का आकार विघटित हो जाता है जैसा कि चित्र 12.9 में दिखाया गया है। मान लीजिए औसत आय वक्र के K बिन्दु पर अल्पाधिकारी कीमत बढ़ाने की इच्छा करता है। यदि वह कीमत बढ़ाता है तो K बिन्दु से ऊपर प्रत्येक कीमत वृद्धि के कारण इसके बाज़ार के हिस्से का एक भाग दूसरे अल्पाधिकारियों को मिल जाएगा। इसका प्रभाव इस हद तक होगा कि अधिक कीमत लेने पर भी उसे कुल आय कम मिलेगी। इसका अर्थ यह है कि K बिन्दु से ऊपर अल्पाधिकारी का मांग वक्र अधिक लोचदार हो जाएगा अर्थात् K बिन्दु से ऊपर मांग वक्र अधिक चपटा हो जाएगा। दूसरी ओर यदि अल्पाधिकारी K बिन्दु से नीचे कोई कीमत रखने की कोशिश करता है ताकि वह अन्य विक्रेताओं से अधिक मात्रा में बेच सके तो इससे उसके प्रतिद्वन्द्वी भी मजबूर होकर कीमत कम कर देंगे। इस प्रकार वह अपनी बिक्री नहीं बढ़ा सकेगा और यह स्थिति अपूर्ण प्रतियोगिता की सामान्य स्थिति जैसी होगी। दूसरे शब्दों में K बिन्दु से नीचे औसत आय वक्र अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की औसत आय वक्र जैसा होगा।

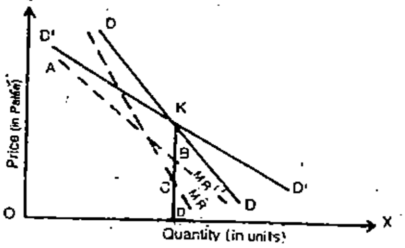

8.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 i) परिवर्ती ii) परिवर्ती iii) नियत iv) नियत v) नियत vi) नियत vii) परिवर्ती viii) परिवर्ती/नियत

5 i) गलत ii) सही iii) गलत iv) गलत v) गलत vi) गलत vii) गलत viii) गलत

ख 3 i) गलत ii) गलत iii) गलत iv) सही v) गलत vi) सही vii) गलत viii) गलत

4

औसत उत्पाद	सीमांत उत्पाद
127.3	-
123.4	88
119.4	80
115.3	70
111.3	60
106.7	50

8.9 स्वपरख प्रश्न

1 उत्पादन की परिभाषा बताइए। उत्पादन का सिद्धांत क्या है ?

2 प्राथमिक और मध्यवर्ती आगतों के बीच अंतर बताइए।

3 अनेक क्षेत्रों में उत्पादन के सिद्धांत के औचित्य की व्याख्या कीजिए।

4 उत्पादन फलन की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।

5 नियत और परिवर्ती आगतों के बीच अंतर बताइए। उत्पादन के सिद्धांत में इस अंतर का क्या महत्व है ?

6 कुल, औसत और सीमांत उत्पाद की सहायता से परिवर्ती अनुपातों के नियम की व्याख्या कीजिए।

7 ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम की व्याख्या कीजिए। उसकी धारणाएँ भी बताइए। क्या कृषि पर भी यह नियम लागू होता है ?

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए ये प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 9 उत्पादन फलन-II

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 अनुमापी प्रतिफल के नियम
 9.2.1 अनुमापी प्रतिफल के नियम का विवरण
 9.2.2 उत्पादन फलन और अनुमापी प्रतिफल
9.3 समोत्पाद वक्र और समान लागत
 9.3.1 समोत्पाद वक्र
 9.3.2 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर
 9.3.3 समोत्पाद वक्र के लक्षण
 9.3.4 समान लागत के लक्षण
 9.3.5 कारकों का न्यूनतम लागत संयोजन
9.4 समोत्पाद वक्र और अनुमापी प्रतिफल के नियम
 9.4.1 स्थिर अनुमापी प्रतिफल
 9.4.2 वर्धमान अनुमापी प्रतिफल
 9.4.3 ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल
9.5 बड़े पैमाने की किफायतें और अलाभ
 9.5.1 बड़े पैमाने की किफायतें
 9.5.2 बड़े पैमाने के अलाभ
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.9 स्वपरख प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप :

- अनुमापी प्रतिफल के नियमों की व्याख्या कर सकें
- उत्पादन फलन का विवरण दे सकें
- समोत्पाद वक्र और समान लागत वक्र का विवरण दे सकें
- समोत्पाद वक्र के लक्षणों को बता सकें
- कारकों के न्यूनतम लागत संयोजन की पहचान कर सकें
- बड़े पैमाने की किफायतों और बड़े पैमाने के अलाभ के स्वरूप के बीच के अंतर को स्पष्ट कर सकें
- समोत्पाद वक्रों और अनुमापी प्रतिफल के बीच के संबंध के बारे में बता सकें।

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि कारक अनुपातों में परिवर्तन होने से कुल उत्पादन में परिवर्तन आता है। किसी एक या कुछ कारकों की मात्रा को नियत रखकर तथा अन्य कारकों की मात्रा में हेर-फेर करके कारक अनुपातों में परिवर्तन किया जाता है। इस इकाई में आप अनुमापी प्रतिफल के नियमों के स्वरूप के संबंध में पढ़ेंगे, जबकि सभी कारकों में वृद्धि दिए हुए अनुपात में की जाती है। अनुमापी प्रतिफल के नियमों की व्याख्या उत्पादन फलन, संख्यात्मक दृष्टांतों और समोत्पाद वक्रों की सहायता से की जाएगी। यह भी विवेचन किया जाएगा कि कोई उत्पादक फर्म कारकों के न्यूनतम लागत संयोजन के संबंध में कैसे निर्णय करती है। वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति की व्याख्या के लिए बड़े पैमाने की किफायतों के संबंध में विचार किया जाएगा। अंत में बड़े पैमाने के अलाभ की संकल्पना के संबंध में भी विचार किया जाएगा।

9.2 अनुमापी प्रतिफल के नियम (The Laws of Return to Scale)

दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत का संबंध आगत-निर्गत के बीच के संबंध की उस स्थिति के साथ होता है जिसके अंतर्गत सभी आगतें परिवर्ती कारक होती हैं। दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत निर्गतों में होने वाले उन परिवर्तनों का विश्लेषण करता है, जबकि किसी विशेष उत्पादन फलन में सभी कारकों या आगतों में एक साथ परिवर्तन किया जाता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत के अंतर्गत निर्गत के उस व्यवहार का अध्ययन किया जाता है जो परिमाण में होने वाले परिवर्तनों के उत्तर में किए जाते हैं। परिमाण में होने वाली वृद्धि का यह अर्थ होता है कि सभी आगतों या कारकों में एक ही अनुपात में वृद्धि की जाती है। परिमाण में वृद्धि तब होती है, जब कारक अनुपातों को अपरिवर्तित रखकर सभी कारकों या आगतों में वृद्धि की जाती है। दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत अनुमापी प्रतिफल के नियमों का दूसरा नाम है और इस प्रकार यह परिमाण में होने वाले परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पादन में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करने का प्रयास है। इसे और अधिक सही ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनुमापी प्रतिफल का नियम यह स्पष्ट करता है कि सभी आगतों में होने वाली एक साथ और समानुपातिक वृद्धि कुल उत्पादन को उसके विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार प्रभावित करती है।

9.2.1 अनुमापी प्रतिफल के नियम का विवरण

जब कोई उत्पादन इकाई अपने सभी आगतों में समानुपातिक वृद्धि करती है, तब तकनीकी रूप में तीन संभावनाएँ होती हैं, अर्थात् कुल उत्पादन में समानुपातिक वृद्धि हो सकती है, अनुपात से अधिक वृद्धि हो सकती है या अनुपात से कम वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार, अनुमापी प्रतिफल के तीन नियम होते हैं, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है :

1 **स्थिर अनुमापी प्रतिफल** (constant returns to scale) : यदि कोई उत्पादन इकाई अपनी सभी आगतों में एक दी हुई मात्रा में वृद्धि करती है (जैसे x %) और कुल उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि होती है (जैसे U x %) तब उसका अभिप्राय होता है कि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है। उदाहरणार्थ, यदि सभी आगतों को दुगुना करने से कुल उत्पादन भी दुगुना हो जाता है। ऐसा होना तभी संभव हो सकता है यदि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति हो। संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि आगतों में होने वाली वृद्धि के अनुपात में होती है, तब उससे अभिप्राय होता है कि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

2 **वर्धमान अनुमापी प्रतिफल** (increasing returns to scale) : यदि कोई उत्पादन इकाई अपने सभी आगतों में वृद्धि x % में करती है और उसके फलस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि x % से अधिक होती है, तब वह वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। उदाहरणार्थ, यदि सभी आगतों को दुगुना करने के फलस्वरूप कुल उत्पादन में दुगुनी से अधिक वृद्धि होती है, ऐसा होना तभी संभव हो सकता है यदि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति हो। संक्षेप में, इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि आगतों में होने वाली समानुपातिक वृद्धि से अधिक हो तब उसका अर्थ यह होता है कि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

3 **ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल** (diminishing returns to scale) : यदि कोई उत्पादन इकाई अपने सभी आगतों में वृद्धि x % में करती है और उसके फलस्वरूप कुल उत्पादन में वृद्धि x % से कम होती है तब उसका अभिप्राय यह होता है कि ह्रासमान प्रतिफल की स्थिति है। उदाहरणार्थ, यदि सभी आगतों को दुगुना करने के फलस्वरूप कुल उत्पादन में दुगुनी से कम वृद्धि होती है। ऐसा होना तभी संभव हो सकता है यदि ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति हो। संक्षेप में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि आगतों में होने वाली समानुपातिक वृद्धि से कम है तब उसका अर्थ यह होता है कि ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

9.2.2 उत्पादन फलन और अनुमापी प्रतिफल (production function and returns to scale)

अनुमापी प्रतिफल के नियमों की और अधिक सही ढंग से व्याख्या उत्पादन फलन की सहायता से की जा सकती है, जिसके संबंध में इकाई-8 में पहले ही बताया जा चुका है। हम एक ऐसा उत्पादन मॉडल लेते हैं, जिसमें पूंजी (K) और श्रम (L) नामक केवल दो परिवर्ती आगतें तथा एक वस्तु x है। इस स्थिति में उत्पादन फलन की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जा सकती है :

$$Qx = f(K,L)$$

जहाँ Qx वस्तु x की मात्रा का सूचक है, तथा K पूंजी का और L नियोजित श्रम का द्योतक है। हम यह भी मान लेते हैं कि K और L दोनों ही में एक ही अनुपात k में वृद्धि की जाती है। यह संभव है कि यदि आगतों में अनुपात k में वृद्धि की जाती है, तब कुल उत्पादन में अनुपात k में वृद्धि नहीं भी हो सकती है। मान लीजिए कि अनुपातों का प्रतिनिधित्व ऐसे अनुपात में करते हैं कि उत्पादन में वृद्धि h हो। ऐसी स्थिति में उत्पादन फलन की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जा सकती है :

$$h\,Qx = f(pK, pL)$$

जहाँ पर आगतों K और L में p–समय वृद्धि के फलस्वरूप Qx में h–समय वृद्धि का द्योतक h है। अनुपात h, p के बराबर, उससे अधिक या उससे कम हो सकता है। तदनुसार हमारे सम्मुख अनुमापी प्रतिफल के तीन नियम आते हैं :

i) यदि $h = p$ तब उत्पादन फलन स्थिर अनुमापी प्रतिफल का द्योतक है।

ii) यदि $h > p$ तब उत्पादन फलन वर्धमान अनुमापी प्रतिफल का द्योतक है।

iii) यदि $h < p$ तब उत्पादन फलन ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल का द्योतक है।

अनुमापी प्रतिफल के तीन नियमों की व्याख्या के लिए हम एक संख्यात्मक दृष्टांत लेते हैं। मान लीजिए कि कोई उत्पादन इकाई 5 श्रमिकों और एक मशीन को काम पर लगाती है, जिसके फलस्वरूप किसी वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन होता है। यह भी मान लेते हैं कि हम एक दीर्घकालिक स्थिति के संबंध में विचार कर रहे हैं जिसमें श्रम और मशीनें दोनों ही परिवर्ती आगतें हैं। हम मान लेते हैं कि उत्पादन इकाई श्रम और पूंजी की मात्रा को दुगुनी करके 10 श्रमिकों और 2 मशीनों से काम लेती है। इस स्थिति में यदि उत्पादन की मात्रा 200 इकाइयाँ हो जाती है तब इसका अर्थ होता है कि स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है क्योंकि श्रम और पूंजी में 100% वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन में 100% वृद्धि हो गई।

फिर हम यह मान लेते हैं कि 10 श्रमिकों और 2 मशीनों को काम पर लगाने से कुल उत्पादन 300 इकाइयों तक हो जाता है। इसका अर्थ यह होता है कि श्रम और पूँजी में 100% की वृद्धि से उत्पादन में वृद्धि 200% हो गई। इसे वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है। उसी प्रकार, हम मान लेते हैं कि 10 श्रमिकों और 2 मशीनों को काम पर लगाने से उत्पादन में वृद्धि होकर 150 इकाइयाँ हो जाती हैं। इस स्थिति में श्रम और पूँजी में 100% वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन में 50% की वृद्धि हुई। इसे ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है।

9.3 समोत्पाद वक्र और समान लागत (Isoquants and Isocosts)

उत्पादन फलन को प्रस्तुत करने की विभिन्न प्रणालियाँ हैं। इसका प्रस्तुतीकरण तालिकाओं, गणितीय समीकरणों तथा कुल, औसत और सीमांत उत्पाद वक्रों के द्वारा किया जा सकता है। यदि दो कारकों या आगतों को स्पष्ट रूप में दिखाना होता है, तब उत्पादन फलन को समोत्पाद वक्रों (equal product curves यानि isoquants) के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। किसी उत्पादन इकाई के अनुकूलतम कारक संयोजन (optional factors combination) को जानने के लिए, जो स्वयं भी उत्पादन के सिद्धांत का महत्वपूर्ण अंग है, हमें समोत्पाद वक्रों के अतिरिक्त समान लागतों के संबंध में भी विचार करना होगा।

9.3.1 समोत्पाद वक्र

समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है, जिस पर दो कारकों, जैसे श्रम और पूँजी, के विभिन्न संयोजनों से प्रति समय इकाई में समान उत्पादन स्तर प्राप्त होता है। नीचे की तालिका 9.1 में किसी वस्तु की 100 इकाइयों का उत्पादन करने वाली एक फर्म की एक प्राक्कलनात्मक समोत्पाद सारणी को प्रस्तुत किया है।

तालिका 9.1

समोत्पाद वक्र का सारणीबद्ध प्रस्तुतीकरण

संयोजन	श्रम लागत	पूंजी लागत	कुल उत्पादन (इकाइयों में)
a	5	9	100
b	10	6	100
c	15	4	100
d	20	3	100

तालिका 9.1 में दी गई सूचना को चित्र 9.1 में प्रस्तुत किया गया है जिनमें श्रम इकाइयों की माप x–अक्ष पर तथा पूंजी इकाइयों की माप y–अक्ष पर की गई है। बिन्दु a श्रम की 5 इकाइयों और पूंजी की 9 इकाइयों के संयोजन का प्रतिनिधित्व करता है, जो 100 इकाइयाँ उत्पादित करते हैं। उसी प्रकार, बिन्दु b श्रम की 10 इकाइयों और पूंजी की 6 इकाइयों के संयोजन का प्रतिनिधित्व करता है जिससे 100 इकाइयाँ उत्पादित होती हैं। इसी प्रकार, इस चित्र में बिन्दु c और d को भी दिखाया गया है। a, b, c और d बिन्दु को मिलाने पर समोत्पाद वक्र बनता है।

चित्र 9.1

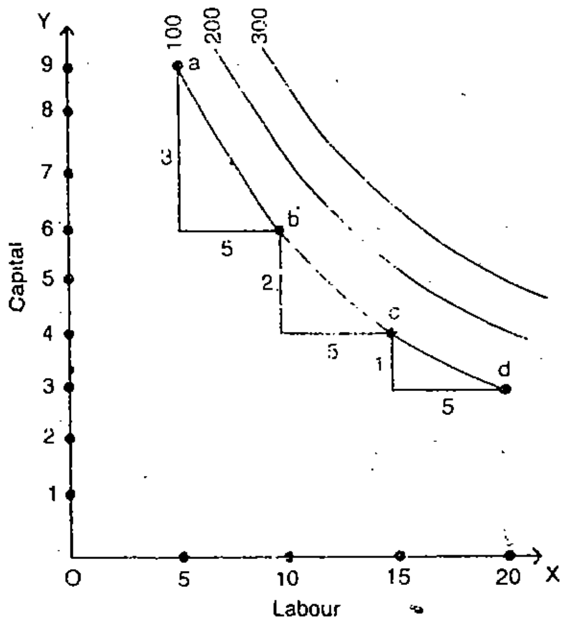

विभिन्न परिमाणों में उत्पादन को प्रस्तुत करने वाले अनेक समोत्पाद वक्रों को समोत्पाद मानचित्र कहा जाता है। चित्र 9.1 में क्रमशः 100 इकाइयों, 200 इकाइयों और 300 इकाइयों को प्रस्तुत करने वाले तीन समोत्पाद वक्रों को दिया गया है, जिन इकाइयों का उत्पादन श्रम और पूँजी के इन दो कारकों के किन्हीं भिन्न संयोजनों की सहायता से भी किया जा सकता है।

9.3.2 तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर

यह स्मरणीय है कि समोत्पाद वक्र के साथ-साथ गति का यह अर्थ होता है कि किसी एक कारक का दूसरे कारक के लिए प्रतिस्थापन किया जा रहा है। उदाहरणार्थ, बिन्दु a से बिन्दु b तक गति का अभिप्राय यह होता है कि 3 इकाई पूंजी के लिए 5 इकाई श्रम का प्रतिस्थापन किया जा रहा है या दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह होता है कि पूँजी की 3 इकाइयाँ उतना ही उत्पादन कर सकती हैं जितना कि श्रम की 5 इकाइयाँ कर सकती हैं। जिस दर से एक कारक दूसरे कारक का स्थान ले सकता है, उसे **तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर** कहा जाता है। **सामान्य शब्दों में पूंजी के लिए श्रम की तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है - उत्पादन के स्तर का ज्यों का त्यों बने रहने की स्थिति में पूंजी की वह मात्रा जिसका स्थान श्रम की एक इकाई ले सके।**

ध्यान देने की बात यह है कि समोत्पाद वक्र के बिन्दु a से बिन्दु d की ओर हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे पूँजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर गिरती जाती है। उदाहरणार्थ, a से b की ओर बढ़ने पर हम पाते हैं कि 2 इकाई पूँजी के लिए 5 इकाई श्रम का प्रतिस्थापन होता है तथा c से d की ओर बढ़ने पर एक इकाई पूंजी के लिए 5 इकाई श्रम का प्रतिस्थापन होता है। समोत्पाद वक्र पर बाईं से दाईं ओर बढ़ने पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर जिस दर से गिरती है वह उस मात्रा का मापक है, जितना कि दो कारकों का

परस्पर प्रतिस्थापन किया जा सकता है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर के गिरने की दर जितनी ही कम होगी, दो कारकों के बीच स्थानापत्ति योग्यता (substitutability) उतनी ही अधिक होगी।

चरम स्थिति में यदि दो कारकों के बीच प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर रहती है, तब ये दो कारक परस्पर पूर्ण स्थानापन्न होते हैं। अतः समोत्पाद वक्र बाईं से दाईं ओर गिरते हुए सीधी रेखा के रूप में होगा। वास्तव में श्रम के लिए पूँजी का प्रतिस्थापन जैसे-जैसे अधिकाधिक होगा वैसे-वैसे तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर कम होती जाएगी। इसीलिए समोत्पाद वक्र केन्द्र की ओर उत्तल (convex) होता है, जैसा कि चित्र 9.1 में दिखाया गया है।

पूँजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की अभिव्यक्ति पूँजी के सीमांत वस्तु उत्पाद और श्रम के सीमांत वस्तु उत्पाद के बीच के अनुपात के रूप में भी की जा सकती है (जैसा कि इकाई -8 में बताया जा चुका है)। इस नतीजे पर हम निम्नलिखित प्रकार से पहुँचते हैं :

पूँजी में कमी × पूँजी का सीमांत वस्तु उत्पाद = श्रम में वृद्धि × श्रम का सीमांत वस्तु उत्पाद या $\Delta K . MPK = L . MPL$

या $\frac{\Delta K}{\Delta L} = \frac{MP}{MPK}$ लेकिन $\frac{\Delta K}{\Delta L}$ पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर है जिसकी अभिव्यक्ति $\frac{MRTS}{LK}$ के रूप में की जाती है। अतः $\frac{MRTS}{LK} = \frac{MPL}{MPK}$

सरल शब्दों में उपर्युक्त संबंध ये यह आशय होता है कि किसी समोत्पाद वक्र के बिन्दु a से बिन्दु d की ओर हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं, वैसे-वैसे अधिकाधिक श्रमिकों को काम पर लगाया जाएगा, श्रम का सीमांत वस्तु उत्पाद कम होगा तथा कुल उत्पादन में वृद्धि, श्रम और श्रम के सीमांत वस्तु उत्पाद में परिवर्तन के फलस्वरूप होगी। इसके अतिरिक्त, अधिकाधिक श्रमिकों को जैसे-जैसे काम पर लगाया जाएगा, वैसे-वैसे कम पूँजी लगाई जाएगी, परन्तु पूँजी के सीमांत वस्तु उत्पाद में वृद्धि होगी और कुल उत्पादन में वृद्धि पूँजी में परिवर्तन और पूँजी के सीमांत वस्तु उत्पादन के गुणनफल के रूप में होगी। चूँकि समोत्पाद वक्र पर कुल उत्पादन अपरिवर्तित रहता है, अतः हम उत्पादन में कमी को उत्पादन में वृद्धि के बराबर मानते हैं और इस प्रकार जैसा कि ऊपर दिखाया गया है हम परिणाम $\frac{MRTS}{LK} = \frac{MPL}{MPK}$ तक पहुँचते हैं। इसलिए तकनीकी प्रतिस्थापन की ह्रासमान सीमांत दर का सिद्धांत ह्रासमान सीमांत प्रतिफल के नियम का विस्तार मात्र है, जो श्रम और पूँजी की सीमांत वस्तु उत्पादिता के बीच के संबंधों तक होता है। इसके अतिरिक्त, हम यह भी देख सकते हैं कि कुल उत्पादन के उसी स्तर को बनाए रखने के लिए कम से कम मात्रा में पूँजी का स्थान श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ किस प्रकार लेती हैं।

9.3.3 समोत्पाद वक्र के लक्षण

अनधिमान वक्र (indifference curve) की संकल्पना के संबंध में इकाई-5 में पहले ही बताया जा चुका है। समोत्पाद वक्र के लक्षण अनधिमान वक्र के लक्षणों के ही जैसे हैं। समोत्पाद वक्र के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित है :

1 समोत्पाद वक्र बाईं से दाईं ओर नीचे की ओर गिरता है अर्थात् इसकी ढलान ऋणात्मक होती है। ऐसा इसलिए होता है कि एक आगत की मात्रा को जब बढ़ाया जाता है तब दूसरे आगत की मात्रा को घटाना होता है जिससे कुल उत्पादन स्थिर बना रहे।

2 दो समोत्पाद वक्र एक-दूसरे को काट नहीं सकते। यदि वे एक-दूसरे को काटें तब उसका अर्थ यह होगा कि कटान बिन्दु पर दो आगतों के दिए हुए संयोजन से दो भिन्न स्तरों में उत्पादन होगा। लेकिन ऐसा हो नहीं सकता। क्योंकि उत्पादन की तकनीकों में जब तक परिवर्तन नहीं होता तब तक एक ही आगत संयोजन से दो भिन्न स्तरों में उत्पादन कैसे हो सकता है।

3 समोत्पाद वक्र केन्द्र की ओर उत्तल होता है। इसकी उत्तलता का कारण है तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का ह्रासमान होना। समोत्पाद वक्र की उत्तलता से अभिप्राय यह भी होता है कि ह्रासमान सीमांत प्रतिफल का नियम लागू हो रहा है। तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर ह्रासमान इसलिए होती है कि किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में विभिन्न कारक एक-दूसरे के अपूर्ण स्थानापन्न होते हैं। समोत्पाद वक्र सामान्यतः केन्द्र की ओर उत्तल होता है।

दो कारकों के पूर्ण स्थानापन्न होने की स्थिति में समोत्पाद वक्र का आकार जैसा होता है, उसे चित्र 9.2 में दिखाया गया है।

चित्र 9.2

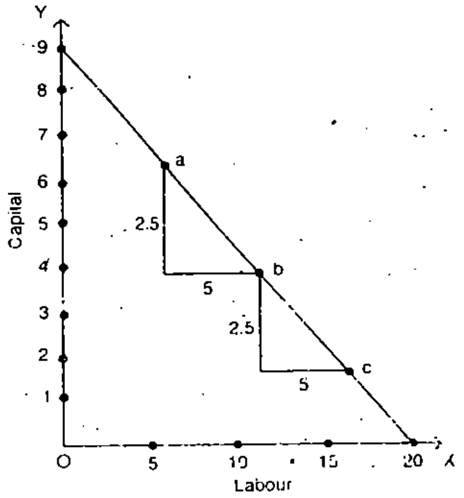

जब दो कारक एक-दूसरे के पूर्ण स्थानापन्न होते हैं, तब इनमें से प्रत्येक का प्रयोग दूसरे के स्थान पर भली-भांति किया जा सकता है। इसीलिए दो पूर्ण स्थानापन्न कारकों के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर बनी रहती है। ऐसी स्थिति में समोत्पाद वक्र का आकार सीधी रेखा के रूप में होता है। चित्र 9.2 को देखने पर हम पाते हैं कि बिन्दु a से बिन्दु b की ओर या बिन्दु b से बिन्दु c की ओर बढ़ने पर श्रम की पांच और इकाइयों को काम पर लगाने के लिए पूँजी की 2.5 इकाइयों को कम करना पड़ता है।

समोत्पाद वक्र के आकार के एक अन्य अपवाद की स्थिति वह होती है जब कारक पूर्णतः पूरक (perfect complements) होते हैं। इसे चित्र 9.3 में दिखाया गया है। इसमें हम देखते हैं कि समोत्पाद वक्र समकोण (right angle) के रूप में है। पूर्ण पूरक कारक वे होते हैं जिनका कि उत्पादन की प्रक्रिया में नियत अनुपात में संयुक्त रूप से प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार श्रम की 5 इकाइयाँ और पूंजी की 2 इकाइयाँ मिलकर Q स्तर का उत्पादन करती हैं। इनमें से एक कारक अर्थात् पूंजी की मात्रा को यदि बढ़ा दिया जाए परन्तु श्रम की मात्रा में समानुपातिक वृद्धि न की जाए तब उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं हो पाएगी।

चित्र 9.3

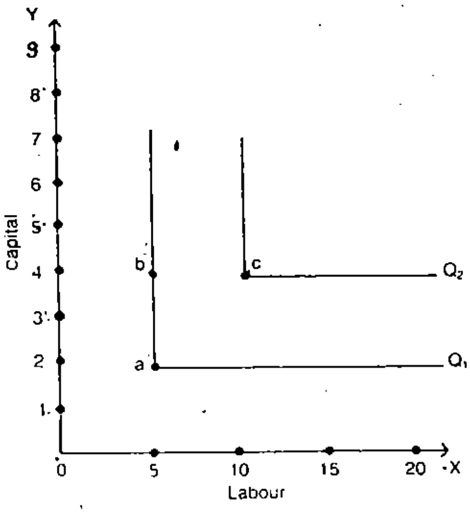

बिन्दु a पर श्रम की 5 इकाइयों और पूंजी की 2 इकाइयों के मेल से उत्पादन होता है। जैसा कि बिन्दु b से दिखाया गया है, पूँजी की मात्रा को बढ़ाकर यदि 4 कर दिया जाए तो भी उत्पादन Q_1 ही बना रहेगा। ऐसा इसलिए क्योंकि उत्पादन Q_2 मात्रा में करने के लिए श्रम की मात्रा को बढ़ाकर 10 इकाइयाँ करना आवश्यक है, जैसा कि बिन्दु C द्वारा दिखाया गया है।

9.3.4 समान लागत के लक्षण

दो कारकों के उत्पादन को समोत्पाद वक्र द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। कारकों की कीमतों का प्रतिनिधित्व समान लागत रेखा करती है। किसी दिए हुए स्तर के उत्पादन के लिए कोई उत्पादन इकाई कारकों के किस संयोजन का चयन करती है यह जानने के लिए समान लागत रेखा के संबंध में जानकारी अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

समान लागत रेखा दो कारकों या आगतों के उन विभिन्न संयोजनों को दिखाती है, जिनका क्रय कोई उत्पादन इकाई दी हुई मुद्रा या बजट से कर सकती है।

चित्र 9.4

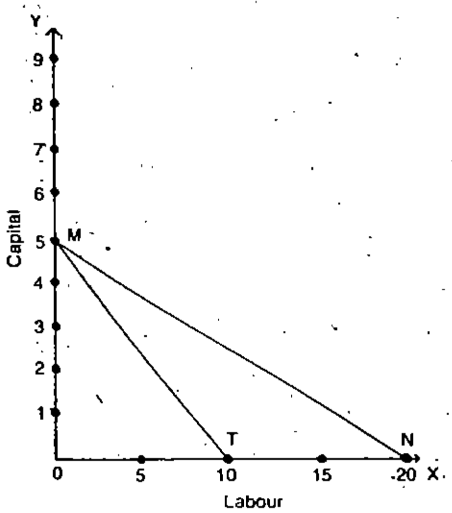

समान लागत रेखा को खींचने की विधि अत्यन्त सरल है। हम मान लेते हैं कि किसी उत्पादक फर्म के सम्मुख श्रम और पूंजी की कीमतें दी हुई होती हैं। मान लेते हैं कि किसी फर्म को 100 रुपये खर्च करने हैं। मज़दूरी दर यदि 5 रुपए प्रति श्रमिक है और ये सभी रुपए श्रम पर ही लगाने हैं तब काम पर लगाए जाने वाले मज़दूरों की अधिकतम संख्या $100 \div 5 = 20$ होगी। तदनुसार 20 को x अक्ष पर लिख लीजिए। उसी प्रकार, पूंजी की कीमत यदि प्रति इकाई 20 रुपए है तब अधिकतम 5 इकाई पूंजी खरीदी जा सकती है। अब y अक्ष पर 5 लिख लीजिए। फिर 5 और 20 को मिला दीजिए। इसके फलस्वरूप एक सीधी रेखा बनेगी, जिसे समान लागत रेखा कहा जाता है। यदि फर्म के पास की मुद्रा या व्यय की मात्रा कम होती है, तब समान लागत रेखा MN के समांतर नीचे की ओर आएगी और इसके विपरीत, यदि फर्म के पास की मुद्रा या व्यय की मात्रा बढ़ जाती है, तब यह रेखा के समांतर ऊपर की ओर जाएगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि समान लागत रेखा दो बातों पर निर्भर करती है : (i) उत्पादन के कारकों की कीमतें; और (ii) उत्पादक इकाई द्वारा कारकों पर किया जाने वाला कुल व्यय। समान लागत रेखा की ढलान अर्थात् $\frac{OM}{ON}$ श्रम और पूँजी की कीमतों के अनुपात अर्थात

$\frac{OM}{ON} = \frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{पूंजी की कीमत}}$ को प्रदर्शित करती है।

व्यय के ज्यों का त्यों बने रहने की स्थिति में यदि कारकों की कीमतों में परिवर्तन होता है, तब समान लागत रेखा में भी परिवर्तन आ जाएगा। उदाहरणार्थ, यदि व्यय सौ रुपया ही बना रहता है, परन्तु श्रम की कीमत दुगुनी होकर प्रति इकाई 5 रुपए से बढ़कर 10 रुपए हो जाती है तब फर्म केवल 10 श्रमिकों को काम पर लगा पाएगी।

पूँजी की कीमत ज्यों की त्यों बनी रहती है। अब नई समान लागत रेखा MT होगी अर्थात् दो कारकों की कीमतों का अनुपात पहले के $\frac{OM}{ON}$ से ऊपर उठकर $\frac{OM}{OT}$ हो जाएगा।

9.3.5 कारकों का न्यूनतम लागत संयोजन (least cost combination of factors)

उत्पादन की तकनीकी स्थितियों को चित्रित करने वाले समोत्पाद वक्र के मानचित्र और कुल व्यय के विभिन्न स्तरों (श्रम और पूँजी की कीमतों का दिया हुआ होने पर) को चित्रित करने वाले समान लागत के मानचित्र का दिया हुआ होने पर आगतों के चयन के संबंध में हम उत्पादक संतुलन प्राप्त कर सकते हैं। उत्पादक की इच्छा हो सकती है कि वह दिए हुए स्तर के उत्पादन की लागत को न्यूनतम करे या दी हुई लागत पर उत्पादन स्तर को अधिकतम सीमा तक ले जाए। हम एक ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें उत्पादक ने उत्पादन के स्तर के संबंध में पहले से ही निर्णय कर लिया है और वह कारकों के उस संयोजन को जानना चाहता है जिससे कुल उत्पादन लागत इतनी कम हो जाए कि कुल लाभ अधिकतम हो सके। चित्र 9.5 के बिन्दु P पर उत्पादक के संतुलन को प्रस्तुत किया गया है जिसपर उत्पादन स्तर Q_1 को प्राप्त करने के लिए श्रम की 10 इकाइयों और पूंजी की 2 .5 इकाइयों को काम में लाया जाता है।

चित्र 9.5

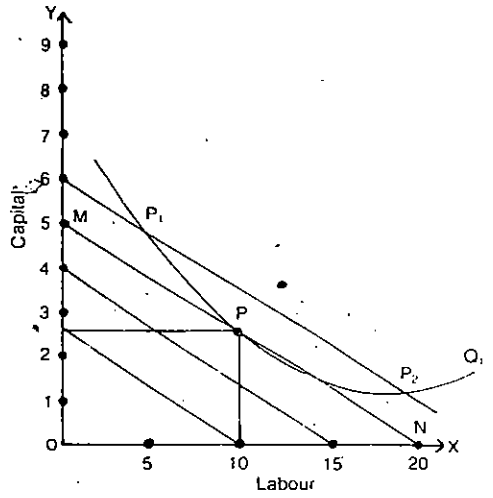

स्तर Q_1 का उत्पादन P, P_1, P_2 जैसे किसी भी कारक संयोजन द्वारा किया जा सकता है, जो पूंजी समोत्पाद वक्र पर हैं। हम देख सकते हैं कि बिन्दु P पर कुल लागत न्यूनतम है जहाँ पर उत्पादन Q_1 को चित्रित करने वाले समोत्पाद वक्र की स्पर्श रेखा समान लागत रेखा MN है। किसी भी अन्य बिन्दु पर लागत न्यूनतम नहीं है, इसलिए यह स्पष्ट है कि समान लागत रेखा के साथ वाले दिए हुए समोत्पाद वक्र के स्पर्श बिन्दु से दिए हुए उत्पाद Q_1 के उत्पादन के लिए कारकों का न्यूनतम लागत संयोजन प्राप्त होता है।

पहले ही दिखाया जा चुका है कि समान लागत रेखा की ढलान श्रम की कीमत और पूंजी की कीमत के बीच के अनुपात को चित्रित करती है। इसके अतिरिक्त समोत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर की स्पर्श रेखा की ढलान पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को बताती है। इस प्रकार बिन्दु P पर समान लागत रेखा और समोत्पाद वक्र पर स्पर्श रेखा की ढलान एक ही होती है, अर्थात्

$$\frac{\text{श्रम की कीमत}}{\text{पूँजी की कीमत}} = \frac{MRTS}{LK} = \frac{MPL}{MPK}$$

बोध प्रश्न क

1 अनुमापी प्रतिफल से क्या अभिप्राय होता है ?

....

....

....

....

2 समोत्पाद वक्र क्या है ?

....

....

....

....

3 समान लागत रेखा क्या है ?

....

....

....

....

4 समोत्पाद वक्र के तीन प्रमुख लक्षणों को बताइए।

....

....

....

....

5 बताइए कि निम्नलिखित में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलतः

i) अनुमापी प्रतिफल में सभी आगतों में एक समान अनुपात में परिवर्तन होता है।

ii) दीर्घकाल में केवल स्थिर अनुमापी प्रतिफल मिलता है।

iii) यदि किसी फर्म के सभी आगतों में 5% की वृद्धि करने पर उत्पादन में वृद्धि 10% की होती है, तब उसमें ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल का नियम लागू हो रहा है।

iv) तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर सदा दो कारकों के कीमत अनुपात के बराबर होती है।

v) पूर्ण स्थानापन्न वस्तुओं की स्थिति में समोत्पाद वक्र L आकार का होता है।

vi) समोत्पाद वक्र केन्द्र की ओर उत्तल इसलिए होता है कि तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर बनी रहती है।

9.4 समोत्पाद वक्र और अनुमापी प्रतिफल के नियम (isoquants and Laws of Return to Scale)

समोत्पाद वक्र की संकल्पना का प्रयोग अनुमापी प्रतिफल को अभिव्यक्त करने के लिए किया जा सकता है। चित्र 9.6 में हम देखेंगे कि अनुमापी प्रतिफल का चित्रण किस प्रकार किया गया है। 100, 200, 300 और 400 इकाइयों के उत्पादन स्तर को दिखाने वाले चार समोत्पाद वक्रों को बनाया गया है। रेखा OS केन्द्र से होकर जाती है। चूँकि OS रेखा केन्द्र से होकर जाती है, अतः श्रम और पूंजी के बीच का अनुपात सदा एक समान बना रहता है, हालाँकि श्रम और पूंजी की निरपेक्ष मात्रा सदा बढ़ती जाती है। अतः OS रेखा के साथ-साथ श्रम और पूंजी में वृद्धि परिमाण में वृद्धि को दिखाती है।

चित्र 9.6

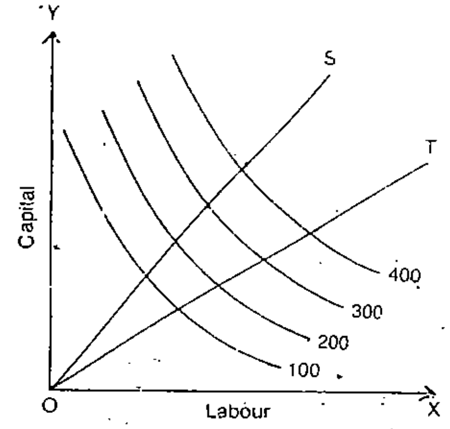

9.4.1 स्थिर अनुमापी प्रतिफल (Constant Returns to Scale)

उत्पादन में वृद्धि यदि उसी अनुपात में होती है, जिस अनुपात में सभी कारकों में वृद्धि की जाती है, तब वह स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। चित्र 9.7 में समोत्पाद वक्र की सहायता से स्थिर अनुमापी प्रतिफल को दिखाया गया है।

चित्र 9.7

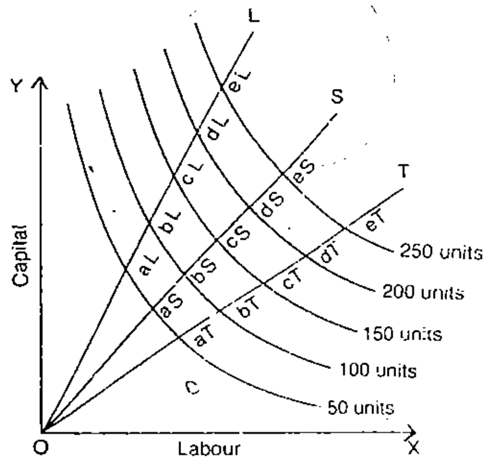

50, 100, 150, 200 और 250 इकाइयों के उत्पादन को दिखाने वाले पांच समोत्पाद वक्रों को खींचा गया है, जिसके x–अक्ष पर श्रम को और y–अक्ष पर पूंजी को लिया गया है। OL, OS और OT नामक तीन अर्ध-रेखाओं (Rays) को केन्द्र से खींचा गया है। देखा जा सकता है कि क्रमिक समोत्पाद वक्र किसी अर्ध-रेखा के S, T या L पर सम-दूरस्थ (Equidistant) होते हैं। इस प्रकार, OS अर्ध-रेखा पर $a_s b_s = b_s c_s = c_s d_s = d_s a_s$। उसी प्रकार अर्ध रेखा OT पर $a_T b_T = b_T c_T = c_T d_T = d_T a_T$ है। अंत में यदि हम OL अर्ध-रेखा के संबंध में विचार करें तब $a_L b_L = b_L c_L = c_L d_L = d_L a_L$ है। पाँच क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की उसी दूरी का अर्थ यह होता है कि श्रम और पूंजी में वृद्धि यदि समान अनुपात में की जाती है, तब उत्पादन में भी वृद्धि उसी अनुपात में होगी।

9.4.2 वर्धमान अनुमापी प्रतिफल (Increasing Returns to Scale)

वर्धमान अनुमापी प्रतिफल से अभिप्राय यह होता है कि सभी आगतों या कारकों में वृद्धि जिस अनुपात में होती है, उसकी अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि अधिक अनुपात में होती है। चित्र 9.8 में समोत्पाद वक्रों की सहायता से वर्धमान अनुमापी प्रतिफल को दिखाया गया है।

चित्र 9.8

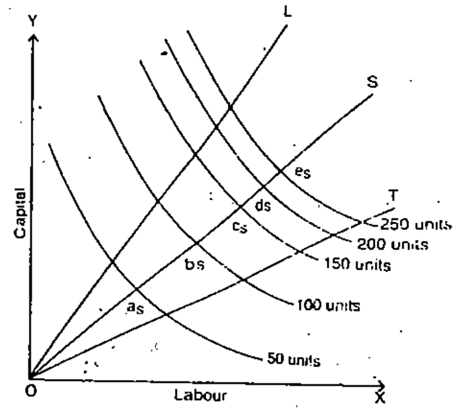

x–अक्ष पर श्रम को तथा y–अक्ष पर पूँजी को लेकर 50, 100, 150, 200 और 250 इकाइयों के उत्पादन का चित्रण करने वाले पाँच समोत्पाद वक्रों को खींचा गया है। अर्ध-रेखा OS को केन्द्र से खींचा गया है और यह देखा जा सकता है कि अर्ध रेखा OS के साथ क्रमिक समोत्पाद वक्र कम होती हुई दूरी पर है। हम देखते हैं कि $a_s c_s < a_s b_s$; $c_s d_s < b_s c_s$ और $d_s e_s < c_s d_s$। OF और DL नामक अन्य अर्ध रेखाओं पर भी यही लागू होगा। इसे हम वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति इसलिए मानते हैं कि आगतों (श्रम और पूँजी) में वृद्धि को कम करते जाने पर भी प्रत्येक स्तर पर उत्पादन में समान वृद्धि होती है।

9.4.3 ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल (Diminishing Returns to Scale)

सभी आगतों में वृद्धि जिस अनुपात में की जाती है, उसकी अपेक्षा उत्पादन में वृद्धि यदि कम अनुपात में होती है, तब उसे ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है। चित्र 9.9 में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल को दिखाया गया है।

चित्र 9.9

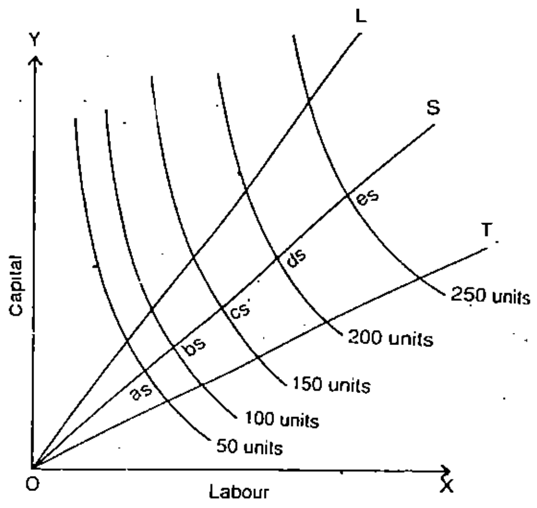

x–अक्ष पर श्रम को तथा y–अक्ष पर पूँजी को लेकर 50, 100, 150, 200 और 250 इकाइयों के उत्पादन को चित्रित करने वाले समोत्पाद वक्रों को खींचा गया है। अर्ध रेखा OS को केन्द्र O से खींचा गया है। इसमें देखा

जा सकता है कि क्रमिक समोत्पाद वक्र अर्ध रेखा OS के साथ-साथ बढ़ती हुई दूरी पर है। हम देखते हैं कि $b_s c_s > a_s b_s$, $c_s d_s > b_s c_s$ और $d_s c_s < c_s d_s$ । अन्य अर्ध रेखाओं के संबंध में भी ऐसा ही होगा। इसे ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति इसलिए माना जाता है क्योंकि आगतों (श्रम और पूंजी) में अधिकाधिक वृद्धि करने पर भी प्रत्येक स्तर पर उत्पादन में समान ही वृद्धि होती है। आपको यह नहीं समझना चाहिए कि विभिन्न उत्पादन फलन विभिन्न प्रकार के (स्थिर, वर्धमान या ह्रासमान) अनुमापी प्रतिफल को प्रदर्शित करते हैं। सामान्यतः एक ही उत्पादन फलन में वर्धमान, स्थिर और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की तीनों ही अवस्थाएँ आती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कोई उत्पादक फर्म जब उत्पादन कार्य की शुरूआत दीर्घकाल को नज़र में रखकर करती है या जब इसके परिमाण में वृद्धि होती है, तब यह फर्म पहले वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की अवस्था से गुजरती है, उसके बाद इसमें स्थिर अनुमापी प्रतिफल की अवस्था आती है और एक सीमा के बाद अंत में जब यह फर्म अपना विस्तार कार्य जारी रखती है, तब ह्रासमान प्रतिफल की प्रक्रिया की शुरूआत हो जाती है। वर्धमान, स्थिर और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल के इस सिलसिले के कारणों का विश्लेषण अगले भाग में किया जाएगा।

9.5 बड़े पैमाने की किफायतें और अलाभ (Economies and Diseconomies of Scale)

यह जानना महत्वपूर्ण है कि वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति क्यों होती है और अंत में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की शुरूआत क्यों होती है। बड़े पैमाने की किफायतों को वर्धमान अनुमापी प्रतिफल के लिए उत्तरदायी माना जाता है, परन्तु ऐसी किफायतें अनिश्चित अवधि तक जारी नहीं रह सकती। कुछ समय बाद बड़े पैमाने के अलाभ की स्थिति आ जाती है, जिस कारण ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की शुरूआत हो जाती है।

9.5.1 बड़े पैमाने की किफायतें (Economies of Scale)

बड़े पैमाने की किफायतें उन लाभों को कहा जाता है जो किसी प्लांट को अपने आकार को बढ़ाने और अपने कार्यों में विस्तार करने के फलस्वरूप प्राप्त होती हैं। बड़े पैमाने की किफायतों के चलते कोई फर्म इस स्थिति में हो जाती है कि वह कारक आगतों में जितनी वृद्धि करती है, उससे अधिक अनुपात में वह उत्पादन प्राप्त कर सके या आगतों की कीमतों को चुकाने के बाद और अधिक लाभ कमा सके। अनुकूलतम दृष्टि से देखा जाए तो प्लांट के आकार को बढ़ाने से उत्पादन की औसत लागत को कम किया जा सकता है। बड़े पैमाने की इन किफायतों को आंतरिक किफायतें (Internal Economies) भी कहा जाता है, क्योंकि ये किसी विशेष उत्पादक इकाई के लिए विशेष प्रकार की होती है और वह इकाई अपने उत्पादन के आकार को बढ़ाकर इन्हें प्राप्त करती है। बड़े पैमाने की कुछ किफायतों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1 **उच्च कोटि का विशेषीकरण और श्रम विभाजन :** उत्पादन का आकार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे मशीनों और श्रम के संबंध में अधिकाधिक विशेषीकरण लाना संभव हो जाता है। विशिष्ट (Specialised) मशीनों और श्रम के प्रयोग के चलते प्रति इकाई आगतों की उत्पादिता बढ़ जाती है। संचित प्रभावों के कारण अनुमापी प्रतिफल में बढ़ोत्तरी होती जाती है। उत्पादन का आकार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अधिकाधिक श्रमिकों को काम पर लगाया जाता है तथा उत्पादक इकाइयों को विशेषीकरण और श्रम विभाजन के अवसर प्राप्त होते हैं। जिस प्लांट का आकार बड़ा होता है, वह बड़ी मात्रा में श्रमिकों को काम पर लगा सकता है। इसके फलस्वरूप, वह प्रत्येक श्रमिक को किसी विशेष कार्य के लिए विशेषज्ञता प्राप्त करा सकता है जिससे वह श्रमिक अपने कार्य में कुशल हो जाता है और एक कार्य से दूसरे कार्य में जाने और अपने औज़ारों को बदलने में उसे समय नष्ट नहीं करना पड़ता। इस प्रकार, हम देखते हैं कि उत्पादन के आकार को बढ़ाने से बहुत बचत होती है। विशेषीकरण मशीनों के भी संबंध में हो सकता है, जिन्हें कोई फर्म किन्हीं विशेष कार्यों के लिए तैयार करती है।

2 **तकनीकी अविभाज्यताएँ** (Technical indivisibility) **:** उत्पादन की प्रक्रिया में काम में आने वाले कुछ कारक न्यूनतम आकार में उपलब्ध होते हैं। मशीनों के औज़ारों के संबंध में ऐसा विशेषतः होता है। उनका पूर्णतः उपयोग तभी किया जा सकता है जबकि उत्पादन बड़े आकार पर किया जाए। लेकिन उनके अविभाज्य या एकमुश्त (lumpy) होने के कारण उनका प्रयोग उत्पादन के छोटे स्तर पर भी करना होता है। छोटे आकार के उत्पादन में प्रयोग के लिए उनके आकार को उत्पादन में प्रयोग के लिए इन आगतों को विभाजित नहीं किया जा सकता। यदि उत्पादन का आकार अत्यन्त छोटा हो तो भी इनमें इन कारकों की अविभाज्यता के कारण इनका उपयोग एक न्यूनतम मात्रा में करना होता है। इसलिए सभी आगतों को बढ़ाकर जब उत्पादन के पैमाने को यदि उत्पादन का आकार अत्यन्त छोटा हो तो भी इनमें इन कारकों की अविभाज्यता के कारण इनका उपयोग एक न्यूनतम मात्रा में करना होता है। इसलिए सभी आगतों को बढ़ाकर जब उत्पादन के पैमाने को

बढ़ाया जाता है, तब एक-एक कारक की उत्पादिता बढ़ जाती है और इस प्रकार वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की क्रिया लागू हो जाती है।

3 **प्रबंधकीय किफायतें :** विशिष्ट मशीनों के ही समान प्रबंधकीय कौशल भी अविभाज्य होता है। मान लीजिए कि कोई प्रबंधक एक सप्ताह में 10,000 इकाइयों के उत्पादन की देख-रेख कर सकता है। लेकिन जिस फर्म में वह काम कर रहा है, वहाँ उसे एक सप्ताह में केवल 5,000 इकाइयों के उत्पादन की ही देख-रेख करनी पड़ रही है। इस प्रकार प्रबंध-लागत कम इकाइयों पर ही विभाजित हो रही है। अतः, हम देखते हैं कि उस फर्म में जब तक 10,000 इकाइयों का उत्पादन होगा, तब तक प्रति इकाई लागत घटती चली जाएगी अर्थात् श्रम और पूँजी आगतों को अधिक मात्रा में लगाने पर समानुपातिक दृष्टि से उत्पादन में अधिक वृद्धि होगी। किसी उत्पादक इकाई को कितनी प्रबंधकीय किफायतें प्राप्त होती हैं, यह प्रबंधक की कुशलता पर निर्भर करता है।

4 **श्रेष्ठ मशीनें :** उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने से श्रेष्ठ प्रकार की तथा अधिक विशिष्ट मशीनों के प्रयोग के फलस्वरूप कारकों की कुशलता बढ़ जाती है। अतः कोई कारक यदि एकमुश्त नहीं हो तथा सभी कारकों में समानुपातिक वृद्धि की जा सकती हो तो भी वर्धमान प्रतिफल की स्थिति लागू हो सकती है। ऐसा इसलिए कि और अधिक श्रेष्ठ तथा विशिष्ट मशीनों को काम में लाया जा सकता है। प्रारंभ में वर्धमान प्रतिफल होने का एक अन्य कारण है तकनीक की दृष्टि से और अधिक कुशल मशीनों का प्लांट में लगाने की संभावना का होना।

5 **आयामात्मक संबंध** (Dimensional relations) **:** वर्धमान अनुमापी प्रतिफल आयामात्मक संबंधों का भी विषय है। उदाहरणार्थ यदि किसी कमरे के आकार को $10' \times 5' = 50$ व.फी. से बढ़ाकर $20' \times 10' = 200$ व.फी. कर दिया जाता है तब कमरे का क्षेत्रफल दुगुने से भी अधिक हो जाता है। उसी प्रकार ईंटो तथा उनके साथ लगने वाली अन्य वस्तुओं की मात्रा को जब दुगुना कर दिया जाता है तब गोदाम की क्षमता दुगुनी से अधिक हो जाती है। यह वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। उसी प्रकार, पाइप की मोटाई यदि दुगुनी कर दी जाती है, तब जल का प्रवाह दुगुने से अधिक हो जाता है। इसी तर्क के आधार पर श्रम और पूंजी की मात्रा को दुगुना करने से उत्पादन दुगुने से अधिक हो जाता है।

9.5.2 बड़े पैमाने के अलाभ (Diseconomies)

बड़े पैमाने के अलाभ उन क्षतियों को कहा जाता है, जो किसी प्लांट द्वारा अपने आकार को बढ़ाने या अपने उत्पादन के पैमाने को एक विशेष स्तर से अधिक करने के फलस्वरूप उन्हें उठाना पड़ता है। बड़े पैमाने के अलाभों को आंतरिक अलाभ भी कहा जाता है, क्योंकि वे किसी विशेष उत्पादक इकाई के लिए विशेष प्रकार के होते हैं। बड़े पैमाने के कुछ अलाभों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1 **कुशल प्रबंध की सीमाएँ :** किसी उत्पादक इकाई का प्रबंध करने के अंतर्गत उत्पादन, विक्रय, विज्ञापन, परिवहन आदि क्रियाओं का नियंत्रण और समन्वय संबंधी कार्य आते हैं। किसी प्लांट का आकार जब एक सीमा के आगे बढ़ जाता है, तब शीर्षस्थ प्रबंधकों को मज़बूर होकर निचले स्तर के प्रबंधकों को कुछ दायित्व और अधिकार सौंपने पड़ते हैं। इसके फलस्वरूप नियंत्रण ढीला पड़ने लगता है और कार्य-कुशलता भी घटने लगती है। यदि सभी परिवर्ती कारकों में दिए हुए अनुपात में वृद्धि कर दी जाए तब भी कुल उत्पादन में उसी अनुपात में वृद्धि नहीं हो पाती।

2 **प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता :** यदि उत्पादन की परिभाषा प्राकृतिक संसाधनों को खान से निकालने के रूप में की जाए तब यह कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। उदाहरणार्थ, कोयले की खान के प्लांट को यदि दुगुना कर दिया जाए तब उसके फलस्वरूप कोयले का उत्पादन दुगुना नहीं भी हो सकता है। ऐसा इसलिए कि खान में कोयला सीमित मात्रा में होता है या कोयले के भंडार तक नीचे जाना संभव नहीं हो पाता। उसी प्रकार, मछली पकड़ने के लिए नौकाओं आदि की मात्रा यदि दुगुनी कर दी जाती है तब भी पकड़ी जाने वाली मछलियों की मात्रा दुगुनी नहीं भी हो सकती। ऐसा इसलिए कि मछलियाँ पकड़ने का काम जब बड़े पैमाने पर किया जाता है तब उनकी प्राप्यता घट भी सकती है।

यह बताना अत्यन्त कठिन है कि बड़े पैमाने के अलाभ की शुरुआत कब होती है और वे इतने अधिक प्रबल कब हो जाते हैं कि बड़े पैमाने की किफायतों से अधिक हो जाएँ। इस संबंध में इतना तो स्पष्ट है कि बड़े पैमाने के अलाभ महत्वपूर्ण तब हो जाते हैं जब बड़े पैमाने की किफायतें नगण्य हो जाती हैं। प्रबंध की कुशलता जब कम होने लगती है तो भी बड़े पैमाने की प्रौद्योगिकीय किफायतों का प्रभाव अलाभों पर उत्पादन के बहुत व्यापक क्षेत्रों पर पड़ सकता है। बड़े पैमाने के अलाभ मुख्यतः प्रबंध सम्बन्धी कारक के कारण होते हैं, जबकि बड़े पैमाने की किफायतें प्रौद्योगिकीय, प्रबंधकीय, तकनीकी या व्यक्तिगत कारणों से होती हैं।

बोध प्रश्न ख

1 बड़े पैमाने की किफायतें क्या हैं ?

....

....

....

2 बड़े पैमाने की प्रबंधकीय और प्रौद्योगिकीय किफायतों की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

3 बड़े पैमाने के अलाभ क्या हैं ?

....

....

....

4 रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) उत्पादन में वृद्धि यदि उसी अनुपात में होती है, जिस अनुपात में सभी आगतों में वृद्धि की जाती है, तब उसे .... अनुमापी प्रतिफल की स्थिति कहा जाता है।

ii) यदि क्रमिक समोत्पाद वक्र केन्द्र से प्रारंभ होने वाली अर्ध रेखा के ऊपर घटती हुई दूरी पर चले जाते हैं तब वहाँ .... अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है।

iii) यदि कुल उत्पादन की तुलना में आवश्यक आगतों में बढ़ते हुए अनुपात में वृद्धि होती है, तब वहाँ .... अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है।

iv) किसी फर्म में पहले ....अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है, फिर .... अनुमापी प्रतिफल की और अंततः .... अनुमापी प्रतिफल की।

v) किसी फर्म को बड़े पैमाने की किफायतों की प्राप्ति केवल उसके उत्पादन के .... को बढ़ाने के साथ ही होती है।

vi) पूँजी का एकमुश्त होना बड़े पैमाने की .... का कारण होता है।

vii) बड़े पैमाने के अलाभ के कारण ....अनुमापी .... है।

viii) किसी फर्म में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति .... में आती है।

9.6 सारांश

दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत का संबंध आगत-निर्गत के बीच के संबंध की उस स्थिति के साथ होता है, जिसके अंतर्गत सभी आगतें या कारक परिवर्ती कारक होते हैं। दीर्घकालिक उत्पादन सिद्धांत के अंतर्गत अनुमापी प्रतिफल के नियमों के संबंध में अध्ययन किया जाता है।

अनुमापी प्रतिफल के तीन नियम हैं : (1) स्थिर अनुमापी प्रतिफल, (2) वर्धमान अनुमापी प्रतिफल, और (3) ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल।

स्थिर अनुमापी प्रतिफल तब होते हैं, जब आगतों या कारकों में होने वाली वृद्धि के ही अनुपात में कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। वर्धमान अनुमापी प्रतिफल का नियम तब लागू होता है, जब आगतों में होने वाली वृद्धि से अधिक अनुपात में कुल उत्पादन में वृद्धि होती है और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति तब होती है, जब आगतों में होने वाली वृद्धि से कम अनुपात में कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। अनुमापी प्रतिफल के नियमों की व्याख्या उत्पादन फलन की सहायता से की जा सकती है।

समोत्पाद वक्र वह वक्र होता है, जिस पर दो कारकों, जैसे श्रम और पूंजी, के विभिन्न संयोजनों से प्रति समय इकाई में समान उत्पादन स्तर प्राप्त होता है। समोत्पाद वक्र बाएँ से दाईं ओर नीचे की ओर गिरता है। दो समोत्पादक वक्र एक-दूसरे को काट नहीं सकते। यह केन्द्र की ओर उत्तल होता है। समोत्पाद वक्र की उत्तलता से यह अभिप्राय होता है कि किसी कारक की अधिकाधिक इकाई का जैसे-जैसे प्रयोग किया जाता है, वैसे-वैसे दो कारकों के बीच तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर गिरती जाती है।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर, जैसे पूंजी के लिए श्रम, की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है — उत्पादन के स्तर के ज्यों का त्यों बने रहने की स्थिति में पूंजी की वह मात्रा जिसका स्थान श्रम की एक इकाई ले सके। पूँजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर पूंजी के लिए श्रम के सीमांत वस्तु उत्पाद के अनुपात के बराबर होती है। समोत्पाद वक्र के किसी बिन्दु पर खींचे गए ढाल स्पर्श रेखा (slope tangent) द्वारा भी इसे दिखाया जाता है।

दो कारकों के पूर्ण स्थानापन्न होने की स्थिति में समोत्पाद वक्र सीधी रेखा के रूप में होता है, जिसका अर्थ यह होता है कि तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर होती है। दो कारक यदि परस्पर पूर्ण पूरक होते हैं, तब समोत्पाद वक्र L आकार का होता है।

समान लागत रेखा दो कारकों के उन विभिन्न संयोजनों को प्रस्तुत करती है, जिनका क्रय दी हुई मुद्रा या बजट से किया जा सके। समान लागत रेखा की ढलान श्रम और पूंजी के बीच के कीमत अनुपात को बताती है। समोत्पाद वक्र और समान लागत के मानचित्र का दिया हुआ होने पर कोई उत्पादक कारकों के उस संयोजन को प्राप्त कर सकता है, जिससे उत्पादन की कुल लागत न्यूनतम हो जाए और कुल लाभ अधिकतम हो जाए। ऐसा उस बिन्दु पर होता है, जहाँ पर श्रम और पूंजी की कीमतों का अनुपात पूंजी के लिए श्रम के तकनीकी प्रतिस्थापन की उस सीमांत दर के बराबर होती है, जो श्रम और पूंजी के सीमांत वस्तु उत्पाद के अनुपात के भी बराबर होती है।

अनुमापी प्रतिफल के नियमों को समोत्पाद वक्रों की सहायता से प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की दूरी केन्द्र से जाती हुई अर्ध रेखा के साथ-साथ बराबर बनी रहती है, तब वह स्थिर अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। यदि क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की क्रमिक दूरी कम होती जाती है, तब वह वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है। उसी प्रकार, यदि क्रमिक समोत्पाद वक्रों के बीच की क्रमिक दूरी बढ़ती जाती है तब वह ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है।

किसी उत्पादक फर्म में पहले वर्धमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति होती है, फिर स्थिर अनुमापी प्रतिफल की और अंत में उत्पादन के आकार के बढ़ते जाने पर ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति आती है।

वर्धमान अनुमापी प्रतिफल बड़े पैमाने की उन किफायतों के कारण होते हैं, जो किसी उत्पादक इकाई द्वारा अपने कार्यों के आकार को बढ़ाने से होने वाले लाभ के रूप में होती हैं। बड़े पैमाने की किफायतों के होने के कारण हैं : (1) उच्च कोटि का विशेषीकरण और श्रम विभाजन, (2) तकनीकी अविभाज्यता या कुछ कारकों का एकमुश्त होना, (3) सीमांत अविभाज्यता, (4) उच्च कोटि की तकनीकों का प्रयोग, और (5) आयामात्मक संबंध।

बड़े पैमाने के अलाभ या उत्पादन के आकार को बढ़ाने से होने वाली क्षतियों का मुख्य कारण यह है कि उत्पादन की इकाइयों की विभिन्न क्रियाओं पर प्रबंध का नियंत्रण धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। कभी-कभी बड़े पैमाने के अलाभ प्राकृतिक संसाधनों की सीमितता के कारण भी होते हैं। बड़े पैमाने के अलाभों से पता चलता है कि ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल की स्थिति है।

9.7 शब्दावली

स्थिर अनुमानी प्रतिफल : सभी आगतों में एक ही साथ तथा समानुपातिक वृद्धि के फलस्वरूप कुल उत्पादन में होने वाली समानुपातिक वृद्धि।

समोत्पाद वक्र की उत्तलता : किसी समोत्पादक वक्र पर तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर के कम होते जाने की प्रवृत्ति।

बड़े पैमाने के अलाभ : किसी उत्पादन इकाई द्वारा अपने कार्यों के आकार को बढ़ाने के फलस्वरूप उसे होने वाली क्षति।

उत्पादक का संतुलन : उत्पादन का दिया हुआ होने पर उत्पादक कारकों का संयोजन इस प्रकार करना चाहता है कि कुल लागत न्यूनतम हो सके या आगत के दिया हुआ होने पर वह उस स्तर पर उत्पादन करना चाहता है कि कुल लाभ अधिकतम हो सके।

बड़े पैमाने की किफायतें : किसी उत्पादन इकाई को मिलने वाले वे लाभ जो उत्पादन के पैमाने को बढ़ाने के फलस्वरूप होते हैं।

वर्धमान अनुमापी प्रतिफल : सभी आगतों में एक साथ तथा समानुपातिक वृद्धि के फलस्वरूप कुल उत्पादन में अनुपात से अधिक होने वाली वृद्धि।

समोत्पाद वक्र: वह वक्र जिसपर दो कारकों के विभिन्न संयोजनों के कारण प्रति समय इकाई एक समान स्तर पर उत्पादन होता है।

समान लागत रेखा: दो कारकों के विभिन्न संयोजन, जिनका क्रय किसी दी हुई मुद्रा या बजट से किया जा सके।

तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर : किसी कारक की वह मात्रा जिसका स्थान किसी अन्य कारक की एक इकाई ले सके तथा उत्पादन का स्तर ज्यों का त्यों बना रहे।

पूर्ण स्थानापन्न वस्तुएँ : जब दो कारकों के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर स्थिर बनी रहती है।

पूर्ण पूरक : दो कारकों का संयोजन जिस अनुपात में किया जाता है, वे स्थिर होते हैं।

अर्ध रेखा : केन्द्र से जाती हुई रेखा, जो समोत्पाद वक्र को काटती है।

अनुमापी प्रतिफल : सभी आगतों में साथ-साथ तथा समानुपातिक वृद्धि जो कुल उत्पादन को प्रभावित करती है।

समोत्पाद वक्र की ढलान : किसी अन्य कारक के लिए किसी कारक के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर।

तकनीकी अविभाज्यता : वह कारक जिसका विभाजन मनचाहे ढंग से छोटी-छोटी इकाइयों के रूप में नहीं किया जा सकता।

9.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 5 i) सही ii) गलत iii) सही iv) गलत v) गलत vi) गलत

ख 4 i) स्थिर ii) वर्धमान iii) ह्रासमान iv) वर्धमान, स्थिर, ह्रासमान v) पैमाना
vi) किफायतें vii) ह्रासमान viii) अंतिम अवस्था

9.9 स्वपरख प्रश्न

1 अनुमापी प्रतिफल से क्या अभिप्राय होता है ?

2 समोत्पाद वक्र और समान लागत की संकल्पनाओं की व्याख्या कीजिए।

3 उत्पादन फलन की सहायता से अनुमापी प्रतिफल की व्याख्या कीजिए।

4 समोत्पाद वक्र की सहायता से वर्धमान और ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

5 समोत्पाद वक्र और समान लागत की सहायता से दिए हुए स्तर के उत्पादन के लिए कारकों के न्यूनतम लागत संयोजन की व्याख्या कीजिए।

6 श्रम के लिए पूँजी के तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर की व्याख्या चित्र द्वारा कीजिए।

7 समोत्पाद वक्र के क्या लक्षण हैं ?

8 यदि दो कारक पूर्ण स्थानापन्न और पूर्ण पूरक हैं, तब उनका समोत्पाद वक्र निकालिए।

9 बड़े पैमाने की किफायतों से क्या अभिप्राय होता है ? वर्धमान अनुमापी प्रतिफल का स्पष्टीकरण वे किस प्रकार करती हैं ?

10 बड़े पैमाने की किफायतें मुख्यतः कौन-कौन सी हैं ?

11 बड़े पैमाने के अलाभ की संकल्पना की व्याख्या कीजिए।

> **नोट :** इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 10 पूर्ति का नियम तथा पूर्ति की लोच

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 पूर्ति की अवधारणा
10.3 पूर्ति का नियम
- 10.3.1 पूर्ति फलन
- 10.3.2 पूर्ति सारणी
- 10.3.3 पूर्ति वक्र
- 10.3.4 पूर्ति के नियम के अपवाद

10.4 पूर्ति में परिवर्तन बनाम पूर्ति की मात्रा में परिवर्तन
- 10.4.1 पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन
- 10.4.2 पूर्ति में परिवर्तन
- 10.4.3 पूर्ति वक्र क्यों विवर्तित होता है ?

10.5 पूर्ति की लोच
- 10.5.1 अवधारणा और मापन
- 10.5.2 विभिन्न पूर्ति की लोचों को दर्शाते हुए विभिन्न पूर्ति वक्र
- 10.5.3 पूर्ति की लोच के निर्धारक

10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
10.9 स्वपरख प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- "वस्तु की पूर्ति" का अर्थ स्पष्ट कर सकें
- वस्तु की पूर्ति के निर्धारकों की सूची बना सकें
- पूर्ति फलन की अवधारणा का वर्णन कर सकें
- पूर्ति अनुसूची की अवधारणा की व्याख्या कर सकें
- पूर्ति वक्र बना सकें
- पूर्ति में परिवर्तन तथा पूर्ती की मात्रा में परिवर्तन के अंतर को स्पष्ट कर सकें
- पूर्ति की लोच की अवधारणा की व्याख्या कर सकें
- पूर्ति की लोच पर आधारित विभिन्न प्रकार के पूर्ति वक्रों में भेद स्पष्ट कर सकें।

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा था कि जैसे-जैसे उत्पादन के साधनों की मात्रा में कुछ प्रतिशत वृद्धि होती है तो इनका कुल उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस इकाई में आप पढ़ेंगे कि एक वस्तु की कीमत में वृद्धि से उस वस्तु के उत्पादन के संबंध में उत्पादक की क्या प्रतिक्रिया होती है। पूर्ति फलन, पूर्ति अनुसूची और पूर्ति वक्र से आपको परिचित कराते हुए, पूर्ति के नियम का अध्ययन किया जाएगा। वस्तु की पूर्ति के विभिन्न निर्धारक भी बताए जाएंगे और मुख्य निर्धारक के रूप में वस्तु की कीमत तथा वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य निर्धारकों में भेद दिखलाया जाएगा। आपको पूर्ति की लोच की अवधारणा और इसके निर्धारकों के बारे में भी बताया जाएगा।

10.2 पूर्ति की अवधारणा (The Concept of Supply)

पूर्ति (supply) से तात्पर्य वस्तु की उस मात्रा से है जो उत्पादक एक दी हुई कीमत पर प्रति समय इकाई (निश्चित अवधि में) उत्पादित करने और बेचने के इच्छुक हैं। पूर्ति शब्द के निम्नलिखित लक्षण हैं :

1 वस्तु की पूर्ति उसकी इच्छित मात्रा के रूप में व्यक्त की जाती है।

2 वस्तु की पूर्ति हमेशा कीमत के संदर्भ में होती है जिस पर इच्छित मात्रा में सप्लाई की जाती है। उदाहरण के लिए यह कहना कि कम्बलों के उत्पादक 1,000 कम्बलों की सप्लाई कर रहे हैं, अर्थशास्त्रीय दृष्टि से अर्थहीन है। लेकिन यदि यह कहा जाए उत्पादक 500 रु॰ प्रति कम्बल की कीमत पर 1,000 कम्बल सप्लाई कर रहे हैं तो "सप्लाई" शब्द अर्थशास्त्रीय अर्थ व्यक्त करने लगेगा।

3 पूर्ति को हमेशा एक प्रवाह के रूप में मापा जाता है या इसे एक समय इकाई के संदर्भ में व्यक्त किया जाता है। यह समय इकाई एक दिन, एक सप्ताह, एक पखवाड़ा, एक महीना या एक वर्ष या कोई अन्य समयावधि हो सकती है।

एक उदाहरण लेते हैं। इस कथन पर विचार कीजिए : दिसम्बर, 1988 में उत्पादकों ने 500 रु॰ प्रति कम्बल की दर से 1000 कम्बल सप्लाई किए। इस कथन में सप्लाई की गई मात्रा, प्रति इकाई कीमत जिस पर ये मात्रा सप्लाई की गई और समयावधि जिसके दौरान ये मात्रा सप्लाई की गई, इन सभी का उल्लेख किया गया है। अतः, वस्तु की पूर्ति के बारे में यह एक पूर्ण कथन है।

पूर्ति के निर्धारक (Determinants of Supply)

वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले बहुत से कारक हैं। इन सभी कारकों में एक साथ होने वाले परिवर्तनों के प्रभाव का विश्लेषण करना बहुत कठिन है। इसलिए, सामान्यतः हम ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों में से केवल एक में परिवर्तन होता है और यह मान लेते हैं कि अन्य कारकों में परिवर्तन नहीं होता। और फिर उस कारक में परिवर्तन का उत्पादक या उत्पादकों द्वारा सप्लाई की गई मात्रा पर प्रभाव मालूम करते हैं। हमने यही तरीका इकाई-6 में अपनाया था जब माँग के नियम पर विचार किया था। वहाँ हमने यह माना था कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त माँग को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों में कोई परिवर्तन नहीं होता और वस्तु की माँगी गई मात्रा उसकी कीमत पर निर्भर करती है। वस्तु की पूर्ति या सप्लाई की गई मात्रा को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारकों में से कुछ कारक निम्नलिखित हैं :

1 **सप्लाई की गई वस्तु की कीमत :** वस्तु की कीमत माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित होती है और जो भी कीमत निर्धारित होती है उसे एक स्वतंत्र चर कहा जाता है। एक वस्तु की कीमत में परिवर्तन उस वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करता है। साधारणतया, अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर वस्तु की कीमत जितनी ऊँची होगी उस वस्तु का उत्पादन करना या सप्लाई करना उतना ही अधिक लाभप्रद होगा। वस्तु की कीमत और पूर्ति के सीधे संबंध को "पूर्ति का नियम" भी कहा जाता है।

2 **उत्पादन के साधनों की कीमत या उत्पादन लागत :** एक वस्तु का उत्पादन करने के लिए जिन उत्पादन के साधनों का प्रयोग किया जाता है उनकी कीमत में वृद्धि, उत्पादन लागत को बढ़ा देती है। यदि यह मान लें कि बिक्री से प्राप्तियाँ अपरिवर्तित रहती हैं तो ऐसी स्थिति में लाभ कम हो जाएंगे। वस्तु की उत्पादन लागत में वृद्धि उस वस्तु के उत्पादन करने या सप्लाई करने को निरुत्साहित करती है। इसी प्रकार वस्तु की उत्पादन लागत में कमी उस वस्तु के उत्पादन या सप्लाई करने को प्रोत्साहित करती है।

उत्पादन के एक साधन की कीमत में परिवर्तन से विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन की सापेक्षिक लाभप्रदता बदल जाएगी। इसके कारण उत्पादक एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का उत्पादन करने लगेंगे और इस प्रकार विभिन्न वस्तुओं की पूर्ति में परिवर्तन हो जाएगा। उदाहरण के लिए, भूमि की कीमत में कमी का कृषि उत्पाद की उत्पादन लागत पर तो काफी बड़ा प्रभाव पड़ेगा परंतु टेलीविजन की उत्पादन लागत पर बहुत कम प्रभाव पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, अन्य साधनों की तुलना में जिस साधन का सापेक्षिक रूप में किसी वस्तु के उत्पादन में अधिक प्रयोग होता है उसकी कीमत में परिवर्तन का उस वस्तु की उत्पादन लागत और पूर्ति पर अधिक प्रभाव पड़ेगा।

3 **अन्य वस्तुओं की कीमतें :** अन्य वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि उस वस्तु, जिसकी कीमत नहीं बढ़ी है, के उत्पादन को कम आकर्षक बना देगी। अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर भी जैसे-जैसे अन्य वस्तुओं की कीमतें बढ़ेंगी एक वस्तु का उत्पादन और सप्लाई घट जाएगी। इसके विपरीत एक वस्तु का उत्पादन व सप्लाई बढ़ जाएगी जैसे-जैसे अन्य वस्तुओं की कीमतें घटेंगी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि सामान्यतः एक उत्पादक उत्पादन के लिए उस वस्तु को चुनता है जिससे उसे अधिकतम लाभ प्राप्त हो। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक उत्पादक टेलीविजन का उत्पादन करने का निर्णय इसलिए लेता है क्योंकि

किसी अन्य वस्तु के उत्पादन की तुलना में इसमें वह अधिक लाभ अर्जित कर सकेगा। अब मान लीजिए बाज़ार में वातानुकूलक की कीमत बढ़ जाती है। अतः टेलीविजन की तुलना में वातानुकूलक का उत्पादन करना अधिक लाभप्रद हो सकता है। इससे उत्पादक टेलीविजन का उत्पादन धीरे-धीरे घटाने और वातानुकूलक का उत्पादन बढ़ाने को प्रोत्साहित होगा। अतः वातानुकूलक की कीमत में वृद्धि के कारण टेलीविजन का उत्पादन व पूर्ति घट जाती है।

4 **प्रोद्योगिकी की स्थिति :** जानकारी समय के साथ बदलती रहती है। और इसके साथ-साथ एक वस्तु के उत्पादन के तरीके में भी परिवर्तन आते हैं। उत्पादन के साधनों और उत्पादन करने के तरीकों के बारे में ज्ञान में वृद्धि से पहले से उत्पादित की जा रही और बहुत सी नई किस्म की वस्तुओं की उत्पादन लागत घटती है। उदाहरण के लिए, इलैक्ट्रॉनिक उद्योग ट्रांज़िस्टर पर निर्भर करता है जिसने टेलीविजन और कम्प्यूटर जैसे अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के उत्पादन और पूर्ति में क्रांति पैदा कर दी है। इस प्रकार जैसे-जैसे ज्ञानवर्द्धन हुआ विभिन्न वस्तओं जिनमें नई प्रौद्योगिकी के ज़रिए नया ज्ञान शामिल हो जाता है, की पूर्ति भी बढ़ती है।

5 **उत्पादक का उद्देश्य :** उत्पादक किस उद्देश्य से उत्पादन करता है इस बात का भी वस्तु की पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। उत्पादक का उद्देश्य कुल लाभों को अधिकतम करना हो सकता है या बिक्री को अधिकतम करना हो सकता है या दीर्घकाल में बाज़ार पर छा जाना हो सकता है। यदि उत्पादक अधिकतम लाभ अर्जित करना चाहता है तो वह वस्तु की उतनी मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाएगा जिससे उसे अधिकतम लाभ मिले। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह और अधिक उत्पादन नहीं कर सकता । लेकिन वह और अधिक उत्पादन इसलिए नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने से उसका लाभ घट सकता है। अब मान लीजिए उत्पादक का उद्देश्य लाभ की बजाय बिक्री को अधिकतम करना है, ऐसी स्थिति में वह अल्पकाल में अधिकतम लाभ से कम का लक्ष्य निर्धारित कर सकता है। वह उत्पादन और पूर्ति बढ़ाता जाएगा जब तक कि उसके लक्ष्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। बिक्री को अधिकतम करने का उद्देश्य दीर्घकाल में लाभ को अधिकतम करने की इच्छा से प्रेरित होता है। इस प्रकार यदि उत्पादक जोखिम उठाने में अनिच्छुक हैं तब ऐसी किसी भी वस्तु के कम उत्पादन की आशा की जाएगी जिसमें जोखिम अधिक है।

6 **अन्य कारक :** पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य बहुत से कारक हो सकते हैं। सरकार की नीति में सम्भावित परिवर्तन, युद्ध का डर, जलवायु संबंधी आकस्मिक परिवर्तन, कीमतों में सम्भावित परिवर्तन, आय की बढ़ती हुई असमानताएँ आदि जो किसी खास किस्म की वस्तुओं की माँग को प्रभावित करती हैं जिससे उनका उत्पादन अधिक लाभप्रद हो जाए, अन्य कारकों के कुछ उदाहरण हैं।

10.3 पूर्ति का नियम (The Law of Supply)

मान लीजिए उत्पादक का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना है। कुल आय और कुल लागत का अन्तर लाभ कहलाता है। वस्तु की कीमत को उसकी बेची गई मात्रा से गुणा करने पर कुल आय निकलती है। उत्पादन की औसत लागत को उत्पादित मात्रा से गुणा करने पर कुल लागत आ जाती है। ऊँची कीमत पर अधिक लाभ प्राप्त होंगे बशर्ते कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों में कोई परिवर्तन न हो। इसलिए यदि उत्पादक को अपनी वस्तु की ऊँची कीमत मिलने की सम्भावना है तो वह अधिक सप्लाई करने को इच्छुक होगा। इसी प्रकार यदि उत्पादक को अपनी वस्तु की कम कीमत मिलने की सम्भावना है तो वह कम सप्लाई करने को इच्छुक होगा। अतः हम वस्तु की कीमत और सप्लाई की गई मात्रा में सीधा संबंध देखते हैं। वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति के बीच सीधे संबंध को पूर्ति का नियम कहते हैं। यह नियम बताता है कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य सभी कारक पूर्ववत् रहने पर, जैसे-जैसे किसी वस्तु की कीमत में वृद्धि होती है, उस वस्तु की प्रति समय इकाई सप्लाई की गई मात्रा में भी वृद्धि होती है और कीमत में कमी होने से सप्लाई की गई मात्रा में कमी होती है। पूर्ति का नियम "अन्य कारक पूर्ववत् रहते हैं" इस मान्यता के अन्तर्गत लागू होता है।

वस्तु की कीमत और पूर्ति के इस सीधे संबंध में पूर्ति में परिवर्तन कीमत में परिवर्तन के कारण होता है। अतः कीमत में वृद्धि कारण है और पूर्ति में वृद्धि उसका परिणाम। दूसरे शब्दों में, कीमत को एक स्वतंत्र चर माना गया है जबकि पूर्ति को परतंत्र चर माना गया है। यह समझना जरूरी है कि यदि हम कहें "कीमत बढ़ने से पूर्ति बढ़ती है" तो ठीक है लेकिन यह कहना कि पूर्ति बढ़ने से कीमत बढ़ती है, गलत है।

10.3.1 पूर्ति फलन (Supply Function)

पूर्ति फलन एक वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की संक्षिप्त अभिव्यक्ति है। इस प्रकार एक वस्तु की पूर्ति को उसकी कीमत, अन्य वस्तुओं की कीमत, उत्पादन के साधनों की कीमत, प्रौद्योगिकी, उत्पादक के उद्देश्य के फलन के रूप में लिखा जा सकता है या गणितीय ढंग से हम पूर्ति फलन को निम्नलिखित रूप में लिख सकते हैं :

$Q_1S = f(P_1, P_2, P_3.......P_n, F_1................F_n, T, O, OF)$

Q_1 S वस्तु की पूर्ति का प्रतीक है, P_1 इस वस्तु की कीमत है, P_2, P_3............. P_n अन्य वस्तुओं की कीमतें हैं, F_1.........F_n उत्पादन के सभी साधनों की कीमतें हैं T प्रौद्योगिकी की स्थिति है O उत्पादक का उद्देश्य और OF पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों का प्रतीक है। पूर्ति के नियम में हम Q_1S और $f(P_1)$ के बीच जो संबंध है केवल उसमें दिलचस्पी रखते हैं, अन्य बातें पूर्ववत् रहती हैं। पूर्ति के नियम में हम यह बताते हैं कि किसी वस्तु की उत्पादित और बिक्री के लिए प्रस्तुत मात्रा वस्तु की कीमत बढ़ने के साथ बढ़ती है और कीमत कम होने पर घटती है (अर्थात् सप्लाई की गई मात्रा और कीमत एक दूसरे के साथ सीधे परिवर्तित होती हैं), अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर। इस संबंध में एक सामान्य स्पष्टीकरण यह है कि वस्तु की कीमतें बढ़ने से अधिक लाभ अर्जित करने की सम्भावनाएँ अधिक हैं, और इसलिए बिक्री के लिए अधिक मात्रा प्रस्तुत की जाती है।

10.3.2 पूर्ति सारणी (Supply Schedule)

पूर्ति सारणी किसी वस्तु की विभिन्न कीमतों पर उसकी उन मात्राओं को दर्शाती है जो उत्पादक प्रति समय इकाई, प्रत्येक कीमत पर सप्लाई करने के लिए इच्छुक है, और यह इस मान्यता पर आधारित है कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक पूर्ववत् रहते हैं। काल्पनिक आंकड़ों पर आधारित एक पूर्ति सारणी नीचे दी गई है जो पूर्ति के नियम द्वारा बताई गई कीमत और सप्लाई की मात्रा के संबंध को उदाहरण के रूप में स्पष्ट करती है।

तालिका 10.1

पेन के उत्पादन की पूर्ति सारणी

कीमत (रु०) प्रति पेन	प्रति माह सप्लाई की गई मात्रा (हजारों में)
2	25
3	40
4	50
5	60
6	70

यह अनुसूची दर्शाती है कि 2 रु॰ प्रति पेन की कीमत पर उत्पादक 25 हज़ार पेन प्रति माह सप्लाई करने का इच्छुक है और 3 रु॰ प्रति पेन की कीमत पर वह प्रति माह 40 हज़ार पेन सप्लाई करने का इच्छुक है और जैसे-जैसे पेन की कीमत बढ़ती जाती है वह प्रति माह पेन की अधिकाधिक मात्रा सप्लाई करने का इच्छुक है, जैसा कि पूर्ति सारणी में दिखाया गया है। यह पूर्ति सारणी इस प्रकार बनाई गई है जिससे कि प्रति पेन कीमत और प्रति हजार सप्लाई की गई मात्रा का सीधा संबंध दिखाया जा सके।

10.3.3 पूर्ति वक्र (Supply Curve)

तालिका 10.1 के आँकड़ों को हम एक ग्राफ पेपर पर अंकित कर सकते हैं। चित्र 10.1 में y-अक्ष पर कीमत अंकित की गई है और x-अक्ष पर सप्लाई की गई मात्रा।

तालिका में दिखाई गई कीमत व मात्रा के पांच संयोगों को अंकित करने पर पांच बिंदु, प्रत्येक संयोग के अनुरूप एक बिन्दु, चित्र में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए बिन्दु a वही सूचना प्रदान करता है जो कि तालिका की पहली पंक्ति में दी हुई है। यानि जब कीमत 2 रु॰ प्रति पेन है, 25,000 पेन प्रति माह बिक्री के लिए प्रस्तुत किए जाएंगे। इसी प्रकार ग्राफ पर बिन्दु b, c, d और e तालिका की क्रमशः तीसरी, चौथी, पाँचवी और छठी पंक्ति के अनुरूप हैं। पूर्ति वक्र S एक निष्कोण (smooth) वक्र है जो क्रमशः बिन्दु a, b, c, d और e को मिलाने से बनी है। यह वक्र प्रत्येक कीमत पर पेन की वह मात्रा दर्शाता है जिसका उत्पादन किया जाएगा और

जो बिक्री के लिए प्रस्तुत किया जाएगा। संक्षेप में, एक वस्तु का पूर्ति वक्र उस वस्तु की कीमत और इस कीमत पर वह मात्रा जो उत्पादक उत्पादित या विक्रय करना चाहते हैं के संबंध को दर्शाता है। यह वक्र इस मान्यता पर खींचा गया है कि पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक (वस्तु की कीमत के अलावा) पूर्ववत् रहते हैं (अर्थात् वे अपरिवर्तित रहते हैं)। पूर्ति वक्र का बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर जाना यह दर्शाता है कि जितनी अधिक कीमत होगी उतनी ही अधिक मात्रा उत्पादक सप्लाई करेंगे। यदि पूर्ति वक्र को y-अक्ष की ओर बढ़ाया जाए तो ये 0 (मूल बिन्दु) से गुजर भी सकता है और नहीं भी। यदि यह 0 से गुजरता है तो इस बिन्दु पर यह दर्शाता है कि शून्य कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा भी शून्य है, यदि यह 0 से नहीं गुजरता तो यह दर्शाता है कि जब तक कीमत एक स्तर तक नहीं बढ़ती (इस स्तर को दिखाने वाला बिन्दु जिस पर पूर्ति वक्र y-अक्ष को काटता है चित्र 10.1 में नहीं दिखाया गया है) पूर्ति शून्य रहेगी। ऊपर की ओर ढालू पूर्ति वक्र पूर्ति के नियम को चित्र द्वारा दर्शाती है।

चित्र - 10.1

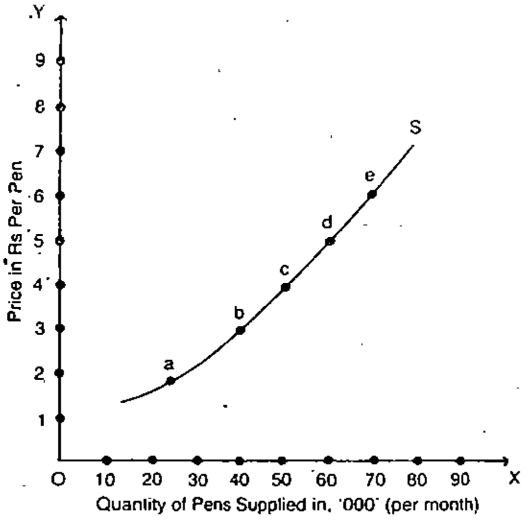

10.3.4 पूर्ति के नियम के अपवाद (Exceptions to the Law of Supply)

साधारणतया पूर्ति का नियम कीमत और सप्लाई की गयी मात्रा के बीच सीधे संबंध को दर्शाता है। लेकिन इस नियम के कुछ अपवाद भी हैं। ऐसे कुछ अपवाद नीचे दिए गए हैं :

1 **लाभों को अधिकतम न करना :** कुछ स्थितियों में यह संभव है कि उद्यम अधिकतम लाभ के उद्देश्य को ध्यान में रखकर काम न करे। ऐसी स्थितियों में कीमत में वृद्धि न होने पर भी सप्लाई की गई मात्रा बढ़ सकती है। उदाहरण के लिए यदि कीमत अपरिवर्तित रहने पर भी फर्म बिक्री को अधिकतम करना चाहती है तो यह बिक्री बढ़ाना पसन्द कर सकती है ताकि कुल आय बढ़ाई जा सके। कभी-कभी फर्म की दिलचस्पी दीर्घकाल में लाभों को अधिकतम करने में हो सकती है और अल्पकाल में किसी अन्य उद्देश्य को ध्यान में रख सकती है। इसी प्रकार यदि एक फर्म कई कम्पनियों को नियंत्रित कर रही है तो उसका उद्देश्य सभी कम्पनियों के लाभों के योग को अधिकतम करना हो सकता है। इस प्रकार विभिन्न उत्पादित वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु के लिये पूर्ति का नियम लागू न हो, यह संभव है।

2 **कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक पूर्ववत् न रहें :** पूर्ति का नियम इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य सभी कारक पूर्ववत् रहते हैं। वास्तव में ये कारक पूर्ववत् नहीं रहते। उदाहरण के लिए यदि अन्य वस्तुओं की कीमतों में बढ़ने की प्रवृत्ति नजर आती है तो किसी वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा एक दी हुई कीमत पर घट सकती है। प्रौद्योगिकी की स्थिति में परिवर्तन भी किसी

वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन ला सकता है चाहे उस वस्तु की कीमत में कोई परिवर्तन न हुआ हो।

बोध प्रश्न क

1 रिक्त स्थानों को भरिए।

i) उत्पादक ....कीमत की तुलना में ....कीमत पर सप्लाई अधिक करते हैं।

ii) एक पूर्ति वक्र का ढलान ....होती है।

iii) एक पूर्ति सारणी एक वस्तु की ....का एक निश्चित समय के दौरान उसकी विक्रय के लिए प्रस्तुत की गई .... के साथ संबंध दिखलाती है।

iv) एक पूर्ति वक्र एक वस्तु की ....का एक निश्चित समयावधि के दौरान उसकी बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई................... के साथ संबंध को दर्शाता है।

v) अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, यदि किसी वस्तु की कीमत ....तो उसकी बिक्री से प्राप्त लाभ कम हो जाएँगे।

vi) पूर्ति का नियम यह बताता है कि "अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, किसी वस्तु की कीमत और उसकी सप्लाई की गई मात्रा में ....संबंध है"।

2 बताइए निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत।

i) पूर्ति का नियम यह बताता है कि किसी वस्तु की पूर्ति और उसकी कीमत के बीच एक संबंध है।

ii) पूर्ति का नियम यह बताता है कि अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, किसी वस्तु की कीमत और प्रति समय इकाई उसकी सप्लाई की गई मात्रा के बीच सीधा संबंध है।

iii) पूर्ति से तात्पर्य निश्चित समयावधि के दौरान एक कीमत पर वस्तु की बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा से है।

iv) पूर्ति से तात्पर्य निश्चित समयावधि के दौरान एक कीमत पर वस्तु की बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा से है।

v) उत्पादन के एक खास क्षेत्र में प्रौद्योगिकी में विकास से उत्पादन लागत में वृद्धि संभव है।

vi) पहले से मौजूद उत्पादक क्रिया का नए तरीके से संघटन प्रौद्योगिकी विकास नहीं है।

vii) पूर्ति एक स्टॉक अवधारणा है।

viii) प्रत्येक फर्म का केवल लाभ को अधिकतम करना ही उद्देश्य हो सकता है।

3 पूर्ति का नियम क्या है ?

....

....

....

....

....

4 पूर्ति का नियम लागू करने के लिए वस्तु की कीमत को छोड़कर वे कौन से अन्य कारक हैं जिनका पूर्ववत् रहना जरूरी है ?

....

....

....

....

....

5 पूर्ति सारणी और पूर्ति वक्र में क्या अंतर हैं ?

....

....

....

....

....

10.4 पूर्ति में परिवर्तन बनाम पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन (Changes in Supply Versus Changes in Quantity Supplied)

इस इकाई के भाग 10.2 और 10.3 में पूर्ति को प्रभावित करने वाले कारकों को दो श्रेणियों में बांटा गया है : (क) उस वस्तु की कीमत जिसकी पूर्ति पर विचार किया जा रहा है और (ख) वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक। पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बीच इस विभेद के आधार पर हम वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन और पूर्ति में परिवर्तन में विभेद करते हैं। यदि किसी वस्तु की कीमत परिवर्तित होती है और उसके अनुरूप उसके उत्पादन या बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा में परिवर्तन होता है तो हम इसे सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन कहते हैं। इसी प्रकार यदि वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों के कारण वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन होता है तो हम इसे पूर्ति में परिवर्तन कहते हैं।

10.4.1 पूर्ति की गई मात्रा में परिवर्तन या पूर्ति वक्र पर संचलन (Changes in Quantity Supplied or Movement along a Supply Centre)

अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, जब केवल वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण उसकी बिक्री के लिए प्रस्तुत की गई मात्रा में परिवर्तन होता है तो इसे सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन कहा जाता है। सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन दो प्रकार का होता है :

1 जब किसी वस्तु की कीमत घटती है और इसकी सप्लाई की मात्रा भी घटती है तो इसे **"पूर्ति का संकुचन"** कहते हैं, बशर्ते कि पूर्ति का नियम लागू होता हो।

2 जब किसी वस्तु की कीमत बढ़ती है और इसकी सप्लाई की मात्रा बढ़ती है तो इसे **"पूर्ति का विस्तार"** कहते हैं, बशर्ते कि पूर्ति का नियम लागू होता है।

पूर्ति का संकुचन और विस्तार चित्र 10.2 में दिखाया गया है।

चित्र 10.2

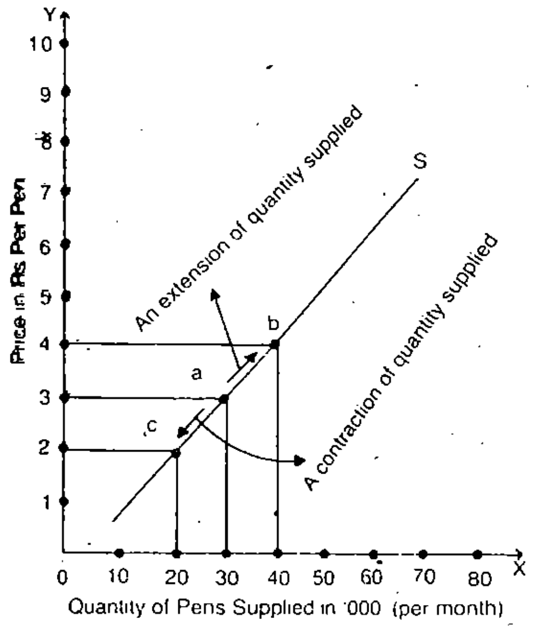

x-अक्ष पर पेनों की सप्लाई की मात्रा को मापा गया है और y-अक्ष पर कीमत प्रति पेन मापी गई है। S वक्र अपेक्षित पूर्ति वक्र है। पूर्ति वक्र पर बिन्दु a पेन की कीमत 3 रु॰ दर्शाता है और इसकी सप्लाई की मात्रा 30,000 पेन है। जैसे ही कीमत घटकर 2 रु॰ होती है सप्लाई की गई मात्रा घटकर 20,000 पेन हो जाती है और जब कीमत बढ़ कर 4 रु॰ हो जाती है तो सप्लाई की गई मात्रा बढ़कर 40,000 हो जाती है। कीमत का 3 रु॰ से कम होकर 2 रु॰ होना और इसके साथ सप्लाई की गई मात्रा का 30,000 से घटकर 20,000 होना, पूर्ति का संकुचन कहलाता है। चित्र में बिन्दु a से c पर संचलन पूर्ति के संकुचन को दर्शाता है। इसी प्रकार बिन्दु a से b पर संचलन पूर्ति के विस्तार को दर्शाता है क्योंकि इसका अर्थ है कि कीमत 3 रु॰ से 4 रु॰ होने के साथ सप्लाई की गई मात्रा 30,000 से 40,000 तक बढ़ जाती है।

इस प्रकार अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर किसी वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन केवल उस वस्तु की कीमत में परिवर्तन का परिणाम है।

10.4.2 पूर्ति में परिवर्तन या पूर्ति वक्र का विवर्तन

पूर्ति में परिवर्तन का अर्थ है कि प्रत्येक कीमत पर पहले से भिन्न मात्रा सप्लाई की जाएगी। पूर्ति में परिवर्तन दो प्रकार के हो सकते हैं :

1 **पूर्ति में कमी :** जब स्थिर कीमत पर किसी वस्तु की सप्लाई की मात्रा घट जाती है तो इसे पूर्ति में कमी कहते हैं। यदि इसे चित्र पर दिखाया जाय तो पूर्ति वक्र का बाईं ओर विवर्तन हो जाएगा।

2 **पूर्ति में वृद्धि :** जब स्थिर कीमत पर किसी वस्तु की सप्लाई की मात्रा बढ़ जाती है तो इसे पूर्ति में वृद्धि कहते हैं। ऐसी स्थिति में पूर्ति वक्र दायीं ओर विवर्तित हो जाता है।

पूर्ति में ये दोनों प्रकार के परिवर्तन चित्र 10.3 में दिखाए गए हैं। इस चित्र में यह देखा जा सकता है कि जैसे-जैसे हम S वक्र के बिन्दु a से a′ की ओर जाते हैं, 3 रु॰ कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा 30,000 से घटकर 20,000 हो जाती है। इसी प्रकार 2 रु॰ कीमत पर S वक्र के बिन्दु C′ पर पूर्ति 20,000 थी जो बिन्दु C′ पर घटकर 10,000 हो जाती है।

चित्र 10.3

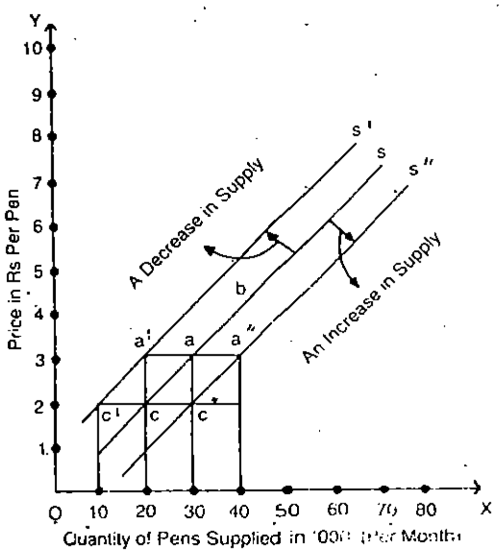

यदि बिन्दु C′ और बिन्दु a′ को मिला दिया जाए तो एक नया पूर्ति वक्र S′ बन जाता है। पूर्ति वक्र S से S′ पर विर्वतन पूर्ति में कमी कहलाता है। इसकी बजाए यदि हम S वक्र के a बिन्दु से a" बिन्दु पर जाएँ तो 3

रु॰ कीमत पर पूर्ति 30,000 से बढ़कर 40,000 हो जाती है। 2 रु॰ कीमत पर जैसे ही हम C बिन्दु से C" पर जाते हैं पूर्ति 20,000 से बढ़कर 30,000 हो जाती है। यदि C" और a" जैसे बिन्दुओं को मिला दिया जाए तो एक नया पूर्ति वक्र S" बन जाता हैं। पूर्ति वक्र का S से S" पर विवर्तन पूर्ति में वृद्धि कहलाता है। संक्षेप में, पूर्ति में वृद्धि का अर्थ है पूर्ति वक्र का दायीं ओर से विवर्तित होना जो यह दिखाता है कि प्रत्येक कीमत पर उत्पादक पहले से अधिक मात्रा सप्लाई करने को इच्छुक है। दूसरी ओर, पूर्ति में कमी का अर्थ है पूर्ति वक्र का बायीं ओर विवर्तित होना जो यह बताता है कि प्रत्येक कीमत पर उत्पादक पहले से कम मात्रा सप्लाई करने को इच्छुक है।

10.4.3 पूर्ति वक्र क्यों विवर्तित होता है ? (Why Supply Curve Shifts)

पूर्ति के विस्तार और संकुचन के कारणों का विश्लेषण पहले ही इस इकाई के भाग 10.4.1 में किया जा चुका है। पूर्ति में परिवर्तन (वृद्धि और कमी दोनों ही) के निम्नलिखित कारण हैं :

1 **अन्य वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन :** अन्य वस्तुओं की कीमत में कमी विचाराधीन वस्तु की हर कीमत पर पूर्ति बढ़ा देती है क्योंकि अन्य वस्तुओं की सप्लाई करने से सापेक्षिक रूप में लाभ कम हो जाते हैं। अन्य वस्तुओं की कीमत में वृद्धि विचाराधीन वस्तु की हर कीमत पर पूर्ति घटा देती है।

2 **उत्पादन के साधनों की कीमत में परिवर्तन :** जिन उत्पादन के साधनों का उत्पादन में प्रयोग किया जा रहा है उनकी कीमतों में वृद्धि से वस्तु की प्रत्येक कीमत पर पूर्ति को घटाने की प्रवृत्ति होती है। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है और दी हुई कीमत पर लाभ घट जाते हैं। इसके विपरीत वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कीमत में कमी उस वस्तु की प्रत्येक कीमत पर पूर्ति को बढ़ाती है।

3 **प्रौद्योगिकी में परिवर्तन :** प्रौद्योगिकी में सुधार से साधारणतया उत्पादन लागत घटती है और वस्तु की प्रत्येक कीमत पर उत्पादक उस वस्तु का अधिक उत्पादन करने को प्रवृत्त होता है। इसके विपरीत, प्रौद्योगिकी में गुणह्रास (जिसकी सम्भावना बहुत कम होती है) प्रत्येक कीमत पर वस्तु की पूर्ति को कम करेगा।

4 **अन्य कारकों में परिवर्तन या परिवर्तन की सम्भावना :** सरकार की कर संबंधी नीति में परिवर्तन या ब्याज की दर में परिवर्तन या युद्ध का भय या आय और धन की बदलती हुई असमानताएँ खास किस्म की वस्तुओं की माँग को प्रभावित करती हैं जिससे इनका उत्पादन करना अधिक या कम लाभप्रद हो जाता है।

कभी-कभी इन कारणों से भी पूर्ति में परिवर्तन हो सकता है। अतः अन्य कारकों में परिवर्तन से यदि उत्पादक अधिक लाभ की आशा करते हैं तो प्रत्येक कीमत पर पूर्ति में वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत, अन्य कारकों में परिवर्तन के कारण यदि उत्पादक कम लाभ की आशा करते हैं तो प्रत्येक कीमत पर पूर्ति घट जाएगी।

बोध प्रश्न ख

1 बताइए निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत :

i) पूर्ति के विस्तार से तात्पर्य एक दी हुई कीमत पर अधिक पूर्ति है।

ii) पूर्ति में वृद्धि और पूर्ति का विस्तार दोनों का अर्थ एक ही है।

iii) सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के कारण होता है।

iv) वस्तु की कीमत में कमी होने से पूर्ति में वृद्धि होती है।

v) पूर्ति वक्र पर संचलन पूर्ति के नियम का प्रचलन दिखाता है।

vi) पूर्ति वक्र में बायीं ओर विवर्तन पूर्ति में वृद्धि दर्शाता है।

vii) वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारकों के कारण पूर्ति वक्र में विवर्तन होता है।

2 "पूर्ति के विस्तार" और "पूर्ति में वृद्धि" में क्या अंतर है ?

....

....

....

....

....

३ उपर्युक्त पूर्ति सारणियों की सहायता से पूर्ति में वृद्धि और कमी दिखाइए।

....

....

....

....

....

10.5 पूर्ति की लोच (Elasticity of Supply)

पूर्ति का नियम हमें बताता है कि अन्य बाते पूर्ववत् रहने पर, वस्तु की कीमत और उसकी सप्लाई की गई मात्रा में सीधा संबंध है। कीमत में परिवर्तन की जिस हद तक सप्लाई की गई मात्रा पर प्रतिक्रिया होती है, माँग की लोच उसे मापती है।

10.5.1 अवधारणा और मापन (Concept and Measurement)

पूर्ति की लोच को सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन और वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है।

$$\text{पूर्ति की लोच} = \frac{\text{वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

यानि वस्तु की सप्लाई को गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन को वस्तु की कीमत में हुए प्रतिशत परिवर्तन से भाग देने से पूर्ति की लोच आ जाती है।

$$\text{सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन} = \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक पूर्ति}} \times 100$$

$$\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन} = \frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक कीमत}} \times 100$$

$$\text{अतः पूर्ति की लोच} = \frac{\dfrac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}} \times 100}{\dfrac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक कीमत}} \times 100}$$

$$\text{या} \quad \frac{\frac{\Delta S}{S} \times 100}{\frac{\Delta P}{P} \times 100}$$

$$= \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}} \times \frac{\text{प्रारंभिक कीमत}}{\text{कीमत में परिवर्तन}}$$

$$\text{या} \quad \frac{\Delta S}{S} \times \frac{P}{\Delta P}$$

$$\text{या} \quad \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{P}{S}$$

$$= \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{कीमत में परिवर्तन}} \times \frac{\text{प्रारंभिक कीमत}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}}$$

तालिका 10.1 के उदाहरण की सहायता से पूर्ति की लोच को स्पष्ट किया जा सकता है। पेन की कीमत 2 रु॰ से बढ़कर 3 रु॰ हो जाती है और पेनों की सप्लाई की गई मात्रा 25,000 से बढ़कर 40,000 हो जाती है। ऊपर बताए गए सूत्र के द्वारा हम पूर्ति की लोच निकाल सकते हैं।

$$\text{पूर्ति की लोच} = \frac{\text{सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन}}{\text{कीमत में परिवर्तन}} \times \frac{\text{प्रारंभिक कीमत}}{\text{प्रारंभिक सप्लाई}}$$

$$= \frac{40000 - 25000}{3 - 2} \times \frac{2}{25000}$$

$$= \frac{15000}{1} \times \frac{2}{25000}$$

$$= \frac{30}{25} = 1.2$$

पूर्ति की लोच 1.2 है। इसका अर्थ है कि यदि पेनों की कीमत 1 प्रतिशत बढ़े तो पेनों की सप्लाई की मात्रा में 1.2 प्रतिशत वृद्धि होती है। यह लोचदार पूर्ति की स्थिति है। यदि पूर्ति की लोच 1 से कम है तो इसे बेलोचदार पूर्ति कहते हैं। जब पूर्ति की लोच 1 हो तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है। जब पूर्ति की लोच शून्य हो तो यह पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति की स्थिति है और अन्त में जब पूर्ति की लोच अनन्त हो तो यह पूर्णतया लोचदार पूर्ति की स्थिति है।

10.5.2 विभिन्न पूर्ति की लोचों को दर्शाते हुए विभिन्न पूर्ति वक्र

चित्र 10.4 में पूर्ति की लोच के 5 उदाहरण दिखाए गए हैं। शून्य लोच या पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति चित्र 10.4 द्वारा दिखायी गई है, इसमें कीमत में परिवर्तन होने से सप्लाई की गई मात्रा नहीं बदलती। ऐसा तब होता है जब उत्पादक एक दी हुई मात्रा ही उत्पादित करते हैं, बाज़ार में वस्तु की चाहे जो भी कीमत हो। अनन्त लोच की स्थिति चित्र 10.4 द्वारा दिखाई गई है, इसमें OP कीमत पर बाज़ार में जितनी भी माँग है उतनी सप्लाई करने को तैयार हैं और OP से कम कीमत पर सप्लाई शून्य है। यदि कीमत OP से थोड़ी सी भी कम हो तो सप्लाई शून्य होगी और यदि यह कीमत OP से थोड़ा भी बढ़ जाए तो सप्लाई शून्य से बढ़कर अनन्त हो जाएगी।

चित्र 10.4

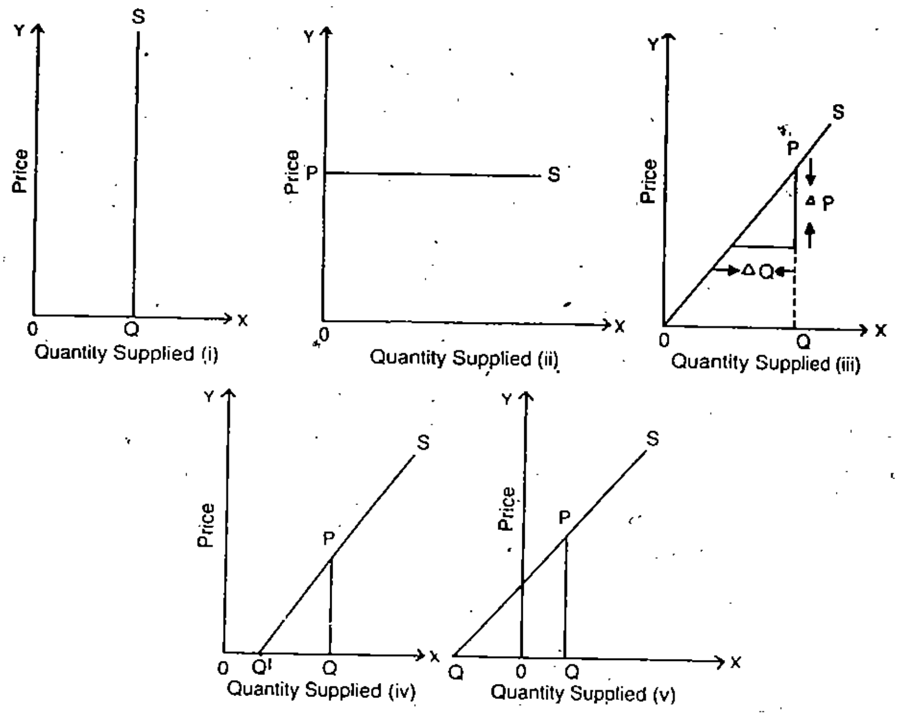

इकाई के बराबर पूर्ति लोच की स्थिति चित्र 10.4 में दिखायी गई है। कोई भी सरल रेखीय पूर्ति वक्र जो मूल बिन्दु से गुज़रता है उसकी पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होगी। इसे आसानी से सिद्ध किया जा सकता है। चित्र

में दो त्रिभुजों, एक जिसकी भुजाएँ ΔQ और ΔP हैं और दूसरी जिसकी भुजाएँ OQ और QP हैं पर ध्यान दीजिए ये दोनों त्रिभुज समरूप हैं। अतः इनकी भुजाओं का अनुपात बराबर है।

यानि,

$$\frac{QP}{\Delta P} = \frac{OQ}{\Delta Q}$$

या $$\frac{\Delta Q}{\Delta P} = \frac{OQ}{QP} \quad \text{..... (i)}$$

इस इकाई के 10.5.1 में दिया गया पूर्ति की लोच

$$= \frac{\Delta S}{\Delta P} \times \frac{P}{S}$$

चित्र 10.4 के आधार पर पूर्ति की लोच को इस प्रकार लिखा जा सकता है।

$$= \frac{\Delta Q}{\Delta P} \times \frac{QP}{OQ}$$

$\frac{\Delta Q}{\Delta P}$ को $\frac{OQ}{QP}$ के द्वारा समीकरण (i) में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं कि

$$\frac{OQ}{QP} \times \frac{QP}{OQ} = 1$$

पूर्ति की लोच का 1 के बराबर होने का अर्थ है कि यदि कीमत में 5 प्रतिशत वृद्धि होती है तो सप्लाई की गई मात्रा में भी 5 प्रतिशत वृद्धि होगी।

चित्र 10.4 इकाई से कम लोच या बेलोचदार पूर्ति को दर्शाता है। P बिन्दु पर Es

$$= \frac{Q'Q}{PQ} \times \frac{PQ}{OQ}$$

$$= \frac{Q'Q}{OQ} \text{ or} < 1 \text{ चूंकि } Q'Q < OQ$$

चित्र 10.4 इकाई से अधिक या लोचदार पूर्ति की स्थिति को दर्शाता है। P बिन्दु पर Es

$$= \frac{Q'Q}{PQ} \times \frac{PQ}{OQ}$$

$$= \frac{Q'Q}{OQ} \text{ or} > 1 \text{ चूंकि } Q'Q > OQ$$

इस प्रकार यदि एक सरल रेखीय पूर्ति वक्र मात्रा अक्ष यानि x-अक्ष से गुजरता है तो पूर्ति की लोच इकाई से कम है। दूसरी ओर, यदि एक सरल रेखीय वक्र कीमत अक्ष यानि y-अक्ष से गुजरता है तो पूर्ति की लोच इकाई से अधिक है। और यदि यह मूल बिन्दु से गुजरती है तो पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है। यदि पूर्ति वक्र सरल रेखा नहीं है बल्कि वक्ररेखी है तो पूर्ति वक्र के किसी विशेष बिन्दु पर पूर्ति की लोच मालूम करने के लिए हम उस बिन्दु पर पूर्ति वक्र का स्पर्शज्या (tangent) खींचते हैं और फिर देखते हैं कि यह स्पर्शज्या मूल बिन्दु से गुजरता है या x-अक्ष या y-अक्ष से। यह चित्र 10.5 में दिखाया गया है।

चित्र 10.5

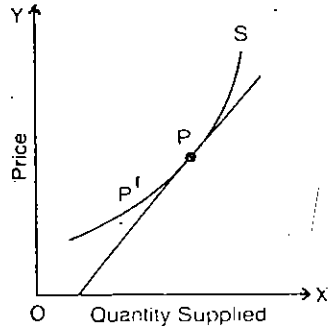

चित्र 10.5 में पूर्ति वक्र वक्ररेखी है और हम P बिन्दु पर पूर्ति की लोच निकालना चाहते हैं। P बिन्दु पर पूर्ति वक्र को छूता हुआ जो स्पर्शज्या खींचा गया है वह मूल बिन्दु से गुजरता है। अतः पूर्ति की लोच इकाई के बराबर है।

10.5.3 पूर्ति की लोच के निर्धारक (Determinants of Elasticity of Supply)

पूर्ति की लोच बहुत से कारकों पर निर्भर करती है। और किसी वस्तु की पूर्ति की लोच पर टिप्पणी करने से पहले इन सभी कारकों को एक साथ ध्यान में रखना होता है। कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं :

1 **उत्पादन में परिवर्तन का लागतों पर प्रभाव :** जब उत्पादन बढ़ता है तो कुल लागतों के बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। लेकिन ये एक समान दर से नहीं बढ़तीं। सामान्यतः शुरू में कुल लागत घटती हुई दर से बढ़ती है, उसके बाद स्थिर दर से और अन्त में बढ़ती हुई दर से। यदि उत्पादन बढ़ने पर उत्पादन लागत तेजी से बढ़ती है, तो कीमतों में वृद्धि के फलस्वरूप उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा कम होगी। अतः पूर्ति कम लोचदार होगी। दूसरी ओर, यदि उत्पादन बढ़ने पर कुल लागत धीरे-धीरे बढ़ती है तो कीमत वृद्धि जिससे लाभ बढ़ते हैं, से सप्लाई की गई मात्रा में अधिक वृद्धि होगी और इसलिए पूर्ति अधिक लोचदार होगी।

2 **वस्तु की प्रकृति :** प्रकृति के आधार पर वस्तुओं का वर्गीकरण (i) जल्दी नाशवान और (ii) टिकाऊ, वस्तुओं में किया जा सकता है। जल्दी नष्ट होने वाली वस्तुओं का संग्रह नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उनकी कीमतों में परिवर्तन का उनकी पूर्ति पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। अतः जल्दी नाशवान वस्तुओं की पूर्ति बेलोचदार होती है। दूसरी ओर टिकाऊ वस्तुओं का संग्रह किया जा सकता है, और इनकी कीमतों में परिवर्तन का इनकी पूर्ति पर प्रभाव पड़ता है। इन वस्तुओं की पूर्ति सापेक्षिक रूप में लोचदार होती है।

3 **समय :** वस्तु की पूर्ति का आधार उत्पादन होता है जिसमें समय अन्तराल होता है। यदि संयंत्र का आकार दिया हुआ है, तो प्रौद्योगिकी आदि के रूप में अन्य सामंजस्य सम्भव नहीं होते। ऐसी स्थिति में कीमत में परिवर्तन की उत्पादक पर प्रभावी प्रतिक्रिया नहीं होती। अतः अल्पकाल में वस्तु की पूर्ति कम लोचदार होती है। दीर्घकाल में जबकि संयन्त्र का आकार बदला जा सकता है और प्रौद्योगिकी परिवर्तन करने दिये जाते हैं तो कीमत में परिवर्तन का पूर्ति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और पूर्ति अधिक लोचदार होती है।

4 **कीमत संबंधी संभावनाएँ :** भविष्य में कीमतों के बारे में संभावनाएँ भी पूर्ति को प्रभावित करती हैं। यदि उत्पादक ये उम्मीद करते हैं कि भविष्य में कीमतों को एक निश्चित स्तर से नीचे नहीं जाने दिया जाएगा तो उन्हें अधिक उत्पादन करने में कोई आपत्ति नहीं होगी। इसके अतिरिक्त यदि उत्पादक भविष्य में कीमतों में वृद्धि की आशा करते हैं तो वे अपने पास अधिक स्टॉक रख सकते हैं और बाज़ार में सप्लाई कम कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में पूर्ति बेलोचदार होगी। यदि भविष्य में कीमतों में कमी होने की सम्भावना है तो पूर्ति अधिक लोचदार होगी।

5 **उत्पादन प्रणाली की प्रकृति :** यदि वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन प्रणाली साधारण है तो कीमत में वृद्धि का उत्पादकों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वे सप्लाई बढ़ा देते हैं जिससे पूर्ति अधिक लोचदार हो जाती है। उत्पादन के लिए आवश्यक उत्पादन प्रणाली जितनी अधिक जटिल और दुर्बल होगी उतना ही बढ़ती हुई कीमतों का पूर्ति पर प्रभाव कम होगा और इसलिए उतनी ही कम पूर्ति की लोच होगी।

बोध प्रश्न ग

1 पूर्ति की लोच क्या है ?

....

....

....

....

....

2 पूर्ति की लोच के निर्धारक क्या हैं ?

....

....

....

....

....

3 बताइए, निम्नलिखित कथनों में कौन-सा कथन सही है और कौन-सा गलत :

i) पूर्ति की लोच पूर्ति के नियम के लागू होने के कारणों को समझाती है।

ii) पूर्ति के नियम के लागू न होने पर भी पूर्ति की लोच मालूम की जा सकती है।

iii) पूर्ति की लोच सप्लाई की गई मात्रा में दिए हुए प्रतिशत परिवर्तन की वस्तु की कीमत पर प्रतिक्रिया होती है।

iv) लोचदार पूर्ति का तात्पर्य है कि जब कीमत में एक दिए हुए प्रतिशत परिवर्तन के कारण सप्लाई की मात्रा में उतने ही प्रतिशत वृद्धि होती है।

v) पूर्णतया लोचदार माँग वक्र y-अक्ष के समानान्तर होता है।

vi) बेलोचदार पूर्ति वक्र मात्रा-अक्ष से गुजरता है।

vii) एक वक्ररेखी पूर्ति वक्र पर सर्वत्र ही पूर्ति की लोच इकाई के बराबर होती है।

viii) किसी वस्तु का अल्पकालिक पूर्ति वक्र साधारणतया दीर्घकालिक पूर्ति वक्र से कम लोचदार होता है।

10.6 सारांश

किसी वस्तु की पूर्ति हमेशा (क) वस्तु की कीमत (ख) उस कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा और (ग) एक समय के दौरान सप्लाई की मात्रा के संदर्भ में होती है। वस्तु की पूर्ति, (क) वस्तु की कीमत (ख) अन्य वस्तुओं की कीमतें (ग) वस्तु की उत्पादन लागत (घ) उत्पादक को उपलब्ध तकनीकी ज्ञान (ङ) उत्पादकों के उद्देश्य और (च) अन्य कारकों जैसे सरकार की नीतियाँ, युद्ध का भय, आय व धन की बढ़ती हुई असमानताएँ आदि से निर्धारित होती है।

पूर्ति का नियम अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, वस्तु की कीमत और उसकी प्रति समय इकाई सप्लाई की गई मात्रा से सीधे संबंध को दर्शाता है।

पूर्ति फलन उन कारकों को बताता है जिन पर वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा निर्भर करती है। एक पूर्ति अनुसूची विभिन्न कीमतों और प्रत्येक कीमत पर वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा को दिखाती है। एक पूर्ति वक्र का ढलान बाएँ से दाएँ ऊपर की ओर होता है। जब पूर्ति में परिवर्तन वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक या कारकों के प्रभाव के कारण होता है तो पूर्ति वक्र विवर्तित हो जाता है। पूर्ति वक्र पर संचलन का अर्थ है केवल कीमत में परिवर्तन के कारण मात्रा में परिवर्तन, पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक पूर्ववत् रहते हैं।

पूर्ति वक्र में दायीं ओर विवर्तन "पूर्ति में वृद्धि" की स्थिति को दर्शाता है और पूर्ति वक्र में बायीं ओर विवर्तन "पूर्ति में कमी" की स्थिति को दर्शाता है। पूर्ति वक्र पर दायीं ओर संचलन "पूर्ति में विस्तार" की स्थिति है और पूर्ति वक्र पर बाईं ओर संचलन "पूर्ति में संकुचन" की स्थिति को दर्शाता है।

पूर्ति की लोच मालूम करने के लिए सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन को वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से भाग कर देते हैं। पूर्ति की लोच इकाई के बराबर, उससे कम या उससे अधिक हो सकती है। पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति की स्थिति में पूर्ति की लोच शून्य होती है और पूर्णतया लोचदार पूर्ति की स्थिति में पूर्ति की लोच अनन्त होती है। पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति वक्र कीमत अक्ष के समानान्तर होता है और पूर्णतया लोचदार पूर्ति वक्र मात्रा अक्ष के समानान्तर होता है। इकाई लोच वाला पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है और मूल बिन्दु से गुजरता है। इकाई से कम लोच वाला पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है और मात्रा-अक्ष से गुजरता है। इकाई से अधिक लोच वाला पूर्ति वक्र ऊपर की ओर उठता है और कीमत अक्ष से गुजरता है।

वक्र रेखी (curvilinear) पूर्ति वक्र के किसी एक बिन्दु पर पूर्ति की लोच निकालने के लिए उस बिन्दु से पूर्ति वक्र पर एक स्पर्शज्या खींचते हैं। उत्पादन में परिवर्तन का लागतों पर प्रभाव, वस्तु की प्रकृति, समय, कीमत की सम्भावनाएँ और उत्पादन प्रणाली की प्रकृति पूर्ति की लोच के निर्धारक हैं।

10.7 शब्दावली

पूर्ति में परिवर्तन : यह एक दी हुई कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन है।

सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन : यह वस्तु की कीमत में परिवर्तन के कारण सप्लाई की गई मात्रा में परिवर्तन है।

पूर्ति में संकुचन: वस्तु की कीमत के गिरने के कारण उसकी सप्लाई की गई मात्रा में कमी।

वक्ररेखी पूर्ति वक्र : पूर्ति वक्र जो एक सरल रेखा नहीं होती।

पूर्ति में कमी : दी हुई कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा में कमी।

पूर्ति की लोच : वस्तु की कीमत में एक दिए हुए प्रतिशत परिवर्तन की जिस हद तक सप्लाई की गई मात्रा पर प्रतिक्रिया होती है।

लोचदार पूर्ति : जब सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से अधिक है।

पूर्ति में विस्तार: वस्तु की कीमत के चढ़ने के कारण उसकी सप्लाई की गई मात्रा में वृद्धि।

प्रवाह चर : कोई भी चर जिसका मापन काफी समय से किया गया है।

आय की असमानताएँ : अर्थव्यवस्था के विभिन्न आय वर्गों के बीच आय का वितरण।

पूर्ति में वृद्धि : वस्तु की दी हुई कीमत पर सप्लाई की गई मात्रा में वृद्धि।

बेलोचदार पूर्ति : सप्लाई की गई मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन, वस्तु की कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से कम होता है।

पूर्ति का नियम : यह वस्तु की कीमत और इसकी सप्लाई की गई मात्रा के बीच सीधा संबंध है, पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारक (वस्तु की कीमत को छोड़कर) पूर्ववत् रहते हैं।

पूर्णतया बेलोचदार पूर्ति : सप्लाई की गई मात्रा विभिन्न कीमतों पर स्थिर रहती है।

पूर्ति : एक दिए हुए समय में वस्तु की वह मात्रा जो उत्पादक एक कीमत पर बेचने को तैयार होंगे।

पूर्ति फलन : यह सप्लाई की गई मात्रा को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बीच फलन संबंध है।

पूर्ति सारणी : एक तालिका जिसमें दो कॉलम होते हैं, एक में वस्तु की विभिन्न कीमतें दिखाते हैं और दूसरे में प्रत्येक कीमत पर एक दिए हुए समय में वस्तु की सप्लाई की गई मात्रा दिखाते हैं।

पूर्ति वक्र: एक वक्र जो पूर्ति को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों के पूर्ववत् रहने पर, वस्तु की कीमत और एक दी हुई समयावधि में उसकी सप्लाई की गई मात्रा के संबंध को दर्शाता है। पूर्ति वक्र दो विमितीय रेखाचित्र पर खींची जाती है जिसमें x-अक्ष पर सप्लाई की गई मात्रा और y-अक्ष पर वस्तु की कीमत मापी जाती है।

प्रौद्योगिकी : वस्तु या सेवा के उत्पादन के लिए प्रयोग में लाई गई प्रणाली।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क	1	i) कम, अधिक	ii) ऊपर की ओर	iii) कीमत, मात्रा	
		iv) कीमत, मात्रा	v) घंटे	vi) सीधा	
	2	i) गलत	ii) सही	iii) गलत	iv) सही
		v) गलत	vi) गलत	vii) गलत	viii) गलत
ख	1	i) गलत	ii) गलत	iii) गलत	iv) गलत
		v) सही	vi) गलत	vii) सही	
ग	3	i) गलत	ii) सही	iii) गलत	iv) गलत
		v) गलत	vi) सही	vii) गलत	viii) सही

10.9 स्वपरख प्रश्न

1. पूर्ति शब्द का क्या अर्थ है ? उदाहरण की सहायता से उत्तर दीजिए।
2. किसी वस्तु की पूर्ति के विभिन्न निर्धारकों को स्पष्ट कीजिए।
3. पूर्ति का नियम समझाइए। इसके अपवाद बताइए।
4. "पूर्ति का विस्तार" और "पूर्ति का संकुचन" में भेद कीजिए। इनके उदाहरण भी दीजिए।
5. पूर्ति वक्र पर संचलन का महत्व बताते हुए, इसमें तथा पूर्ति वक्र के विवर्तन में भेद कीजिए।
6. पूर्ति की लोच का क्या अर्थ है ?
7. पूर्णतया लोचदार, पूर्णतया बेलोचदार, इकाई लोच वाला, बेलोचदार और लोचदार पूर्ति वक्रों में भेद दिखाने के लिए चित्रों का प्रयोग कीजिए।
8. किसी वस्तु की पूर्ति की लोच के मुख्य निर्धारक तत्त्व क्या हैं ?

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 11 लागत सिद्धांत तथा लागत वक्र

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 लागतों का सिद्धांत
11.3 आर्थिक लागतें
11.4 अल्पकालीन लागत वक्र
   11.4.1 कुल, स्थिर और परिवर्ती लागतें
   11.4.2 सीमांत लागत
   11.4.3 लागत सारणी
   11.4.4 कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र
   11.4.5 औसत कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र तथा सीमांत लागत वक्र
   11.4.6 औसत परिवर्ती लागत वक्र की आकृति
   11.4.7 अल्पकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?
11.5 दीर्घकालीन लागत वक्र
   11.5.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र
   11.5.2 दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र
   11.5.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?
11.6 अन्य लागतें
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.10 स्वपरख प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- लागत को निर्धारित करने वाले कारकों को पहचान सकें
- विभिन्न प्रकार की लागतों में भेद कर सकें
- अल्पकालीन लागत वक्रों की आकृति को अनुरेखित कर सकें
- सीमांत लागत समझा सकें
- स्थिर और परिवर्ती लागतों में भेद कर सकें
- लागत सारणी बना सकें
- विभिन्न संबंधित लागत वक्र खींच सकें
- यह समझा सकें कि औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों होता है
- अल्पकालीन लागत और दीर्घकालीन लागत में संबंध का पता लगा सकें।

11.1 प्रस्तावना

9 व 10 इकाइयों में आपने उत्पादन के साधनों और उत्पादन में संबंध के बारे में जानकारी प्राप्त की। उत्पादन करने के लिए साधन किसी कीमत पर ही उपलब्ध होते हैं। अतः एक समय के दौरान केवल लागत लगाकर ही उत्पादन सम्भव है। उत्पादक इस लागत को न्यूनतम करना चाहेगा। इस इकाई में आप लागत के निर्धारकों (determinants) का अध्ययन करेंगे। लेखा लागतों, आर्थिक लागतों, अवसर लागत, निजी लागत, सामाजिक लागत और वास्तविक लागत की अवधारणाओं को समझाया जाएगा। अल्पकालीन औसत लागत, अल्पकालीन सीमांत लागत, स्थिर व परिवर्ती लागतों और दीर्घकालीन लागतों के बारे में भी जानकारी दी जाएगी। उत्पादन के स्तर में परिवर्तन के साथ-साथ विभिन्न कीमतें किस प्रकार बदलती हैं ? इस प्रश्न का उत्तर भी इस इकाई का एक हिस्सा है।

11.2 लागतों का सिद्धांत

एक उत्पादन करने वाली फर्म का लागतों का सिद्धांत कुल लागत का उत्पादन के स्तर से संबंध बतलाता है। हम उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत दिखाते हुए एक तालिका बना सकते हैं। यह तालिका लागत सारणी कहलाती है। इसी प्रकार लागतों को एक गणितीय रूप में व्यक्त किया जा सकता है, जिसे लागत फलन कहते हैं। और अन्त में, उत्पादन और कुल लागत के संबंध को एक वक्र के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जिसे कुल लागत वक्र कहते है। एक फर्म की उत्पादन लागत निम्नलिखित कारकों से निर्धारित होती है :

1 **उत्पादन की भौतिक स्थिति :** एक फर्म का उत्पादन, उत्पादन के साधनों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिनके उत्पादन के एक विशेष स्तर के लिये आवश्यकता होती है। यह सूचना हमें उत्पादन फलन से मिलती है जिसकी जानकारी आपको 8 और 9 इकाइयों में पहले ही दी जा चुकी है।

2 **उत्पादन के साधनों की कीमतें :** इसमें कोई शक नहीं कि उत्पादन के एक स्तर को प्राप्त करने के लिये आवश्यक, भौतिक साधन की जानकारी उत्पादन फलन की प्रकृति से मिलती है। लेकिन ये साधन एक फर्म को एक खास कीमत पर उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिये, श्रम एक खास मजदूरी पर उपलब्ध होता है, पूंजी एक खास ब्याज पर और भूमि एक खास लगान पर। इसी प्रकार उद्यमी लाभ के लिये काम करता है। मज़दूरी, ब्याज, लगान और लाभ के निर्धारण पर इकाई 18 और 19 में विचार किया जाएगा। उत्पादन के लिये प्रयोग की गई एक साधन की भौतिक इकाइयों को उसकी कीमत से गुणा करने पर उस साधन की कुल लागत पता लग जाती है। सभी साधनों की लागतों का योग कुल उत्पादन लागत कहलाता है।

3 **साधनों का कुशलतम उपयोग :** उत्पादन के किसी स्तर को प्राप्त करने के लिये न्यूनतम लागत संयोग की प्रक्रिया के बारे में आपको इकाई 9 में बताया गया था। सम लागत रेखा की समउत्पाद रेखा से स्पर्शिता हमें साधनों के न्यूनतम लागत संयोग देती है। यह भी स्पष्ट किया गया था कि स्पर्शिता का अर्थ है तकनीकी प्रतिस्थापन की सीमांत दर का साधनों की कीमतों के अनुपात के बराबर होना। इस प्रकार, यदि फर्म का उद्देश्य लागतों को कम करना है तो हमें उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत पता लग सकती है। यह मान्यता है कि उत्पादन के प्रत्येक स्तर के लिये फर्म साधनों का न्यूनतम लागत संयोग चुनती है। दूसरे शब्दों में फर्म साधनों का वह संयोग चुनती है जो एक दिये हुए उत्पादन स्तर के अनुरूप विस्तार पथ पर होता है।

11.3 आर्थिक लागतें (Economic Costs)

आर्थिक सिद्धांत में आर्थिक लागत की अवधारणा का प्रयोग होता है। इसमें स्पष्ट और अस्पष्ट लागतें शामिल होती हैं। स्पष्ट लागत में विभिन्न उत्पादक साधनों जैसे भूमि, श्रम, भूमि और कच्चे माल के सप्लायरों को उद्यमी द्वारा किये गये भुगतान और खर्चे आते हैं। इस प्रकार, फर्म द्वारा किराये पर लिया गया इमारत का किराया, काम पर लगाये गये श्रमिकों की मज़दूरी, व्यापार करने के लिये उधार ली गई पूँजी पर ब्याज और कच्चे माल के लिये दी गई कीमत और काम में लाए गए ईंधन एवं शक्ति इत्यादि, ये सब मिलकर ही स्पष्ट लागत कहलाते हैं।

अस्पष्ट लागतों में ये आते हैं : (क) उद्यमी द्वारा अपने व्यापार में लगाई गई अपनी ही पूँजी पर सामान्य प्रतिफल जो वह अर्जित कर सकता था यदि वह इस पूँजी को अपने व्यापार की बजाय कहीं और लगाता। मान लीजिये एक उत्पादक व्यापार शुरू करने के लिए अपने व्यक्तिगत साधनों में से 10,000 रु॰ का निवेश करता है। यदि वह यह पूंजी कहीं और लगाता तो मान लीजिए वह प्रति वर्ष 1,000 रु॰ प्रतिफल के रूप में प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार 1,000 रु॰ अस्पष्ट लागत का एक हिस्सा है। और (ख) मज़दूरी और वेतन जो उद्यमी अर्जित कर सकता था यदि वह अपनी सेवाओं को किसी और को बेचता। फिर मान लीजिए उद्यमी स्वयं का व्यापार शुरू करने की बजाय किसी अन्य फर्म में मैनेजर की हैसियत से 2,000 रु॰ प्रति माह के वेतन पर काम करने का निर्णय लेता है, तो 2,000 रु॰ भी अस्पष्ट लागत का हिस्सा है। किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन में लगी स्पष्ट लागत वह राशि है जो कि उद्यमी अपनी पूँजी और समय सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग में लगाकर अर्जित कर सकता था। यदि अस्पष्ट लागत दी हुई हो तो आर्थिक लागत = स्पष्ट लागत + अस्पष्ट लागत।

एक अर्थशास्त्री जब भी लागतों का ज़िक्र करता है तो उसके मन में आर्थिक लागतों की अवधारणा होती है। इसके अनुसार आर्थिक लाभ = कुल आगम (कीमत × बेची गई मात्रा) – कुल आर्थिक लागत। यदि कुल आगम कुल आर्थिक लागत के बराबर भी हो तब भी फर्म को कुछ लाभ प्राप्त होते हैं (जिन्हें सामान्य लाभ कहते हैं और जो

अस्पष्ट लागतों के बराबर होते हैं), यद्यपि आर्थिक लाभ शून्य के बराबर हैं। इकाई 13 में आप इसके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

बोध प्रश्न क

1 आर्थिक लागतें क्या है ?

....

....

....

2 स्पष्ट और अस्पष्ट लागतों में भेद कीजिये।

....

....

....

3 रिक्त स्थान भरिए :

i) एक अर्थशास्त्री के लिये लागतों का अर्थ है ....।

ii) जब कुल आगम, कुल आर्थिक लागतों के बराबर होता है तो आर्थिक लाभ ....होते हैं।

iii) आर्थिक लागतें = ... + ...।

iv) एक फर्म द्वारा श्रमिकों को दी गई मज़दूरी ....लागत है।

v) यदि एक उद्यमी अपना व्यापार करने की बजाय किसी अन्य फर्म में काम करता है और 2,000 रु॰ प्रति माह वेतन पाता है तो 2,000 रु॰ .... है।

11.4 अल्पकालीन लागत वक्र (Short-run Cost Curves)

विश्लेषणात्मक दृष्टि से अल्प काल को एक ऐसी स्थिति के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें उत्पादन का स्तर परिवर्तित होने पर भी कुछ साधनों की मात्रा में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ये साधन, जिन्हें परिवर्तित नहीं किया जा सकता, स्थिर साधन कहलाते हैं। ऐसे साधन भी होते हैं जो अधिक उत्पादन के लिए बढ़ाये जाते हैं और कम उत्पादन के लिये घटाये जाते हैं। वे साधन जिनकी मात्रा अल्पकाल में परिवर्तित की जा सकती है, परिवर्ती साधन कहलाते हैं। अल्प काल को एक पंचाग अवधि (Calendar Period) नहीं समझना चाहिए। अल्प काल की मुख्य विशेषता यह है कि कुछ साधन स्थिर होते हैं और अन्य साधन परिवर्ती होते हैं।

11.4.1 कुल स्थिर और परिवर्ती लागतें

स्थिर लागतें (fixed costs) वे लागतें होती हैं जिनमें उत्पादन में परिवर्तन के साथ परिवर्तन नहीं होता। यह भी कहा जा सकता है कि स्थिर लागतें स्थिर साधनों को काम पर लगाने की लागतें हैं। स्थिर साधनों में अल्पकाल में कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः इन साधनों पर लगी लागतों में भी कोई परिवर्तन नहीं होता। स्थिर साधनों को काम पर लगाने की कुल लागत को कुल स्थिर लागत कहते हैं। स्थिर लागत में (i) प्रशासनिक कर्मचारियों का वेतन (ii) इमारत का किराया (iii) और पूँजी पर ब्याज शामिल किये जाते हैं।

परिवर्ती लागतें (variable costs) वे सब लागतें हैं जिनका उत्पादन के स्तर के साथ सीधा संबंध है, जो उत्पादन बढ़ने पर बढ़ती हैं और उत्पादन घटने पर घटती हैं। दूसरे शब्दों में परिवर्ती लागतें परिवर्ती साधनों पर लगी लागतें हैं। परिवर्ती साधनों पर लगी कुल लागत को कुल परिवर्ती लागत कहते हैं। परिवर्ती लागतों को प्रत्यक्ष लागतें या मूल लागतें भी कहते हैं। परिवर्ती लागतों के अंतर्गत (i) कच्चे माल की लागत (ii) मशीन व संयंत्र चलाने की लागत जैसे कि ईंधन, नित्यक्रम अनुरक्षण (iii) अप्रशिक्षित और अर्धप्रशिक्षित श्रम की लागत आदि आते हैं। **उत्पादन के किसी स्तर को उत्पादित करने की कुल लागत, कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्ती लागत का योग है।** परिभाषा के अनुसार स्थिर लागत स्थिर रहती है; अतः कुल लागतों में परिवर्तन केवल कुल परिवर्ती लागतों में परिवर्तन के कारण हो सकता है।

कुल लागत को कुल उत्पादन से भाग देने पर औसत लागत, जिसे औसत कुल लागत (average total cost) भी कहते हैं, आ जाती है। कुल स्थिर लागत को उत्पादित इकाइयों से भाग देने पर औसत स्थिर लागत आ

जाती है। कुल परिवर्ती लागत को उत्पादित इकाइयों से भाग देने पर औसत परिवर्ती लागत आ जाती है। औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत को जोड़ने से भी औसत कुल लागत निकाली जा सकती है।

विभिन्न लागतों के संबंध का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है :

कुल लागत = कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्ती लागत

$$\text{औसत कुल लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

$$\text{औसत स्थिर लागत} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्ती लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

औसत कुल लागत = औसत स्थिर लागत + औसत परिवर्ती लागत

11.4.2 सीमांत लागत

सीमांत लागत (marginal cost) लागत की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। कुल उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि करने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे सीमांत लागत कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए एक वस्तु की 10 इकाइयाँ उत्पादित करने की कुल लागत 1,000 रु॰ है और उसी वस्तु की 11 इकाइयाँ उत्पादित करने की कुल लागत 1,100 रु॰ है, तो ग्यारहवीं इकाई उत्पादित करने की सीमांत लागत 100 रु॰ (1,100 – 1,000) होगी। दूसरे शब्दों में, सीमांत लागत (x+1) वीं इकाई की = कुल लागत (x+1) इकाइयों की – कुल लागत (x इकाई की), (यहाँ x का अर्थ है उत्पादन की इकाइयाँ)।

क्योंकि अल्पकाल में केवल परिवर्ती लागतें बदलती हैं, अतः सीमांत लागत (x+1) वीं इकाई की = कुल परिवर्ती लागत (x-1 इकाइयों की) - कुल परिवर्ती लागत ((x) इकाइयों की)

यदि किसी वस्तु के उत्पादन में परिवर्तन ठीक एक इकाई का नहीं होता तो

$$\text{सीमांत लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्ती लागत में परिवर्तन}}{\text{कुल उत्पादन में परिवर्तन}}$$

11.4.3 लागत सारणी

विभिन्न उत्पादन के स्तर पर ऊपर बताई गई विभिन्न लागतों को तालिका 11.1 में दिखाया गया है। इसमें आंकड़े काल्पनिक हैं।

तालिका 11.1

उत्पादन की मात्रा (इकाइयों में) (1)	कुल स्थिर लागत (रु॰) (2)	कुल परिवर्ती लागत (रु॰) (3)	कुल लागत (रु॰) (4)	औसत स्थिर लागत (रु॰) (5)	औसत परिवर्ती लागत (रु॰) (6)	औसत कुल लागत (रु॰) (7)	सीमान्त लागत (रु॰) (8)
0	400	—	400	—	—	—	—
1	400	40	440	400	40	440	40
2	400	64	464	200	32	232	24
3	400	84	484	133.33	28	161.33	20
4	400	104	504	100	26	126	20
5	400	120	520	80	24	104	16
6	400	144	544	66.67	24	90.67	24
7	400	182	582	57.14	26	83.14	38

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
8	400	224	624	50	28	78	42
9	400	288	688	44.44	32	76.44	64
10	400	360	760	40	36	76	72
11	400	436	836	36.36	39.64	76	76
12	400	521.60	921.60	33.33	43.48	76.81	85.60
13	400	640	1040	30.76	49.24	80	118.40
14	400	792.80	1192.80	28.56	56.64	85.20	152.80
15	400	998	1398	26.68	66.52	93.20	205.20
16	400	1296	1696	25	81	106	298
17	400	1674	2074	23.52	98.48	122	378
18	400	2156	2556	22.24	119.76	142	482
19	400	2792	3192	21.04	146.96	168	636
20	400	3600	4000	20	180	200	808

तालिका 11.1 में परिकलन निम्नलिखित तरीके से किये गये हैं :

1 कॉलम 2 में दिखाई गई कुल स्थिर लागत 400 रु॰ ली गई है और उत्पादन का स्तर कितना भी हो ये 400 रु॰ ही रहती है।

2 कॉलम 3 में दी गई कुल परिवर्ती लागत उत्पादन वृद्धि के साथ बढ़ रही है।

3 कॉलम 4 में दिखाई गई कुल लागत उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कॉलम 2 और 3 (यानि कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्ती लागत) का योग है। उदाहरण के लिये जब उत्पादन 2 इकाई है तो कुल स्थिर लागत 400 रु॰ है और कुल परिवर्ती लागत 64 रु॰, अतः कुल लागत 464 रु॰ (400 रु॰ + 64 रु॰) है।

4 कॉलम 5 में दी गई कुल स्थिर लागत कॉलम 2 में दी गई कुल स्थिर लागत को कॉलम 1 में दिये गये उत्पादन से भाग देने पर आई है। उदाहरण के लिए उत्पादन की 3 इकाई पर औसत स्थिर लागत $= \frac{400}{3}$ रु॰ = 133·33 रु॰ है।

5 कॉलम 6 में दी गई औसत परिवर्ती लागत कॉलम 3 की कुल परिवर्तन लागत का कॉलम 1 में दिये गए उत्पादन से भाग देने पर आई है। उदाहरण के लिए, जब उत्पादन 4 इकाई है तो कुल परिवर्ती लागत 104 रु॰ है, अतः औसत परिवर्ती लागत $= \frac{104}{4} = 26$ रु. है।

6 कॉलम 7 में दी गई औसत कुल लागत निकालने के लिए कॉलम 4 में दी गई कुल लागत को कॉलम 1 में दिये उत्पादन से भाग दिया गया है। उदाहरण के लिए जब उत्पादन 5 इकाइयाँ है तो कुल लागत 520 रु॰ है, अतः औसत कुल लागत $= \frac{520}{5}$ रु॰ = 104 रु॰ है। औसत कुल लागत कॉलम 5 की औसत स्थिर लागत और कॉलम 6 की औसत परिवर्ती लागत को जोड़कर भी निकाली जा सकती है। जब उत्पादन 5 इकाई है तो औसत स्थिर लागत 80 रु॰ है और औसत परिवर्ती लागत = 24 रु॰ है, अतः औसत कुल लागत = 80 + 24 रु॰ = 104 रु॰ है।

7 कॉलम 8 में दी गई सीमांत लागत दिये हुए उत्पादन की कुल लागत को उस उत्पादन में एक इकाई बढ़ाने पर जो कुल लागत है उसमें से घटाने पर आ जाती है। उदाहरण के लिए कॉलम 4 में दी गई उत्पादन की 4 इकाइयों की कुल लागत 504 रु॰ है और 5 इकाइयों (4+1 = 5) की कुल लागत 520 रु॰ है, अतः 5वीं इकाई की सीमांत लागत = 520 रु॰ – 504 रु॰ = 16रु॰ है।

सीमांत लागत कुल परिवर्ती लागत के आंकड़ों से भी निकाली जा सकती है। उत्पादन की 5 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 120 रु॰ है और 4 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 104 रु॰ है, अतः पांचवी इकाई की सीमांत लागत = 120 रु॰ – 104 रु॰ = 16 रु॰ है।

11.4.4 कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र

तालिका 11.1 में दी गई सूचना को दो हिस्सों में चित्रित किया जाएगा। इस भाग में कॉलम 1, 2, 3 और 4 में दिये गये आँकड़ों को कुल स्थिर लागत वक्र (TFCC), कुल परिवर्ती लागत वक्र (TVCC) और कुल लागत वक्र (TCC) की सहायता से चित्रित किया जाएगा जैसा कि चित्र 11.1 में दिखाया गया है।

चित्र 11.1

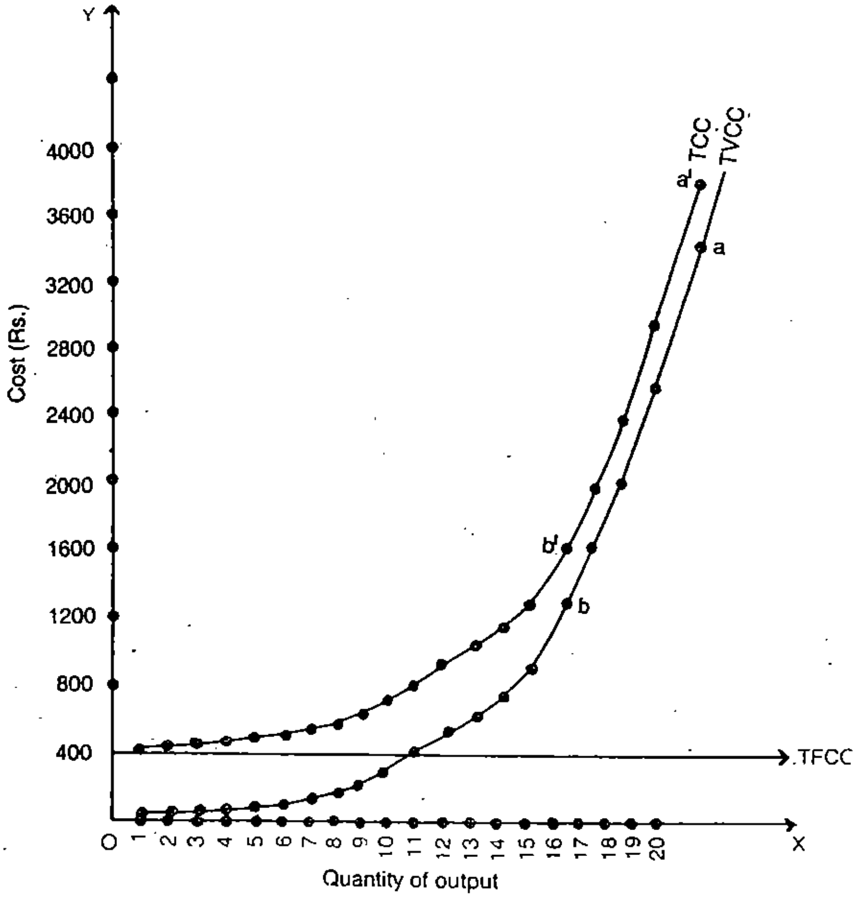

x-अक्ष पर उत्पादन की मात्रा मापी गई है और y-अक्ष पर लागत (रु॰ में) मापी गई है। उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर कुल स्थिर लागत 400 रु॰ रहती है। तदनुसार TFCC x-अक्ष के समानान्तर है। जब उत्पादन शून्य है तब भी कुल स्थिर लागत 400 रु॰ है और यह शुरु से अंत तक इतनी ही रहती है। उत्पादन की मात्रा बढ़ने पर कुल परिवर्ती लागत बढ़ती है। अतः उत्पादन की प्रत्येक मात्रा के अनुरूप कुल परिवर्ती लागत y-अक्ष पर मापी जाती है। उत्पादन के प्रत्येक स्तर की कुल परिवर्ती लागत ग्राफ़ पर एक बिंदु द्वारा दर्शायी जाती है। उदाहरण के लिए TVCC पर बिंदु a उत्पादन की 20 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 3,600 रु॰ दिखाता है। इसी प्रकार TVCC पर बिंदु b उत्पादन की 16 इकाइयों की कुल परिवर्ती लागत 1,296 रु॰ दर्शाता है। उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल लागत (कुल स्थिर लागत + कुल परिवर्ती लागत) को दर्शाने वाले बिंदुओं को मिलाने से कुल लागत वक्र (TCC) बन जाता है। उदाहरण के लिये उत्पादन की 20 इकाइयों की कुल लागत 4,000 रु॰ है और यह बिंदु a' द्वारा दर्शायी गई है। उत्पादन के इस स्तर पर कुल परिवर्ती लागत 3,600 रु॰ है और कुल स्थिर लागत 400 रु॰ है और इन दोनों का योग यानि कुल लागत (3,600 + 400) 4,000रु॰ है। इसके अतिरिक्त, यदि उत्पादन 16 इकाइयाँ हैं, तो इसकी कुल परिवर्ती लागत 1,296 रु॰ है और कुल स्थिर लागत 400 रु. है और इस प्रकार लागत 1,696 रु. है जो बिंदु a' b' द्वारा दर्शायी गई है। a' और b' जैसे सभी बिंदुओं को मिलाने से TCC बन जाती है। TCC पर भी TVCC की तरह 20 बिंदु हैं।

11.4.5 औसत कुल, स्थिर और परिवर्ती लागत वक्र तथा सीमांत लागत वक्र

तालिका 11.1 में कॉलम 5, 6, 7 और 8 में दिए गए आँकड़े को ग्राफ पर क्रमशः औसत कुल लागत वक्र, औसत स्थिर लागत वक्र, औसत परिवर्ती लागत वक्र और सीमांत लागत वक्र खींच कर चित्रित किया जा सकता है। ये वक्र चित्र 11.2 में दिखायी गई हैं।

चित्र 11.1में TFCC एक समस्तर रेखा है (यानि ऐसी रेखा जो OX अक्ष के समानांतर है) क्योंकि उत्पादन के सभी स्तरों पर कुल स्थिर लागत स्थिर रहती है। TVCC यह दर्शाती है कि कुल परिवर्ती लागत उत्पादन में वृद्धि के साथ पहले घटती हुई दर पर बढ़ती है और फिर बढ़ती हुई दर पर बढ़ती है। कुल परिवर्ती लागत में वृद्धि की दर TVCC के ढलान से पता लग जाती है। AVCC में इस प्रकार के परिवर्तनों के कारणों का विश्लेषण भाग 11.4.6 में किया जाएगा। TCC और TVCC में शीर्ष (vertical) फ़ासला उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर कुल स्थिर लागत दर्शाता है। TCC और TVCC में शीर्ष फ़ासला एक जैसा रहता है क्योंकि अल्प कालं में कुल स्थिर लागत स्थिर रहती हैं चाहे उत्पादन का स्तर कितना भी हो।

चित्र 11.2

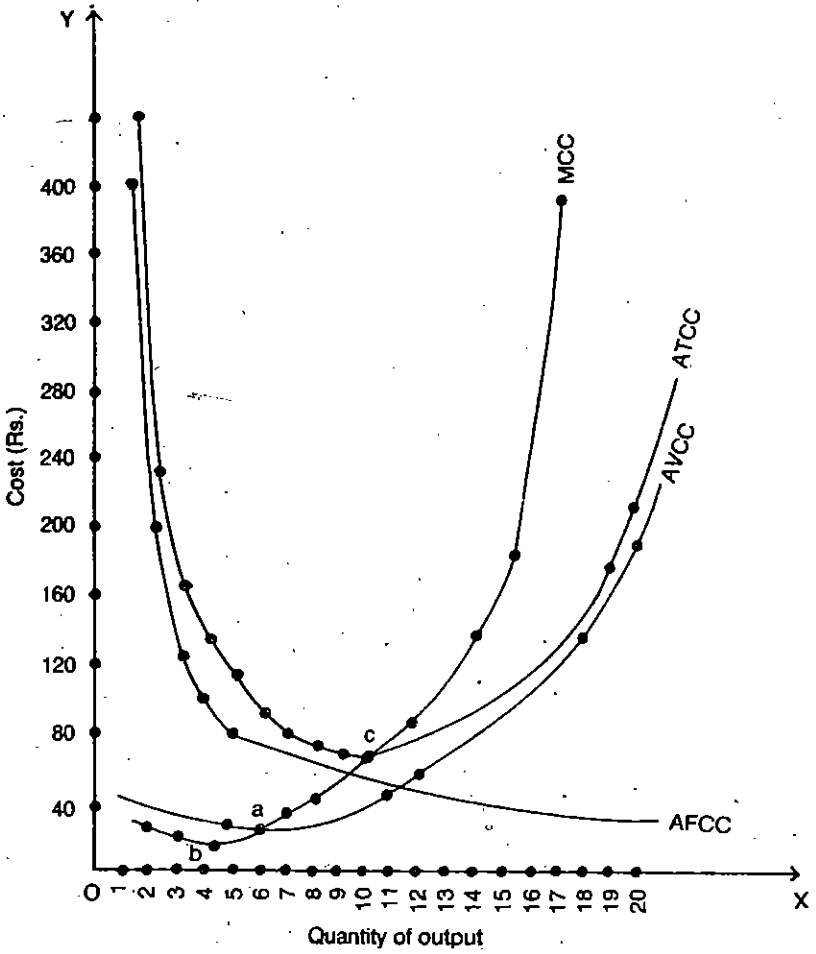

चित्र 11.2 में औसत स्थिर लागत को AFCC की सहायता से दिखाया गया है। औसत स्थिर लागत लगातार गिरती हुई दिखायी गई है जो यह सूचित करती है कि जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है औसत स्थिर लागत घटती है, हालाँकि कुल स्थिर लागत स्थिर है, क्योंकि

$$\text{औसत स्थिर लागत} = \frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{उत्पादन की मात्रा}}$$

औसत परिवर्ती लागत पहले घटती है, बिंदु a पर न्यूनतम होती है और इसके बाद बढ़ती है। जब औसत परिवर्ती लागत बिंदु a पर न्यूनतम होती है तो सीमांत लागत औसत परिवर्ती लागत के बराबर होती है। औसत कुल लागत पहले गिरती है, बिंदु c पर न्यूनतम होती है और उसके बाद बढ़ती है। जब औसत कुल लागत न्यूनतम होती है जो कि बिंदु c पर है तो सीमांत लागत, औसत कुल लागत के बराबर होती है। इसके अतिरिक्त, सीमांत लागत पहले गिरती है, बिंदु b पर न्यूनतम होती है और उसके बाद बढ़ती है। इस प्रकार सीमांत लागत औसत परिवर्ती लागत और औसत कुल लागत दोनों के बराबर होती है जब ये दोनों अपने न्यूनतम स्तर पर होती हैं।

चित्र 11.2 में यह ध्यान रखने योग्य है कि

(1) AVCC और ATCC दोनों के गिरते हुए भाग में सीमांत लागत वक्र (MCC) इन दोनों के नीचे रहता है । इन दोनों वक्रो के ऊपर जाते हुए भाग में MCC इन दोनों के ऊपर रहता है। (2) जैसे-जैसे AFCC क्षैतिज अक्ष (x-अक्ष) के पास आता जाता है, AVCC, ATCC के नज़दीक आता जाता है। उत्पादन के एक दिये हुए स्तर पर ATCC और AVCC के बीच का फासला औसत स्थिर लागत को दर्शाता है और क्योंकि उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ औसत स्थिर लागत घटती जाती है, ATCC और AVCC के बीच का फासला घटता जाता है। इस प्रकार यदि ATCC और AVCC दिए हुए हों तो AFCC की आकृति हमेशा पता लग सकती है। (3) उत्पादन के विभिन्न स्तरों पर औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत के योग को जो बिंदु दर्शाते हैं उन्हें मिलाने से ATCC बन जाता है। (4) ATCC U आकृति का होती है जो यह सूचित करता है कि अल्पकाल में जैसे-जैसे उत्पादन में वृद्धि होती है, औसत लागत बिंदु c तक घटता जाता है और उसके बाद बढ़ने लगता है। (5) उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ AVCC और MCC में गिरने की प्रवृत्ति दिखाई देती है और अंत में ये उठने लगती है। AVCC की तुलना में MCC के न्यूनतम बिंदु पर उत्पादन का स्तर कम होता है। उदाहरण के लिए सीमांत लागत (MC) उत्पादन की 5 इकाइयों पर न्यूनतम है और औसत परिवर्ती लागत उत्पादन की 6 इकाइयों पर न्यूनतम है। दूसरी ओर, औसत लागत उत्पादन की 11 इकाइयों पर न्यूनतम है।

11.4.6 औसत परिवर्ती लागत वक्र (AVCC) की आकृति

यह विश्लेषण करना कि औसत परिवर्ती लागत पहले घटती क्यों है और अंत में बढ़ने क्यों लगती है, बहुत महत्वपूर्ण है। परिवर्ती अनुपातों के नियम (जिस पर इकाई 9 में विचार किया गया था) का लागू होना औसत परिवर्ती लागत में इस प्रकार के परिवर्तनों को स्पष्ट करता है। यही बात एक आसान तरीके से समीकरणों के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है।

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \frac{\text{कुल परिवर्ती लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

$$AVC = \frac{TVC}{Q} \qquad \text{(i)}$$

कुल परिवर्ती लागत = परिवर्ती साधन की कीमत × परिवर्ती साधन की मात्रा

अतः समीकरण (i) को निम्नलिखित समीकरण का रूप दिया जा सकता है।

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \frac{\text{परिवर्ती साधन की कीमत} \times \text{परिवर्ती साधन की मात्रा}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

अथवा

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \text{परिवर्ती साधन की कीमत} \left(\frac{\text{परिवर्ती साधन की मात्रा}}{\text{कुल उत्पादन}}\right)$$

$$AVC = P\left(\frac{V}{Q}\right) \qquad \text{(ii)}$$

अगर कुल उत्पादन की मात्रा को परिवर्ती साधन की मात्रा से भाग दें तो परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद मालूम हो जायेगा, अतः

$$\frac{\text{परिवर्ती साधन की मात्रा}}{\text{कुल उत्पादन}} = \frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}$$

इस समीकरण के आधार पर समीकरण (ii) को निम्नलिखित रूप में लिखा जा सकता है :

$$\text{औसत परिवर्ती लागत} = \text{परिवर्ती साधन की कीमत} \left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}\right)$$

$$AVC = P\,\frac{(1)}{AP_V} \qquad \text{(iii)}$$

परिवर्ती अनुपातों का नियम हमें यह बताता है कि जैसे-जैसे परिवर्ती साधनों की अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है, शुरु में परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद बढ़ता है और उत्पाद की दी हुई कीमत पर परिवर्ती साधन की कीमत $\left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}\right)$ घटने लगता है। एक स्तर के बाद परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद घटने लगता है, जिससे परिवर्ती साधन की कीमत $\left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का औसत उत्पाद}}\right)$ बढ़ता है। अतः औसत परिवर्ती लागत पहले घटती है, न्यूनतम हो जाती है और अंत में बढ़ती है जिससे U आकृति का वक्र बन जाता है।

11.4.7 अल्पकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?

औसत लागत वक्र सामान्यतः U आकृति का होता है। इसका कारण यह ही है कि औसत लागत वक्र, औसत स्थिर लागत वक्र व औसत परिवर्ती लागत वक्र इन दोनों से ही बना है। उत्पादन बढ़ने के साथ औसत लागत लगातार घटती है और औसत परिवर्ती लागत पहले घटती है, न्यूनतम हो जाती है और फिर बढ़ती है। शुरु में जब औसत परिवर्ती लागत घटती है, (औसत स्थिर लागत तो घटती ही है) तो इस कारण औरत कुल लागत घटती है। अतः शुरु में ATCC नीचे की ओर ढालू होता है, जैसे-जैसे उत्पादन बढ़ता है। फिर औसत परिवर्ती लागत बढ़ने लगती है। लेकिन औसत स्थिर लागत का घटना जारी रहता है और जब तक औसत परिवर्ती लागत में वृद्धि औसत स्थिर लागत में कमी से कम है, औसत कुल लागत का घटना जारी रहेगा। अंत में, जब औसत परिवर्ती लागत में वृद्धि औसत स्थिर लागत में कमी से अधिक हो जाती है तो औसत कुल लागत बढ़ने लग जाती है और इस प्रकार ATCC U-आकृति का बन जाता है। MCC (सीमांत लागत वक्र) भी U आकृति का होता है। इसका कारण यह है कि परिवर्ती अनुपातों के नियम के अनुसार एक परिवर्ती साधन का सीमांत उत्पाद सामान्यतः पहले बढ़ता है, अधिकतम हो जाता है और अंत में घटता है।

हमें यह पता है कि :

$$\text{सीमांत लागत} = \text{परिवर्ती साधन की कीमत} \times \left(\frac{1}{\text{परिवर्ती साधन का सीमांत उत्पाद}}\right)$$

अतः सीमांत लागत, जो कि उत्पादन को एक इकाई बढ़ाने पर कुल लागत या कुल परिवर्ती लागत में वृद्धि है, पहले घटती है, न्यूनतम हो जाती है और इसके बाद बढ़ती है। इस प्रकार सीमांत लागत वक्र (MCC) भी U आकृति का होता है।

बोध प्रश्न ख

1 औसत स्थिर लागत और औसत परिवर्ती लागत में भेद कीजिए।

....

....

2 निम्नलिखित तालिका को पूरा कीजिए :

उत्पादन की इकाइयाँ	कुल स्थिर लागत रु॰	कुल परिवर्ती लागत रु॰	कुल लागत रु॰	सीमांत लागत रु॰
0	100	-	-	-
1	-	-	-	40
2	-	-	-	30
3	-	-	-	50
4	-	-	-	60
5	-	-	-	70

3 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

i) जब सीमांत लागत न्यूनतम होती है तो औसत परिवर्ती लागत सीमांत लागत के बराबर होती है। ....

ii) जब सीमांत लागत शुरु में घटने लगती है तो औसत परिवर्ती लागत बढ़ने लगती है। ....

iii) जब औसत उत्पाद बढ़ रहा है तो औसत परिवर्ती लागत घट रही है। ....

iv) उत्पादन के बढ़ने पर भी औसत स्थिर लागत उतनी ही रहती है। ....

v) जब सीमांत लागत बढ़ती है तो औसत स्थिर लागत घटती है। ....

vi) जैसे-जैसे औसत परिवर्ती लागत घटती है, औसत कुल लागत भी कम होती है। ....

vii) जब औसत कुल लागत घट रही है तो सीमांत लागत नहीं बढ़ सकती। ....

viii) उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत कुल लागत वक्र (ATCC) और औसत परिवर्ती लागत वक्र (AVCC) के बीच का फासला केवल दीर्घ काल में घटता है। ....

ix) औसत कुल लागत = औसत स्थिर लागत + औसत परिवर्ती लागत। अतः सीमांत लागत = सीमांत स्थिर लागत + सीमांत परिवर्ती लागत। ....

x) जब कुल लागत अधिकतम होती है तो सीमांत लागत शून्य होती है। ....

4 औसत कुल लागत वक्र (ATCC) के U-आकृति का होने का क्या आधार है ?

....

....

....

5 सीमांत लागत और औसत लागत वक्रों के बीच क्या संबंध है ? रेखाचित्र के आधार पर संक्षेप में वर्णन कीजिए।

....

....

....

11.5 दीर्घकालीन लागत वक्र (Long-run Cost Curves)

दीर्घकाल एक ऐसी समयावधि है जिसमें उत्पादन के सभी साधन परिवर्ती होते हैं। दीर्घकाल भविष्य का वह समय भी है जब उद्यमी उत्पादन में परिवर्तन इस तरह से नियोजित कर सकता है जो कि उसे अधिकतम लाभदायक हों। अल्पकाल में संयंत्र स्थिर होता है और उद्यमी अधिक उत्पादन इस संयंत्र का प्रतिदिन अधिक समय प्रयोग करके ही प्राप्त कर सकता है। दीर्घकाल में वह उत्पादक क्षमता बढ़ाने की योजना भी बना सकता है। मशीन के प्रयोग के समय को अपरिवर्तित रखते हुए यह कहना ठीक होगा **कि दीर्घकाल उन सभी सम्भव अल्पकालीन स्थितियों से बना है जिनमें से उद्यमी या अन्य आर्थिक एजेंट चुनाव कर सकते हैं।** अधिकांश नियोजन सामान्यतः दीर्घकाल में किया जाता है जबकि वास्तविक प्रचलन अल्पकाल में होता है। इकाई 9 में साधनों का न्यूनतम लागत संयोग पहले ही समझाया जा चुका है। हम यह मान्यता करते हैं कि दीर्घकाल में प्रत्येक वैकल्पिक उत्पादन साधनों के न्यूनतम लागत संयोग द्वारा उत्पादित किया जा सकता है। साधन कीमतों के पता होने पर, एक दिये हुए उत्पादन स्तर की कीमत निकाली जा सकती है और इस प्रकार एक दीर्घकालीन लागत वक्र खींचा जा सकता है। दीर्घकालीन कुल लागत वक्र के पता होने पर, दीर्घकालीन औसत लागत वक्र और दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र खींचे जा सकते हैं।

11.5.1 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र

दीर्घकाल में कोई भी साधन स्थिर नहीं होता और उत्पादन बढ़ाने के लिए सभी साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। अल्पकाल में संयंत्र का आकार स्थिर होता है और इसे बढ़ाया नहीं जा सकता। दूसरे शब्दों में अल्पकाल में यदि उत्पादन का स्तर परिवर्तित करना हो तो पूंजीगत उपकरण के आकार को नहीं बदल सकते। दीर्घकाल में उत्पादन को बढ़ाने या घटाने के लिए हमें संयंत्र के आकार को बदलने की अनुमति होती है। उत्पादन का न्यूनतम लागत संयोग पता होने पर, दीर्घकालीन लागत वक्र उत्पादन और दीर्घकालीन उत्पादन लागत के बीच फलनात्मक संबंध दर्शाता है।

$$\text{दीर्घकालीन औसत लागत} = \frac{\text{दीर्घकालीन कुल लागत}}{\text{दीर्घकालीन नियोजित उत्पादन की मात्रा}}$$

यह समझने के लिए कि दीर्घकालीन औसत लागत वक्र कैसे प्राप्त किया जाता है हम दो अल्पकालीन औसत लागत वक्रों पर विचार करते हैं। ये चित्र 11.3 में दिखाये गये हैं।

चित्र 11.3

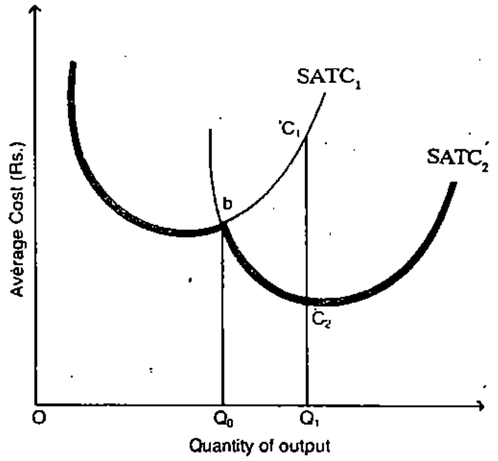

दो अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_1$ और $SATC_2$ खींचे गये हैं। इन लागत वक्रों को संयंत्र वक्र भी कहा जाता है। अल्पकाल में संयंत्र का आकार पता होने पर फर्म केवल अल्पकालीन औसत लागत वक्र पर ही क्रियाशील हो सकती है। हमने यह माना है कि तकनीकी रूप से संयंत्र के केवल ये दो आकार ही सम्भव हैं। $SATC_1$ अल्पकालीन औसत लागत वक्र है और फर्म परिवर्ती साधनों की मात्रा को बदल कर उत्पादन बढ़ा या घटा सकती है। उदाहरण के लिए अल्पकाल में OQ_1 मात्रा उत्पादित करने के लिए अल्पकालीन औसत लागत Q_1C_1 होगी जैसा कि $SATC_1$ द्वारा बताया गया है। फर्म OQ_1 उत्पादन Q_1C_1 औसत लागत पर ही कर सकती हैं, उसके पास कोई अन्य विकल्प नहीं है। दीर्घकाल में फर्म के पास विकल्प है, वह पहले से बड़े आकार का संयंत्र लगा सकती है, ये संयंत्र $SATC_2$ द्वारा दर्शाया गया है। फर्म उतना ही यानि OQ_1 उत्पादन Q_1C_2 औसत लागत पर उत्पादित कर सकती है जैसा कि $SATC_2$ से पता चलता है। दीर्घकाल में फर्म इस बात की जाँच करेगी कि उत्पादन के एक दिये हुए स्तर को न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादित करने के लिए वह किस अल्पकालीन औसत लागत वक्र पर क्रियाशील हो। इस प्रकार अल्पकाल में OQ_1 उत्पादन के स्तर की औसत उत्पादन लागत Q_1C_1 होगी और दीर्घकाल में यह घटकर Q_1C_2 हो जाएगी। चित्र 11.3 में यह स्पष्ट है कि उत्पादन के OQ_0 स्तर तक फर्म अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_1$ पर क्रियाशील होगा, हालाँकि यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_2$ पर भी क्रियाशील हो सकता है। लेकिन उत्पादन के OQ_0 स्तर तक $SATC_1$ पर क्रियाशील होने से $SATC_2$ की तुलना में कम लागत पर उत्पादन होता है अतः उत्पादन के OQ_0 स्तर तक फर्म $SATC_1$ पर ही क्रियाशील होगी। दूसरे शब्दों में उत्पादन के OQ_0 स्तर तक छोटा संयंत्र $SATC_1$, बड़े संयंत्र $SATC_2$ की तुलना में ज्यादा किफ़ायती है। हमने केवल दो संयंत्रों वाला उदाहरण लिया है। बहुत से संयंत्रों वाली स्थिति भी आसानी से चित्रित की जा सकती है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दीर्घकाल में फर्म उस संयंत्र का प्रयोग करेगी जिससे एक दिये हुए उत्पादन स्तर को उत्पादित करने की न्यूनतम संभव प्रति इकाई लागत आए। दो संयंत्रों की स्थिति, जो चित्र 11.3 में दिखाई गई है, में गहरी रेखा वाला वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र है। यह दीर्घकालीन वक्र सभी अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के कुछ खंडों से बना है।

यदि संयंत्र के आकार को अत्यंत सूक्ष्म मात्रा में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका अर्थ है संयंत्रों की संख्या अनंत होना तो इनके अनुरूप अनंत अल्पकालीन औसत लागत वक्र होगा, तब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अविच्छिन्न होगा। इस प्रकार का अविच्छिन्न दीर्घकालीन औसत लागत वक्र चित्र 11.4 में दिखाया गया है।

चित्र 11.4

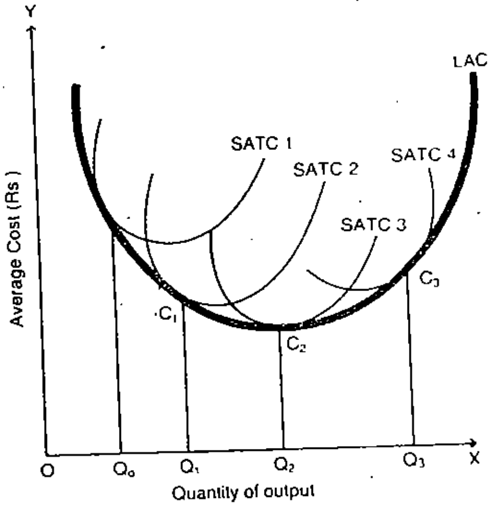

$SATC_1$, $SATC_2$, $SATC_3$ और $SATC_4$ अल्पकालीन औसत वक्र हैं और दीर्घकालीन औसत लागत वक्र गहरी रेखा द्वारा दर्शाया गया है। यदि फर्म दीर्घकाल में उत्पादन के खास स्तर उत्पादित करना चाहती है तो दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर एक बिंदु उस उत्पादन के स्तर के अनुरूप चुनेगी और फिर एक उपयुक्त संयंत्र बनाने की योजना बनाएगी जिसे अल्पकालीन औसत लागत वक्र पर क्रियाशील किया जा सके।

चित्र 11.4 में यह दिखाया गया है कि उत्पादन की OQ_O मात्रा उत्पादित करने के लिए दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC पर इसके अनुरूप बिंदु Co है जिस पर LAC अल्पकालीन औसत लागत वक्र $SATC_1$ को स्पर्श करता है। अतः यदि फर्म OQ_O मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाती है तो यह $SATC_1$ के अनुरूप एक संयंत्र बनाएगी और इस वक्र के Co बिंदु पर क्रियाशील होगी। यदि फर्म OQ_1 मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाती है तो यह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC पर C_1 बिंदु के अनुरूप है। $SATC_2$. LAC को C_1 बिंदु पर स्पर्श करता है। इसी प्रकार हम यह बता सकते हैं कि C_2 और C_3 बिंदुओं पर क्रमशः OQ_2 और OQ_3 मात्रा उत्पादित करने की योजना बनाई गई है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर प्रत्येक बिंदु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण वक्र भी कहते हैं क्योंकि यह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के एक सेट का आवरण करता है।

यह भी स्पष्ट है कि बड़े स्तर का उत्पादन बड़े आकार के संयंत्र के द्वारा न्यूनतम कीमत पर किया जा सकता है। जबकि छोटे स्तर का उत्पादन छोटे आकार के संयंत्र से न्यूनतम कीमत पर किया जा सकता है।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के बारे में कुछ टिप्पणियाँ आसानी से की जा सकती है। (1) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर प्रत्येक बिंदु किसी न किसी अल्पकालीन औसत लागत वक्र को स्पर्श करता है। (2) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र LAC सभी अल्पकालीन लागत वक्रों के न्यूनतम बिंदुओं को स्पर्श नहीं करता। (3) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी U आकृति का होता है, हालाँकि यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र से अधिक चौड़ा होता है। (4) जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र गिर रहा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिंदु के बायीं ओर किसी बिंदु पर उसे स्पर्श करता है या यह कहिए कि अल्पकालीन औसत लागत वक्र के गिरते हुए भाग में किसी बिंदु पर उसे स्पर्श करता है। (5) जब दीर्घकालीन औसत लागत वक्र ऊपर की ओर उठ रहा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिंदु के दायीं ओर

किसी बिंदु पर या उसके ऊपर की ओर जाते हुए भाग में किसी बिंदु पर उसे स्पर्श करेगा। (6) जब दीर्घकालीन लागत वक्र एक क्षैतिज सरल रेखा होता है तो यह अल्पकालीन औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिंदु पर स्पर्श करेगा।

11.5.2 दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र हमें उत्पादन के विभिन्न स्तरों को उत्पादित करने की प्रति इकाई न्यूनतम लागत बताता है। दूसरी ओर, दीर्घकालीन सीमांत लागत हमें उत्पादन के बढ़ाने पर लागत में होने वाली न्यूनतम वृद्धि की राशि बताती है या उत्पादन के घटाने पर लागत में होने वाली अधिकतम कमी की राशि बताती है। चित्र 11.5 की सहायता से अल्पकालीन सीमांत लागत और दीर्घकालीन लागत के बीच संबंध स्पष्ट किया गया है।

चित्र 11.5

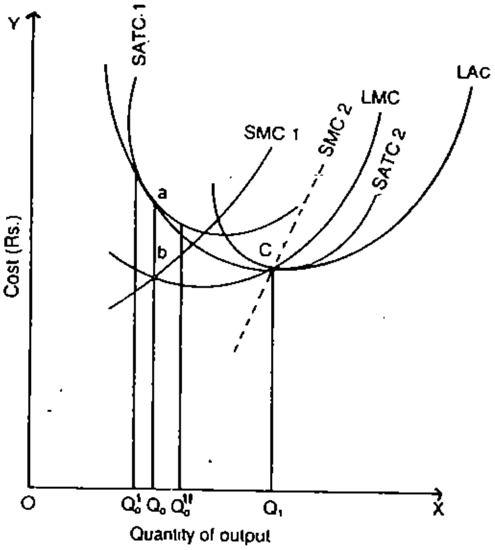

उत्पादन के OQ_0 स्तर पर SATC और LAC बराबर हैं यानि अल्पकालीन कुल आगत और दीर्घकालीन कुल लागत बराबर है। उत्पादन के OQ^I स्तर पर $SATC_1$, LAC से अधिक है। इसलिए अल्पकालीन कुल लागत दीर्घकालीन कुल लागत से अधिक है। जैसे ही उत्पादन का स्तर OQ^I_0 से बढ़ाकर OQ_0 किया जाता है दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होगी। इसे एक उदाहरण की सहायता से दिखाया जा सकता है। मान लीजिए उत्पादन के OQ^I_0 स्तर पर दीर्घकालीन कुल लागत 500 रु॰ है और अल्पकालीन कुल लागत 600 रु॰ है। उत्पादन के OQ_0 स्तर पर ये 650 रु॰ है। जैसे ही उत्पादन का स्तर OQ^I_0 से बढ़ाकर OQ_0 किया गया अल्पकालीन सीमांत लागत 50 रु॰ है और दीर्घकालीन सीमांत लागत 150 रु॰ हो गई। जब उत्पादन का स्तर OQ_0 से बढ़ाकर OQ^{II}_0 किया जाता है, अल्पकालीन सीमांत लागत दीर्घकालीन औसत लागत से अधिक होगी।

दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र LAC को उसके न्यूनतम बिंदु पर काटता है और इस न्यूनतम बिंदु पर दीर्घकालीन औसत लागत के समाप्त होने वाला केवल एक ही अल्पकालीन औसत लागत वक्र (चित्र 11.5 में $SATC_2$) होगा। बिंदु c पर $SATC_2$, LAC को स्पर्श करता है और यह वह बिंदु भी है जिस पर $SATC_2$ और LAC न्यूनतम हैं। इस प्रकार c बिंदु पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत के बराबर है। अतः दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र LAC के न्यूनतम बिंदु से गुज़रता है। b और c जैसे बिंदुओं को मिलाने से दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र बन जाता है। दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र भी U आकृति का होगा और यह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसके न्यूनतम बिंदु पर काटेगा।

11.5.3 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का क्यों ?

भाग 11.4.7 में अल्पकालीन औसत लागत वक्र के U-आकृति के होने के कारण बताए जा चुके हैं। इकाई 9 में पैमाने के वर्धमान और ह्रासमान प्रतिफलों के नियम समझाते समय पैमाने की मितव्ययता और अपमितव्ययता की अवधारणाओं के बारे में बताया था। वही कारक यानी पैमाने की मितव्ययताएँ जिनके कारण पैमाने के वर्धमान प्रतिफल होते हैं, उसी कारण से दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का ढलान उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ नीचे की ओर आता हुआ होता है। इसी प्रकार पैमाने की अपमितव्ययता जो पैमाने के ह्रासमान प्रतिफल को स्पष्ट करती है यह भी स्पष्ट करती है कि अंत में उत्पादन का स्तर बढ़ने के साथ-साथ दीर्घकालीन औसत लागत वक्र का ढलान ऊपर की ओर जाने लगता है। यह ध्यान रखें कि हमने साधनों की कीमतों को स्थिर माना है।

बोध प्रश्न ग

1 दीर्घकालीन औसत लागत किसे कहते हैं ? यह अल्पकालीन औसत लागत से किस प्रकार भिन्न है ?

....

....

....

2 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) दीर्घकालीन कुल लागत स्थिर होती है।

ii) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र U आकृति का होता है।

iii) दीर्घकालीन औसत लागत अल्पकालीन औसत लागतों का योग है।

iv) उस बिंदु को ध्यान में रखते हुए जहाँ अल्पकालीन औसत लागत दीर्घकालीन औसत लागत के बराबर है, उत्पादन के घटने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत अल्पकालीन सीमांत लागत से अधिक होती है।

v) जो कारक अल्पकालीन औसत लागत वक्र की U आकृति को स्पष्ट करते हैं वही दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की U आकृति को स्पष्ट करते हैं।

vi) दीर्घकालीन औसत लागत वक्र हमेशा अल्पकालीन लागत वक्रों को उनके न्यूनतम बिंदुओं पर स्पर्श करता है।

vii) पैमाने के वर्धमान प्रतिफलों और ह्रासमान दीर्घकालीन औसत लागत में कोई संबंध नहीं होता।

viii) अल्पकालीन औसत लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र से कम चौड़ा U-आकृति का होता है ।

3 वे कौन से कारक हैं जिनसे दीर्घकालीन औसत लागत ह्रासमान होती है ?

....

....

....

4 छह अल्पकालीन औसत लागत वक्रों की सहायता से एक दीर्घकालीन लागत वक्र खींचिए।

....

....

....

11.6 अन्य लागतें

कुछ अन्य लागतें होती हैं जिनका प्रयोग आर्थिक सिद्वांत में सामान्यतः नहीं किया जाता।

1 **लेखाविधि लागतें** (Accounting costs) : ये वे लागतें हैं जो एक लेखाकार वस्तु या सेवा की उत्पादन लागत निकालते समय ध्यान में रखेगा। उद्यमी द्वारा विभिन्न उत्पादक साधनों जैसे भूमि, श्रम, पूंजी और कच्चा माल आदि के सप्लायरों को दिया गया भुगतान इन लागतों में शामिल होता है। इस प्रकार फर्म द्वारा किराये पर दिया गया इमारत का किराया, श्रमिकों को दी गई मज़दूरी, व्यापार करने के लिए उधार ली गई

राशि या पूँजी पर दिया गया ब्याज, ईंधन, बिजली और कच्चे माल की दी गई कीमतें, ये सब मिलकर लेखाविधि लागतें कहलाएँगी। ये वे लागते हैं जिनका भुगतान फर्म के उद्यमी द्वारा किया जाता है। इन लागतों को स्पष्ट लागतें भी कहते हैं।

2 **अवसर लागत** (Opportunity costs) : आधुनिक आर्थिक विश्लेषण में अवसर लागत की अवधारणा का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी वस्तु जैसे गेहूँ को उत्पादित करने का अवसर लागत किसी अन्य वस्तु जैसे चावल की वह मात्रा है, जिसे, साधनों का गेहूँ के (चावल की बजाय) उत्पादन करने के लिए, प्रयोग करने पर, त्यागना पड़ेगा। एक दूसरा उदाहरण लेते हैं, वे साधन जिनका प्रयोग कूलर के लोहे के फ्रेम बनाने के लिए किया जाता है, उन्हीं से लोहे की बाल्टियाँ भी बनाई जाती हैं। इसलिए कूलर के एक लोहे के फ्रेम की अवसर लागत लोहे की बाल्टियों का त्याग किया गया वह उत्पादन है जो उन्हीं साधनों से उत्पादित किया जा सकता था जिससे कि कूलर के एक लोहे के फ्रेम का उत्पादन किया जाता है।

अवसर लागत की परिभाषा देते समय दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। (1) किसी चीज की अवसर लागत केवल त्यागा गया सर्वोत्तम विकल्प है। एक वस्तु की अवसर लागत कोई भी अन्य वैकल्पिक वस्तु नहीं है जिसका उत्पादन किया जा सकता था। ये केवल अन्य सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु है जिसका वही साधन उत्पादन कर सकते थे। और (2) एक वस्तु की अवसर लागत को उस सर्वोत्तम वैकल्पिक वस्तु के रूप में देखा जाना चाहिए जिसका उतनी ही राशि (या साधनों के उतने ही मौद्रिक मूल्य) से उत्पादन किया जा सकता था। अवसर लागत की अवधारणा को समझने के लिए उतनी ही राशि की शर्त आवश्यक होती है। यह ज़रूरी नहीं है कि एक वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक साधनों से उस वस्तु की सर्वोत्तम वैकल्पिक वस्तु का उत्पादन भी किया जा सके। उदाहरण के लिए, गेहूँ के उत्पादन के लिए भूमि, श्रम, पानी, उर्वरक, गेहूँ के बीज आदि का प्रयोग किया जाता है लेकिन चावल का उत्पादन करने के लिए बीजों को छोड़कर उन्हीं साधनों की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार एक उत्पादन करने वाली फर्म बिना संयंत्र और उपकरण या श्रम को बदले, एक वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु का उत्पादन कर सकती है लेकिन इसके लिए उसे भिन्न प्रकार के कच्चे माल की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार एक वस्तु के उत्पादन की अवसर लागत निकालने के लिए साधनों का मौद्रिक मूल्य लेना पड़ेगा। अर्थव्यवस्था के साधन सीमित होते हैं और इनसे सभी वस्तुओं का एक साथ पर्याप्त मात्रा में उत्पादन नहीं किया जा सकता। इसलिये यदि उनका प्रयोग एक वस्तु के उत्पादन के लिए किया जाता है तो उन्हें अन्य उपयोगों से हटाना पड़ेगा। इस प्रकार एक वस्तु की लागत त्यागा गया विकल्प है।

अवसर लागत की अवधारणा का आर्थिक समस्याओं के लिए विस्तृत उपयोग है। साधन कीमतों के निर्धारण में यह लागू होती है। सार्वजनिक व्यय और निजी उपयोग में इसका उपयोग किया जा सकता है। एक विद्यार्थी के लिये सिनेमा देखने की लागत एक किताब हो सकती है जिसे उसे सिनेमा देखने के लिए त्यागना पड़ेगा। समाज के लिए बंदूक बनाने की फैक्ट्री लगाने की लागत पार्क और सड़कें हो सकती हैं जिनको त्यागना पड़ेगा। अवसर लागत वस्तु की कीमत के लिये भी स्पष्टीकरण देती है। साधन सेवाएं दुर्लभ होती हैं और उनके वैकल्पिक उपयोग हो सकते हैं। इसलिये इन साधनों से जो वस्तु उत्पादित होती है उसकी कीमत होती है। अगर ये साधन प्रचुर मात्रा में होते, तो किसी विकल्प का त्याग नहीं करना पड़ता, और कोई अवसर लागत या कोई कीमत नहीं होती। किसी भी चीज की कीमत उसकी अवसर लागत के कारण होती है।

अवसर लागत की अवधारणा उन साधनों पर लागू नहीं होती जो स्थिर या विशिष्ट हैं। एक विशिष्ट या स्थिर साधन वह होता है जिसका प्रयोग एक विशिष्ट वस्तु के उत्पादन के लिये ही किया जा सकता है और इसलिये इसकी अवसर लागत शून्य होती है। यदि साधनों को वैकल्पिक व्यवसायों में जाने से रोका जाता है या वे स्वयं जाने से हिचकिचाते हैं तो उनकी कीमत अवसर लागत को प्रतिबिम्बित नहीं करती। इसी प्रकार त्यागे गये विकल्पों का बहुधा साफ तौर से पता नहीं लगता। उदाहरण के लिये मशीन का, एक बार लगाने के बाद कोई वैकल्पिक उपयोग नहीं है और कोई अवसर लागत नहीं है। ये अवसर लागत की अवधारणा की कुछ सीमाएं हैं।

3 **निजी लागत** (Private costs) : वस्तु के उत्पादन को एक व्यक्तिगत उद्यमी या फर्म के दृष्टिकोण से देखा जा सकता है जो कि लाभों को अधिकतम करने का प्रयत्न कर रही है या यह कह सकते हैं कि निजी लाभों को अधिकतम करने के लिये प्रयत्नशील है। निजी लाभों को मालूम करने के लिये जिन लागतों को ध्यान में रखा जाता है उन्हें निजी लागतें कहते हैं। इसमें स्पष्ट और अस्पष्ट दोनों लागतें शामिल की जाती हैं। उदाहरण के लिये, मान लीजिये एक निर्यातकर्ता 1,000 कमीजें उत्पादित करना चाहता है, इसके लिये वह जो जमीन, श्रम, पूंजी और कच्चा माल खरीदता है उस पर हुआ खर्च स्पष्ट लागत है। वह अपना समय और पैसा भी लगाता है जिसे यदि वह निर्यात व्यापार में नहीं लगाता तो कहीं और लगाता। ये लागतें अस्पष्ट लागतें हैं। यदि 1,000 कमीजें बनाने की स्पष्ट और अस्पष्ट लागतों को जोड़ लें तो

निजी लागतें आ जाएँगी। निजी लागत की अवधारणा लागत को एक विशेष उत्पादक के दृष्टिकोण से देखती है। निजी लाभ विशुद्ध आर्थिक निजी लाभ हो सकते हैं या लेखाविधि निजी लाभ। किसी वस्तु के उत्पादन से अर्जित विशुद्ध आर्थिक निजी लाभ जानने के लिये लेखाविधि निजी लाभ में से उद्यमी द्वारा वस्तु के उत्पादन के लिये लगाये गये समय और पैसे के सर्वोत्तम वैकल्पिक उपयोग से जो अर्जित किया जा सकता था उसे घटा देते हैं। वस्तु के विक्रय से प्राप्त आगम में से स्पष्ट लागत घटाने पर लेखाविधि निजी लाभ आ जाते हैं।

4 **सामाजिक लागत** (Social costs) : निजी लागत की तुलना में सामाजिक लागत की अवधारणा अधिक विस्तृत है। सामाजिक लागत को पूरे समाज के दृष्टिकोण से देखा जा सकता है न कि वस्तु का उत्पादन करने वाले व्यक्ति की दृष्टि से। सामाजिक लागत, सामाजिक लाभ प्राप्त करने के लिये, मालूम की जाती है। किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन से समाज के अन्य सदस्यों को कुछ लाभ या हानि होती है। ये लाभ मुफ्त में उपलब्ध होते हैं और इसलिये जिन्हें भी ये प्राप्त होते हैं उन्हें उत्पादक को कुछ नहीं देना पड़ता। उदाहरण के लिये, कच्चे माल और तैयार माल के लाने ले जाने को सुविधाजनक बनाने के लिये एक उत्पादक एक सड़क बना सकता है जिसे वह मुख्य मार्ग से जोड़ दे। यह सड़क अन्य लोगों द्वारा भी उपयोग में लाई जा सकती है और इसके लिये वे उत्पादक को कोई मुआवजा नहीं देंगे। इसी प्रकार एक वस्तु के उत्पादन से दूसरों को असुविधा हो सकती है और उत्पादक इस असुविधा के लिये उन्हें कोई मुआवज़ा नहीं देगा। एक ऐसी फर्म जिसके उत्पादन करने से धुंआ होता है, इस असुविधा का एक उदाहरण है, क्योंकि धुएँ से लोगों के कपड़े गंदे होते हैं और स्वास्थ्य खराब होता है। अतः उन्हें कपड़ों की धुलाई और दवाइयों आदि पर अधिक व्यय करना पड़ता है लेकिन ये फर्म उन्हें इसके लिये कोई पैसा नहीं देती।

पहली स्थिति में जब कुछ व्यक्तियों को लाभ मिलता है और उसके लिये उन्हें कुछ देना नहीं पड़ता तो निजी लागत सामाजिक लागत से अधिक होती है। इसके विपरीत दूसरी स्थिति में जब वस्तु के उत्पादन से अन्यों को असुविधा होती है और इसके लिये उन्हें कुछ नहीं दिया जाता तो निजी लागत सामाजिक लागत से कम होती है। सामाजिक लागत और निजी लागत में अंतर बाध्यताओं (externalities) (लाभ या हानि जिसके लिये कुछ देना नहीं पड़ता या कुछ प्राप्त नहीं होता) के कारण उत्पन्न होता है।

सामाजिक लागत वह लागत है जो समाज को उठानी पड़ती है जब इसके साधन एक दी हुई वस्तु के उत्पादन के लिये प्रयोग किये जाते हैं। सामाजिक लागत की अवधारणा का अवसर लागत से निकट संबंध है। यदि यह मान लें कि दिये हुए साधन वस्तु 1 और 2 दोनों के उत्पादन के लिये प्रयोग किये जा सकते हैं, तो इन साधनों से वस्तु 1 की एक इकाई उत्पादित करने की सामाजिक लागत वस्तु 2 की वे इकाइयाँ हैं जिनका उत्पादन त्यागना पड़ेगा। बंदूकों के उत्पादन की सामाजिक लागत उनके उत्पादन के लिये खरीदे गए साधनों और कच्चे माल पर किया गया खर्च नहीं है। जिन साधनों से बंदूकें उत्पादित की जाती हैं उनसे जो अन्य असैनिक वस्तुएँ जैसे डबलरोटी, मक्खन, कारें आदि उत्पादित की जा सकती थी, वे बंदूकों के उत्पादन की सामाजिक लागत है। बंदूकों का उत्पादन करने के लिये समाज को कुछ असैनिक वस्तुओं और सेवाओं को त्यागना पड़ेगा और यह त्यागा गया उत्पादन ही बंदूकों के उत्पादन की सामाजिक लागत का उचित माप है। इस अर्थ में एक वस्तु के उत्पादन की सामाजिक लागत उसकी अवसर लागत ही है।

5 **वास्तविक लागत** (Real costs) : ये लागतें वे भुगतान हैं जो उत्पादन के साधनों को अपनी सेवाएँ प्रदान करने के लिये किये गये परिश्रम व प्रयत्नों के मुआवजे के रूप में दिये जाते हैं। उदाहरण के लिये, श्रम जब उत्पादन में कार्यरत होता है तो इससे उसको होने वाली असुविधा और उसके परिश्रम के रूप में वास्तविक लागत निकाली जाती है। इसी प्रकार बचत और पूंजी संचय के लिये जो त्याग करना पड़ता है वह पूंजी की वास्तविक लागत है। अवधारणा के रूप में वास्तविक लागत की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। लेकिन ये फर्म की उत्पादन लागत में अधिक महत्व नहीं रखती क्योंकि ये एक भावनात्मक अवधारणा है और इसमें परिशुद्धता की कमी है। लेकिन श्रम के परिश्रम और उसकी असुविधा के लिये जिस हद तक मजदूरी दी जाती है और त्याग के लिये ब्याज दिया जाता है, वास्तविक लागतें स्पष्ट लागतों में शामिल की जाती हैं। वास्तव में वास्तविक लागतें कभी कभार ही उत्पादन के मौद्रिक खर्चे के बराबर होती है। इस इकाई के इस भाग में बताई गई लागत की विभिन्न अवधारणाओं के विभिन्न अर्थ हैं और इनमें से प्रत्येक का प्रयोग एक विशेष आर्थिक समस्या का विश्लेषण करने के लिये एक उपकरण के रूप में किया जाता है। लागत की वह अवधारणा, जो सबसे महत्वपूर्ण है और जिसका अर्थशास्त्री बहुधा प्रयोग करते हैं, आर्थिक लागत है। इकाई 13, 14, 15, 16 में क्रमशः पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition) में, एकाधिकार (monopoly) में, एकाधिकारी प्रतियोगिता (monopolistic competition) में और अल्पाधिकार (oligarchy) में फ़र्म के संतुलन का विश्लेषण करने के लिये आर्थिक लागत की अवधारणा का ही प्रयोग किया जाएगा।

बोध प्रश्न घ

1 लेखाविधि लागत क्या है ?

....

....

....

2 लेखाविधि लागत और आर्थिक लागत में मुख्य भेद क्या है ?

....

....

....

3 अवसर लागत क्या है ?

....

....

....

4 निजी लागत और सामाजिक लागत में भेद दिखलाइए ?

....

....

....

5 निम्नलिखित को लेखाविधि लागत, आर्थिक लागत, अवसर लागत और सामाजिक लागतों में वर्गीकृत कीजिये :

लागत	**वर्गीकरण**
i) मैनेजर का वेतन	....
ii) उद्योग के अपशिष्ट जिन्हें नदी में फेंक दिया गया	....
iii) उद्यमी का वेतन जो वह किसी अन्य फर्म में मैनेजर की हैसियत से काम करके प्राप्त कर सकता था	....
iv) Y वस्तु की 15 इकाइयों के रूप में X वस्तु की 10 इकाइयों की लागत	....

11.7 सारांश

एक उत्पादक फर्म की लागतों का सिद्धांत उत्पादन और कुल लागत का संबंध दिखाता है। उत्पादन की भौतिक दशा, उत्पादन के साधनों की कीमतें और इन साधनों का किस हद तक कुशलतम उपयोग किया गया है, ये सब मिलकर फर्म की उत्पादन लागत को निर्धारित करते हैं। लागतों की बहुत सी अवधारणाएँ हैं जैसे लेखाविधि लागतें, आर्थिक लागतें, अवसर लागतें, निजी लागतें, सामाजिक लागतें और वास्तविक लागतें।

अल्पकाल में लागतों को दो श्रेणियों में बाँटा जाता है, स्थिर लागतें और परिवर्ती लागतें। स्थिर लागतें उत्पादन के साथ परिवर्तित नहीं होती। परिवर्तित लागतें वे लागते हैं जो उत्पादन के बढ़ने के साथ बढ़ती हैं और उत्पादन के घटने के साथ घटती हैं। कुल स्थिर लागतों को कुल उत्पादन से भाग देने पर औसत स्थिर लागत आ जाती है। इसी प्रकार, कुल परिवर्ती लागत को कुल उत्पादन से भाग देने पर औसत परिवर्ती लागत पता लग जाती है।

उत्पादन में एक अतिरिक्त इकाई की वृद्धि होने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है उसे सीमांत लागत कहते हैं। उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि से कुल परिवर्ती लागत में होने वाली वृद्धि के रूप में भी सीमांत लागत की परिभाषा दी जा सकती है। कुल लागत, कुल स्थिर लागत, कुल परिवर्ती लागत, औसत कुल लागत, औसत परिवर्ती लागत, औसत स्थिर लागत और सीमांत लागत इन सभी को ग्राफों की सहायता से रेखाचित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है।

उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ कुल औसत लागत वक्र और कुल परिवर्ती लागत वक्र के बीच की दूरी घटती जाती है और ये यह बात को दर्शाता है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत स्थिर लागत घटती जाती है। उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ परिवर्ती लागत पहले घटती है, फिर न्यूनतम हो जाती है और अंत में बढ़ने लगती है। औसत कुल लागत वक्र सामान्यतः U-आकृति का होता है।

दीर्घकाल में सभी साधन परिवर्ती होते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से प्राप्त किया जाता है। दीर्घकाल में विभिन्न उत्पादन स्तरों के लिये विभिन्न आकार के संयंत्रों को लगाने की योजना बनाई जाती है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को आवरण वक्र भी कहते हैं। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र पर प्रत्येक बिंदु किसी न किसी अल्पकालीन औसत वक्र को स्पर्श करता है। दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र, एक इकाई से उत्पादन बढ़ाने पर लागत में होने वाली न्यूनतम वृद्धि दर्शाता है। यह दीर्घकालीन औसत लागत वक्र को उसे न्यूनतम बिंदु पर काटता है और केवल एक ही अल्पकालीन औसत लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की समाप्ति होती है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी U-आकृति का होता है लेकिन ये अल्पकालीन लागत वक्र से अधिक चौड़ा होता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र शुरू में पैमाने की मितव्ययताओं के कारण नीचे की ओर आता है और अंत में क्योंकि मितव्ययताओं का स्थान अपमितव्ययताएँ ले लेती हैं इसलिये ऊपर की ओर जाने लगता है।

11.8 शब्दावली

लेखा लागतें : उत्पादक द्वारा विभिन्न उत्पादन के साधनों को किया गया भुगतान।

औसत स्थिर लागत : $\frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$

औसत परिवर्ती लागत : $\frac{\text{कुल परिवर्ती लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$

औसत कुल लागत : $\frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$

बड़े पैमाने के अलाभ : जब उत्पादन बढ़ता है तो फर्म द्वारा लागत में हुई हानियाँ।

बड़े पैमाने की किफायतें : जब उत्पादन बढ़ता है तो फर्म द्वारा लागत में हुए फायदे।

आर्थिक लागत : लेखाविधि लागतों के साथ अस्पष्ट लागतें जिनमें पूँजी का सामान्य प्रतिफल और यदि उद्यमी अपनी सेवाएँ दूसरे को बेचे तो उसकी मज़दूरी या वेतन शामिल होता है।

स्थिर लागतें : मशीन, संयंत्र आदि स्थिर साधनों को काम पर लगाने पर खर्च की गई लागतें।

सीमांत लागत : उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि से कुल आगत में हुई वृद्धि।

अवसर लागत : एक वस्तु का उत्पादन करने के लिये किसी अन्य वस्तु की वह मात्रा जिसका त्याग करना पड़ेगा और जो पहली वस्तु के उत्पादन में लगे साधनों से उत्पादित हो सकती है।

निजी लागतें : निजी लाभों को निकालने के लिए ध्यान में रखी गई लागत।

वास्तविक लागतें : उत्पादक के साधनों को किया गया भुगतान जो इनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं में निहित परिश्रम और प्रयत्नों का मुआवजा है।

सामाजिक लागत : सामाजिक लाभ मालूम करने के लिये निकाली गई या एक वस्तु या सेवा के उत्पादन के लिये पूरे समाज द्वारा उठाई गई लागत।

कुल लागत : कुल स्थिर लागत और कुल परिवर्ती लागत का योग।

परिवर्ती लागत : परिवर्ती साधनों जैसे अप्रशिक्षित काम, कच्चे माल आदि पर आई लागत।

11.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) आर्थिक लागतें (ii) शून्य (iii) स्पष्ट लागतें + अस्पष्ट लागतें (iv) स्पष्ट (v) अस्पष्ट लागत

ख 2

कुल स्थिर लागत रु.	कुल परिवर्ती लागत रु.	कुल लागत रु.	सीमांत लागत रु.
100	-	100	-
100	40	140	40
100	70	170	30
100	120	220	50
100	180	280	60
100	250	350	70

3 (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) सही (vii) गलत (viii) गलत (ix) गलत (x) सही

ग 2 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) गलत (viii) सही

घ 5 (i) लेखाविधि लागत (ii) सामाजिक लागत (iii) आर्थिक लागत (iv) अवसर लागत

11.10 स्वपरख प्रश्न

1 निम्नलिखित में भेद कीजिए।

i) स्थिर और परिवर्ती लागत
ii) अल्पकालीन औसत लागत और दीर्घकालीन औसत लागत
iii) औसत लागत और सीमांत लागत
iv) आर्थिक लागतें और लेखाविधि लागतें
v) स्पष्ट लागतें और अस्पष्ट लागतें
vi) निजी लागतें और सामाजिक लागतें

2 सीमांत लागत की अवधारणा की परिभाषा दीजिये। औसत लागत और सीमांत लागत में क्या संबंध हैं ?

3 औसत कुल लागत और औसत परिवर्ती लागत में क्या संबंध हैं ? चित्रों का प्रयोग कीजिये।

4 अल्पकालीन औसत लागत वक्र U-आकृति का क्यों होता है ?

5 औसत परिवर्ती लागत वक्र की आकृति स्पष्ट कीजिये।

6 अल्पकालीन औसत लागत वक्रों से दीर्घकालीन औसत लागत वक्र कैसे खींचते हैं ? उपयुक्त चित्रों का प्रयोग कीजिये।

7 अल्पकालीन सीमांत लागत और दीर्घकालीन सीमांत लागत में क्या संबंध है ?

8 दीर्घकालीन औसत लागत वक्र की U-आकृति के लिये जिम्मेवार कारकों को स्पष्ट कीजिये।

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परंतु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एस· सी· बरला : *उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र*
(नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : व्यष्टि अर्थशास्त्र
(मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)

पी· ए· सैम्युलसन : *अर्थशास्त्र* दसवां संस्करण
(दिल्ली : कैपिटल बुक हाउस, 1982)

डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए· हॉलमैन : *मूल्य सिद्धांत एवं उसके उपयोग* (चण्डीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)

एस· के· मिश्र : *आर्थिक प्रणालियां एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र*
(प्रगति पब्लिकेशंस, दिल्ली : 1988)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

खंड

4

कीमत का सिद्धांत

इकाई 12
संतुलन की संकल्पना तथा शर्तें 5

इकाई 13
पूर्ण प्रतियोगिता 21

इकाई 14
एकाधिकार 34

इकाई 15
एकाधिकारी प्रतियोगिता 48

इकाई 16
अल्पाधिकार 65

विशेषज्ञ समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा
सम-कुलपति
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. राकेश खुराना
निदेशक
प्रबंध अध्ययन विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. जे. सत्यनारायण (अध्यक्ष)
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. आर.बी. उपाध्याय
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

प्रो. जी.वी. शेनाय
इन्स्टीट्यूट ऑफ रूरल मैनेजमेंट
आनन्द

प्रो. आई.एच. फारूकी
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

प्रो. बी.एस. भाटिया
पंजाबी विश्वविद्यालय
पटियाला

श्री ए.के. मजूमदार
इन्स्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउटेंट्स ऑफ इंडिया
नई दिल्ली

प्रो. पी.के. घोष
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. अमर चन्द
मद्रास विश्वविद्यालय
मद्रास

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

श्री रुद्र दत्त (सपादक)
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रो. पी.डी. हजेला
वसंतकुंज
नई दिल्ली

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
डॉ. आर.के. ग्रोवर
डॉ. एन.वी. नरसिंहम
डॉ. वी. वेनूगोपाल रेड्डी
श्रीमती मधु सूर्या
प्रो. जी. सम्बाशिव राव
(भाषा सम्पादक)

अनुवाद

श्री आर.टी. पाण्डे
पुष्पांजलि दिल्ली

श्री एस.एन. शर्मा
सत्यवती कालेज
दिल्ली

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
डॉ. वी.रा. जगन्नाथन
डॉ. आर.के. ग्रोवर
श्री नवल किशोर

सामग्री निर्माण

श्री बालकृष्ण सेल्वराज
कुल सचिव
मुद्रण एवं प्रकाशन विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

अगस्त 1991 (पुर्नमुद्रित)
© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 1990 पुनः मुद्रण 1991
ISBN-81-7091-252-0
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस सामग्री के किसी भी अंश को इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में, मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खंड 4 कीमत का सिद्धांत

खंड 3 में आप उत्पादन फलन, पूर्ति के नियम, पूर्ति लोच और लागत सिद्धांत के संबंध में पढ़ चुके हैं। आर्थिक सिद्धांत का एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र है "कीमत का निर्धारण"। इस खंड में आप देखेंगे कि कोई फर्म अपने उत्पादन के स्तर और अपनी उत्पादित वस्तुओं की कीमत का निर्धारण किस प्रकार करती है। इसे ही और सही ढंग से यों कहा जा सकता है कि वह संतुलन की संकल्पना के अनुसार चलते हुए पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारी प्रतियोगिता तथा अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत का निर्धारण करती है।

इकाई 12 में संतुलन की संकल्पना, बाज़ार और कीमत, बाज़ार ढांचे और बाज़ार संतुलन के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 13 में पूर्ण प्रतियोगिता की संकल्पना तथा पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत किसी फर्म और उद्योग के अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन का स्पष्टीकरण किया गया है।

इकाई 14 में एकाधिकार की संकल्पना, एकाधिकार के अंतर्गत अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन, कीमत निर्धारण और एकाधिकार के विनियमन के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 15 में एकाधिकारी प्रतियोगिता की संकल्पना तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 16 में अल्पाधिकार की विशेषताओं, अल्पाधिकारी उद्योग में कीमत और उत्पाद संतुलन और अल्पाधिकारियों के संकेंद्रण और कपट समझौते के संबंध में विवेचन किया गया है।

इकाई 12 संतुलन की संकल्पना तथा शर्तें

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 संतुलन की संकल्पना
12.3 संतुलन का महत्व
12.4 संतुलन की विधियां
12.5 बाज़ार का अर्थ
12.6 संतुलन की मूलभूत शर्तें
12.7 बाज़ार और कीमतें
12.8 बाज़ार का स्वरूप
12.9 बाज़ार का स्वरूप और आय फलन
12.10 सारांश
12.11 शब्दावली
12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.13 स्व-परख प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- संतुलन का अर्थ बता सकें
- संतुलन को जिन विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, उन्हें समझ सकें
- यह जान सकें कि संतुलन बाज़ार में मांग और पूर्ति में समानता स्थापित करने में कैसे सहायक होता है
- यह बता सकें कि मांग और पूर्ति को सारणियों और वक्रों के द्वारा क्यों और कैसे व्यक्त किया जाना चाहिए
- यह समझ सकें कि कौन-सी विशेषताएं बाज़ार के स्वरूप को निर्धारित करती हैं
- यह विश्लेषण कर सकें कि किसी दिए हुए बाज़ार के स्वरूप और मांग वक्र के बीच कैसे संबंध स्थापित हो पाता है
- विभिन्न बाज़ार स्थितियों में औसत और सीमान्त आय के व्यवहार का विश्लेषण कर सकें।

12.1 प्रस्तावना

पिछली चार इकाइयों में आप यह पढ़ चुके हैं कि उत्पादन शक्तियां अल्पकाल और दीर्घकाल में कैसे क्रियाशील होती हैं और विभिन्न स्थितियों में बाज़ार में किस स्तर तक उत्पादन उपलब्ध हो पाएगा।

बाज़ार क्रेताओं और विक्रेताओं में संबंध स्थापित करता है। कीमत तंत्र से संतुलन कीमत (equilibrium price) निर्धारित होती है जो किसी वस्तु के उत्पादन के स्तर और उसकी मांग के निर्धारण में सहायक होती है। कारक बाज़ार (factor market) में उत्पादन के कारकों की कीमत और आय का वितरण भी कीमत तंत्र द्वारा निर्धारित होता है। उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं का कितनी मात्रा में उपभोग करेंगे, अपनी आय का कितना भाग अपनी आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से पूरा करने पर खर्च करेंगे और कितनी बचत करेंगे ये सभी बातें भी कीमत तंत्र द्वारा निर्धारित होती हैं। इस प्रकार कीमत तंत्र अर्थव्यवस्था में संसाधनों के आबंटन को निर्धारित करता है।

ऊंची कीमत पर वस्तु की आपूर्ति की मात्रा बढ़ती है और मांग की मात्रा घटती है। इससे कीमत में घटने की प्रवृत्ति होती है और यह प्रवृत्ति उस समय तक बनी रहती है जब तक कि पूर्ति मांग के बराबर न हो जाए। यदि कीमत इस स्तर से नीचे गिर जाती है तो इससे बिल्कुल विपरीत स्थिति उत्पन्न हो जाती है यानि मांग पूर्ति से अधिक हो जाती है जिससे कीमत में बढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ती है और यह प्रवृत्ति भी उस समय तक बनी रहती है जब तक कि पूर्ति मांग के बराबर न हो जाए। इस इकाई में आप संतुलन और उसके विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

12.2 संतुलन की संकल्पना

संतुलन एक ऐसी स्थिति है जिसमें विरोधी शक्तियां एक-दूसरे को संतुलित कर देती हैं जिससे कि प्रणाली या तो गतिहीन हो जाती है या स्थिर मार्ग की ओर अग्रसर होती है। आर्थिक शक्तियों के संतुलित होने की प्रवृति का यह अर्थ नहीं है कि वे स्थिर होती हैं। संतुलन की प्रवृति से हमारा तात्पर्य यह है कि यदि असंतुलन की स्थिति है तो आर्थिक शक्तियां अवश्य ही ऐसी स्थितियां उत्पन्न करेंगी जिससे संतुलन स्थापित हो जाएगा। उदाहरण के लिये, यदि वस्तु की मांग की मात्रा उसकी आपूर्ति की मात्रा से कम है तो वस्तु की कीमत गिर जाएगी। इससे विक्रेताओं को या तो लाभ कम होगा या यह भी हो सकता है कि उन्हें हानि होने लगे। ऐसी स्थिति में वे उत्पादन को तब तक घटाने पर मजबूर होंगे जब तक कि वह मांग के बराबर न हो जाए। यदि वस्तु की मांग की गई मात्रा उसकी आपूर्ति की मात्रा से अधिक है तो कीमत में बढ़ने की प्रवृति होगी। इस प्रकार यदि बाह्य शक्तियां हस्तक्षेप न करें तो अर्थव्यवस्था में आर्थिक शक्तियों में संतुलित होने की प्रवृति निहित होती है।

12.3 संतुलन का महत्व

यह ध्यान रखें कि आर्थिक शक्तियों के संतुलन में होने की प्रवृति का यह अर्थ नहीं है कि संतुलन अच्छा है या बुरा है। जैसा कि ब्रिटिश अर्थशास्त्री लिओनल रॉबिन्स ने कहा था, "संतुलन तो केवल संतुलन है इसकी पुष्टि के बारे में कोई उपच्छाया नहीं है" यह अपने आप में न तो प्रशंसनीय है और न ही निंदनीय। इसे केवल बाजार शक्तियों को समय के साथ-साथ अपने आप को संतुलित करने की प्रवृति के रूप में समझना चाहिए।

12.4 संतुलन की विधियां

आर्थिक शक्तियों के बीच संतुलन की प्रवृति को समय के संदर्भ में देखना होता है। यह हो सकता है कि आज उत्पादन बाज़ार की आवश्यकता से अधिक हो लेकिन आने वाले समय में ऐसा न हो। यदि आज उत्पादन अत्यधिक है तो विभिन्न तरीकों के द्वारा इसे बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार संतुलन में लाने की कोशिश की जाती है। लेकिन ऐसा एकदम नहीं किया जा सकता। ऐसी परिस्थितियों में संतुलन लाने के लिये समायोजन करने होंगे। लेकिन ऐसे समायोजनों में समय लगेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी भी प्रकार का तत्कालिक समायोजन असम्भव है। यह काफी हद तक उन उत्पादन शक्तियों के संगठन पर निर्भर करता है जो कि इस वस्तु के उत्पादन को निर्धारित करती है। मान लीजिए एक उत्पादक बहुत जल्दी नष्ट होने वाली किसी वस्तु का उत्पादन करता है। इस उत्पादक के सामने ऐसी स्थिति आ सकती है कि उत्पादन बाज़ार की आवश्यकता से अधिक हो, वह इस वस्तु को स्टोर भी नहीं कर सकता क्योंकि यह जल्दी ही नष्ट होने वाली वस्तु है। अतः वह इसे जिस भी कीमत पर बिके, बेच देगा या इसे नष्ट कर देगा। इसे नष्ट करना, कम कीमत पर बेचने से ज्यादा हानिकारक है। अतः इस वस्तु का उत्पादक इसे जितनी भी कम कीमत पर बिके, बेचकर अपने उत्पादन को बाज़ार की आवश्यकता के बराबर कर देता है। इस प्रकार के समायोजन से संतुलन स्थापित हो जाता है और यह समायोजन लगभग तुरंत सम्भव है और इसमें बहुत ही कम समय लगता है। इसे क्षणिक संतुलन कहा जा सकता है।

ऐसी वस्तुएं जो नष्टवान नहीं है और यदि उनका उत्पादन बाज़ार की आवश्यकता से अधिक है तो उन्हें स्टोर किया जा सकता है। और उन्हें भविष्य में बेचा जा सकता है। यदि बाज़ार की आवश्यकता उत्पादन से अधिक है तो कुछ हद तक उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। ऐसा तभी संभव होगा जब उत्पादक के पास इतना समय हो कि वह इसके लिये आवश्यक अतिरिक्त कच्चे माल, श्रम, बिजली आदि की व्यवस्था कर सके। यदि उत्पादक को कुछ समय मिले तो वह आर्थिक शक्तियों में संतुलन स्थापित करने के लिये वह उत्पादन में समायोजन कर सकता है। जब वस्तु की मांग की मात्रा उसकी आपूर्ति की मात्रा से अधिक है तो अल्पकालीन संतुलन संभव है बशर्ते कि उत्पादक को कम से कम इतना समय मिले कि वह अधिक कच्चे माल व श्रम की व्यवस्था कर सके।

तीसरा समायोजन वह होगा जब स्थिर पूंजी की मात्रा को परिवर्तित करना पड़े। यदि आपूर्ति अधिक है तो स्थिर पूंजी को घटाना होगा। यदि पूंजी कम है तो स्थिर पूंजी की मात्रा को बढ़ाना होगा। फैक्टरी की मशीन और उपकरणों में ऐसे परिवर्तन केवल दीर्घकाल में ही सम्भव हो सकते हैं और इस तरह दीर्घकालीन संतुलन संभव हो जाता है। संक्षेप में ऊपर बताई गई तीन स्थितियां निम्नलिखित हैं:

i) क्षणिक समायोजन प्रक्रिया से संबंधित संतुलन जिसे क्षणिक संतुलन (momentary equilibrium) कहा जाता है।

ii) अल्पकालीन समायोजन प्रक्रिया जिसमें मशीन व उपस्कर को छोड़कर अन्य साधनों को परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रक्रिया द्वारा संतुलन को अल्पकालीन संतुलन (short period equilibrium) कहा जाता है।

iii) मशीन और उपकरण में समायोजन द्वारा लाए गए संतुलन को दीर्घकालीन संतुलन (long period equilibrium) कहा जाता है।

व्यष्टिगत और समष्टिगत संतुलन (Micro and Macro Equilibrium)

संतुलन के लिए आर्थिक शक्तियों का संतुलित होना आवश्यक होता है। लेकिन आर्थिक शक्तियां इतनी विस्तृत हैं कि जब तक उन्हें एक-दायरे में सीमित करके न देखा जाए तब तक उनके अर्थपूर्ण संतुलन की कल्पना करना संभव नहीं है। इसलिए अर्थशास्त्र में आर्थिक शक्तियों के संबंध में व्यष्टिगत या समष्टिगत रूपों में बात करना सुविधाजनक है। समष्टिगत शक्तियां राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था या अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से संबंधित हो सकती हैं। व्यष्टिगत शक्तियां एक फर्म या उद्योग से संबंधित होती हैं। यह स्पष्ट है कि आर्थिक शक्तियों के व्यष्टिगत संतुलन के द्वारा हम एक छोटे क्षेत्र को बड़े क्षेत्र से अलग कर सकते हैं, एक वस्तु से क्षेत्र को सारी वस्तुओं से संबंधित क्षेत्र से अलग कर सकते हैं। इस प्रकार के विभाजन से बहुधा हम यह मान लेते हैं कि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के स्तर पर आर्थिक शक्तियां या तो स्थैतिक (static) हैं या यदि वे गतिक (dynamic) भी हैं तो भी वे व्यष्टिगत शक्तियों को प्रभावित नहीं करतीं। ऐसी मान्यताएं एक अच्छे व्यष्टिगत आर्थिक विश्लेषण के लिये की जाती है। व्यष्टिगत या समष्टिगत स्थिति के संदर्भ में आर्थिक शक्तियां हमें व्यष्टिगत संतुलन या समष्टिगत संतुलन प्रदान करती हैं। व्यष्टिगत और समष्टिगत संतुलन दोनों में ही अल्पकालीन और दीर्घकालीन समायोजन बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। इस आधार पर हम अल्पकालीन व्यष्टिगत, संतुलन, दीर्घकालीन समष्टिगत संतुलन की चर्चा कर सकते हैं।

स्थैतिक और गतिक संतुलन (Static & Dynamic Equilibrium)

एक और बात ध्यान देने योग्य है कि आर्थिक शक्तियों में संतुलन का विश्लेषण यह मानकर किया जाता है कि आर्थिक शक्तियां परिवर्तनशील हैं और समय के साथ-साथ वास्तव में परिवर्तित हो रही हैं। यह भी माना जाता है कि ये स्थिर हैं और इनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। जब आर्थिक शक्तियों में संतुलन के विश्लेषण की मान्यता उनमें समय के साथ परिवर्तन को होना होता है तब उसे गतिक संतुलन का विश्लेषण करना कहते हैं। दूसरी ओर, जब आर्थिक शक्तियों में किसी प्रकार के परिवर्तन की कल्पना नहीं की जाती उस स्थिति में आर्थिक शक्तियों में संतुलन का अध्ययन स्थैतिक संतुलन का अध्ययन कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि हम यह मान लें कि उपभोक्ता की रुचि और आय में या पूंजी के स्टॉक में कोई परिवर्तन नहीं होता तो हम कहेंगे कि हम स्थैतिक संतुलन का विश्लेषण कर रहे हैं। दूसरी ओर यदि इन सब में समय के दौरान परिवर्तन होता है तो हम गतिक संतुलन का विश्लेषण कर रहे हैं।

अतः संतुलन का अध्ययन व विश्लेषण करने के विभिन्न तरीके हैं। समायोजन के लिये उपलब्ध समय के आधार पर ऐसा किया जा सकता है। उन सीमाओं के आधार पर जिसमें आर्थिक शक्तियां कार्यरत हैं और इन शक्तियों में स्थिरता या परिवर्तनशीलता के आधार पर भी अध्ययन या विश्लेषण किया जा सकता है।

12.5 बाज़ार का अर्थ

संतुलन का अर्थ जानने के बाद बाजार का अर्थ जानना आवश्यक है क्योंकि संतुलन का अध्ययन बाज़ार के संदर्भ में किया जाता है। क्रेताओं और विक्रेताओं की पारस्परिक क्रियाओं की स्थिति को ही बाज़ार कहते हैं। बाज़ार का तात्पर्य एक या एक जैसी वस्तुओं के क्रेताओं और विक्रेताओं का सम्पर्क में आना होता है। यह सम्भव है कि विक्रेता साबुन की एक किस्म का व्यापार करते हों और क्रेता साबुन की क़िसी अन्य किस्म, जो कि पहली किस्म का स्थानापन्न है, में दिलचस्पी रखते हों। ऐसे क्रेताओं और विक्रेताओं से बाजार बन जाता है। बाजार के लिये किसी एक भौगोलिक क्षेत्र का होना आवश्यक नहीं है। क्रेता और विक्रेता में परस्पर दूरी हो सकती है। वास्तव में यदि यातायात और संचार के साधन विकसित हों तो क्रेताओं और विक्रेताओं के एक दूसरे से बहुत दूर होने पर भी उनमें सम्पर्क स्थापित हो सकते हैं।

विभिन्न बाज़ारों की विशेषताएं विभिन्न हो सकती हैं। विभिन्न बाजारों में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या विभिन्न हो सकती है, एक क्रेता और बहुत से विक्रेता हो सकते हैं या एक विक्रेता और बहुत से क्रेता हो सकते हैं, क्रेता और विक्रेता दोनों की संख्या अधिक हो सकती है या एक की संख्या कम और दूसरी की संख्या अधिक हो सकती है।

हम आगे चलकर देखेंगे कि विभिन्न बाज़ारों में विक्रेताओं की संख्या किस प्रकार बाज़ार संतुलन के निर्धारण को प्रभावित करती है।

12.6 संतुलन की मूलभूत शर्तें

साधारणतया बाज़ार के संदर्भ में संतुलन का अर्थ है विक्रेताओं और क्रेताओं की आर्थिक शक्तियों के बीच संतुलन। वस्तु बाज़ार में वस्तुओं की मांग और पूर्ति पर विचार किया जाता है और कारक बाज़ार में कारक की मांग और आपूर्ति पर विचार किया जाता है। यहां हम वस्तु बाज़ार का विश्लेषण करेंगे। अतः जिन आर्थिक शक्तियों पर विचार किया जाएगा वे वस्तुओं की मांग व आपूर्ति की हैं।

जब हम संतुलन के संदर्भ में मांग और आपूर्ति की बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य वास्तव में मांग की गई या आपूर्ति की गई वस्तु की मात्रा से नहीं है बल्कि इससे भिन्न अर्थों में हम मांग व आपूर्ति शब्दों का प्रयोग करते हैं। वास्तव में संतुलन के संदर्भ में आपूर्ति वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की एक सूची या सारणी है जो उत्पादक विभिन्न सम्भव कीमतों पर बेचना चाहेंगे। इसी प्रकार मांग वस्तु की उन विभिन्न मात्राओं की एक सूची या सारणी है जिन्हें क्रेता विभिन्न संभव कीमतों पर खरीदना चाहेंगे। इस प्रकार जितनी मात्रा वास्तव में बिकी वह आपूर्ति नहीं है बल्कि आपूर्ति विभिन्न कीमतों पर अभिप्रेत बिक्री की एक तालिका है। इसी प्रकार वास्तव में जितनी मांग की गई वह मांग नहीं है बल्कि विभिन्न कीमतों पर की जाने वाली मांग की मात्रा की तालिका है। उदाहरण के लिये यह सम्भव है कि डबलरोटी की कीमत 4 रु. प्रति इकाई होने पर विक्रेता इसकी 50,000 इकाइयां बेचना चाहते हैं जबकि क्रेता 50,000 से कम इकाइयां खरीदना चाहते हैं। इसी प्रकार अन्य बहुत सी कीमतों पर अभिप्रेत क्रय व विक्रय की मात्रा असमान हो सकती है। संतुलन केवल उस कीमत पर स्थापित होगा जिस पर विक्रेता जितनी मात्रा बेचना चाहते हैं क्रेता जितनी मात्रा खरीदना चाहते हैं, ये दोनों बराबर हों।

बाज़ार संतुलन क्रेताओं की अभिप्रेत खरीद और विक्रेताओं की अभिप्रेत बिक्री का संतुलन है। विक्रेता बाज़ार में विभिन्न संभव कीमतों का अनुमान लगाता है और फिर यह निश्चय करता है कि कितना संभव कीमत पर कितनी मात्रा की आपूर्ति करना लाभप्रद होगा। इस प्रकार पूर्ति-सारणी यह दर्शाती है कि विक्रेता के अनुमान से

विभिन्न कीमतों पर कितनी आपूर्ति करना अत्यधिक लाभप्रद होगा।

इसी प्रकार क्रेता भी यह निश्चय करता है कि वस्तु की विभिन्न कीमतों पर कितनी मात्रा खरीदना लाभप्रद होगा। क्रेता वस्तु की दी हुई कीमत पर उससे मिलने वाली उपयोगिता या संतुष्टि को ध्यान में रखता है। संतुलन का अर्थ होगा अभिप्रेत बिक्री और अभिप्रेत खरीद का बराबर होना।

वस्तु की मांग और आपूर्ति में विस्तार या संकुचन करने की इच्छा का न होना संतुलन की विशेषता है। जब एक विक्रेता एक इकाई की आपूर्ति में वृद्धि करना चाहता है तो वह वस्तु की कीमत और उसकी सीमान्त लागत की तुलना करता है (वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई उत्पादित करने से कुल लागत में जो वृद्धि होती है, उसे सीमान्त लागत कहते हैं)। इसी प्रकार उपभोक्ता वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई की खरीद में वृद्धि करने से पहले वस्तु की कीमत और उसकी सीमान्त उपयोगिता की तुलना करता है। (वस्तु की अतिरिक्त इकाई खरीदने पर कुल उपयोगिता में होने वाली वृद्धि को सीमान्त उपयोगिता कहते हैं)। अतः हम यह कह सकते हैं कि मांग और आपूर्ति में संकुचन और विस्तार का न होना बाज़ार संतुलन की ओर संकेत करता है। इसका अर्थ है कि वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त लागत के बराबर है और इसके साथ-साथ वस्तु की कीमत उसकी सीमान्त उपयोगिता के बराबर है।

मांग और आपूर्ति की सारणियों को वक्रों की सहायता से दर्शाया जा सकता है। मांग वक्र और आपूर्ति वक्र एक दूसरे को जहां काटते हैं उस बिन्दु से वह कीमत पता लग जाती है जिस पर अभिप्रेत मांग और अभिप्रेत आपूर्ति बराबर है। इस कीमत को संतुलन कीमत कहते हैं। मांग सारणी से मांग वक्र खींचा जाता है और आपूर्ति सारणी से आपूर्ति वक्र खींचा जाता है।

इस प्रकार बाज़ार में संतुलन मांग और आपूर्ति से निर्धारित होता है। मांग और आपूर्ति की वास्तविक मात्रा से नहीं बल्कि विभिन्न कीमतों पर क्रेताओं और विक्रेताओं की विभिन्न मंशाओं को दर्शाने वाली मात्राओं की श्रृंखला से।

निम्नलिखित तालिका मांग और आपूर्ति की सारणियों को दर्शाती है:

तालिका 12.1
मांग और आपूर्ति की सारणी

अभिप्रेत आपूर्ति (इकाइयों में)	प्रत्याशित कीमत (पैसों में)	अभिप्रेत मांग (इकाइयों में)
10	50	2
9	49	3
8	48	4
7	47	5
6	46	6
5	45	7
4	44	8
3	43	9
2	42	10
1	41	11

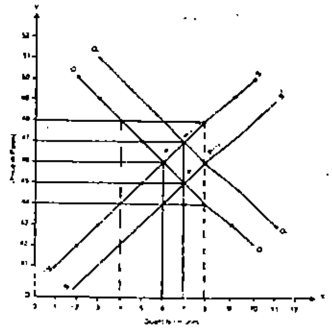

तालिका 12.1 को देखिए। इसमें D.D. मांग वक्र है और S.S. आपूर्ति वक्र है। 48 पैसे

की कीमत पर आपूर्ति की गई मात्रा 8 है और मांग की गई मात्रा 4 है। इससे कीमत घटने लगती है और यह जब घटकर 46 पैसे हो जाती है तो आपूर्ति की गई मात्रा और मांग की गई मात्रा बराबर हो जाती हैं। ये दोनों 6 इकाई हैं इसी प्रकार 44 पैसे कीमत पर मांग की गई मात्रा 8 है और आपूर्ति की गई मात्रा 4 है और इस स्थिति में कीमत बढ़ने लगती है और उस समय तक बढ़ती है जब तक यह 46 पैसे नहीं हो जाती। इस कीमत पर फिर मांग की गई मात्रा और आपूर्ति की गई मात्रा दोनों 6 हैं, यानि बराबर हैं। इस प्रकार संतुलन कीमत या वस्तु की बाज़ार कीमत 46 पैसे हैं।

बोध प्रश्न क

1 संतुलन से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2 व्यष्टिगत और समष्टिगत संतुलन में भेद कीजिए।

....

....

....

3 स्थैतिक और गतिक संतुलन में क्या अन्तर है?

....

....

....

4 रिक्त स्थानों को भरिए।

i) यदि मांग की गई मात्रा, आपूर्ति की गई मात्रा से ...... होती है तो कीमत में बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। (अधिक/कम)

ii) अल्पकालीन समायोजन प्रक्रिया से सम्बद्ध संतुलन .... कहलाता है। (अल्पकालीन संतुलन/दीर्घकालीन संतुलन)

iii) समय के दौरान बदलती हुई आर्थिक शक्तियों के संतुलन के विश्लेषण को ...... कहते हैं (स्थैतिक संतुलन/गतिक संतुलन)।

iv) स्थैतिक संतुलन में आर्थिक शक्तियों को ...... माना जाता है। (परिवर्तनीय/अपरिवर्तनीय)

v) बाज़ार संतुलन क्रेताओं और विक्रेताओं के अभिप्रेत क्रय और ...... के बीच संतुलन है (अभिप्रेत विक्रय/अभिप्रेत मांग)

12.7 बाज़ार और कीमतें

मान लीजिए क्रेता आय बढ़ने के कारण या किसी वस्तु के अधिक लोकप्रिय होने के कारण या अन्य किसी कारण से उस वस्तु की प्रत्येक सम्भावित कीमतों पर पहले से अधिक मांग करने के इच्छुक हैं। ऐसी स्थिति में मांग वक्र का दायीं ओर विचलन हो जाता है और नया मांग वक्र D′D′ बन जाता है। यह मांग वक्र पूर्ति वक्र SS को P′ बिन्दु पर काटता है और नयी संतुलन कीमत 47 पैसे हो जाती है जो कि पहली संतुलन कीमत (46 पैसे) से अधिक है। इस प्रकार यदि पूर्ति वक्र अपरिवर्तित रहे तो भी मांग में वृद्धि कीमत को बढ़ा देती है।

इसी तरह कच्चे माल की बेहतर उपलब्धि या किसी अन्य कारण से यदि विक्रेता वस्तु

की प्रत्येक सम्भावित कीमत पर उसकी पहले से अधिक आपूर्ति कर सकता है तो आपूर्ति वक्र का दायीं ओर विचलन हो जाता है और आपूर्ति वक्र S'S' हो जाता है। यह पूर्ति वक्र मांग वक्र DD को P' बिन्दु पर काटता है और नयी कीमत 45 पैसे होगी जो पहली कीमत (46 पैसे) से कम है। इस तरह यदि मांग वक्र अपरिवर्तित रहे तो पूर्ति में वृद्धि कीमत को कम कर देगी।

यह ध्यान रखें कि जब मांग वक्र का विचलन हुआ तो पूर्ति वक्र अपरिवर्तित रहा और जब आपूर्ति वक्र का विचलन हुआ तो मांग वक्र अपरिवर्तित रहा। यदि दोनों वक्रों का विचलन होता है तो कीमत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि प्रत्येक वक्र में किस मात्रा में विचलन हुआ। चित्र 12.1 को देखिए, इसमें नये मांग वक्र और नये पूर्ति वक्र एक दूसरे को P" बिन्दु पर काटते हैं और नयी कीमत 46 पैसे है तथा मांग की गई व पूर्ति की गई मात्रा 8 इकाइयां हैं।

मांग और आपूर्ति एक व्यक्तिगत फर्म की हो सकती है या उद्योग की। एक फर्म द्वारा बनाई गई वस्तु के क्रेताओं के मांग वक्रों के समस्तर (horizontal) योग से फर्म के लिये संबद्ध मांग वक्र बन जाता है। फर्म का आपूर्ति वक्र विभिन्न कीमतों पर अभिप्रेत आपूर्ति दर्शाता है। यदि हम एक उद्योग का अध्ययन कर रहे हैं तो मांग वक्र इस उद्योग की वस्तु के सभी क्रेताओं के मांग वक्रों का योग होगा। उद्योग का आपूर्ति वक्र उस उद्योग की सभी फर्मों के पूर्ति वक्रों का योग होगा। फर्म और उद्योग के मांग और पूर्ति वक्रों में यह अन्तर चित्र 12.2 और 12.3 में दर्शाया गया है।

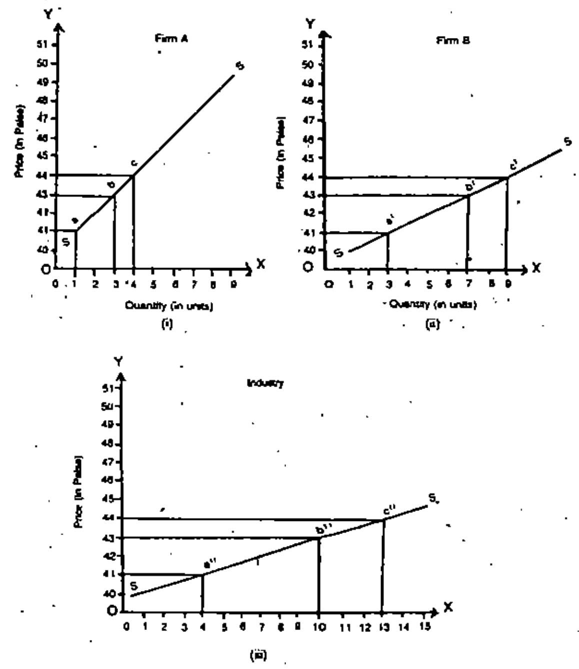

चित्र 12.2(i), फर्म A और चित्र 12.2(ii) फर्म B के पूर्ति वक्र दर्शाते हैं। यहां Y-अक्ष पर कीमत और X-अक्ष पर मात्रा दर्शायी गयी है। फर्म A की तुलना में फर्म B की आपूर्ति वक्र अधिक चपटा दिखाया गया है। एक उद्योग में A और B के अतिरिक्त अन्य फर्में भी हो सकती हैं। उद्योग फर्मों का समूह होता है। उद्योग का आपूर्ति वक्र चित्र 12.2(iii) में दिखाया गया है। चित्र 12.2(i) में यह दिखाया गया है कि जब कीमत 41 पैसे है तो फर्म A द्वारा सप्लाई की गई मात्रा 1 इकाई है। इसी प्रकार फर्म a' बिन्दु पर फर्म B इकाई आपूर्ति करती है। यदि उद्योग में केवल A और B दो फर्में हों तो 41 पैसे कीमत पर उद्योग की आपूर्ति 1+3=4 होगी जो चित्र 12.2(iii) में a" बिन्दु द्वारा दर्शाया गया है। इसी प्रकार 43 और 44 पैसे कीमतों पर उद्योग द्वारा आपूर्ति मालूम की गयी है जो क्रमशः 10(3+7) और 13(4+9) इकाई है। यदि a", b" और c" जैसे बिन्दुओं को मिलाता हुआ एक वक्र खींचा जाए तो वह उद्योग का आपूर्ति वक्र होगा जो चित्र 12.2(iii) में दिखाया गया है।

चित्र 12.3(i) और 12.3(ii) क्रमशः क्रेता A और क्रेता B का मांग वक्र दर्शाता है और उद्योग का मांग वक्र चित्र (iii) में दर्शाया गया है। उद्योग का मांग वक्र खींचने का वही तरीका है जो उद्योग का पूर्ति वक्र खींचने के लिये अपनाया गया है।

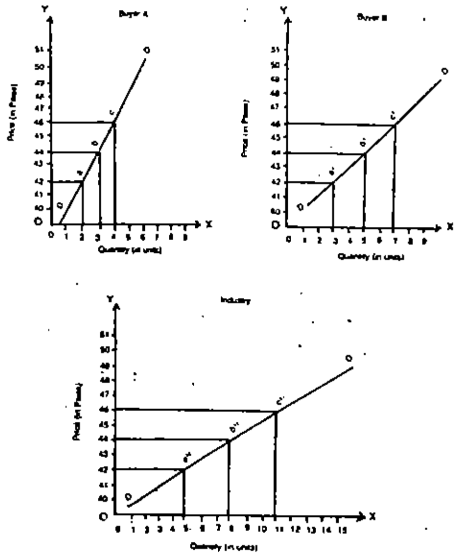

संतुलन की संकल्तना में यह निश्चित है कि आर्थिक शक्तियों में संतुलन होने की प्रवृति होती है। इसका अर्थ यह है कि यदि बाज़ार में कोई कीमत संतुलन कीमत नहीं है तो इसमें परिवर्तन की प्रवृति होगी ताकि अन्त में संतुलन कीमत स्थापित हो जाए बशर्ते कि संतुलन स्थिर हो।

अल्फ्रेड मार्शल ने दीर्घकाल में "संतुलन कीमत" के लिये "सामान्य कीमत" शब्द का प्रयोग किया। बाज़ार कीमत या तो किसी समय में बाज़ार में प्रचलित यथार्थ कीमत होगी या अल्पकाल में प्रचलित कीमत होगी। दोनों में से प्रत्येक में परिवर्तन की प्रवृति होगी क्योंकि सामान्य कीमत के लिये आवश्यक समायोजन केवल दीर्घकाल में किये जा सकेंगे।

12.8 बाज़ार का स्वरूप

बाज़ार के लिये क्रेताओं और विक्रेताओं दोनों का होना आवश्यक है। इन दोनों की संख्या के आधार पर बाज़ार के विभिन्न रूप हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विशेषताएं भी बाज़ार के स्वरूप को निर्धारित करती हैं। ये हैं: i) मांग की कीमत लोच (price elasticity of demand), ii) मांग की प्रति लोच (cross elasticity of demand), iii) वस्तु की प्रकृति, और iv) प्रवेश की स्वतंत्रता।

विभिन्न वस्तुओं में परिवर्तन की उनकी मांग पर प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है। दूसरे शब्दों में विभिन्न वस्तुओं की मांग की लोच भिन्न होती है। जब वस्तु की कीमत के बढ़ने से उसकी मांग में बहुत कमी होती है तो इसकी मांग अधिक लोचदार कही जाती है। कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी कीमत बढ़ने से उनकी मांग नहीं घटती या बहुत कम घटती है। ऐसी वस्तुओं की मांग बेलोचदार या कम लोचदार कही जाती है। ये विशेषताएं विक्रेता की कीमत को परिवर्तित करने की सामर्थ्य को सीमित करती हैं वस्तु की मांग की कीमत लोच जितनी अधिक होगी, बाज़ार पर उतना ही कम विक्रेता का नियंत्रण होगा और उतनी ही तेज़ी से हम पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति की ओर अग्रसर होंगे। लोच कम होने पर बाज़ार एकाधिकार की ओर अग्रसर होगा।

प्रति लोच का अर्थ है कि एक वस्तु की मांग उसकी स्थानापन्न वस्तु (substitute) की कीमत में परिवर्तन के कारण बदलती है। चाय की मांग कॉफी की कीमत में परिवर्तन के कारण बदल सकती है। क्योंकि ये दोनों एक-दूसरे की स्थानापन्न वस्तुएं हैं। यदि चाय की आपूर्ति लोच अधिक है तो चाय का विक्रेता इसकी कीमत नहीं बढ़ाएगा, लेकिन यदि प्रति लोच कम है तो वह कीमत में परिवर्तन कर सकता है और इस प्रकार हम अधिक प्रतियोगिता से कम प्रतियोगिता की स्थिति की ओर अग्रसर होंगे।

वस्तु की प्रकृति से हमारा आशय है कि वस्तु समरूप (homogeneous) हैं या विशिष्ट (differentiate)। समरूप वस्तु से तात्पर्य है कि सभी विक्रेता जो वस्तु बेच रहे हैं वह

हर तरह से एक जैसी है।. विशिष्ट वस्तु से तात्पर्य ऐसी वस्तु से है जो वस्तु तो एक ही है लेकिन उसकी सभी इकाइयां समरूप नहीं हैं बल्कि विभिन्न विक्रेताओं द्वारा बेची जाने वाली यह वस्तु कुछ भिन्न है जैसे उसके रंग अलग हो सकते हैं, आकार अलग हो सकते हैं आदि। गेहूं समरूप वस्तु का उदाहरण हो सकता है जबकि टूथ पेस्ट विशिष्ट वस्तु का उदाहरण।

यदि एक विक्रेता वही वस्तु बेच रहा है जो अन्य विक्रेता बेच रहे हैं तो अन्य विक्रेता जिस कीमत पर इसे बेच रहे हैं उससे अधिक कीमत पर वह इसे नहीं बेच सकता और इस प्रकार विक्रेताओं में अधिक प्रतिस्पर्धा होगी। यदि वह विशिष्ट वस्तु जैसे टूथ पेस्ट का कोई दूसरा ब्रांड बेच रहा है तो वह बिना अपनी बिक्री को कम किये अन्य विक्रेताओं की तुलना में ऊंची कीमत पर इसे बेच सकता है। जिस हद तक विक्रेता का कीमत पर नियंत्रण बढ़ता है उसी हद तक बाज़ार में प्रतिस्पर्धा होती है।

प्रवेश की स्वतंत्रता प्रतिस्पर्धा के लिये महत्वपूर्ण है। मान लीजिए एक विक्रेता किन्हीं कारणों से कीमत बढ़ाकर अधिक लाभ प्राप्त करने लगता हैं। यदि उद्योग में प्रवेश की स्वतंत्रता हो तो नये विक्रेता बाज़ार में आ जाएंगे और इस विक्रेता के लिये अधिक लाभ प्राप्त करते रहना सम्भव नहीं होगा और इस प्रकार बाज़ार में प्रतिस्पर्धा बढ़ जाएगी। यदि प्रवेश प्रतिबन्धित है तो उस हद तक प्रतिस्पर्धा भी प्रतिबन्धित होगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता में विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, मांग पूर्णतया लोचदार होती है, मांग की प्रति-लोच अनन्त होती है, वस्तु समरूप होती है, बाज़ार में फर्मों को प्रवेश की स्वतंत्रता होती है और क्रेताओं और विक्रेताओं को बाज़ार का पूर्ण ज्ञान होता है।

अल्पाधिकार (oligopoly) में, विक्रेताओं की संख्या कम होती है, मांग की लोच और मांग की प्रति लोच दोनों कम होती हैं, वस्तु समरूप भी हो सकती है और विशेष भी और प्रवेश आसान होता है।

एकाधिकार में, मांग की लोच कम होती है, मांग की प्रति लोच शून्य होती है, वस्तु समरूप होती है और उसकी कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती, केवल एक विक्रेता होता है और अन्य विक्रेता बाज़ार में प्रवेश नहीं कर सकते।

पूर्ण प्रतियोगिता को छोड़कर बाज़ार के अन्य तीनों स्वरूप यानि एकाधिकारी प्रतियोगिता (monopolistic competition) अल्पाधिकार और एकाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता के प्रतीक हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती है, इसलिए कोई भी एक क्रेता या विक्रेता बाज़ार में वस्तु की क़ीमत को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं होता। दूसरे शब्दों में, किसी भी एक विक्रेता के लिए मांग वक्र पूर्णतया लोचदार यानि X-अक्ष के समानान्तर होता है जैसाकि चित्र 12.4(i) में दिखाया गया है। दूसरी ओर, एकाधिकारी प्रतियोगिता का एकाधिकार या अल्पाधिकार में विक्रेता के लिये मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होती है जैसा कि चित्र 12.4(ii) में दिखाया गया है।

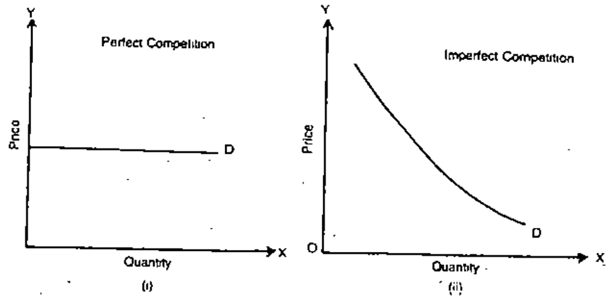

12.9 बाज़ार का स्वरूप और आय फलन

बाज़ार में संतुलन के निर्धारण के लिए न केवल पूर्ति और पूर्तिकर्ताओं की क़ीमतों की सारणी की आवश्यकता होती है बल्कि मांग और क्रेताओं की कीमतों की सारणी भी

आवश्यक होता है।

क्रेताओं की कीमत वह औसत आय है जो पूर्तिकर्ताओं वस्तु की एक इकाई बेचकर अर्जित करता है। जब बेची गई कुल इकाइयों की कीमत के औसत आय से गुणा करते हैं तो गुणनफल कुल आय कहलाती है। पूर्तिकर्ता को वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचने से जो आय प्राप्त होती है उसे सीमान्त आय कहते हैं। उदाहरण के लिये यदि विक्रेता दो इकाइयां बेचता है तो दूसरी इकाई से प्राप्त आय मालूम करने के लिये दो इकाइयों से प्राप्त कुल आय में से एक इकाई से प्राप्त आय को घटा देगा। यदि कीमत 50 पैसे है तो दो इकाई बेचने से कुल आय 100 पैसे होगी। चूंकि इकाई को बेचने से आय 50 पैसे है, अतः दूसरी इकाई बेचने से प्राप्त आय (100 – 50)=50 पैसे होगी। यह सीमान्त आय है। इसे तालिका 12.2 में दिखाया गया है।

तालिका 12.2
पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की कुल आय, औसत आय और सीमान्त आय

मात्रा	औसत आय (कीमत) (AR)	कुल आय (TR)	सीमान्त आय (MR)
1	50	50	50
2	50	100	50
3	50	150	50
4	50	200	50
5	50	250	50
6	50	300	50
7	50	350	50
8	50	400	50
9	50	450	50
10	50	500	50

किसी फर्म की कीमत या औसत आय स्थिर बनी रहती है। कीमत या औसत आय इसलिए स्थिर रहती है कि पूर्ण प्रतियोगिता में कोई एक पूर्तिकर्ता किसी वस्तु की पूर्ति की मात्रा को बदलकर कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता। एक फर्म की आपूर्ति बाज़ार की कुल आपूर्ति का एक छोटा सा भाग होती है इसलिए इसे बाज़ार कीमत को स्वीकार करना पड़ता है। वह इस दी हुई कीमत पर जितनी मात्रा चाहे बेच सकता है लेकिन वह कीमत को बदल नहीं सकता। इसलिए समस्तर मांग वक्र पूर्ण प्रतियोगिता की एक विशेषता है। मांग वक्र यह दर्शाता है कि विभिन्न कीमतों पर क्रेताओं की मांग कितनी होगी, न केवल बल्कि यह भी बताता है कि वे किन कीमतों पर इसे खरीदना चाहते हैं। इस प्रकार मांग वक्र क्रेताओं का कीमत वक्र भी है। चूंकि कीमत विक्रेता के लिये औसत आय है इसलिए मांग वक्र ही औसत आय वक्र तथा कीमत वक्र कहलाता है। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार में औसत आय वक्र समस्तर होती है।

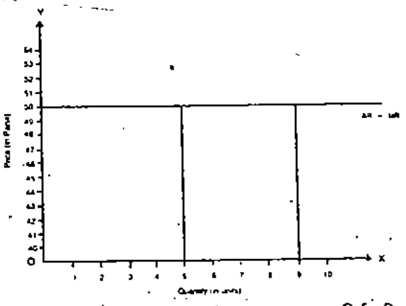

चित्र 12.5 में मांग वक्र D समस्तर है। मांग या आपूर्ति कितनी भी हो, कीमत या औसत आय स्थिर रहती है यानि 50 पैसे ही रहती है। तालिका 12.2 में दिखाया गया है कि पूर्ति में वृद्धि होने पर भी कीमत या औसत आय स्थिर रहती है और सीमान्त आय औसत आय के बराबर है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में विक्री के विभिन्न स्तरों पर औसत आय वक्र ही सीमान्त आय वक्र भी होता है।

यह ध्यान रखिए कि पूर्ण प्रतियोगिता में किसी एक फर्म के लिये ही मांग वक्र समस्तर होता है और वह फर्म दी हुई कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती। लेकिन सभी विक्रेता मिलकर कीमत को प्रभावित नहीं कर सकते हैं इसलिए पूरे उद्योग का मांग वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होता है, समस्तर नहीं होता।

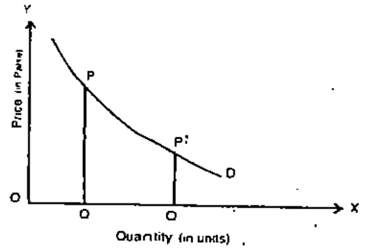

चित्र 12.6 को देखें जिसमें किसी उद्योग के मांग वक्र को दिया गया है। जब पूर्ति OQ है तो कीमत PQ है और जब पूर्ति OQ′ है तो कीमत P′Q′ है। जब पूर्ति अधिक है (OQ′) तो कीमत P′Q′ कम है और जब पूर्ति कम है (OQ) तो कीमत अधिक है (PQ)। इस प्रकार अधिक मात्रा केवल कम कीमत पर बेची जा सकती है, अधिक कीमत पर नहीं। इसलिए पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का मांग वक्र बायें से दांये नीचे की ओर ढालू होता है लेकिन फर्म का मांग वक्र समस्तर होता है।

अब हम अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत आय वक्र या मांग वक्र का विश्लेषण करेंगे। अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म कीमत को प्रभावित कर सकती है अतः आशा की जाती है कि वह उत्पादन के स्तर को परिवर्तित कर सकती है और उसके अनुसार कीमत को परिवर्तित कर सकती है। यह अधिक मात्रा कम कीमत पर बेच सकती है और यदि ऊंची कीमत निर्धारित करती है तो बिक्री कम होगी। क्रेता अधिक मांग केवल कम कीमत पर ही करेंगे, अतः अधिक बिक्री केवल कम कीमत पर ही सम्भव होगी। यदि आपूर्ति कम हो तो क्रेता वस्तु के लिये अधिक कीमत देने को राजी हो जाएंगे। इस प्रकार अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का औसत आय वक्र बांये से दांये की ओर गिरेगा जैसा कि चित्र 12.7 में दिखाया गया है।

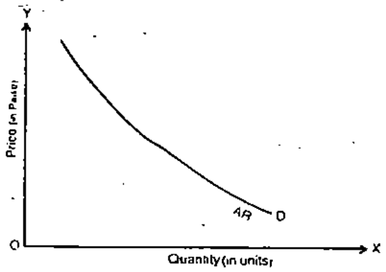

अपूर्ण प्रतियोगिता में भी फर्म की सीमान्त आय उसी तरीके से निकाली जाएगी जैसे कि पूर्ण प्रतियोगिता में निकाली थी। मान लीजिए आपूर्ति 1 इकाई है और कीमत 50 पैसे है और जब आपूर्ति 2 इकाई है तो कीमत 49 पैसे है। सीमान्त आय दूसरी इकाई से प्राप्त कुल आय और पहली इकाई से प्राप्त कुल आय के अन्तर 98 पैसे – 50 पैसे = 48 पैसे है। इस प्रकार जब औसत आय गिरती है तो सीमान्त आय औसत आय से कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त जैसा कि तालिका 12.3 में दिखाया गया है, औसत आय के साथ-साथ जब सीमान्त आय घटती है तो सीमान्त आय में कमी अधिक तेज दर से होती है और अधिक उत्पादन की मात्रा के बढ़ने के साथ-साथ औसत और सीमान्त आय का अन्तर बढ़ता जाता है।

तालिका 12.3
अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की कुल आय, औसत आय और सीमान्त आय

मात्रा (इकाइयों में)	औसत आय (पैसे में) AR	कुल आय (पैसे में) TR	सीमान्त आय (पैसे में) MR
1	50	50	50
2	49	98	48
3	48	144	46
4	47	188	44
5	46	230	42
6	45	270	40
7	44	308	38
8	43	344	36
9	42	378	34
10	41	410	32

अपूर्ण प्रतियोगिता में औसत और सीमान्त आय वक्रों को चित्र 12.8 में दिखाया गया है।

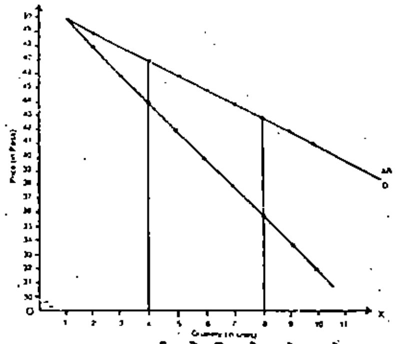

जब मात्रा 4 इकाई से बढ़कर 8 इकाई होती है तो औसत आय 47 पैसे से घटकर 43 पैसे हो जाती है और सीमान्त आय 44 पैसे से घटकर 36 पैसे हो जाती है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन के स्तर में वृद्धि के साथ औसत और सीमान्त आय में अन्तर बढ़ जाता है।

अल्पाधिकार

अल्पाधिकार, अपूर्ण प्रतियोगिता का विशिष्ट उदाहरण है। यह एक ऐसी बाज़ार स्थिति है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि प्रत्येक विक्रेता का बाज़ार मांग के एक बड़े भाग पर नियंत्रण होता है और वह कीमत में परिवर्तन कर सकता है लेकिन वह इसके फलस्वरूप होने वाली प्रतिद्वन्द्वी फर्मों की प्रतिक्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता। कभी-कभी अल्पाधिकार में विक्रेता आपस में सांठ-गांठ करते हैं ताकि अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकें। सांठ-गांठ करके वे कीमतों में हेर-फेर करते हैं। वे कीमतेतर प्रतिस्पर्धा (non-price competition) के द्वारा भी अपनी बिक्री अधिकतम करने की कोशिश करते हैं।

जब कोई कीमत संबंधी सांठ-गांठ नहीं होती तो प्रत्येक विक्रेता अपनी कीमत निश्चित करने का प्रयत्न करता है। इस स्थिति पर विचार करने से पहले हम फिर से याद करें कि अपूर्ण प्रतियोगिता की सामान्य स्थितियों में औसत आय वक्र कैसा होता है। यह वक्र बांये से दांये नीचे की ओर ढालू होता है जो यह दर्शाता है कि पूर्ति की गई मात्रा में वृद्धि के साथ औसत आय कम होती है और पूर्ति की गई मात्रा कम हो तो औसत आय अधिक होगी। इसका कारण यह है कि कम कीमत पर सभी विक्रेता अधिक मात्रा बेचने को राजी रहते हैं। कोई भी विक्रेता कीमत के द्वारा प्रतिस्पर्धा नहीं करना चाहता। इसलिए एक प्रतिनिधिक फर्म की औसत और सीमान्त आय वक्रें नीचे की ओर ढालू होते हैं।

अल्पाधिकार में, कीमत-प्रतिस्पर्धा के कारण इन वक्रों का आकार विघटित हो जाता है जैसा कि चित्र 12.9 में दिखाया गया है। मान लीजिए औसत आय वक्र के K बिन्दु पर अल्पाधिकारी कीमत बढ़ाने की इच्छा करता है। यदि वह कीमत बढ़ाता है तो K बिन्दु से ऊपर प्रत्येक कीमत वृद्धि के कारण इसके बाज़ार के हिस्से का एक भाग दूसरे अल्पाधिकारियों को मिल जाएगा। इसका प्रभाव इस हद तक होगा कि अधिक कीमत लेने पर भी उसे कुल आय कम मिलेगी। इसका अर्थ यह है कि K बिन्दु से ऊपर अल्पाधिकारी का मांग वक्र अधिक लोचदार हो जाएगा अर्थात् K बिन्दु से ऊपर मांग वक्र अधिक चपटा हो जाएगा। दूसरी ओर यदि अल्पाधिकारी K बिन्दु से नीचे कोई कीमत रखने की कोशिश करता है ताकि वह अन्य विक्रेताओं से अधिक मात्रा में बेच सके तो इससे उसके प्रतिद्वन्द्वी भी मजबूर होकर कीमत कम कर देंगे। इस प्रकार वह अपनी बिक्री नहीं बढ़ा सकेगा और यह स्थिति अपूर्ण प्रतियोगिता की सामान्य स्थिति जैसी होगी। दूसरे शब्दों में K बिन्दु से नीचे औसत आय वक्र अपूर्ण प्रतियोगिता में फर्म की औसत आय वक्र जैसा होगा।

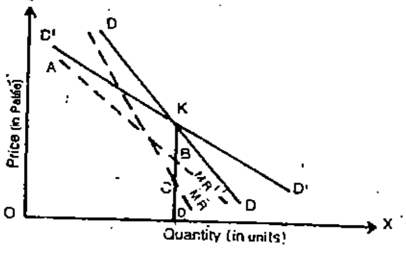

चित्र 12.9 में अल्पाधिकारियों में कीमत प्रतिस्पर्धा के कारण K बिन्दु तक ऊंची कीमत पर मांग वक्र KD′ होगा और K बिन्दु से नीचे कम कीमत पर मांग वक्र KD होगा। KD′ से अधिक चपटा है और KD की तुलना में अधिक लोचदार है। मांग वक्र का पूरा चित्रण चित्र 12.10 में दिखाया गया है।

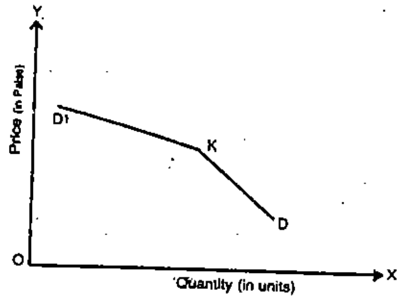

अपूर्ण प्रतियोगिता की सामान्य स्थिति में जो मांग वक्र होता है उससे यह मांग वक्र भिन्न है। कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार अल्पाधिकार मांग वक्र विकुंचित (Kinked) होता है जैसा कि यह K बिन्दु पर है। बिन्दु है जिससे अल्पाधिकारी कीमत बढ़ाने या घटाने का प्रयत्न करता है।

अब अगर अल्पाधिकार में औसत आय का चित्र यह है तो सामान्य आय को कैसे दिखाया जाएगा। चित्र 12.9 को देखने पर हम पाते हैं कि दो सीमान्त आय वक्रें हैं। एक MR′ है जो KD′ के अनुरूप है और दूसरा MR है जो KD के अनुरूप है। क्योंकि अल्पाधिकार में मांग वक्र विकुंचित हो सकता है इसलिए संबद्ध सीमान्त आय वक्र न तो MR होगा और न ही MR′। यह K बिन्दु तक AB होगा और K बिन्दु के बाद CD होगा। अल्पाधिकार में जब मांग या औसत आय वक्र विकुंचित होगा तो सीमान्त आय वक्र कैसा होगा, यह चित्र 12.11 में दिखाया गया है।

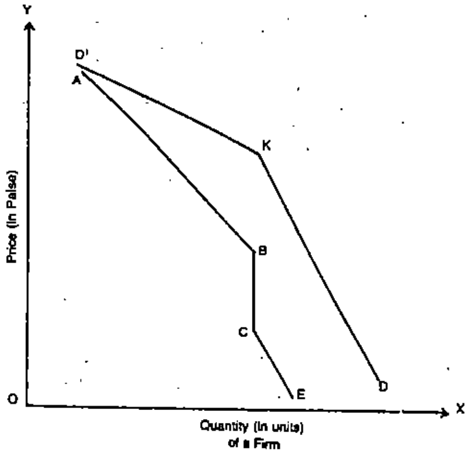

MR वक्र ABCE इस प्रकार से होगा कि B और C, K के उर्ध्वस्तर (vertically) नीचे होंगे। यहां MR विच्छिन्न (discontinuous) है। औसत और सीमान्त आय वक्र दोनों नीचे की ओर ढालुवां है लेकिन यदि मांग वक्र विकुंचित है तो दोनों का आकार असामान्य है।

बोध प्रश्न ख

1 पूर्ण प्रतियोगिता अल्पाधिकार और एकाधिकार में क्या अंतर है?

....

....

2 कुल आय, औसत आय और सीमान्त आय में अंतर बताइए।

....

....

3 निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत –

i) संतुलन अच्छा होता है जबकि असंतुलन खराब होता है।

ii) दीर्घकालीन संतुलन के लिये मशीन व उपस्कर में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं होती।

iii) पूर्तिकर्ता ऐसी कीमत की आशा करता है जो उसके लिए वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के बराबर हो।

iv) संतुलन का अनिवार्य रूप से अर्थ है – सीमान्त लागत और औसत लागत का बराबर होना।

v) पूर्ण प्रतियोगिता केवल तभी संभव है जब क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक हो।

4 दिए हुए विकल्पों में से सबसे उपयुक्त उत्तर चुनिये।

i) पूर्ण ज्ञान विशेषता है:

क) एकाधिकार की

ख) अल्पाधिकार की

ग) एकाधिकारी प्रतियोगिता की

घ) पूर्ण प्रतियोगिता की

ii) यदि किसी वस्तु की मांग बढ़ती है तो –

क) उसकी कीमत घटेगी

ख) उसकी कीमत बढ़ेगी

ग) उसकी कीमत स्थिर रहेगी

घ) उसकी कीमत पर प्रभाव इस बात पर निर्भर करेगा कि उसकी आपूर्ति में क्या परिवर्तन होता है।

iii) बाज़ार नाम है –

क) एक शहर का

ख) क्रेताओं और विक्रेताओं के समूह का

ग) एक विशेष इलाके का

घ) एकत्रित जन-समूह का

iv) अपूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त आय –

क) औसत आय से अधिक होती है

ख) औसत आय से कम होती है

ग) कुल आय के बराबर होती है

घ) औसत आय के बराबर होती है।

12.10 सारांश

बाज़ार में क्रेता और विक्रेता अपने-अपने हितों की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। विक्रेता इतनी कीमत अवश्य चाहते हैं जो कम से कम उनकी उत्पादन की सीमान्त लागत को पूरा कर दे। क्रेता ऐसी कीमत चाहते हैं जो वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से अधिक न हो। विक्रेता एक आपूर्ति सारणी और आपूर्ति वक्र बनाते हैं और क्रेता मांग सारणी और मांग वक्र बनाते हैं। इन दोनों वक्रों को खींचने पर ये दोनों एक-दूसरे को जिस बिन्दु पर काटते हैं उससे कीमत का निर्धारण होता है। यह संतुलन कीमत है क्योंकि इस कीमत पर विक्रेता जितनी आपूर्ति करना चाहते हैं और क्रेता जितनी मांग करना चाहते हैं, ये दोनों बराबर हैं।

इन वक्रों में परिवर्तन के साथ संतुलन कीमत भी परिवर्तित हो जाती है, आपूर्ति के स्थिर रहने पर मांग के बढ़ने पर यह बढ़ जाती है और मांग के पूर्ववत् रहने पर लेकिन पूर्ति के बढ़ने पर यह घट जाती है। मांग और पूर्ति वक्रों का आकार बाज़ार के स्वरूप से प्रभावित होता है। मांग-वक्र विभिन्न कीमतों पर मांग की गयी मात्रा को दर्शाता है। क्योंकि कीमत हमेशा औसत आय के बराबर होती है, इसलिए मांग वक्र को ही औसत आय वक्र माना जा सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता में औसत आय वक्र एक समस्तर सरल रेखा होता है। अपूर्ण प्रतियोगिता में आपूर्ति की मात्रा बढ़ने पर औसत आय घटेगी। जहां तक सीमांत आय का संबंध है, पूर्ण प्रतियोगिता में यह सदा औसत आय के बराबर होती है जिसके फलस्वरूप मांग वक्र, औसत आय वक्र, कीमत वक्र तथा सीमान्त आय वक्र ये सभी एक ही वक्र होते हैं। अपूर्ण प्रतियोगिता में ऐसा नहीं होता क्योंकि इसमें सीमान्त आय औसत आय से कम होती है और उससे अधिक गति से घटती है। इसमें मांग वक्र, कीमत वक्र और औसत आय वक्र ये सभी एक ही होते हैं लेकिन सीमान्त आय वक्र अलग होता है। अगर औसत आय नीचे की ओर ढालू होती है तो सीमान्त आय वक्र भी नीचे की ओर ढालू होगा यह औसत आय वक्र से ज्यादा सीधा ढाल में होगा। अल्पाधिकार की स्थिति में फर्म का औसत आय वक्र विकुंचित होता है।

12.11 शब्दावली

औसत लागत: कुल लागत की वस्तु की उत्पादित इकाइयों की संख्या से भाग देने पर जो लागत आती है।

औसत आय: कुल आय को वस्तु की बेची गई इकाइयों की संख्या से भाग देने पर जो आय होती है। औसत आय वस्तु की कीमत का ही दूसरा नाम है।

गतिक संतुलन: एक आर्थिक इकाई पर क्रियाशील शक्तियों का संतुलन, लेकिन ये शक्तियां समय के दौरान परिवर्तित होती रहती हैं।

संतुलन: किसी भी समय में एक आर्थिक इकाई पर क्रियाशील शक्तियों का आपस में संतुलन।

संतुलन कीमत: वस्तु की वह कीमत जिस पर विक्रेता जितनी मात्रा बेचना चाहते हैं और क्रेता जितनी मात्रा खरीदना चाहते, दोनों बराबर होती हैं।

अपूर्ण प्रतियोगिता: वह बाज़ार स्थिति जिसमें विक्रेता अपनी कीमत को नियंत्रित कर सकते हैं।

दीर्घकालीन संतुलन: आर्थिक इकाई पर क्रियाशील शक्तियों का संतुलन जिसे मशीन और उपस्क ं परिवर्तन करके प्राप्त किया जा सकता है।

समष्टिगत संतुलन: देश की पूरी अर्थव्यवस्था से संबंधित संतुलन जिसमें अर्थव्यवस्था का विदेशों से संबंध भी शामिल होता है।

सीमान्त लागत: जब वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई का उत्पादन किया जाता है तो इससे कुल लागत में होने वाली वृद्धि।

सीमान्त आय: वस्तु की एक अतिरिक्त इकाई बेचने से कुल आय में हुई वृद्धि।

व्यष्टिगत संतुलन: अर्थव्यवस्था के एक छोटे भाग से संबंधित संतुलन जैसे कि बाज़ार में एक वस्तु के लिये संतुलन।

क्षणिक संतुलन: आर्थिक इकाई में क्रियाशील शक्तियों के बीच संतुलन जिसे उत्पादन में परिवर्तन किये बिना प्राप्त किया जा सकता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता: वह बाज़ार जिसमें विक्रेता केवल उत्पाद विशिष्टता के द्वारा कीमत को प्रभावित कर सकता है।

एकाधिकार: वह बाज़ार स्थिति जिसमें वस्तु का एक विक्रेता होता है।

अल्पाधिकार: वह बाज़ार स्थिति जिसमें विक्रेता इतने कम हैं कि उनमें से प्रत्येक कीमत को नियंत्रित और प्रभावित कर सकता है।

पूर्ण प्रतियोगिता: वह बाज़ार स्थिति जिसमें एक फर्म या विक्रेता का कीमत पर कोई

नियंत्रण नहीं होता।

अल्पकालीन संतुलन: आर्थिक इकाई पर क्रियाशील शक्तियों के बीच संतुलन जिसे उत्पादन में परिवर्तन के द्वारा, बिना मशीन और उपस्कर में परिवर्तन करके, प्राप्त किया जा सकता है।

स्थैतिक संतुलन: जब आर्थिक इकाई पर क्रियाशील शक्तियों में संतुलन हो लेकिन इनमें कोई परिवर्तन न हो।

12.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 i) अधिक ii) अल्पकालीन संतुलन
iii) गतिक संतुलन iv) अपरिवर्तनीय
v) अभिप्रेत विक्रय

ख 3 i) गलत ii) गलत iii) गलत
iv) गलत v) सही

4 i) घ ii) घ iii) ख
iv) ख

12.13 स्वपरख प्रश्न

1) संतुलन का क्या अर्थ है? संतुलन में समय का क्या महत्व है?
2) बाज़ार किसे कहते हैं? चित्र की सहायता से एक वस्तु का बाज़ार संतुलन समझाइए।
3) बाज़ार के स्वरूप को पहचानने में कौन-सी विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए।
4) पूर्ण और अपूर्ण प्रतियोगिताओं में फर्म के औसत आय और सीमांत आय को स्पष्ट कीजिए।
5) अल्पाधिकार में फर्म के औसत आय वक्र और सीमान्त आय वक्र के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

नोट: इन प्रश्नों की सहायता से आप इस इकाई को भली प्रकार समझ जाएंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए परन्तु विश्वविद्यालय को ये उत्तर न भेजिए। ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए दिए जा रहे हैं।

इकाई 13 पूर्ण प्रतियोगिता (PERFECT COMPETITION)

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताएं
13.3 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का अल्पकालीन संतुलन
13.4 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन संतुलन
13.5 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का अल्पकालीन संतुलन
13.6 प्रतियोगी उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र
13.7 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का दीर्घकालीन संतुलन
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
13.11 स्वपरख प्रश्न

13.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषताओं का ब्यौरा दे सकें
- सीमान्त लागत और औसत लागत में अंतर बता सकें
- यह बता सकें कि सीमान्त व औसत लागत वक्र कैसे खींचे जाने चाहिए
- यह बता सकें कि जब औसत लागत न्यूनतम होती है तो सीमांत लागत और औसत लागत बराबर क्यों होती है
- अल्प काल में सीमांत लागत वक्र का परिसर (Range) बता सकें और यह भी बता सकें कि प्रतियोगी फर्म का संतुलन कैसे निर्धारित होता है
- अल्पकालीन और दीर्घकालीन लागत वक्रों में भेद दिखा सकें
- फर्म के अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में अंतर बता सकें
- यह बता सकें कि प्रतियोगी उद्योग से संबद्ध माँग और पूर्ति वक्र कैसे खींचे जाने चाहिए।

13.1 प्रस्तावना

संतुलन की अवधारणा और यह बाज़ार में कैसे निर्धारित होता है के बारे में आपने इकाई 12 में पढ़ा था। यदि हमें कीमत निर्धारण में मांग और पूर्ति के महत्व को पूरी तरह समझना है तो हमें विशिष्ट बाज़ारों के संदर्भ में इन्हें समझने की जरूरत है। संतुलन के लिए हमें फर्म की सीमांत आय के अलावा उसकी सीमांत लागत जानने की भी जरूरत है। अल्पकाल में उत्पादन में वृद्धि के साथ फर्म की सीमान्त लागत में होने वाले परिवर्तन परिवर्तनशील अनुपातों के नियमों के प्रचलन पर निर्भर करते हैं। इसी प्रकार दीर्घकाल में उत्पादन में वृद्धि के साथ सीमान्त लागत में होने वाले परिवर्तन अनुमापी प्रतिफल के नियमों (Laws of returns to scale) के प्रचलन पर निर्भर करते हैं। फर्म का संतुलन उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहां उसकी सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर होती है।

ii) वस्तु समरूप हो।
iii) बाज़ार में फर्मों का प्रवेश व निर्गम स्वतंत्र हो।

फर्म का मांग वक्र पूर्ण व शुद्ध प्रतियोगिता दोनों में ही समस्तर होता है। दी हुई कीमत पर फर्म कितना उत्पादन करेगी, यह उत्पादन की मात्रा में परिवर्तन के साथ औसत और सीमान्त लागतों में होने वाले परिवर्तनों पर निर्भर करता है। फर्म का संतुलन उस बिन्दु पर होता है, जहां उसकी कीमत आय सीमांत लागत के बराबर होती है क्योंकि केवल इसी बिन्दु पर फर्म के कुल लाभ अधिकतम हो सकते हैं।

13.3 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का अल्पकालीन संतुलन

पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म के संतुलन को समझने के लिए यह अध्ययन करना आवश्यक होता है कि अल्पकाल में जब प्लांट का आकार अपरिवर्तित रहता है तब उत्पादन के स्तर, वृद्धि के साथ औसत और सीमांत लागतों में किस प्रकार का परिवर्तन होता है। अल्पकाल में सीमांत लागत में परिवर्तन किस प्रकार के होंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उत्पादन का कौन-सा नियम क्रियाशील है। यदि वर्धमान प्रतिफल (increasing returns) का नियम क्रियाशील है तो सीमांत लागत घटेगी। यदि स्थिर प्रतिफल (constant returns) का नियम क्रियाशील है तो सीमांत लागत स्थिर रहेगी और यदि ह्रासमान प्रतिफल (diminishing returns) का नियम क्रियाशील है तो यह बढ़ेगी। अल्पकाल में चूंकि उत्पादन के सभी कारक परिवर्ती नहीं होते, इसलिए सीमांत लागत पहले घटेगी और बाद में बढ़ेगी। यह पहले स्थिर कारकों की अविभाज्यता के कारण घटेगी और बाद में स्थिर कारक के अत्यधिक प्रयोग के कारण बढ़ेगी। मशीन की क्षमता पता होने पर शुरू में जैसे-जैसे श्रम जैसे परिवर्ती साधन की अधिक संख्या लगाई जाती है, प्रत्येक अतिरिक्त श्रमिक अधिक उत्पादिता देता है और इसलिए परिवर्ती साधनों पर लागत घटती है। जब मशीन अपनी अनुकूलतम क्षमता से अधिक पर काम करती है तो इससे विपरीत स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार सीमान्त लागत वक्र चित्र 13.2 में दिखाया गया वक्र होता है।

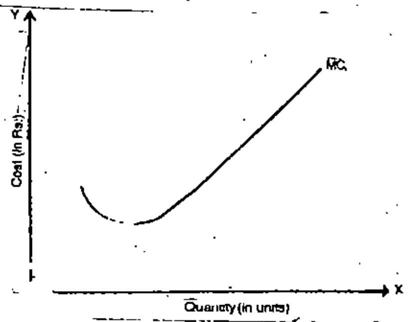

अल्पकाल में औसत लागत दो प्रकार की होती है, एक औसत स्थिर लागत और दूसरी औसत परिवर्ती लागत। इन दोनों के योग को औसत कुल लागत या औसत लागत कहते हैं। जहां तक औसत स्थिर लागत का प्रश्न है यह उत्पादन बढ़ने के साथ अवश्य ही घटेगी क्योंकि औसत स्थिर लागत $= \frac{\text{कुल स्थिर लागत}}{\text{उत्पादन}}$ क्योंकि अल्पकाल में कुल स्थिर लागत तो स्थिर ही है अतः उत्पादन में वृद्धि से औसत स्थिर लागत कम हो जाती है। जैसे-जैसे अधिक उत्पादन होता है वैसे-वैसे औसत स्थिर लागत घटती है और जब उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में किया जाता है तो औसत स्थिर लागत बहुत ही कम होगी और इसमें शून्य की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति होगी। चित्र 13.3 में औसत स्थिर लागत वक्र दिखाया गया है।

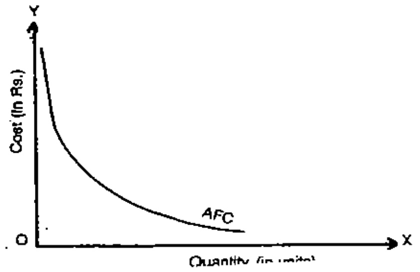

औसत कुल लागत का व्यवहार सीमान्त लागत पर निर्भर करता है जो कि परिवर्ती लागत पर निर्भर है। क्योंकि सीमान्त लागत शुरू में घटती है और बाद में बढ़ती है, इसलिए फर्म की औसत कुल लागत पहले घटेगी और बाद में बढ़ेगी। इसी प्रकार औसत परिवर्ती लागत भी पहले घटेगी और बाद में बढ़ेगी।

सीमान्त लागत एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने की लागत है और यह उत्पादन में वृद्धि के साथ कुल लागत में परिवर्तन की दर भी बताती है। यदि अतिरिक्त इकाई की लागत घटती है तो इसका अर्थ है कि इससे पहले की इकाइयों की औसत लागत ऊंची थी। जब भी सीमान्त लागत गिर रही होती है (ऐसा वर्धमान प्रतिफलों के कारण होगा) औसत लागत सीमान्त लागत से अधिक होगी। परन्तु औसत लागत सीमान्त लागत से अधिक होते हुए भी स्वयं घटती हुई होगी क्योंकि सीमान्त लागत में कमी के साथ औसत लागत भी कम होनी चाहिए।

यदि फर्म ऐसी स्थिति में है कि उसमें ह्रासमान प्रतिफलों का नियम क्रियाशील है और फर्म की सीमान्त लागत बढ़ रही है तब यदि सीमान्त लागत पहले की इकाइयों की औसत लागत से अधिक है तो औसत लागत बढ़ेगी। अतः सीमान्त लागत औसत लागत से ऊंची होगी। इस प्रकार ह्रासमान प्रतिफलों के अंतर्गत औसत लागत सीमान्त लागत से नीचे होने पर भी उत्पादन में वृद्धि के साथ बढ़ेगी। चित्र 13.4 देखिए, इसमें अल्पकाल में फर्म के औसत स्थिर लागत वक्र, औसत परिवर्ती लागत वक्र, औसत कुल लागत वक्र और सीमान्त लागत वक्रों को दिखाया गया है।

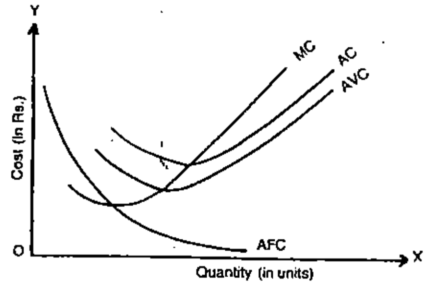

चित्र 13.4 से स्पष्ट है कि सीमान्त और औसत लागत पहले घटती हैं और फिर बढ़ती हैं और इसके अतिरिक्त सीमान्त लागत वक्र अवश्य ही औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु से गुजरता है। ऐसा क्यों होता है। इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य में निहित है कि जब हम वर्धमान प्रतिफलों की स्थिति से ह्रासमान प्रतिफलों की स्थिति की ओर बढ़ते हैं तो स्थिर प्रतिफलों के क्रियाशील होने की स्थिति से गुजरते हैं और इस स्थिति में सीमान्त औसत लागतें एक दूसरे के बराबर होती हैं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ AC और AVC का अंतर घटता जाता है जो उत्पादन में वृद्धि के साथ औसत स्थिर लागत के गिरने को दर्शाता है। सीमान्त लागत वक्र, औसत लागत वक्र और औसत परिवर्ती लागत वक्र इन दोनों ही के न्यूनतम बिन्दु से गुजरता है।

वे बिन्दु जिन पर सीमान्त लागत वक्र, औसत परिवर्ती लागत वक्र और औसत लागत वक्र को काटता है, हमें फर्म का क्रमशः उत्पादन बन्द (shut down) बिन्दु और (break-even) लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु पता लगाने में सहायक होते हैं। इसे चित्र 13.5 में दिखाया गया है।

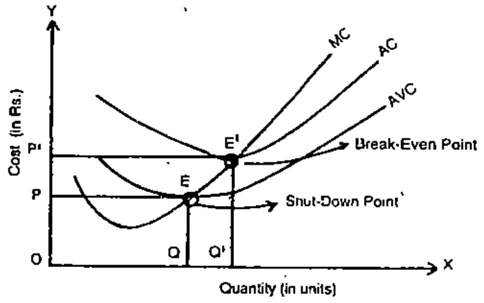

फर्म को मजबूर होकर उत्पादन बन्द न करना पड़े इसके लिए यह आवश्यक है कि उसे कम से कम इतनी कीमत अवश्य मिले जो औसत परिवर्ती लागत के न्यूनतम बिन्दु E द्वारा दिखाई गई है। इस चित्र में OP कीमत पर केवल औसत परिवर्ती लागत ही प्राप्त होती है और इस कीमत पर कुल आय OQEP होगी और यही कुल

परिवर्ती लागत होगी। यदि कीमत OP से नीचे गिरती है तो कुल परिवर्ती लागत OQEP ही होगी लेकिन कुल आय OQEP से कम होगी। इस प्रकार फर्म OP से कम कीमत पर अपनी कुल परिवर्ती लागत भी प्राप्त नहीं कर पाएगी और इसलिए उत्पादन बन्द करने पर मजबूर हो जाएगी। अल्पकाल में फर्म अपनी स्थिर लागत तो छोड़ सकती हैं लेकिन परिवर्ती लागत नहीं छोड़ सकती। इसी कारण परिवर्ती लागत को मूल लागत (prime-cost) कहते हैं और स्थिर लागत को अनुपूरक लागत (supplementary cost) कहते हैं। न्यूनतम औसत परिवर्ती लागत फर्म का उत्पादन-बिन्द बिन्दु है।

यदि वस्तु की कीमत न्यूनतम औसत लागत जो कि OP′ के बराबर है तो फर्म को प्राप्त कुल आगम OQE′P′ है और कुल लागत भी इतनी ही है। OP′ कीमत पर कुल आय और कुल लागत बराबर हैं और फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त होंगे जो कि कुल लागत में शामिल हैं। इस कीमत पर फर्म को स्थिर व परिवर्ती दोनों लागतें प्राप्त होंगी। यदि कीमत औसत लागत यानि OP′ से अधिक है तो फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त होंगे। इससे फर्म को अपना उत्पादन लाभ-अलाभ स्थिति बिंदु से अधिक बढ़ाने में सहायता मिलेगी। लेकिन दीर्घ काल में यह स्थिति कायम नहीं रह सकेगी क्योंकि असामान्य लाभ देखकर नई फर्म उद्योग में प्रवेश कर जाएगी। इससे कुल पूर्ति बढ़ जाएगी जिससे कीमत कम हो जाएगी और इस प्रकार असामान्य लाभ खत्म हो जाएंगे। अतः औसत परिवर्ती लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु फर्म के लिए उत्पादन-बन्द बिन्दु है और औसत लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु है। अल्पकाल में फर्म का इन दोनों के बीच कहीं भी होना संभव है लेकिन इसके लिए उत्पादन-बंद बिंदु से नीचे क्रियाशील होना संभव नहीं है।

फर्म का उत्पादन बढ़ाना इस बात पर निर्भर करता है कि क्या उससे इसके लाभ बढ़ेंगे। यदि एक अतिरिक्त इकाई को उत्पादित करने की लागत यानि सीमान्त लागत इस इकाई से प्राप्त आय यानि सीमान्त आय से अधिक है तो इस अतिरिक्त इकाई से फर्म के कुल लाभ कम हो जाएंगे और फर्म उत्पादन घटाएगी। यदि सीमान्त लागत सीमान्त आगम से कम है तो कुल लाभ बढ़ेंगे और फर्म उत्पादन बढ़ाएगी।

फर्म का संतुलन केवल तभी संभव है जब इसकी सीमान्त लागत इसकी सीमान्त आय के बराबर हो क्योंकि इस स्थिति में फर्म के लाभ अधिकतम हो जाएंगे और वह न तो उत्पादन का विस्तार करेगी और न ही संकुचन। यदि फर्म उस बिन्दु से पहले उत्पादन रोक देती है जिस पर सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर है तो वह लाभ के भाग को छोड़ रही है जिसे वह उत्पादन बढ़ाकर अर्जित कर सकती थी। यदि उस बिन्दु से आगे उत्पादन करती है तो इसके लाभ कम हो जाएंगे। दूसरे शब्दों में फर्म के लाभ उत्पादन के केवल उस स्तर पर अधिकतम होंगे जिस पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर है।

सीमान्त लागत और सीमान्त आय की समानता को संतुलन की आवश्यक शर्त कहा जाता है। संतुलन की पर्याप्त शर्त को स्थिरता की शर्त भी कहते हैं। यदि फर्म यह पाती है कि उस बिन्दु से जहां सीमान्त लागत व सीमान्त आय बराबर हैं आगे उत्पादन बढ़ाना लाभकारी है तो शुरू में संतुलन अस्थिर होगा। अस्थिर संतुलन की स्थिति का अर्थ है कि सीमान्त लागत और सीमान्त आय की समानता का यह अर्थ नहीं होता कि फर्म अपना उत्पादन बढ़ाने को उत्सुक नहीं होगी। इस प्रकार हमेशा ही सच नहीं होता कि यदि सीमान्त लागत और सीमान्त आय बराबर हैं तो संतुलन स्थिर होगा। यदि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को ऊपर से काटता है तो संतुलन स्थिर नहीं है। दूसरी ओर, यदि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटता है तो यह स्थिर संतुलन की स्थिति है। इसलिए, सीमान्त लागत और सीमान्त आय का बराबर होना संतुलन की एक आवश्यक शर्त है लेकिन यह शर्त पर्याप्त नहीं है। संतुलन की पर्याप्त शर्त यह है कि सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटे। इसे चित्र 13.6 और चित्र 13.7 में दिखाया गया है।

चित्र 13.6 और 13.7 में सीमान्त लागत और सीमान्त आय M बिन्दु पर बराबर हैं और MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है जिससे उत्पादन का संतुलन स्तर OQ है। उत्पादन को OQ से आगे बढ़ाना अलाभकारी होगा और OQ से कम उत्पादन करने पर कुल लाभ अधिकतम नहीं होंगे। अतः M बिन्दु स्थिर संतुलन को दर्शाता है।

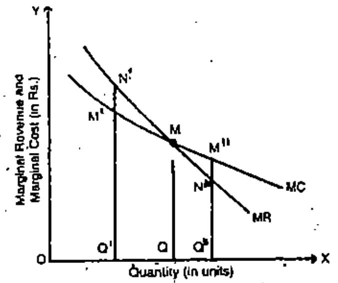

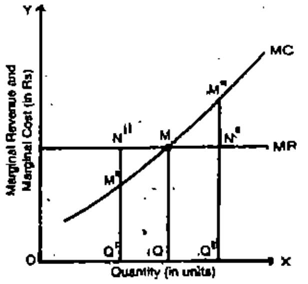

एक बार संतुलन की आवश्यक और पर्याप्त शर्तें जानने के बाद अब पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म संतुलन का अध्ययन किया जा सकता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि अल्प काल में फर्म का संतुलन उत्पादन बंद बिन्दु या उससे ऊपर कहीं भी हो सकता है। इससे पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के अल्पकालीन संतुलन की विभिन्न संभावनाओं का पता लगता है।

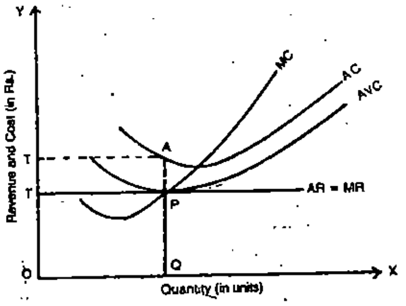

चित्र 13.8 में P उत्पादन-बंद बिन्दु है। यदि AR वक्र P बिन्दु से गुजरता है तो फर्म का OQ उत्पादन प्रचलित कीमत PQ पर बिकेगा। फर्म के OQ उत्पादन की औसत परिवर्ती लागत PQ है और यह न्यूनतम है। PQ कीमत पर फर्म को केवल औसत परिवर्ती लागत मिलेगी और इसे केवल स्थिर लागत छोड़नी पड़ेगी। इसके अलावा कीमत (औसत आय) सीमान्त आय के बराबर होगी। औसत परिवर्ती लागत न्यूनतम है और इसलिए P बिन्दु पर सीमान्त लागत इसके बराबर है और यह सीमान्त आय के बराबर भी है। P बिन्दु पर सीमान्त लागत वक्र सीमान्त आय वक्र को नीचे से काटता है। इसलिए संतुलन अल्पकाल में स्थिर है।

यह संतुलन अधिक समय तक नहीं रहेगा क्योंकि OQ उत्पादन-स्तर पर कीमत केवल PQ है और औसत लागत AQ है जो PQ से अधिक है। अतः कुल लागत (OQ×AQ) कुल आय (OQ×PQ) से अधिक है। फर्म की कुल हानि TP या OQ×AP यानि TPAT' होगी।

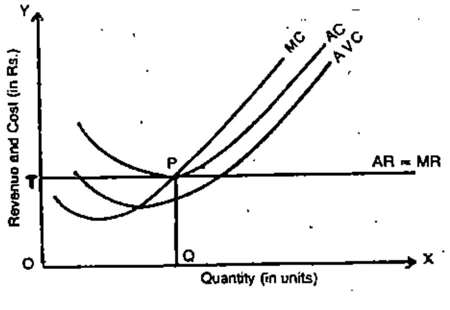

चित्र 13.9 में लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु है। OQ उत्पादन की औसत लागत है और कुल लागत PQ है और यह कुल आय के बराबर है। कीमत ही औसत आय है। इसके अतिरिक्त कीमत = AR = MR = MC = AC। फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त हो रहे हैं जो कि औसत लागत में शामिल हैं। फर्म को असामान्य लाभ प्राप्त नहीं हो रहे। सीमांत लागत वक्र सीमांत आय वक्र को नीचे से काट रहा है इसलिए संतुलन स्थिर है।

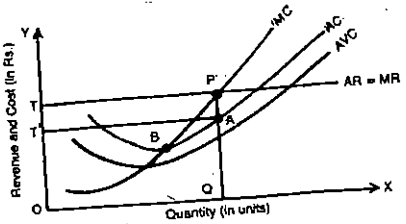

चित्र 13.10 में लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु B है और बिन्दु P इससे ऊपर है। PQ कीमत सीमांत आय के बराबर है और सीमांत लागत के बराबर भी है। OQ उत्पादन की औसत लागत AQ है जो कीमत से कम है। इसलिए कुल आय (PQ×OQ) कुल लागत (AQ×OQ) से अधिक है। अतः फर्म को TAPT के बराबर असामान्य लाभ मिल रहे हैं।

अतः अल्पकाल में फर्म का संतुलन यदि उत्पादन-बिन्दु पर हैं तो फर्म को हानि होती है, यदि लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु पर है तो वह न लाभ न हानि की स्थिति में होती है और यदि लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु से ऊपर है तो असामान्य लाभ होते हैं। फर्म का सन्तुलन AR वक्र और MC वक्र की स्थिति से निर्धारित होता है।

Shut down बिन्दु और break even बिन्दु के बीच में कहीं भी संतुलन की स्थिति हानि की स्थिति होती है।

13.4 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म का दीर्घकालीन संतुलन

पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में फर्म के संतुलन पर विचार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि इसके लिये प्रासंगिक लागत वक्रें दीर्घकालीन औसत व सीमांत लागत वक्रें होंगी।

फर्म की दीर्घकालीन लागत वक्रें कैसे खींचते हैं? दीर्घकाल अल्पकालों से बना है जिनकी संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि मशीन व उपस्कर में मांग में परिवर्तन के संदर्भ में समायोजन करने के लिये कितना समय लगता है। फर्म की दीर्घकालीन लागत वक्रें, अल्पकालीन लागत वक्रों पर आधारित होती हैं। विभिन्न अल्पकालीन औसत लागत वक्रों के थोड़े-थोड़े हिस्सों को लेकर ही दीर्घकालीन औसत लागत वक्र बनते हैं।

दीर्घकाल में सभी लागतें परिवर्ती होती हैं, अतः स्थिर व परिवर्ती लागतों का भेद खत्म हो जाता है। दीर्घकालीन औसत लागत वक्र भी U आकार के होते हैं लेकिन अल्पकालीन औसत लागत वक्र से अधिक चौड़ा होता है। औसत व सीमांत राशियों के संबंधों के आधार पर दीर्घकालीन औसत लागत वक्र दिया हुआ होने पर दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र खींचा जा सकता है।

दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु से गुजरता है और इस बिन्दु पर ये दोनों बराबर होते हैं। पूर्ण प्रतियोगिता में दीर्घकाल में फर्म का संतुलन चित्र 13.11 में दिखाया गया है।

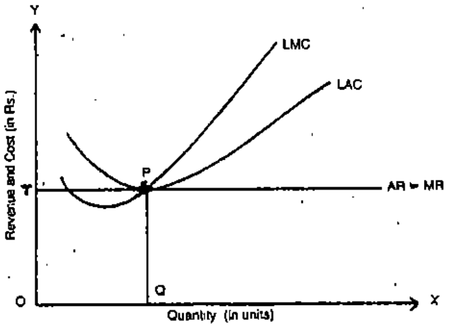

फर्म के संतुलन की स्थिति का अर्थ है कि वह स्थिति जिसमें फर्म किसी परिवर्तन के लिए उत्सुक न हो। संतुलन बिन्दु पर कीमत = AC = AR = MR = MC और फर्म को केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। असामान्य लाभ की स्थिति में नई फर्में प्रवेश करेंगी जिससे फिर सामान्य लाभ की स्थिति आ जाएगी। हानि की स्थिति में कुछ फर्में उत्पादन बंद कर देंगी जिससे फिर से सामान्य लाभ की स्थिति आ जाएगी।

बोध प्रश्न क

1 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के संतुलन से आप क्या समझते हैं?

....

....

2 पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म के अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में अंतर बताइये।

....

....

....

3 बताइये निम्नलिखित कथन सही है या गलत :

i) फर्म का सन्तुलन उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहां इसकी सीमांत लागत सीमांत आय के बराबर है।

ii) सीमांत लागत वक्र औसत परिवर्ती लागत वक्र और औसत लागत वक्र दोनों के न्यूनतम बिन्दुओं से गुजरता है।

iii) औसत परिवर्ती लागत वक्र का न्यूनतम बिन्दु फर्म के लिये उत्पादन-बंद बिन्दु है।

iv) फर्म के लाभ उत्पादन के केवल उस स्तर पर अधिकतम हो सकते हैं जिस पर सीमांत लागत सीमांत आय से अधिक हों।

v) दीर्घकालीन सीमांत लागत वक्र दीर्घकालीन औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु से गुजरता है।

13.5 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का अल्पकालीन संतुलन

फर्म के संतुलन की भांति उद्योग का संतुलन भी मांग और पूर्ति की शक्तियों की सहायता से निर्धारित किया जा सकता है। उद्योग के संतुलन का विश्लेषण अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों में किया जा सकता है।

उद्योग के लिये मांग वक्र विभिन्न क्रेताओं के मांग वक्रों का योग है और पूर्ति वक्र उद्योग की विभिन्न फर्मों के पूर्ति वक्रों का योग है। चित्र 13.12 i) और 13.12 ii) में यह संबंध दिखाया गया है।

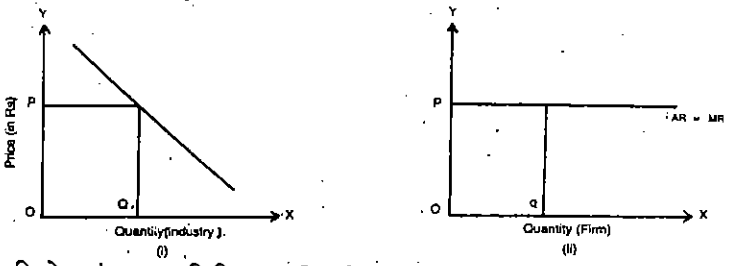

उद्योग के लिये मांग वक्र विभिन्न कीमतों पर उस वस्तु के सभी क्रेताओं द्वारा मांग की जाने वाली मात्रा को दर्शाता है। उद्योग के लिये मांग वक्र 13.12 i) में दिखाया गया है और जिस तरह के विभिन्न मांग वक्रों के योग से यह बना है उनमें से एक चित्र 13.12 ii) में दिखाया गया है।

उद्योग के पूर्ति वक्र भी इसी तरह खींचे जाते हैं। चित्र 13.13 i) और 13.13 ii) यह दर्शाते हैं कि OT कीमत पर OQ पूर्ति चित्र 13.13 ii) में दिखाई गई फर्म की OQ पूर्ति और इस कीमत पर अन्य फर्मों की पूर्तियों का योग है।

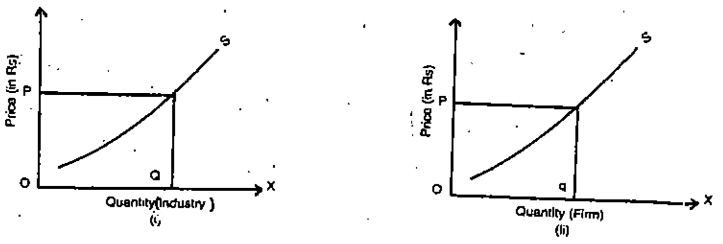

इन दो चित्रों में Y-अक्षों में माप के पैमाने भिन्न हैं। उद्योग की अल्पकालीन संतुलन कीमत का निर्धारण उद्योग के लिये खींचे गए मांग वक्र और पूर्ति वक्र के द्वारा किया जा सकता है।

चित्र 13.14 में उद्योग के मांग वक्र व पूर्ति वक्र दिखाये गये हैं और कीमत निर्धारण P

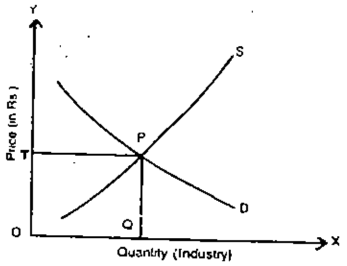

बिन्दु पर होता है जहां OP बाज़ार कीमत है जिस पर मांग की गयी मात्रा और पूर्ति की गई मात्रा दोनों OQ हैं। OP से अधिक या कम कोई भी कीमत ऐसी शक्तियां उत्पन्न कर देंगी जो कीमत को संतुलन की स्थिति, जहां मांग की गयी मात्रा और पूर्ति की गई मात्रा बराबर होंगी, पर आने को मजबूर कर देंगी।

अल्पकाल में विभिन्न फर्मों की स्थिति विभिन्न होगी, कुछ को असामान्य लाभ प्राप्त हो रहे हो सकते हैं, कुछ हानि की स्थिति में हो सकती हैं और कुछ उत्पादन-बंद बिन्दु पर हो सकती हैं। लेकिन पूरे उद्योग में क्या प्रवृत्ति होगी और यह संतुलन की स्थिति पर कैसे पहुंचेगा?

किसी एक फर्म के संदर्भ में उसकी सीमांत लागत उसके संतुलन निर्धारण में सबसे महत्वपूर्ण है। उद्योग के संदर्भ में सीमांत फर्म का व्यवहार अल्पकाल में संतुलन की स्थिति निर्धारित करेगा।

सीमांत फर्म वह फर्म होती है जिसकी सीमांत लागत सबसे ऊंची होती है अर्थात् वह फर्म जो उद्योग में सबसे अकुशल है। अल्पकाल में यह लाभ की स्थिति में हो सकती है या हानि की स्थिति में। यदि सीमांत फर्म अपनी सबसे ऊंची सीमांत लागत के बावजूद लाभ प्राप्त कर रही हैं तो अन्य फर्में इससे भी अधिक लाभ प्राप्त कर रही होंगी और अपना उत्पादन बढ़ायेंगी। इसलिये उद्योग में कुल पूर्ति बढ़ जाने से कीमत के कम होने और सीमांत फर्म के लाभ कम होने की प्रवृत्ति होगी और यह प्रवृत्ति उस समय तक बनी रहेगी जब तक कि सीमांत फर्म को कोई लाभ न प्राप्त होने की स्थिति ना आ जाए। सीमांत फ़र्म के हानि उठाने की अवस्था में इससे विपरीत स्थिति उत्पन्न होगी। ऐसी अवस्था में कुछ अन्य फर्में भी हानि उठा रही होंगी जिस कारण वह उत्पादन घटायेंगी। इससे कुल पूर्ति घट जाएगी और वस्तु की कीमत बढ़ जाएगी कीमत के बढ़ने से सीमांत फर्म की हानि कम हो जाएगी। ये परिवर्तन उस समय तक होते रहेंगे जब तक कि सीमांत फर्म की हानि बिल्कुल खत्म ना हो जाए। ऐसी स्थिति में पहुंचने पर फर्मों द्वारा उत्पादन घटाना बंद हो जाएगा और उद्योग अल्पकालीन संतुलन की स्थिति में होगा। अल्पकाल में उद्योग में फर्मों की संख्या स्थिर रहती है।

13.6 प्रतियोगी उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र

प्रतियोगी उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र कैसे खींचा जाता है। उद्योग की पूर्ति उस उद्योग को संघटित करने वाली फर्मों की एक दी हुई कीमत पर पूर्तियों का योग है। हमें एक दी हुई कीमत पर प्रत्येक फर्म द्वारा पूर्ति की जा रही मात्रा पता करनी होती है। मान लीजिये फर्म 1, 2, 3..... आदि P कीमत पर q_1, q_2, q_3 मात्रा पूर्ति कर रही हैं। तब P कीमत पर q_1, q_2, q_3... का योग उद्योग द्वारा पूर्ति की गई मात्रा होगी। इसी प्रकार अन्य कीमतों पर भी उद्योग की पूर्ति मालूम की जा सकती है। उद्योग का दीर्घकालीन पूर्ति वक्र, प्राप्त करने के लिये हम अल्पकाल में फर्म की पूर्ति के केवल उस भाग पर ध्यान देते हैं जिसका दीर्घकाल से अर्थपूर्ण संबंध हो। अल्पकाल में सीमांत लागत व कीमत के संबंध की प्रकृति कैसी भी हो, दीर्घकाल में ये ऐसी अवश्य होनी चाहिए कि फर्म की कुल लागत पूरी हो जाये।

दीर्घकाल के लिये पूर्ति और सीमांत लागत जो फर्म के लिये अर्थपूर्ण है और इसलिये उद्योग के लिये भी वे ऐसी पूर्ति और सीमांत लागतें हैं जो उत्पादन-बंद बिन्दु E पर हैं। इस बिन्दु पर विभिन्न फर्मों की पूर्तियों के योग से हमें उद्योग की पूर्ति पता लगेगी जो एक दी हुई सीमांत लागत और कीमत पर है। उद्योग के पूर्ति वक्र पर एक बिन्दु

इसे दर्शायेगा इसी प्रकार अन्य अल्पकालों के लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु लेकर हम कुल पूर्तियां मालूम कर सकते हैं और इस प्रकार मालूम की गई प्रत्येक कुल पूर्ति उद्योग के पूर्ति वक्र पर एक बिन्दु द्वारा दिखाई जा रही है। अतः उद्योग के पूर्ति वक्र पर प्रत्येक बिन्दु एक अल्पकाल के फर्मों के लाभ-अलाभ स्थिति बिन्दु पर उनकी कुल पूर्ति को दर्शाता है।

इस प्रकार खींचा गया उद्योग का पूर्ति वक्र कैसा होगा? यह इस बात पर निर्भर करता है कि दीर्घकाल में फर्मों की संख्या में परिवर्तन के फलस्वरूप सीमांत लागत में कैसा परिवर्तन होता है। यदि फर्में दीर्घकाल में स्थिर अनुमापी प्रतिफल के अंतर्गत कार्यशील है तो सीमांत लागत स्थिर होगी और उद्योग का पूर्ति वक्र समस्तर होगा। लेकिन यदि फर्मों में ह्रासमान अनुमापी प्रतिफल क्रियाशील हैं तो सीमांत लागत बढ़ती हुई होगी और उद्योग का पूर्ति वक्र ऊपर की ओर जाता हुआ होगा जो इस बात का सूचक है कि सीमांत कीमत बढ़ रही है इसलिये पूर्ति में वृद्धि के साथ कीमतें बढ़ेंगी। यदि फर्मों में वर्धमान अनुमापी प्रतिफल क्रियाशील हैं तो उत्पादन बढ़ने के साथ सीमांत लागत घटेगी। इस स्थिति में उद्योग का पूर्ति वक्र बायें से दायें नीचे की ओर ढालू होगा जो इस बात का सूचक है कि उत्पादन बढ़ने से सीमांत लागत घटती है इसीलिये कीमत घटती है।

13.7 पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग का दीर्घकालीन संतुलन

उद्योग का मांग वक्र बांये से दांये नीचे की ओर आता हुआ होता है जो यह दर्शाता है कि वस्तु की कीमत कम होने पर मांग ज्यादा होती है और ऊंची कीमत पर मांग कम होती है। उद्योग का पूर्ति वक्र विभिन्न फर्मों (जो उद्योग में है) के पूर्ति वक्रों का योग होता है। यदि पूर्ति वक्र ऊपर की ओर जाता हुआ है तो उद्योग का संतुलन चित्र 13.15 द्वारा दिखाया गया है।

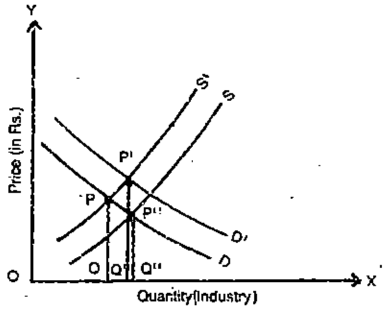

यदि पूर्ति वक्र बायीं ओर खिसकता है तो इसका अर्थ है कि दी हुई कीमत पर पूर्ति बढ़ गयी है और ऐसी स्थिति में संतुलन कीमत कम हो जाएगी। यदि पूर्ति वक्र बांयी ओर खिसकता है तो संतुलन कीमत बढ़ जाएगी। इसी प्रकार यदि दी हुई कीमतों पर मांग बढ़ जाती है तो मांग वक्र दांयी ओर खिसक जाएगा और संतुलन कीमत बढ़ जाएगी। यदि दी हुई कीमतों पर मांग कम हो जाती है तो मांग वक्र बांयी ओर खिसक जाएगा और संतुलन कीमत घट जाएगी। दीर्घकाल में पूर्ति में वृद्धि उत्पादन प्रणाली में सुधार के कारण हो सकती हैं जैसे पशुशक्ति की बजाय विद्युत शक्ति का प्रयोग। इसी प्रकार दीर्घकाल में लोगों की किसी वस्तु के प्रति रुचि बढ़ जाने से उसी कीमत पर मांग बढ़ जाएगी और मांग वक्र दांयी ओर खिसक जाएगा। उस वस्तु के प्रति अरुचि पैदा होने से मांग घट जाएगी और मांग वक्र दांयी ओर खिसक जाएगा।

दीर्घकाल में उद्योग का पूर्ति वक्र यदि समस्तर है या दांयी ओर नीचे की ओर ढालू है उस अवस्था में संतुलन कीमत कैसे निर्धारित होगी, यह क्रमशः चित्र 13.16(i) और चित्र 13.16(ii) में दिखाया गया है।

यह आंतरिक व बाह्य मितव्ययताओं के कारण नीचे की ओर आते हुए पूर्ति वक्र की स्थिति है जिसकी संभावना पूर्ण प्रतियोगिता में सबसे कम होती है।

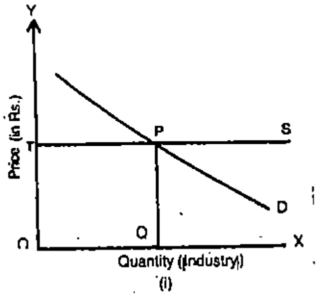

चित्र 13.16(i)

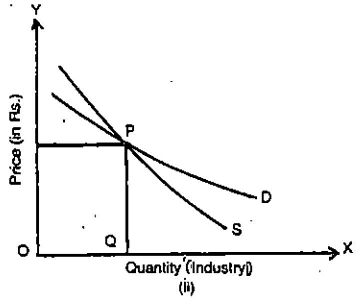

चित्र 13.16(ii)

बोध प्रश्न ख

1 उद्योग की पूर्ति से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2 पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उद्योग के अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में क्या अंतर है।

....

....

....

3 बताइये निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत हैं :

i) उद्योग के लिये अल्पकाल में सीमांत लागत का व्यवहार ही संतुलन की स्थिति का निर्धारण करेगा।

ii) दीर्घकाल में यदि फर्में स्थिर अनुमापी प्रतिफलों के अंतर्गत कार्यशील हैं तो उद्योग का पूर्ति वक्र समस्तर होगा।

iii) दीर्घकाल में यदि मांग वक्र दांयी ओर खिसकता है तो संतुलन कीमत गिरेगी।

iv) यदि किसी वस्तु के प्रति क्रेताओं की रुचि बढ़ जाती है या उनकी आय बढ़ जाती है तो मांग वक्र दांयी ओर खिसकेगा।

4 दिये हुए विकल्पों में से सही विकल्प चुनिये:

i) सीमांत लागत औसत लागत के बराबर होती है जब औसत लागत
   क) अधिकतम है
   ख) न्यूनतम है

ग) शून्य है
घ) ऋणात्मक है

ii) पूर्ण प्रतियोगिता में संतुलन के लिए आवश्यक है कि
   क) सीमांत आय सीमांत लागत से अधिक हो।
   ख) सीमांत आय सीमांत लागत से कम हो।
   ग) सीमांत आय सीमांत लागत के बराबर हो।
   घ) सीमांत आय औसत आगम से अधिक हो।

iii) उत्पादन-बन्द बिन्दु वह है जिस पर:
   क) कीमत औसत लागत के बराबर है।
   ख) कीमत कुल लागत के बराबर है।
   ग) कीमत न्यूनतम परिवर्ती लागत के बराबर है।
   घ) कीमत न्यूनतम सीमान्त लागत के बराबर है।

iv) फर्म का दीर्घकालीन औसत लागत वक्र:
   क) अल्पकालीन औसत लागत वक्रों का योग है।
   ख) अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्रों का योग है।
   ग) अल्पकालीन औसत लागत वक्रों का आवरण है।
   घ) इनमें से कोई नहीं है।

v) उद्योग दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र के नीचे की ओर गिरने का कारण:
   क) उत्पादन के कारकों की कठिन उपलब्धता है।
   ख) उत्पादन कारकों की स्थिरता है।
   ग) बाह्य और आन्तरिक बचतें हैं।
   घ) उद्योग की फर्मों के बीच की प्रतिस्पर्धा है।

13.8 सारांश

पूर्ण प्रतियोगिता में फर्म वस्तु की कीमत को परिवर्तित नहीं कर सकती। ऐसी स्थिति में फर्म के संतुलन के लिये यह आवश्यक है कि प्रतियोगी फर्म अपने उत्पादन में कीमत के अनुसार उपयुक्त समायोजन करे। यह समायोजन वस्तु की मांग और पूर्ति पर निर्भर करेगा। क्योंकि मांग वक्र क्षैतिज समस्तर होता है इसलिए पूर्ति वक्र इस प्रकार का होना चाहिए कि वह समस्तर मांग वक्र को कहीं काटे। यह किस बिन्दु पर काटेगा या छुएगा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम दीर्घकालीन संतुलन पर विचार कर रहे हैं या अल्पकालीन सन्तुलन पर। अल्पकालीन संतुलन के लिए यह बिंदु हानि, असामान्य लाभ या सामान्य लाभ की स्थिति दिखा सकता है। दीर्घकाल में संतुलन बिंदु पर केवल सामान्य लाभ प्राप्त होने चाहिए और इस बिंदु पर औसत आय, सीमान्त आय, औसत लागत और सीमान्त लागत सभी एक-दूसरे के बराबर होंगे।

पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में उद्योग के संतुलन का विश्लेषण सीमान्त फर्म के व्यवहार द्वारा किया जा सकता है। जहां फर्मों की संख्या स्थिर रहती है। दीर्घकाल में उद्योग के संतुलन का विश्लेषण उद्योग के मांग व पूर्ति वक्रों की सहायता से किया जा सकता है। सीमान्त लागत के वक्रों का जब योग किया जाता है तो उद्योग का पूर्ति वक्र समस्तर सरल रेखा या ऊपर की ओर जाता हुआ वक्र हो सकता है। यह दीर्घकाल में उत्पादन के कारणों की उपलब्धता पर निर्भर करेगा। उद्योग का पूर्ति वक्र नीचे की ओर आता हुआ हो सकता है। ऐसा वर्धमान प्रतिफलों के कारण होगा जो आंतरिक व बाह्य बचतों से प्राप्त होते हैं। लेकिन ऐसी स्थिति की संभावना बहुत कम होती है।

13.9 शब्दावली

लाभ-अलाभ बिन्दु: वह बिन्दु जिस पर कीमत न्यूनतम औसत लागत के लाभ-अलाभ बराबर होती है।

ह्रासमान प्रतिफल: यह दर्शाता है कि परिवर्ती कारक की अतिरिक्त इकाई से अतिरिक्त उत्पादन पिछली इकाइयों के उत्पादन से कम है।

स्थिर लागत: अल्पकाल में वह लागत जो उत्पादन के स्तर के साथ परिवर्तित नहीं होती।

वर्धमान प्रतिफल: यह दर्शाता है कि परिवर्ती साधन की एक अतिरिक्त इकाई से हुआ अतिरिक्त उत्पादन पिछली इकाइयों के उत्पादन से अधिक है।

सीमान्त फर्म: उद्योग में मौजूद फर्मों की संख्या के एक अतिरिक्त फर्म।

उत्पादन बंद बिन्दु: वह बिन्दु जिस पर कीमत न्यूनतम परिवर्ती लागत के बराबर है।

परवर्ती लागत: वे लागतें जो उत्पादन के स्तर के साथ परिवर्तित होती हैं। इन्हें प्रत्यक्ष या मूल लागतें भी कहते हैं।

13.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 i) सही ii) सही iii) सही iv) गलत v) सही

ख 3 i) सही ii) सही iii) गलत iv) सही

4 i) ख ii) ग iii) ग iv) ग v) ग

13.11 स्वपरख प्रश्न

1) फर्म के संतुलन के लिए सीमान्त लागत और सीमान्त आय की समानता एक आवश्यक शर्त क्यों है?
2) औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु पर औसत लागत और सीमान्त लागत क्यों बराबर होती हैं?
3) पूर्ण प्रतियोगिता में अल्पकाल में फर्म का संतुलन कैसे निर्धारित होता है?
4) पूर्ण प्रतियोगिता में उद्योग के अल्पकालीन संतुलन का विवेचन कीजिए।
5) प्रतियोगी उद्योग के दीर्घकालीन पूर्ति वक्र के नीचे की ओर ढालू होने की सम्भावना क्यों नहीं होती?

नोट: इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 14 एकाधिकार (MONOPOLY)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 एकाधिकार की अवधारणा
14.3 एकाधिकारी बाज़ार में संतुलन
14.3.1 अल्पकाल में
14.3.2 दीर्घकाल में
14.4 एकाधिकार में कीमत विभेद
14.5 एकाधिकार और आर्थिक कुशलता : पूर्ण प्रतियोगिता से तुलना
14.6 एकाधिकार का विनियमन
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.10 स्वपरख प्रश्न

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार में भेद बता सकें
- अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन का वर्णन कर सकें
- एकाधिकार में कीमत विभेद की व्याख्या कर सकें
- एकाधिकार का विनियमन करने के लिए सरकार जो उपाय कर सकती है उनका मूल्यांकन कर सकें।

14.1 प्रस्तावना

आपने इकाई 13 में पढ़ा है कि एक निर्बाध बाज़ार अर्थव्यवस्था के लिए पूर्ण प्रतियोगिता क्यों महत्वपूर्ण है। इसके अंतर्गत वस्तुओं का उत्पादन दीर्घकाल में न्यूनतम संभव औसत लागत पर होता है और कीमतें सीमान्त लागत के बराबर होती हैं। इसमें साधनों का अपव्यय नहीं होता क्योंकि उत्पादन अनुकूलतम स्तर पर होता है।

एकाधिकार की स्थिति में ये सारे लाभ नहीं रहते। उत्पादन साधारणतया अनुकूलतम स्तर से कम होता है और कीमत सीमान्त लागत से अधिक होती है। एकाधिकारी का बाज़ार के इतने बड़े भाग पर नियंत्रण होता है कि वह अपने ग्राहकों से मनचाही कीमत वसूल कर सकता है। निस्संदेह वह मांग वक्र की सीमाओं से परे नहीं जा सकता और न ही वह इतनी ऊंची कीमत वसूल कर सकता है कि क्रेता स्थानापन्न (substitutes) वस्तुएं ढूंढ़ने को मजबूर हो जाएं या उसके अपने अत्यधिक लाभ बाज़ार में नये प्रतिद्वंद्वी को आकर्षित करना शुरू कर दें। इन सीमाओं के भीतर वह अपनी कीमत इस प्रकार निश्चित कर सकता है कि औसत लागत पर उसका अतिरेक (surplus) अधिकतम हो।

इस इकाई में आप एकाधिकार की अवधारणा का अर्थ जानेंगे। आप अल्पकाल और दीर्घकाल में एकाधिकार संतुलन की संकल्पना और कीमत विभेद के बारे में जानेंगे। आप पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में एकाधिकार और आर्थिक कुशलता के बारे में जान सकेंगे, और एकाधिकार का सरकार किन उपायों से विनियमन करती है, इनके बारे में भी जानेंगे।

14.2 एकाधिकार की अवधारणा

इकाई 12 में बाज़ार संरचना पर विचार करते समय आपको बताया गया था एकाधिकार एक ऐसी बाज़ार स्थिति है जिसमें केवल एक विक्रेता होता है। इस प्रकार का परिशुद्ध और पूर्ण एकाधिकार का होना ऐसा ही दुर्लभ तथ्य है जैसा कि शुद्ध (pure) या पूर्ण (absolute) प्रतियोगिता का होना। यह संभव है कि एक विशेष विक्रेता का बाज़ार के बहुत बड़े भाग पर अधिकार हो लेकिन यह संभव नहीं है कि उसका पूरे बाज़ार पर अधिकार हो। ऐसी संभावना उन अर्थव्यवस्थाओं में अधिक होती है जहां उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व पूर्णतया राज्य का होता है और जहां सरकार स्वयं एकाधिकारी होती है। ऐसा भारत जैसी मिश्रित अर्थव्यवस्था में नहीं होता। जहां तक प्राकृतिक (natural) एकाधिकार का संबंध है जैसा कि पीने के पानी या बिजली या खास किस्म के यातायात व संचार के साधन या स्वास्थ्य सेवा आदि की पूर्ति करने वाले इनमें एकाधिकार का तत्व अत्यधिक हो सकता है। सामान्य एकाधिकार में केवल एक विक्रेता नहीं होता बल्कि विक्रेताओं में से एक का बाज़ार पर अत्यधिक नियंत्रण होता है और इसलिए वह अपने उत्पादन की मनचाही कीमत निर्धारित कर सकता है। इसकी तुलना में पूर्ण प्रतियोगिता में एक विक्रेता का कीमत पर कोई नियंत्रण नहीं होता, वह मनचाही कीमत पर अपना उत्पादन नहीं बेच सकता। सामान्य एकाधिकार को हमने इससे पहले सामान्य अपूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति बताया था। यह ध्यान रखिए कि एकाधिकार से हमारा तात्पर्य पूर्ण या शुद्ध एकाधिकार से नहीं बल्कि ऐसी स्थिति से है जिसमें एक विक्रेता का बाज़ार के बहुत बड़े हिस्से पर नियंत्रण होता है।

एकाधिकार के पक्ष और विपक्ष में मत

जब क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने यह सुझाव दिया था कि वह अर्थव्यवस्था सर्वोत्तम है जो निर्बाध बाज़ार के आधार पर कार्य करती है तो उनका तात्पर्य यह था कि ऐसी अर्थव्यवस्था में बाज़ार में वस्तु के विक्रेताओं के बीच बहुत तीव्र प्रतिस्पर्धा होगी। उनका मत था कि अपने लाभों को अधिकतम करने के लिए विक्रेता एक बार अधिकाधिक उत्पादन करना शुरू कर दें तो यह समाज के हित में होगा। वस्तुओं और सेवाओं का बढ़ता हुआ उत्पादन श्रम-विभाजन और बड़े पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित करेगा और सीमान्त लागत, औसत लागत व कीमतों को कम करेगा तथा धन को बढ़ायेगा।

वास्तव में क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का विश्वास था कि ये सभी बातें इसी तरह होंगी जैसा अभी बताया गया है। अतः यदि बाज़ार में बाधा न डाली जाए तो व्यक्ति और समाज दोनों का आर्थिक कल्याण बढ़ेगा। आपके मन में यह प्रश्न उठ सकता है कि व्यक्तिगत उत्पादकों और विक्रेताओं के निजी लाभ से समाज का आर्थिक कल्याण कैसे संबंधित है। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि जब किसी वस्तु के उत्पादन व विक्रय से होने वाले लाभों का अन्य व्यक्तियों को पता चलता है तो वे भी ऐसा लाभ प्राप्त करने की ओर आकर्षित होते हैं। इससे बाज़ार में नये उत्पादक आ जाते हैं। परिणामस्वरूप उत्पादकों की संख्या बढ़ती जाती है और उनमें प्रतिस्पर्धा तीव्र होती जाती है। इस प्रतिस्पर्धा से समाज को होने वाले लाभों की आप परिकल्पना कर सकते हैं। प्रत्येक उत्पादक दूसरों से अधिक बिक्री करना चाहेगा और इस प्रक्रिया में अपनी उत्पादन लागत को न्यूनतम कर देगा। इससे अधिक श्रम विभाजन, बड़े पैमाने पर उत्पादन व कुल उत्पादन अधिक होगा तथा लागत व कीमतें कम होंगी और ये ही सब समाज को होने वाले लाभ हैं। यही कारण है कि अर्थशास्त्री पूर्ण प्रतियोगिता को एक आदर्श बाज़ार स्थिति मानते थे।

बाज़ार में यदि प्रतियोगिता घटती जाए तो हम एकाधिकार की ओर अग्रसर होते हैं और ऐसी स्थिति में ऊपर बताये गये लाभों को प्राप्त करना असंभव होता है। यदि प्रतिस्पर्धा का भय न हो या ये कम हो जाए जैसा कि एकाधिकार में होता है तो यह संभव है कि उत्पादक अधिक श्रम विभाजन और अधिक उत्पादन आदि के लिए बाध्य न हों और इस कारण लागत व कीमत कम न हों। इस प्रकार जब हम प्रतियोगी बाज़ार से एकाधिकार बाज़ार की ओर अग्रसर होते हैं तो निर्बाध अर्थव्यवस्था के कारण मिलने वाले लाभ लुप्त होने लगते हैं।

अर्थशास्त्री कभी-कभी यह भी कहते हैं कि एकाधिकारी एक असामान्य प्राणी होता है और यह संभव है कि वह केवल लाभ के उद्देश्य से प्रेरित न हो। विवशता न होने पर

भी संभव है कि इसकी इच्छा अधिक और बड़े पैमाने पर उत्पादन करने की हो। बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से धन, पूंजी आदि पर अधिक प्रभुत्व होगा। इस प्रकार यदि एक व्यक्ति आर्थिक साधनों पर अधिकाधिक प्रभुत्व में दिलचस्पी रखता है तो वह निवेश पर प्रतिफल की दर के आधार की बजाय कुल आय के आधार पर उत्पादन के स्तर को बढ़ा सकता है।

आप यह पूछ सकते हैं कि क्या कोई उत्पादक उत्पादन लागत को ध्यान में रखे बिना अपनी कुल आय को अधिकतम कर सकता है? वास्तव में एक एकाधिकारी अपनी निवल (net) एकाधिकार आय को अधिकतम करने का प्रयत्न करता है न कि कुल आय को। इस प्रयत्न में वह लागत का ध्यान रखता है और इसके लिए वह नवीन प्रक्रियाओं (innovations) को लाता और प्रौद्योगिकीय (technological) परिवर्तन करता है।

प्रौद्योगिकीय परिवर्तन क्या है?

उत्पादन करने की विभिन्न तकनीकें एक जैसी कार्यकुशल नहीं होतीं। उदाहरण के लिए खाना पकाने में प्रयोग की गई लकड़ी की लागत मिट्टी के तेल की लागत से भिन्न होती है। इसी प्रकार कोयला एक तरह से बेहतर है तो गैस किसी दूसरी तरह से बेहतर है और बिजली किसी अन्य तरह से। एक विवेकशील रसोइया इनमें से उसका प्रयोग करेगा जिससे लागत कम हो। इसी प्रकार प्रत्येक उत्पादन क्रिया में उत्पादन की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करने पर उत्पादन लागतें भिन्न-भिन्न होती हैं। कोई भी विवेकशील उत्पादक वह तकनीक अपनाएगा जिससे लागत न्यूनतम हो।

एकाधिकारी, उत्पादन प्रणाली में इस प्रकार परिवर्तन चाहेगा कि उसकी लागत कम से कम हो जिससे कि वह बाज़ार में विशेष प्रतिष्ठा और आर्थिक शक्ति अनुभव कर सके। मुख्य बात यह है कि अन्य उत्पादकों की भांति एकाधिकारी को अधिकतम लाभ की इच्छा तो होती ही है लेकिन इसके साथ उसके कुछ अन्य उद्देश्य भी होते हैं।

एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न होने के विभिन्न कारण हो सकते हैं। प्राकृतिक एकाधिकार एक छोटे भौगोलिक क्षेत्र में किसी खनिज पदार्थ के निकालने के अधिकार के कारण हो सकता है (जैसे सोना) और उस छोटे क्षेत्र में अधिक उत्पादकों का यह काम करना अर्थहीन होगा। ऐसे ही पीने के पानी की पूर्ति करने के लिए पाइपों का जाल सा बिछाना पड़ता है। यदि विभिन्न उत्पादक यह काम करें तो एक ही जगह पर विभिन्न उत्पादकों के पाइप बिछाये जाएंगे जिससे बहुत अधिक अपव्यय होगा।

कुछ एकाधिकार एकस्व अधिकार (patent rights) या अन्य कानूनी संरक्षणों के कारण उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी सरकार विशेष कंपनियों को विशेष क्षेत्र में व्यापार करने का एकमात्र अधिकार प्रदान कर देती है। इससे एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और अंत में प्रौद्योगिकीय प्रगति, नवीन प्रक्रियाओं के विकास या नयी वस्तु के उत्पादन से भी एकाधिकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह संभव है कि एक विशेष फर्म या उद्यमी एक विशेष वस्तु के उत्पादन के लिए ऐसी प्रणाली का विकास कर लें जिसका किसी अन्य को पता न हो और इस कारण वह एकाधिकारी बन जाए।

एकाधिकार के आविर्भाव के कारण कुछ भी हों, उनका कायम रहना उन स्थितियों से हटना है जिन्हें पूर्ण प्रतियोगिता समाज के कल्याण के लिए आदर्श समझती थी। एकाधिकारी के पक्ष में एक तर्क अवश्य है। एकाधिकारी द्वारा नवीन प्रक्रियाओं को लाना व प्रौद्योगिकीय परिवर्तन करना समाज के लिए लाभदायक है जो लाभ पूर्ण प्रतियोगिता में आसानी से उपलब्ध नहीं होते। यह स्मरणीय है कि नवीन प्रक्रिया को लाना बहुत खर्चीला होता है और इसलिए इसमें बहुत जोखिम होता है जिसे एकाधिकारी तो उठा सकता है लेकिन शायद इसे एक प्रतियोगी न उठा सके। इसका कारण यह है कि पूर्ण प्रतियोगिता में एक उत्पादक का बाज़ार के एक नगण्य भाग पर नियंत्रण होता है और दीर्घकाल में उसे केवल सामान्य लाभ प्राप्त होते हैं। ऐसी स्थिति में वह नवीन प्रक्रिया पर बहुत अधिक साधन खर्च नहीं कर सकता। अतः हम कह सकते हैं कि एकाधिकार कोई अमिश्रित बुराई नहीं है। यद्यपि एकाधिकारी के पास कीमत निर्धारण और क्रेताओं के शोषण करने की क्षमता है, लेकिन जब वह बड़े पैमाने पर उत्पादन, श्रमविभाजन और प्रौद्योगिकी के विकास के लिए कार्य करता है तो यह संभव है कि वह वस्तु की ऐसी कीमत पर पूर्ति कर सके जो पूर्ण प्रतियोगिता की

स्थिति में प्रचलित कीमत से कम हो। लेकिन क्या एकाधिकारी इस दिशा में कार्य करेगा? एकाधिकार बाज़ार की संरचना में ऐसा कुछ निहित नहीं है जिससे यह लगे कि वह अवश्य ही इस दिशा में कार्य करेगा।

क्या एकाधिकार के कारण साधनों का दुराबंटन होगा?

क्या एकाधिकार में साधनों के अनुकूलतम आबंटन के कारण विकृत एकाधिकार के संसाधनों का नियतन (allocation of resources) होता है। यह स्मरणीय है कि एकाधिकार के अंतर्गत साधनों के अनुकूलतम आबंटन को विकृत करने की प्रवृत्ति होती है। पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादन के अनुकूलतम स्तर पर कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है। ऐसी स्थिति में विक्रेता क्रेताओं को नुकसान पहुंचा कर कोई लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। सभी विक्रेता अनुकूलतम स्तर पर उत्पादन करते हैं इसलिए साधनों के एक विक्रेता से दूसरे की ओर जाने की प्रवृत्ति नहीं होगी और सभी ओर अनुकूलतम उत्पादन की स्थिति होगी। एकाधिकार में कीमत कभी भी सीमान्त लागत के बराबर नहीं होती बल्कि हमेशा उससे अधिक होती है। अधिकतम लाभ वाले संतुलन के लिए एकाधिकार में भी सीमान्त आय और सीमान्त लागत का बराबर होना आवश्यक है। क्योंकि इसमें औसत आय (यानि कीमत) सीमान्त आय से हमेशा अधिक होती है इसलिए कीमत अपने आप ही सीमान्त लागत से अधिक होगी। साधनों का सर्वोत्तम आबंटन केवल तब होता है जब कीमत सीमान्त लागत के बराबर हो न कि वह सीमान्त लागत से अधिक हो। अतः एकाधिकार में साधनों का आबंटन अनुकूलतम नहीं होता है अर्थात् साधनों का दुराबंटन होता है।

क्योंकि एकाधिकार में साधनों का दुराबंटन होता है इसलिए सरकार को एकाधिकार को रोकने के लिए आर्थिक उपाय खोजने पड़ते हैं। सरकार एकाधिकारी द्वारा किये जाने वाले कुल विनियोग पर पाबंदियां लगा सकती है। सरकार कीमत को नियंत्रित कर सकती है या उसके द्वारा बाज़ार को प्रभावित करने के लिए दिए जा रहे अनाप-शनाप विज्ञापनों पर रोक लगा सकती है। क्योंकि एकाधिकारी को अतिरेक तो मिलता ही है इसलिए सरकार उसे कीमत पर रोक लगाने के लिए मजबूर करके उसके अतिरेक को घटा सकती है जिससे समाज का कल्याण होगा। यह संभव है कि सरकार के हस्तक्षेप के कारण वह शोध या नवीन प्रक्रिया आदि में रुचि न ले जिससे कि उत्पादन की लागत ऊंची रहे या वह अधिक उत्पादन न करे जिससे अर्थव्यवस्था व रोज़गार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

14.3 एकाधिकारी बाज़ार (Monopolistic Market) में संतुलन

अब यह प्रश्न विचाराधीन है कि एकाधिकार में संतुलन कैसे निर्धारित होता है?

एकाधिकारी बाज़ार को प्रभावित करने की स्थिति में होता है इसलिए वह कीमत निर्धारक होता है, कीमत स्वीकारक नहीं। वह बाज़ार में प्रचलित कीमत को स्वीकार करने के लिए मजबूर नहीं है। वह अपने प्रभाव के अनुसार कीमत को बदल सकता है। उसे अन्य वस्तुओं की कीमतों की परवाह नहीं करनी होती क्योंकि सिद्धांततः उसकी वस्तु की कोई स्थानापन्न वस्तु नहीं होती। वास्तव में इसी कारण वह कीमत को प्रभावित कर सकता है। जब हम यह कह सकते हैं कि एकाधिकारी कीमत निर्धारित कर सकता है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह जितना चाहे उतना उत्पादन कर सकता है और जिस कीमत पर चाहे उसे बेच सकता है। ऐसा करना असंभव है। यदि वह कीमत निश्चित करने का निर्णय लेता है तो इस कीमत पर जितनी मात्रा बिक सकती है उतना ही उत्पादन करेगा। दूसरी ओर यदि वह उत्पादन निश्चित करता है तो उतना उत्पादन जिस कीमत पर भी बिके उसे स्वीकार करनी होगी। इस प्रकार एकाधिकारी एक शक्तिशाली उत्पादक होने पर भी उत्पादन के स्तर और कीमत दोनों को निर्धारित नहीं कर सकता। या तो वह उत्पादन के बारे में निर्णय ले सकता है और क़ीमत संतुलन की आवश्यकता के द्वारा निर्धारित हो जाएगी या वह कीमत निर्धारित कर सकता है और उत्पादन की मात्रा मांग की स्थिति द्वारा निर्धारित हो जाएगी।

लेकिन संतुलन कीमत कहां निर्धारित होगी? जैसा कि पूर्ण प्रतियोगिता में था यहां भी समय तत्व बहुत महत्वपूर्ण है। समय तत्व के आधार पर एकाधिकार में भी अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में भेद किया जाता है। पहले हम

अल्पकालीन संतुलन का अध्ययन करेंगे।

14.3.1 अल्पकाल में

एकाधिकार में सीमान्त लागत वक्र पूर्ति वक्र नहीं होगा। जैसा पहले बताया जा चुका है पूर्ति वक्र विभिन्न कीमतों पर पूर्ति की जाने वाली मात्राओं को दर्शाता है। एकाधिकार में कीमत सीमान्त लागत के बराबर नहीं होती। यदि कीमत सीमान्त लागत के बराबर है तो एकाधिकारी इससे संतुष्ट नहीं होगा। इसलिए उसका सीमान्त लागत वक्र पूर्ति वक्र नहीं होगा।

एकाधिकारी वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है; इसलिए उसकी मुख्य दिलचस्पी बाज़ार में उसके सामने दी हुई मांग वक्र में होगी। यह पहले बताया जा चुका है कि कीमत के संबंध में एकाधिकारी की शक्तियां असीमित नहीं होती। अपने सामने दी हुई मांग वक्र की सीमाओं के अधीन ही वह कीमत मांग सकता है। मांग वक्र की ढलान जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक परिवर्तन वह कीमत में कर सकता है। दूसरी ओर कम ढलान वाले मांग वक्र की स्थिति में वह कम परिवर्तन कर सकता है। इन सीमाओं से बाहर वह कोई कीमत नहीं मांग सकता।

इस प्रकार एकाधिकारी कीमत पर प्रभाव के निर्धारण में एक महत्वपूर्ण कारक मांग की लोच होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि जब मांग की लोच शून्य या एक से कम हो तभी एकाधिकारी ऊंची कीमत निर्धारित कर सकेगा। इस बात को पूरी तरह समझने के लिए चित्र 14.1 देखिए जिसमें मांग वक्र दिखाया गया है।

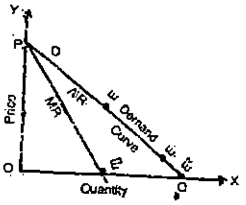

ऊपर दिए गए चित्र से स्पष्ट है कि जब तक एकाधिकारी का संतुलन E बिन्दु से ऊपर किसी बिन्दु पर निर्धारित होता है तब तक जो कीमत वह लेगा वह ऊंची होगी और वस्तु की मांग की लोच भी एक से अधिक होगी। वास्तव में, यदि हम नीचे की ओर किसी बिन्दु जैसे E पर आयें, तो संतुलन कीमत बहुत कम होगी और मांग की लोच भी एक से कम होगी। इस प्रकार यह कहना ठीक नहीं होगा कि एकाधिकारी केवल तभी ऊंची कीमत वसूल कर सकता है जब मांग बेलोच हो। चित्र 14.1 देखिए, इसमें E2 बिन्दु पर सीमान्त आय ऋणात्मक और संतुलन संभव नहीं होगा। वास्तव में E3 बिन्दु पर भी जहां कि सीमांत आय शून्य है, संतुलन संभव नहीं होगा क्योंकि इस बिन्दु पर संतुलन का अर्थ होगा कि एकाधिकारी की सीमान्त लागत शून्य है (संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर हो) जो कि एक हास्यास्पद स्थिति है।

अतः एकाधिकारी के संतुलन के निर्धारण के लिए सबसे अच्छी स्थिति वह है जिसमें मांग की लोच एक के बराबर हो या उससे अधिक हो परंतु इतना कम न हो कि वह शून्य या उसके आस पास हो जाए।

मांग वक्र और मांग की लोच के महत्व को जानने के बाद अब हम उस बात पर विचार करेंगे जो अल्पकाल में कीमत निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण है। एकाधिकारी ऐसी कीमत स्वीकार नहीं करेगा जिससे उसकी औसत परिवर्ती लागत भी पूरी न होती हो। यदि कीमत औसत परिवर्ती लागत से कम हो तो कुल आय कुल परिवर्ती लागत से कम होगी और एकाधिकारी वस्तु का उत्पादन करना नहीं चाहेगा। यदि कीमत औसत परिवर्ती लागत के बराबर है तो यह संभव है कि वह उत्पादन करता रहे। कीमत औसत कुल लागत से कम, अधिक या उसके बराबर हो सकती है। यदि कीमत औसत कुल लागत के बराबर है तो कुल आय कुल लागत के बराबर होगी और एकाधिकारी को केवल सामान्य लाभ मिलेंगे। यदि कीमत औसत कुल लागत से अधिक है तो कुल आय कुल लागत से अधिक होगी और उसे असामान्य लाभ मिलेंगे। यदि कीमत औसत

कुल लागत से कम है तो कुल आय कुल लागत से कम होगी और उसे हानि होगी।

यह ध्यान रखें कि औसत और सीमान्त लागत वक्रें जो संतुलन के निर्धारण में सहायक होते हैं वे अल्पकाल से संबंधित होने चाहिए। चित्र 14.2 में संतुलन की वह स्थिति दिखाई गई है जिसमें एकाधिकारी को असामान्य लाभ मिल रहे हैं।

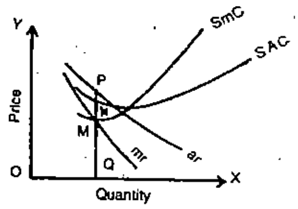

चित्र 14.3 में संतुलन की वह स्थिति, जिसमें हानि हो रही है, दिखाई गई है।

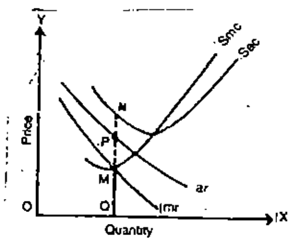

चित्र 14.4 में संतुलन की वह स्थिति जिसमें सामान्य लाभ मिल रहे हैं, दिखायी गई है।

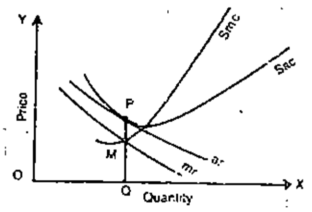

यह ध्यान रखें, जैसा कि इकाई 12 में बताया गया था, संतुलन की किसी भी स्थिति के लिए यह आवश्यक है कि सीमान्त लागत वक्र सीमांत आय वक्र को नीचे से काटे अन्यथा संतुलन स्थिर नहीं होगा। इसके अतिरिक्त अल्पकालीन संतुलन केवल अल्पकाल के लिए होता है और समय के साथ उसे बदलना चाहिए। इस परिवर्तन की संभावना के कारण एकाधिकारी शक्तिशाली होने के बावजूद हानि या केवल सामान्य लाभ की स्थिति को सहन कर लेगा।

14.3.2 दीर्घकाल में

एकाधिकार में अल्पकालीन संतुलन का विश्लेषण करते हुए यह बताया था कि इसमें हानि या सामान्य लाभ की स्थिति संभव है। दीर्घकाल में एकाधिकारी द्वारा हानि उठाना या केवल सामान्य लाभ से संतुष्ट होना संभव नहीं है। एकाधिकारी अपनी कीमत को प्रभावित करने की शक्ति का प्रयोग दीर्घकाल में अवश्य करेगा ताकि वह उत्पादन लागत प्राप्त करने के साथ-साथ अतिरेक भी अर्जित कर सके।

एकाधिकार में वह कीमत कैसे निर्धारित होती है जो एकाधिकारी की इस शक्ति को प्रतिबिम्बित करती है। यह प्रश्न अल्फ्रेड मार्शल ने उठाया था और उन्होंने ही इसका उत्तर देने का प्रयास किया। उसके अनुसार दीर्घकाल में एकाधिकारी की संतुलन कीमत

वह होगी जिस पर उसे अधिकतम शुद्ध एकाधिकारी आय प्राप्त होती है। उत्पादन के एक स्तर से संबद्ध शुद्ध एकाधिकारी आय कुल आय और कुल लागत का अंतर है। चित्र 14.5 को देखिए जिसमें OQ उत्पादन और PQ कीमत पर कुल आय OQ×PQ होगी।

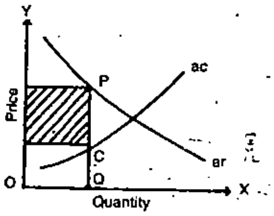

दूसरी ओर, OQ उत्पादन की औसत लागत QC है, अतः कुल लागत OQ×QC होगी। इन दोनों का अंतर यानि OQ×PQ – OQ×QC शुद्ध एकाधिकारी आय होगी। (यह चित्र का छायित (shaded) क्षेत्र है) मार्शल का मत था कि जहां भी यह अंतर अधिकतम होगा वहीं एकाधिकारी दीर्घकालीन संतुलन में होगा।

अधिकतम शुद्ध एकाधिकारी आय की स्थिति का पता कैसे लगाया जाए? मार्शल का कहना था कि एकाधिकारी परीक्षण-प्रणाली द्वारा इसका पता लगाता है। चित्र 14.6 देखिए इसमें उत्पादन के विभिन्न स्तरों और प्रत्येक स्तर की कीमत और औसत लागत पर विचार किया जा सकता है और कुल आय और कुल लागतों के अंतर मालूम किये जा सकते हैं। उत्पादन का वह स्तर जिस पर यह अंतर अधिकतम है न केवल यह दर्शाता है कि कितना उत्पादन किया जाना चाहिए बल्कि यह भी दर्शाता है कि यह बाज़ार में किस कीमत पर बिकेगा। इस प्रकार उत्पादन का स्तर और उसकी कीमत जिस पर शुद्ध एकाधिकारी आय अधिकतम होंगे निर्धारित हो जाएंगी।

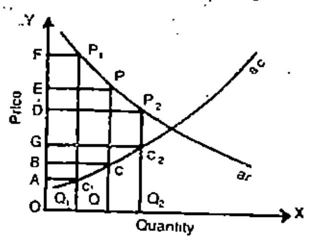

उत्पादन के OQ_1, OQ_2 और OQ_3 स्तरों के लिए शुद्ध एकाधिकारी आय क्रमशः AC_1 P_1 F, BCPE और GC_2P_2D हैं। क्योंकि आयत BCPE का क्षेत्रफल सबसे बड़ा है इसलिए एकाधिकारी OQ उत्पादन करेगा और इसे PQ कीमत पर बेचेगा।

मार्शल के बाद के अर्थशास्त्रियों का कहना है कि एकाधिकारी का दीर्घकालीन संतुलन सीमांत आय और सीमांत लागत वक्रों के प्रतिच्छेद बिन्दु (point of intersection) द्वारा निर्धारित होता है। इसे चित्र 14.7 में दिखाया गया है।

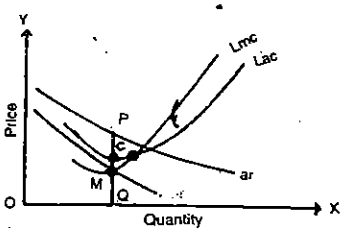

इस चित्र में यह दिखाया गया है कि सीमान्त आय व सीमान्त लागत उत्पादन के जिस स्तर पर बराबर हैं वह ऐसी कीमत पर बेचा जाता है जो औसत लागत से अधिक है। इसलिए एकाधिकारी को अतिरेक अवश्य प्राप्त होगा। इतना ही नहीं, क्योंकि जहां सीमान्त आय और सीमान्त लागत बराबर होती है वहां लाभ अधिकतम होता है, अतः

एकाधिकारी का अतिरेक भी अधिकतम होगा।

यदि अल्पकाल में सीमान्त आय और सीमान्त लागत वक्रों के प्रतिच्छेद बिन्दु पर कीमत औसत लागत से अधिक है और एकाधिकारी को असामान्य लाभ प्राप्त होते हैं तो वह दीर्घकाल में भी संतुलन की इसी स्थिति पर रहना पसंद कर सकता है। यदि वह ऐसा करता है तो अल्पकालीन संतुलन दीर्घकालीन संतुलन भी बन जाएगा। वह कोई परिवर्तन नहीं चाहेगा, ऐसा करने के लिए उस पर कोई मजबूरी नहीं है। चित्र 14.8 में एकाधिकारी का दीर्घकालीन संतुलन दिखाया गया है।

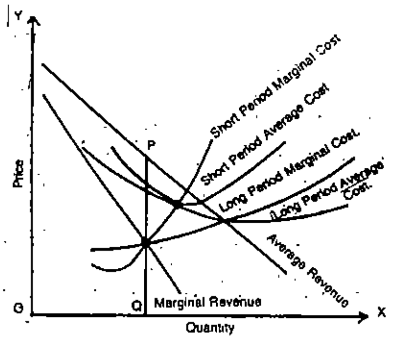

बोध प्रश्न क

1 प्राकृतिक एकाधिकार व सामान्य एकाधिकार में भेद कीजिए।

....

....

....

2 एकाधिकार के अंतर्गत अल्पकालीन संतुलन और दीर्घकालीन संतुलन में अंतर बताइये।

....

....

....

3 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) लाभ अधिकतम करने के अतिरिक्त एकाधिकारी के अन्य उद्देश्य भी होते हैं।

ii) एकाधिकार में अधिकतम लाभ वाले संतुलन के लिए सीमान्त लागत और सीमान्त आय का बराबर होना जरूरी है।

iii) एकाधिकारी कीमत निर्धारक होते हैं, कीमत स्वीकारक नहीं।

iv) एकाधिकारी वह कीमत स्वीकार नहीं करेगा जो औसत परिवर्ती लागत को पूरा न करे।

14.4 एकाधिकार में कीमत विभेद

कीमत विभेद का अर्थ है एक ही वस्तु की अलग-अलग बाज़ारों में व अलग-अलग क्रेताओं से अलग-अलग कीमत लेना। ऐसा व्यवहार असामान्य नहीं है। डाक्टर और वकील अलग-अलग ग्राहकों से अलग-अलग फीस ले सकते हैं। इसी प्रकार एक उत्पादक कभी-कभी एक बाज़ार में नीची कीमत लेता है और दूसरे में ऊंची कीमत लेता है। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में बाज़ार पाटना (dumping) कीमत विभेद का एक उदाहरण है।

कीमत विभेद के लिए दो शर्तों का पूरा होना आवश्यक है, ये हैं: (1) कम कीमत पर

खरीदी गयी वस्तु की मात्रा की ऊंची कीमत पर पुनः बिक्री नहीं होनी चाहिए। और (2) ऊंची कीमत वाले बाज़ार से क्रेताओं की मांग का नीची कीमत वाले बाज़ार में स्थानांतरण नहीं होना चाहिए। यदि ये शर्तें पूरी नहीं होतीं तो कीमत विभेद संभव नहीं है। यदि सस्ती कीमत पर खरीदने वाले वस्तु की पुनः बिक्री उन लोगों को करते हैं जिन्हें ऊंची कीमत पर उसे खरीदना पड़ता है तो वे ऊंची कीमत देने को तैयार क्यों होंगे। ऐसी स्थिति में कीमत विभेद संभव नहीं है। इसी प्रकार ऐसे बाज़ार के क्रेता जहां कीमत ऊंची है यदि अपनी मांग का स्थानांतरण कम कीमत वाले बाज़ार में कर सकते हैं तो ऊंची कीमत वाला बाज़ार खत्म हो जाएगा और सब जगह एक ही कीमत प्रचलित होगी।

'पुनः बिक्री नहीं' और 'मांग का स्थानांतरण नहीं' ये दो कीमत विभेद के लिए आवश्यक शर्तें हैं लेकिन ये कीमत विभेद को प्रेरित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। वास्तव में एक उत्पादक एक वस्तु की विभिन्न कीमतें ले इसके लिए उसे आश्वासन होना चाहिए कि ऐसा करने से वह अपने लाभों को अधिकतम कर सकेगा।

लाभों को अधिकतम करने के लिए सीमान्त लागत का सीमान्त आय के बराबर होना जरूरी है। एक बाज़ार के स्थान पर यदि अब दो बाज़ार हैं तो यह समानता कैसे स्थापित होगी। क्या दो सीमान्त लागत वक्र और दो सीमान्त आगम वक्र होंगे? वास्तव में, सीमान्त लागत वक्र तो एक ही होगा लेकिन जितने बाज़ार होंगे उतने ही सीमान्त आय वक्र होंगे। दो बाज़ारों की स्थिति में दो सीमान्त आय वक्र होंगे अर्थात् प्रत्येक बाज़ार का एक वक्र।

पहले हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि सीमान्त लागत वक्र एक ही क्यों होगा। उत्पादक प्रत्येक बाज़ार में अलग-अलग उत्पादन नहीं करेगा क्योंकि ऐसा करने से उसे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने से प्राप्त होने वाली बचतों से वंचित होना पड़ेगा। वह उत्पादन एक ही जगह करेगा और फिर उसे विभिन्न बाज़ारों में वितरित कर देगा। इस प्रकार कुल उत्पादन का एक ही सीमान्त लागत वक्र होगा।

लेकिन विभिन्न बाज़ारों में मांग वक्र अलग-अलग होंगे। विभिन्न बाज़ारों में मांग वक्र एक जैसे नहीं हैं अर्थात् एक ही कीमत पर उनकी लोच एक जैसी नहीं है। इसी आधार पर तो एकाधिकारी अलग-अलग बाज़ारों में अलग-अलग कीमतें ले सकेगा। अतः अलग-अलग बाज़ारों में वस्तु की मांग की लोच अलग-अलग होती है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक बाज़ार में औसत आय वक्र भिन्न होता है क्योंकि मांग वक्र ही औसत आय वक्र कहलाता है। इस आधार पर प्रत्येक बाज़ार में सीमान्त आय वक्र भी भिन्न होगा। हम दो बाज़ारों की स्थिति का अध्ययन कर रहे हैं इसलिए दो सीमान्त आगम वक्र होंगे, प्रत्येक बाज़ार का एक सीमान्त आय वक्र। अतः दो बाज़ारों की स्थिति में एक सीमान्त आय वक्र और दो सीमान्त आय वक्र होंगे। ऐसी स्थिति में सीमान्त लागत और सीमान्त आय कैसे बराबर होंगी? यह समझने के लिए हम अपने अध्ययन को विभिन्न चरणों में बांट देते हैं जो इस प्रकार हैं:

चरण 1: पहले हम कुल उत्पादन का वह स्तर निर्धारित करते हैं जिस पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होगी। लेकिन दो बाज़ारों के कुल उत्पादन की सीमान्त आय कैसे मालूम की जाए। इसके लिए हम दोनों बाज़ारों के सीमान्त आय वक्रों का योग कर देते हैं और इस प्रकार जो वक्र आता है वह कुल उत्पादन यानि दोनों बाज़ारों का सम्मिलित सीमान्त आय वक्र होगा।

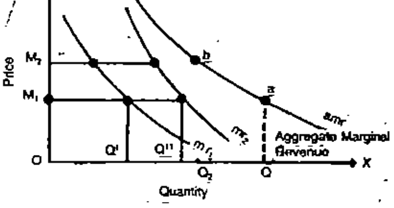

किसी एक सीमान्त आय पर बाज़ार 1 और बाज़ार 2 की मांग मालूम करके उन्हें जोड़ देते हैं और इस योग को दिए हुए सीमान्त आगम के आधार पर एक बिन्दु द्वारा दर्शाते हैं। चित्र 14.9 को देखिए जिसमें OM सीमान्त आय पर बाज़ार 1 में मांग

OQ′ है और इसी सीमान्त आय पर बाज़ार 2 में मांग OQ है। OQ′ और OQ′ का योग OQ_1 और ये OM_1 सीमान्त आय पर पूरे बाज़ार की मांग है। यह स्थिति बिन्दु "a" दर्शाता है। इसी प्रकार OM_2 सीमान्त आय पर कुल उत्पादन OQ_2 है यह "b" बिन्दु दर्शाता है। इसी प्रकार हमें अन्य बिन्दु प्राप्त हो सकते हैं। इन a, b... आदि बिन्दुओं को मिलाने से एक वक्र बन जाएगा जो दोनों बाज़ारों की कुल मांग के विभिन्न स्तरों पर सीमान्त आगम को दर्शाता है।

चरण 2: समस्त सीमान्त आय वक्र सीमान्त लागत वक्र को M बिन्दु पर काटता है। चित्र 14.10 देखिए।

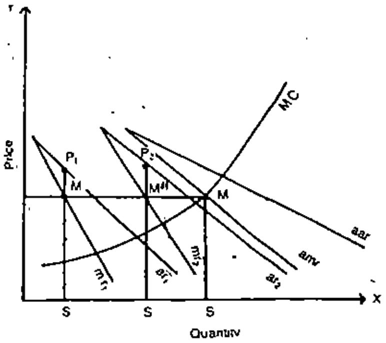

चरण 3: एक बार दोनों बाज़ारों के लिए कुल उत्पादन का निर्धारण हो जाने पर, इसका दोनों बाज़ारों में उनकी मांग वक्रों की सीमाओं के अन्दर केवल वितरण करना है।

चरण 4: समस्त सीमान्त आय वक्र और सीमान्त लागत वक्र के प्रतिच्छेद बिन्दु से हम एक समस्तर सरल रेखा खींचते हैं। यह रेखा बाज़ार 1 और बाज़ार 2 के सीमान्त आय वक्रों को क्रमशः M′ और M″ बिन्दुओं पर काटती है।

चरण 5: M_1 बिन्दु से हम X-अक्ष पर एक लम्ब खींचते हैं और इसे ऊपर की ओर बढ़ाते हैं। यह बाज़ार 1 के मांग वक्र को P_1 बिन्दु पर और X-अक्ष को S_1 बिन्दु पर काटता है। इसी प्रकार M″ बिन्दु से एक लम्ब खींचते हैं जो बाज़ार 2 के मांग वक्र को P_2 और X-अक्ष को S_2 पर काटता है।

OS_1 एकाधिकारी द्वारा बाज़ार 1 में P_1S_1 कीमत पर पूर्ति की गई मात्रा है और OS_2 बाज़ार 2 में P_2S_2 पर पूर्ति की गई मात्रा। बाज़ार 1 में सीमान्त आय $M'S'_1$ है जो सीमान्त लागत MS के बराबर है। M बिन्दु से एक समस्तर रेखा खींचकर हमने यह सुनिश्चित कर लिया है कि $M'S_1$=MS यानि बाज़ार 1 में सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर है और बाज़ार 2 में $M''S_2$=MS यानि बाज़ार 2 की सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर है। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि बाज़ार 1 में P_1S_1 कीमत बाज़ार 2 में P_2S_2 कीमत से भिन्न है। तभी तो यह कीमत विभेद की स्थिति है। एक ही वस्तु है, एक ही उत्पादक है लेकिन दो भिन्न कीमतें हैं क्योंकि इन बाज़ारों में मांग वक्रों की लोच भिन्न हैं।

14.5 एकाधिकार और आर्थिक कुशलता : पूर्ण प्रतियोगिता से तुलना

एकाधिकार में कीमत सीमान्त लागत से अधिक होती है। मान लीजिए एक उद्योग का जिसमें बहुत सी प्रतिस्पर्धी फर्में हैं, एकाधिकरण हो जाता है। इस स्थिति में प्रतियोगी उद्योग का मांग वक्र एकाधिकारी के लिये मांग वक्र हो जाएगा। यह मांग वक्र नीचे की ओर आता हुआ होगा।

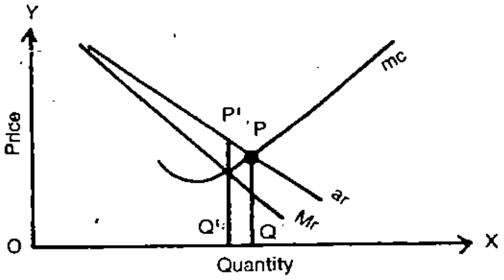

यह मांग वक्र उसका औसत आय वक्र है और इसके अनुरूप एक सीमान्त आगम वक्र है। यह भी जैसा आपने इकाई 12 में पढ़ा था नीचे की ओर आता हुआ है और औसत आय वक्र के नीचे स्थित है। एकाधिकारी का सीमान्त लागत वक्र वही हो सकता है जो प्रतियोगी उद्योग का था या उससे भिन्न हो सकता है। यदि यह भिन्न है तो एकाधिकारी के संतुलन के लिए इसका और ही अर्थ होगा। यदि यह वही है जैसा कि चित्र 14.11 में दिखाया गया है, तो उस बिन्दु पर जहां एकाधिकारी की सीमान्त आय उसकी सीमान्त लागत के बराबर है यानि संतुलन बिंदु पर, तब एकाधिकारी का उत्पादन प्रतियोगी उद्योग के उत्पादन से कम होगा क्योंकि प्रतियोगी उद्योग का संतुलन P बिन्दु पर होगा जहां कीमत सीमान्त लागत के बराबर है। एकाधिकारी कीमत OP' प्रतियोगी उद्योग की कीमत QP से अधिक होगी।

ऊंची एकाधिकारी कीमत और कम उत्पादन (पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में) इस कारण है कि हमने एकाधिकारी के सीमान्त लागत वक्र को वही मान लिया है जो प्रतियोगी उद्योग का था।

प्रतियोगिता के स्थान पर एकाधिकार की स्थिति होने पर सीमान्त लागत निम्नलिखित कारणों से भिन्न हो सकती है।

1) पूर्ण प्रतियोगिता में उत्पादकों की संख्या बहुत बड़ी होती है, प्रत्येक उत्पादक कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा भाग उत्पादित करता है, इसलिये उत्पादन बहुत छोटे पैमाने पर होता है। एकाधिकार में उत्पादन अधिक होता है इसलिये उत्पादन बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है।

2) एकाधिकार में उत्पादन व बिक्री के लिये केन्द्रित व्यवस्था होती है जिससे बचत होती है और एकाधिकारी की उत्पादन लागत और कम हो जाती है।

3) एकाधिकारी की नवीन प्रक्रिया को लाने की सामर्थ्य पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में अधिक होती है। वह अधिक उत्पादन करने के लिये बेहतर उत्पादन प्रणाली अपना सकता है और लागत को और कम कर सकता है।

इस प्रकार यह जरूरी नहीं है कि एकाधिकार में हमेशा कीमत अधिक और उत्पादन कम होगा।

कुछ अन्य कारणों से भी यह संभव है कि एकाधिकारी कीमत पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत से अधिक न हो।

एकाधिकारी को यह भय हो सकता है कि यदि उसने ऊंची कीमत रखी तो इससे जो अतिरेक अर्जन होगा वह संभावित उत्पादकों को प्रेरित कर सकता है कि वे भी अगर वैसी ही वस्तु की नहीं तो उससे मिलती जुलती वस्तु का उत्पादन करें। ऐसी स्थिति में एकाधिकारी की अपनी बिक्री और लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसलिये एकाधिकारी अपनी वस्तु के लिये अधिक कीमत प्राप्त करने को टाल सकता है। दूसरे एकाधिकारी के साधनों पर नियंत्रण के कारण उसका नाम और प्रतिष्ठा हो सकती है जिसे वह खोना या खराब करना नहीं चाहेगा। ऊंची कीमत रखने से उसके बारे में लालची होने की राय बन सकती है जिससे उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुंच सकती है। वह ग्राहकों का शोषक न कहलाए इसलिये भी वह कीमत नीची रख सकता है। तीसरे, यदि एकाधिकारी ग्राहकों के शोषण करने की प्रवृति दिखाता है तो इससे सरकार कीमतों का नियमन करने के लिये हस्तक्षेप करने को बाध्य हो सकती है। इस प्रकार एकाधिकारी कीमत प्रतियोगी कीमत से अधिक भी हो सकती है और उसके बराबर या उससे कम भी हो सकती है। इसी तरह एकाधिकारी उत्पादन प्रतियोगिता के अन्तर्गत उत्पादन के स्तर से कम हो सकता है, अधिक हो सकता है और उसके बराबर भी हो सकता है। इनमें से कुछ भी संभव है। पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में यदि एकाधिकारी कीमत कम और उत्पादन अधिक भी है तब भी क्या यह कहा जा सकता है कि एकाधिकार बाज़ार का एक कार्यकुशल स्वरूप है? नहीं, ऐसा कहना गलत होगा और इस उत्तर के दो कारण हैं।

पहले, क्योंकि एकाधिकारी कीमत हमेशा सीमान्त लागत से अधिक होती है इसलिये एकाधिकारी लाभ में ग्राहकों का शोषण तो अन्तर्निहित है। पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है इसलिये उत्पादक को कोई अतिरेक प्राप्त नहीं होता।

दूसरा, एकाधिकार में एक तकनीकी कमी होती है। अपूर्ण प्रतियोगिता के सभी स्वरूपों में (एकाधिकार को मिलाकर) संतुलन उस अवस्था में निर्धारित होता है जब औसत लागत वक्र गिर रहा होता है न कि तब जब वह ऊपर की ओर जा रहा हो। ऐसी स्थिति में सीमान्त लागत और सीमान्त आय की समानता अवश्य ही ऐसे बिन्दु पर होगी जो औसत लागत वक्र के न्यूनतम बिन्दु से बायीं ओर हो। इसलिये एकाधिकारी उत्पादन साधारणतया अनुकूलतम उत्पादन (औसत लागत के न्यूनतम बिन्दु पर होने वाला उत्पादन) से कम होगा। अतः औसत लागत जितनी हो सकती है उससे अधिक होती है और साधनों का अनुकूलतम उपयोग नहीं होता और जिस हद तक यह अनुकूलतम उपयोग नहीं होता उस हद तक साधनों का अपव्यय होता है।

14.6 एकाधिकार का विनियमन (Regulation of Monopoly)

एकाधिकारी की सीमान्त लागत से ऊंची कीमत प्राप्त करने की प्रवृति होती है इसलिये सरकार उपभोक्ताओं का शोषण रोकने के लिये एकाधिकारी कीमत का विनियमन कर सकती है। सरकार के ऐसा करने से क्या होगा इसे चित्र 14.12 में देखेंगे। एकाधिकारी P_1Q_2 कीमत ले रहा है। मान लीजिए सरकार उसे P_2Q_2 कीमत लेने को मजबूर करती है। यह कीमत पहली कीमत से कम है, इस पर उत्पादन OQ_2 पहली कीमत पर उत्पादन OQ_1 से अधिक और ये नयी विनियमित कीमत औसत लागत के बराबर है। इस कीमत पर कुल आय और कुल लागत बराबर है इसलिये एकाधिकारी को असामान्य लाभ यानि अतिरेक नहीं प्राप्त हो रहा है।

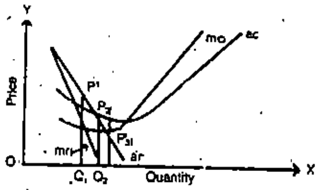

यह कीमत उपभोक्ताओं के हित में है फिर भी यह पूर्ण प्रतियोगिता जैसी स्थिति नहीं है। पूर्ण प्रतियोगिता में कीमत सीमान्त लागत के बराबर होती है लेकिन यहां कीमत सीमान्त लागत से अधिक है हालांकि एकाधिकारी को असामान्य लाभ नहीं मिल रहे हैं। सरकार के लिये यह संभव है कि वह कीमत को सीमान्त लागत के स्तर तक ले आए और कीमत P_3 बिन्दु पर निर्धारित कर दे। इस कीमत पर एकाधिकारी हमेशा हानि की स्थिति में रहेगा क्योंकि इस कीमत पर कुल आय कुल लागत से कम है। यदि एकाधिकारी की हानि को पूरा करने का कोई उपाय नहीं निकाला गया तो वह उत्पादन करना बंद कर सकता है। यदि सरकार यह चाहती है कि उपभोक्ता सीमान्त लागत से ऊंची कीमत न दें तो इसका एक मात्र तरीका यही है कि सरकार एकाधिकारी को आर्थिक सहायता (subsidy) प्रदान करे। लेकिन इससे अन्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। जब आर्थिक सहायता देने के लिये घाटा वित्तीयन (deficit financing) करना पड़ता है तो स्फीति (inflation) की स्थिति आ जाती है जिससे उपभोक्ताओं को अन्य रूप में हानि होती है। आर्थिक सहायता की व्यवस्था करों द्वारा करने पर भी उपभोक्ताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

बोध प्रश्न ख

1 कीमत विभेद से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

....

2 एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता में अंतर बताइये।

....

....

....

....

3 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत:

i) लाभों को अधिकतम करने के लिये सीमान्त आय और सीमान्त लागत का बराबर होना जरूरी है।

ii) विभिन्न बाज़ारों के मांग वक्र भिन्न होते हैं।

iii) एकाधिकार में कीमत सीमान्त लागत से कम होती है।

iv) एकाधिकारी उत्पादन साधारणतया अनुकूलतम उत्पादन से कम होता है।

v) क्योंकि एकाधिकारी की प्रवृत्ति सीमान्त लागत से ऊंची कीमत प्राप्त करने की होती है इसलिये सरकार एकाधिकारी कीमत का विनियमन कर सकती है।

4 निम्नलिखित विकल्पों में से उपयुक्त उत्तर चुनिए:

i) एकाधिकार के अंतर्गत कीमत

क) सीमांत उत्पादन लागत से अधिक होती है।

ख) सीमांत उत्पादन लागत से कम होती है।

ग) औसत उत्पादन लागत से अधिक होती है।

घ) औसत उत्पादन लागत से कम होती है।

ii) एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत आय और सीमांत लागत एक दूसरे के बराबर होती हैं

क) अनुकूलतम बिन्दु पर

ख) अनुकूलतम बिन्दु के बाद

ग) अनुकूलतम बिन्दु से पहले

घ) किसी भी बिन्दु पर

14.7 सारांश

पूर्ण प्रतियोगिता एक आदर्श है और एकाधिकारी जीवन की वास्तविकता है। वास्तविक जीवन में पूर्ण ज्ञान व पूर्ण गतिशीलता आदि नहीं होते और उत्पादक वास्तव में कीमत को प्रभावित करने में इतने असहाय नहीं होते जितना कि पूर्ण प्रतियोगिता में बताया गया है और न ही विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि एक विक्रेता का बाज़ार के एक नगण्य भाग पर ही नियंत्रण हो।

एकाधिकार और पूर्ण प्रतियोगिता दोनों में ही मांग और पूर्ति की शक्तियों की सहायता से संतुलन कीमत का निर्धारण होता है लेकिन दोनों बाज़ारों में इन शक्तियों की सापेक्षिक भूमिका अलग-अलग है। उदाहरण के लिये सीमान्त लागत वक्र जिसकी पूर्ण प्रतियोगिता में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका है, एकाधिकार में उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती। यह एकाधिकार में पूर्ति वक्र नहीं होता क्योंकि एकाधिकारी द्वारा ली गई कीमत सीमान्त लागत से अधिक होती है।

सीमांत लागत वक्र का उपयोग केवल यह है कि इससे इसके और सीमान्त आय वक्र के प्रतिच्छेद बिन्दु का पता लगता है। एकाधिकारी अपनी एकाधिकारी शक्ति का फायदा उठाते हुए ऐसी कीमत निर्धारित करना चाहता है जिससे उसकी शुद्ध एकाधिकारी आय अधिकतम हो। और ऐसी कीमत केवल वह होगी जिस पर सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर हो। इसलिये एकाधिकारी का संतुलन निर्धारित करने के लिए सीमान्त लागत आवश्यक है लेकिन यह उसका पूर्ति वक्र नहीं है।

दीर्घकाल में एकाधिकारी को अधिकतम शुद्ध एकाधिकारी आय मिलनी ही चाहिए। अल्पकाल में यदि सीमान्त लागत और सीमान्त आय की समानता के बिन्दु पर औसत आय औसत लागत से कम है तो उसे हानि भी हो सकती है।

एकाधिकार में उत्पादन का स्तर अनुकूलतम स्तर से कम होता है। इसे अकुशल, अपव्ययी तथा उपभोक्ताओं और समाज के हितों के लिये हानिकारक कहा जा सकता है इसलिये आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में सरकारें एकाधिकार को विनियमित करना चाहती हैं।

14.8 शब्दावली

समस्त सीमान्त आय: दो या दो से अधिक बाज़ारों की सीमान्त आय का योग।

एकाधिकार: बाज़ार की वह स्थिति जिससे एक विक्रेता का बाज़ार के बहुत ही बड़े भाग पर नियंत्रण होता है और इसलिये उसका कीमत पर भी नियंत्रण होता है।

प्राकृतिक एकाधिकार: वह स्थिति जिसमें एक उत्पादक का एकाधिकारी बनना स्वाभाविक है। पीने का पानी और बिजली की सप्लाई इसके उदाहरण हैं।

शुद्ध एकाधिकारी आय: एकाधिकारी की कुल आय और कुल लागत का अन्तर।

कीमत विभेद: वह स्थिति जिसमें एकाधिकारी एक ही वस्तु की विभिन्न क्रेताओं से या विभिन्न बाज़ारों में अलग-अलग कीमत लेता है।

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही

ख 3 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) सही

14.10 स्वपरख प्रश्न

1. एकाधिकारी किसे कहते हैं? यह पूर्ण प्रतियोगिता से किस प्रकार भिन्न है?
2. एकाधिकार के पक्ष और विपक्ष में तर्क दीजिए।
3. शुद्ध एकाधिकारी आय क्या होती है? यह अधिकतम कब होती है?
4. दीर्घकाल में एकाधिकारी का संतुलन निर्धारण समझाइये।
5. दो बाज़ारों की स्थिति में भेदमूलक (descriminating) एकाधिकार में संतुलन कैसे निर्धारित होगा?

नोट: इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 15 एकाधिकारी प्रतियोगिता (Imperfect Competition)

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य
15.1 प्रस्तावना
15.2 अस्पर्धी बाज़ारों का प्रादुर्भाव
15.3 प्रवेश पर अवरोध और एकाधिकारी ढांचा
15.4 एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत संतुलन
15.4.1 अल्पकालीन
15.4.2 दीर्घकालीन
15.5 कुल लागत पर कीमत निर्धारण
15.6 एकाधिकारी संतुलन से क्या संसाधनों की बरबादी होती है?
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.10 स्वपरख प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- उत्पाद विभेदन (product differentiation) के महत्व को समझ सकें और यह भी जान पाएं कि एकाधिकारी परन्तु प्रतिस्पर्धी बाज़ार में बिक्री को बढ़ावा देने के कार्य में विज्ञापन की क्या भूमिका होती है।
- उन कारणों को जान पाएं जिनके फलस्वरूप बाज़ार में नई फर्मों के निर्बाध प्रवेश के संबंध में कठिनाइयां आ सकती हैं।
- जान पाएं कि कुल औसत उत्पादन लागत वक्र को कैसे बनाया जाता है और यह भी कि इस प्रकार के लागत वक्र की सहायता से निर्धारित संतुलन कीमत और उत्पादन केवल औसत उत्पादन लागत वक्र की सहायता से निर्धारित संतुलन कीमत और उत्पादन से किस प्रकार से भिन्न होते हैं।
- इसके साथ ही साथ यह भी जान पाएं कि किन कारणों से दीर्घकालीन संतुलन का आधार ऐसा सिद्धांत भी हो सकता है जिसके अंतर्गत सीमांत लागत और सीमांत आय का एक दूसरे के बराबर होना आवश्यक नहीं होता।
- कीमत और उत्पादन के संबंध में एकाधिकारी प्रतियोगिता और पूर्ण प्रतियोगिता के बीच भेद बता पाएं।

15.1 प्रस्तावना

आप जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता (perfect competition) और एकाधिकार (monopoly) दोनों ही चरम स्थितियां हैं तथा ये प्रायः परस्पर विरोधी होती हैं। औद्योगीकरण की प्रारंभिक अवस्थाओं में तो ऐसी स्थितियां हो सकती थीं जिन्हें यदि पूर्ण प्रतियोगिता नहीं तो उस जैसा तो कहा ही जा सकता था। एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन करने वाले विक्रेताओं की संख्या बहुत होती थी तथा नवीन प्रक्रियाओं (innovation) को लाने और उत्पाद विभेदन (product differentiation) के संबंध में कोई प्रयास नहीं किया जाता था। लेकिन आगे चलकर औद्योगीकरण में प्रगति होने के साथ-साथ एकाधिकार से मिलते जुलते बड़े-बड़े व्यवसायों और बड़े-बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठानों को लाने वाली स्थितियों का प्रादुर्भाव ही नहीं होने लगा बल्कि ऐसी स्थितियां भी आने लगीं जिनमें छोटे-छोटे उत्पादकों को इस बात का प्रोत्साहन मिलने लगा कि वे बाज़ार में कुछ

भिन्न किस्म की वस्तु को लाकर अपने विरोधियों से अधिक मात्रा में बिक्री कर सकें। ऐसी स्थिति को 'पूर्ण प्रतियोगिता' की संज्ञा नहीं दी जा सकती जिसके अंतर्गत एक बहुत बड़े वर्ग के उत्पादक एक जैसी वस्तुओं का उत्पादन नहीं करते बल्कि उनका यह प्रयास रहता है कि वे अपने विरोधी विक्रेताओं से अधिक मात्रा में बेचने के उद्देश्य से अपनी वस्तु की किस्म को कुछ भिन्न बना दें। इस स्थिति को 'एकाधिकारी' भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि विक्रेताओं की संख्या बहुत होती है। इसीलिए इसे 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' की संज्ञा दी गई है। विक्रेताओं की संख्या के बहुत अधिक होने के चलते यह स्थिति प्रतियोगिता की तो हैं लेकिन चूंकि प्रत्येक उत्पादक अपनी वस्तु को कुछ भिन्न प्रकार का बताता है इसलिए इस स्थिति को एकाधिकारी भी कहा जा सकता है; इसीलिए इसका नाम 'एकाधिकारी प्रतियोगिता' है।

इस इकाई में आप ग़ैर प्रतियोगी बाज़ारों का उद्‌भव और एकाधिकारी प्रतियोगिता में प्रवेश में बाधाएं तथा एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत अल्पकालीन और दीर्घकालीन संतुलन का अध्ययन करेंगे।

15.2 अस्पर्धी बाज़ारों का प्रादुर्भाव

आप जानते हैं कि वास्तविक जीवन में हमें पूर्ण बाज़ार नहीं बल्कि अपूर्ण बाज़ार का सामना करना होता है। इकाई 12 में बाज़ारों के ढांचे के संबंध में विचार करते समय बताया गया था कि विक्रेताओं की संख्या, उत्पाद की सजातीयता, वस्तु के लिए मांग की लोच और कुछ अन्य कारकों पर निर्भर रहते हुए बाज़ार एक दूसरे से भिन्न होते हैं। एकाधिकारी प्रतियोगिता में, विक्रेताओं की संख्या बहुत होती है और प्रत्येक विक्रेता का नियंत्रण कुछ उत्पाद के एक छोटे भाग पर ही होता है। यह स्थिति अल्पाधिकार (oligopoly) से भिन्न होती है जिसमें प्रत्येक विक्रेता बाज़ार के एक महत्वपूर्ण अंश को नियंत्रित कर पाता है। फिर भी एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत बाज़ार मांग के एक छोटे भाग को नियंत्रित करने के बावजूद वह अपनी वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। यही बात उसे पूर्ण प्रतियोगिता के विक्रेता से अलग करती है। कुल बाज़ार के एक छोटे भाग को नियंत्रित करने वाला विक्रेता वस्तु की कीमत को कैसे प्रभावित कर पाता है? इस प्रश्न का उत्तर इस तथ्य में निहित है कि विक्रेता उत्पाद विभेदन कर पाता है। पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ऐसा नहीं हो पाता क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता वह स्थिति है जिसके अंतर्गत प्रत्येक विक्रेता द्वारा बेची जाने वाली वस्तु एक ही समान होती है।

कोई उत्पादक जब किसी ऐसी वस्तु की पूर्ति कर पाता है जो अन्य उत्पादकों की वस्तुओं से कुछ भिन्न होती है तब क्या होता है? चूंकि उसकी वस्तु अन्य वस्तुओं से भिन्न होती है अतः वह अपनी वस्तु की कोटि के अनुसार भिन्न कीमत भी ले पाता है। इसीलिए तो वह वस्तु की कीमत को प्रभावित कर पाता है।

फिर भी अन्य वस्तुओं से भिन्न होते हुए भी उसकी वस्तु ऐसी नहीं होती कि उसका स्थान बाज़ार की अन्य वस्तुएं बिल्कुल ही न ले सकें। इस प्रकार यदि वह अपनी वस्तु की कीमत को बहुत बढ़ाने का प्रयास करता है तब उसे अपने ग्राहकों को खोना पड़ेगा, जो उसकी स्थानापन्न वस्तुओं को खरीदने लगेंगे। इस प्रकार हम देखते हैं कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत कोई उत्पादक अपनी वस्तु की कीमत को कहां तक प्रभावित कर सकता है, उसकी मात्रा सीमित होती है। परन्तु जहां तक कीमत को प्रभावित करने की शक्ति का संबंध है, इस स्थिति में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति के समान मांग-कीमत वक्र समस्तर सीधी रेखा (horizontal straight line) के रूप में न होकर दाईं ओर गिरने वाली अधोमुखी रेखा के रूप में होगा।

एकाधिकारी प्रतियोगिता की दो विशेषताएं निम्नलिखित हैं।

1) ब्रांड के प्रति निष्ठा पैदा करने के लिए उत्पाद विभेदन
पहली विशेषता यह है कि विभिन्न उपायों, विशेषतः उत्पाद विभेदन के द्वारा एकाधिकारी प्रतियोगी का सदा ही यह प्रयास रहता है कि वह क्रेताओं के बीच ब्रांड निष्ठा (brand loyalty) पैदा करे जिससे बाज़ार में जब भी वह अपने उत्पाद की किसी नई किस्म को लाता है तब उसे केवल यही आशा नहीं होती कि उसके क्रेता इसे खरीद लेंगे बल्कि अपने नए एवं पुराने क्रेताओं से ली जाने वाली कीमत पर उसका

कुछ-कुछ नियंत्रण भी रहता है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह होता है कि इस नई वस्तु के चलते उसके पास नई मांग या औसत आय वक्र हो जाता है। अब यदि हम यह याद रखें कि नई वस्तु का किस्म की दृष्टि से पुरानी वस्तु से भिन्न होने के कारण उसके औसत लागत वक्र में परिवर्तन आ जाता है तब यह कहा जा सकता है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता में औसत लागत वक्र में स्थानांतरण के कारण औसत आय वक्र में भी स्थानांतरण हो जाता है। इससे पता चलता है औसत लागत और औसत आय वक्र के बीच एक तरह की परस्पर निर्भरता होती है जो एकाधिकारी प्रतियोगिता की अपने प्रकार की विशेषता है। परन्तु यह विक्रेताओं के बीच की परस्पर निर्भरता से भिन्न है (जिसके संबंध में हम आगे चलकर देखेंगे कि वह अल्पाधिकार की विशेषता है)।

2) कीमतेतर प्रतियोगिता

इस बाज़ार की दूसरी विशेषता यह है कि चूंकि विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होती है और पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति के विपरीत इस स्थिति में प्रत्येक विक्रेता कुछ हद तक कीमत को प्रभावित कर सकता है अतः विक्रेता इस प्रयास में रहते हैं कि वे अपनी वस्तु की ओर ग्राहकों को आकर्षित कर सकें। इस प्रयास के दौरान वे कीमततेर प्रतियोगिता (non-price competition) का आश्रय लेते हैं। हम आसानी से देख सकते हैं कि कीमत प्रतियोगिता में सदा प्रतिकार (retaliation) का खतरा रहता है, अतः एकाधिकारी प्रतियोगी का यथासंभव यही प्रयास होता है कि उसे विभिन्न प्रकार की कीमततेर प्रतियोगिता को ही काम में लाना पड़ें। इनमें से एक है विज्ञापन जो निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है।

(1) सूचनात्मक (informative), (2) प्रलोभक (persuasive), और (3) अतिरंजित, गलत और भ्रमकारी (exaggerated)

जहां तक सूचनात्मक विज्ञापन का संबंध है, इसका लक्ष्य होता है कि वस्तु की उपयोगिता, प्रभाविता और दीर्घकालिक सस्तेपन के संबंध में स्पष्ट और साफ-साफ शब्दों में बाज़ार को विस्तृत जानकारी दे दी जाए। इस प्रकार के विज्ञापन का स्वागत ही होना चाहिए क्योंकि इससे क्रेताओं और विक्रेताओं का ज्ञानवर्धन होता है तथा बाज़ार में एक स्वस्थ स्थिति आती है।

प्रलोभक विज्ञापन का लक्ष्य होता है ग्राहकों की दुर्बलताओं से लाभ उठाकर उन्हें अपनी वस्तु की ओर आकर्षित करना। टूथ पेस्ट का विज्ञापन इसका दृष्टिकोण है जिसमें हम देखते हैं कि इसका प्रयोग करने वाले नवयुवक के चमकीले दांतों की ओर आकर्षित होकर कोई लड़की उसका चुम्बन करना चाहती है।

तीसरे प्रकार का अर्थात् भ्रमकारी विज्ञापन वह है जिसमें हम देखते हैं कि किसी वस्तु में जो गुण या विशेषता नहीं है उसका भी उसमें होना बताया जाता है, जिससे ग्राहकों को गुमराह किया जा सके। व्यवसाय संबंधी यह प्रचार नैतिक मापदंडों का उल्लंघन करना होता है, अतः इसे उचित नहीं माना जा सकता। भारत में एकाधिकार और प्रतिबंधित व्यापार आयोग (MRTPC) को अधिकार दिया गया है कि वह इस प्रकार के अनुचित व्यापार कार्य करने वालों के खिलाफ कार्यवाही करे।

साम्यवादी अक्सर ही कहते हैं कि विज्ञापन पर किया जाने वाला धन का इस प्रकार का दुरुपयोग उचित नहीं है। कुछ देशों में तो विज्ञापन पर किया जाने वाला खर्च अनुसंधान एवं नवीन प्रक्रियाओं पर किए जाने वाले खर्च के बराबर होता है। यह वांछनीय नहीं है, क्योंकि अनुसंधान पर होने वाले खर्च के फलस्वरूप नवीन प्रक्रिया और तकनीकी परिवर्तन आते हैं तथा उत्पादिता में वृद्धि होती है, परन्तु विज्ञापन पर होने वाले खर्च से ऐसे लाभ नहीं हो पाते। विज्ञापन पर होने वाले व्यय को वस्तु की बिक्री लागत माना जाता है। इस प्रकार वस्तु की दो लागतें हो जाती हैं—उत्पादन लागत और बिक्री लागत। उत्पादन लागत के अंतर्गत वस्तु के उत्पादन में लगने वाली प्लांट, उपस्कर, कच्चे माल, श्रम आदि आगतों पर होने वाली विभिन्न लागतें आती हैं। इसके विपरीत बिक्री लागत वह व्यय है जो खरीददार द्वारा वस्तु को स्वीकार्य बनाने के लिए किया जाता है। विज्ञापन पर किया जाने वाला व्यय वस्तु की बिक्री लागत का एक बहुत बड़ा भाग होता है।

उत्पादन लागत वक्र के आकार के संबंध में पिछली इकाई में चर्चा की जा चुकी है। बिक्री लागत वक्र को किस प्रकार बनाया जाए? इस संबंध में कहा जाता है कि औसत

बिक्री लागत वक्र औसत उत्पादन लागत वक्र जैसा ही होता है। उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ यह पहले नीचे गिरेगा और फिर ऊपर उठेगा।

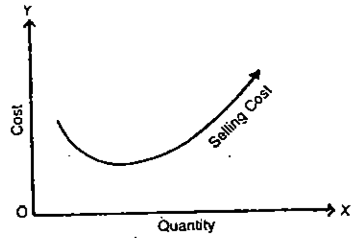

इसका अर्थ यह होता है कि यह U-आकृति के औसत लागत वक्र जैसा ही होगा। बिक्री लागत वक्र के इस प्रकार के व्यवहार का कारण लगभग वही है जो औसत उत्पादन लागत वक्र से संबंधित होता है। विज्ञापन पर होने वाले व्यय के फलस्वरूप शुरू-शुरू में तो वस्तु की बिक्री में अनुपात से अधिक मात्रा में वृद्धि होगी परन्तु बाद में व्यय के अनुपात में बिक्री घटने लगेगी। मान लें कि बिक्री लागत में 5% वृद्धि हो जाती है। तब शुरू-शुरू में बिक्री में 10% या 5% से अधिक वृद्धि हो सकती है, जिसके फलस्वरूप बिक्री लागत घट जाएगी। परन्तु ऐसा एक सीमा तक ही होता है। यदि इस सीमा के आगे भी बिक्री लागत में 5% वृद्धि की जाती है तब बिक्री में 2% या 3% या किसी भी हालत में 5% से कम ही वृद्धि होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ उत्पादन की प्रति इकाई बिक्री लागत में कमी एक सीमा तक ही होगी। उसके आगे, इसमें वृद्धि होने लगेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्पादन लागत वक्र के ही समान बिक्री लागत वक्र भी U आकार का होगा। चित्र 15.1 देखें।

चित्र 15.2 में कुल औसत लागत वक्र को दिखाया गया है जिसमें बिक्री लागत और उत्पादन लागत वक्र सम्मिलित हैं।

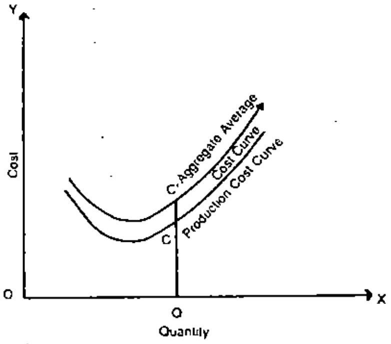

OQ उत्पादन पर कुल औसत लागत C′Q है जिसमें बिक्री लागत भी सम्मिलित है लेकिन CQ उत्पादन लागत है। इस प्रकार C′C बिक्री लागत है। इस प्रकार दोनों वक्रों के बीच की दूरी उत्पादक द्वारा की जाने वाली बिक्री लागत की माप है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के होने का एक कारण तो अत्यंत सरल है। पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार को लाने वाले जो कारक होते हैं वे वास्तविक जीवन में पाए नहीं जाते। ये कारक हैं: पूर्ण ज्ञान, क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच लगाव का पूर्ण अभाव और पूर्ण गतिशीलता। इसमें क्रेताओं की अविवेकशीलता को भी जोड़ा जाता है हालांकि अपूर्ण लगाव (imperfect attachment) के अंतर्गत यह कारक भी आ जाता है। कभी-कभी तो किसी वस्तु की कीमत का अधिक होने का अर्थ क्रेता यह लगाते हैं कि वह अच्छी किस्म की है। क्रेता की इसी दुर्बलता का लाभ उठा कर बाज़ार के किसी प्रमुख भाग पर नियंत्रण न रखने वाला विक्रेता भी अपनी वस्तु के लिए अधिक कीमत लेने लगता है।

15.3 प्रवेश पर अवरोध और एकाधिकारी ढांचा

यह मान लिया गया था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान बाज़ार में फर्मों के प्रवेश या बहिर्गमन के संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं होगा। पूर्ण प्रतियोगिता की भावना का इसी प्रकार विकास हुआ और इसलिए पूर्ण प्रतियोगी बाज़ार

ढांचे को अच्छा माना जाने लगा। परन्तु निर्बाध बाज़ार की अर्थव्यवस्थाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि समय के साथ-साथ पूर्ण प्रतियोगिता कारगर नहीं हो पाई है। इसके विपरीत अनेक प्रकार की अपूर्ण प्रतियोगिता देखने में आती है। एकाधिकार के संबंध में पहले ही चर्चा की जा चुकी है और इस इकाई में हम एकाधिकारी प्रतियोगिता के संबंध में विचार कर रहे हैं। ये दोनों ही ऐसे बाज़ार ढांचे हैं जो पूर्ण प्रतियोगिता से भिन्न होते हैं और इन दोनों ही के अंतर्गत उत्पादक ऐसी स्थितियों को लाने में समर्थ हो जाते हैं जिनमें समाज की तुलना में उन्हीं को अधिक लाभ होता है। परन्तु प्रवेश संबंधी रोध तो एकाधिकार की विशेषता है, एकाधिकारी प्रतियोगिता की नहीं।

बाज़ार में फर्मों के निर्बाध प्रवेश पर अवरोध होने के विभिन्न कारण निम्नलिखित हैं।

1) कच्चे माल की पूर्ति पर नियन्त्रण: जिस उत्पादक ने बाज़ार में पहले से ही अपनी जड़ें जमा ली हैं उसका नियंत्रण उन कच्चे मालों की पूर्ति पर हो सकता है जो उस वस्तु के उत्पादन के लिए आवश्यक होते हैं। इस स्थिति में अन्य फर्में इस वस्तु का उत्पादन करने की इच्छा रखते हुए भी ऐसा न करने का निर्णय लेती हैं क्योंकि सुस्थापित फर्मों से कच्चे माल को प्राप्त करने में उन्हें कठिनाई होती है, इसके फलस्वरूप बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश पर अप्रत्यक्ष रोक लग जाती है।

2) सीमित पूर्ति: कच्चे माल की अत्यंत सीमित मात्रा में पूर्ति होने के कारण भी फर्म के प्रवेश में बाधा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ कुछ फर्में यदि सोना या इसी तरह के किसी अन्य दुर्लभ खनिज पदार्थ का उपयोग अपने उत्पादन कार्य में करती हैं, तब नई फर्मों के लिए इस क्षेत्र में आना कठिन हो सकता है।

3) निरपेक्ष लागत लाभ: जो फर्में पहले से ही उत्पादन कार्य कर रही हैं उन्हें निरपेक्ष लागत के संबंध में अधिक सुविधा होती है। इसका कारण यह है कि पहले से इस क्षेत्र में कार्य करने के फलस्वरूप उनके उत्पादन का आकार इतना बड़ा हो जाता है कि उन्हें बड़े पैमाने की किफायतें मिल सकें। उनके मुकाबले में कोई नई फर्म यदि बाज़ार में आना चाहती है तब उसे इतने संसाधन जुटाने होते हैं कि वह पहले से सुस्थापित फर्मों के ही समान निवेश कर सके। परन्तु इतनी मात्रा में निवेश करने का साहस प्रत्येक फर्म नही कर सकती।

4) विज्ञापन और उत्पाद विभेदीकरण पर अत्यधिक व्यय: सुस्थापित फर्में विज्ञापन, उत्पाद विभेदन आदि पर काफी रकम खर्च कर रही हों तो इस प्रकार का खर्च जितना ही अधिक होगा बाज़ार में नई फर्मों के निर्बाध प्रवेश पर उतनी ही अधिक रुकावटें भी होंगी।

5) प्रतिद्वन्द्वी का विरोधी प्रचार: फर्में अपनी विरोधी फर्मों के उत्पाद की कोटि को घटाने और बाज़ार में उसकी बिक्री को चौपट करने के लिए चोरी, घूस और अन्य फर्मों के श्रमिकों के बीच दुष्प्रचार आदि प्रणाली का सहारा लेती हैं।

6) सरकार का हस्तक्षेप: कभी-कभी सरकार किसी चल रही फर्म को पेटेन्ट या अन्य किसी व्यवस्था के द्वारा कानूनी अधिकार प्रदान कर देती है, जिसके फलस्वरूप किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया के संबंध में उस फर्म के पास एकाधिकार हो जाता है, अतः अन्य फर्मों द्वारा इस वस्तु के उत्पादन पर प्रतिबंध सा लग जाता है।

7) प्राकृतिक एकाधिकार: प्राकृतिक एकाधिकार भी प्रवेश में बाधा उत्पन्न करता है। जैसा कि हम जानते हैं कि जल पूर्ति, बिजली उत्पादन जैसे कार्यों में बहुत बड़ी रकम लगानी होती है तथा स्थान की दृष्टि से इनका कार्यक्षेत्र भी बड़ा होता है। ऐसी स्थिति में किसी अन्य उत्पादक के लिए लाभकारी नहीं होगा कि वह इन वस्तुओं के उत्पादन के लिए आवश्यक दुहरी आधारित संरचना (infrastructure) तैयार करे और दूसरे लोगों को इन वस्तुओं की पूर्ति करे।

8) संयत कीमत नीति: कभी-कभी प्रवेश पर अवरोध पहले से सुस्थापित फर्मों द्वारा जानबूझ कर अपनाई गई संयत मूल्य नीति के फलस्वरूप होता है।

9) फर्मों की गोपनीय प्रकृतिः कभी-कभी फर्मों में अपने कार्यों के संबंध में इतना गोपनीय रहने की प्रवृत्ति होती है कि प्रवेश की इच्छुक फर्मों को उनकी लागतों, बिक्री और लाभ के संबंध में कोई जानकारी नहीं हो पाती। इस प्रकार की गोपनीयता प्रवेश के इच्छुक उत्पादकों के लिए अवरोध का काम करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बाज़ार में किसी फर्म के प्रवेश के संबंध में अनेक प्रकार के अवरोध हो सकते हैं। जब तक इन अवरोधों को हटाने की कोई विधि नहीं होगी तब तक प्रतियोगी बाज़ार ढांचा नहीं आ सकता। इस स्थिति में संभाव्य उत्पादकों की ओर से प्रतियोगिता के अभाव में वर्तमान फर्में बाज़ार का उपयोग इस प्रकार कर पाती हैं कि उनके कार्यों से समाज से अधिक उन्हीं को लाभ होता है।

यह स्मरणीय है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता नामक बाज़ार ढांचें में प्राक्कल्पना के अनुसार बाज़ार में फर्मों के प्रवेश के संबंध में कोई अवरोध नहीं होता। फिर भी जैसा कि हम आगे चलकर देखेंगे एकाधिकारी प्रतियोगिता से समाज को पूर्ण प्रतियोगिता के समान लाभ नहीं हो पाता।

बोध प्रश्न क

1 एकाधिकारी प्रतियोगिता और अल्पाधिकार में अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

2 कीमतेतर प्रतियोगिता (Non-price Competition) से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

3 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत :

i) वास्तविक जीवन में हम अपूर्ण नहीं बल्कि पूर्ण बाज़ार पाते हैं।

ii) एकाधिकारी प्रतियोगिता में विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होती हैं, और प्रत्येक विक्रेता समस्त उत्पादन के एक बहुत बड़े भाग पर नियन्त्रण रखता है।

iii) क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार निर्बाध बाज़ार प्रणाली (free market system) समाज के लिए सर्वोत्तम होती है।

iv) सरकारी हस्तक्षेप बाज़ार में फर्मों के स्वतन्त्र प्रवेश पर रोक लगाती है।

v) विक्रय लागत वक्र बढ़ते उत्पादन के साथ पहले गिरता है और फिर उठता है।

15.4 एकाधिकारी प्रतियोगिता के अन्तर्गत सन्तुलन

कोई एकाधिकारी प्रतियोगी अपनी एकाधिकारी स्थिति का उपयोग अनेक प्रकार से कर सकता है। वस्तु की कीमत को प्रभावित करना इनमें से एक है। उत्पाद विभेदन की स्थिति के होने से वह अपनी वस्तु की किस्म को बदल सकता है। इसके अतिरिक्त बिक्री लागत को बढ़ाकर वह वस्तु की बिक्री को भी प्रभावित कर सकता है, हालांकि उसकी वस्तु की किस्म पहले जैसी ही बनी रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रयोग में आने वाले विकल्पों या विकल्पों के संयोजन के आधार पर संतुलन का निर्धारण भी भिन्न-भिन्न प्रकार से हो सकता है।

15.4.2 अल्पकालीन

हम एक ऐसी सरल स्थिति की कल्पना करते हैं जिसमें उत्पादक द्वारा अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए केवल कीमत में ही परिवर्तन किया जाता है। चित्र 15.3 को देखें जिसमें अल्पकालीन संतुलन दिखाया गया है।

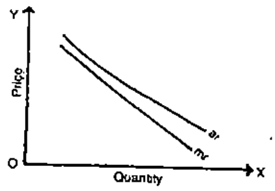

एकाधिकार की स्थिति के ही समान एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में भी मांग वक्र नीचे की ओर गिरता है। इसलिए औसत और सीमांत आय वक्र अलग-अलग होंगे तथा सीमांत आय वक्र औसत आय वक्र के नीचे होगा। उत्पादक को यदि कोई बिक्री लागत नहीं करनी होती तब उसके सीमांत और औसत लागत वक्र U आकार के होंगे और इन्हें आय वक्रों के साथ मिलाकर वह अपने संतुलन को प्राप्त करेगा। यह संतुलन उस बिन्दु पर होगा जहां सीमांत आय सीमांत लागत के बराबर होती है।

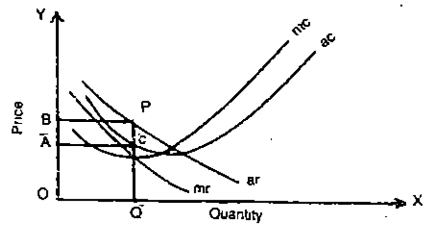

परन्तु जैसा कि चित्र 15.4 में दिखाया गया है, जब सीमांत आय और सीमांत लागत एक दूसरे के बराबर होती हैं तब उत्पादक को लाभ होगा जो PQ×OQ (अर्थात् कुल आय) और CQ×OQ (अर्थात् कुल लागत) के बीच के अंतर के बराबर होगा। संतुलन उत्पादन OQ, संतुलन कीमत PQ और संतुलन औसत उत्पादन लागत CQ होंगे। चूंकि यह ऐसी स्थिति है जिसमें प्रतियोगिता के तत्त्व भी विद्यमान हैं अतः उपभोक्ता को अपसामान्य लाभ (Abnormal Profit = CP × OQ) (अर्थात् ACPB) के मिलने के कारण बाज़ार की ओर अन्य उत्पादक भी आकर्षित होंगे और उत्पादकों के प्रवेश पर यदि अवरोध नहीं है तब बाज़ार के कुल उत्पादन में वृद्धि होगी, जिससे कीमतें तथा औसत आय वक्र नीचे की ओर आएंगे।

15.4.2 दीर्घकालीन

लाभ जितने ही अधिक समय तक होता रहेगा, नीचे की ओर स्थानांतरण उतना ही अधिक होगा, जिससे अंततः औसत आय वक्र उस बिन्दु पर आ जाएगा जहां पर अपसामान्य लाभ बिल्कुल ही नहीं होगा। लेकिन यह स्मरणीय है कि ऐसा दीर्घकाल में ही हो पाएगा, बशर्ते कि बाज़ार में अन्य फर्मों के प्रवेश पर कोई अवरोध न हो। एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत बिना लाभ हानि की दीर्घकालिक स्थिति को चित्र 15.5 में दिखाया गया है।

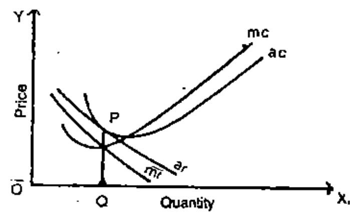

चित्र 15.5 का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें, जहां संतुलन कीमत PQ औसत लागत के बराबर है जो स्वयं भी PQ ही है। इसलिए कोई अपसामान्य लाभ नहीं हो पाता।

हम एक ऐसी स्थिति लेते हैं जिसमें उत्पादक अपनी वस्तु की कीमत को नहीं बल्कि उसकी किस्म को प्रभावित करना चाहता है, जिसका अर्थ यह होता है कि पहले यदि वह किस्म X की वस्तु की पूर्ति कर रहा था तब वह इस समय किस्म Y की पूर्ति करता है। यह कहना गलत नहीं होगा कि अच्छी किस्म की वस्तु का उत्पादन अधिक लागत पर होगा। यह चित्र 15.6 में दिखाया गया है।

उत्पादक यदि कीमत को प्रभावित किए बिना तथा बिना किसी बिक्री लागत के ही किसी भिन्न किस्म की वस्तु को बेचना चाहता है तब उसका अर्थ होता है कि वह अपने उत्पाद की केवल किस्म को ही बदल कर लाभ को अधिकतम करना चाहता है।

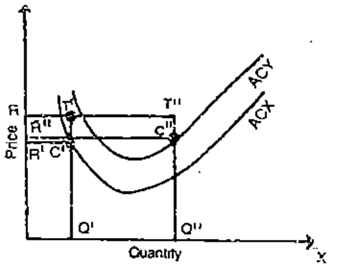

चित्र 15.6 को देखिए जहां वस्तु कीमत OR है और निम्न किस्म के उत्पाद से संबंधित औसत लागत वक्र ACX है। (पहले ही बताया जा चुका है कि इस उत्पाद से संबंधित औसत लागत वक्र नीचे होगा)। मान लेते हैं कि कीमत T' पर संतुलन होता है। यह भी मान लेते हैं कि अच्छी किस्म के उत्पाद पर संतुलन T" पर होता है। इस स्थिति में उत्पादक का प्रयास अपने अधिशेष का पता लगाना होगा यदि QT' कीमत ली जाती है (जिसे आयत RT' द्वारा प्रस्तुत किया गया है) और उत्पादन OR' है। वह उस अधिशेष को भी जानना चाहेगा जो उसी कीमत पर (क्योंकि कीमत दी हुई है) तथा अच्छी किस्म की वस्तु के कारण होगा (जिसे आयत R" T" में प्रस्तुत किया गया है)। यदि इन दो अधिशेषों के बीच तुलना करने पर वह देखता है कि अच्छी किस्म की वस्तु से मिलने वाला अधिशेष अधिक है, तब वह उसी किस्म का उत्पादन और पूर्ति करेगा। अन्यथा वह निम्न किस्म की ही वस्तु की पूर्ति करेगा। उपर्युक्त चित्र में निम्न कोटि के उत्पाद पर अधिशेष को R' C' × R' C' द्वारा तथा उच्च कोटि के उत्पाद पर अधिशेष को T"C" × R"C" द्वारा दिखाया गया है। इसमें हम देख सकते हैं कि उच्च कोटि के उत्पाद से होने वाला अधिशेष अधिक है. अतः उत्पादक बाज़ार में निम्न कोटि के उत्पाद की पूर्ति न करके उच्च कोटि के उत्पाद की ही पूर्ति करेगा।

यह स्मरणीय है कि यहां पर एकाधिकारी प्रतियोगिता की उसी स्थिति को लिया गया है जबकि केवल उत्पाद की किस्म को ही बदलने का प्रयास किया जाता है। कीमत को प्रभावित करने या बिक्री लागत को लगाने के संबंध में कुछ नहीं किया जाता। इस संबंध में विशेषतः ध्यान देने की बात यह है कि चूंकि यहां पर हम दो भिन्न किस्म के उत्पादों से मिलने वाले अधिशेषों के बीच तुलना करके संतुलन के संबंध में निर्णय ले रहे हैं, तथा चूंकि अधिशेष तो अल्पकाल में ही प्राप्त होते हैं अतः उपर्युक्त चित्र का प्रयोग दीर्घकालिक संतुलन की व्याख्या के लिए नहीं किया जा सकता। हमें तो एक ऐसा चित्र बनाना होगा जिसमें दो उत्पादों से प्राप्त होने वाले अधिशेष शून्य हों, क्योंकि दीर्घकाल में एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में ऐसा ही होता है। उस स्थिति में उत्पादक उस वस्तु का उत्पादन करना और बेचना चाहेगा जिसकी पूर्ति बहुत बड़ी मात्रा में की जा सके क्योंकि उत्पादक को मिलने वाला सामान्य लाभ सामान्य लाभ लागत का एक अंश होता है और उसे तो प्राप्त करना ही होता है) उस स्थिति में अधिक होगा जब वस्तु का उत्पादन बहुत बड़ी मात्रा में किया जा रहा है।

मान लें कि अब हम एक ऐसी स्थिति के संबंध में विचार करते हैं जबकि उत्पादक केवल अपनी वस्तु की कोटि को ही बदलना नहीं चाहता बल्कि उस की कीमत को भी प्रभावित करना चाहता है। इस स्थिति में कीमत को पहले जैसे नहीं दिया जाएगा बल्कि इसका पता संतुलन निर्धारण की सामान्य प्रक्रिया से लगाना होगा। इस स्थिति को चित्र में प्रस्तुत करने के संबंध में केवल इसी बात को ध्यान में रखना होगा कि

इस स्थिति में दो औसत आय वक्र होंगे। एक तो उच्च कोटि की वस्तु से संबंधित होगा और दूसरा निम्न कोटि की वस्तु से संबंधित।

आप जानते हैं कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत औसत लागत और औसत आय वक्र कुछ सीमा तक परस्पर निर्भर होते हैं, इस स्थिति में औसत लागत वक्र में जब परिवर्तन होता है तब औसत आय वक्र में भी परिवर्तन हो जाएगा। कोटि की दृष्टि से भिन्न दो उत्पादों के अनुकूल दो औसत लागत वक्रों के होने से औसत आय वक्र भी दो होंगे, केवल एक ही नहीं। चित्र 15.7 को देखें जिसमें उत्पादक अपने उत्पाद को बदलने के साथ ही साथ कीमत को भी प्रभावित करने का प्रयास करता है।

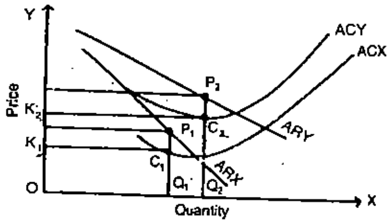

पुनः हम उस प्रक्रिया का अनुसरण करेंगे जिसके अंतर्गत निम्न कोटि के औसत लागत और औसत आय वक्र तथा उच्च कोटि के औसत लागत और औसत आय वक्र की सहायता से अधिशेष को निकाला जाता है। दोनों अधिशेषों के बीच तुलना करने और यह जानने के बाद कि इनमें से अधिक कौन है, हम संतुलन स्थिति का निर्धारण करेंगे। यह स्पष्ट है कि उच्च अधिशेष की स्थिति संतुलन को प्रस्तुत करेगी।

वस्तु की कोटि में परिवर्तन के साथ-साथ जब कीमत में भी परिवर्तन होता है तब एक के स्थान पर दो औसत आय वक्र हो जाएंगे। ऐसा इसलिए कि कोटि के बदलने से एक भिन्न अधिमान को लेना होता है जिससे संभव कीमतों और औसत आयों में भी परिवर्तन हो जाता है। चूंकि वस्तु की किस्म के बदलने का अभिप्राय उसकी लागत का भी बदलना होता है इसलिए यदि हम मान लेते हैं कि केवल दो किस्मों के ही संबंध में विचार किया जा रहा है तब दो औसत लागत वक्र भी होंगे। दो औसत आय वक्रों के साथ ये अधिकतम लाभ की स्थिति के निर्धारण में सहायक होंगे।

यदि निम्न कोटि की वस्तु के संबंध में विचार किया जाता है तब संबद्ध औसत आय वक्र ARX तथा संबद्ध लागत वक्र ACX होंगे। मान लें कि निम्न कोटि के उत्पाद के सीमांत आय और सीमांत लागत का कटाव अर्थात् क्रमशः MRX और MCX का कटाव (जिसे स्पष्टीकरण की सरलता के लिए यहां नहीं दिखाया गया है) घटिया वस्तु के उत्पादन OQ_1 पर होता है। तब इस उत्पाद से संबंधित औसत आय वक्र से हम देख सकते हैं कि इस उत्पाद की संतुलन कीमत Q_1P_1 होगी। उसी प्रकार बढ़िया किस्म के उत्पाद की कीमत Q_2P_2 होगी। जहां तक अधिशेष लागत का संबंध है वह घटिया उत्पाद के संबंध में $P_1C_1 \times OQ_1$ अर्थात् K_1P_1 आयत के क्षेत्र के बराबर होगी जबकि बढ़िया उत्पाद से संबंधित अधिशेष लागत $P_2C_2 \times OQ_2$ अर्थात् आयत K_2P_2 के क्षेत्र के बराबर होगी। चूंकि K_2P_2 नामक दूसरा आयत बड़ा है अतः उत्पादक बढ़िया किस्म की वस्तु का उत्पादन करेगा, अधिक कीमत P_2Q_2 लेगा और इस प्रकार वह अपने अपसामान्य लाभ को अधिकतम करेगा।

पुनः यह स्मरणीय है कि एकाधिकारी प्रतियोगी को अधिशेष केवल अल्पकाल में मिलता है, दीर्घकाल में नहीं, अतः यदि हम दीर्घकाल के संबंध में विचार कर रहे हैं तब चित्र 15.7 का आरेखी निरूपण अनावश्यक हो जाता है। औसत आय वक्र को औसत लागत वक्र का स्पर्श इस प्रकार से करना होगा कि घटिया किस्म की वस्तु की स्थिति में $Q_1P_2 = Q_1C_1$ और बढ़िया किस्म की वस्तु में $Q_2P_2 = Q_2C_2$, परंतु यदि ऐसा होता है तब बढ़िया किस्म की वस्तु के अधिशेष का अधिक होना दिखाया नहीं जा सकता। किस वस्तु का उत्पादन करना है इसके संबंध में निर्णय कैसे लिया जाए। उपभोक्ता को पुनः इसी बात पर विचार करना होगा कि वह अधिकाधिक सामान्य लाभ कैसे कमाए। उसे उसी मात्रा में उत्पादन करना होगा जिससे उसे अधिकाधिक मात्रा में सामान्य लाभ की प्राप्ति होती है।

लाभ को अधिकतम करने के संदर्भ में अब तक हमने बिक्री लागत को साधन के रूप

में नहीं लिया है। मान लें कि हम एक ही किस्म की वस्तु के संबंध में विचार कर रहे हैं। अतः हम एक ही औसत लागत वक्र के संबंध में विचार करते हैं। परंतु उत्पादक कीमत में हेर-फेर करके नहीं बल्कि विक्रय संवर्धन (sales promotion) द्वारा अधिकतम लाभ कमाना चाहता है। इसका अर्थ यह है कि वह कीमत को नियत मान लेता है। मान लें कि इस उत्पाद के लिए औसत उत्पादन लागत वक्र APC है और दी हुई कीमत OR है। चित्र 15.8 देखें जहां इस संतुलन को दिखाया गया है।

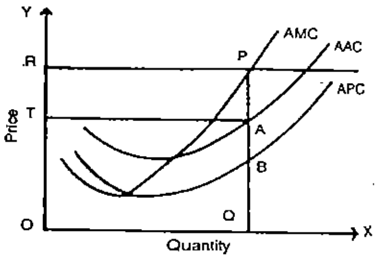

चूंकि बिक्री लागत भी लगाई जा रही है अतः कुल औसत लागत, औसत उत्पादन लागत और बिक्री लागत के योग के बराबर होगी। मान लें कि कुल औसत लागत को निरूपित करने वाला वक्र AAC है। यदि कुल सीमांत लागत वक्र AMC है तब दी हुई कीमत को दिखाने वाले RP और सीमांत लागत वक्र का कटाव बिन्दु सीमांत आय और सीमांत लागत के बीच की समानता को प्रदर्शित करेगा। क्या PQ सीमांत आय का भी निरूपण करता है? चूंकि दी हुई कीमत में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है इसलिए औसत आय ही सीमांत आय भी बन जाती है।

इस प्रकार उत्पादक OQ मात्रा में उत्पादन करेगा तथा पहले से दी हुई OP कीमत लेगा। यहां पर चूंकि सीमांत लागत और सीमांत आय एक दूसरे के बराबर हैं इसलिए उसके अधिकतम अधिशेष का निरूपण TP आयत के द्वारा होगा। उसकी औसत कुल लागत AQ होगी हालांकि उसकी उत्पादन लागत BQ होगी। AQ और BQ के बीच का अंतर अर्थात् AB उसकी औसत बिक्री लागत होगी।

अतः यह कहा जा सकता है कि किसी एकाधिकारी प्रतियोगी को यदि AB के बराबर औसत बिक्री लागत करनी पड़ती है तब अपनी वस्तु की कीमत या किस्म को प्रभावित किए बिना ही वह अधिकतम लाभ की स्थिति में पहुंच सकता है। परंतु दीर्घ काल में अधिशेष लुप्त हो जाएगा और बिन्दु A पर संतुलन स्थापित हो जाएगा, जहां पर कीमत कुल औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है।

अब हम एक दूसरी स्थिति के संबंध में विचार करेंगे जिसमें पिछली स्थिति के विपरीत कोई उत्पादक कीमत और बिक्री लागत पर अपने प्रभाव का उपयोग अपने लाभ को बढ़ाने के लिए करता है। चित्र में मांग की जाने वाली वस्तु की विभिन्न मात्रा पर विभिन्न कीमतों को दिखाते हुए औसत आय वक्र को लाना होगा। पिछली स्थिति में ऐसा नहीं किया गया था क्योंकि वहां पर यह मान लिया गया था कि उत्पादक कीमत को दिया हुआ मान रहा है और लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य से इसमें कोई परिवर्तन करने के प्रति उसकी रुचि नहीं है।

परंतु यदि बदलती हुई औसत आय को लाया जाता है तब बिक्री लागतों में परिवर्तन के साथ-साथ इसमें स्थानांतरण हो सकता है क्योंकि हम जानते हैं कि बिक्री लागतें क्रेताओं के अधिमान को प्रभावित करने के लिए की जाती हैं। पिछली स्थिति में यह अनावश्यक था क्योंकि वहां पर यह मान लिया गया था कि उत्पादक की कीमत में परिवर्तन के संबंध में कोई रुचि नहीं होती।

मान लें कि विश्लेषण की सरलता के लिए हम नियत बिक्री लागतों की दो मात्राओं के संबंध में विचार करते हैं जिससे उन्हें औसत उत्पादन लागत वक्र (ऐसा केवल एक ही वक्र होता है क्योंकि लाभ को अधिकतम करने के लिए उत्पाद की किस्म को बदलने का कोई प्रयास नहीं किया जाता) के साथ जोड़ने पर दो कुल औसत लागत वक्र हो जाते हैं। इन दो कुल औसत लागत वक्रों के साथ दो औसत आय वक्रों को जोड़कर हम उन अधिशेषों का निर्धारण करते हैं जो बिक्री लागतों और मांग वक्रों की स्थितियों के बीच के अंतर के कारण होते हैं। चित्र 15.9 को देखें। यहां दो औसत आय वक्र AR_1 और AR_2 हैं तथा दो कुल औसत लागत वक्र AAC_1 और AAC_2 हैं। यह भी मान लें कि औसत उत्पादन लागत वक्र AC है।

चूंकि प्रति इकाई बिक्री लागत एक नियत मात्रा में अर्थात् X है अतः समस्त वक्र के साथ-साथ अर्थात् उत्पादित वस्तु के सभी स्तरों के लिए AAC_1 औसत उत्पादन लागत से इसी मात्रा में अधिक होगा। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि AAC_1 और AC के बीच का अंतर सभी स्थानों पर X के बराबर होगा। चूंकि हम नियत मात्राओं वाली दो बिक्री लागतों के संबंध में विचार कर रहे हैं इसलिए अब हम यह मान कर चलते हैं कि उत्पादक अब Y के बराबर बिक्री लागत लगाता है जो X से अधिक है। इस प्रकार हमें एक अन्य नया कुल औसत लागत वक्र AAC_2 प्राप्त होता है। उत्पादन के सभी स्तरों पर AAC_1 की अपेक्षा AAC_2 मात्रा Y में अधिक है।

मान लेते हैं कि जब AR_1 औसत आय वक्र तथा AAC_1 कुल औसत लागत वक्र हैं; तब सीमांत आय और सीमांत लागत (स्पष्टीकरण की सरलता के लिए यहां नहीं दिखाया गया है) OQ_1 उत्पादन पर बराबर होते हैं। इस स्थिति में यह स्पष्ट है कि संतुलन के लिए उपयुक्त कीमत P_1Q_1 होगी। उसी प्रकार यदि OQ_2 वह उत्पादन है जिस पर AR_2 और AAC_2 नामक वक्रों के दूसरे समुच्चय में सीमांत आय और सीमांत लागत बराबर होते हैं तब संतुलन के लिए उपयुक्त कीमत P_2Q_2 होगी। अब P_1Q_1 यदि संतुलन कीमत है तब Q_1C_1 कुल औसत लागत होगी जिससे अधिशेष लाभ आयत T_1P_1 के बराबर होगा। उसी प्रकार जब P_2Q_2 संतुलन कीमत है तब Q_2C_2 कुल औसत लागत होगी जिससे अधिशेष लाभ का निरूपण आयत T_2P_2 के द्वारा होगा। हम देखते हैं कि चूंकि आयत T_1P_1 आयत T_2P_2 से छोटा है अतः एकाधिकारी प्रतियोगी अपने लाभ को अधिकतम करने के लिए बिक्री लागत X को न लगाकर बिक्री लागत Y को लगाएगा। हम जानते ही हैं कि X की तुलना में Y बड़ा है।

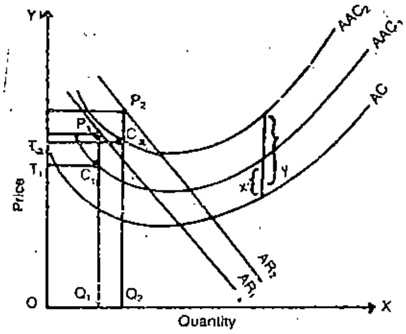

15.5 कुल लागत पर कीमत निर्धारण

दीर्घकालिक संतुलन के संबंध में विचार करते समय हम देख चुके हैं कि अल्पकाल में एकाधिकारी प्रतियोगी को जितना भी अधिशेष मिल जाए पर अंततः यह समाप्त हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश पर कोई अवरोध नहीं होता। अतः अधिशेष होते देख कर बाज़ार की ओर अधिकाधिक फर्में आकर्षित होती हैं और जब कुल उत्पादन में वृद्धि हो जाती है तब मांग कीमत वक्र का स्थानांतरण तब तक नीचे की ओर होता जाता है जब तक कीमत औसत उत्पादन लागत के बराबर नहीं हो जाती।

चूंकि एकाधिकारी प्रतियोगी को पता होता है कि अधिशेष को समाप्त होना ही है अतः शुरू में ही वह अपनी कीमत को इस प्रकार से नियत करने का निर्णय लेता है कि वह औसत उत्पादन लागत से अधिक या कम न होकर ठीक उसके बराबर ही हो। इसे कुल लागत पर कीमत निर्धारण (full cost pricing) प्रणाली कहा जाता है। चित्र 15.10 को देखें जहां वह अपनी कीमत को एक ही बार में P पर निर्धारित कर देता है (जो उसके औसत आय और औसत लागत वक्रों को काटने वाली बिन्दु है) और वस्तु का उत्पादन OQ मात्रा में करता है। ऐसा करके वह निम्नलिखित प्रक्रिया से बच जाता है। पहले अल्पकाल के लिए कीमत को P_1 पर निर्धारित करे, अधिशेष प्राप्त करे, अन्य फर्मों को बाज़ार की ओर आकर्षित होने दे जिससे उसका औसत आय वक्र P_2 तक गिर जाए जहां पर अधिशेष का होना समाप्त हो जाएगा, जैसाकि दीर्घकाल में होता है।

कुल लागत पर कीमत-निर्धारण प्रणाली से लाभ स्पष्ट है। सीमांत लागत और सीमांत

आय के बराबर करने वाली अन्य प्रणालियों के अंतर्गत उत्पादक जितना उत्पादन कर पाता उससे अधिक मात्रा में उत्पादन इस प्रणाली के अंतर्गत करता है। यदि सीमांत लागत और सीमांत आय के बीच की समानता के रूप में देखा जाए तब इस चित्र में दीर्घकालिक उत्पादन OQ_2 होता है जबकि कुल लागत पर कीमत निर्धारण के अंतर्गत यह उत्पादन OQ होगा।

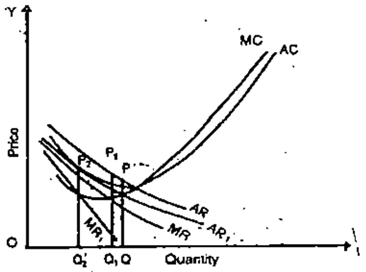

कुल लागत पर कीमत-निर्धारण सिद्धांत को वर्धित कीमत-निर्धारण (mark-up pricing) सिद्धांत भी कहा जाता है। सीमांत लागत-सीमांत आय समानता सिद्धांत किसी उत्पादक को सैद्धांतिक दृष्टि से कितना भी प्रभावकारी क्यों न लगे परंतु व्यवहार रूप में इसका अनुसरण करना उतना सरल नहीं होता। बाज़ार की वास्तविक स्थितियों में सीमांत आय और सीमांत लागत का पता लगाना और फिर उन्हें एक दूसरे के बराबर बनाने का प्रयास करना उसके लिए अत्यंत कठिन और क्लेशदायक सिद्ध हो सकता है। इससे अच्छा तो वह यह समझेगा कि अपनी औसत लागत के संबंध में कोई अस्थायी अनुमान लगा ले और फिर उसमें उस राशि को जोड़ दे जो उसके विचार से उसके निवेश की प्रतिपूर्ति के लिए उचित होगी। यह बढ़ाई हुई राशि कीमत होगी जिस पर वह अपनी वस्तु को बेचना चाहेगा। इसीलिए इस सिद्धांत को वर्धित कीमत निर्धारण का सिद्धांत भी कहा जाता है।

15.6 एकाधिकारी संतुलन से क्या संसाधनों की बरबादी होती है?

अब हम पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत के संतुलन के साथ एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत के संतुलन की तुलना करेंगे।

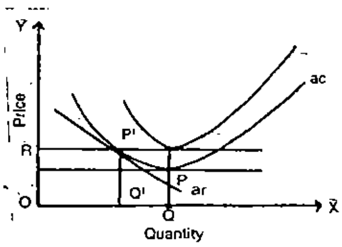

चित्र 15.11 को देखें जहां एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत संतुलन पर कीमत P'Q' तथा उत्पादन OQ' है। मान लेते हैं कि वही कीमत रहेगी और यह भी कि हम पूर्ण प्रतिस्पर्धी स्थिति में हैं। तब औसत लागत वक्र का स्थानांतरण इस प्रकार होगा कि उसका सबसे नीचे का बिन्दु कीमत P'Q' को दिखाते हुए कीमत रेखा को स्पर्श करता है (पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घकालिक संतुलन उस बिन्दु पर होता है जहां पर समस्तर कीमत रेखा और औसत लागत एक दूसरे को स्पर्श करते हैं)। यदि औसत लागत वक्र में कोई परिवर्तन नहीं होना है तब पूर्ण प्रतियोगिता के लिए एक नई कीमत आवश्यक होगी, यह रेखा दिए हुए औसत लागत वक्र ac को P पर स्पर्श करेगी।

अतः दो बाज़ार ढांचों को एक समान बनाने के लिए हम दो बाज़ारों की कीमतों को एक समान ले लेते हैं और औसत लागत वक्र में समुचित परिवर्तन होने देते हैं या उसी औसत लागत वक्र को ले लेते हैं और कीमत में परिवर्तन होने देते हैं। यदि औसत लागत वक्र में परिवर्तन होने दिया जाता है तब उसका रोचक परिणाम यह होगा कि

पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत एक ही कीमत पर अपनी वस्तु को बेचने के लिए उत्पादक ऊंचे औसत लागत वक्र का प्रयोग करेगा। लेकिन हम जानते हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत आगतें (inputs) एक दूसरे से घटिया या महंगी नहीं होती अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि औसत लागत वक्र यदि और ऊपर है तब उससे अभिप्राय यह होता है कि पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में उसी कीमत पर बढ़िया किस्म की वस्तु उपलब्ध हो रही है।

इसके विपरीत यदि औसत लागत वक्र में कोई परिवर्तन नहीं होता है और केवल कीमत ही बदलती है तब पूर्ण प्रतियोगिता संतुलन के अंतर्गत और अधिक उत्पादन OQ होगा और कीमत घटकर PQ हो जाएगी। हम यह भी देखते हैं कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत उत्पादन OQ′ है जो कम है तथा कीमत P′Q′ है जो अधिक है।

इस प्रकार की तुलना से यह पता चलता है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत क्रेताओं को अधिक कीमत देनी होती है या पूर्ण प्रतियोगिता की तुलना में घटिया किस्म की वस्तु को स्वीकार करना होता है। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की अपेक्षा एकाधिकारी प्रतियोगिता कम कुशल होती है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता में निहित बरबादियों के संबंध में सुझाव और उसके फलस्वरूप होने वाले विवाद के कारण निम्नलिखित हैं।

i) जब अनेक उत्पादक अलग-अलग किसी ऐसी वस्तु का उत्पादन और पूर्ति करने लगते हैं जो दूसरों से भिन्न होती है तथा बाज़ार में जब एक-एक उत्पादक का अंश अत्यंत अल्प मात्रा में होता है, तब वह बड़े पैमाने की किफायतों को पूर्णतः काम में नहीं ला सकता। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उसकी लागत अधिक हो जाएगी तथा उस हद तक क्रेताओं को क्षति उठानी होगी।

ii) बिक्री लागतों अथवा विज्ञापनों पर होने वाले व्यय प्रायः सूचनात्मक न होकर प्रलोभक और गुमराह करने वाले होते हैं। विज्ञापनों पर होने वाले खर्चों का भार अंततः क्रेताओं पर ही जाता है जिसका रूप होता है प्रत्यक्ष रूप में वस्तु की कीमतों में हुई वृद्धि तथा विज्ञापन के फलस्वरूप वस्तु के किसी ब्रांड के प्रति पैदा हुई निष्ठा। ऐसी निष्ठा के कारण बाज़ार में सही अर्थों में प्रतियोगी स्थितियां नहीं आ पातीं।

iii) एकाधिकारी प्रतियोगी का संतुलन उस बिन्दु पर होता है जो निम्नतम औसत लागत और अनुकूलतम उत्पादन के बिन्दु के बहुत पहले ही आ जाता है।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के सिद्धांत के प्रतिपादक चेम्बरलीन का कहना है कि इस बाज़ार ढांचे से होने वाली बरबादियों पर विचार करते समय हमें यह भी याद रखना चाहिए कि विभिन्न किस्म की वस्तुओं का उत्पादन इसी के चलते हो पाता है। उपभोक्ता की संतुष्टि का आधार केवल कीमत को ही नहीं मानना चाहिए। इसका आधार तो यह भी होता है कि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के बीच से वह पसंद कर सकता है। पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत तो सभी उत्पादक लगभग एक ही किस्म की किसी वस्तु का उत्पादन करते हैं परंतु एकाधिकारी प्रतियोगिता के अधीन वे विभिन्न किस्म की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। एकाधिकारी प्रतियोगिता से होने वाले इस लाभ को ध्यान में रखना चाहिए।

जहां तक बिक्री या विज्ञापन लागतों का संबंध है, वे हानिकारक तो हो सकते हैं परन्तु साथ-ही-साथ कभी-कभी वे उत्पादक के कुल औसत लागत वक्र का इस सीमा तक स्थानांतरण कर सकते हैं कि संतुलन बिन्दु तक पहुंचने में कोई निष्क्रियता नहीं होती या उत्पादन के किसी आगत की बरबादी नहीं हो पाती।

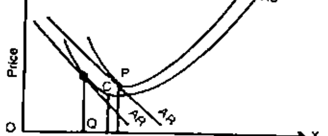

चित्र 15.12 का ध्यान पूर्वक अध्ययन कीजिए।

उत्पादन लागतों में बिक्री लागतों को जोड़ने के बाद कुल औसत लागत वक्र AAC का AR, वक्र के साथ स्पर्श बिन्दु P बिन्दु पर हो जाता है जहां पर संतुलन उत्पादन OQ है। इसके विपरीत निम्नतम औसत उत्पादन लागत CQ' और इष्टतम (Optimum) उत्पादन OQ' है। हम देख सकते हैं कि संतुलन उत्पादन OQ इष्टतम उत्पादन OQ' से अधिक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षमता के आधिक्य और संसाधनों की बरबादी की स्थिति सदा ही नहीं होती। बिक्री लागत कुल औसत लागत वक्र का स्थानान्तरण इस प्रकार कर सकती है कि संतुलन पर उत्पादन क्षमता उत्पादन से अधिक या कम हो सकती है।

एक अन्य स्थिति में भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। यह वह स्थिति है जिसका विश्लेषण कुल लागत पर कीमत निर्धारण सिद्धांत के संबंध में किया गया था। उस विश्लेषण में हमने देखा था कि एकाधिकारी प्रतियोगी की दृष्टि यदि अल्पकालिक समंजन पर न होकर दीर्घकालिक समंजन पर है तब वह अपने संतुलन को इस प्रकार निश्चित कर सकता है कि उसकी कीमत औसत उत्पादन लागत के बराबर हो। हम पहले ही देख चुके हैं कि केवल अल्पकाल में ही उसे अपनी औसत लागत के ऊपर अधिशेष मिलता है। दीर्घकाल में तो बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश पर किसी प्रकार के अवरोध के न होने के कारण यह अधिशेष लुप्त हो जाएगा और उसे उस कीमत पर उत्पादन करना होगा जो उसकी औसत लागत के बराबर हो जाती है और इस प्रकार उसे कोई अधिशेष नहीं मिल पाता।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत यदि उत्पादक कुल लागत पर कीमत-निर्धारण प्रणाली को काम में लाता है तब उसका उत्पादन इष्टतम उत्पादन से अधिक हो सकता है। यह सच है कि कुल लागत पर कीमत-निर्धारण के अंतर्गत अधिशेष अधिकतम नहीं किया जा सकता जैसा कि सीमांत लागत और सीमांत आय के समान होने की स्थिति में होता है। कम से कम अल्पकाल में तो अपसामान्य लाभ कमाने की गुंजाइश बनी रहती है। और यदि इस प्रकार के लाभ और रुचि रखने वाले उत्पादक मौजूद हैं तब उनकी स्थिति में संतुलन उस बिंदु पर होगा जो इष्टतम उत्पादन के बिन्दु से पहले ही आ जाता है। उनकी स्थिति में संसाधनों की निष्क्रियता और बरबादी को रोका नहीं जा सकता।

एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत होने वाले उत्पादन के एक प्रश्न, जिसके संबंध में कोई भी विवाद नहीं है, के होने का कारण यह है कि एकाधिकार के समान इस स्थिति में भी कीमत सीमांत उत्पादन लागत के बराबर नहीं होती। एकाधिकार के संबंध में चर्चा के दौरान हमने देखा था कि कीमत जब सीमांत लागत के बराबर नहीं होती तब तक उसके फलस्वरूप संसाधनों का उप-इष्टतम बंटवारा किस प्रकार से होता है। इसलिए इस अर्थ में कि एकाधिकारी प्रतियोगी द्वारा ली जाने वाली कीमत कभी भी सीमांत लागत के बराबर नहीं होती बल्कि वास्तव में उससे अधिक होती है, इस प्रकार के बाज़ार के बंटवारे संबंधी कुशलता सदा ही इष्टतम से कम होती है।

बोध प्रश्न ख

1 कुल लागत पर कीमत निर्धारण से आप क्या समझते हैं।

....

....

....

2 साधनों की बरबादी से आप क्या समझते हैं।

....

....

....

3 बताइए निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।

i) एकाधिकारी प्रतियोगिता में मांग वक्र नीचे की ओर झुकता है।

ii) एकाधिकारी प्रतियोगिता में औसत लागत वक्र और औसत आय वक्र कुछ हद तक एक दूसरे पर निर्भर होते हैं।

iii) एकाधिकारी प्रतियोगी विभिन्न किस्म की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं।

iv) पूर्ण प्रतियोगिता की तलना में एकाधिकारी प्रतियोगिता में क्रेता को या तो उच्च मूल्य चुकाना पड़ता है या उसे निम्न कोटि की वस्तु को स्वीकारना पड़ता है।

v) अल्पकाल में एकाधिकार प्रतियोगी अपनी औसत कीमत के ऊपर अधिशेष नहीं कमा सकता।

4 निम्नलिखित प्रश्नों के लिए सही उत्तर का चुनाव करें

i) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत क्रेताओं की संख्या ·········· होती है।

क) कम ख) पांच ग) दो घ) बहुत बड़ी

ii) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत मांग वक्र ·········· होता है।

क) समस्तर

ख) उर्ध्वस्तर

ग) दाईं ओर ऊपर उठता हुआ

घ) दाईं ओर नीचे गिरता हुआ।

iii) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत संतुलन कीमत

क) कुल उत्पादन लागत के बराबर होती है।

ख) औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है।

ग) सीमांत उत्पादन लागत के बराबर होती है।

घ) ऊपर के किसी के भी बराबर नहीं होती।

iv) बिक्री लागत की प्रवृत्ति ·········· होती है।

क) समस्तर होने की

ख) सदा ऊपर उठने की

ग) सदा नीचे गिरने की

घ) U-आकार के होने की।

v) एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत उत्पादन में संतुलन तब होता है जब

क) सीमांत आय कीमत से अधिक होती है।

ख) सीमांत आय कीमत के बराबर होती है।

ग) सीमांत लागत औसत लागत से अधिक होती है।

घ) सीमांत लागत सीमांत आय के बराबर होती है।

15.7 सारांश

एकाधिकारी प्रतियोगिता उस बाज़ार स्थिति की सूचक है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी अधिक होती है कि प्रत्येक विक्रेता कुल बाज़ार के एक छोटे भाग में ही अपनी वस्तु को बेच सकता है, वस्तु की कीमत को प्रभावित करने के संबंध में उसकी स्थिति

उतनी मजबूरी की नहीं होती जैसी की पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत होती है।

इसके फलस्वरूप उसके सम्मुख का मांग वक्र समस्तर सीधी रेखा नहीं होती। इकाई 13 में हम देख चुके हैं कि इस प्रकार के मांग वक्र का अर्थ यह होता है कि विक्रेता प्रचलित कीमत पर अपनी वस्तु को बेच तो सकता है लेकिन वह कीमत को प्रभावित नहीं कर सकता या उसमें परिवर्तन नहीं कर सकता। परन्तु एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत ऐसी स्थिति नहीं होती। उस स्थिति में चूंकि कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन किया जा सकता है अंतः एकाधिकारी प्रतियोगी के सम्मुख का मांग वक्र अपूर्ण प्रतियोगी के मांग वक्र जैसा होगा अर्थात् दाईं ओर अधोमुखी होगा। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि उत्पादन के विभिन्न स्तरों के लिए सीमांत आय की अनुसूची को भी इसी प्रकार से तैयार किया जाएगा। इसके अतिरिक्त औसत आय की तुलना में सीमांत आय कम होगी।

सीमांत और औसत लागत वक्रों के U-आकार के होने से संतुलन को निर्धारित करने वाले सीमांत आय और सीमांत लागत वक्रों का कटान एकाधिकार और अपूर्ण प्रतियोगिता इन दोनों ही स्थितियों में होगा। परंतु इनके बीच एक अंतर होता है। एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत चूंकि विक्रेताओं की संख्या बहुत होती है और नई फर्मों के प्रवेश पर कोई अवरोध नहीं होता, अतः विक्रेता अपनी औसत उत्पादन लागत के ऊपर अधिशेष अर्जित नहीं कर सकता। इसी प्रकार के अधिशेष को अर्जित करने के आकर्षण से नई फर्मों के प्रवेश और बहुत बड़ी संख्या वाले वर्तमान फर्मों के साथ तीव्र प्रतियोगिता के फलस्वरूप यह अधिशेष बहुत ही कम होता जाएगा तथा दीर्घकाल में यह बिल्कुल ही लुप्त हो जाएगा, और कीमत औसत उत्पादन लागत के ठीक बराबर हो जाएगी।

इस प्रकार एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत सीमांत आय को सीमांत लागत के बराबर होना होता है परन्तु अंततः औसत आय को औसत उत्पादन लागत के भी बराबर होना होता है। मांग वक्र के ढलवां होने से ऐसा तब होता है जब यह मांग वक्र औसत लागत वक्र को ठीक उस बिन्दु के ऊपर स्पर्श करता है, जहां पर सीमांत आय और सीमांत लागत वक्र एक दूसरे को काटते हैं। संतुलन की इस स्थिति में उत्पादन इष्टतम से कम होगा और औसत लागत न्यूनतम से अधिक होगी। इस प्रकार पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति की तुलना में एकाधिकारी प्रतियोगिता के अंतर्गत कीमत अधिक होती है तथा उत्पादन कम होता है। इसके अतिरिक्त चूंकि इष्टतम स्तर तक पहुंचने के पूर्व ही उत्पादन होना बंद हो जाता हैं, अतः एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थिति में क्षमता निष्क्रिय रह जाती है तथा संसाधनों की बरबादी होती है।

15.8 शब्दावली

एकाधिकारी प्रतियोगिता (Monopolistic competition): बाज़ार की वह स्थिति जिसमें कोई विक्रेता वस्तु की कीमत को प्रभावित कर सकता है। ऐसा इसके बावजूद होता है कि विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी होती है और प्रत्येक विक्रेता का नियंत्रण बाज़ार पूर्ति के अत्यंत नगण्य भाग पर ही होता हैं।

उत्पादन विभेदन (Product differentiation): कोई विक्रेता जब किसी एक ही वस्तु की विभिन्न किस्म की पूर्ति करने का प्रयास करता है।

प्रवेश पर अवरोध (Barrier to entry): वह स्थिति जब किसी कारण से नई फर्मों द्वारा बाज़ार में प्रवेश के संबंध में कठिनाइयां पैदा कर दी जाती है।

बिक्री लागत (Selling cost): किसी वस्तु की बिक्री के संवर्धन पर किया गया व्यय।

उत्पादन लागत (Production cost): किसी वस्तु को उत्पादित करने पर किया गया व्यय, उसकी बिक्री के संवर्धन पर नहीं।

कुल लागत पर कीमत निर्धारण (Full-cost pricing): विक्रेता जब अपनी कीमत को इस प्रकार से निर्धारित करता है कि वह उसकी औसत उत्पादन लागत के बराबर होती है। इस संबंध में वह अपनी सीमांत लागत को सीमांत आय के बराबर करने का प्रयास नहीं करता जिसके फलस्वरूप उसे कोई अपसामान्य लाभ नहीं हो पाता।

इष्टतम उत्पादन (Optimum output): वह उत्पादन जो U-आकार के औसत उत्पादन लागत वक्र के निम्नतम बिन्दु के अनुरूप होता है।

15.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही v) सही

ख 3 i) सही ii) सही iii) सही iv) सही v) गलत

4 i) घ ii) घ iii) ख iv) घ v) घ

15.10 स्वपरख प्रश्न

1) एकाधिकारी प्रतियोगिता की संकल्पना को भली भांति स्पष्ट करें।
2) बाज़ार में फर्मों के निर्बाध प्रवेश संबंधी कठिनाइयां किन कारणों से पैदा होती हैं?
3) उत्पादन और बिक्री लागतों के बीच अंतर बताइए। दिखाइए कि किसी एकाधिकारी प्रतियोगी के कुल औसत लागत वक्र को कैसे खींचना चाहिए?
4) एकाधिकारी प्रतियोगिता की स्थितियों में दीर्घकालिक संतुलन का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है?
5) कुल लागत पर कीमत निर्धारण सिद्धांत क्या है? इसके चलते इष्टतम उत्पादन से भी अधिक उत्पादन किस प्रकार हो पाता है?

नोट: इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए ये प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 16 अल्पाधिकार (OLIGOPOLY)

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 अल्पाधिकार की विशेषताएं और प्रकार
16.3 एकाधिकारी और अल्पाधिकारी फर्में
16.4 अल्पाधिकारी उद्योग में कीमत और उत्पादन संतुलन
16.5 अल्पाधिकार-संकेंद्रण और कपट समझौता
16.6 औपचारिक कपट समझौते के बिना ही अल्पाधिकारी कीमत-निर्धारण
16.7 अल्पाधिकार का आर्थिक मूल्यांकन
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.11 स्वपरख प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

- अल्पाधिकार की व्याख्या कर सकें और उसकी विशेषताओं को बता पाएं
- एकाधिकारी फर्म और अल्पाधिकारी फर्म के बीच अंतर बता सकें
- अल्पाधिकार के अंतर्गत संतुलन कीमत और उत्पादन के निर्धारण संबंधी परस्पर निर्भरता के परिणामों को स्पष्ट कर सकें
- बता पाएं कि अल्पाधिकारी आपस में प्रतिस्पर्धा करने के बजाए कपट समझौता क्यों करते हैं
- उपभोक्ताओं और समाज के लिए इस प्रकार के कपट समझौते के अभिप्राय को स्पष्ट कर सकें।

16.1 प्रस्तावना

इकाई 14 और 15 में हम देख चुके हैं कि पूर्ण प्रतियोगिता के अभाव में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है जो एकाधिकार या एकाधिकारी प्रतियोगिता का रूप ले लेती है। परन्तु अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत की सभी स्थितियां इन्हीं दो प्रकार के बाज़ारों के अंतर्गत नहीं आ जातीं। क्योंकि विक्रेताओं की संख्या यदि बहुत बड़ी नहीं परन्तु एक से अधिक है तब अपूर्णता की कुछ विशेषताएं हो सकती हैं जिन्हें समझने और उनका विश्लेषण करने की आवश्यकता पड़ती है। यदि विक्रेताओं की संख्या अधिक है तब उत्पाद विभेदन की क्षमता के चलते प्रत्येक विक्रेता अपनी वस्तु की कीमत को कुछ हद तक प्रभावित कर सकता है; जो पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में नहीं होता क्योंकि तब उत्पाद विभेदन के न होने के कारण विक्रेता के पास अपनी वस्तु की कीमत पर प्रभाव डालने की शक्ति नहीं होती। इसके विपरीत, एकाधिकार नामक बाज़ार स्थिति में केवल एक ही विक्रेता का बाज़ार पर प्रभुत्व होता है। अतः उसके पास कीमत को प्रभावित करने की शक्ति होती है। इन दोनों के बीच ऐसी भी स्थिति हो सकती है जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि इनमें से प्रत्येक का प्रभाव बाजार

के एक बहुत बड़े भाग पर होता है। अतः वह कीमत को प्रभावित करने की स्थिति में तो होता है, फिर भी ऐसा वह इस भय से नहीं कर पाता कि कीमत-स्पर्धा में उसके प्रयास को अन्य विक्रेता निष्फल कर देंगे या वे और भी बदतर स्थिति ला देंगे। इस प्रकार, एकाधिकार और एकाधिकारी प्रतियोगिता इन दोनों से ही भिन्न स्थिति आ जाती है। यह स्थिति अल्पाधिकार के नाम से जानी जाती है।

इस इकाई में हम अल्पाधिकार, एकाधिकारी फर्म और अल्पाधिकारी फर्म के अर्थ और उनकी विशेषताओं के संबंध में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे। इसके अतिरिक्त, अल्पाधिकारी उद्योग में कीमत तथा उत्पादन संतुलन, अल्पाधिकार-संकेन्द्रण तथा औपचारिक कपट समझौते के बिना ही कपट समझौता और कीमत-निर्धारण का स्पष्टीकरण किया जाएगा। साथ ही अल्पाधिकार का आर्थिक विश्लेषण भी किया जाएगा।

16.2 अल्पाधिकार की विशेषताएं और प्रकार

आप देख चुके हैं कि बाज़ार-ढांचे की पहचान प्रायः उसमें खरीद-बेच करने वाले विक्रेताओं की संख्या से होती है। यदि विक्रेताओं की संख्या बहुत बड़ी है, तब पूर्ण प्रतियोगी या एकाधिकारी प्रतियोगी बाज़ार ढांचा होता है, परन्तु उनकी संख्या यदि कम है तब एकाधिकार या अल्पाधिकार की स्थिति होती है। अल्पाधिकार के अंतर्गत विक्रेताओं की संख्या का एक से अधिक होना आवश्यक है परन्तु एकाधिकार की स्थिति में एक ही फर्म भी हो सकती है।

फिर हमें मानना होगा कि विक्रेताओं की संख्या कम होने मात्र से ही स्थिति स्पष्ट नहीं हो जाती। एकाधिकार की स्थिति में भी विक्रेता अल्प संख्या में हो सकते हैं। इस संबंध में ध्यान देने की बात तो यह है कि अल्पाधिकार की स्थिति में कुछ थोड़ी सी फर्मों में से प्रत्येक फर्म वस्तु की कीमत, उत्पादन, किस्म, विक्रय आदि को प्रभावित कर सकती है परन्तु एकाधिकार की स्थिति में बाज़ार की अन्य फर्मों की प्रतिक्रिया की परवाह किए बिना ही केवल एक ही फर्म उपर्युक्त कार्यों को कर सकती है।

इस प्रकार, अल्पाधिकार की स्थिति में:

क) कुछ थोड़े से विक्रेताओं में से प्रत्येक का प्रभाव बाज़ार के एक बहुत बड़े भाग पर होना चाहिए।

ख) अतः इनमें से प्रत्येक एक-दूसरे का तीव्र प्रतियोगी होता है और तीव्र प्रतियोगिता की प्रवृत्ति होती है।

ग) इस प्रवृत्ति के कारण कोई भी विक्रेता, यह जानने का प्रयास किए बिना कि अन्य विक्रेता क्या करने वाले हैं, अपनी कीमत, उत्पादन, किस्म, उत्पाद और विज्ञापन लागत को निश्चित नहीं कर सकता।

अल्पाधिकार विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं। अल्पाधिकार का वर्गीकरण पूर्ण अल्पाधिकार और अपूर्ण अल्पाधिकार के रूप में किया जा सकता है। पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति वह होती है जिसमें उत्पादक उत्पाद विभेदन नहीं करते। इस कारण प्रतियोगिता करना और भी कठिन इसलिए हो जाता है कि कीमत-युद्ध का अंत नहीं हो पाता और कीमत का निर्धारण अधिकतम, जोकि औसत उत्पादन लागत से बहुत अधिक होती है, और न्यूनतम, जो औसत उत्पादन लागत के बराबर हो सकती है, के बीच कहीं पर भी हो सकता है। यहां हम देखेंगे कि पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति में ऐसा क्यों होता है? उत्पादन विभेदन से एक लाभ यह होता है कि कोई उत्पादक यदि अन्य उत्पादकों की अपेक्षा कुछ अधिक कीमत ले रहा है तो भी वह आशा कर सकता है कि बाज़ार में उसका अंश पहले जैसा ही बना रहेगा। ऐसा इसलिए कि उसका उत्पाद औरों से कुछ भिन्न होता है। विज्ञापन द्वारा वह अपने ग्राहकों को यह जताने में भी सफल हो सकता है कि उसकी वस्तु अन्य उत्पादकों की तुलना में अच्छी किस्म की है। परन्तु जहां पर उत्पादन विभेदन नहीं होता वहां ऐसा नहीं हो सकता। पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति में विज्ञापित करने और बिक्री लागत को लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यहां तो एकमात्र उपाय है कीमत प्रतियोगिता करना और वह भी तीव्र प्रकार की। ऐसी स्थितियों में कोई उत्पादक यदि अपने उत्पाद की कीमत

बढ़ाता है तब उसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी और किसी को निश्चित रूप से मालूम नहीं होता कि इस क्रिया-प्रतिक्रिया का अंत कहां होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि अल्पाधिकार का प्रारंभ उस कीमत से होता है जो उत्पादन लागत से बहुत अधिक होती है परंतु कीमत युद्ध के कारण अंत में यह कीमत कम होते-होते औसत उत्पादन लागत के बराबर हो जाती है।

पूर्ण अल्पाधिकार की स्थितियों में संतुलन और भी कठिन हो जाता है तथा अन्य प्रकार के अल्पाधिकारों की तुलना में इस स्थिति में बाज़ार में और भी अधिक अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती है।

पूर्ण अल्पाधिकार के विपरीत अपूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत उत्पाद विभेदन होता है। हम देख सकते हैं कि ऐसे बाज़ार के अंतर्गत किसी न किसी प्रकार की कीमतेतर प्रतियोगिता (non-price competition) भी होगी। अपने उत्पाद को औरों से भिन्न दिखाने का प्रयास किया जाएगा और इस प्रकार केवल कीमत-स्पर्धा पर निर्भरता कुछ मात्रा में घट जाएगी। अपूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत जिस हद तक कीमतेतर प्रतियोगिता हो सकती है, उस तक कीमत युद्ध अनिश्चितता तो ला सकता है, परन्तु संभवतः यह अनिश्चितता उस प्रकार की नहीं होगी जैसी कि पूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत होती है। अतः अपूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत औसत लागत स्तर के ऊपर कीमत की गतिविधि जिस हद तक होगी वह पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति की तुलना में कम होगी। फिर भी इस हद का सीमित होना पूर्ण अल्पाधिकार की तुलना में अपूर्ण अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत को अधिक निर्धारी (determinate) नहीं बना देता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अल्पाधिकारी बाज़ार में अनिश्चितता और उसके फलस्वरूप होने वाली संतुलन में अनिर्धार्यता (indeterminateness) को होने से रोका नहीं जा सकता। इसीलिए अपने को बचाए रखने के लिए अल्पाधिकारी रोचक संगठनात्मक व्यवस्था के संबंध में सहमत हो जाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्थाएं कार्टेल (cartel), विलयन (merger), गुट (ring) आदि हैं।

कार्टेल वह व्यवस्था है जिसके अंतर्गत विभिन्न फर्में आपस में संयोजन केवल कीमत को निश्चित करने के उद्देश्य से ही नहीं करतीं बल्कि उनका उद्देश्य बाज़ार में प्रत्येक के अंश के संबंध में सहमत होना भी होता है। अतः उनका प्रयोजन संयुक्त रूप से लाभ को अधिकतम करने का होता है। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि कोई कार्टेल बाज़ार में अन्य फर्मों के प्रवेश पर रोक लगाने का प्रयास तो कर सकता है, परन्तु ऐसा करने का उसके पास कोई विधि सम्मत साधन (legal means) नहीं होता। ओपेक (Organisation of Petroleum Exporting Countries) एक कार्टेल है जो तेल की कीमत को निर्धारित करने तथा विश्व तेल बाज़ार में सदस्य देशों के अंश को निश्चित करने का प्रयास करता है। कीमत और बाज़ार-अंश के संबंध में सहमत हो जाना तो सरल है परन्तु इस सहमति की व्यवस्था करना कठिन हो सकता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि स्पर्धा की भावना रखने वाले उत्पादकों में यह अंतर्निहित प्रवृत्ति होती है कि वे अपने बुद्धि कौशल से ऐसे उपायों द्वारा एक-दूसरे को पराजित कर दें जो आपसी सहमति (common agreement) का उल्लंघन करते हैं। कार्टेल को विलयन से भिन्न करने वाली मुख्य बात यह है कि इसके अंतर्गत अपनी अलग-अलग उत्पादन इकाइयों पर नियंत्रण का अधिकार अल्पाधिकारियों के हाथ में रहता है जबकि विलयन के अंतर्गत अलग-अलग इकाइयों का नियंत्रण केन्द्रीय संगठन ही करता है।

गुट उस संगठनात्मक व्यवस्था का नाम है जिसके अंतर्गत विकास के एक ही स्तर वाले उत्पादक अधिक कीमत लेने के प्रयोजन से आपस में संयोजन कर लेते हैं।

इन विभिन्न संगठनात्मक व्यवस्थाओं का मुख्य उद्देश्य यह देखना होता है कि कीमत-युद्ध (Price-War) न हो तथा जहां तक संभव हो नई फर्मों को बाज़ार में आने से रोका जा सके। अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत-निर्धारण के कुछ सिद्धांतों में प्रवेश पर अवरोध के संबंध में विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। उदाहरणार्थ सीमा-कीमत-निर्धारण (limit pricing) सिद्धांत यह बताता है कि अल्पाधिकारी उस कीमत को लेने का प्रयास करते हैं, जो न तो इतनी अधिक हो कि अर्जित अधिशेष की मात्रा बहुत अधिक हो जाए और न इतनी कम हो कि अधिशेष (Surplus) बहुत ही कम हो। इसलिए कीमत सीमित होती है। ऐसा कहने का अभिप्राय यह होता है कि अत्यधिक लाभ कमाने की इच्छा से आकर्षित होने वाले उत्पादकों को रोका जा सके।

अल्पाधिकार के अंतर्गत उद्देश्य यह होता है कि कीमत इतनी अधिक न रखी जाए कि उत्पादक उद्योग में प्रवेश करने लगें और न ही वह इतनी कम हो कि उत्पादकों को बहुत ही कम लाभ मिले। अल्पाधिकारी फर्में दो प्रकार की स्थितियों से बचने का प्रयास करती हैं। एक है तीव्र स्पर्धा, जिसके कारण भयावह कीमत और कीमतेतर प्रतियोगिता होती है और दूसरी है बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश की संभावना। इसलिए वे कीमत को इस प्रकार से निश्चित करने का प्रयास करते हैं ताकि इन दोनों ही प्रकार के खतरों से बचा जा सके। इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार से कीमत नियतन (price fixation) के फलस्वरूप ऐसी कोई निर्धारित कीमत नहीं हो सकती जिसे संतुलन कीमत कहा जा सके। इसका अर्थ यह है कि कोई अल्पाधिकारी क्या करना चाहेगा या उसे क्या करना चाहिए उसके संबंध में अनेक अस्थायी व्याख्याएं हो सकती हैं परन्तु जिस कीमत पर उसे संतुलन की स्थिति में माना जा सकता है उसके संबंध में कोई संतोषजनक सैद्धांतिक स्पष्टीकरण नहीं है।

16.3 एकाधिकारी और अल्पाधिकारी फर्में

कोई अल्पाधिकारी अपने मांग वक्र को उतनी आसानी से नहीं खींच सकता जैसा कि कोई एकाधिकारी कर सकता है। ऐसा इसलिए कि अपने उत्पाद की किस्म के संबंध में अंतिम निर्णय लेने में कठिनाई होने के कारण औसत और सीमांत लागत वक्रों तक पहुंचने में उसे बहुत कठिनाई होती है।

चित्र 16.1 को देखिए, जहां cc तथा dd वक्र क्रमशः उसके माग तथा सीमांत लागत वक्र हैं। परन्तु यदि संभावित कीमत या उत्पाद प्रक्रियाओं के संबंध में विचार किया जाए तब मांग और लागत वक्रों की स्थिति तथा आकार वैसे ही नहीं रह सकते। इस धारणा के आधार पर कि कीमत और उत्पाद प्रतिक्रिया एक ही प्रकार की होगी, उपर्युक्त वक्र क्रमशः d'd' और c'c' हो जाएंगे। ऐसी प्रतिक्रियाएं यदि और भी अधिक हों तब इन दो वक्रों में और भी परिवर्तन होते जाएंगे।

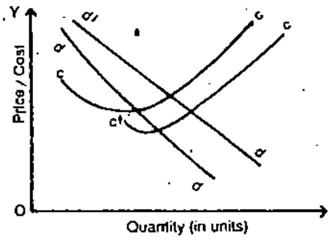

इस प्रकार अल्पाधिकार के अंतर्गत संतुलन करने वाले पूर्ति और मांग नामक प्रमुख साधनों के सही-सही व्यवहार के संबंध में सामान्यीकरण करना संभव नहीं होता। चूंकि मांग वक्र को बिल्कुल सही ढंग से खींचा नहीं जा सकता, अतः सीमांत आय वक्र का व्यवहार भी अज्ञात रह जाता है और ऐसी स्थिति में सीमांत आय और सीमांत लागत वक्रों की सहायता से संतुलन को निश्चित करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

इस कठिनाई के कारण और इसलिए भी कि चूंकि अल्पाधिकारी यह जानने की स्थिति में नहीं होता कि उसका लाभ अधिकतम कब होगा, कभी-कभी उसका लक्ष्य अपने लाभ को अधिकतम नहीं बल्कि केवल स्थिर और सुरक्षित करने का होता है।

अल्पाधिकार की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि वह अपनी कीमत, बिक्री के लिए दी जाने वाली वस्तुओं की किस्में, अपनी उत्पादन लागत, अपनी विज्ञापन और बिक्री लागत तथा अपनी सामान्य बाज़ार युक्ति जैसे कारकों में से किसी के भी संबंध में स्वतंत्र निर्णय लेने में असमर्थ होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विक्रेताओं के बीच परस्पर निर्भरता होती है और स्वतंत्र रूप से निर्णय नहीं लिया जा सकता। जहां तक संख्या में कम होना, अल्पाधिकार की विशेषता होने का प्रश्न है, यह महत्वपूर्ण तो है परंतु इस कमी से ही उस परस्पर निर्भरता के संबंध में पता नहीं चल सकता जो अल्पाधिकार को मूल्य सिद्धांत का गंभीर चुनौती बना देती है। अतः यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि अभी तक अल्पाधिकार के अंतर्गत संतुलन कीमत और उत्पादन के निर्धारण की समस्या का संतोषजनक उत्तर नहीं मिल पाया है।

16.4 अल्पाधिकारी उद्योग में कीमत और उत्पादन संतुलन

अभी हमने देखा है कि परस्पर निर्भरता अल्पाधिकार की मूल विशेषता है। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि एकाधिकार की विशेषता स्वतंत्रता होती है क्योंकि शेष बाज़ार के संबंध में ध्यान दिए बिना ही कोई एकाधिकारी अपना निर्णय ले सकता है। इसलिए एकाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण सरल हो जाता है, जबकि अल्पाधिकार के अंतर्गत परस्पर निर्भरता कीमत-निर्धारण को इतना जटिल बना देती है कि अंत में सामान्यत: एक प्रकार की अनिर्धार्य (indeterminate) संतुलन की स्थिति आ जाती है।

परस्पर निर्भरता के होने का कारण यह है: कोई विक्रेता यदि कोई विशेष कीमत लेना चाहता है या किसी वस्तु या उसकी किस्म को बेचना चाहता है तब उसे इस बात का अनुमान लगाना होता है कि इन सबके संबंध में उसके प्रतियोगी की वास्तविक प्रतिक्रिया क्या होगी और फिर उसे यह भी अनुमान लगाना होता है कि अपने प्रतियोगी की वास्तविक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप यदि वह कोई समंजन करता है तब वह प्रतियोगी क्या करने की सोचेगा। इसके फलस्वरूप परस्पर निर्भरता का अर्थ होता है अनेक वास्तविक या कल्पित प्रतिक्रियाओं और अंत:क्रियाओं के संबंध में अनुमान लगाना, जिसके फलस्वरूप केवल संतुलन के निर्धारण के ही संबंध में नहीं बल्कि अल्पाधिकारी बाज़ार के समस्या व्यवसाय के कार्यकलापों के संबंध में भी काफी अनिश्चितता आ जाती है।

सरल संतुलन विश्लेषण के अंतर्गत हम देखते हैं कि कोई उत्पादक अपने उत्पाद के लिए जो कीमत लेता है उसी के अनुसार उसके उत्पादन की मात्रा का निर्धारण होता है। परन्तु उत्पादन को यदि उन सभी संभावित कीमतों का फलन होता है जिन्हें अन्य उत्पादक भी ले सकते हैं तब विश्लेषण इतना जटिल और कठिन हो जाता है कि जब तक विक्रेताओं की संख्या, उनकी संभावित कीमतों, उनके उत्पाद की किस्म आदि के संबंध में निश्चित अनुमान नहीं लगाया जाता तब तक विश्लेषण करना कठिन होता है। इससे भी और कठिनाई की बात यह होती है कि अल्पाधिकारी को केवल अपने प्रतियोगी की कीमतों, उत्पादन, किस्म आदि के ही संबंध में अनुमान नहीं लगाना होता बल्कि उसे यह भी देखना होता है कि इन अनुमानों के प्रत्युत्तर में स्वयं वही यदि अपनी नीतियों को बदलता है तब उपर्युक्त में क्या परिवर्तन होंगे। अल्पाधिकारी की नीतियों में इस प्रकार के परिवर्तन के फलस्वरूप प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया के संबंध में पुन: अनुमान करने की आवश्यकता पड़ सकती है। यह कार्यवाही अनंत रूप से चलती रहती है। वर्तमान प्रतियोगियों के संबंध में ही यदि ऐसा किया जाता है तो कठिनाई आती ही है परन्तु यह कार्य यदि उन अज्ञात प्रतियोगियों के संबंध में भी किया जाता है जो बाज़ार में प्रवेश पर अवरोध न लगाए जा सकने की स्थिति में बाज़ार में आ जाएंगे तब तो स्थिति और भी बदतर हो जाती है।

अल्पाधिकार के अंतर्गत संतुलन कीमत और उत्पादन के विश्लेषण के संबंध में समय-समय पर विभिन्न प्रकार के प्रयास किए गए हैं। जो सरल और प्रारंभिक प्रकार के विश्लेषण के अंतर्गत नहीं आते उनके संबंध में यहां पर विवेचन नहीं किया गया है, हालांकि औरों के संबंध में विचार किया गया है। फिर भी जटिल स्थिति के संबंध में एक बात स्मरणीय है। ये अत्यंत प्रतिबंधात्मक धारणाओं के आधार पर किए जाते हैं। उदाहरणार्थ अनुमान प्राय: दो उत्पादकों के संबंध में लगाया जाता है। दो विक्रेता अल्पाधिकार को द्विअधिकार (duopoly) के विशेष नाम से जाना जाता है। हम देख सकते हैं कि द्वि-अधिकार के संबंध में विश्लेषण करना सरल क्यों होता है। विक्रेताओं के बहुत बड़ी संख्या में होने से प्रतिक्रिया-अंत:क्रिया की संभावनाएं बढ़ जाती हैं और इसके साथ ही साथ संतुलन के निर्धारण से संबंधित अनिश्चितताएं भी बढ़ जाती हैं। कभी-कभी विश्लेषण के दौरान यह भी मान लिया जाता है कि अल्पाधिकारी उद्योग में प्रवेश के संबंध में पूर्ण अवरोध होता है। ऐसा विश्लेषण की सुविधा के लिए भी किया जाता है। अन्य धारणाओं का संबंध कीमत और उत्पादन के संबंध में प्रतियोगियों की प्रतिक्रिया के साथ होता है। द्वि-अधिकार के विश्लेषण के दौरान प्राय: यह मान लिया जाता है कि प्रथम उत्पादक यदि अपने उत्पादन और कीमत में परिवर्तन कर लेता है तब भी अन्य प्रतियोगी उत्पादक ऐसा नहीं करते। फिर भी, इन अत्यंत प्रतिबंधक धारणाओं के बावजूद अल्पाधिकारी बाज़ार में संतुलन कीमत और उत्पादन की समस्या का संतोषजनक उत्तर नहीं मिल सका है।

फिर भी आगे के पृष्ठों में इस समस्या संबंधी और अधिक यथार्थवादी धारणाओं के

साथ की विधियों के संबंध में विचार किया गया है। ये धारणाएं प्रायः यह बताती हैं कि अल्पाधिकारी प्रतियोगिता इस भय से नहीं करते कि कहीं इनके चलते उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ न जाए। इसके विपरीत, वे औपचारिक या अनौपचारिक रूप से आपस में कपट समझौता करते हैं। कुछ अन्य विधियों के भी संबंध में विचार किया गया है, जिनका किसी कपट समझौते के साथ कोई संबंध नहीं होता।

बोध प्रश्न क

1 अल्पाधिकार की तीन विशेषताओं को लिखिए।

....

....

....

2 एकाधिकारी और अल्पाधिकारी वर्गों में अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

3 कार्टेल और विलयन के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

4 निम्नलिखित सही हैं या गलत।

i) अल्पाधिकारी बाज़ार में बाज़ार के ऊपर विक्रेता का कोई नियंत्रण नहीं होता।

ii) अल्पाधिकार की स्थिति में उत्पादक उत्पादन विभेदन करते हैं।

iii) अल्पाधिकारी संतुलन कीमत और उत्पाद में अनिर्धार्य होने की प्रवृत्ति होती है।

iv) गुट उस संगठनात्मक व्यवस्था को कहा जाता है जिसमें विकास के एक ही स्तर वाले उत्पादक अधिक कीमत लेने के लिए संयोजन करते हैं।

v) अल्पाधिकार में सीमांत आय वक्र अपूर्वकथनीय (unpredictable) होता है।

16.5 अल्पाधिकार संकेन्द्रण और कपट समझौता

जब अल्पाधिकारी कपट समझौता (collusion) करते हैं तब वे अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास अलग-अलग नहीं बल्कि संयुक्त रूप से करते हैं। यदि कोई अल्पाधिकारी व्यक्तिगत रूप से ऐसा प्रयास करता है तब वह अनिश्चितता की स्थिति में आ सकता है तथा उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। इसीलिए अल्पाधिकारी कुछ प्रकार के औपचारिक या अनौपचारिक सहमति के द्वारा कीमत, किस्म विभेद (quality differential), बिक्री संवर्धन, बाज़ार में हिस्सा बांटने, अन्य फर्मों के प्रवेश पर रोक लगाने आदि के संबंध में प्रायः आपस में व्यवस्था कर लेते हैं, जिससे वे सभी बाज़ार में टिके रह सकें। यह स्थिति प्रतियोगिता की स्थिति के बिल्कुल विपरीत होती है जिसमें प्रत्येक अपने आगे बढ़ने के प्रयास में लगा रहता है। उसे इस बात की चिंता

नहीं होती कि दूसरे बाज़ार में टिके रह पाएंगे या उनका सफाया हो जाएगा। कपट समझौते के द्वारा शक्ति का संकेन्द्रण इस प्रकार से हो जाता है जैसे कि वह एक ही के हाथ में हो।

चित्र 16.2 को देखें जिसमें संयुक्त लाभ अधिकतमकरण (profit maximisation) को दिखाया गया है।

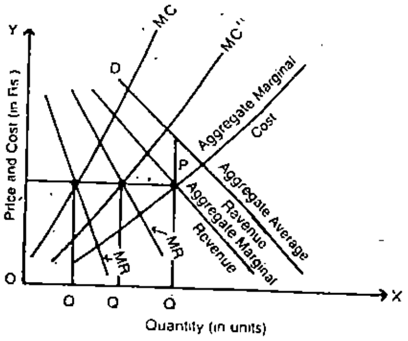

अपनी सुविधा के लिए हम मानकर चलते हैं कि बाज़ार में केवल दो ही एकाधिकारी फर्में हैं। मान लेते हैं कि फर्म I का सीमांत आय वक्र MR′ है तथा फर्म 2 का MR″ है। सबसे पहले हम इन दोनों ही फर्मों का एक संयुक्त सीमांत आय वक्र बनाते हैं। इस प्रकार के संयुक्त वक्र बनाने की विधि वही है जो कि भेदमूलक एकाधिकारी की स्थिति में होती है। किसी दी हुई सीमांत आय के लिए हम फर्म I और 2 की उत्पादित वस्तुओं की मांग के संबंध में पता लगाते हैं। फिर इन दोनों मांगों को जोड़ दिया जाता है और दी हुई सीमांत आय के अनुरूप विभिन्न बिन्दुओं के संबंध में पता लगाया जाता है। इसी प्रकार अन्य सीमांत आयों के संबंध में भी किया जाता है। इन बिन्दुओं को जोड़ने पर एक नया वक्र प्राप्त होता है, जो दोनों ही फर्मों के उत्पादन के लिए समस्त मांग के उन विभिन्न स्तरों को दिखाता है जो सीमांत आय के विभिन्न स्तरों के अनुरूप होते हैं। "समस्त" सीमांत आय के ही समान हम अलग-अलग सीमांत लागत वक्रों के योग को भी जान सकते हैं। इससे दो फर्मों के समस्त उत्पादन के विभिन्न स्तरों और उनके अनुरूप वाली विभिन्न सीमांत लागतों को दिखाने वाला कुल सीमांत लागत वक्र प्राप्त होगा। यह देखा जा सकता है कि "समस्त" सीमांत आय और सीमांत लागत वक्रों का कटाव बिन्दु उस कुल उत्पादन को दिखाएगा जिसे बाज़ार में बेचने के संबंध में दो अल्पाधिकारी सहमत हो जाएंगे। उत्पादन को जानने के बाद हम "समस्त" आय वक्र या मांग वक्र DD (जो दो अल्पाधिकारियों के अलग-अलग मांग वक्रों का योग भी होता है) की सहायता से उस कीमत के संबंध में पता लगाते हैं, जो ली जानी चाहिए। इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त लाभ को अधिकतम करने वाली कीमत और कुल उत्पादन का निर्धारण हो जाएगा।

अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण की समस्या के इस तरह से समाधान की रोचक विशेषताएं इस प्रकार हैं:

फर्में अपने उत्पादन का वितरण तो चित्र 16.2 में दी गई प्रणाली के अनुसार करेंगी (फर्म1 QQ′ उत्पादन की पूर्ति करेगी, जबकि फर्म 2 QQ″ उत्पादन भी करेगी) परन्तु उनके द्वारा ली जाने वाली कीमत एक ही समान अर्थात् QP होगी। ऐसा इसलिए होगा कि फर्में कीमत युद्ध न करने को सहमत हो चुकी हैं। ऐसा युद्ध उनके हित के विपरीत होगा। अतः उनके उत्पादन के बीच भेद हो सकता है परन्तु कीमत एक ही होगी।

विभिन्न फर्मों के उत्पादन को इस प्रकार का होना होगा कि उनकी अपनी-अपनी सीमांत लागतें एक ही समान हों तथा वे उनकी सम्बद्ध सीमांत आयों के बराबर हों।

इन शर्तों के पूरा होने के बाद ही उपर्युक्त चित्र (चित्र 16.2) में दिखाया गया संतुलन सही सिद्ध हो पाता है।

इस प्रकार का समाधान भेदमूलक एकाधिकार (discriminating monopoly) से संबंधित उस समाधान से मिलता-जुलता दिखाई देता है, जिसके संबंध में पिछली इकाई में चर्चा की गई थी। फिर भी, इनके बीच एक मूल अंतर है जिसके होने का कारण यह है कि भेदमूलक एकाधिकार की स्थिति में बाज़ार अलग-अलग होते हैं और प्रत्येक बाज़ार के

मांग वक्र की लोच दूसरे से भिन्न होती है। परन्तु उपर्युक्त चित्र में ऐसा कोई अंतर नहीं दिखाई देता।

कीमत-निर्धारण की समस्या का इस प्रकार का समाधान लगभग वैसा ही है, जैसा कि एकाधिकार की स्थिति में होता है। वास्तविकता तो यह है कि दो फर्मों के बीच केवल नाम का ही भेद होता है, वास्तव में तो ये एक ही उत्पादक के दो वृक्ष होती हैं। कम से कम उस समय तो ये ऐसी ही लगती हैं जब कीमत-निर्धारण और उत्पादन के अंशों के बंटवारे की प्रक्रिया के संबंध में विचार किया जाता है।

16.6 औपचारिक कपट समझौता के बिना ही अल्पाधिकारी कीमत निर्धारण

फिर भी, यह स्मरणीय है कि कपट समझौता युक्त अल्पाधिकार इस अर्थ में भी अनौपचारिक हो सकता है कि फर्में किसी विशेष समझौते से बद्ध नहीं होतीं। उनके बीच बेचे जाने वाले उत्पाद की किस्मों के बीच भेद, कीमतों में अंतर और उत्पादन के अंश के विभाजन के संबंध में अव्यक्त सहमति होती है और वे इस सहमति का पालन विस्तृत रूप में न करके व्यापक रूप में करने का प्रयास करती हैं। कभी-कभी इस प्रकार की अनौपचारिक कपट समझौता औपचारिक कपट समझौते की अपेक्षा अच्छी तरह कार्य करता है। फिर भी, इसका स्वरूप कपट समझौते का तो रहता ही है और चूंकि इस हद तक कोई प्रतियोगिता नहीं होती इसलिए प्रतियोगिता के अंतर्गत होने वाला लाभ कपट समझौता युक्त अल्पाधिकार की स्थिति में उपभोक्ताओं को नहीं मिल पाता।

मान लिया कि किसी अल्पाधिकारी बाज़ार की विभिन्न फर्मों का उद्देश्य किसी प्रकार का कपट समझौता करना नहीं है। इस स्थिति में वे अपनी कीमतों को किस प्रकार से निश्चित करेंगी। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि इस स्थिति में वे आपस में प्रतिस्पर्धा नहीं करेंगी बल्कि ऐसी किसी व्यवस्था को मान लेंगी जिसके अंतर्गत ली जाने वाली कीमत का निर्धारण बाज़ार की कोई विशेष फर्म कर देती है। व्यवहार में इसका अर्थ यह होता है कि किसी एक फर्म विशेष को अग्रणी मान लिया जाता है और उसे उस कीमत को निर्धारित करने का विशेषाधिकार दे दिया जाता है जिसे अन्य फर्में भी अपनी वस्तु की कीमत के रूप में लें। इसे कीमत नेतृत्व समाधान कहा जाता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि ऐसे समाधान में बाज़ार में हिस्सा लेने के संबंध में विशेष प्रकार की सहमति नहीं होती। केवल कीमत ही निश्चित कर दी जाती है तथा विनाशकारी कीमत-युद्ध से बचा जाता है। लेकिन निश्चित कीमत की लाभदायकता और बाज़ार के अंश के संबंध में अप्रत्यक्ष रूप से अग्रणी फर्म (leader firm) का ही बोलबाला रहता है। वास्तविकता तो यह है कि अन्य फर्मों की तुलना में अग्रणी फर्म ही कुल बाज़ार के बहुत बड़े भाग पर नियंत्रण करती है। इसका अर्थ यह होता है कि नेतृत्व के अंतर्गत हुए कीमत समाधान से अन्य अल्पाधिकारी फर्में संतुष्ट नहीं हो सकतीं।

अभी-अभी हमने जिस स्थिति के संबंध में विचार किया है वह किसी ऐसी फर्म के नेतृत्व से संबंधित है जिसका प्रभुत्व इस अर्थ में होता है कि बाज़ार में उसका अंश बड़ा होता है, उसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है और इसलिए वह बाज़ार के एक बहुत बड़े भाग पर नियंत्रण करती है। फिर भी, इसका अर्थ यह नहीं होता कि कीमत-नेतृत्व केवल एक ही प्रकार का होता है अर्थात् प्रमुख फर्म का नेतृत्व। कभी-कभी छोटे फर्में भी कीमत का नेतृत्व करती हैं। ऐसी फर्में दो प्रकार की होती हैं।

एक प्रकार ऐसी किसी छोटी फर्म का होता है, जिसका नियंत्रण तो बाज़ार के एक छोटे से ही भाग पर होता है लेकिन वह अपने उत्पादन लागत को बहुत कम बनाए रख सकती है। इसलिए अपनी वस्तु के लिए कीमत कम लेने पर भी इसे घाटा नहीं उठाना पड़ता। बड़ी फर्में इसे कीमत अग्रणी इसलिए मान लेती हैं कि लागत के अधिक होने के कारण वे स्वयं तंगी की हालत में होती हैं। छोटी फर्म द्वारा कीमत-नेतृत्व के दूसरे प्रकार की स्थिति वह होती है जब ऐसी फर्म केवल बाज़ार में हो रहे परिवर्तनों के भी संबंध में सतर्क और सजग नहीं रहती बल्कि उन परिवर्तनों के भी संबंध में जानकारी रखती है जिनका कि भविष्य में होने की संभावना होती है। ऐसी फर्म बाज़ार स्थिति के

बैरोमीटर का कार्य करने की क्षमता रखती है। अतः बाज़ार की स्थिति को देखते हुए इस फर्म को यदि विश्वास हो जाता है कि कीमत को बढ़ाने की आवश्यकता है तब अन्य फर्में भी अपनी कीमतों को बढ़ाकर इस छोटी फर्म का अनुसरण करेंगी। परन्तु इसके विपरीत, यह फर्म यदि महसूस करती है कि कीमत को घटाना चाहिए तब अन्य फर्में इसके विवेक पर विश्वास करके अपनी कीमत घटा देंगी।

छोटी फर्मों द्वारा इस प्रकार के कीमत-नेतृत्व के संबंध में परेशानी तब शुरू होती है जब अन्य फर्में बाज़ार की स्थिति की व्याख्या ऐसे ढंग से करने लगती हैं, जो इस विशेष फर्म की व्याख्या से भिन्न होती है। ऐसी स्थिति में कीमत युद्ध अवश्यंभावी हो जाता है।

अब हम 'स्वीजी' द्वारा दिए गए अल्पाधिकार संतुलन के निर्धारण नामक स्थिति को लेते हैं, जो इस धारणा पर आधारित है कि कीमत-युद्ध केवल कीमत में इस प्रकार से गिरावट की स्थितियों तक ही सीमित होता है कि यदि एक अल्पाधिकारी अपनी कीमत को घटाता है तब अन्य अल्पाधिकारी भी अपनी-अपनी कीमत को उस सीमा तक घटाएंगे कि बाज़ार में उनका अंश पहले जैसे ही बना रहे।

इसके अतिरिक्त, अल्पाधिकारी यदि अपनी कीमत बढ़ाता है तब उसके बाज़ार का एक अंश उसके प्रतियोगियों के हाथ में चला जाएगा। वह अपनी कीमत नहीं बढ़ाना चाहेगा।

स्वीजी का मत है कि ऐसी सीमा के अंतर्गत अर्थात् जब कोई अल्पाधिकारी अपनी कीमत को बढ़ाता है तब उसके प्रतियोगी वैसा नहीं करेंगे और जब वह कीमत को घटाता है तब वे भी उतना ही घटा देंगे, औसत आय वक्र अर्थात् मांग-कीमत वक्र के किसी बिन्दु पर किंक (kink) होगा। इसका महत्व यह है कि किंक के बिन्दु पर ली जाने वाली कीमत ऐसी होगी कि यदि उससे अधिक कीमत ली जाती है, तब प्रतियोगी अपनी वस्तुओं की कीमत नहीं बढ़ाएंगे परन्तु कीमत को यदि घटा दिया जाता है तब वे भी अपनी कीमत घटा देंगे। चित्र 16.3 को देखें जिसमें मांग वक्र की आकृति को दिखाया गया है।

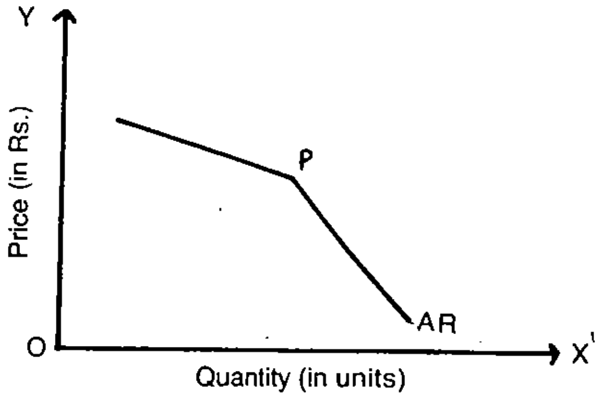

ऐसे मांग वक्र के संबंध में विचार करते समय यह बताया गया था कि चूंकि किंक के बिंदु पर अन्य प्रतियोगी अपनी कीमत नहीं बढ़ाएंगे, अतः अल्पाधिकारी के उत्पाद के लिए मांग कम हो जाएगी और यह कमी सामान्य अधोमुखी ढलान वाले मांग वक्र (downward sloping demand curve) में दिखाई जाने वाली कमी से अधिक होगी। यह इस तरह कहने के समान है कि अल्पाधिकारी मांग वक्र का यह अंश पहले से अधिक लोचदार हो जाएगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि किंक की बिन्दु पर मांग शून्य नहीं हो जाती हालांकि उत्पाद विभेदन के कारण अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमत को नहीं बढ़ा रहे हैं। परन्तु अल्पाधिकारी यदि कीमत घटा देता है तब उसके अनुरूप ही अन्य अल्पाधिकारी भी अपनी कीमतों को घटा देंगे जिससे इस अल्पाधिकारी के उत्पाद के लिए मांग में वृद्धि नहीं हो पाती। दूसरे शब्दों में, किंक के नीचे के भाग की दृष्टि से अल्पाधिकारी का मांग वक्र कम लोचदार होगा और उसका आकार सामान्य अपूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत के मांग वक्र के ही समान होगा।

पिछली एक इकाई में हमने यह भी देखा कि किसी अल्पाधिकारी के औसत आय वक्र में जब किंक हो जाता है तब उसका सीमांत आय वक्र असंतत (discontinuous) हो जाता है, जैसा कि नीचे के चित्र 16.4 में दिखाया गया है।

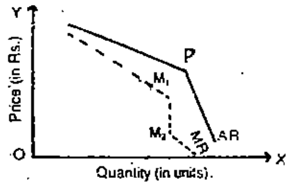

इस विशेष प्रकार के औसत और सीमांत आय वक्रों के साथ सीमांत लागत वक्र को लाकर स्वीजी अल्पाधिकारी के संतुलन का निर्धारण करने का प्रयास करता है। इस स्थिति में संतुलन की स्थिति चित्र 16.5 में दिखायी गयी है।

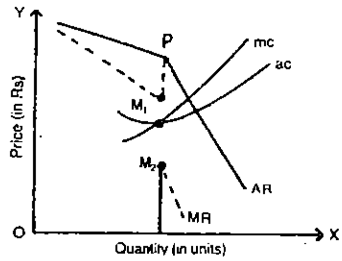

ऊपर दिए हुए चित्र 16.5 से यह स्पष्ट हो जाता है कि असांतत्य (discontinuity) के दो बिन्दुओं M_1 और M_2 के बीच सीमांत लागत और सीमांत आय के बीच कोई प्रतिच्छेदन (intersection) बिन्दु नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह होता है कि इन दो बिन्दुओं के बीच कोई निश्चित संतुलन (determinate equilibrium) नहीं होता।

इस प्रकार किंक युक्त मांग वक्र पर आधारित स्वीजी का समाधान भी संतोषजनक नहीं है क्योंकि अत्यंत सीमक (limiting) धारणाओं के बावजूद यह अल्पाधिकारी संतुलन को निर्धार्यता (determinateness) नहीं दे पाता। फिर भी, किंक युक्त मांग वक्र की सहायता से अल्पाधिकार की समस्या के समाधान की एक विशेषता प्रोत्साहक है और वह यह है कि किंक का हवाला देकर स्वीजी यह स्पष्ट करता है कि अल्पाधिकार के अंतर्गत कुछ तरह की कीमत में अनम्यता क्यों होती है। अल्पाधिकारी कीमत में कमी-बेशी करने का प्रयोग इसलिए नहीं करेगा कि यदि वह कीमत बढ़ाता है तो बाज़ार के कुछ अंश को उसे खोना पड़ेगा क्योंकि अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमतें नहीं बढ़ाएंगे और यदि कीमत घटाता है तब उसकी स्थिति यथापूर्व बनी रहेगी क्योंकि अन्य अल्पाधिकारी अपनी कीमतें घटा देंगे। इसका अर्थ यह होता है कि कीमत को एक बार नियत करने के बाद अल्पाधिकारी उसे बदलना नहीं चाहेगा क्योंकि कीमत के घटने या बढ़ने पर उसे कोई लाभ नहीं होगा। इस प्रकार, हम देखते हैं कि स्वीजी के विश्लेषण में एक गुण यह है कि इससे यह स्पष्ट करने में मदद मिलती है कि अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत अनम्य क्यों होती है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि एकाधिकारी प्रतिस्पर्धियों के समान ही अल्पाधिकारी भी वास्तविक जीवन में सीमांत लागत और सीमांत आय की बारीकियों में जाना पसंद नहीं करते। वे कीमत को इस प्रकार निश्चित करना पसंद करते हैं कि उसमें इतनी वृद्धि कर दी जाए जो उनकी समझ के अनुसार समुचित लाभ देते हुए औसत उत्पादन लागत के बराबर हो। यह वैसा ही है जैसा कि एकाधिकारी प्रतियोगिता के संदर्भ में विवेचन किया गया था। इसे कुल लागत पर (full cost) निर्देशित (administered) या वर्धित (mark-up) कीमत निर्धारण सिद्धांत के नाम से जाना जाता है।

क्या इस सिद्धांत से यह पता चल सकता है कि अल्पाधिकारी कीमत में नम्य होने की प्रवृत्ति क्यों होती है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि ऐसा हो सकता है बशर्ते कि अल्पाधिकारी के औसत लागत वक्र के निम्न भाग में सपाट (flat) होने की प्रवृत्ति हो, जैसा कि नीचे के चित्र 16.6 में दिखाया गया है।

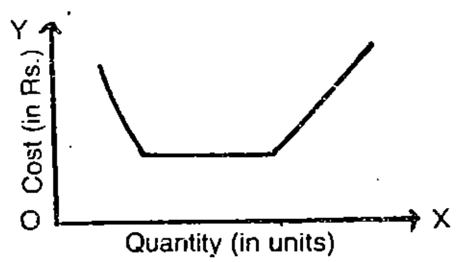

Fig.–16.6

चित्र 16.6 को देखिए जहां औसत लागत पहले गिरती है और फिर चढ़ती है परन्तु निम्न भाग पर, अर्थात् जहां यह न्यूनतम होती है, बहुत बड़ी मात्रा में उत्पादन तक यह एक समान बनी रहती है। यह स्पष्ट है कि यदि संतुलन का निर्धारण कुल लागत पर कीमत निर्धारण सिद्धांत के अनुसार होता है (अर्थात् लाभ के लिए कीमत में कुछ वृद्धि करके उसे औसत लागत के बराबर बना दिया जाता है) तब कीमत की प्रवृत्ति अनम्य होने की होगी, क्योंकि औसत लागत भी वैसी ही होती है।

संतुलन के निर्धारण की कुल लागत पर कीमत निर्धारण प्रणाली तो सरल है परन्तु उसके संबंध में यह धारणा संदेहास्पद है कि अपने लाभ को अधिकतम करने और इस उद्देश्य से सीमांत लागत और सीमांत आय के सही-सही मूल्य का पता लगाने के प्रति अल्पाधिकारी की दिलचस्पी नहीं होती। यह स्मरणीय है कि एकाधिकारी प्रतियोगिता और अल्पाधिकार के बीच बुनियादी भेद है। जैसा कि हम देख चुके हैं अल्पाधिकार की स्थिति में वर्तमान उत्पादक बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश पर अवरोध लगाने का प्रयास करते हैं। इन अवरोधों को लगाने का प्रयोजन यह होता है कि ऐसी स्थिति पैदा कर दी जाए कि वर्तमान फर्मों को अधिकतम लाभ मिले। अतः यह अजीब-सी बात लगती है कि अल्पाधिकारी अपनी सीमांत लागत और सीमांत आय को बराबर करके अधिकतम लाभ कमाने का प्रयास क्यों नहीं करते।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, लाभ को अधिकतम न करने के पक्ष में एकमात्र यही बात हो सकती है कि लाभ को अधिकतम करने के प्रयास के फलस्वरूप कीमत युद्ध हो सकता है जिससे अल्पाधिकार का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। परन्तु साथ ही साथ हम यह भी देख चुके हैं कि संयुक्त-लाभ अधिकतम करने जैसी अन्य विधियों द्वारा इस खतरे से भी बचा जा सकता है। अतः कोई अल्पाधिकारी किस मार्ग को अपनाएगा वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसकी स्थिति की क्या आवश्यकता है। इस प्रकार की आवश्यकताएं जिनके अंतर्गत उससे सम्बद्ध अल्पाधिकारियों की वास्तविक या कल्पित प्रतिक्रियाएं आ जाती हैं उस अनिश्चितता के अभिन्न अंग होती हैं जो अल्पाधिकार की विशेषताएं बताती हैं और जो संतुलन के निर्धारण को कठिन और अनिश्चित बना देती हैं।

16.7 अल्पाधिकार का आर्थिक मूल्यांकन

अल्पाधिकारी बाज़ार समुचित संतुलन कीमत का निर्धारण करने में तो असफल रहता ही है। इस संबंध में प्रश्न यह भी उठता है कि समाज के आर्थिक कल्याण की दृष्टि से इसकी क्या भूमिका है? क्या यह बाज़ार ढांचा इस योग्य है कि इसे प्रोत्साहन दिया जाए या सहन किया जाए?

ऐसे प्रश्न के उत्तर देने के संदर्भ में जिन बातों पर ध्यान देना होता है उनमें एक यह है कि प्रतियोगिता से बचने के प्रयास में अल्पाधिकारी प्रायः कपट समझौता करके अपनी वस्तु की कीमत को बहुत ऊंची रखते हैं और इस संबंध में उन्हें इस बात की चिंता नहीं होती कि उनके इस कार्य से बिक्री तथा उत्पादन की मात्रा सीमित हो जाती है और क्षमता का पूर्णतः उपयोग नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त, कीमत का प्रयोग प्रतियोगिता को रोकने के लिए किया जाता है जिससे चल रही फर्मों को विश्वास हो जाता है कि कीमतें ऊंची बनी रहेंगी तथा फैक्टरियों में लगे हुए संसाधनों का बहुत दिनों तक पूरा-पूरा उपयोग नहीं हो पाएगा। कपट समझौता तथा चालाकी द्वारा यदि कम से कम बाज़ार में नई फर्मों के प्रवेश पर रोक नहीं लगायी जाती तब इस प्रकार

की स्थिति से बचा जा सकता था। यह देखते हुए कि अल्पाधिकार कम से कम इस अर्थ में तो समाज के हित का विरोधी है, सरकार न्यास-विरोधी (anti-trust) कानूनों को बनाती तथा बाज़ार की कार्यवाहियों में हस्तक्षेप करती है।

ऐसी बात नहीं कि इस प्रकार का प्रत्येक हस्पक्षेप जनता की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने में सफल हो पाता है। इस संबंध में अल्पाधिकारी के अधिशेष को कम करने के उद्देश्य से उस पर सरकार द्वारा लगाए गए इकमुश्त कर का दृष्टांत लें। इसके फलस्वरूप अल्पाधिकारी के पास से कुछ संसाधन तो सरकार के पास चले जाएंगे लेकिन उपभोक्ताओं को लाभ नहीं भी हो सकता है क्योंकि इकमुश्त कर उपभोक्ता के सीमांत लागत वक्र में कोई परिवर्तन नहीं कर पाएगा। यदि हम यह मान लेते हैं कि सीमांत आय वक्र ज्यों का त्यों बना रहता है (ऐसा कोई कारण नहीं कि उत्पादक पर एकमुश्त कर लगाने से इसमें कोई परिवर्तन हो जाए) तब सीमांत लागत और सीमांत आय वक्रों का कटाव बिन्दु ज्यों का त्यों बना रहेगा। इसके फलस्वरूप उत्पादक का अधिकतम लाभ उत्पादन भी अपरिवर्तित ही बना रहेगा। चूंकि औसत आय वक्र भी पहले जैसा ही बना रहेगा अतः उपभोक्ताओं से ली जाने वाली कीमत भी अपरिवर्तित बनी रहेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि एकमुश्त कर द्वारा अल्पाधिकार लाभ को नियंत्रित करने के फलस्वरूप न तो उत्पादन में वृद्धि हो पाएगी और न ही कीमत में कमी होगी। अतः यह कहा जा सकता है कि अल्पाधिकारी बाज़ार ढांचे को इस प्रकार से नियंत्रित करने से उपभोक्ताओं को कोई लाभ नहीं हो पाता।

इसका सर्वोत्तम समाधान तो ऐसी स्थितियां बनाना है जिसके अंतर्गत बाज़ार में नई फर्मों का प्रवेश सुविधापूर्वक हो सके।

अल्पाधिकार का एक परिणाम यह होता है कि स्फीति और बढ़ जाती है। किंक युक्त मांग वक्र के संबंध में विचार करते समय हम देख चुके हैं कि अल्पाधिकार कीमत में अनम्य होने की प्रवृत्ति होती है। यही प्रवृत्ति उस समय भी बनी रहेगी यदि अल्पाधिकार कीमत को कुल लागत पर कीमत निर्धारण के सिद्धांत के आधार पर नियत किया जाता है और उत्पादन की काफी मात्रा के लिए उत्पादक का औसत लागत वक्र निम्न भाग पर सपाट बना रहता है। अल्पाधिकारी द्वारा ली जाने वाली कीमत की निश्चलता उस स्थिति में कीमत स्थिति को प्रभावित करने लगती है जबकि नई फर्मों को बाज़ार में आने नहीं दिया जाता, प्रतियोगिता का अभाव होता है तथा कीमत युद्ध से दूर रहते हुए उत्पादक कीमत को अधिक बनाए रखने के लिए आपस में कपट समझौता कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि सम्बद्ध वस्तु की कीमत बिल्कुल ही नीचे न गिरे। अल्पाधिकारी बाज़ार में उत्पादित होने वाली वस्तुओं की संख्या जितनी ही अधिक होगी, इन वस्तुओं की कीमतों से प्रभावित होने वाले सामान्य कीमत स्तर की प्रवृत्ति नीचे जाने के बजाय उतनी ही अधिक ऊंची रहने की होगी। इसी के परिणामस्वरूप मंदस्फीति की स्थिति आती है। अल्पाधिकार के चलते कीमतों में अधोमुखी अवस्था (downward swings) का आना कठिन हो जाता है क्योंकि कीमत युद्ध और अपने अस्तित्व पर खतरे के भय से अल्पाधिकारी बड़ी सावधानीपूर्वक प्रतियोगिता को आने नहीं देते।

अल्पाधिकार का एक लाभकारी प्रभाव यह होता है कि उत्पाद विभेदन, नवीन प्रक्रियाएं एवं प्रद्योगिकीय परिवर्तन आ जाते हैं। एकाधिकार के संबंध में विवेचन के दौरान हम देख चुके हैं कि एकाधिकारी के पास बहुत बड़ी मात्रा में संसाधन होते हैं, जिससे वह अनुसंधान और नवीन प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित कर सकता है और इस प्रकार समाज केवल नई प्रकार की वस्तुओं की ही दृष्टि से नहीं बल्कि उत्पादन की नई विधियों की भी दृष्टि से लाभान्वित होता है। कोई अल्पाधिकारी भी ऐसा ही कर सकता है। लेकिन इस संबंध में परेशानी यह है कि एकाधिकारी या अल्पाधिकारी के लिए नवीन विधियों को लाना आवश्यक नहीं होता। ऐसा विशेषकर उस स्थिति में होता है जब बिना इस बात की परवाह किए कि संसाधनों की बरबादी हो रही है, अल्पाधिकारी एक जैसी कीमत लेते हैं तथा बाज़ार को आपस में बांट लेते हैं। ऐसी स्थिति में नवीन प्रक्रियाओं को लाने के लिए वे बाध्य नहीं होते। फिर भी, जिस हद तक अल्पाधिकारी नवीन प्रक्रियाओं को लाते हैं उस तक वे समाज के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं।

बोध प्रश्न ख

1 अल्पाधिकारियों के कपट समझौते से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2 मूल्य नेतृत्व को परिभाषित कीजिए।

....

....

....

3 निम्नलिखित सही हैं या गलतः

i) किंक-युक्त मांग वक्र कीमत की अनम्यता का द्योतक होता है।

ii) औपचारिक कपट समझौते के अंतर्गत सभी अल्पाधिकारियों को चाहिए कि जो कीमत निश्चित कर दी गई हो, उसे ही वे लें।

iii) अल्पाधिकारी बाज़ार के अंतर्गत संसाधनों का उपयोग बड़ी दक्षतापूर्वक होता है।

iv) एकाधिकार के अंतर्गत कपट समझौता केवल औपचारिक ही होता है।

v) स्फीति पर अल्पाधिकार का अत्यधिक प्रभाव होता है।

4 निम्नलिखित विकल्पों में से सबसे उपयुक्त उत्तर का चुनाव कीजिएः

i) अल्पाधिकार में विक्रेता की संख्या होती हैः

क) एक से अधिक और आठ से कम

ख) आठ से अधिक लेकिन 20 से कम

ग) केवल एक विक्रेता

घ) विक्रेता की संख्या पर कोई प्रतिबंध नहीं।

ii) अल्पाधिकार में मूल्य निर्धारण होता हैः

क) एकाधिकार से आसान

ख) एकाधिकार से कठिन

ग) एकाधिकार के समान

घ) एकाधिकार के कीमत से कोई तुलना नहीं की जा सकती।

iii) पूर्ण अल्पाधिकार की स्थिति में संतुलन होता हैः

क) आसान

ख) कम कठिन

ग) बहुत कठिन

घ) कोई तुलना नहीं

iv) अल्पाधिकारी के लिए औसत और सीमांत लागत वक्रों तक पहुंचने में सामना करना पड़ता हैः

क) आसान कार्य का

ख) बहुत कठिन कार्य का

ग) कोई समस्या महसूस नहीं होती

घ) कुछ नहीं कहा जा सकता।

16.8 सारांश

अपूर्ण प्रतियोगिता की अनेक स्थितियों में से एक स्थिति मूल्य के सिद्धांत के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है। यह है अल्पाधिकार नामक बाज़ार ढांचा। इस चुनौती का कारण यह है कि अल्पाधिकार के अंतर्गत किसी भी विक्रेता को निश्चित रूप से यह पता नहीं होता कि उसकी वस्तु के लिए मांग वक्र और उसके लागत वक्र की आकृति क्या होगी। इसका कारण यह है कि वस्तु के उत्पादन की अंतिम प्रक्रिया के आते-आते उसकी क्या किस्म होगी इस संबंध में भी वह एकमात्र निर्णायक नहीं होता। अलग-अलग किस्मों के साथ लागत वक्र भी अलग-अलग होते हैं। इस प्रकार की अनिश्चितताएं इसलिए होती हैं कि अल्पाधिकारी "आत्मनिर्भर" नहीं बल्कि "एक दूसरे पर निर्भर" होते हैं। इस प्रकार की परस्पर निर्भरता अन्य किसी भी बाज़ार ढांचे में नहीं होती। अनिश्चितता का एक परिणाम यह होता है कि अल्पाधिकारी परस्पर प्रतियोगिता करने से बचने का प्रयास करते हैं। कीमत-प्रतियोगिता से वे विशेष प्रकार से बचना चाहते हैं क्योंकि एक विक्रेता जो कीमत निश्चित करेगा दूसरा उसकी प्रतियोगिता अवश्य करना चाहेगा। यही कारण है कि प्रायः अल्पाधिकारी आपस में प्रतियोगिता न करके कपट समझौता करते हैं। कपट समझौते का रूप औपचारिक अथवा अनौपचारिक हो सकता है। औपचारिक कपट समझौते के अंतर्गत वे एक कीमत निश्चित कर देते हैं, जिसे सभी को लेना होता है। इस कीमत का निर्धारण इस प्रकार से किया जाता है कि बाज़ार के सभी अल्पाधिकारी फर्मों का संयुक्त लाभ अधिकतम हो सके। अलग-अलग फर्मों की सीमांत आय और सीमांत लागत वक्रों को जोड़कर "कुल" सीमांत आय वक्र और "कुल" सीमांत लागत वक्र निकाले जाते हैं। इन दो "कुल" वक्रों के कटाव बिंदु से यह निर्धारित होता है कि अधिकतम लाभ कमाने के लिए कौन-सी कीमत समुचित होगी। अनौपचारिक कपट समझौते की स्थिति में कीमत अग्रणी (price leader) द्वारा कीमत निश्चित की जाती है। कीमत अग्रणी कोई बड़ी फर्म है या छोटी फर्म, यह इस बात पर निर्भर करता है कि "अग्रणी" के चुनाव के लिए अल्पाधिकारी किस मापदंड का प्रयोग करते हैं।

एक सुझाव यह दिया जाता है कि यदि हम किंक-युक्त मांग वक्र को लेते हैं तब सीमांत आय और सीमांत लागत वक्रों की सहायता से कीमत निश्चित की जा सकती है। इस प्रकार के वक्र को लेने के संबंध में केवल यही मान लेना आवश्यक होता है कि अल्पाधिकारी बाज़ार के अंतर्गत कीमत अनम्य होती है।

एक दूसरा सुझाव यह है कि सीमांत लागत और सीमांत आय वक्रों की बिलकुल ही उपेक्षा की जा सकती है। चूंकि किसी उत्पादक का दीर्घकालिक औसत लागत वक्र उत्पादन की बहुत बड़ी मात्रा के लिए अपने निम्न भाग पर सपाट बना रहता है, अतः कुल लागत पर कीमत निर्धारण सिद्धांत का प्रयोग करके हम उस कीमत को निश्चित कर सकते हैं, जो दीर्घकालिक औसत लागत के ही बराबर नहीं होती, बल्कि आगे चलकर उसमें अनम्य होने की भी प्रवृत्ति होती है।

इनमें से प्रत्येक समाधान के साथ अपनी-अपनी समस्याएं भी हैं जिस कारण ऐसा कोई संतोषजनक सिद्धांत नज़र नहीं आता जिसकी सहायता से अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत और उत्पादन संतुलन का सही रूप से निर्धारण किया जा सके। अल्पाधिकार के अंतर्गत उत्पादन प्रायः अनुकूलतम स्तर के कुछ पहले ही रुक जाता है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान फर्में आपस में कपट समझौता कर लेती हैं तथा वे संभाव्य फर्मों को बाज़ार में आने से रोकने का प्रयास करती हैं। इसके फलस्वरूप आर्थिक प्रणाली के अंतर्गत उत्पादन क्षमता निष्क्रिय बनी रहती है तथा संसाधनों की बरबादी होती है।

16.9 शब्दावली

अल्पाधिकार (Oligopoly): बाज़ार की ऐसी स्थिति जिसमें विक्रेताओं की संख्या इतनी कम होती है कि इनमें से प्रत्येक बाज़ार कीमत, वस्तु की किस्म और उत्पादन को प्रभावित करने में समर्थ होता है।

परस्पर निर्भरता (Interdependence): ऐसी स्थिति जिसमें कोई विक्रेता अपने प्रतियोगियों की प्रतिक्रियाओं के संबंध में ध्यान दिए बिना अपने व्यवसाय के संबंध में

स्वतंत्र रूप से कोई निर्णय नहीं ले सकता।

कपट समझौता (Collusion): आपस में प्रतियोगिता से बचने के लिए अल्पाधिकारी फर्मों द्वारा एक साथ मिलकर कार्य करना।

औपचारिक कपट समझौता (Formal collusion): औपचारिक सहमति पर आधारित कपट समझौता।

अनौपचारिक कपट समझौता (Informal collusion): ऐसा कपट समझौता जिसके अंतर्गत भागीदारों के बीच व्यापक सहमति तो होती है लेकिन कोई औपचारिक सहमति नहीं होती।

संयुक्त लाभ अधिकतम करण (Joint profit maximisation): जब कपट समझौता करने वाली फर्मों के सीमांत लागत वक्रों और सीमांत आय वक्रों को अलग-अलग जोड़कर उन सबको अधिकतम अधिशेष देने वाली कीमत का पता लगाने के लिए इन दोनों वक्रों को काटा जाता है तब इस प्रक्रिया को संयुक्त लाभ अधिकतमकरण कहा जाता है।

कीमत नेतृत्व (Price leadership): जब अल्पाधिकारी यह तय करते हैं कि बाज़ार कीमत का निर्धारण कोई एक विशेष फर्म करे और सभी फर्में उसी कीमत पर अपनी वस्तुओं को बेचें तब वह कीमत नेतृत्व की स्थिति होती है।

किंक युक्त मांग वक्र: यदि किसी विक्रेता के सम्मुख ऐसा मांग वक्र होता है जिसमें एक विशेष स्तर के ऊपर कीमत के बढ़ने पर उसकी मांग अधिक लोचदार हो जाती है, लेकिन कीमत के घटने पर ऐसा नहीं होता, तब कहा जाता है कि उस कीमत पर मांग वक्र किंक युक्त है।

कार्टेल (Cartel): औपचारिक कपट समझौते की वह स्थिति जिसमें वस्तु की कीमत और बाज़ार में हिस्से के संबंध में तो संयुक्त रूप से निर्णय लिया जाता है लेकिन फर्म का संगठनात्मक नियंत्रण अपना होता है।

विलयन (Merger): औपचारिक कपट समझौते की वह स्थिति जिसमें केवल वस्तु की कीमत और बाज़ार में हिस्से के ही संबंध में संयुक्त रूप से निर्णय नहीं लिया जाता बल्कि अलग-अलग फर्मों के नियंत्रण का भी केंद्रीकरण हो जाता है।

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 i) गलत ii) गलत iii) सही iv) सही v) सही

ख 3 i) सही ii) सही iii) गलत iv) गलत v) सही

4 i) क ii) ख iii) ग iv) ख

16.11 स्वपरख प्रश्न

1) अल्पाधिकारी बाज़ार में परस्पर निर्भरता से क्या आशय होता है? अल्पाधिकारी संतुलन के लिए इससे क्या समस्याएं उपस्थित होती हैं?
2) संयुक्त लाभ अधिकतमकरण क्या है? अल्पाधिकार के अंतर्गत इसे कैसे प्राप्त किया जाता है?
3) कीमत नेतृत्व (price leadership) की संकल्पना को स्पष्ट करें। कीमत नेतृत्व को स्वीकार करने से क्या अल्पाधिकार संतुलन की सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है?
4) किंक-युक्त मांग वक्र से यह जानने में तो सहायता मिल सकती है कि अल्पाधिकारी कीमत में अनम्य होने की प्रवृत्ति क्यों होती है, परंतु यह निर्धार्य संतुलन की ओर नहीं ले जाता। इस कथन के संबंध में अपना मत प्रकट कीजिए।

5) कुल लागत पर कीमत निर्धारण सिद्धांत या तो लाभ अधिकतमकरण की उपेक्षा कर देता है अथवा अत्यंत मनमाने और तदर्थ ढंग से इस पर ध्यान देता है। अपने उत्तर के कारण दीजिए।

नोट:	इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एस.सी. बरला: **उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र** (नई दिल्ली; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)।

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका: **व्यष्टि अर्थशास्त्र** (मेरठ; मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)।

पी.ए. सैम्युलसन: **अर्थशास्त्र** दसवां संस्करण (दिल्ली; कैपिटल बुक हाउस, 1982)।

डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए. हालमैन: **मूल्य सिद्धांत एवं उसके उपयोग** (चण्डीगढ़; हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)।

एस.के. मिश्र: **आर्थिक प्रणालियां एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र** (प्रगति पब्लिकेशन्स, दिल्ली; 1988)।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

B.Com-05
आर्थिक सिद्धांत

खंड

5

आय का वितरण

इकाई 17

वितरण का सिद्धांत 5

इकाई 18

आय का वितरण - I : मज़दूरी और ब्याज 18

इकाई 19

आय का वितरण - II : लगान और लाभ 33

इकाई 20

आय की असमानता 4

खंड 5 आय का वितरण

खंड 4 में आपने संतुलन की संकल्पना तथा पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारी प्रतियोगिता और अल्पाधिकार के अंतर्गत कीमत निर्धारण के संबंध में पढ़ा। आय का वितरण आर्थिक सिद्धांत का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस खंड में आप आय के वितरण के विभिन्न दृष्टिकोणों, वितरण के विभिन्न सिद्धान्तों तथा मज़दूरी, ब्याज, लगान, लाभ और आय असमानता की संकल्पनाओं के संबंध में पढ़ेंगे। इस खंड में कुल चार इकाइयाँ हैं।

इकाई 17 में आय के वितरण की विभिन्न विधियों, वितरण के क्लासिकी सिद्धांत और सीमांत उत्पादिता सिद्धांत को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 18 में मज़दूरी के निर्धारण में सामूहिक सौदेकारी के महत्त्व और ब्याज की दर के निर्धारण के विभिन्न दृष्टिकोणों के संबंध में चर्चा की गई है।

इकाई 19 में लगान के विभिन्न सिद्धांतों, आर्थिक लगान, अंतरण आय और आभासी लगान की संकल्पनाओं के साथ-साथ लाभ की संकल्पना और लाभ के विभिन्न स्रोतों के संबंध में बताया गया है।

इकाई 20 में आय के वितरण की माप, वैयक्तिक आय और उसकी असमानता तथा आय की असमानता और आय के पुनर्वितरण के माप के संबंध में चर्चा की गई है।

इकाई 17 वितरण का सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य
17.1 प्रस्तावना
17.2 आय वितरण के वैकल्पिक स्वरूप
  17.2.1 वैयक्तिक वितरण
  17.2.2 कार्यात्मक वितरण
17.3 वितरण का क्लासिकी सिद्धांत
  17.3.1 लगान
  17.3.2 मजदूरी
  17.3.3 ब्याज
  17.3.4 लाभ
17.4 सीमांत उत्पादिता सिद्धांत
  17.4.1 उत्पादिता की अवधारणाएँ
  17.4.2 सिद्धांत का विवरण
  17.4.3 सिद्धांत की मान्यताएँ
  17.4.4 किसी फर्म में कारक को पारिश्रमिक और कारक का नियोजन
17.5 सीमांत उत्पादिता सिद्धांत की आलोचना
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.9 स्वपरख प्रश्न

17.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आय वितरण के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कर सकें
- यह बता सकें कि उत्पादन के विभिन्न कारकों की आय का निर्धारण किस प्रकार होता है
- वितरण के क्लासिकी सिद्धांत की विवेचना कर सकें
- सीमान्त उत्पादिता सिद्धांतों का वर्णन कर सकें।

17.1 प्रस्तावना

उत्पादन भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम के सामूहिक प्रयत्नों का फल है। ये कारक विभिन्न उत्पादन क्रियाओं में विभिन्न अनुपातों में मिलाये जाते हैं। इसीलिए उत्पादन के सभी क्षेत्रों में इन कारकों के द्वारा कमायी गयी संयुक्त आय में इनका भाग एक समान नहीं होता। उदाहरण के लिए कृषि में भूमि की प्रमुख भूमिका होती है। श्रम का भी लगभग उतना ही महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अतः अन्य कारकों की अपेक्षा इनका पारिश्रमिक भी अधिक होता है। उद्योगों में, इसके विपरीत पूंजी की बहुत अधिक आवश्यकता पड़ती है और उद्यमी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उद्योगों में भूमि का योगदान यद्यपि थोड़ा होता है परन्तु श्रम का योगदान काफी अधिक होता है। इन तथ्यों से हमें पता चलता है कि औद्योगिक इकाइयों की आय में श्रम, पूंजी तथा साहस का भाग क्यों अधिक होता है जबकि भूमि का कम। उत्पादन की विभिन्न क्रियाओं में विभिन्न कारकों का सापेक्ष योगदान भिन्न-भिन्न होने से इनकी आय निर्धारण करने से संबंधित मापदण्डों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भूमि, श्रम, पूंजी और साहस के पारिश्रमिक निर्धारण करने के सिद्धांत सभी उत्पादक क्रियाओं मे एक समान है।

इस इकाई में आप आय वितरण के विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करेंगे। आप वितरण के क्लासिकी सिद्धांत तथा सीमान्त उपयोगिता सिद्धांत का भी अध्ययन करेंगे।

17.2 आय वितरण के वैकल्पिक स्वरूप

आय वितरण की समस्या के दो मुख्य स्वरूप हैं। आय वितरण को समझने का एक तरीका तो यह है कि हम यह मालूम करें कि समाज के सदस्यों के बीच आय का बंटवारा किस प्रकार हुआ है। इस स्थिति में इस बात से कोई संबंध नहीं है कि लोगों की आय के स्रोत क्या हैं, महत्त्वपूर्ण यह है कि विभिन्न व्यक्तियों ने कितनी आय प्राप्त की है। इसे वैयक्तिक आय वितरण कहते हैं। दूसरा तरीका यह है कि हम यह मालूम करें कि विभिन्न व्यक्तियों को उनके द्वारा उत्पादन कार्यों के लिए दिये गये कारकों या सेवाओं के बदले पारिश्रमिक किस आधार पर मिलता है। इसमें इस बात पर ध्यान देना है कि उत्पादन प्रक्रिया में किसी कारक के पारिश्रमिक का आधार क्या है।

17.2.1 वैयक्तिक वितरण (Personal Distribution)

वैयक्तिक वितरण से अभिप्राय समाज के सदस्यों में राष्ट्रीय आय के वितरण से है। ये व्यक्ति विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं और बदले में भुगतान पाते हैं। उदाहरण के लिए कारखानों में काम करने वाले श्रमिक मजदूरी पाते हैं। स्कूलों में अध्यापक, बैंकों तथा अन्य कार्यालयों में कर्मचारी, अस्पतालों में डॉक्टर आदि वेतन पाते हैं। पेशेवर व्यक्ति जैसे स्वतंत्र रूप में कार्य करने वाले वकील, चार्टर्ड लेखाकार, डॉक्टर आदि अपनी सेवाओं के बदले फीस प्राप्त करते हैं। क्योंकि इन सभी कार्यों में एक जैसी दक्षता की आवश्यकता नहीं होती और न ही ये एक जैसा उत्पादन करते हैं, अतः इनके करने वाले व्यक्तियों की आय भी भिन्न-भिन्न होती है। लेकिन सभी व्यक्ति परिश्रम करके ही आय नहीं कमाते हैं। कुछ व्यक्ति भूमि या पूंजी या दोनों के स्वामी होते हैं। कृषि क्षेत्र में जनसंख्या के एक वर्ग के पास भूमि होती है। ये व्यक्ति इस भूमि पर खुद खेती कर सकते हैं या इसे दूसरों को लगान पर दे सकते हैं। यदि वे खुद खेती करते हैं तो खेती से प्राप्त आय का एक भाग इनके अपने श्रम का पारिश्रमिक होता है तथा अन्य भाग भूमि की सेवाओं का मूल्य होता है। पूंजी के स्वामी को ब्याज मिलता है। एक व्यक्ति अपनी पूंजी दूसरों को उधार दे सकता है और बदले में ब्याज कमा सकता है। यदि इसे वह उधार न देकर अपने ही व्यवसाय में लगाता है, तो उस व्यवसाय की आय का एक भाग पूंजी की सेवाओं का मूल्य होगा। उद्यमी (entrepreneurs) जोखिम उठाते हैं और बदले में लाभ पाते हैं।

लोगों की आय के एक से अधिक स्रोत भी हो सकते हैं। कर्मचारी वर्ग में कुछ लोग वेतन के अतिरिक्त बैंक में जमा अपने धन पर ब्याज पाते हैं या शेयरों में लगाये गए धन पर लाभांश पाते हैं। खेती में कार्य करने वाले कुछ लोग गैर कृषि साधनों से भी आय कमाते हैं। अतः व्यक्ति एक से अधिक साधनों से आय कमा सकते हैं। वैयक्तिक वितरण से हमारा संबंध आय के स्रोत से न होकर आय के आकार से होता है। इससे हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि आय की असमानताएँ क्यों होती हैं और इन्हें कम करने के लिए हम क्या कर सकते हैं।

17.2.2 कार्यात्मक वितरण (Functional Distribution)

कार्यात्मक वितरण से अभिप्राय उस तंत्र से है जो उत्पादन की प्रक्रिया में कारकों के योगदान के लिए उन्हें पारिश्रमिक निर्धारित करता है। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि श्रम को मजदूरी, भूमि स्वामियों को लगान, पूंजी स्वामियों को ब्याज तथा उद्यमियों को लाभ मिलता है। **कार्यात्मक वितरण से यह मालूम किया जाता है कि मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ का निर्धारण किस प्रकार होता है।** इस संबंध में यह बताना आवश्यक है कि कोई भी ऐसा एक सिद्धांत नहीं है जो इन सभी का निर्धारण एक साथ संतोषपूर्ण ढंग से समझा सके। आधुनिक अर्थशास्त्री मजदूरी, लगान, ब्याज तथा लाभ को क्रमशः श्रम, भूमि, पूंजी तथा उद्यम कारकों की सेवाओं की कीमत मानते हैं। उनके अनुसार कार्यात्मक वितरण कारकों की कीमत निर्धारण करने की समस्या है। ये वस्तु के कीमत निर्धारण और कारकों के कीमत निर्धारण को अलग-अलग नहीं मानते। अब यह माना जाता है कि जो सिद्धांत किसी वस्तु की कीमत का निर्धारण करते हैं वे ही कारकों की कीमत का भी निर्धारण करते हैं। इस आधार पर वे कारकों की कीमत निर्धारण को कीमत सिद्धांत का ही एक भाग समझते हैं।

बोध प्रश्न क

1 वैयक्तिक वितरण और कार्यात्मक वितरण में भेद कीजिए।

....

....

....

....

2 बताइये कि निम्नलिखित सही है या गलत।

i) भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम अलग-अलग उत्पादन करते हैं। ....

ii) जब कोई आय के आकार वितरण के बारे में सोचता है तो उसका आशय वैयक्तिक वितरण से होता है। ....

iii) कार्यात्मक वितरण से आशय विभिन्न उत्पादन साधनों की सेवाओं के पारिश्रमिकों का निर्धारण करने से होता है। ....

iv) पूंजीपति उत्पादन प्रक्रिया में पूंजी की सेवाओं के बदले में लाभ प्राप्त करते हैं। ....

v) उद्यमी को पैसा उधार देने के बदले में लगान दिया जाता है। ....

vi) वैयक्तिक वितरण से यह मालूम किया जाता है कि आय की असमानताएँ क्यों होती हैं। ....

vii) एक जैसे सिद्धांत ही वस्तुओं की कीमत निर्धारण और कारकों की कीमत निर्धारण, इन दोनों ही प्रक्रियाओं का स्पष्टीकरण करते हैं। ....

3 खाली स्थान भरिए।

i) भूमिपति .... की सेवाओं के बदले लगान कमाते हैं।

ii) पूंजी की सेवाओं के बदले पूंजीपतियों को .... दिया जाता है।

iii) .... जोखिम उठाने के बदले लाभ कमाता है।

iv) उत्पादन प्रक्रिया में अपने कार्यों के लिए श्रमिक .... कमाते हैं।

v) .... मालूम करते समय हमारा संबंध आय के आकार के वितरण से होता है।

vi) .... मालूम करते समय हमारा संबंध वितरण के रूप से होता है।

17.3 वितरण का क्लासिकी सिद्धांत

आय वितरण के बारे में क्रमबद्ध विचार विमर्श क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के लेखों में पाया जाता है। ऐडम स्मिथ और रिकार्डो क्लासिकी विचारधारा के दो प्रमुख अर्थशास्त्री थे। इन्होंने श्रम, भूमि और पूंजी के पुरस्कार की तथाकथित स्वाभाविक दरों के संदर्भ में वस्तुओं की कीमतों को समझाने का प्रयत्न किया। पुरस्कार की ये स्वाभाविक दरें विशेष सिद्धांतों द्वारा समझाई गईं। दिलचस्प बात यह है कि लगान, मजदूरी, ब्याज व लाभ को समझाने में प्रमुख अर्थशास्त्रियों के बीच आम सहमति नहीं थी और कुछ बातों मे तो उनमें आपस में काफी मतभेद था। इस इकाई में हम इन मतभेदों पर विचार न करके विभिन्न उत्पादन कारकों के पुरस्कारों के निर्धारण के प्रश्न पर विचार करेंगे। हम क्लासिकी विचारधारा के प्रतिनिधि सिद्धांतों तक ही सीमित रहेंगे। लगान को समझाने में डेविड रिकार्डो का सिद्धांत सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। मजदूरी के बारे में दो सिद्धांत हैं। ऐडम स्मिथ और रिकार्डो ने निर्वाह मजदूरी सिद्धांत (subsistence theory of wages) विकसित किया। जे॰ एस॰ मिल सहित कुछ अन्य क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी निधि (wage fund) सिद्धांत को बनाया। ब्याज को बचतों की मांग और पूर्ति के आधार पर समझाया गया। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने अपने लेखों में लाभ की अवधारणा का जिक्र तो किया लेकिन लाभ के किसी स्पष्ट सिद्धांत को विकसित करने में असफल रहे।

17.3.1 लगान

जैसा ऊपर बताया गया है क्लासिकी विचारधारा में डेविड रिकार्डो का लगान सिद्धांत सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है और डेविड रिकार्डो को क्लासिकी विचारधारा का एक प्रमुख अर्थशास्त्री। रिकार्डो के अनुसार **लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मूल एवं अविनाशी शक्तियों के लिए दिया जाता है।** उसके विचार में लगान भू-स्वामी द्वारा भूमि में निवेश लगाने की आय नहीं है। यह

एक अधिशेष (surplus) है जो श्रम तथा पूंजी को दिये गये भुगतान के रूप में कृषि की लागत को घटा देने के पश्चात् प्राप्त होता है।

लगान के सिद्धांत का विकास करते समय रिकार्डो ने निगमनात्मक तर्क (deductive reasoning) का सहारा लिया। उसके विचार में मनुष्य ने सर्वप्रथम प्रथम श्रेणी की भूमि पर खेती की होगी। जब तक ऐसी भूमि उपलब्ध रहती है, लगान नहीं मिलता। लेकिन किसी भी देश में प्रथम श्रेणी की भूमि असीमित मात्रा में उपलब्ध नहीं हो सकती। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ समय ऐसा आता है कि इसकी उपलब्धता समाप्त हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ अनाज की मांग में वृद्धि होती है, जिससे दूसरी श्रेणी की भूमि पर खेती करने को बाध्य होना पड़ता है। स्पष्ट है कि दूसरी श्रेणी की भूमि पर जिसे अब हम सीमांत भूमि भी कह सकते हैं, प्रथम श्रेणी की भूमि की अपेक्षा उत्पादन कम होगा। रिकार्डो के अनुसार इस सीमांत भूमि पर कोई लगान प्राप्त नहीं होगा। प्रथम श्रेणी की भूमि पर सीमांत भूमि की अपेक्षा उत्पादन अधिक होगा अतः इस भूमि पर लगान मिलेगा। यह लगान प्रथम श्रेणी की भूमि पर उत्पादन और दूसरी श्रेणी की भूमि पर उत्पादन का अंतर कहलाएगा। इस प्रकार रिकार्डो की दृष्टि से यह एक विभेदक अधिशेष (differential surplus) है जो कि खेती में लगी सबसे कम उपजाऊ भूमि की अपेक्षा अधिक उपजाऊ भूमि पर मिलता है। लगान के इस सिद्धांत के बारे में हम इकाई 19 में विस्तृत जानकारी हासिल करेंगे।

17.3.2 मजदूरी

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी निर्धारण के दो अलग-अलग सिद्धांत विकसित किए। ऐडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो निर्वाह मजदूरी सिद्धांत के मुख्य प्रतिपादक माने जाते हैं। टी॰ आर॰ माल्थस और जे॰ एस॰ मिल ने निर्वाह मजदूरी सिद्धांत का प्रतिपादन किया। आइये हम इनका संक्षेप में वर्णन करें।

मजदूरी निर्धारण का निर्वाह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि वस्तु की तरह श्रम भी बाजार में खरीदा और बेचा जाता है और वस्तु की तरह ही इसकी कीमत निर्धारित होती है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार दीर्घकाल में किसी भी वस्तु की कीमत उसकी उत्पादन लागत के समान होती है। अतः श्रम की कीमत भी उसकी उत्पादन लागत के समान होगी। श्रम की उत्पादन लागत से अभिप्राय उस राशि से है जो श्रमिक और उसके आश्रितों के भरण पोषण के लिए आवश्यक होती है। यह सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि श्रमिकों को दीर्घकाल में केवल निर्वाह मजदूरी ही मिलती है, चाहे उनकी उत्पादिता का स्तर कुछ भी हो। रिकार्डो का विचार था कि मजदूरी का निर्वाह स्तर हमेशा के लिए स्थिर रहता है।

जे॰ एस॰ मिल ने अति विश्वासप्रद रूप में मजदूरी निधि सिद्धांत का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार **मजदूरी की दर श्रम शक्ति (work force) तथा उस कार्यशील पूंजी (working capital) के अनुपात पर निर्भर है जो श्रम को खरीदने में खर्च होती है।** व्यवहार में श्रम खरीदने के लिए ऐसा कोई अलग से रखा हुआ पूंजी कोष नहीं होता है। उत्पादकों के मन में केवल एक अनुमान होता है। देश के सभी उत्पादकों के ऐसे अनुमानों का योग मजदूरी निधि का राष्ट्रीय अनुमान कहलाता है। यह अनुमान लम्बे समय तक निश्चित रहता है। अतः यदि मजदूरी की दर में परिवर्तन होता है तो यह कार्य करने के इच्छुक श्रमिकों की संख्या में परिवर्तन के कारण होगा। मजदूरी निधि सिद्धांत यह नहीं कहता है कि दीर्घकाल में मजदूरी की दर एक निश्चित स्तर पर स्थिर रहेगी। इस सिद्धांत में यह स्वीकार किया गया है कि समय के साथ-साथ मजदूरी की दर में वृद्धि हो सकती है। यह वृद्धि ऊँची बचत के कारण मजदूरी निधि बढ़ने से या श्रम शक्ति कम हो जाने के कारण हो सकती है। दोनों परिवर्तनों के एक साथ होने की संभावना भी रहती है।

17.3.3 ब्याज

ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत के प्रमुख प्रतिपादक जे॰ एस॰ मिल हैं। उनके विचार में, **ब्याज की दर का निर्धारण पूंजी की मांग और पूंजी की पूर्ति की परस्पर प्रतिक्रिया से होता है।** उसके अनुसार ब्याज की दर तत्वतः और स्थायी रूप से ऋण के रूप में देने को प्रस्तावित और मांगी जाने वाली वास्तविक पूंजी की तुलनात्मक राशि पर निर्भर करती है। इस प्रकार, उसके अनुसार, ब्याज की दर में परिवर्तन ऋणों की मांग या उनकी पूर्ति में परिवर्तनों के कारण हो सकते हैं।

ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत के अनुसार आय का वह भाग जो उपभोग पर व्यय नहीं होता, पूंजी पूर्ति का साधन होता है। इसे बचत कहते हैं। क्लासिकी सिद्धांत में बचत का ब्याज से सीधा संबंध दर्शाया गया है। ब्याज में परिवर्तन होने से बचत की मात्रा में परिवर्तन होता है। पूंजी की मांग केवल निवेश करने के उद्देश्य से होती है। यह ब्याज-सापेक्ष (interest elastic) होती है। इसका अर्थ यह है कि ब्याज की दर में कमी पूंजी की मांग को बढ़ाती है और ब्याज की दर में वृद्धि पूंजी की मांग को कम करती है। संक्षेप में पूंजी की मांग का ब्याज की दर

से विपरीत संबध होता है। ब्याज की दर उस स्तर पर निर्धारित होती है जिस पर पूंजी की मांग और पूंजी की पूर्ति एक समान होती है।

17.3.4 लाभ

क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने लाभ का कोई सुसंगत सिद्धांत नहीं दिया है। सिद्धांत देना उनके लिए कठिन था क्योंकि वस्तुओं के मूल्यों को समझाने के लिए उन्होंने मूल्य के श्रम सिद्धांत (Labour Theory of Value) का सहारा लिया। इस सिद्धांत के अनुसार किसी वस्तु का मूल्य उसमे निहित श्रम पर निर्भर होता है। ऐसा पहले के समाजों में ठीक हो सकता था जबकि श्रम वस्तुओं का एकमात्र उत्पादक था। ऐडम स्मिथ ने भी अपने समय में देखा कि उत्पादकों ने उत्पादन करने में अपनी पूंजी के साथ भाड़े के श्रम की भी सहायता ली। इसीलिए उसने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जब वस्तुएँ बेची जाती हैं तो इनसे न केवल मजदूरों की मजदूरी वसूली होनी चाहिए बल्कि नियोजकों को कुछ लाभ भी मिलना चाहिए। उसके अनुसार लाभ कोई विशेष प्रकार की मजदूरी नहीं है, और न ही यह निरीक्षण या पर्यवेक्षण के रूप में किए गए श्रम का पुरस्कार है। उसके विचार में लाभ का संबंध नियोजकों के पूंजी संग्रह के आकार से होता है। रिकार्डो भी, जिन्होंने मूल्य के श्रम सिद्धांत का सहारा लिया था, पूंजीपतियों के लाभ की उत्पत्ति को संतोषजनक ढंग से समझाने में असफल रहे। उनके अनुसार वस्तुओं के मूल्य वर्तमान तथा भूत दोनों ही प्रकार के श्रम पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार उसने अपने सिद्धांत में पूंजी को स्थान दिया और लाभ की व्याख्या की।

संक्षेप में, लगान, मजदूरी, ब्याज और लाभ की व्याख्या करने वाले क्लासिकी सिद्धांतों ने वितरण प्रक्रिया की कुछ जानकारी तो दी लेकिन वे पूरी तरह ठीक नहीं हैं। अतः उन्हें छोड़ दिया गया। आधुनिक अर्थशास्त्री अब इस बात पर जोर देते हैं कि लगान केवल भूमि से ही नहीं मिलता। यह किसी भी उत्पादन साधन से मिल सकता है। इसके बारे में आप इकाई 19 में विस्तृत रूप से पढ़ेंगे। मजदूरी का निर्धारण न तो श्रमिकों के निर्वाह स्तर से होता है और न ही मजदूरी निधि से। यह तो श्रमिकों की सीमांत उत्पादिता है जो निर्णायक तौर पर मजदूरी की दर निर्धारण करती है। क्योंकि न तो बचत और न ही निवेश ब्याज सापेक्ष (interest elastic) हैं, अतः ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत का मुख्य आधार ही गलत है। अंत में, क्लासिकी सिद्धांत यह समझाने में भी असफल रहा है कि लाभ क्यों होता है।

बोध प्रश्न ख

1 निर्वाह मजदूरी को परिभाषित करें।

....

....

....

2 लगान और ब्याज में अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

3 बताइये कि निम्नलिखित सही है या गलत।

i) रिकार्डो के अनुसार भूमि के उन्नत उपजाऊपन के लिए भू-स्वामी को लगान मिलता है। ....

ii) खेती में लगी सबसे कम उपजाऊ भूमि सीमांत भूमि कहलाती है। ....

iii) सीमांत भूमि सहित सभी प्रकार की भूमि पर लगान मिलता है। ....

iv) निर्वाह मजदूरी सिद्धांत के अनुसार श्रमिकों को केवल उतनी मजदूरी मिलती है जो उन्हें जीवित रखने के लिए पर्याप्त होती है। ....

v) मजदूरी निधि सिद्धांत का प्रतिपादन ऐडम स्मिथ ने किया। ....

vi) ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत में बचत को ब्याज-सापेक्ष माना गया है। ....

vii) ब्याज की दर में परिवर्तन से निवेश में विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है। ....

4 खाली स्थान भरिए।

i) ....और ....क्लासिकी विचारधारा के सबसे प्रमुख अर्थशास्त्री थे।

ii) रिकार्डो का लगान सिद्धांत..तर्क पर आधारित है।

iii) क्लासिकी सिद्धांत ब्याज को बचत की ....और ....के संदर्भ में समझाता है।

iv) ....काल में वास्तविक मजदूरी की दर निर्वाह मजदूरी से भिन्न हो सकती है।

v) मजदूरी निधि सिद्धांत यह नहीं बताता है कि ....काल में मजदूरी दर एक निश्चित स्तर पर स्थिर रहती है।

vi) क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने ....का कोई सुसंगत सिद्धांत नहीं दिया है।

vii) ऐडम स्मिथ के अनुसार नियोजक अपने द्वारा प्रयोग में लाए गए ....के कारण लाभ कमाते हैं।

17.4 सीमांत उत्पादिता सिद्धांत (Marginal Productivity Theory)

कार्ल मार्क्स तथा अन्य कुछ समाजवादी विचारकों का मत था कि पूंजीवादी प्रणाली श्रम को उतना भुगतान नहीं देती जितना उसका उत्पादन में योगदान बनता है। ऐसे अधिशेष को, जिसे लाभ कहा जाता है, पूंजीपति अपने पास रख लेते हैं। कुछ अर्थशास्त्री कार्ल मार्क्स के इस विचार से सहमत नहीं थे और उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली में श्रमिकों का कोई शोषण नहीं होता। ऐसा करने में उन्होंने मजदूरी-श्रम के संदर्भ में वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत का विकास किया। बाद में इस सिद्धांत का उपयोग अन्य उत्पादन कारकों के पुरस्कारों को स्पष्ट करने के लिए भी किया। सीमांत उत्पादिता सिद्धांत के प्रतिपादकों में जे· बी· क्लार्क सबसे आगे थे। उन्होंने अपने "दि डिस्ट्रीब्यूशन आफ वैल्थ" में वितरण का वस्तुपरक आधार जाने का प्रयत्न किया और इस प्रक्रिया में वितरण के सीमांत उत्पादिता सिद्धांत का विकास किया। बाद में जेवन्स विक्स्टड, वालरास और मार्शल ने इसमें कुछ परिवर्तन करके अपना योगदान दिया। यहां यह ध्यान देना आवश्यक है कि जे· बी· क्लार्क के लिए सीमांत उत्पादिता का सिद्धांत वास्तव में वितरण का सिद्धांत था जबकि मार्शल के लिए यह सभी उत्पादन कारकों की मांग का सिद्धांत था।

17.4.1 उत्पादिता की अवधारणाएँ

सीमांत उत्पादिता सिद्धांत को समझने से पूर्व उत्पादिता की कुछ अवधारणाओं के बारे में जानना आवश्यक है। ये अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं:

औसत वस्तु उत्पादिता (Average Physical Productivity या APP): किसी भी उत्पादन क्रिया में उत्पादन को हमेशा भौतिक इकाइयों में मापा जाता है। उदाहरण के लिए कृषि में गेहूँ का उत्पादन क्विंटल में, तथा सिले सिलाए वस्त्रों का उत्पादन कमीजों, पैंटों आदि में मापा जाता है। आप जानते हैं कि भूमि, श्रम, पूंजी तथा उद्यम एक साथ मिलकर उत्पादन करते हैं। मान लिया जाए कि संयुक्त उत्पादन से किसी कारक की सभी इकाइयों के योगदानों को अलग करना संभव हो जाए और हम श्रम के योगदान का अध्ययन करना चाहें। इस स्थिति में श्रम की औसत वस्तु उत्पादिता श्रम द्वारा उत्पादन में कुल योगदान को श्रम की कुल इकाइयों से भाग देने से ज्ञात हो जाएगी। इसे हम निम्नलिखित प्रकार से भी लिख सकते हैं:

$$\text{श्रम की औसत वस्तु उत्पादिता} = \frac{\text{श्रम का उत्पादन में योगदान}}{\text{श्रम की कुल इकाइयाँ}}$$

आपने औसत वस्तु उत्पादिता (APP) की अवधारणा के बारे में इकाई 8 में भी पढ़ा है। उसमें यह समझाया गया कि APP वक्र उल्टे 'U' जैसा होता है।

सीमांत वस्तु उत्पादिता (Marginal Physical Productivity या MPP): आपने इकाई 8 में सीमांत वस्तु उत्पादिता की अवधारणा के बारे में भी पढ़ा है। आइए इस अवधारणा को संक्षेप में फिर बता दें। हमारी रुचि श्रम की सीमांत वस्तु उत्पादिता से है। यदि हम अन्य उत्पादन कारकों की मात्रा स्थिर रखें और श्रम की मात्रा में इस एक इकाई की वृद्धि करें तो श्रम की अतिरिक्त इकाई लगाने से होने वाला अतिरिक्त

उत्पादन श्रम की सीमांत वस्तु उत्पादिता कहलाएगा। श्रम की किसी भी इकाई, मान लीजिए nवीं इकाई, की सीमांत वस्तु उत्पादिता निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं।

$$MPP_n = TPP_n - TPP_{n-1}$$

जिसमें

MPP_n = nवीं इकाई की सीमांत वस्तु उत्पादिता

TPP_n = nवीं इकाई की कुल वस्तु उत्पादिता

TPP_{n-1} = n–1 इकाई की कुल वस्तु उत्पादिता

इकाई 8 में यह भी समझाया गया है कि MPP वक्र भी उल्टे 'U' की तरह होता है। यह APP वक्र को उसके सबसे ऊँचे बिंदु पर काटता है। (देखिए चित्र 17.1)

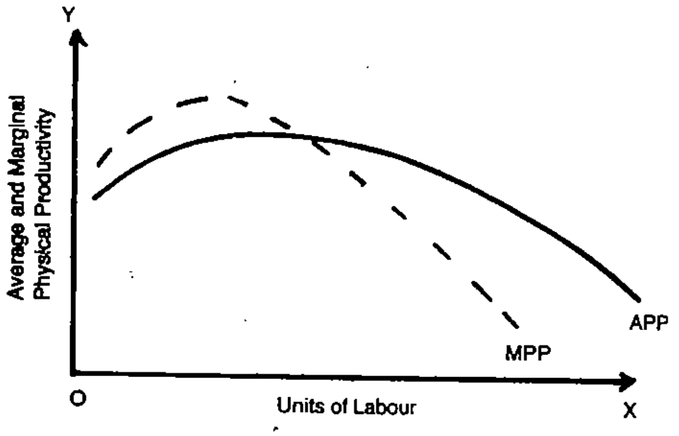

चित्र 17.1

औसत आय उत्पादिता (Average Revenue Productivity या ARP): उत्पादन कारकों का भुगतान मुद्रा में होता है। अतः कारक की उत्पादिता का मौद्रिक मूल्य ज्ञात करना अधिक उपयोगी होता है। किसी कारक की औसत आय उत्पादिता से अभिप्राय उसकी औसत वस्तु उत्पादिता के मौद्रिक मूल्य से है। कारक की औसत वस्तु उत्पादिता को वस्तु की क़ीमत से गुणा कर देने से उसकी औसत आय उत्पादिता ज्ञात हो जाती है। इसे हम निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :

$$ARP = APP \times P$$

जिसमें

ARP = औसत आय उत्पादिता

APP = औसत वस्तु उत्पादिता

P = वस्तु की कीमत

औसत आय उत्पादिता (ARP) वक्र,औसत वस्तु उत्पादिता (APP) वक्र की प्रतिकृति (replica) है अर्थात् दोनों एक समान हैं।

सीमांत आय उत्पादिता (Marginal Revenue Productivity या MRP): किसी कारक की कीमत निर्धारण करने के लिए उस कारक की सीमांत वस्तु उत्पादिता की संकल्पना के स्थान पर सीमांत आय उत्पादिता की संकल्पना अधिक उपयोगी होती है। कारक की सीमांत वस्तु उत्पादिता को वस्तु की सीमांत आय से गुणा करके हम उसकी सीमांत आय उत्पादिता ज्ञात कर सकते हैं। इसे हम निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :

$$MRP_n = MPP_n \times MR$$

जिसमें

MRP_n = nवीं इकाई की सीमांत आय उत्पादिता

MPP_n = nवीं इकाई की सीमांत वस्तु उत्पादिता

MR = वस्तु की सीमांत आय

पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की सीमांत आय (MR) और वस्तु की कीमत एक समान होते हैं। अतः पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में MR में स्थान पर वस्तु की कीमत से गुणा करने पर भी MRP ज्ञात किया जा सकता है। लेकिन एकाधिकार में MR और कीमत के एक समान नहीं होने के कारण केवल MR से गुणा करके ही MRP ज्ञात किया जा सकता है।

पूर्ण प्रतियोगिता में MRP वक्र MPP वक्र की प्रतिकृति होता है अर्थात् दोनों एक समान होते हैं। एकाधिकार में दोनों की शक्ल तो एक जैसी होती है लेकिन MPP वक्र की अपेक्षा MRP वक्र अधिक ढलान वाला (steeper) होता है । ऐसा इसलिए है कि एकाधिकार में वस्तु का MR वस्तु की कीमत से कम होता है और यह वस्तु की बिक्री बढ़ने से साथ-साथ गिरता चला जाता है।

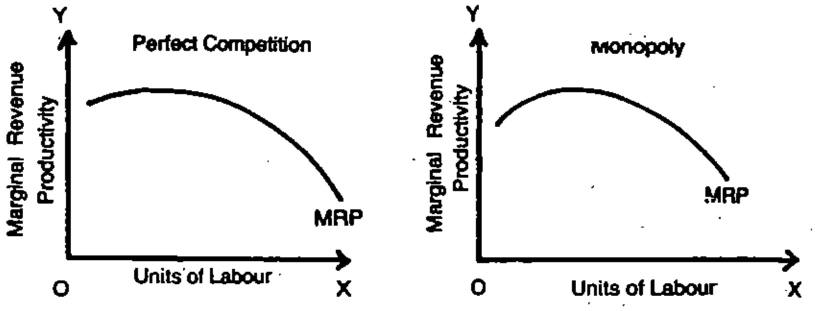

चित्र 17.2

सीमांत वस्तु उत्पाद का मूल्य (Value of Marginal Physical Product या VMPP) : सीमांत वस्तु उत्पादिता को वस्तु की कीमत से गुणा कर देने पर सीमांत उत्पाद का मूल्य ज्ञात हो जाता है। इसे हम निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं :

$$VMPP = MPP \times P$$

जिसमें

VMPP = सीमांत वस्तु उत्पाद का मूल्य

MPP = सीमांत वस्तु उत्पादिता

P = वस्तु की कीमत

पूर्ण प्रतियोगिता में वस्तु की सीमांत आय और वस्तु की कीमत एक समान होती हैं, अतः MRP और VMPP भी एक समान होते हैं। एकाधिकार में वस्तु की सीमांत आय वस्तु की कीमत से कम होती है अतः VMPP की अपेक्षा MRP कम होता है।

17.4.2 सिद्धांत का विवरण

सीमांत उत्पादिता सिद्धांत का अध्ययन दो रूपों में किया जाता है। जे· बी· क्लार्क द्वारा दिए गए रूप के अनुसार किसी उत्पादन कारक की सेवाओं का पुरस्कार उस साधन की सीमांत आय उत्पादिता से निर्धारित होती है। मार्शल ने इसको विभिन्न रूप में लिया है। उसके अनुसार कारक की सीमांत आय उत्पादिता उस साधन की मांग प्रकट करती है। कारक की यह मांग और उसकी पूर्ति मिल कर कारक की कीमत निर्धारित करते हैं। निस्संदेह पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में साधन की यह कीमत उस कारक की सीमांत आय उत्पादिता के समान होगी। सहज

ढंग से यह विवरण ठीक लगता है लेकिन यह बताना आवश्यक है कि क्यों किसी कारक का पुरस्कार उसकी सीमांत आय उत्पादिता के समान होता है।

यह आप जान चुके हैं कि खरीददार वस्तुओं को इसलिए खरीदते हैं कि उनमें उपयोगिता होती है। वे कीमत इसलिए देते हैं क्योंकि इन वस्तुओं में उनकी आवश्यकताएँ पूरी करने की शक्ति होती है। उत्पादन कारक सीधे उपयोगी नहीं होते क्योंकि उनमें सीधे आवश्यकताएँ पूरी करने की शक्ति नहीं होती। इनका महत्त्व इसलिए है क्योंकि ये उत्पादन में उपयोगी होते हैं। अतः किसी उत्पादन कारक की मांग उसकी उत्पादिता पर निर्भर होती है। स्पष्ट है कि उपभोक्ता वस्तुओं की मांग की तुलना में (जो कि प्रत्यक्ष होती है) किसी कारक की मांग अप्रत्यक्ष या व्युत्पन्न (derived) होती है। कारक की मांग उन वस्तुओं की मांग पर निर्भर करती है जिनके उत्पादन में इस कारक का प्रयोग होता है।

यह स्पष्ट हो जाने के पश्चात् कि किसी उत्पादन कारक की कीमत उसकी उत्पादिता पर निर्भर होती है, अब यह समझाना आवश्यक है कि उत्पादक, कारक की कीमत को उस कारक की सीमांत आय उत्पादिता के समान रखने का प्रयत्न क्यों करता है। आधुनिक युग में लगभग सभी अर्थव्यवस्थाओं का मुद्रीकरण हो चुका है और अधिकतर साधनों का पुरस्कार मुद्रा के रूप में दिया जाता है। अतः औसत वस्तु उत्पादिता और सीमांत वस्तु उत्पादिता की अवधारणाओं की प्रत्यक्ष संबद्धता नहीं रह गई। अब हमारे पास तीन अवधारणाएँ बची हैं, अर्थात् औसत आय उत्पादिता, सीमांत आय उत्पादिता तथा सीमांत वस्तु उत्पाद का मूल्य। इन तीन मापों में से उत्पादक केवल सीमांत आय उत्पादिता को महत्त्व देता है।

सभी उत्पादकों का प्रमुख उद्देश्य लाभों को अधिकतम करना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादक कारक के पुरस्कार को उसकी सीमांत आय उत्पादिता के समान रखे। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में सीमांत वस्तु उत्पाद का मूल्य और सीमांत आय उत्पादिता एक समान होते हैं। इस बाजार में कारक का पुरस्कार सीमांत आय उत्पादिता तथा औसत आय उत्पादिता दोनों के समान होता है। चित्र 17.3 को देखें।

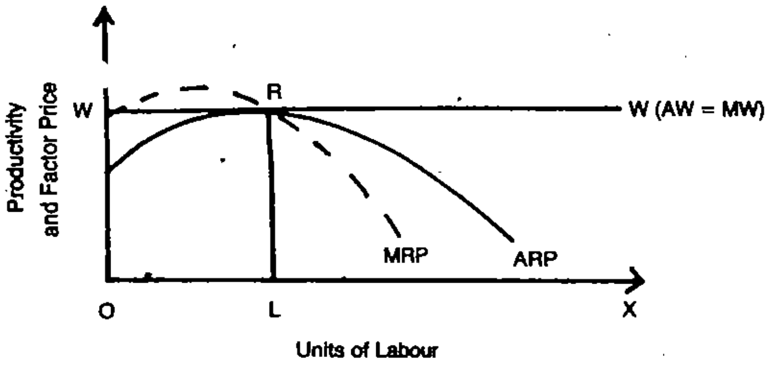

चित्र 17.3

रेखा चित्र 17.3 में मजदूरी की दर OW है जो कि श्रम की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित हुई है। इस चित्र में यह देखा जा सकता है कि मजदूरी की दर OW सीमांत आय उत्पादिता तथा औसत आय उत्पादिता दोनों के समान है। यदि उत्पादक कारक की सीमांत आय उत्पादिता को उसकी कीमत के समान रखने का नियम नहीं अपनाता है तो वह अपना लाभ अधिकतम नहीं रख सकता।

मोटे तौर पर सीमांत उत्पादिता सिद्धांत ठीक है क्योंकि सामान्यतः किसी कारक का पुरस्कार उसकी सीमांत आय उत्पादिता से कम या अधिक नहीं हो सकता। सीमांत उत्पादिता सिद्धांत कई मान्यताओं पर आधारित होता है। अतः इस सिद्धांत को पूरी तरह समझने के लिए इन पूर्व धारणाओं को समझना आवश्यक है।

17.4.3 सिद्धांत की मान्यताएँ

सीमांत उत्पादिता सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है :

1 यह माना गया है कि कारक बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है। यदि कारक श्रम है, तो यह माना गया है कि श्रम के बाजार में श्रम खरीदने वालों और श्रम बेचने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि इनमें से कोई एक

अपने कार्यों से मजदूरी की दर पर प्रभाव नहीं डाल सकता। यह भी माना गया है कि श्रम की सभी इकाइयाँ एक समान हैं और गतिशील हैं।

2 यह मान्यता है कि संबंधित उत्पादन कारक द्वारा उत्पादित की गई वस्तु पूर्ण प्रतियोगी बाजार में बिकती है।

3 सिद्धांत में यह भी माना गया है कि विभिन्न उत्पादन कारकों को उत्पादन प्रक्रिया के दौरान विभिन्न अनुपातों में मिलाया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि केवल एक कारक की मात्रा में परिवर्तन करके, और शेष सभी कारकों को स्थिर रख कर उत्पादन में परिवर्तन किया जा सकता है।

4 परिवर्ती अनुपातों के नियम (Law of Variable Proportions) के अनुसार उत्पादन होता है। इसका अर्थ यह है कि इस नियम के अंतिम चरण में ह्रासमान प्रतिफल का नियम (Law of Diminishing Returns) लागू होता है।

5 इस सिद्धांत में यह भी मान्यता है कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की स्थिति है। इसका अर्थ यह है कि कारक की सभी इकाइयाँ रोजगार में लगी हैं। अतः कारक की कोई भी इकाई बाजार कीमत से कम कीमत पर कार्य करने को तैयार नहीं है।

17.4.4 किसी फर्म में कारक को पारिश्रमिक और कारक का नियोजन

इस इकाई में हम पहले बता चुके हैं कि अपनी उत्पादिता के कारण ही कोई उत्पादन कारक उत्पादक के लिए उपयोगी होता है। इसीलिए उत्पादक फ़र्म कारक की सीमांत आय उत्पादिता को ध्यान में रख कर ही उस कारक की मांग करती है। रेखाचित्र 17.3 की सहायता से हम इस बात को और अधिक स्पष्ट कर सकते हैं। इस रेखाचित्र में MRP वक्र फर्म में श्रम की सीमांत आय उत्पादिता को दिखाता है। इस वक्र का ढलवां भाग फ़र्म द्वारा श्रम की मांग दर्शाता है। फ़र्म के दृष्टिकोण से श्रम का पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार है। अन्य शब्दों में फ़र्म चालू मजदूरी की दर OW पर जितना चाहे श्रम खरीद सकती है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं मजदूरी की यह दर बाजार में श्रम की कुल मांग और कुल पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाजार में न तो श्रम लगाने वाली फ़र्म और न ही सेवाएँ बेचने वाला श्रमिक श्रम की पूर्ति या माँग पर प्रभाव डाल कर मजदूरी की दर को प्रभावित कर सकता है। ऐसी स्थिति में श्रम लगाने वाली प्रत्येक फ़र्म मजदूरी ग्रहीता (Wage taker) होती है और उसका श्रम पूर्ति वक्र रेखाचित्र 17.3 में WW जैसा होता है। श्रम की पूर्ति वक्र पूर्णतया लोचदार होने के कारण न केवल औसत मजदूरी और सीमांत मजदूरी एक समान होती हैं बल्कि वे स्थिर भी रहती हैं।

फ़र्म का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना है। अतः वह उत्पादन उस बिन्दु तक करती है जिस पर कारक की सीमांत आय उत्पादिता सीमांत कारक की कीमत के समान हो। हमारे उदाहरण में परिवर्तनीय कारक श्रम है। अतः फ़र्म उस बिंदु तक श्रम लगाती है जिस पर श्रम की सीमांत आय उत्पादिता सीमांत मजदूरी के बराबर हो। रेखाचित्र 17.3 में यह स्थिति उस समय आती है जब फ़र्म श्रम की OL मात्रा लगाती है। OL से कम मात्रा लगाने पर फ़र्म के लाभ कम हो जाते हैं। OL मात्रा लगा कर फ़र्म लाभ अधिक कर सकती है। इसी प्रकार, यदि फ़र्म OL से अधिक मात्रा लगाती है तो भी लाभ घट जाते हैं क्योंकि OL श्रम के पश्चात् श्रम की सीमांत आय उत्पादिता सीमांत मजदूरी से कम हो जाती है। अतः सामान्य तौर पर फर्म केवल उसी स्थिति में संतुलन में होगी जब वह श्रम की केवल उतनी ही इकाइयाँ लगाए जितनी पर इसकी सीमांत आय उत्पादिता सीमांत मजदूरी के समान हो। पूर्ण प्रतियोगी श्रम बाजार में सीमांत मजदूरी और औसत मजदूरी एक समान होती हैं।

रेखाचित्र 17.3 में आप देखेंगे कि न केवल श्रम की सीमांत आय उत्पादिता सीमांत मजदूरी के समान है बल्कि ये दोनों औसत आय उत्पादिता और औसत मजदूरी के भी समान है। ऐसी स्थिति में फ़र्म को न तो कोई अधिशेष प्राप्त होता है और न ही कोई हानि। अतः न तो कोई नई फ़र्म उद्योग में आने के लिए प्रेरित होती है और न ही कोई पुरानी फ़र्म उद्योग छोड़ने के लिए मजबूर होती है। उद्योग इस प्रकार संतुलन की स्थिति में होता है।

17 5 सीमांत उत्पादिता सिद्धांत की आलोचना

सीमांत उत्पादिता सिद्धांत वितरण की पूर्णतया संतोषजनक व्याख्या नहीं करता। इसकी निम्नलिखित आधार पर आलोचना की गई है :

1 **उत्पादन के कारक सर्वदा विभाज्य नहीं होते :** जब किसी उत्पादन कारक को छोटी-छोटी इकाइयों में बांटा जा सकता हो या छोटी-छोटी मात्रा में उसमें परिवर्तन लाया जा सकता हो, तभी उसकी सीमांत उत्पादिता का अनुमान लगाया जा सकता है। व्यवहार में ऐसा सर्वदा ही संभव नहीं

होता। इस्पात के बड़े कारखानों की सीमांत उत्पादिता का अनुमान कैसे लगाया जा सकता है जबकि न तो इन्हें छोटी-छोटी इकाइयों में बांटा जा सकता है और न ही छोटी-छोटी मात्रा में परिवर्तन लाया जा सकता है। यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर अर्थशास्त्री नहीं दे पाये हैं। अतः अधिकतर पूंजीगत उपस्कर (capital equipment) की सीमांत उत्पादिता का अनुमान लगाना कठिन कार्य है।

2 **अधिकतर आधुनिक उद्योगों में कारक अनुपातों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता** : आधुनिक उद्योगों में जटिल टैक्नॉलाजी प्रयोग में लाई जाती है। परिणामस्वरूप श्रम और पूंजी एक निश्चित अनुपात में मिलाए जाते हैं। उत्पादकों का विचार है कि कारक अनुपातों में परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में कारक की सीमांत उत्पादिता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

3 **पूंजी और उद्यम की सीमांत उत्पादिता को मापना संभव नहीं है** : उत्पादन प्रक्रिया में पूंजी के रूप में पूंजीगत उपस्कर प्रयोग में आते हैं। इन उपस्करों में टैक्नालॉजी निहित होती है जिस पर श्रम की उत्पादिता निर्भर करती है। उधार देने वाले ब्याज कमाते हैं। क्या इसका अर्थ यह है कि पैसा उधार देना एक उत्पादक क्रिया है ? यदि ऐसा है भी तो उधार देने का मशीनरी, संयंत्र व अन्य पूंजीगत उपस्करों की उत्पादक क्रियाओं से क्या संबंध है ? यह एक ऐसी पहेली है जिसको सीमांत उत्पादिता सिद्धांत सुलझा नहीं पाया है। उद्यम के बारे में तो समस्या और भी कठिन है क्योंकि इसकी इकाई की कोई स्पष्ट पहचान या इसका कोई माप नहीं है। इसके अतिरिक्त भूमि, श्रम और पूंजी के ही जैसे उद्यम भी एक परिवर्ती कारक नहीं है जिससे सीमांत उत्पादिता का अनुमान लगाना बिल्कुल ही संभव नहीं हो पाता।

4 **पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता अवास्तविक है** : पूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता को अवास्तविक माना गया है क्योंकि यह न तो कारक बाजार में पाया जाती है और न ही उत्पाद बाजार में। वास्तविक जगत में अपूर्ण प्रतियोगिता होती है जिससे उत्पादक के लिए सीमांत उत्पादिता से कम कीमत पर कारकों की सेवा प्राप्त करना संभव हो सकता है। पूर्ण रोजगार स्तर से कम स्तर पर उत्पादन करने वाले पूंजीवादी समाज में यह शोषण का आधार है।

5 **सीमांत उत्पादिता सिद्धांत वितरण को स्पष्ट नहीं कर पाता** : सीमांत उत्पादिता सिद्धांत यह नहीं बताता है कि विभिन्न उत्पादन कारकों के पुरस्कार किस प्रकार निर्धारित होते हैं। यह केवल उत्पादन कारक की मांग के बारे में बताता है और इस तथ्य को स्वीकार करता है कि किसी उत्पादन कारक का पुरस्कार उसकी मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। कारक की कीमत जान लेने के बाद कोई फ़र्म उसकी मात्रा उसी बिंदु तक लगाती है जिस पर इसका पुरस्कार इसकी सीमांत आय उत्पादिता के समान हो ।

बोध प्रश्न ग

1 औसत वस्तु उत्पादिता और सीमांत उत्पादिता में अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

2 सीमांत आय उत्पादिता से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

3 बताइए कि निम्नलिखित सही हैं या गलत।

i) एक कारक का पुरस्कार उसकी सीमांत आय उत्पादिता के समान होता है। ....

ii) सीमांत उत्पादिता वक्र संबंधित कारक की पूर्ति को दर्शाता है। ....

iii) सीमांत उत्पादिता सिद्धांत कारक बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता को मान कर चलता है। ....

iv) सीमांत उत्पादिता सिद्धांत वस्तु बाजार में अपूर्ण प्रतियोगिता की मान्यता रखता है। ....

v) सीमांत उत्पादिता सिद्धांत में उत्पादन में स्थिर कारक अनुपात की मान्यता है। ....

4 खाली स्थान भरिए।

i) श्रम के कुल उत्पादन में योगदान को श्रम की कुल इकाइयों से भाग देने पर श्रम की औसत .... उत्पादिता प्राप्त होती है।

ii) औसत आय उत्पादिता जानने के लिए औसत वस्तु उत्पादिता को वस्तु की ....से गुणा करते हैं।

iii) सीमांत वस्तु उत्पादिता को वस्तु की कीमत से गुणा कर देने पर ....प्राप्त हो जाता है।

iv) चालू कारक कीमत संतुलित कारक कीमत होती है यदि यह कारक की ....के समान हो ।

v) ....में कारक की सीमांत आय उत्पादिता इसकी सीमांत वस्तु उत्पादिता के मूल्य के समान होती है।

17.6 सारांश

आय वितरण का अध्ययन दो रूपों में किया जा सकता है। एक रूप में हम यह अध्ययन करते हैं कि लोगों के बीच राष्ट्रीय आय का बंटवारा कैसा है। इसे वैयक्तिक वितरण कहते हैं। दूसरे रूप में हम यह अध्ययन करते हैं कि विभिन्न उत्पादन कारकों के पुरस्कार किस प्रकार निर्धारित होते हैं। इसे कार्यात्मक वितरण कहते हैं।

आय वितरण के बारे में सबसे पूर्व क्रमबद्ध विचार विमर्श क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने दिया । लेकिन उन्होंने कोई ऐसा सामान्य सिद्धांत नहीं दिया जो सभी कारकों के पुरस्कारों को समझा सके। उन्होंने विभिन्न उत्पादन कारकों के बारे में अलग-अलग सिद्धांत दिए। लगान का सिद्धांत रिकार्डो ने विकसित किया। उसके अनुसार लगान भूमि की उपज का वह भाग है जो भू-स्वामी को भूमि की मूल एवं अविनाशी शक्तियों के लिए दिया जाता है। मजदूरी के बारे में दो सिद्धांत हैं। मजदूरी के निर्वाह सिद्धांत के अनुसार मजदूरी श्रमिकों के निर्वाह स्तर पर निश्चित की जाती है। मजदूरी निधि सिद्धांत के अनुसार मजदूरी की दर मजदूरी निधि की राशि और मजदूरों की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार ब्याज पूंजी की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।

जे. बी. क्लार्क तथा अन्य अर्थशास्त्रियों द्वारा विकसित सीमांत उत्पादिता सिद्धांत में यह बताया गया है कि चारों उत्पादन कारकों में से प्रत्येक का पुरस्कार उसकी सीमांत आय उत्पादिता द्वारा निर्धारित होता है। जब किसी कारक का पारिश्रमिक सीमांत तथा औसत आय उत्पादिता के समान है और वह सीमांत कारक कीमत के भी समान हो तो कारक को लगाने वाली फर्म और वह उद्योग जिसकी वह फर्म है दोनों ही संतुलन में समझे जाते हैं।

सीमांत उत्पादिता सिद्धांत संदेहास्पद पूर्व धारणाओं पर आधारित है जिससे इसकी व्याख्यात्मक शक्ति कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त सीमांत उत्पादिता सिद्धांत कारक की कीमत समझाने के बजाए कारक की मांग के बारे में समझाता है। किसी कारक का पुरस्कार उसकी मांग तथा पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।

17.7 शब्दावली

औसत वस्तु उत्पादिता : वस्तु की भौतिक इकाइयों में मापी गई उत्पादन कारक की प्रति इकाई उत्पादिता।

औसत आय उत्पादिता : वस्तु के मौद्रिक मूल्य में मापी गई उत्पादन कारक की प्रति इकाई उत्पादिता।

कारक कीमत : मुद्रा में व्यक्त उत्पादन कारक की एक इकाई का पुरस्कार।

कार्यात्मक वितरण : विभिन्न कारकों के बीच उनके द्वारा दी गयी सेवाओं के अनुसार आय का वितरण।

ब्याज सापेक्षता या लोच : ब्याज की दर में परिवर्तन का प्रभाव।

सीमांत भूमि : सबसे घटिया भूमि जिसके उत्पादन के मूल्य से केवल उत्पादन लागत ही प्राप्त हो पाती है।

सीमांत वस्तु उत्पादिता : परिवर्ती कारक की एक अतिरिक्त इकाई से प्राप्त अतिरिक्त कुल उत्पादन।

व्यक्तिगत वितरण : लोगो के बीच राष्ट्रीय आय का वितरण।

लगान : भूस्वामी को भूमि की सेवाओं के लिए पुरस्कार।

निर्वाह मजदूरी : मजदूरी की वह दर जिससे केवल निर्वाह हो सकता है।

सीमांत वस्तु उत्पाद का मूल्य : सीमांत वस्तु उत्पादिता को वस्तु की कीमत से गुणा कर देने पर प्राप्त होने वाला मूल्य।

परिवर्ती कारक अनुपात : वे अनुपात जिनमें विभिन्न उत्पादन कारक मिलाए जाते हैं और जिनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

17.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 2 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) गलत (vi) सही (vii) सही

3 (i) भूमि (ii) ब्याज (iii) उद्यम (iv) मजदूरी (v) वैयक्तिक वितरण (vi) कार्यात्मक वितरण

ख 3 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) सही (vii) सही

4 (i) ऐडम स्मिथ, रिकार्डो (ii) निगमनात्मक (iii) मांग, पूर्ति (iv) अल्प (v) दीर्घ (vi) लाभ (vii) पूंजी

ग 3 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) गलत

4 (i) वस्तु (ii) कीमत (iii) सीमांत वस्तु उत्पाद का मूल्य (iv) सीमांत आय उत्पादिता (v) पूर्ण प्रतियोगिता

17.9 स्वपरख प्रश्न

1 कार्यात्मक वितरण की परिभाषा दीजिए और व्यक्तिगत वितरण से इसका भेद कीजिए।

2 क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने विभिन्न उत्पादन कारकों के बीच आय के वितरण को किस प्रकार समझाया ? वर्णन करें।

3 लाभ और ब्याज में अंतर बताइए। क्या यह कहना ठीक नहीं है कि पूंजीपति इन दोनों को उत्पादन प्रक्रिया में उनके द्वारा निवेश की गयी पूंजी पर अर्जित करते हैं।

4 क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने मजदूरी का निर्धारण किस प्रकार समझाया ? व्याख्या करें।

5 सीमांत उत्पादिता सिद्धांत समझाइए। इसकी पूर्व धारणाएँ भी बताइये।

6 सीमांत उत्पादिता सिद्धांत वितरण का एक संतोषजनक सिद्धांत क्यों नहीं समझा जाता है।

नोट : ये प्रश्न आपको इस इकाई का अध्ययन करने से सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। किन्तु उत्तरों को विश्वविद्यालय न भेजिए। ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए ही हैं।

इकाई 18 आय का वितरण–I : मज़दूरी और ब्याज

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य
18.1 प्रस्तावना
18.2 मज़दूरी
- 18.2.1 प्रतियोगी मज़दूरी
- 18.2.2 गैर-प्रतियोगी मज़दूरी

18.3 सामूहिक सौदाकारी और मज़दूरी
- 18.3.1 मज़दूर संघ और सामूहिक सौदाकारी
- 18.3.2 सामूहिक सौदाकारी और मज़दूरी वृद्धि
- 18.3.3 सामूहिक सौदाकारी और शोषण की समाप्ति

18.4 ब्याज
- 18.4.1 ब्याज के कार्य
- 18.4.2 ब्याज दरों में अंतर
- 18.4.3 ब्याज की मौद्रिक और वास्तविक दरें

18.5 पूंजी पर प्रतिफल के रूप में ब्याज
18.6 सारांश
18.7 शब्दावली
18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.9 स्वपरख प्रश्न

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- प्रतियोगी तथा गैर-प्रतियोगी मज़दूरी में अंतर कर सकें
- श्रमिकों के लिए सामूहिक सौदाकारी के महत्त्व को स्पष्ट कर सकें
- ब्याज के कार्यों का वर्णन कर सकें
- मज़दूरी की मौद्रिक और वास्तविक दरों के बीच अंतर बता सकें
- समझा सकें कि ब्याज किस प्रकार पूँजी का प्रतिफल होता है।

18.1 प्रस्तावना

हम अपने दैनिक जीवन में मज़दूरी और ब्याज जैसे शब्दों का अक्सर प्रयोग करते हैं। अर्थशास्त्र में इन शब्दों का एक निश्चित अर्थ है, जिसके बारे में आप इस इकाई में पढ़ेंगे। आप यह भी जानेंगे कि श्रमिक अपनी मज़दूरी के लिए किस प्रकार सामूहिक सौदाकारी करते हैं और इस प्रक्रिया में किस प्रकार फायदा उठाते हैं। लेकिन यदि श्रम बाजार में प्रतियोगिता हो तो सामूहिक सौदाकारी आवश्यक नहीं होती है; क्योंकि ऐसी स्थिति में मज़दूरी दर श्रम की सीमांत उत्पादिता के समान ही होती है। शायद आपको यह एहसास न होगा कि बाजार अर्थव्यवस्थाओं में ब्याज कितना उपयोगी कार्य करता है। आप समझते होंगे कि यह तो केवल पूँजी पर एक प्रतिफल है। लेकिन इस इकाई में आप यह जानेंगे कि ब्याज किस प्रकार निधि के आवंटन (allocation of funds) पर प्रभाव डालता है और इस प्रकार निवेश गतिविधियों को प्रभावित करता है। आप यह भी जानेंगे कि निर्णय लेने के लिए ब्याज की मौद्रिक दरों की अपेक्षा ब्याज की वास्तविक दरें अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं।

18.2 मज़दूरी

मज़दूरी शब्द से अभिप्राय श्रमिकों को दी जाने वाली पारिश्रमिक की उस राशि से है जो कि उत्पादन में उनकी श्रम-सेवाओं के बदले में दी जाती है। श्रमिकों को मज़दूरी का भुगतान मुद्रा में या वस्तु के रूप में किया जा सकता है। कभी-कभी ये श्रमिक स्वयं-नियोजित (self-employed) होते हैं और उत्पादन कार्य अपनी ही

योजनाओं के अनुसार करते हैं। ऐसी सभी अवस्थाओं में इनकी मज़दूरी को इनके लाभ से अलग करना कठिन हो जाता है।

अर्थशास्त्री प्रायः मौद्रिक (या नकद) मजदूरी और वास्तविक मजदूरी की बात करते हैं। मौद्रिक मजदूरी की अवधारणा सरल है। इससे अभिप्राय मुद्रा की उस राशि से है जो श्रमिकों को उत्पादन में उनकी सेवाओं के लिए दी जाती है। वास्तविक मजदूरी की अवधारणा थोड़ी विस्तृत है। इसमें मौद्रिक मजदूरी से प्राप्त हो सकने वाली वस्तुओं और सेवाओं के अतिरिक्त श्रमिकों को अपने कार्य के कारण प्राप्त अन्य प्रासंगिक (incidental) सुविधाएँ अथवा अन्य लाभ शामिल होते हैं। निःसंदेह मजदूरों को अपनी मौद्रिक मजदूरी का बहुत ख्याल रहता है। लेकिन उनके रहन-सहन के स्तर के दृष्टिकोण से वास्तविक मजदूरी ही अधिक महत्त्वपूर्ण है।

पारम्परिक समाज में मजदूरी का निर्धारण प्रथा के अनुसार होता था और यह मजदूरी निर्वाह मात्र के लिए ही काफी होती थी। आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्थाओं में मज़दूरी का निर्धारण श्रम की माँग और पूर्ति के आधार पर होता है। आपने यह देखा होगा कि आजकल मजदूरी की दरों में बहुत विभिन्नता पाई जाती है। एक मैकेनिकल इंजीनियर 6,000 रुपये प्रति माह कमा सकता है जबकि एक क्लर्क 2,000/- रु० और एक अदक्ष मजदूर 1,200 रुपये। मजदूरी में ये अंतर महत्त्वपूर्ण हैं और वितरण के सिद्धांत को इन्हें समझाना चाहिए। इन मजदूरी विभिन्नताओं के बारे में आप आगे इस इकाई में पढ़ेंगे। आप यह जानते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका में इटली की अपेक्षा एक ही जैसे श्रम के लिए मजदूरी दर ऊंची है, और इटली में भारत की अपेक्षा ऊंची है। इसका अर्थ यह है कि कुछ देशों में अन्य देशों की अपेक्षा मजदूरी का स्तर ऊंचा है। ऐसा इसलिए है कि कुछ देशों के पास प्राकृतिक संसाधन और पूंजी अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं और उनकी प्रौद्योगिकी बेहतर है। ये सभी कारक श्रम की उत्पादिता पर अच्छा प्रभाव डालते हैं जिससे उनकी मज़दूरी पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। उन देशों में उत्पादिता कम होती है जिनके पास न तो प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक संसाधन और पूंजी होती है और न ही बेहतर प्रौद्योगिकी। परिणामस्वरूप इन देशों में मज़दूरी का स्तर भी नीचा रहता है। लेकिन किसी भी देश में श्रम एक समान नहीं होता, अतः विभिन्न प्रकार के श्रम के लिए विभिन्न बाजार होते हैं, जिनमें उनकी मजदूरी का निर्धारण होता है।

मोटे तौर पर श्रम बाजार दो प्रकार के होते हैं : (1) प्रतियोगी और (2) गैर-प्रतियोगी। यदि बड़ी संख्या में छोटी-छोटी फर्में श्रम की सेवाओं की मांग करें तो श्रमिक संघ के न होने की दशा में भी श्रम बाजार में प्रतियोगिता हो सकती है। श्रमिक संघों की उपस्थिति, जो मजदूरों की ओर से सामूहिक सोदाकारी करती हैं, और नियोजकों की थोड़ी संख्या, जो उनके विरुद्ध सांठ-गांठ करती है, श्रम बाजार को गैर-प्रतियोगी बनाते हैं। प्रतियोगी और गैर-प्रतियोगी बाजारों में मजदूरी एक समान नहीं होती।

18.2.1 प्रतियोगी मज़दूरी

प्रतियोगी मजदूरी से अभिप्राय प्रतियोगिता बाजार में श्रम को उसकी सेवाओं के बदले प्राप्त प्रतिफल से है। व्यवहार में प्रायः ऐसा श्रम बाजार देखने को नहीं मिलता। सैद्धांतिक तौर पर प्रतियोगी श्रम बाजार इस मान्यता पर आधारित है कि श्रम एक समान है और श्रमिकों की बड़ी संख्या है जो रोजगार पाने के लिए एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं। श्रम खरीदने वाले नियोजकों की संख्या भी इतनी अधिक है कि उनमें से कोई भी एक अपने व्यवहार से मजदूरी की दर पर प्रभाव नहीं डाल सकता। प्रतियोगिता बाजार में श्रमिक यह प्रयत्न करते हैं कि उन्हें अधिक से अधिक मजदूरी मिले जबकि नियोजक यह प्रयत्न करते हैं कि वे कम से कम मजदूरी दें। वास्तव में निर्धारित मजदूरी की दर श्रम की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

श्रम की मांग एक व्युत्पन्न (derived) मांग है जो उत्पादन में इसकी उपयोगिता पर निर्भर है। इस उपयोगिता का पता श्रम की सीमांत उत्पादिता से चलता है। इकाई 17 में आप यह जान चुके हैं कि उत्पादन में अंततः ह्रासमान प्रतिफल (law of decreasing returns) का नियम ही लागू होता है। अन्य शब्दों में जैसे-जैसे श्रम की अतिरिक्त इकाइयाँ लगायी जाती हैं उत्पादन कारक का सीमांत आय उत्पाद गिरता जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक निश्चित बिन्दु के पश्चात् श्रम का "सीमांत आय उत्पाद वक्र" बायें से दायें नीचे की ओर ढलता होगा, और वक्र का यही भाग श्रम का मांग वक्र होगा। जैसा कि चित्र 18.1 से स्पष्ट है। चित्र 18.1 से आपको स्पष्ट हो जाएगा कि श्रम के लिए मांग वक्र का ढलान ऋणात्मक होगा। इस चित्र में DD वक्र श्रम का मांग वक्र है।

प्रतियोगी मजदूरी दर

श्रम की पूर्ति ऊँची मजदूरी पर अधिक और कम मजदूरी पर कम होगी। इसके दो कारण हैं – प्रथम, कम मजदूरी पर केवल कुछ मजदूर ही अपने आप को रोजगार के लिए प्रस्तुत करेंगे। जैसे-जैसे मजदूरी में वृद्धि होगी और अधिक श्रमिक अपनी सेवाएँ देने के लिए राजी होंगे। इसके अतिरिक्त दूसरे, कुछ मजदूर जो कम मजदूरी पर काम करने को राजी थे, मजदूरी की दर बढ़ जाने पर पहले की अपेक्षा अधिक घंटे काम करने के लिए राजी होंगे।

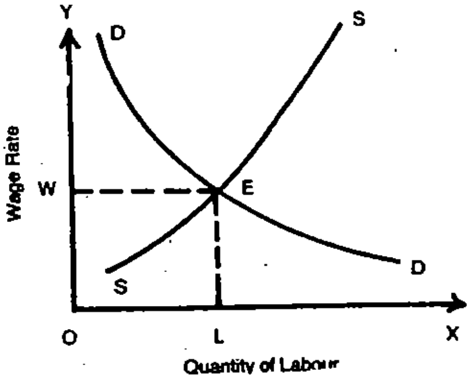

चित्र 18.1

अतः मजदूरी में वृद्धि के साथ श्रम पूर्ति में वृद्धि की प्रवृत्ति होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हर मजदूरी वृद्धि श्रम पूर्ति में वृद्धि लायेगी। ऐसा देखा गया है कि ऊँची मजदूरी के एक निश्चत स्तर के पश्चात् लोग ज्यादा काम करने की बजाय ज्यादा आराम करना अधिक पसंद करते हैं। अतः इस स्तर के पश्चात् श्रम के पूर्ति वक्र की ढलान पीछे की ओर (backward sloping) होती है। लेकिन इस समय हम बाँये से दाँये ऊपर की ओर उठते हुए पूर्ति वक्र को ही लेंगे जैसा कि चित्र 18.1 में दिखाया गया है। आप देख रहे हैं कि इस चित्र में श्रम के पूर्ति वक्र SS के किसी भी भाग की ढलान पीछे की ओर नहीं है।

चित्र 18.1 में मजदूरी की दर OW पर श्रम की मांग और पूर्ति एक समान हैं। यदि श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता है तो श्रमिक नियोजकों को OW से अधिक मजदूरी देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते और न ही नियोजक श्रमिकों को OW से कम मजदूरी स्वीकार करने के लिए बाध्य कर सकते हैं। यह प्रतियोगी मजदूरी है जो श्रम की सीमांत उत्पादिता के बराबर है। यदि देश के पास प्राकृतिक संसाधन, पूँजी और तकनीकी जानकारी (technical know-how) काफी हो तो यह आवश्यक नहीं कि प्रतियोगी मजदूरी न्यूनतम निर्वाह मजदूरी तक गिर जाय। पिछड़े देशों में, जिनके पास संसाधन कम हैं, श्रम की कम सीमांत उत्पादिता के कारण मजदूरी दर नीची होगी और कोई आश्चर्य नहीं यदि वह वास्तव में न्यूनतम निर्वाह स्तर तक गिर जाय।

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रतियोगी मजदूरी में अंतर होने के क्या कारण हैं ? मजदूरी में कुछ अंतर तो कार्य करने के गैर-मौद्रिक अंतरों के कारण होते हैं। कुछ कार्यों में मानसिक तनाव, भारी जिम्मेदारी, मौसमी कामबंदी (seasonal lay-off), अनियमित काम, छोटा कार्यकाल, नीरस प्रशिक्षण और नीची सामाजिक प्रतिष्ठा आदि होते हैं। यह स्वाभाविक है कि लोगों को इन कार्यों की ओर आकर्षित करने के लिए ऊंची मजदूरी दी जाय। इन्हें समानता लाने वाले अंतर कहा जाता है। मजदूरी में कुछ अन्य अंतर श्रम की प्रकार में अंतर के कारण होते हैं। एक सिविल इंजीनियर का काम किसी राजमिस्त्री या किसी अदक्ष श्रमिक जैसा नहीं होता। इसलिए इन सबके श्रम-बाजार अलग-अलग होते हैं और इनमें आपस में प्रतियोगिता नहीं होती। इनकी निर्धारित मजदूरी भी अलग-अलग होती है। शायद आप यह तथ्य जानते होंगे कि वास्तविकता में श्रम का केवल एक ही बाजार नहीं होता। जितने प्रकार के श्रम हैं उतने ही प्रकार के श्रम बाजार हैं। हो सकता है कि प्रत्येक श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो लेकिन इन बाजारों में आपस में प्रतियोगिता न होने के कारण एक बाजार में मजदूरी की दर दूसरे बाजार की दर की अपेक्षा भिन्न होगी।

18.2.2 गैर-प्रतियोगी मज़दूरी

वास्तविक जगत में श्रम बाजार प्रायः गैर-प्रतियोगिता वाले होते हैं। श्रम को स्पष्ट रूप से बाजार वर्गों में बांटना प्रायः सरल नहीं होता। केवल जब श्रम बहुत ही विशिष्ट हो तब उसका अपना एक अलग बाजार हो सकता है। अन्यथा अधिकतर विभिन्न प्रकार के श्रम बाजार एक-दूसरे में मिल जाते हैं जिससे बाजार में अपूर्णता का तत्त्व आ जाता है। श्रम की गतिशीलता में कमी और अज्ञान के कारण भी कुछ बाजार अपूर्ण हो सकते हैं। लेकिन श्रम बाजारों में अपूर्णता के अधिक महत्त्वपूर्ण कारक हैं श्रमिकों की ओर से मजदूर संघों द्वारा सामूहिक सौदाकारी, कुछ विशेष फर्मों की मजदूरी नीति और नियोजकों की संख्या का कम होना। मजदूर संघ तो अब लगभग सभी देशों में होते हैं और वे सेवा-शर्तों और मजदूरी दर के बारे में श्रमिकों की ओर से नियोजकों से सौदाकारी करते हैं। उनके

हस्तक्षेप से श्रम बाजार से प्रतियोगिता का तत्व समाप्त हो जाता है और इससे मजदूरी निर्धारण की प्रक्रिया पर प्रभाव पड़ता है। सामूहिक सौदाकारी और मजदूरी निर्धारण पर इसके प्रभाव के बारे में आप इस इकाई के अगले खंड में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। मजदूरी कई बार दृढ़ रहती है। आर्थिक क्रिया कम होने के कारण श्रम की मांग गिर जाने से भी कई बार मजदूरी गिरती नहीं है। श्रम लगाने वाली फर्म की मजदूरी नीति के कारण भी ऐसा होता है या फिर श्रमिकों द्वारा विरोध किए जाने पर। अंत में, औद्योगिक इकाइयों के आकार के बड़े होते जाने के कारण प्रत्येक प्रकार के नियोजकों की संख्या सीमित रह गयी है। जिससे प्रतियोगिता का तत्त्व घटा है। अतः, श्रम बाजार में अपूर्णता के कारण कुछ भी हो, इसमें निर्धारित होने वाली मजदूरी दर प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादिता से भिन्न होती है।

बोध प्रश्न क

1 प्रतियोगी और गैर-प्रतियोगी श्रम बाजार में अंतर स्पष्ट करें।

....

....

....

....

....

2 प्रतियोगी मजदूरी और गैर-प्रतियोगी मजदूरी में मुख्य अंतर क्या है ?

....

....

....

....

....

3 बताइये कि निम्नलिखित सही हैं या गलत।

i) श्रमिकों को मजदूरी हमेशा मुद्रा के रूप में दी जाती है। ....

ii) श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर की दृष्टि से, मौद्रिक मजदूरी की अपेक्षा वास्तविक मज़दूरी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। ....

iii) प्रतियोगी श्रम बाजार में मजदूरी केवल निर्वाह के लिए ही काफी होती है। ....

iv) मजदूर संघ व्यापारियों की संस्था है। ....

v) श्रमिकों की सीमांत उत्पादिता का उनकी मजदूरी दर पर प्रभाव पड़ता है। ....

vi) श्रम के मांग वक्र का ढलान धनात्मक होता है। ....

vii) श्रम के सीमांत आय उत्पाद वक्र का वह भाग जो बांये से दांये नीचे की ओर ढलवां होता है, श्रम की मांग को बताता है। ....

viii) मजदूरी की दर श्रम की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। ....

4 खाली स्थान भरिए।

i) वास्तविक जगत के श्रम बाजार सामान्यतः ....होते हैं।

ii) यदि सभी श्रमिक एक समान होते, तो प्रतियोगी मजदूरी में अंतरों को .... अंतर कहा जा सकता।

iii) श्रम के पूर्ति वक्र की ढलान ....होती है।

iv) जब श्रमिक अधिक आय के स्थान पर आराम अधिक पसंद करते हैं, तो श्रम के पूर्ति वक्र की ढलान .... हो जाती है।

v) भारत में संयुक्त राज्य अमरीका की अपेक्षा मजदूरी कम है क्योंकि भारत में श्रम की उत्पादिता .... है।

vi) मजदूर संघ श्रम बाजार में ....को कम करते हैं।

vii) यदि केवल एक ही नियोजक हो तो श्रम बाजार ....होगा।

18.3 सामूहिक सौदाकारी और मजदूरी (Collective Bargaining and Wages)

नियोजकों की अपेक्षा श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति कई कारणों से कमजोर होती है। इसलिए, प्रायः यह संभव हो जाता है कि नियोजक श्रमिकों की सीमांत उत्पादिता से कम मजदूरी दें। यह एक प्रकार से श्रमिकों का शोषण है। नियोजकों द्वारा इस शोषण के प्रति श्रमिक अब सचेत हैं और इसे रोकना चाहते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे अपने आप को मजदूर संघों में व्यवस्थित करते हैं। ये संघ श्रमिकों की ओर से नियोजकों से सामूहिक सौदाकारी करते हैं।

18.3.1 मजदूर संघ और सामूहिक सौदाकारी

मजदूर संघ श्रमिकों की संस्था है। इनकी सदस्यता स्वैच्छिक होती है। श्रमिक इस आशा में मजदूर संघ के सदस्य बनते हैं कि जब यह संघ उनकी ओर से सौदेबाजी करेगा तो उन्हें अपनी सेवाओं के लिए ऊंची मजदूरी मिलेगी। मजदूर संघों को प्रायः कानूनी मान्यता प्राप्त होती है। इस प्रकार उन्हें श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए नियोजकों से बातचीत करने और यहाँ तक कि लड़ने का भी कानूनी अधिकार है। मोरिस डॉब ने काफी सही कहा है कि मजदूर संघ तत्वतः पूँजीवादी मजदूरी प्रणाली की उपज हैं क्योंकि ये उस आर्थिक कमजोरी के विरुद्ध रक्षा पंक्ति के रूप में है जिसमें कि असंगठित व्यक्तियों के रूप में कार्य करते हुए मजदूरी अर्जित करने वाले सम्पत्तिहीन अपने आप को पाते हैं। यह तो स्पष्ट है कि यदि कोई संस्था न हो तो प्रत्येक श्रमिक अपनी मजदूरी के लिए अलग से सौदेबाजी करेगा और नियोजक उसकी इस कमजोरी का पूरा लाभ उठाएंगे और उसे उचित मजदूरी नहीं देंगे। किसी मजदूर संघ का सदस्य बन कर वह अपनी कमजोरी को दूर कर सकता है। **मजदूर संघ के माध्यम से सामूहिक सौदाकारी अवश्य ही श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति को बेहतर बनाती है। इस प्रकार वे ऐसी मजदूरी पा जाते हैं जो कि उस मजदूरी से अधिक होगी जो श्रमिक संघ न होने की स्थिति में होती।**

कुछ अर्थशास्त्री उचित मजदूरी दिलवाने में मजदूर संघों के योगदान को समझ नहीं पाए हैं। उनका विचार है कि यदि श्रम बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता हो तो मजदूरी सीमांत आय उत्पादिता के समान ही होगी और कोई भी मजदूर संघ चाहे वह कितना ही शक्तिशाली हो नियोजकों को इससे अधिक मजदूरी देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। इसलिए, उनके विचार में, श्रमिकों के लिए भी मजदूर संघों का कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन अर्थशास्त्रियों का यह दावा ठीक नहीं है क्योंकि उनकी दलील अवास्तविक मान्यता पर आधारित है। वास्तव में अधिकतर श्रम बाजार अपूर्ण हैं। कई बार तो केवल एक ही नियोजक होता है और एक से अधिक नियोजक होने की स्थिति में भी वे आपस में सांठ-गांठ करके मजदूरों को उनकी सीमांत आय उत्पादिता से कम मजदूरी लेने को बाध्य करते हैं। इसलिए, श्रमिकों के लिए मजदूर संघों का बहुत महत्व है और जब तक मालिक-मजदूर संबंध बना रहेगा, जिसने इन संघों को जन्म दिया है, तब तक ये संघ भी बने रहेंगे।

18.3.2 सामूहिक सौदाकारी और मजदूरी वृद्धि

यह तथ्य स्वीकार करते हुए कि मजदूर संघ के माध्यम से सामूहिक सौदाकारी द्वारा श्रमिक ऊंची मज़दूरी प्राप्त कर पाते हैं, अब हम यह जानने का प्रयत्न करते हैं कि व्यवहार में वे अपना उद्देश्य किस प्रकार प्राप्त करने की आशा रखते हैं। सेम्यूल्सन ने मजदूरी में वृद्धि की तीन विधियां बताई हैं। ये सभी एक-दूसरे से संबंधित हैं :

i) श्रमिक संघ श्रम की पूर्ति सीमित रख सकते हैं,

ii) वे नियोक्ता पर मानक मजदूरी में वृद्धि के लिए जोर डाल सकते है,

iii) वे ऐसी दशाएं पैदा कर सकते हैं जिससे श्रम का मांग वक्र ऊपर की ओर खिसक जाय।

श्रम की पूर्ति सीमित रखना : अपने सदस्यों को ऊंची मजदूरी दिलवाने के लिए श्रमिक संघ श्रम पूर्ति को सीमित रखने का प्रयत्न करते हैं। काम करने के घंटों में कमी, प्रवास रुकावटें (migration barriers), प्रशिक्षण की लम्बी अवधियाँ, गैर-सदस्यों को रोजगार में आने से रोकना और कार्य करने की गति धीमी करना आदि सामान्य विधियां हैं जिनसे श्रम पूर्ति सीमित रखी जा सकती है। चित्र 18.2 की सहायता से आप यह जान सकते हैं कि इन उपायों द्वारा श्रम पूर्ति सीमित रखने का मजदूरी दर पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस चित्र में श्रम का मूल पूर्ति वक्र SS है और निर्धारित मजदूरी दर OW है। श्रमिक संघ द्वारा पूर्ति को सीमित रखने

के उपाय अपनाने के कारण पूर्ति वक्र बाएं को खिसक जाता है। पूर्ति वक्र अब S_1S_1 है और निर्धारित मजदूरी की दर OW_1 है जो OW से अधिक है।

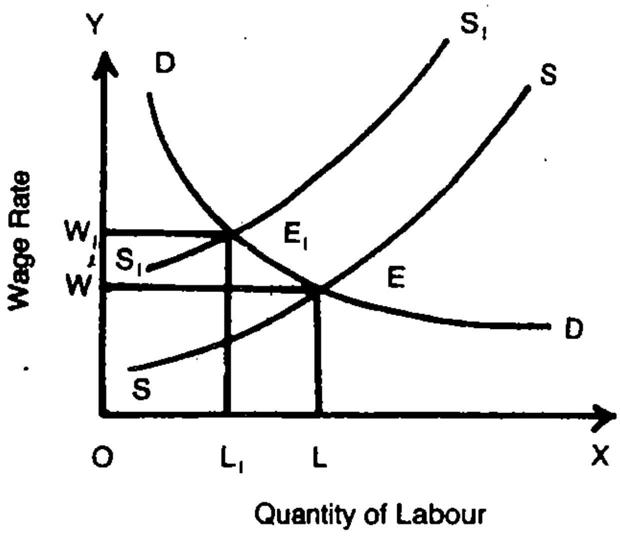

चित्र 18.2

मानक मजदूरी दरों में वृद्धि लाना : कभी-कभी श्रमिक संघ मानक मजदूरी की दर को बढ़ाने पर जोर देते हैं, लेकिन ऐसा करने में यदि कुछ मजदूरों की छंटनी हो जाय तो एतराज नहीं करते। जैसा चित्र 18.3 से स्पष्ट है, ऐसी सभी दशाओं में रोजगार कम हो जाता है। चित्र 18.3 में मजदूरी की मूल दर OW है। दबाव में आकर नियोजक यदि मजदूरी की दर OW से बढ़ाकर OW_1 कर देता है, तो रोजगार OL से घटकर OL_1 रह जाता है ।

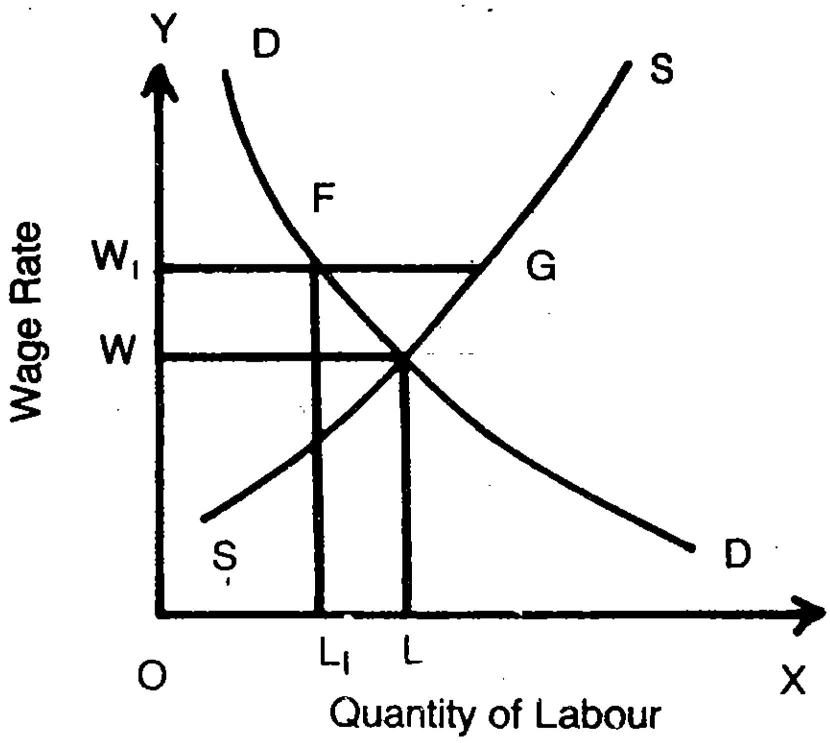

चित्र 18.3

श्रम का मांग वक्र ऊपर की ओर खिसकना : यदि श्रमिक संघ ऊंची मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं, तो श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार आ जाता है। परिणामस्वरूप इनकी उत्पादिता में प्रायः वृद्धि हो जाती है और श्रम का मांग वक्र अंततः ऊपर की ओर खिसक जाता है जिससे मजदूरी दर अपने ऊंचे स्तर पर स्थिर हो जाती है, जैसा की चित्र 18.4 से स्पष्ट है।

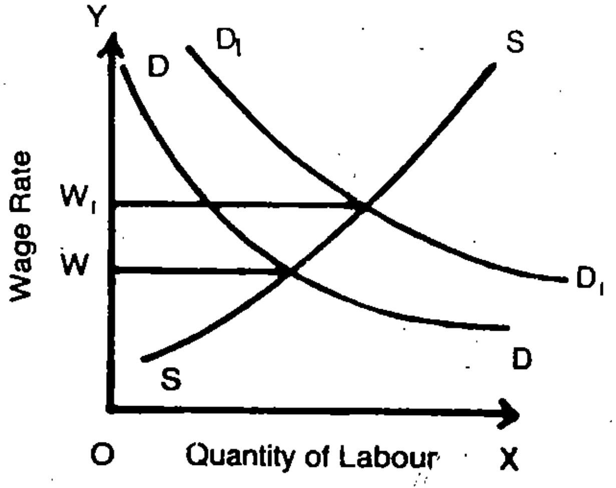

चित्र 18.4

चित्र 18.4 में आप देख रहे हैं कि श्रम का मांग वक्र DD से ऊपर की ओर खिसककर D_1D_1 हो जाता है और परिणामस्वरूप मजदूरी की दर OW से बढ़कर OW_1 हो जाती है। इसमें श्रमिक संघ का योगदान यह है कि इसने नियोजक को एक प्रकार का आश्वासन दिया है कि श्रमिकों की मजदूरी बढ़ती है तो उनकी उत्पादिता में वृद्धि हो जाएगी जो मजदूरी की दर में वृद्धि के समान होगी।

18.3.3 सामूहिक सौदाकारी और शोषण की समाप्ति

एकक्रेताधिकार (monopsony) की स्थिति में केवल एक नियोजक होता है अर्थात् श्रम की मांग करने वाली केवल एक ही फर्म होती है। ऐसे में औसत मजदूरी वक्र (AW) बांये से दांये ऊपर की ओर जाता है क्योंकि अधिक मजदूरी देकर ही और श्रमिकों को काम पर लगाया जा सकता है। इसका संगत (corresponding) सीमांत मजदूरी वक्र (MW) भी ऊपर की ओर जाता है और इसकी उपरिमुखी ढलान औसत मजदूरी वक्र की उपरिमुखी ढलान की अपेक्षा दुगुनी होती है। जैसा कि चित्र 18.5 से स्पष्ट है रोजगार का निर्धारण उस बिंदु पर होता है जहाँ सीमांत आय उत्पादिता (MRP) वक्र और सीमांत मजदूरी (MW) वक्र एक-दूसरे को काटते हैं। रोजगार OL है और मजदूरी की निर्धारित दर OW है। सीमांत आय उत्पादिता और औसत आय का अंतर श्रम का शोषण दिखाता है। सौदेबाजी करके श्रमिक संघ मजदूरी की दर में तब तक वृद्धि पाने में सफल हो सकता है जब तक कि मजदूरी दर उतनी न हो जाय जो श्रम की ई ... उत्पादिता के समान है। जब ऐसा हो जाता है तो श्रम का शोषण समाप्त हो जाता है। मजदूरी की दर में WW_1 स ... वृद्धि श्रमिकों के शोषण को केवल आंशिक तौर पर ही समाप्त करती है।

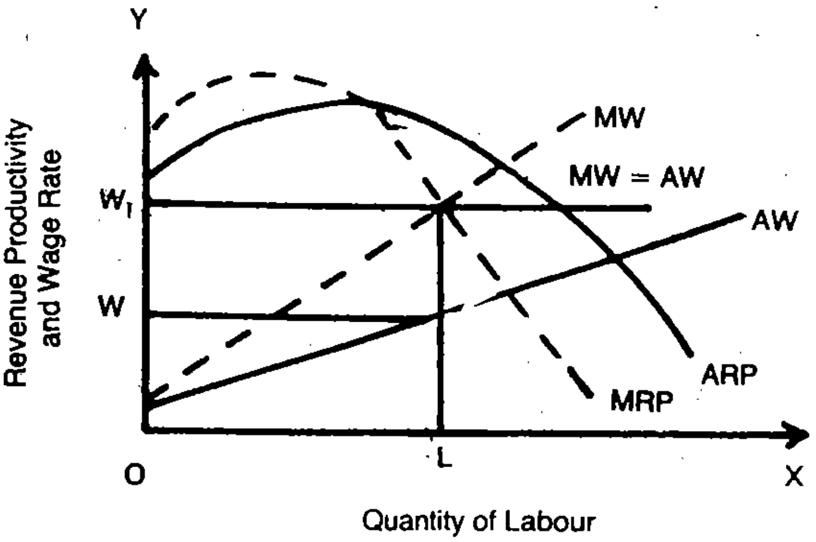

चित्र 18.5

बोध प्रश्न ख

1 श्रम बाजार में सामूहिक सौदाकारी क्या होती है ?

....

....

....

....

....

2 मजदूरी बढ़ाने की तीन विधियों के नाम बताइए।

....

....

....

....

....

3. बताइये कि निम्नलिखित सही हैं या गलत।

i) श्रमिकों की सौदेबाजी की शक्ति नियोजकों की अपेक्षा कमजोर होती है। ....

ii) नियोजक श्रमिकों का शोषण कभी नहीं करते। ....

iii) श्रमिक संघों के माध्यम से श्रमिक सामूहिक तौर पर सौदेबाजी करते हैं। ....

iv) श्रम संघ वास्तव में साम्यवादी समाज प्रणाली की उपज हैं। ....

v) श्रम की पूर्ति सीमित करके मजदूरी की दर में वृद्धि की जा सकती है। ....

vi) एकक्रेताधिकार एक ऐसी स्थिति है जिसमें श्रमिकों के कुछ नियोजक होते हैं। ....

4 खाली स्थान भरिए।

i) श्रमिक संघ श्रमिकों का एक ....संघ है।

ii) यदि मजदूरी की दर सीमांत आय उत्पादिता से ....हो तो मजदूर संघों का महत्त्व होता है।

iii) ....की स्थिति में श्रम संघ न होने से श्रमिकों का शोषण अवश्यम्भावी है।

iv) यदि श्रम का मांग वक्र ....की ओर खिसक जाय तो मजदूरी की दर में वृद्धि होगी।

v) यदि श्रम का पूर्ति वक्र ....की ओर हट जाय तो मजदूरी की दर में वृद्धि होगी।

vi) यदि नियोजकों को मजदूरी की दर बढ़ाने के लिए बाध्य किया जाय तो ....हो सकती है।

18.4 ब्याज

ब्याज मुद्रा के प्रयोग के लिए एक भुगतान है। जब आप बैंक से मशीन, दुकान या ट्रैक्टर खरीदने के लिए उधार लेते हैं तो आपको उस पैसे पर ब्याज देना पड़ता है। ऋणदाता इसलिए ब्याज मांगता है क्योंकि जब तक ऋणी उसे ऋण वापिस नहीं करता तब तक वह अपने पैसे का उपयोग नहीं कर सकता। इस खंड में आप यह पढ़ेंगे कि ब्याज के क्या उपयोगी कार्य हैं, ब्याज की दरें भिन्न-भिन्न क्यों हैं, और वास्तविक ब्याज की दर मौद्रिक ब्याज की दर से किस प्रकार भिन्न है।

18.4.1 ब्याज के कार्य

बाजार अर्थव्यवस्था में ब्याज एक उपयोगी भूमिका अदा करता है। ऐसी अर्थव्यवस्था में उत्पादक प्रायः निवेश के उद्देश्य से उधार लेते हैं। यदि अर्थव्यवस्था में अत्यधिक मंदी की स्थिति न हो तो प्रायः निवेश के लिए निधि की मांग निधि की पूर्ति सें अधिक होगी। अब प्रश्न यह है कि निधि किसे प्राप्त हो और उधार लिए गए वित्तीय साधन किन-किन परियोजनाओं को प्राप्त हों। बाजार अर्थव्यवस्था में कोई ऐसी संस्था नहीं होती जो अपनी मर्जी से या अपने मापदण्ड के आधार पर इसके बारे में फैसला करे। इसका फैसला चालू ब्याज की दरों से होता है। शायद आप जानते हैं कि सभी योजनाएँ एक जैसी लाभकारी नहीं होतीं। अतः यदि चालू ब्याज की दर बहुत ऊँची हो तो निवेशक केवल लाभ की दृष्टि से अच्छी परियोजनाओं के लिए ही उधार लेंगे, और निवेश करेंगे। ब्याज की नीची दरों पर कम लाभकारी परियोजनाएँ भी उधार ले सकती हैं। अतः आपको यह स्पष्ट हो गया होगा कि दुर्लभ निधि (scarce funds) के बंटवारे में ब्याज कितना उपयोगी भूमिका अदा करता है। इस विधि में सबसे अधिक लाभप्रद परियोजनाओं को सबसे पहले उधार मिलता है। अपनी मर्जी या व्यक्तिपरकता (subjectivity) का इसमें कोई स्थान नहीं होता।

18.4.2 ब्याज दरों में अंतर

अब तक हमने एक ब्याज की दर के बारे में चर्चा की है, लेकिन व्यवहार में एक समय पर ब्याज की कई दरें होती हैं। इस समय बैंकों से आपको बचत खाते पर 5 प्रतिशत और 3 वर्ष की मियादी जमा (fixed deposit) पर 10 प्रतिशत ब्याज मिलता है। बैंक ऋण पर सामान्यतः 16.5 प्रतिशत ब्याज वसूल करते हैं। यदि आप सिटी बैंक से कार खरीदने के लिए ऋण लें तो आपको 18 प्रतिशत ब्याज देना पड़ता है। उपभोग और उत्पादन के लिए उधार लेने पर ब्याज की दरें एक जैसी नहीं हैं। छोटी फर्मों और बड़ी फर्मों के लिए भी ब्याज की दरें एक जैसी नहीं हैं। सरकार द्वारा जारी किए गए बांडों पर निजी कंपनियों द्वारा जारी किए गए डिबेंचरों की अपेक्षा ब्याज की दर कम होती है। यहाँ तक कि सरकार द्वारा जारी की गई विभिन्न प्रतिभूतियों (securities) पर भी ब्याज की दरें एक जैसी नहीं होतीं। उदाहरण के लिए राजकोष पत्र (Treasury Bill) पर बांड की अपेक्षा ब्याज की दर हमेशा कम होती है।

ब्याज के बाजार भाव (quoted rates) वास्तव में बाजार के कुल भाव (gross rates) होते हैं और मुद्रा के उपयोग के किराए (rental fee) से अधिक होते हैं। सही अर्थ में मुद्रा के उपयोग का किराया ब्याज की शुद्ध दर (net rate) है जो सभी ऋणों में एक समान होती है। लेकिन ब्याज की कुल दर में ब्याज की शुद्ध दर के अतिरिक्त कई अन्य उद्देश्यों के लिए भुगतान होते हैं। कुछ ऋणों में अन्य ऋणों की अपेक्षा अधिक जोखिम होती है। उदाहरण के लिए कम परिसम्पत्तियों वाली किसी छोटी फर्म को ऋण देने में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी को ऋण देने की अपेक्षा जोखिम का तत्व अधिक होता है। इसी प्रकार उपभोग के लिए ऋण देना उत्पादन के लिए ऋण देने की अपेक्षा अधिक जोखिम भरा होता है। बड़ी अवधि की अपेक्षा छोटी अवधि के लिए ऋण देने में कम जोखिम होता है। स्वाभाविक है कि ऋणदाता इन जोखिमों का उचित मुआवज़ा चाहता है। इसीलिए छाटे ऋण लेने वालों पर ब्याज की दर अधिक होती है। इसी प्रकार उपभोग के उद्देश्य से या लम्बी अवधि के लिए दिए गए ऋणों पर ब्याज की दर अधिक होती है।

ऋण से संबंधित कागजी कार्यवाही और इसके प्रबंध पर कुछ खर्चे होते हैं। ये खर्चे सभी ऋणों पर एक समान नहीं होते। ऋण की वापसी और ब्याज का आवधिक भुगतान अपने आप से नहीं होता है। प्रायः तकाजा करना पड़ता है और यदि यह प्रभावी न हो तो कानूनी कार्यवाही जैसी अन्य विधियां अपनानी पड़ती हैं। इन सब पर खर्चा आता है और असुविधा होती है। इन सभी संभावित खर्चों और असुविधाओं को ध्यान में रखकर ही ऋणदाता ब्याज की दर वसूल करता है। क्योंकि सभी ऋणों में एक जैसे खर्च और एक जैसी असुविधाएँ नहीं होती, अतः ब्याज की दर भी प्रत्येक ऋण पर अलग-अलग होती है।

18.4.3 ब्याज की मौद्रिक और वास्तविक दरें

ब्याज की मौद्रिक दर वह वार्षिक प्रतिशत प्रतिफल है जो किसी उधार लिए गए पैसे पर देना पड़ता है। अन्य शब्दों में ब्याज का यह एक बाजार भाव है जिस पर मुद्रा की क्रय शक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह तो आप जानते हैं कि बैंक के पास अपने बचत खाते पर आप 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज पा सकते हैं। 3 वर्ष की मियादी जमा पर आप 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज पा सकते हैं। किसी कम्पनी में यदि आप इसी अवधि के लिए मियादी जमा कराएं तो आप 14 प्रतिशत प्रतिवर्ष ब्याज पा सकते हैं। ये सभी ब्याज की मौद्रिक दरें हैं। ये ऋणदाता और ऋणी दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि कुछ हद तक ये उनके बचत करने और निवेश करने के निर्णयों को प्रभावित करती हैं। लेकिन यदि अर्थव्यवस्था में स्फीति की स्थिति हो और सामान्य कीमत स्तर तेजी से बढ़ रहा हो तो ब्याज की मौद्रिक दर का महत्त्व कम हो जाता है। स्फीति की स्थिति में केवल ब्याज की वास्तविक दर ही महत्वपूर्ण होती है। ब्याज की मौद्रिक दर में स्फीति की दर से सामन्जस्य करके हम ब्याज की वास्तविक दर प्राप्त कर सकते हैं। मान लीजिए की किसी देश में ब्याज की मौद्रिक दर 10 प्रतिशत प्रति वर्ष है

और इसी देश में इसी अवधि में स्फीति की दर 8 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। इसका अर्थ यह है कि ऋणदाता अपने उधार दिए गए पैसे पर एक वर्ष में वास्तविक तौर पर 8 प्रतिशत की पूँजीगत हानि (capital loss) उठाता है। अतः हालांकि ब्याज की मौद्रिक दर 10 प्रतिशत प्रतिवर्ष है परंतु वास्तविक रूप में वह एक वर्ष में केवल लगभग 2 प्रतिशत ही कमाता है। कभी-कभी स्फीति की दर ब्याज की मौद्रिक दर से अधिक होती है। ऐसी स्थिति में ब्याज की वास्तविक दर ऋणात्मक हो जाती है। यदि अर्थव्यवस्था में ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है तो लोग बचत करना लाभकर नहीं समझते और देश के पूँजी स्टॉक पर इसके गंभीर परिणाम होते हैं।

बोध प्रश्न ग

1 ब्याज के मुख्य कार्य बताइए।

....

....

....

....

....

2 ब्याज की मौद्रिक और वास्तविक दरों में अंतर बताइए।

....

....

....

....

....

3 बताइए कि निम्नलिखित सही हैं या गलत।

i) ब्याज मुद्रा के प्रयोग के लिए एक भुगतान है। ....

ii) ब्याज की दरों पर दुर्लभ निधि का बंटवारा अपनी मर्जी से किया जाता है। ....

iii) ब्याज की शुद्ध दर मुद्रा के उपयोग का किराया है। ....

iv) विभिन्न ऋणों में जोखिम के तत्त्व भिन्न-भिन्न होते हैं और इससे ब्याज की दरों में अंतर आ जाते हैं। ....

v) ब्याज की वास्तविक दर वह प्रतिशत प्रतिफल है जिसका कि मुद्रा के किसी भी ऋण के बदले भुगतान करना पड़ता है। ....

vi) यदि स्फीति की दर ब्याज की मौद्रिक दर से ऊंची हो तो ब्याज की वास्तविक दर ऋणात्मक होगी। ....

18.5 पूंजी पर प्रतिफल के रूप में ब्याज

इस इकाई के पिछले खण्ड में आपने जाना कि ब्याज मुद्रा के उपयोग के भुगतान है। क्योंकि मुद्रा अधिकतर निवेश उद्देश्यों से उधार ली जाती है; यह एक पूँजी है और इसके उपयोग के लिए दिया गया ब्याज पूँजी का प्रतिफल है। अब प्रश्न यह है कि ब्याज दर अर्थात पूँजी पर प्रतिफल की दर का निर्धारण कैसे होता है ? इसका पूर्णतया संतोषजनक उत्तर देना सरल कार्य नहीं है।

क्लासिकी सिद्धांत : क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के विचार में पूँजी की मांग और पूँजी की पूर्ति ब्याज की दर का निर्धारण करती है। उनके विचार में पूँजी की मांग उत्पादक लोग निवेश के उद्देश्य से करते हैं। इसका अर्थ यह है कि कम ब्याज की दर पर पूँजी की माँग अधिक होगी और जैसे-जैसे ब्याज की दर बढ़ेगी पूँजी की माँग घटेगी। ऐसा दो कारणों से होता है। प्रथम, ब्याज की नीची दर पर अधिक ऋण लिया जाएगा क्योंकि निवेशक कम लाभकारी परियोजनाएँ भी शुरू करेंगे। ब्याज की ऊंची दरों पर कम लाभकारी परियोजनाओं को छोड़ दिया जाएगा और उनके लिए ऋण नहीं लिया जाएगा। दूसरे, जैसे-जैसे अन्य साधनों के साथ पूँजी की मात्रा में वृद्धि

की जाती है, श्रम की तरह पूँजी की सीमांत आय उत्पादिता भी गिरती चली जाती है। अतः प्रत्येक उत्पादक ब्याज की ऊँची दर पर कम पूँजी लगाएगा। सारी बात का निष्कर्ष यह है कि पूँजी की मांग ब्याज-सापेक्ष (interest elastic) होती है और इसमें परिवर्तन ब्याज की दर की विपरीत दिशा में होता है। अतः पूँजी के माँग वक्र की ढलान ऋणात्मक होती है। ऐसा चित्र 18.6 से स्पष्ट है।

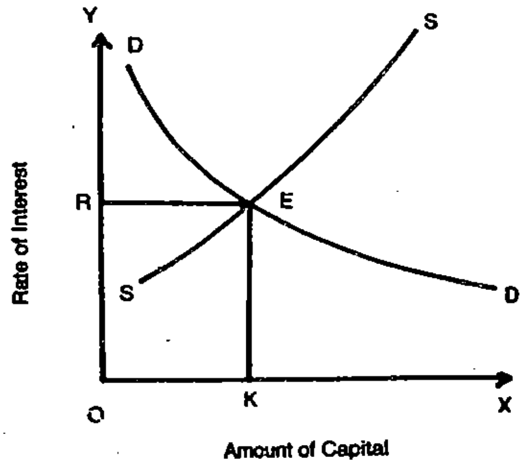

चित्र 18.6

पूँजी की पूर्ति का स्रोत बचत है। ब्याज की दर से इसका प्रत्यक्ष संबंध है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार जैसे-जैसे ब्याज की दर बढ़ती है वैसे-वैसे लोग अधिक बचत करने के लिए उत्साहित होते हैं। अतः ब्याज की ऊंची दर पर पूँजी की पूर्ति अधिक होगी। इसी कारण पूर्ति वक्र की ढलान धनात्मक होती है। चित्र 18.6 में आप देखेंगे कि जब ब्याज की दर OR है तब पूँजी की माँग और पूर्ति एक समान हैं। OR से अधिक दर पर पूँजी की पूर्ति माँग से अधिक हो जाती है। इससे बचतकर्ताओं के बीच प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है और ब्याज की दर गिरकर OR हो जाती है। OR से कम ब्याज की दर भी बाजार में टिक नहीं पाएगी क्योंकि इस पर पूँजी की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक होगी जिससे ऋण लेने वालों के बीच ऋण प्राप्त करने के लिए प्रतियोगिता होगी और ब्याज की दर बढ़कर OR पहुँच जाएगी।

उधारार्थ निधि सिद्धांत (The Loanable Funds Approach) : केन्स ने क्लासिकी स्वरूप को अस्वीकार किया था। उसके विचार में न तो बचत और न ही निवेश ब्याज की दर पर निर्भर करता है। उसके अनुसार क्लासिकी सिद्धांत का आधार ही गलत है। लेकिन रॉबर्टसन सहित कई अन्य अर्थशास्त्रियों का विचार है कि ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत की आधारभूत रूपरेखा ठीक है। इस सिद्धांत में केवल यह कमी है कि इसने मुद्रा की भूमिका को नजरअंदाज किया है। नव क्लासिकी (neo-classical) अर्थशास्त्रियों ने क्लासिकी सिद्धांत में कुछ परिवर्तन करके इसे उधारार्थ-निधि सिद्धांत का रूप दिया है। यह सिद्धांत उधारार्थ-निधि की मांग और पूर्ति के संदर्भ में ब्याज की दर के निर्धारण को समझाता है। ब्याज की दर को समझाने के लिए यह मौद्रिक और वास्तविक दोनों ही कारकों को लेता है।

पहले हम उधारार्थ-निधि की मांग के बारे में विचार करते हैं। मुख्य तौर पर उधारार्थ निधि की मांग के तीन भाग हैं : (i) निवेश उद्देश्यों के लिए , (ii) उपभोग के लिए और (iii) जमा करने के लिए। इसमें से निवेश उद्देश्यों के लिए उधारार्थ निधि की मांग सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। उपभोग ऋण अब काफी प्रचलन में है, लेकिन मात्रा की दृष्टि से उसका महत्त्व काफी कम है। उधारार्थ-निधि की मांग मुद्रा जमा करने के लिए भी की जाती है। यह सच है कि यदि मुद्रा कुछ समय के लिए जमा करके रखी जाय तो उस अवधि में यह कुछ उत्पादन नहीं करती। फिर भी फर्म और व्यक्ति दोनों ही कुछ पैसा जमा रखते हैं। उद्देश्य कुछ भी हो, उधारार्थ-निधि की मांग में परिवर्तन ब्याज की दर में परिवर्तन के विपरीत दिशा में होता है। इसका अर्थ यह है कि ब्याज की नीची दर पर परिवार और फर्में अधिक उधार लेते हैं और ब्याज की दर में वृद्धि के साथ-साथ उधारार्थ-निधि की मांग कम होती है।

पूर्ति पक्ष की दृष्टि से उधारार्थ-निधि के तीन स्रोत हैं। इसमें से मुख्य स्रोत बचत हैं। अन्य दो स्रोत हैं बैंक मुद्रा और विसंग्रह (dishoarding) के कारण प्राप्त निधि/बैंक केवल लोगों की बचतों को निवेशकों तक पहुंचाने के माध्यम ही नहीं हैं। वे उधारार्थ-निधि भी पैदा करते हैं। उधारार्थ-निधि के विसंग्रह का अर्थ यह है कि कुछ व्यक्ति और फर्में अपनी नकदी (cash balances) को कम कर देते हैं जिससे उधारार्थ-निधि की पूर्ति में वृद्धि हो जाती है।

उधारार्थ-निधि की मांग और पूर्ति के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि इस सिद्धांत में ब्याज की दर का निर्धारण समझाते समय वास्तविक तथा मौद्रिक दोनों कारकों का सहारा लिया जाता है। मांग पक्ष में, उधारार्थ-निधि की निवेश और उपभोग के लिए मांग, और पूर्ति पक्ष में उधारार्थ-निधि के स्रोत के रूप में बचत वास्तविक कारक हैं। मांग पक्ष में, जमा करने के लिए निधि की मांग, और पूर्ति पक्ष में बैंक मुद्रा और नकदी-शेष में कमी मौद्रिक कारक हैं। ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत की तुलना में उधारार्थ-निधि सिद्धांत में नया तत्व है मौद्रिक कारकों का आना। इसने निश्चय ही उधारार्थ-निधि के सिद्धांत में ब्याज के विवेचन को अधिक वास्तविक और सही कर दिया है।

उधारार्थ-निधि सिद्धांत के अनुसार, उधारार्थ-निधि की मांग और पूर्ति की परस्पर क्रिया ब्याज की दर का निर्धारण करती हैं। अन्य शब्दों में बाजार में ब्याज की दर वह होगी जिस पर उधारार्थ-निधि की माँग इसकी पूर्ति के समान हो। विकसेल (Wicksell) ने इसे ब्याज की मुद्रा-दर (money rate) कहा है।

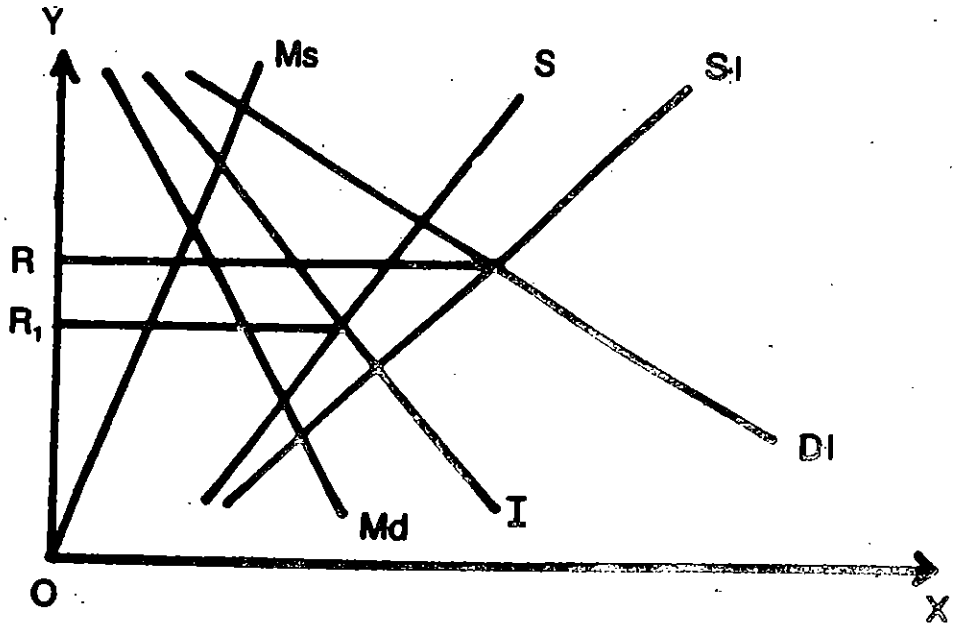

चित्र 18.7

चित्र 18.7 में आप देखेंगे कि I वक्र और Md वक्र क्रमशः निवेश और जमा करने के लिए उधारार्थ-निधि की मांग दिखाते हैं। क्योंकि उधारार्थ-निधि की उपभोग और विनियोग मांग वास्तविक कारक हैं, उन्हें इकट्ठा मिलाकर I वक्र में दिखाया गया है। S वक्र और Ms वक्र क्रमशः बचत और बैंक मुद्रा + विसंग्रह के स्रोतों से उधारार्थ-निधि की पूर्ति के सूचक हैं। D_2 और S_2 DI वक्र क्रमशः उधारार्थ-निधि की कुल मांग और कुल पूर्ति को दिखाते हैं। इस चित्र में आप देखते हैं कि ब्याज की OR दर पर उधारार्थ-निधि की मांग और पूर्ति एक समान हैं। जैसा कि पहले बताया गया है यह ब्याज की मुद्रा-दर है। विकसेल के अनुसार ब्याज की 'स्वाभाविक दर' (natural rate) वस्तु बाजार में निवेशक की पूँजी पर प्रतिफल है। इस दर पर बचत और निवेश एक समान होते हैं। चित्र 18.7 में ब्याज की स्वाभाविक दर OR_1 है। चित्र 18.7 में आप यह भी देखेंगे कि ब्याज की मुद्रा दर और स्वाभाविक दर अलग-अलग हैं। उधारार्थ-निधि के सिद्धांत के प्रतिपादकों के अनुसार, यदि ब्याज की स्वाभाविक दर और मुद्रा-दर में अंतर होता है, तो ब्याज की मुद्रा दर स्थिर नहीं रह सकती।

ब्याज के बारे में केन्स के विचार

केन्स ने उधारार्थ-निधि सिद्धांत की भी आलोचना की है। इस सिद्धान्त के संबंध में भी उसकी आलोचना वही थी जो उसने ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत के विरूद्ध की थी। उसके विचार में ब्याज एक मौद्रिक तथ्य है जो मुद्रा की मांग और पूर्ति की परस्पर क्रिया द्वारा निर्धारित होता है। मुद्रा की पूर्ति मौद्रिक अधिकारियों द्वारा बहिर्जात कारकों द्वारा निर्धारित होती है और इसे स्थिर माना जाता है। मुद्रा की मांग मुद्रा जमा (holding) करने के लिए होती है। केन्स के अनुसार लोग तीन कारणों से अपने पास मुद्रा जमा रखना चाहते हैं। लोग कुछ मुद्रा को लेन-देन के उद्देश्य (transactionary motive) से, कुछ सावधानी के उद्देश्य से (precautionary motive) से और कुछ सट्टा उद्देश्य (speculative motive) से अपने पास रखते हैं। सट्टे के उद्देश्य से मुद्रा व्यवसाय में होने वाले उतार-चढ़ाव से लाभ उठाने के लिए रखी जाती है। आधुनिक अर्थशास्त्री ब्याज के बारे में केन्स के विचारों को भी संतोषजनक नहीं मानते हैं। उनके अनुसार बाजार में ब्याज की दर वह होती है जिस पर

न केवल मुद्रा की मांग और मुद्रा की पूर्ति एक समान हो बल्कि बचत और निवेश भी एक समान हों। अन्य शब्दों में मुद्रा बाजार और उत्पाद बाजार दोनों में ही संतुलन आवश्यक है।

बोध प्रश्न घ

1 उधारार्थ - निधि की मांग के तीन घटकों को बताएँ।

....

....

....

....

....

2 बताइए कि निम्नलिखित सही हैं या गलत।

i) ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत में ब्याज की दर में परिवर्तन से बचत भी उसी दिशा में परिवर्तित होती है। ....

ii) ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत में ब्याज की दर में परिवर्तन से निवेश में परिवर्तन विपरीत दिशा में होता है। ....

iii) जिस ब्याज की दर पर उधारार्थ-निधि की मांग और पूर्ति एक समान हो, वह ब्याज की स्वाभाविक दर है। ....

iv) ब्याज की मुद्रा-दर और ब्याज की स्वाभाविक दर केवल अस्थायी तौर पर भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। ....

v) केन्स के अनुसार ब्याज पूंजी पर प्रतिफल है। ....

vi) क्लासिकी अर्थशास्त्रियों का विचार था कि ब्याज एक मौद्रिक तथ्य है। ....

vii) ब्याज के क्लासिकी सिद्धांत में यह कमी है कि यह मौद्रिक कारकों को नजर अंदाज करती है। ....

viii) केन्स ने ब्याज के अपने सिद्धांत में बचत और निवेश जैसे वास्तविक कारकों को नजर अंदाज नहीं किया। ....

ix) ब्याज का सही सिद्धांत वह है जो वास्तविक और मौद्रिक दोनों प्रकार के कारकों पर आधारित हो। ....

18.6 सारांश

मजदूरी श्रमिकों की वह आय है जो वे उत्पादन में अपनी सेवाओं के बदले प्राप्त करते हैं। जिन देशों में अधिक प्राकृतिक साधन, पूंजी और बेहतर तकनीकी ज्ञान के कारण श्रम की उत्पादिता ऊंची होती है, वहां मजदूरी की दर भी अधिक होती है।

श्रम बाजार प्रतियोगी और गैर-प्रतियोगी हो सकते हैं। जब श्रमिक संगठित नहीं होते और नियोजकों की संख्या अधिक होती है तब श्रम बाजार प्रतियोगी रहता है। ऐसे बाजार में श्रम की मांग और पूर्ति के आधार पर मजदूरी की दर निर्धारित होती है तथा यह श्रम की सीमांत आय उत्पादिता के समान होती है। यह आवश्यक नहीं कि मजदूरी की यह दर सदैव न्यूनतम निर्वाह स्तर के समान हो। वास्तव में विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए विभिन्न प्रकार के श्रमिकों की आवश्यकता होती है जिसके फलस्वरूप मजदूरी की दर भी भिन्न-भिन्न होती है। मजदूरियों में कुछ अंतर कार्य की प्रकृति, कार्यकाल, प्रशिक्षण, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के आधार पर स्पष्ट किए जा सकते हैं। अन्य शब्दों में श्रम के समूहों में आपस में प्रतियोगिता न होने के कारण मजदूरी की दर भिन्न-भिन्न होती है।

श्रम बाजार में मजदूर संघ की उपस्थिति इसे गैर-प्रतियोगी बनाती है। श्रमिक इस आशा में मजदूर संघ के सदस्य बनते हैं कि वे शोषण से बच सकेंगे और मजदूरी की ऊंची दर पा सकेंगे। मजदूर संघ के माध्यम से नियोजकों से सौदेबाजी सामूहिक सौदाकारी कहलाती है। यह श्रमिकों की नियोजकों से सौदेबाजी करने की क्षमता में वृद्धि लाती है। श्रमिक संघ सामान्यतः श्रम की पूर्ति सीमित करके, नियोजकों पर मजदूरी की मानक दर में वृद्धि के लिए दबाव डालकर और ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करके जिससे श्रम की मांग बढ़े; अपने सदस्यों के लिए

ऊंची मजदूरी पाने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन श्रम संघ एकक्रेताधिकार अर्थात् केवल एक ही नियोजक होने की स्थिति में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एकक्रेताधिकार में श्रम संघ न होने की स्थिति में मजदूरी की दर श्रम की सीमांत आय उत्पादिता से कम होती है और इस प्रकार मजदूरों का शोषण होता है। ऐसी स्थिति में श्रमिक संघ नियोजक को श्रम की सीमांत आय उत्पादिता के स्तर तक मजदूरी बढ़ाने के लिए बाध्य कर सकते हैं और इस प्रकार शोषण समाप्त कर सकते हैं।

ब्याज मुद्रा के उपयोग के लिए भुगतान है। दुर्लभ निधि के आबंटन में यह उपयोगी भूमिका अदा करता है। निधि-आबंटन की इस विधि का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें अपनी मर्जी का कोई स्थान नहीं है और प्रायः सबसे अधिक लाभकारी परियोजना प्राथमिकता के आधार पर निधि प्राप्त करती है।

वास्तविक जीवन में, एक समय में ब्याज की कई दरें हो सकती हैं। ब्याज की दरों में ये अंतर मुख्यतः विभिन्न ऋणों में जोखिम तत्वों में अंतर होने के कारण होते हैं। ऋण के प्रबंध में होने वाले खर्चे और असुविधाएँ ब्याज की दरों में अंतर लाने वाले कुछ अन्य कारक हैं। ब्याज की मौद्रिक दर ब्याज की बाजार भाव दर है जबकि ब्याज की वास्तविक दर स्फीति के दर में सामन्जस्य करने के पश्चात् प्राप्त दर होती है। बड़े निर्णयों में वास्तविक दर अधिक महत्त्वपूर्ण है।

क्लासिकी और नव-क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के लिए ब्याज पूंजी पर प्रतिफल है। क्लासिकी अर्थशास्त्रियों के अनुसार यह पूंजी की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। नव-क्लासिकी अर्थशास्त्रियों ने ब्याज की दर के निर्धारण को समझाने के लिए मौद्रिक कारकों के साथ-साथ वास्तविक कारकों, जैसे बचत और निवेश, का भी सहारा लिया। उनके विचार में ब्याज की दर उधारार्थ-निधि की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होती है। केन्स ने इस सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया। उसके अनुसार ब्याज एक मौद्रिक तथ्य है और यह मुद्रा की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।

18.7 शब्दावली

उधारार्थ-निधि : उधार देने के लिए उपलब्ध निधि।

एकक्रेताधिकार : वह बाजार जिसमें वस्तु (श्रम) का केवल एक ही खरीदार हो।

गैर-प्रतियोगी मजदूरी : ऐसे श्रम बाजार में निर्धारित मजदूरी जिसमें मजदूर संघ के होने, और/या नियोजकों में आपस में सांठ-गांठ होने (या केवल एक नियोजक होने) से प्रतियोगिता नहीं होती।

प्रतियोगी मजदूरी : ऐसे श्रम बाजार में निर्धारित मजदूरी की दर जिसमें बहुत अधिक संख्या में श्रमिक हैं और वे संगठित नहीं हैं और बड़ी संख्या में नियोजक हैं जो आपस में सांठ-गांठ नहीं करते।

प्रतियोगिता न करने वाली मजदूरियां : उन श्रम समूहों की मजदूरी की दरें जिनमें आपस में प्रतियोगिता नहीं होती क्योंकि प्रत्येक प्रकार का श्रम अन्यों से अलग प्रकार का होता है।

मौद्रिक या नकद मजदूरी : श्रमिकों को उत्पादन में उनकी सेवाओं के बदले नियोजक द्वारा दी गई मुद्रा राशि।

मौद्रिक ब्याज-दर : मूलधन पर प्रतिशत प्रतिफल के रूप में ब्याज का बाजार भाव।

मजदूर संघ : श्रमिकों की एक संस्था जो उनकी ओर से नियोजकों से सामूहिक सौदाकारी करती है।

वास्तविक मजदूरी : अपनी मौद्रिक मजदूरी से वस्तुओं और सेवाओं की प्राप्त की जा सकने वाली मात्रा और रोजगार से प्राप्त अन्य लाभ और सुविधाएँ।

वास्तविक ब्याज दर : स्फीति की दर से सामंजस्य करने के बाद प्राप्त ब्याज की दर।

शोषण : मजदूरी की दर का श्रम की सीमांत आय उत्पादिता से कम होना।

सामूहिक सौदाकारी : मजदूर संघ के माध्यम से संयुक्त सौदाकारी।

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) सही (viii) सही

4 (i) गैर-प्रतियोगी (ii) समकारी (iii) धनात्मक (iv) पीछे की ओर (v) कम (vi) प्रतियोगिता (vii) एकक्रेताधिकारी

ख 3 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत

4 (i) स्वैच्छिक (ii) कम (iii) एकक्रेताधिकार (iv) दायीं ओर (v) बायीं ओर (vi) बेरोजगारी

ग 3 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) गलत (vi) सही

घ 2 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत (ix) सही

18.9 स्वपरख प्रश्न

1 मौद्रिक मजदूरी और वास्तविक मजदूरी की अवधारणाएं समझाइए। प्रतियोगी मजदूरी किस प्रकार निर्धारित होती है ?

2 सामुहिक सौदाकारी द्वारा मजदूर संघों को मजदूरी की दर में वृद्धि पाना किस प्रकार संभव होता है ?

3 ब्याज की मौद्रिक और वास्तविक दरों में अंतर कीजिए। ब्याज की दरों में विभिन्नता क्यों होती है ?

4 क्या ब्याज पूंजी का प्रतिफल है ? ब्याज की दर किस प्रकार निर्धारित होती है ?

नोट : ये प्रश्न आपको इस इकाई का अध्ययन करने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु उत्तरों को विश्वविद्यालय न भेजिए। ये प्रश्न आपके अभ्यास के लिए ही हैं ।

इकाई 19 आय का वितरण–II : लगान और लाभ

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 लगान का सिद्धांत
 19.2.1 भूमि का लगान
 19.2.2 आर्थिक लगान और अंतरण आय
19.3 आभासी लगान
19.4 लाभ
 19.4.1 लाभ की अवधारणा
 19.4.2 लाभों के स्रोत
19.5 सारांश
19.6 शब्दावली
19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
19.8 स्वपरख प्रश्न

19.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- यह बता सकें कि लगान क्या है
- यह स्पष्ट कर सकें कि लगान कैसे उत्पन्न होता है
- लगान और आभासी लगान में अंतर बता सकें
- लाभ की अवधारणा समझा सकें
- लाभ के स्रोतों की सूची बना सकें।

19.1 प्रस्तावना

विभिन्न उत्पादन के साधनों की सहायता से किये गये उत्पादन से आय उत्पन्न होती है जो इन साधनों के स्वामियों के बीच मजदूरी, ब्याज, लगान और लाभ के रूप में बंट जाती है। पिछली इकाई में आपने पढ़ा था कि मजदूरी और ब्याज कैसे निर्धारित होते हैं। इस इकाई में आप लगान और लाभ के बारे में पढ़ेंगे। लगान के संबंध में आप लगान की प्रकृति का अध्ययन करेंगे, यह भी पढ़ेंगे कि लगान कैसे उत्पन्न होता है और क्या भूमि ही लगान अर्जित करती है या उत्पादन के सभी साधन लगान अर्जित करते हैं। सामान्य प्रचलन में लगान को भूमि का प्रतिफल मानते हैं। लेकिन अर्थशास्त्र में कुछ अर्थशास्त्री इसे भूमि की कुछ श्रेणियों, जिनकी पूर्ति बेलोच होती है, के द्वारा अर्जित अतिरेक (surplus) मानते हैं। इस तरह, कोई भी साधन जिसमें भूमि की यह विशेषता मौजूद हो वह कुछ अर्जित कर सकता है जो लगान का ही रूप होगा। कुछ अन्य अर्थशास्त्री यह दावा करते हैं कि किसी भी साधन को उसकी अवसर लागत से अधिक जो भी आय प्राप्त होती है वह लगान है । ये कुछ जटिल विषय हैं जिन पर हम इस इकाई में विस्तार से चर्चा करेंगे। लाभ के बारे में आप इसकी अवधारणा और इसके मुख्य स्रोतों का अध्ययन करेंगे। सामान्यतः लाभ उद्यमी की आय है। लेकिन एक उद्यमी को लाभ क्यों मिलते हैं ? इस प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में बहुत कम सहमति है। अर्थशास्त्रियों में यह असहमति इसलिये उत्पन्न होती है कि उद्यमी द्वारा अर्जित लाभ एक से अधिक स्रोतों से उत्पन्न होते हैं और यह हमेशा स्पष्ट नहीं होता कि इन स्रोतों में से कौन सा स्रोत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।

19.2 लगान का सिद्धांत

अर्थशास्त्र में लगान के संबंध में दो मुख्य विचारधाराएं हैं। पहली विचारधारा है क्लासिकी अर्थशास्त्रियों की जिसके अनुसार भूस्वामी को मिलने वाला भूमि का प्रतिफल ही लगान है। इस विचारधारा के मुख्य प्रतिनिधि डेविड रिकार्डो थे। उनके अनुसार लगान **"भूमि की उपज का वह भाग है जो भूस्वामियों को भूमि की मौलिक एवं अनश्वर शक्तियों के प्रयोग के लिये चुकाया जाता है।"** इस प्रकार उन्होंने लगान को एक

बहुत सीमित अर्थ दिया। फिर भी, उनके सिद्धांत ने एक महत्वपूर्ण सच्चाई प्रकट की। वह यह है कि कोई भी स्थिर पूर्ति वाला साधन लगान जैसी आय का उपार्जन करेगा। इससे आभासी लगान की अवधारणा को विकसित करने में भी मदद मिली।

दूसरी विचारधारा आधुनिक अर्थशास्त्रियों की है। उन्होंने रिकार्डो की विचारधारा को अस्वीकार कर दिया। उनके अनुसार लगान केवल भूमि को ही प्राप्त नहीं होता है। उनका मत है कि **लगान एक प्रकार का अतिरेक (surplus) है जो उत्पादन के सभी साधनों को प्राप्त होता है।** इस विचारधारा का मुख्य प्रतिनिधि जोन रोबिन्सन (Joan Robinson) को माना जाता है। उनके अनुसार "**लगान की अवधारणा का सारांश यह है कि यह एक अतिरेक है जो किसी उत्पादन-साधन के किसी विशिष्ट भाग द्वारा उस न्यूनतम आय के अतिरिक्त अर्जित किया जाता है जो उसे अपना काम करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिये आवश्यक होती है।**" लगान की यह अवधारणा आम प्रचलन में लगान की धारणा से इतनी भिन्न है कि इसे समझना कठिन है। इसके बावजूद अर्थशास्त्र में लगान की इसी अवधारणा का व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। अतः इसे ध्यानपूर्वक समझना लाभप्रद होगा। जोन रोबिन्सन के अनुसार प्रत्येक साधन उत्पादन में काम करने के प्रतिफल के रूप में कुछ न्यूनतम आय की अपेक्षा करता है। लेकिन वास्तविक उपार्जन इस न्यूनतम उपार्जन के बराबर हो सकता है या इससे अधिक हो सकता है। यदि वास्तविक उपार्जन साधन द्वारा अपेक्षित न्यूनतम उपार्जन से अधिक है तो यह अतिरेक ही लगान होगा।

लगान की अवधारणा समझने के बाद लगान के सिद्धांत को आसानी से समझा जा सकता है। इस भाग में अब हम पहले भूमि के प्रतिफल के रूप में लगान पर और फिर अंतरण आय पर अतिरेक के रूप में आर्थिक लगान पर विस्तार से विचार करेंगे। अंतरण आय का अर्थ है वह न्यूनतम उपार्जन जो एक साधन को अपने वर्तमान उपयोग में लगे रहने को प्रोत्साहित करता है।

19.2.1 भूमि का लगान

जैसे कि पहले बताया जा चुका है रिकार्डो ने लगान को भूमि पर प्रतिफल के रूप में लिया है। उनका मत था कि लगान उस समय तक उत्पन्न नहीं होता जब तक कि सबसे उपजाऊ भूमि पर खेती की जाती है। अनाज की मांग बढ़ने से जब इस प्रकार की भूमि नहीं बचती तब इससे कम उपजाऊ भूमि पर खेती करनी पड़ती हैं और इस प्रकार सबसे उपजाऊ भूमि पर लगान उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति में लगान की मात्रा सबसे उपजाऊ भूमि के उत्पादन और उससे कम उपजाऊ भूमि के उत्पादन के अंतर के बराबर होती है। जैसे-जैसे जनसंख्या का अनाज की अतिरिक्त मांग पर दबाव बढ़ा, वैसे-वैसे दूसरी किस्म की भूमि भी नहीं बची। अतः उससे कम उपजाऊ भूमि पर खेती करनी पड़ी। इस स्थिति में न केवल सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर लगान बढ़ा बल्कि उससे कम उपजाऊ (दूसरी सर्वोत्तम भूमि) भूमि पर भी लगान उत्पन्न हो गया। खेती की जा रही सबसे कम उपजाऊ जमीन पर कोई लगान नहीं था। रिकार्डो ने इसे सीमांत भूमि (marginal land) का नाम दिया। इस तर्क के आधार पर यदि कई किस्म की भूमि है जिनका उपजाऊपन का स्तर अलग-अलग है और इन सभी पर खेती की जाती है तो सबसे कम उपजाऊ भूमि, यानी सीमांत भूमि, पर कोई लगान नहीं होगा। और सभी प्रकार की भूमियों पर सीमांत भूमि के उत्पादन से जितना अधिक उनका उत्पादन है उसके मूल्य के बराबर लगान दिया जाएगा। एक उदाहरण की सहायता से भूमि पर लगान का निर्धारण ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है। मान लीजिये कि एक नया उपनिवेशी देश है जिसमें A, B और C तीन किस्म की भूमि है। इनमें A सबसे अधिक उपजाऊ हैं, B उससे कम उपजाऊ और C सबसे कम उपजाऊ है। यह स्वाभाविक है कि इस देश में आकर बसने वाले लोग पहले A भूमि पर खेती करेंगे। मान लीजिये इस भूमि पर श्रम और पूंजी की एक निश्चित मात्रा लगाकर प्रति हैक्टेयर 20 क्विंटल गेहूं पैदा किया जाता है और इसके लिये लगाई गई श्रम व पूंजी पर 4,000 रु० खर्च आता है। गेहूं की कीमत 200 रु० प्रति क्विंटल है। गेंहू के कुल उत्पादन का कुल मूल्य 4,000 रु० है जो खेती करने की लागत को ही पूरा करता है और इस तरह कोई अतिरेक नहीं है, अतः इस भूमि पर कोई लगान नहीं है। जब तक गेंहू की मांग A भूमि पर खेती करके पूरी हो रही है, B और C भूमि पर खेती नहीं की जाएगी। जनसंख्या में वृद्धि के कारण गेहूं की मांग यदि इतनी बढ़ जाए कि इसे केवल A भूमि पर खेती करके पूरा नहीं किया जा सकता तो केवल एक ही विकल्प है कि B भूमि पर खेती शुरू की जाए। अतः कुछ व्यक्ति B भूमि पर खेती करने लगेंगे। इस भूमि पर श्रम और पूंजी की उतनी ही मात्रा, जितनी A भूमि पर लगाई थी, लगाकर केवल प्रति हैक्टेयर 16 क्विंटल उत्पादन सम्भव है। इससे गेंहू की कीमत बढ़कर 250 रु० प्रति क्विंटल हो जाएगी। अब B भूमि सीमांत भूमि होने के कारण लगान रहित भूमि होगी और भूमि A पर लगान उत्पन्न हो जाएगा जो कि भूमि A के भूमि B पर आधिक्य उत्पादन के मौद्रिक मूल्य के बराबर होगा। भूमि A का भूमि B पर आधिक्य उत्पादन 4 क्विंटल है और गेंहू की कीमत 250 रु० प्रति क्विंटल है, इसलिये, भूमि A पर प्रति हैक्टेयर लगान 1000 रु० होगा। इसी प्रकार जब C भूमि पर खेती की जाती है तो यह सीमांत भूमि बन जाती है। यदि C भूमि पर गेंहू का उत्पादन 10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर है तो गेंहू की कीमत 400 रु० प्रति क्विंटल होगी और भूमि A और भूमि B पर लगान उनके भूमि C पर आधिक्य उत्पाद के मौद्रिक मूल्य के बराबर होगा जो क्रमशः 4,000 रु० और 2,400 रु० होगा।

रिकार्डो की लगान की अवधारणा को एक चित्र द्वारा दर्शाया जा सकता है (चित्र 19.1 देखें)। x-अक्ष पर हम विभिन्न प्रकार की भूमि A, B, C दर्शाते हैं और y-अक्ष पर गेहूं का प्रति हैक्टेयर उत्पादन। A भूमि पर उत्पादन आयत OK द्वारा दर्शाया गया है। B भूमि पर उत्पादन आयत PJ द्वारा और C भूमि पर उत्पादन आयत LT द्वारा दर्शाया गया है। क्योंकि उत्पादन की लागत आयत ON या आयत PM या आयत LT द्वारा दर्शायी गई है, अतः C भूमि लगान रहित भूमि है। A भूमि पर लगान आयत JK और B भूमि पर लगान आयत NJ द्वारा दिखाया गया है।

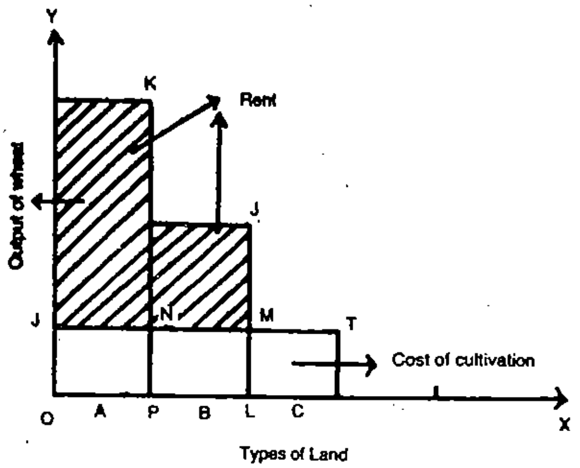

चित्र 19.1

रिकार्डो ने लगान का सिद्धांत किसी अनुभवाश्रित (empirical) तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने केवल निगमन (deductive reasoning) विधि का सहारा लिया और अपने सिद्धांत को कुछ मान्यताओं पर आधारित किया। उनके द्वारा की गई मान्यताएं संक्षेप में निम्नलिखित हैं :

1 स्थान और उपजाऊपन दोनों दृष्टि से सबसे अच्छी भूमि पर पहले खेती की गई। कम अच्छी भूमि पर बाद में खेती की गई।

2 दुर्लभता भूमि का एक विशेष गुण है और भूमि पर लगान इस गुण के कारण ही उत्पन्न होता है।

3 भूमि समरूप नहीं होती।

4 भूमि की कुछ मौलिक एवं अनश्वर शक्तियां होती हैं जो उपजाऊपन के रूप में इसकी किस्म निर्धारित करती हैं।

5 सीमांत भूमि लगान रहित भूमि होती है।

यह स्पष्ट है कि इनमें से कुछ मान्यताएं अवास्तविक हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों का इस ओर ध्यान गया और उन्होंने रिकार्डो के लगान के सिद्धांत की इन मान्यताओं के आधार पर आलोचना की। यह कहा गया कि रिकार्डो ने वह क्रम ठीक तरह से नहीं बताया जिस में विभिन्न किस्म की भूमियों पर खेती की गई। इसके अतिरिक्त दुर्लभता भूमि की अद्वितीय विशेषता नहीं है। अन्य साधन भी दुर्लभ हो सकते हैं और वे भी लगान का उपार्जन कर सकते हैं। अंत में, लगान रहित भूमि कहीं नहीं मिलती और, इसलिये, यह कहना गलत है कि सीमांत भूमि लगान रहित भूमि होती है।

19.2.2 आर्थिक लगान और अंतरण आय

आधुनिक अर्थशास्त्री लगान की अपनी अवधारणा और सामान्य प्रचलन में लगान की अवधारणा में भेद दिखलाने के लिये लगान को आर्थिक लगान (economic rent) कहना पसंद करते हैं। आपने इस भाग में पहले पढ़ा है कि आर्थिक लगान वह अतिरेक है जो एक उत्पादन के साधन को उस न्यूनतम प्रतिफल के अतिरिक्त प्राप्त होता है जो उसे उसके वर्तमान प्रयोग में रहने को प्रेरित करता है। एक उत्पादन के साधन को

यह न्यूनतम भुगतान उसका "अंतरण आय" (transfer earnings) कहलाता है। यदि कोई उत्पादक एक उत्पादन के साधन को उसके अंतरण आय से कम भुगतान दर पर काम पर लगाना चाहता है तो वह उसे काम पर लगाने में सफल नहीं होगा। व्यवहार में एक उत्पादन के साधन को दिया गया भुगतान उसके अंतरण आय के बराबर हो सकता है या उससे अधिक हो सकता है। यदि उत्पादन के साधन को मिलने वाला प्रतिफल उसके अंतरण आय के बराबर है तो उसे कोई लगान नहीं मिलता। लेकिन उत्पादन के साधन का पारिश्रमिक बहुधा उसके अंतरण आय से अधिक होता है। और ऐसी सभी स्थितियों में उत्पादन के साधन के पारिश्रमिक का एक भाग लगान होता है और दूसरा भाग उसका अंतरण आय होता है। इस प्रकार एक उत्पादन के साधन के वास्तविक पारिश्रमिक में लगान और अंतरण आय दोनों ही शामिल होते हैं। लेकिन दो स्थितियां ऐसी होती हैं जो इससे भिन्न हैं। एक वह जब उत्पादन के साधन का कुल पारिश्रमिक अंतरण आय होता है। दूसरी वह जब उत्पादन के साधन का कुल पारिश्रमिक लगान होता है। आप इस बात को निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा आसानी से समझ सकते हैं।

1 पहले एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण लेते हैं जो B.A. पास है। इस व्यक्ति को किसी खास किस्म की नौकरी के लिये प्रशिक्षित नहीं किया गया है। वह विभिन्न प्रकार के ऐसे काम कर सकता है जिनके लिये किसी विशेष प्रकार की निपुणता की जरूरत नहीं है। वह रेलवे में टिकट कलेक्टर या बैंक में क्लर्क या कर विभाग में निरीक्षक आदि का काम कर सकता है। मान लीजिये वह बैंक में एक क्लर्क की नौकरी करता है और उसे 2,000 रु॰ प्रति माह वेतन मिलता है। टिकट कलेक्टर या निरीक्षक की नौकरी से भी मान लीजिये उसे 2,000 रु॰ प्रति माह मिलता है। इस स्थिति में उसकी अंतरण आय 2,000 रु॰ है जो उसे निरीक्षक या टिकट कलेक्टर का काम करके मिलते हैं और यही वेतन उसे वर्तमान नौकरी (बैंक में क्लर्क) से मिलता है। अतः उसके उपार्जन में कोई आर्थिक लगान नहीं है।

2 अब हम एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण लेते हैं जो किसी विशिष्ट काम के लिये प्रशिक्षित किया गया है। मान लीजिये उसे दंत शैल्यचिकित्सा (dental surgery) के लिये प्रशिक्षित किया गया है। यह व्यक्ति कोई अन्य नौकरी, जिसमें विशिष्ट निपुणता की आवश्यकता है, नहीं कर सकता और ऐसी घटिया नौकरी जिसमें किसी भी खास निपुणता की जरूरत नहीं है वह स्वयं ही स्वेच्छा से नहीं करेगा। अतः उसकी अंतरण आय शून्य है और दंत शैल्यचिकित्सक के रूप में उसे जो वेतन मिलता है, मान लीजिये यह वेतन 4,000 रु॰ है, वह सारे का सारा आर्थिक लगान होगा।

3 ऊपर दिये गये दोनों उदाहरण दो चरम सीमाओं के उदाहरण हैं। वास्तव में ऐसी स्थिति बहुत ही दुर्लभ होती है जब कि कोई साधन पूर्णतया विशिष्ट हो। उच्च न्यायालय के न्यायाधीश का उदाहरण लेते हैं। मान लीजिये उसका वेतन 1,000 रु॰ प्रति माह है। एक वकील के रूप में मान लीजिये यह व्यक्ति 8,000 रु॰ प्रति माह कमा सकता था। अतः इस व्यक्ति की अंतरण आय 8,000 प्रति माह है और उसके वेतन में 2,000 रु॰ आर्थिक लगान के रूप में शामिल हैं।

इन तीनों उदाहरणों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से आपको यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि आर्थिक लगान और उत्पादन के साधन की पूर्ति लोच में विपरीत संबंध होता है। पहले हम एक ऐसी स्थिति पर विचार करते हैं जिसमें साधन अविशिष्ट है और जिसे सभी संभव उपयोगों में समान प्रतिफल मिलते हैं। यह स्पष्ट है कि ऐसे साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होगी जैसा कि चित्र 19.2 में दिखाया गया है।

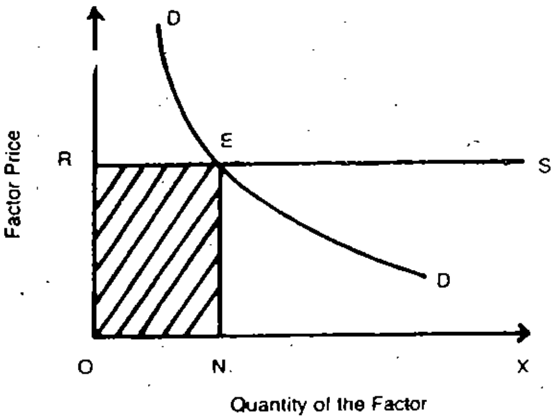

चित्र 19.2

इसका अर्थ है कि यह साधन केवल एक स्थिर कीमत पर ही उपलब्ध है और यदि इसको दिया जाने वाला पारिश्रमिक इस कीमत से जरा सा भी कम हो तो इस साधन की एक भी इकाई उत्पादक को उपलब्ध नहीं होगी । इसके अतिरिक्त, उत्पादक को इस साधन को इस कीमत से अधिक देने की जरूरत नहीं है क्योंकि इस कीमत पर साधन की कोई भी मात्रा प्राप्त करना संभव है । चित्र 19.2 में RS पूर्ति वक्र है जो यह दर्शाता है कि साधन की OR कीमत पर साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है । साधन की मांग वक्र DD पूर्ति वक्र को E बिंदु पर काटती है जिसका अर्थ है कि साधन की प्रयोग की गई मात्रा ON है और इसकी कुल आय OREN है । इस स्थिति में क्योंकि OR अंतरण आय है, साधन द्वारा प्राप्त की गई सारी की सारी आय अंतरण आय है ।

अब हम एक ऐसी स्थिति पर विचार करते हैं जिसमें साधन पूर्णतया विशिष्ट है । इसकी पूर्ति पूर्णतया बेलोच होगी । अतः अंतरण आय शून्य होगी । यह चित्र 19.3 में दिखाया गया है ।

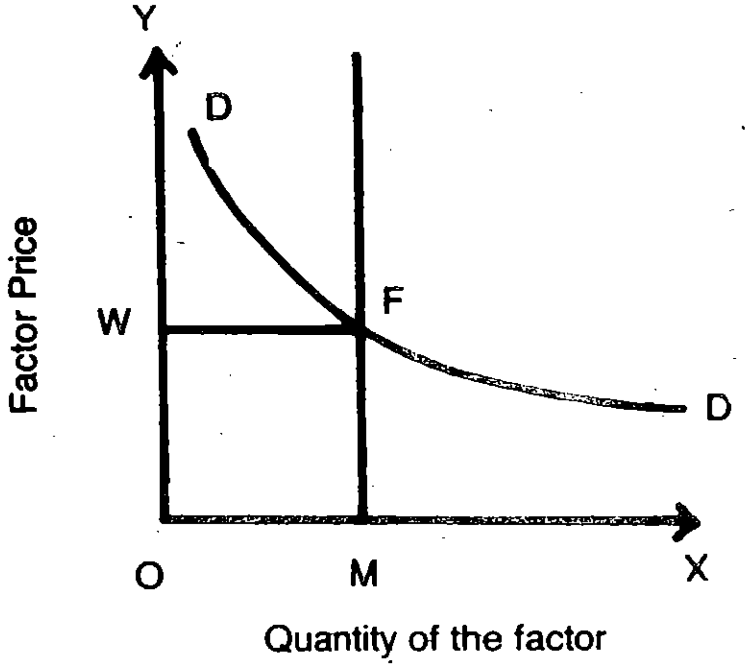

चित्र 19.3

आप देखेंगे कि साधन की कीमत या साधन के प्रतिफल की दर OW है और उसका कुल उपार्जन OWFM है । क्योंकि इस स्थिति में साधन की अंतरण आय शून्य है, उसके द्वारा अर्जित सारी की सारी आय आर्थिक लगान है ।

साधन की पूर्ति लोचदार होने की अवस्था में इसकी पूर्ति वक्र की ढलान धनात्मक होगी जैसा कि चित्र 19.4 में दिखाया गया है ।

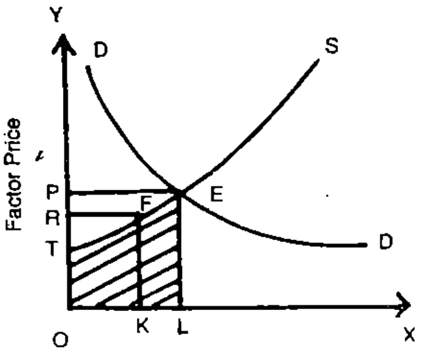

चित्र 19.4

साधन का मांग वक्र DD साधन के पूर्ति वक्र TS को E बिंदु पर काटता है। साधन की संतुलन कीमत LE या OP है। यह स्पष्ट है कि साधन की अंतिम इकाई अर्थात् OL वां को उसकी पूर्ति कीमत के बराबर प्रतिफल मिलता है जो कि वही है जो उसकी अंतरण आय है। अन्य इकाइयों को उनके अंतरण आय के अतिरिक्त भी कुछ मिलता है। उदाहरण के लिये OKवें इकाई की अंतरण आय KF या OR है। अतः इसकी आय में RP के बराबर आर्थिक लगान शामिल है। साधनों की सभी इकाइयों को एक साथ ध्यान में रखकर कुल आय OPEL है। इसमें सभी इकाइयों की अंतरण आय शामिल है जो OTEL के बराबर है और इस प्रकार सभी इकाइयों द्वारा अर्जित आर्थिक लगान TPE है।

बोध प्रश्न क

1 क्लासिकी अर्थशास्त्र में लगान की अवधारणा क्या है ?

....

....

....

2 आधुनिक अर्थशास्त्र में आर्थिक लगान की अवधारणा क्या है ?

....

....

....

3 अंतरण आय की अवधारणा क्या है ?

....

....

....

4 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) रिकार्डो के अनुसार लगान भूमि की मौलिक ए' ^नश्वर शक्तियों के लिये किया गया भुगतान है। ....

ii) आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उत्पादन के साधन के उपार्जन में आर्थिक लगान का तत्व हमेशा होता है। ....

iii) रिकार्डो ने कहा था कि सीमांत भूमि लगान रहित भूमि होती है। ....

iv) रिकार्डो का लगान का सिद्धांत उन अनुभवाश्रित तथ्यों पर आधारित है जो उस समय उपलब्ध थे जब यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया था। ....

v) ऐसी स्थिति में जबकि उत्पादन के साधन की पूर्ति स्थिर है तो इसकी सारी आय आर्थिक लगान होगी। ....

vi) यदि उत्पादन के साधन की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है तो इसकी सारी आय आर्थिक लगान होगी। ....

19.3 आभासी लगान (Quasi Rent)

आभासी लगान की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग मार्शल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (Principles of Economics) में किया था। उनके मतानुसार पूंजीगत उपस्करों जैसे उत्पादन के साधनों की पूर्ति अल्पकाल में बेलोच हो सकती है और इससे वे अपनी पूर्ति कीमत से अधिक कीमत प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं। पूर्ति कीमत पर यह आधिक्य लगान ही है। लेकिन मार्शल ने इसे आभासी लगान कहना ज्यादा उचित समझा क्योंकि उसने भूमि और अन्य उत्पादन के साधनों, खास तौर से भवन व पूंजीगत उपकरणों के बीच मूलभूत भेद को ध्यान में रखा। भूमि की पूर्ति अल्पकाल और दीर्घकाल दोनों ही में स्थिर रहती है। मनुष्य अपनी निपुणता और प्रयत्नों से दीर्घावधि में भी इसकी पूर्ति नहीं बढ़ा सकता। लेकिन पूंजीगत उपकरणों के संबंध में यह कथन सही नहीं होता। इसकी पूर्ति अल्पावधि में बेलोच हो सकती है लेकिन दीर्घावधि में इसे हमेशा बढ़ाया जा सकता है। अतः मार्शल का मत था कि मशीनें, भवन और निपुण श्रम केवल अल्पावधि में ही अपर्न

पूर्ति कीमत पर आधिक्य प्राप्त कर सकते हैं। दीर्घावधि में इनकी मांग बढ़ने से जब इनकी पूर्ति बढ़ती है तो यह आधिक्य खत्म हो जाता है। अतः मार्शल के अनुसार दीर्घावधि में कोई भी साधन आभासी लगान अर्जित नहीं कर सकता।

अर्थशास्त्री अब आभासी लगान की अवधारणा का प्रयोग ठीक उसी अर्थ में नहीं करते जिसमें मार्शल ने किया था। **आभासी लगान को अब ऐसे आधिक्य के रूप में परिभाषित किया जाता है जो एक उत्पादक को अल्पावधि में अपने उत्पाद को बेचकर अपनी परिवर्ती लागतों के अतिरिक्त प्राप्त होता है।** इस अवधारणा को समझने के लिये हम एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिये एक उद्यमी एक मशीन खरीदने के लिये एक विकास बैंक से कुछ रुपया उधार लेता है। वह इस मशीन का प्रयोग किसी वस्तु का उत्पादन करने के लिये करेगा। वह विकास बैंक को ऋण पर जो मासिक ब्याज देता है, वो स्थिर लागत है जो उत्पादक को उठानी ही पड़ती है। इस लागत का उत्पादन के स्तर से कोई संबंध नहीं है। वह कितना भी उत्पादन करे यह लागत स्थिर रहती है। लेकिन मशीन का प्रयोग श्रम और कच्चे माल जैसे परिवर्ती साधनों के साथ किया जाता है। यद्यपि उत्पादक लाभ कमाने के उद्देश्य से उत्पादन करता है फिर भी यह जरूरी नहीं कि अल्पावधि में वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल हो जाए। अल्पावधि में 4 सम्भावनाएं हो सकती हैं। पहली, उसके उत्पाद की कीमत से न केवल उसकी कुल लागत ही पूरी हो जाती है बल्कि उसे कुछ लाभ भी प्राप्त होता है। दूसरी, उत्पाद की कीमत परिवर्ती लागतों को और स्थिर लागतों के एक भाग को ही पूरा करती है और परिणामस्वरूप उत्पादक को कुछ हानि होती है। तीसरी, उत्पाद की कीमत केवल परिवर्ती लागतों को पूरा करने के लिये ही काफी है और इस प्रकार उत्पादक की कुल हानि स्थिर लागतों के बराबर है। चौथी, उत्पाद की कीमत परिवर्ती लागतों को पूरा करने के लिये भी पर्याप्त नहीं है। स्पष्ट है कि इस स्थिति में उत्पादक उत्पादन नहीं करेगा। तीसरी स्थिति में उसके पास विकल्प है। वह उत्पादन कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता है क्योंकि वह कुछ भी करे उसे स्थिर लागतों के बराबर तो हानि उठानी ही पड़ेगी। पहली दो स्थितियों में वह अवश्य ही उत्पादन करेगा। पहली स्थिति में वह कुछ लाभ अर्जित करता है और दूसरी स्थिति में उसे हानि कम होती है। दूसरी स्थिति में उत्पादक के पास उत्पादन न करने का विकल्प नहीं है क्योंकि यदि वह ऐसा करता है तो उसकी हानियां बढ़ जाएंगी और स्थिर लागत के बराबर हो जाएंगी जबकि उत्पादन करने पर वह स्थिर लागतों का एक भाग वसूल कर लेता है।

अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि पहली दो स्थितियों में उत्पादक को परिवर्ती लागत पर आधिक्य प्राप्त होता है और इस प्रकार वह आभासी लगान अर्जित करता है। तीसरी स्थिति में उत्पादन करने पर उत्पादक को कोई आभासी लगान प्राप्त नहीं होगा।

दीर्घावधि में उत्पादन के सभी साधन परिवर्ती होते हैं और उत्पादक केवल तभी उत्पादन करेगा जब वह कुल लागतों को पूरा कर सकता है। 13वीं इकाई में आपने पढ़ा था कि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत दीर्घावधि में उत्पाद की कीमत अनिवार्य रूप से औसत कुल लागत और सीमांत लागत दोनों के बराबर होती है और इस प्रकार उत्पादक को आभासी लगान प्राप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

आभासी लगान की अवधारणा को चित्र 19.5 की सहायता से आसानी से समझा जा सकता है।

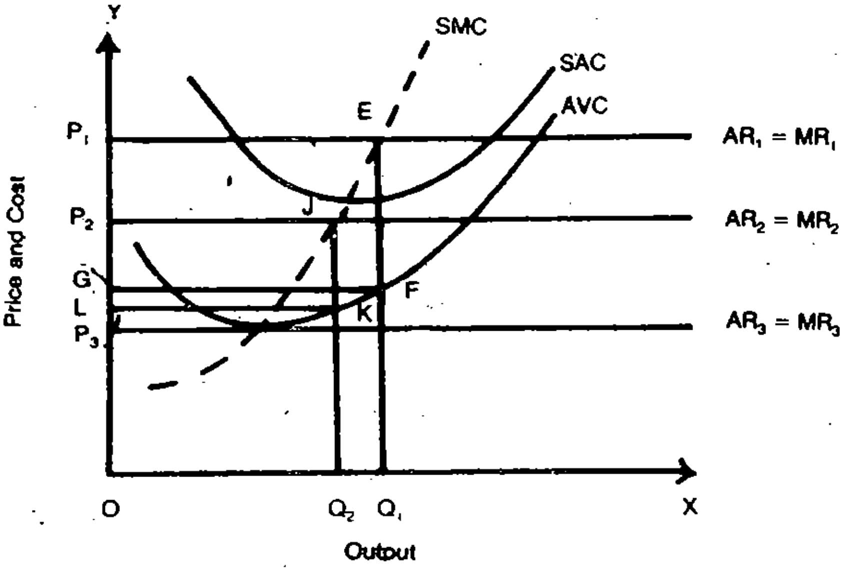

चित्र 19.5

इस चित्र में दिखायी गई स्थिति किसी फ़र्म के पूर्ण प्रतियोगिता वाले बाजार में उत्पादन करने की है। SAC इसका अल्पावधि औसत लागत वक्र है, AVC औसत परिवर्ती लागत वक्र है और SMC अल्पावधि सीमांत लागत वक्र है। पूर्ण प्रतियोगिता में क्योंकि फ़र्म के लिये कीमत दी हुई होती है और उसे वह स्वीकार करनी पड़ती है और वह उसे प्रभावित नहीं कर सकती, इसलिये उसकी वस्तु का मांग वक्र समस्तर (horizontal) होता है। मान लीजिये फ़र्म द्वारा उत्पादित वस्तु की कीमत OP_1 है। इस कीमत पर फ़र्म के सम्मुख मांग वक्र यानि उसका औसत आय वक्र AR होगी। आपने इकाई-13 में पढ़ा है कि जब एक फ़र्म की औसत आय स्थिर होती है तो इसकी सीमांत आय वही होगी जो औसत आय है और सीमांत आय भी स्थिर होगी। अतः चित्र 19.5 में $AR_1 = MR_1$। इस चित्र में SMC और MR_1 एक दूसरे को E बिंदु पर काटते हैं जिसका अर्थ है कि जब फ़र्म का उत्पादन OQ_1 होता है तो वह अल्पावधि में संतुलन की स्थिति में होती है। उत्पादन के इस स्तर पर कुल आय $OP_1 \times OQ_1$ यानि OP_1EQ_1 है और कुल परिवर्ती लागत $OG \times OQ_1$ यानि $OGFQ_1$ है। अतः परिवर्ती लागतों पर आय का आधिक्य $GP_1 \times OQ_1$ यानि GP_1EF है। वस्तु की OP_1 कीमत पर यह आभासी लगान की राशि है जो फ़र्म को प्राप्त होती है। क्योंकि इस स्थिति में वस्तु की कीमत उसकी अल्पावधि औसत लागत से अधिक है अतः फ़र्म द्वारा अर्जित लाभ को भी आभासी लगान में शामिल किया जाता है।

अब हम ऐसी स्थिति पर विचार करते हैं जिसमें कीमत फ़र्म की अल्पावधि औसत लागत से कम है। चित्र 19.5 में यह कीमत OP_2 है जो फ़र्म की अल्पावधि औसत लागत को पूरा करने के लिये अपर्याप्त है। इस कीमत पर क्योंकि औसत परिवर्ती लागत पूरी हो सकती है, इसलिये फ़र्म उत्पादन करती है और उत्पादन का स्तर OQ_2 हो पाता है। यह स्पष्ट है कि उत्पादन के इस स्तर पर MR_2 द्वारा दर्शाई गई सीमांत आय फ़र्म की अल्पावधि सीमांत लागत के बराबर है। फ़र्म LP_2JK के बराबर आभासी लगान अर्जित करती है यद्यपि सारी की सारी स्थिर लागत वसूल न कर पाने के कारण इसे हानि होती है। अंत में यदि कीमत OP_3 है तो क्या होगा, इस पर विचार करते हैं। ध्यान दीजिये कि इस कीमत पर केवल औसत परिवर्ती लागत ही वसूल हो पाती है और इस प्रकार फ़र्म को कोई आभासी लगान प्राप्त नहीं हो पाता। OP_3 से कम कोई भी कीमत फ़र्म को उत्पादन के लिये प्रेरित करने में असफल होगी और इसलिये आभासी लगान का विश्लेषण करने की दृष्टि से वह प्रासंगिक नहीं होगी।

बोध प्रश्न ख

1 आभासी लगान की अवधारणा की परिभाषा दीजिये।

....

....

....

....

....

2 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) आभासी लगान भूस्वामी को प्राप्त होता है। ....

ii) आभासी लगान केवल अल्पावधि में ही होता है। ....

iii) आभासी लगान में फ़र्म के लाभ शामिल हो भी सकते हैं और नहीं भी शामिल हो सकते हैं। ....

iv) आभासी लगान एक आधिक्य है जो फ़र्म को अल्पकालीन सीमांत लागत के अतिरिक्त प्राप्त होता है। ....

v) यदि उत्पाद की कीमत औसत परिवर्ती लागत के बराबर है तो फ़र्म द्वारा प्राप्त आभासी लगान शून्य होता है। ....

vi) अर्थशास्त्र में आभासी लगान की अवधारणा डेविड रिकार्डो द्वारा प्रस्तुत की गई। ....

vii) सम्बद्ध उत्पादन के साधन का आभासी लगान उसके अंतरण आय पर आधिक्य होता है। ....

viii) मार्शल के अनुसार आभासी लगान अल्पावधि में साधन की पूर्ति के लोचहीन होने के कारण उत्पन्न होता है। ....

19.4 लाभ

उद्यमी द्वारा उत्पादन में किये गये कार्यों के लिये प्रतिफल को लाभ कहा जाता है। सामान्यतः उद्यमी दो प्रकार के कार्य करता है। प्रथम, वह किसी चीज का उत्पादन करने की योजना बनाता है और उसके अनुसार विभिन्न उत्पादन के साधनों को एकत्रित और संगठित करता है। द्वितीय, वह उत्पादन करने में होने वाले जोखिमों को उठाता है। पहला कार्य करते समय उद्यमी की भूमिका एक संगठक की होती है और दूसरे कार्य में वह वास्तव में एक उद्यमी के रूप में कार्य करता है। अधिकांश अर्थशास्त्री यह मानते हैं कि उद्यमी को दोनों प्रकार की सेवाएं प्रदान करने के लिये लाभ प्राप्त होते हैं। कुछ अर्थशास्त्री इस मत से सहमत नहीं हैं। उनके मतानुसार वस्तु बाजार और साधन बाजार दोनों में मौजूद एकाधिकारी तत्व ही उद्यमी को लाभ अर्जित करने योग्य बनाता है। ध्यान से सोचने पर आप अनुभव करेंगे कि ऊपर बताई गई दोनों विचारधाराओं में से कोई भी बिल्कुल गलत नहीं है। वास्तव में दोनों में ही कुछ सच्चाई है और दोनों को पूरक मानना उचित समझा जा सकता है। फिर भी, आर्थिक सिद्धांत में लाभ एक अत्याधिक विवादास्पद विषय है और इस पर विस्तृत चर्चा करना आवश्यक है। इस भाग में हम दो पहलूओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे यानि लाभ की अवधारणा और लाभों के स्रोत।

19.4.1 लाभ की अवधारणा

लाभ की अवधारणा पर बहुत वाद विवाद होने के कारण इसे स्पष्ट करना आसान नहीं है। ऐसी स्थिति में सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम उन सभी मतों पर विचार करें जिन्हें कुछ स्वीकार्यता प्राप्त है।

सर्वप्रथम हम प्रो॰ एफ॰ बी॰ हॉली (F.B. Hawley) के मत पर विचार करते हैं। उनके मतानुसार लाभ उद्यमी को उत्पादन में जोखिम उठाने के उसके कार्य का प्रतिफल होता है। अन्य साधनों को उनकी सेवाओं के लिये भुगतान वस्तु के बाजार में बिकने से पहले कर दिया जाता है। अतः वे कोई जोखिम नहीं उठाते। उद्यमी, जो उत्पादन को संगठित करता है, उत्पादन से जुड़ी सारी जोखिम उठाता है। Hawley ने मुख्यतया चार प्रकार की जोखिम बताई हैं। ये हैं : (1) संयंत्र और मशीन के मूल्यह्रास से जुड़ी जोखिमें (2) प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के कारण इनका अप्रचलन (3) उत्पाद की बिक्री-योग्यता और (4) व्यवसाय में विभिन्न अप्रत्याशित कारक। Hawley से प्रो॰ F.H. Knight सहमत नहीं हैं। वे ऐसी जोखिमों, जो पूर्वानुमानित की जा सकती हैं और ऐसी जोखिमों, जो पूर्वानुमानित नहीं की जा सकती हैं, के बीच भेद करते हैं। पूर्वानुमानित की जा सकने वाली जोखिमों का बीमा कराया जा सकता है और लाभ इन जोखिमों को उठाने का प्रतिफल नहीं है। अप्रत्याशित जोखिमें, जो उनकी राय में अनिश्चितताएं हैं बीमा योग्य नहीं होती और उद्यमी द्वारा लाभ इन्हीं जोखिमों को उठाने के लिये अर्जित किया जाता है। अधिकांश अर्थशास्त्री अब नाइट (Knight) की लाभ की अवधारणा को Hawley की अवधारणा से अधिक उपयुक्त मानते हैं।

J.B. Clark लाभ की परिभाषा एक गतिशील अतिरेक (dynamic surplus) के रूप में देते हैं। उनके मतानुसार एक स्थिर समाज (static society) में उद्यमी की भूमिका एक संगठक की भूमिका रह जाती है जिसके लिये उसे मजदूरी दी जाती है लाभ नहीं। अतः स्थैतिक समाज में लाभ उत्पन्न नहीं हो सकते। एक गतिशील समाज में जनसंख्या के आकार और गठन, मानवीय आवश्यकताओं, पूंजी की पूर्ति, उत्पादन तकनीकों और व्यवसायिक संगठन के स्वरूप में होने वाले परिवर्तनों के कारण उत्पादन का मौद्रिक मूल्य उद्यमी को छोड़कर अन्य उत्पादन के साधनों की लागतों के बराबर कभी नहीं होता। इन बदलती परिस्थितियों में फ़र्म अतिरेक अर्जित करने की आशा कर सकती है जो उद्यमी को उसके लाभ के रूप में मिलता है। परंतु हानि की सम्भावनाओं को भी बिल्कुल नकारा नहीं जा सकता।

जे॰ ए॰ शुम्पीटर (J.A. Schumpeter) के अनुसार उद्यमी की एक नवप्रवर्तक के रूप में उत्पादन में बहुत रचनात्मक भूमिका है। उनके विचार में लाभ उद्यमी को उसके द्वारा किये जाने वाले नवप्रवर्तनों (innovations) का प्रतिफल है। Schumpeter वैज्ञानिक आविष्कार या प्रौद्योगिक प्रगति और नवप्रवर्तन में भेद करते हैं। उनके अनुसार नवप्रवर्तन से अभिप्राय उत्पादन में नई तकनीक अपनाना, नई वस्तु का उत्पादन करना, वस्तु के नए बाजारों को अपने अधिकार में कर लेना, किसी महत्त्वपूर्ण कच्चे माल के बिल्कुल नये स्रोत पर नियंत्रण प्राप्त कर लेना और फ़र्म में नया संघटनात्मक ढांचा अपनाना है।

केलेस्की (Kalacki) और जोन राबिन्सन (Joan Robinson) ऊपर दी गई विचारधाराओं से बिल्कुल असहमत हैं। इनके मतानुसार लाभ एक अकार्यात्मक (non-functional) आय है और यह बाजार में अपूर्णताओं के कारण उत्पन्न होता है। पूर्ण प्रतियोगिता किसी भी बाजार में शायद कभी नहीं रही और इन बाजारों में एकाधिकार तत्व की मौजूदगी के कारण ही उद्यमी को लाभ प्राप्त होते हैं। वास्तव में लाभ की राशि

जो उद्यमी अर्जित करता है, इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी बाजार में एकाधिकारात्मक शक्ति कितनी है ।

19.4.2 लाभों के स्रोत

लाभ किसी एक कारक के कारण उत्पन्न नहीं होते। सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है उत्पादन से जुड़ा हुआ जोखिम का तत्त्व ही लाभों का मुख्य स्रोत है। यह विचार ठीक नहीं है क्योंकि लाभों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण यह दर्शाता है कि जोखिम और अनिश्चितता के अलावा कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारक हैं जिनके कारण लाभ उत्पन्न होते हैं। इनमें कुछ अधिक महत्वपूर्ण स्रोत उद्यमी द्वारा किये नवप्रवर्तन, फर्म की एकाधिकारी शक्ति और श्रम का शोषण हैं। अब इनमें से प्रत्येक पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

1 **जोखिम और अनिश्चितता (Risk and Uncertainty) :** इस इकाई में पहले बताया गया है कि कुछ अर्थशास्त्री लाभ को जोखिम उठाने का प्रतिफल मानते हैं। बहुत से अर्थशास्त्री इस विचार से असहमत हैं। फिर भी इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि उत्पादन के साथ जुड़ा जोखिम का तत्त्व लाभ का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। उत्पादन में विभिन्न प्रकार की जोखिमें होती हैं। उदाहरण के लिये, निश्चित रूप से उत्पाद की सही मांग का पूर्वानुमान लगाना बहुत कठिन है। फैशन और रुचि में परिवर्तन हो सकता है जिससे क्रेताओं की किसी विशेष उत्पाद में रुचि खत्म हो सकती है। कारक कीमतों में वृद्धि के कारण उत्पादन लागत में तीव्र वृद्धि हो सकती है। सरकार भारी उत्पादन शुल्क लगा सकती है या उद्योग को प्रदान किया गया संरक्षण हटाया जा सकता है। ये ऐसी जोखिमें हैं जिन्हें कोई भी उद्यमी पूर्णतया टाल नहीं सकता। वास्तव में ये जोखिमें बीमा योग्य नहीं हैं और इन जोखिमों को उद्यमी को ही उठाना पड़ता है। इसके प्रतिफल के रूप में उसे लाभ प्राप्त होता है। इन अनिश्चितताओं के कारण हानि की सम्भावनाओं को कभी भी नकारा नहीं जा सकता। यदि वस्तु की मांग का पूर्वानुमान लगाया जा सकता, उत्पादन की लागतें स्थिर हों, प्रौद्योगिक परिवर्तन इतने धीमें हों कि अप्रचलन (obsolescence) की समस्या होती ही नहीं और सरकार की कर व संरक्षण संबंधी नीतियां अचानक न बदलें, तब उद्यमी की सेवाओं की आवश्यकता नहीं होगी और लाभ उत्पन्न नहीं होगा। औद्योगिक क्रांति से पहले कारीगर और हस्तशिल्पी श्रमिक साधारणतया स्थानीय बाजार के लिये उत्पादन करते थे। किसी भी वस्तु की मांग में मुश्किल से उतार-चढ़ाव आता था और लागतें स्थिर रहती थीं। सदियों तक इन श्रमिकों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले औजार भी नहीं बदलते थे। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के उत्पादन पर करारोपण भी विरल था। इससे पता लगता है कि कारीगरों और हस्तशिल्प मजदूरों का सारा उपार्जन मजदूरी क्यों था और इसमें लाभ नाम की कोई चीज क्यों शामिल नहीं थी।

2 **नवप्रवर्तन (Innovation) :** लाभ का अन्य स्रोत नवप्रवर्तन है। Schumpeter के अनुसार लाभ उत्पन्न होने का एक मात्र कारण नवप्रवर्तन है जो या तो उत्पादन प्रक्रिया में किया गया हो या विपणन में । Schumpeter के विचार से पूरी तरह सहमति नहीं हो सकती क्योंकि सभी लाभों का स्रोत नवप्रवर्तन नहीं हो सकते। फिर भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि, कुछ लाभ अवश्य ही उद्यमी द्वारा किये गये नवप्रर्वतनों का परिणाम हैं। वास्तव में लाभ का प्रलोभन ही बहुधा उद्यमी को नवप्रवर्तनों के लिये प्रोत्साहित करता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है नवप्रवर्तनों को प्रौद्योगिकी परिवर्तन नहीं समझना चाहिए। Schumpeter ने इन अवधारणा का विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया है। उनके अनुसार इसके अंतर्गत 5 स्थितियां आती हैं : (1) नई वस्तु का उत्पादन (2) उत्पादन के नए तरीके को अपनाना (3) नए बाजार की शुरुआत (4) अर्ध-निर्मित वस्तुओं या कच्चे माल की सप्लाई के नए स्रोत प्राप्त करना और (5) किसी उद्योग में संघठनात्मक परिवर्तन लाना जैसे कि एकाधिकारी स्थिति उत्पन्न करना ।

किसी विशेष प्रकार के नवप्रवर्तन के कारण जो लाभ होते हैं वे अस्थायी होते हैं। अन्य फर्मों के इनमें भागी होने के प्रयत्नों के कारण कुछ समय बाद ये खत्म हो जाते हैं। एक उद्यमी अपनी नवप्रवर्तक क्रिया से उस समय तक लाभ अर्जित करने की आशा कर सकता है जब तक कि अन्य फर्में प्रतिकार न करें। आज के युग में एक उद्यमी यह आशा नहीं कर सकता कि अन्य फर्मों को उसके रहस्यों के बारे में पता नहीं चलेगा। किसी नवप्रवर्तन से उद्यमी को जो शुरु में लाभ था उसे वे अवश्य ही खत्म कर देंगे। अतः यदि नवप्रवर्तन से लाभ नियमित रूप में प्राप्त करने हैं तो नवप्रवर्तन क्रिया लगातार चलती रहनी चाहिये। तथापि, यह देखा गया है कि कभी-कभी किसी विशेष नवप्रवर्तन से मिलने वाले लाभ काफी समय तक मिलते रहते हैं। ऐसा तब होता है जब या तो अन्य फर्में इनके बारे में अनभिज्ञ हों या इसमें लगने वाले आवश्यक समय के कारण नई फर्में उद्योग में प्रवेश न कर सकती हों।

3 **एकाधिकारी शक्ति (Monopoly power) :** उद्यमी के लाभ का तीसरा स्रोत बाजार में उसकी एकाधिकारी शक्ति है। आपने चौथी इकाई में पढ़ा था कि पूर्ण प्रतियोगिता एक परिकल्पनात्मक स्थिति है और यह कहीं भी नहीं होती। यदि यह मान भी लिया जाए कि कुछ बाजारों में पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति

हो सकती है तो भी यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के बाजार में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होते हैं और वास्तव में ये लाभ भी उत्पादक द्वारा किये गये प्रबंधकीय कार्यों की मजदूरी ही है। M. Kalecki व अन्य शास्त्रियों का मत है कि वास्तविक लाभ का स्रोत उद्यमी की बाजार में एकाधिकारात्मक शक्ति है। इसका तात्पर्य है कि उद्यमी बाजार में जितनी ही अधिक एकाधिकारात्मक शक्ति का प्रयोग कर सकता है उतने ही अधिक लाभ उसे प्राप्त होंगे। ए· पी· लर्नर (A.P. Lerner) ने बाजार में मौजूद एकाधिकारी शक्ति के अंश का अनुमान लगाने के लिये एक संख्यात्मक मापन प्रदान किया है। यद्यपि पूर्ण प्रतियोगिता कहीं नहीं मिलती फिर भी इसमें एकाधिकारी तत्त्व के पूर्णतः अभाव के कारण इसे एक आदर्श स्थिति माना जा सकता है और क्योंकि पूर्ण प्रतियोगिता के अंतर्गत वस्तु की कीमत इसकी सीमांत लागत के बराबर होती है और कीमत का सीमांत लागत से विचलन यह दर्शाता है कि बाजार में एकाधिकारात्मक तत्त्व हैं। उनके अनुसार बाजार में एकाधिकारी अंश को निम्नलिखित सूत्र द्वारा मापा जा सकता है।

$$\text{एकाधिकारी अंश} = \frac{P - M}{P}$$

जहां, P = कीमत; M = सीमांत लागत

Lerner द्वारा मापा गया एकाधिकारी अंश वास्तव में मांग की लोच का व्युतक्रम (Reciprocal) है। इसका अर्थ है कि किसी फर्म की बाजार में एकाधिकारी शक्ति का अंश (Degree) और वस्तु की मांग की लोच में विपरीत सम्बंध होता है। Lerner के एकाधिकारी अंश के मापन में एक महत्त्वपूर्ण बात को छोड़ दिया गया है। वस्तु की मांग की लोच के अतिरिक्त एक अन्य कारक है जिसका फर्म की बाजार में एकाधिकारी शक्ति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। यह है कि फर्म का वस्तु की कुल पूर्ति में हिस्सा। उदाहरण के लिए अल्पाधिकारी बाजारों में साधारणतया असमान आकार की कुछ ही फर्में होती हैं। एक बड़ी फर्म जो वस्तु की कुल सप्लाई का एक बड़ा भाग सप्लाई करती है, बाजार में कीमत नेतृत्व करेगी और अन्य फर्मों को वह कीमत स्वीकार करने पर मजबूर करेगी जिससे उसका अपना लाभ अधिकतम होता है। अन्य छोटे आकार की फर्मों की, जो बड़ी फर्म की तुलना में कुल सप्लाई का कम भाग सप्लाई करती हैं, बाजार में एकाधिकारी शक्ति कम होगी और इस प्रकार उनके लाभ की राशि भी कम होगी।

4 **श्रम का शोषण (Exploitation of labour) :** श्रम बाजार कभी भी पूर्ण प्रतियोगी नहीं होते। बहुधा इन बाजारों में एक विशेष प्रकार की श्रम शक्ति के विक्रेता बहुत कम होते हैं। कुछ चरम स्थितियों में ऐसी केवल एक ही फर्म हो सकती जो एक विशेष प्रकार के श्रम को काम पर लगाना चाहती है। इकाई 18 में आपने पढ़ा है कि ऐसी फर्म को एकक्रेताधिकारी फर्म (monoponistic firm) कहते हैं। एकक्रेताधिकार के अंतर्गत मजदूरी दर अवश्य ही श्रम की सीमांत आय उत्पादिता से कम होती है। Joan Robinson के अनुसार, श्रम की सीमांत आय उत्पादिता और मजदूरी दर का अंतर मालिक द्वारा श्रमिकों के शोषण का मापक होता है। यह वास्तव में उद्यमी का अवैध लाभ है क्योंकि यह उद्यमी द्वारा किये गये किसी प्रयत्न का परिणाम नहीं है। फिर भी, यह उसके लाभ के एक भाग के रूप में उत्पन्न होता है।

यदि श्रमिक, श्रमिक संघों के जरिये सामूहिक सौदेबाजी करने लगे तो इस स्रोत से लाभ घट जाता है। यदि श्रमिक संघ सुसंगठित और मजबूत हैं तो वह मालिक को श्रम की सीमांत आय उत्पादिता के बराबर मजदूरी देने को बाध्य कर सकता है। ऐसी स्थिति में इस स्रोत से लाभ समाप्त हो जाएंगे। लेकिन विभिन्न कारणों से श्रमिकों के लिये न्यायसंगत मजदूरी प्राप्त करने में श्रमिक संघों के प्रयास बहुधा सरकार द्वारा विफल कर दिये जाते हैं और, इसलिये, पूंजीपतियों के लाभ के स्रोत के रूप में श्रमिकों का शोषण कभी खत्म नहीं होता।

बोध प्रश्न ग

1 लाभ की अवधारणा से आप क्या समझते हैं ?

....

....

....

2 लाभ के मुख्य स्रोत क्या हैं ?

....

....

....

3 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) एक उद्यमी द्वारा अर्जित सारा लाभ उत्पादन में उसके संगठनात्मक प्रयत्नों के कारण होता है। ....

ii) उद्यमी द्वारा अर्जित लाभ का एक भाग उसकी जोखिम उठाने की क्रिया का परिणाम हो सकता है। ....

iii) F.H. Knight के अनुसार लाभ उद्यमी को उसके अनिश्चतता वहन करने प्रतिफल है। ....

iv) Schumpeter के अनुसार लाभ एक गतिशील अतिरेक है। ....

v) एक पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उद्यमी द्वारा अर्जित सामान्य लाभ उसके वास्तविक लाभ की अपेक्षा मजदूरी अधिक है। ....

vi) उद्यमी द्वारा किये गये नवप्रवर्तन उसके पूरे लाभ को स्पष्ट कर सकते हैं। ....

vii) अनिश्चितता की अनुपस्थिति में लाभ उत्पन्न नहीं होंगे। ....

viii) श्रमिकों का शोषण लाभ का एक स्रोत नहीं है। ....

ix) उद्यमी द्वारा प्रयोग की गई एकाधिकारी शक्ति काफी हद तक वस्तु की मांग की लोच के साथ जुड़ी हुई होती है। ....

x) स्थिर स्थितियों के अंतर्गत उद्यमी को लाभ प्राप्त नहीं होंगे। ....

19.5 सारांश

लगान के बारे में दो विचारधाराएं हैं : (1) क्लासिकी विचारधारा और (2) आधुनिक विचारधारा। क्लासिकी विचारधारा के मुख्य प्रतिपादक Ricardo हैं जिनके अनुसार लगान भूस्वामी को भूमि पर उसकी मौलिक और अनश्वर शक्तियों के कारण मिलने वाला प्रतिफल है। जब तक केवल सबसे अधिक उपजाऊ भूमि पर खेती होती है तब तक लगान उत्पन्न नहीं होता। जब जनसंख्या बढ़ने से खाद्यान्नों की मांग बढ़ी तो व्यक्ति मजबूर होकर कम उपजाऊ भूमि पर खेती करते थे, केवल तब अधिक उपजाऊ भूमियों पर लगान उत्पन्न होता था और यह इन भूमियों पर उत्पादन और सीमांत भूमि के उत्पादन के अंतर के मूल्य के बराबर होता था। सीमांत भूमि लगान रहित भूमि रहती थी। Ricardo का सिद्धांत बहुत ही संदेहास्पद मान्यताओं पर आधारित है, इसलिये, यह आधुनिक अर्थशास्त्रियों को स्वीकार्य नहीं है। सामान्य प्रयोग में आने वाले लगान की अवधारणा और लगान की अपनी अवधारणा में भेद दिखाने के लिये आधुनिक अर्थशास्त्री लगान के स्थान पर आर्थिक लगान का प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार लगान एक अतिरेक है जो एक उत्पादन के कारक को उसके अंतरण आय के अतिरिक्त प्राप्त होता है। अंतरण आय किसी कारक का वह प्रतिफल है जो उसे वर्तमान काम में लगे रहने को प्रेरित करता है। Joan Robinson आधुनिक विचारधारा के मुख्य प्रतिपादक हैं। उनके अनुसार लगान केवल भूमि पर ही उत्पन्न नहीं होता। दूसरे शब्दों में लगान उत्पादन के सभी कारकों द्वारा अर्जित किया जा सकता है। यह उत्पादक के कारक की पूर्ति की लोच पर निर्भर करता है और वास्तव में इससे विपरीत रूप में सम्बंधित है। इसका तात्पर्य है कि यदि किसी कारक की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है तो इसका कुल उपार्जन (earnings) इसके अंतरण आय के बराबर होगा और इसके विपरीत स्थिति में जब पूर्ति पूर्णतया बेलोच है तो कारक का कुल उपार्जन लगान होगा। आभासी लगान की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग Marshall ने किया। उनकी राय में पूंजीगत संयंत्रों जैसे उत्पादन के किसी कारकों की पूर्ति अल्पकाल में बेलोच हो सकती है और इस प्रकार यह अपनी पूर्ति कीमत से अधिक उपार्जन कर सकता है। एक साधन को अल्पकाल में उसकी पूर्ति कीमत से अधिक प्रतिफल को Marshall ने आभासी लगान का नाम दिया। आधुनिक अर्थशास्त्र में आभासी लगान की अवधारणा इससे कुछ भिन्न है। अब आभासी लगान का तात्पर्य उस अतिरेक से है जो उत्पादक को अल्पकाल में अपना उत्पाद बेचकर परिवर्ती लागतों के अतिरिक्त प्राप्त होता है। क्योंकि दीर्घावधि में उत्पादन के सभी साधन परिवर्ती होते हैं और कीमत की औसत लागत के बराबर होने की प्रवृत्ति होती है, इसलिये आभासी लगान उत्पन्न नहीं होता। लाभ उद्यमी को उत्पादन में अपनी सेवाएं प्रदान करने के लिए प्राप्त होने वाला प्रतिफल है। लेकिन ये सेवाएं ठीक-ठीक क्या हैं, इस प्रश्न पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं। Hawley के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का प्रतिफल है। Knight बीमा योग्य और बीमा न होने योग्य जोखिमों में भेद करते हैं और बीमा न होने योग्य जोखिमों को अनिश्चितता का नाम देते हैं तथा उनके अनुसार लाभ इन अनिश्चितताओं यानि बीमा न होने योग्य जोखिमों को उठाने का प्रतिफल है। J.B. Clark लाभ को एक गतिशील अतिरेक मानते हैं। Schumpeter लाभ को उद्यमी के लिये उसकी नवप्रवर्तन क्रियाओं का

प्रतिफल मानते हैं। लाभ की ये विभिन्न अवधारणाएं पूर्णतया अंतर विरोधी नहीं है। वास्तव में, ये परस्परव्यापी (overlapping) और पूरक हैं।

लाभ के स्रोतों में अधिक महत्वपूर्ण स्रोत हैं उत्पादन और विपणन करने में होने वाली जोखिमें व अनिश्चितताएं, उत्पादक द्वारा किये गये नवप्रवर्तन बाजार में उसकी एकाधिकारी शक्ति और श्रम का शोषण। एक गतिशील समाज में मांग बदल सकती है, लागतें बढ़ सकती हैं, मशीने अप्रचलित (obsolete) हो सकती हैं, करों का भार बढ़ सकता है और सरकार द्वारा प्रदान किया गया संरक्षण वापस लिया जा सकता है। ये अनिश्चितताएं सदा रहती हैं और कोई भी उद्यमी इनसे बच नहीं सकता। इनको उठाने के लिये उसे लाभ के रूप में प्रतिफल मिलता है। कुछ लाभ उसके द्वारा किये गये नवप्रवर्तन का परिणाम होते हैं। नवप्रवर्तन के अंतर्गत नई वस्तु का उत्पादन, उत्पादन की नई प्रणाली को अपनाना, नए बाजार का खुलना, कच्चे माल की सप्लाई के नये स्रोत को प्राप्त करना और फर्म में नया संघठनात्मक ढांचा स्थापित करना आते हैं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक फर्म की कुछ एकाधिकारी शक्ति होती है और इसका भी लाभ में योगदान होता है। फर्म की एकाधिकारी शक्ति और वस्तु की मांग की लोच में विपरीत संबंध होता है। अंत में, श्रम बाजार में अपूर्णताओं के कारण श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी उनकी सीमांत आय उत्पादिता से कम होती है। इस रूप में पूंजीपतियों द्वारा श्रम के शोषण का भी उनके लाभ में योगदान होता है।

19.6 शब्दावली

गतिशील अतिरेक : उद्यमी को आर्थिक और प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों के कारण मिलने वाला अतिरेक।

शोषण : श्रम की सीमांत आय उत्पादिता और मजदूरी दर का अंतर।

आर्थिक लगान : उत्पादन के कारक के अंतरण आय के ऊपर आधिक्य।

नवप्रवर्तन : नई वस्तु का उत्पादन, नई उत्पादन तकनीक को अपनाना, नए बाजार का खुलना, कच्चे माल का नया स्रोत मालूम करना और फर्म या उद्योग में नया संघठनात्मक ढांचा अपनाना।

सीमांत भूमि : सबसे कम उपजाऊ भूमि जिस पर खेती की जा रही है और जो केवल उत्पादन लागत ही पूरी कर पाती है।

एकाधिकारी शक्ति : एकाधिकारी की शक्ति जो पूर्ति पर नियंत्रण के रूप में प्रतिबिम्बित होती है।

अविशिष्ट कारक : उत्पादन का कारक जिसका विभिन्न कामों के लिये उपयोग किया जा सकता है।

लाभ : उद्यमी को प्रतिफल।

आभासी लगान : परिवर्ती लागतों पर अतिरेक जो फर्म को अल्पकाल में प्राप्त होता है।

लगान : उत्पादन का एक भाग जो भूमि के मालिक को भूमि के प्रयोग के लिये दिया जाता है।

जोखिम : हानि होने की सम्भावना।

विशिष्ट कारक : उत्पादन का वह कारक जिसका प्रयोग एक खास काम में ही किया जा सकता है।

अंतरण आय : वह न्यूनतम उपार्जन जो उत्पादन के कारक को मौजूदा काम में लगे रहने को प्रेरित करता है।

अनिश्चितताएं : वे जोखिम जो बीमा योग्य नहीं हैं।

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 4 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत

ख 2 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) गलत (viii) सही

ग 3 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) सही (viii) गलत (ix) सही (x) सही।

19.8 स्वपरख प्रश्न

1 लगान की अवधारणा क्या है ? क्या भूमि के अलावा अन्य कारक भी लगान अर्जित कर सकते हैं ?

2 रिकार्डो के लगान के सिद्धांत का विवेचन कीजिये। इसकी मान्यताएं क्या हैं ?

3 अंतरण आय की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये। इसका लगान से क्या सम्बंध है ?

4 आभासी लगान की अवधारणा का विवेचन कीजिये। यह आर्थिक लगान की अवधारणा से किस प्रकार भिन्न है ?

5 लाभ की अवधारणा को स्पष्ट कीजिये। क्या आप समझते हैं कि लाभ अनिश्चितताओं को उठाने का प्रतिफल है ?

6 लाभ के विभिन्न स्रोत क्या हैं ? क्या आप इस बात से सहमत हैं कि सभी लाभ उत्पादक की एकाधिकारी शक्ति के कारण उत्पन्न होते हैं ?

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 20 आय की असमानता

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य
20.1 प्रस्तावना
20.2 आय का वितरण
 20.2.1 आय के वितरण संबंधी कुछ तथ्य
 20.2.2 आय की असमानता की प्रवृत्तियां
20.3 आय की असमानता की माप
20.4 आय की असमानता के कारण
20.5 आय की असमानता की समस्याएँ
20.6 आय का पुनर्वितरण
20.7 सारांश
20.8 शब्दावली
20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर
20.10 स्वपरख प्रश्न

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आय के वितरण के स्वरूप का वर्णन कर सकें
- यह बता सकें कि आय की असमानता को कैसे मापा जाता है
- आय की असमानता के कारण और परिणाम बता सकें
- वे उपाय बता सकें जिनको अपनाने से आय के वितरण में सुधार होगा।

20.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने पढ़ा है कि उत्पादन के विभिन्न कारकों को उत्पादन में उनके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिये किस प्रकार प्रतिफल मिलता है। आय की असमानता वितरण की इस व्यवस्था का परिणाम है, जो कुछ को अमीर बनाती है और कुछ को गरीब। आपने स्वयं ही यह देखा होगा कि लोगों की बहुत बड़ी संख्या की आय अपेक्षाकृत कम है। ये वे लोग हैं जो विभिन्न हैसियत से काम करते हैं। ये कृषि श्रमिक हैं, छोटे किसान हैं, कारीगर हैं, औद्योगिक श्रमिक हैं और वे लोग जो छुटपुट काम करते हैं। इसकी तुलना में, उद्योगपतियों, व्यापारियों, बड़े किसानों, परिवाहकों तथा डाक्टरों, इंजीनियरों जैसे पेशेवर लोगों की आय अपेक्षाकृत अधिक है। आपको शायद यह पता न हो कि विकास की प्रक्रिया में आय की असमानता बढ़ती है या नहीं। इस इकाई में हम इस बात का पता लगाएंगे और इसके साथ-साथ उन कारणों पर भी विचार करेंगे जिनसे आय की असमानता उत्पन्न होती है। हम उन समस्याओं की भी जाँच करेंगे जो किसी समाज में आय की असमानता से उत्पन्न हो सकती हैं। अंत में, हम इस बात पर विचार करेंगे कि यदि किसी अर्थव्यवस्था में आय का वितरण अन्यायपूर्ण है तो इसे अधिक न्यायसंगत बनाने के लिये कौन से नीति-उपाय अपनाये जाएँ।

20.2 आय का वितरण

संसार में जहाँ भी उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व है, वहाँ आय का वितरण न्यायसंगत नहीं है। बिना किसी अपवाद के सभी पूंजीवादी देशों में, चाहे वे विकसित हों या अल्पविकसित, एक छोटी सी अल्पसंख्या राष्ट्रीय आय का एक बड़ा हिस्सा ले लेती है, जबकि एक बहुत बड़ी संख्या बहुत ही कम आय पर जीवित रहती है। आय के वितरण का यह स्वरूप मुख्यतः इन देशों में विद्यमान सम्पत्ति संबंधों का कारण है। यह देखा गया है कि कम विकसित देशों में आय की असमानता साधारणतया अधिक होती है। विकास की शुरू की अवस्थाओं के दौरान यह बहुधा बढ़ती है, चरम सीमा पर पहुँचती है और उसके बाद घटती है। इस भाग में आप आवश्यक संबद्ध तथ्यों के बारे में जानेंगे जिनसे आपको विश्वास हो जाएगा कि अधिकांश देशों में आय का

वर्तमान वितरण बिल्कुल ही संतोषजनक नहीं है और जब तक कि सरकार कोई शोधक उपाय न अपनाए, विकास की शुरु की अवस्थाओं में आय की असमानता के बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।

20.2.1 आय के वितरण संबंधी कुछ तथ्य

आय के वितरण संबंधी आंकड़े किसी भी देश में नियमित रूप से एकत्रित नहीं किये जाते। इसलिये आय की असमानता की समस्या का अध्ययन करने के लिये सांख्यिकीय सूचना बहुत अपर्याप्त है और इस विषय पर दृढ़ निष्कर्षों पर पहुंचने में बहुत सावधानी की जरूरत पड़ती है। इस क्षेत्र में अमेरिका के प्रमुख अर्थशास्त्री Simon Kuznets ने कुछ अग्रगामी काम किया है। विकसित और अल्पविकसित दोनों समूह के बहुत से देशों के लिये 1960 के दशक के लिये, प्रेक्षणों के आधार पर उन्होंने एक तालिका बनाई जो करों से पहले, परिवारों या उपभोग इकाइयों में आय के वितरण के आकार को दर्शाती है। इस तालिका को नीचे तालिका 20.1 के रूप में दिखाया गया है।

तालिका 20.1

परिवारों या उपभोग इकाईयों के बीच आय के वितरण का आकार

(करों से पहले)

परिवार (प्रतिशत)		विकसित देश कुल आय में हिस्सा (प्रतिशत)	अल्पविकसित देश कुल आय में हिस्सा (प्रतिशत)
1	0 – 20 (सबसे नीचे के 20%)	4	8
2	21 – 40	11	11
3	41 – 60	16	13
4	61 – 80	22	16
5	81 – 90	16	12
6	91 – 95	11	10
7	96 – 100 (सबसे ऊपर के 5%)	20	30

Kuznets ने साम्यवादी देशों को बिल्कुल ही अलग कर दिया क्योंकि उनके बारे में आंकड़े उपलब्ध नहीं थे। फिर भी, यह एक सर्वविदित तथ्य है कि पूंजीवादी देशों की तुलना में साम्यवादी देशों में आय वितरण बहुत कम असमान है। Kuznets के अनुमान यह स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि विकसित और अल्पविकसित दोनों तरह के पूंजीवादी देशों में आय की असमानताएँ व्यापक हैं। विकसित देशों में ऊपर का 5 प्रतिशत वर्ग राष्ट्रीय आय का 20 प्रतिशत भाग प्राप्त करता था। अल्पविकसित देशों में इस वर्ग का हिस्सा और भी अधिक था। यह राष्ट्रीय आय का 30 प्रतिशत था। परिवारों के इस वर्ग को छोड़कर, आप देखेंगे कि Kuznets के आंकड़े यह दर्शाते हैं कि अल्पविकसित देशों की तुलना में विकसित देशों में आय की असमानता अधिक थी। इसके अतिरिक्त ध्यान देने योग्य दिलचस्प बात यह है कि विकसित देशों में नीचे के 40 प्रतिशत की स्थिति अल्पविकसित देशों के नीचे के 40 प्रतिशत की तुलना में ज्यादा खराब थी।

आय की असमानता पर एक अन्य महत्वपूर्ण अध्ययन Irma Adelman और Cynthia Taft Morris द्वारा किया गया। उनके 43 अल्पविकसित देशों के अध्ययन में आय के वितरण में बहुत अधिक असमानता पाई गई। उनके अध्ययन में से 10 अल्पविकसित देशों के नमूने तालिका 20.2 में दिए गए हैं।

तालिका 20.2

आय के वितरण में असमानता

	(जनसंख्या वर्गों का प्रतिशत भाग)				
देश	0 – 40	40 – 60	60 – 80	80 – 100	95 – 100
अर्जेंटाइना	17.30	13.10	17.60	52.0	29.40
ब्राजील	12.50	10.20	15.80	61.50	38.40

देश	0 – 40	40 – 60	60 – 80	80 – 100	95 – 100
	(जनसंख्या वर्गों का प्रतिशत भाग)				
बर्मा	23.00	13.00	15.50	48.50	28.21
श्रीलंका	13.66	13.81	20.22	52.31	18.38
भारत	20.00	16.00	22.00	42.00	20.00
नाइजेरिया	14.00	9.00	16.10	60.90	38.38
पाकिस्तान	17.50	15.50	22.00	45.00	20.00
फिलीपाइन्स	12.70	12.00	19.50	55.80	27.50
तनजानिया	19.50	9.75	9.75	61.00	42.90
जाम्बिया	15.85	11.10	15.95	57.10	37.50

यह अध्ययन 1950 और 1960 के दशकों के अंतिम कुछ वर्षों के आंकड़ों पर आधारित है। इस अध्ययन के परिणामों से बहुत कुछ पता लगता है। तालिका 20.2 में आप देखेंगे कि सबसे ऊपर की 5 प्रतिशत जनसंख्या का राष्ट्रीय आय में हिस्सा सबसे नीचे की 40 प्रतिशत जनसंख्या के हिस्से से अधिक है। वास्तव में Adelman और Morris के अध्ययन में शामिल किये गये 43 देशों में से 41 देशों के बारे में यह बात ठीक थी । इसके अतिरिक्त, 43 में से 26 देशों में ऊपर की 5 प्रतिशत जनसंख्या का हिस्सा नीचे की 60 प्रतिशत जनसंख्या के हिस्से से अधिक था। Adelman और Morris के अध्ययन ने यह भी दिखाया कि इन 43 देशों में से 32 देशों में ऊपर की 20 प्रतिशत जनसंख्या ने राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत या उससे अधिक भाग प्राप्त किया।

20.2.2 आय की असमानता की प्रवृत्तियां

हाल के वर्षों में बहुत से अर्थशास्त्रियों ने आय की असमानता की प्रवृत्ति के अध्ययन में काफी दिलचस्पी दिखाई है। इस क्षेत्र में Simon Kuznets ने अग्रगामी काम किया। उसके दो अध्ययन यह दिखाते हैं कि आय के वितरण में कालान्तर में पहले खराब होने की प्रवृत्ति होती है और बाद में इसमें सुधार होता है।

बाद में Adelman और Morris ने 43 देशों के लिये आंकड़े इकठ्ठे किये। उनके अध्ययन ने Kuznets के परिणामों की पुष्टि की। Adelman और Morris ने देखा कि जब एक पिछड़ी हुई कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था में किसी छोटे आधुनिक क्षेत्रक में विस्तार द्वारा आर्थिक संवृद्धि शुरू होती है तो आय की असमानता सामान्यतः बढ़ती है। उनके अनुसार सबसे गरीब 60 प्रतिशत की आय के हिस्से में महत्त्वपूर्ण कमी आती है, यही स्थिति बीच के 20 प्रतिशत की होती है और ऊपर के 5 प्रतिशत का आय में हिस्सा बहुत बढ़ जाता है। बहुत कम आय वाले देशों में उनके द्वैतवादी ढांचे के कारण, ऊपर के 5 प्रतिशत के लाभ विशेष रूप से बहुत होते हैं। इन देशों में, संवृद्धि अधिकांश रूप में आधुनिक क्षेत्रक तक केन्द्रित रहती है और इसके लाभ मुख्यतः जनसंख्या के सबसे अमीर 5 प्रतिशत लोगों को प्राप्त होते हैं। सबसे गरीब 60 प्रतिशत लोगों की दशा पूर्णतया और अपेक्षाकृत दोनों ही रूपों में बहुत खराब हो जाती है। Adelman और Morris के अध्ययन ने यह स्पष्ट रूप में दिखाया है कि एक औसत देश में जो कि आर्थिक विकास के शुरू के दौर से गुजर रहा है, सबसे गरीब 60 प्रतिशत को संवृद्धि के साथ जुड़ी आय में होने वाली हानि को पूरा करने के लिये कम से कम एक पीढ़ी का समय चाहिए।

कम आय वाले देशों का आर्थिक संवृद्धि की उस अवस्था से, जिसमें यह संवृद्धि छोटे आधुनिक क्षेत्रक तक सीमित होती है, एक बार परे निकल जाने पर और अधिक विकास के कारण आय के वितरण में और विकृति नहीं होती। इन देशों के विकास के एक यथोचित ऊँचे स्तर पर पहुंच जाने के बाद आय वितरण सबसे गरीब 60 प्रतिशत लोगों के पक्ष में होने लगता है। इसका कारण यह है कि इस अवस्था में विकास क्रियाओं का आधार विस्तृत होता है और इसका लाभ समाज के सभी वर्गों को प्राप्त होता है। Adelman और Morris ने यह भी पता लगाया कि आर्थिक क्षेत्र में सरकार की अधिक भूमिका, विस्तृत सामाजिक और आर्थिक उन्नति और मानवीय संसाधनों को सुधारने के लिये सुसंगत प्रयत्नों के कारण आय के वितरण में असमानता घटती है।

बोध प्रश्न क

1 विकसित देशों और अल्पविकसित देशों के बीच आय के वितरण में मूलभूत अंतर बताइए।

....

....

....

2 कम आय वाले विकासोन्मुख देश में कुछ समय के बाद आय वितरण के संबंध में किस प्रकार के परिवर्तनों की आशा की जा सकती है ?

....

....

....

3 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) साम्यवादी देशों की तुलना में पूंजीवादी देशों में आय का वितरण बहुत कम असमान है। ....

ii) ऊपर के 5 प्रतिशत वाले वर्ग का हिस्सा साधारणतया विकसित देशों की तुलना में अल्पविकसित देशों में बड़ा होता है। ....

iii) अधिकांश अल्पविकसित देशों में जनसंख्या के ऊपर के 5 प्रतिशत लोगों का हिस्सा नीचे के 40 प्रतिशत के हिस्से से बड़ा होता है। ....

iv) अधिकांश अल्पविकसित देशों में जनसंख्या के ऊपर के 20 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का 25 प्रतिशत या कम प्राप्त होता है। ....

v) जब अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में आर्थिक संवृद्धि शुरू होती है तो विकास की शुरू की अवस्थाओं में आय वितरण खराब होता जाता है, एक सीमा पर पहुँचता है और इसके बाद घटता है। ....

vi) शुरू में विकास के प्रक्रम में सबसे गरीब 60 प्रतिशत की आय में जो कमी होती है उसे पूरा करने में कई दशक लगते हैं। ....

vii) आर्थिक क्षेत्र में सरकार की बढ़ती हुई भूमिका के कारण आय के वितरण में असमानता कम होने की अधिक सम्भावना है। ....

20.3 आय की असमानता की माप

बहुत सी सांख्यिकीय विधियाँ हैं जिनका अब आय की असमानता मापने के लिये प्रयोग किया जाता है। इनमें से कुछ विधियाँ बहुत परिष्कृत है और इन्हें सांख्यिकी का अच्छा ज्ञान होने पर ही समझा जा सकता है। हम इन पर विचार नहीं करेंगे। इस भाग में हम केवल असमानता तालिका और लारेंज वक्र पर परिचर्चा करेंगे। आय की असमानता को मापने की ये अपेक्षाकृत सरल विधियाँ हैं और इनका व्यापक प्रयोग होता है। एक देश की असमानता तालिका, उस देश में वास्तविक आय वितरण को दिखाने के अलावा एक माने हुए आय के पूर्णतया समान वितरण और पूर्णतया असमान वितरण को भी दिखाती है। भारत में 1975-76 वर्ष के लिए आय के वितरण के अनुमान अब World Development Report 1989 में उपलब्ध हैं। ये अनुमान असमानता तालिका के रूप में तालिका 20.3 में दिये गये हैं।

तालिका 20.3

भारत के लिये असमानता तालिका - 1975-76 की आय

पारिवारिक आय (वर्ग)	आय का प्रतिशत भाग	जनसंख्या का संचयी प्रतिशत	आय का संचयी प्रतिशत		
			पूर्ण समानता	पूर्ण असमानता	वास्तविक आय वितरण
सबसे निम्नतर पांचवा भाग	7.0	20	20	0	7.0
दूसरा पांचवा भाग	9.2	40	40	0	16.2
तीसरा पांचवां भाग	13.9	60	60	0	30.1
चौथा पांचवा भाग	20.5	80	80	0	50.6
उच्चतम पांचवां भाग	49.4	100	100	100*	100.0

* उच्चतम वर्ग में कुछ थोड़े से लोगों को ही कुल आय मिल पाती है।

इस असमानता तालिका में आप देखेंगे कि पूर्ण समानता की मान्यता दी गई स्थिति में, परिवारों का प्रत्येक आय वर्ग राष्ट्रीय आय में अनुपातिक हिस्सा प्राप्त करता है। यह एक चरम सीमा है और किसी भी देश में यह स्थिति नहीं हो सकती। दूसरी चरम सीमा पूर्ण असमानता की होगी। यह भी किसी देश में नहीं होती। दूसरी मान्यता दी गई स्थिति में केवल कुछ ही लोगों को सारी आय मिलेगी और बाकी को कोई आय नहीं मिलेगी। ये दो चरम सीमाएँ केवल काल्पनिक हैं। किसी देश में आय का वास्तविक वितरण इन दोनों स्थितियों के बीच में कहीं होगा। आप तालिका 20.3 के आय के वास्तविक वितरण के कालम में देखेंगे कि भारत में 1975-76 में सबसे नीचे के 20 प्रतिशत को राष्ट्रीय आय का केवल 7 प्रतिशत भाग मिला और यह राष्ट्रीय आय में उनके अनुपातिक हिस्से का लगभग एक तिहाई था। परिवारों के दूसरे 20 प्रतिशत और तीसरे 20 प्रतिशत वर्गों को भी राष्ट्रीय आय में जो प्रतिशत भाग मिले वे भी उनके अनुपातिक हिस्सों से बहुत कम थे। लेकिन परिवारों के चौथे वर्ग की स्थिति नीचे के 60 प्रतिशत परिवारों जितनी खराब नहीं थी। चौथे 20 प्रतिशत परिवारों वाले वर्ग का राष्ट्रीय आय में हिस्सा 20.5 प्रतिशत था जो कि उनके अनुपातिक हिस्से से थोड़ा सा अधिक था। सबसे ऊपर के 20 प्रतिशत परिवारों ने राष्ट्रीय आय का 49.4 प्रतिशत ले लिया और इस प्रकार राष्ट्रीय आय में उनका हिस्सा उनके अनुपातिक हिस्से से लगभग ढाई गुना था। असमानता तालिकाओं का प्रयोग बहुधा विभिन्न देशों में आय की असमानताओं का विश्लेषण करने के लिये किया जाता है। इनकी मुख्य कमी यह है कि ये आय की असमानता का कोई संख्यात्मक माप प्रदान करने में असफल रहते हैं।

इस दृष्टि से लारेंज वक्र की विधि असमानता तालिका की विधि से बेहतर है। लारेंज वक्र अपिकरण (dispersion) के अध्ययन की एक ग्राफिक विधि है। आय की असमानता की माप के लिये अब इसका व्यापक प्रयोग किया जाता है। लारेंज वक्र एक संचयी प्रतिशत वक्र है। जिसमें जनसंख्या की प्रतिशत राशि को आय की प्रतिशत राशि के साथ मिलाया जाता है।

लारेंज वक्र खींचते समय निम्नलिखित विधि अपनाई जाती है :

1 x–अक्ष पर जनसंख्या (या परिवारों) का संचयी प्रतिशत, सबसे गरीब से सबसे अमीर के क्रम में व्यवस्थित करके दिखाया जाता है और y-अक्ष पर जनसंख्या के संचयी प्रतिशत को प्राप्त होने वाली आय का संचयी प्रतिशत दर्शाया जाता है।

2 शून्य प्रतिशत जनसंख्या और शून्य प्रतिशत आय दर्शाने वाले बिंदु से जनसंख्या और आय के 100 प्रतिशत दर्शाने वाले बिंदु तक एक विकर्ण (Diagonal) रेखा खींची जाती है। क्योंकि इस विकर्ण पर प्रत्येक बिंदु यह दर्शाता है कि जनसंख्या के किसी प्रतिशत भाग को आय का अनुपातिक हिस्सा मिलता है, इसलिये इसे पूर्ण समानता की रेखा कहते हैं।

3 अंत में, जनसंख्या और आय के संचयी प्रतिशत के अनुरूप विभिन्न बिंदुओं को अंकित किया जाता है और उन्हें मिलाती हुई एक रेखा खींची जाती है। यह स्पष्ट है कि कोई भी लारेंज वक्र, जो एक देश में आय के वास्तविक वितरण को दर्शाता है, विकर्ण के नीचे स्थित रहेगा और इसका ढलान बढ़ती हुई दर से बढ़ना चाहिये।

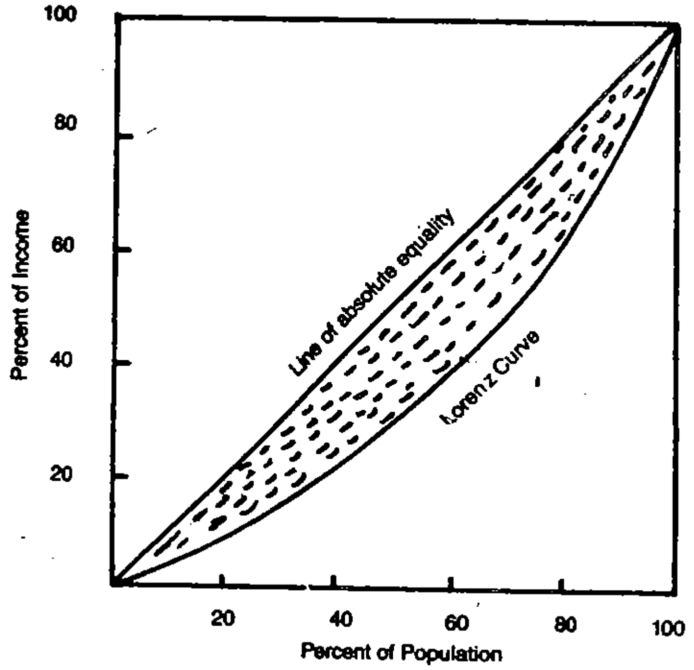

चित्र 20.1

बोध प्रश्न ख

1 आय की असमानता को मापने की दो विधियों के नाम बताइये।

....

....

....

2 असमानता तालिका से आप क्या समझते हैं।

....

....

....

3 लारेंज वक्र का वर्णन कीजिये।

....

....

....

4 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) आय की पूर्ण समानता और पूर्ण असमानता की स्थितियाँ पूर्णतया काल्पनिक हैं। ....

ii) असमानता तालिका आय की असमानता का एक संख्यात्मक माप प्रदान करती है। ....

iii) यदि कोई लारेंज वक्र विकर्ण रेखा का संपात (coincide) होता है तो यह पूर्ण समानता की स्थिति होती है। ....

iv) लारेंज वक्र जो किसी देश की आय के वास्तविक वितरण को दर्शाता है हमेशा विकर्ण से ऊपर की ओर स्थित होता है। ....

20.4 आय की असमानता के कारण

इस इकाई के एक पहले के भाग में आपने पढ़ा है कि आय की असमानता एक वास्तविकता है। इस भाग में आप जानेंगे कि वे कौन से कारक हैं जिनसे आय की असमानता उत्पन्न होती है। मोटे तौर पर आय की असमानता पैदा करने वाले कारकों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी में हम तीन मूलभूत कारकों को शामिल कर सकते हैं। ये हैं : उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व, उत्तराधिकार की संस्था तथा वर्ण, जाति और वर्ग से संबंधित अवसर पर अवरोध। ये कारक न केवल आय की असमानता पैदा करते हैं बल्कि इसे कालांतर में बढ़ाते भी हैं। दूसरी श्रेणी में शिक्षा और प्रशिक्षण और निजी योग्यता आदि कारक शामिल किये जा सकते हैं। इन कारकों का भी आय की असमानता में योगदान होता है लेकिन इनके कारण आय में ऐसी असमानताएँ पैदा नहीं होती जिस पर कम आय वाले व्यक्ति नाराज हों। अब हम यह विवेचन करेंगे कि ये कारक किस प्रकार आय में असमानता लाते हैं।

1 **उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व :** उत्पादन के साधनों, खास तौर से भूमि और पूंजी पर निजी स्वामित्व आय की असमानता का सबसे आधारभूत कारण है। जब तक किसी समाज में सम्पत्ति पर अधिकार एक कानूनी अधिकार है तब तक यह आशा नहीं की जा सकती कि कार्यरत श्रमिक वर्ग और भू-स्वामियों, व्यापारियों, पूंजीपतियों एवं बैंकरों की आयों के बीच के भारी अंतर को समाप्त किया जा सकेगा। एक कृषि-प्रधान समाज में भूमि उत्पादन का मुख्य साधन रही है। अधिकांश स्थितियों में इसे जमींदारों ने बलपूर्वक हड़प लिया। जमींदारों ने खेती के किसी काम में हिस्सा नहीं लिया। वे भूमि पर खेती करने वालों से लगान ऐंठने वाले लगान उपजीवी (rentier) थे। काश्तकार और कृषिदास जो वास्तव में भूमि पर खेती करते थे हमेशा ही गरीब रहे। एक पूंजीवादी समाज में उत्पादन का मुख्य साधन पूंजी है। यह पूंजीपतियों को फैक्टरियों, खानों, बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थाओं व व्यावसायिक फर्मों का स्वामी बनाती है। इन सभी क्रियाओं में पूंजीपति आसानी से काफी लाभ पैदा करता है। दूसरी ओर श्रमिक मजदूरी के लिये अपनी श्रम शक्ति बेचते हैं। एक पूंजीवादी समाज में श्रम शक्ति अन्य वस्तुओं की भांति खरीदी व बेची जाती है। अपने मालिकों के सामने श्रमिकों की सौदेबाजी करने की शक्ति सदा कमजोर होती है। परिणामस्वरूप वे अपने श्रम के लिये पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त नहीं कर पाते और गरीब बने रहते हैं।

2 **उत्तराधिकार :** उत्तराधिकार की संस्था न केवल आय की असमानता पैदा करती है बल्कि उसे कालांतर में बढ़ाती भी है। हमारे देश जैसी अर्थव्यवस्था में कृषि श्रमिकों, सीमांत कृषकों, कारीगरों और औद्योगिक श्रमिकों के परिवारों में पैदा होने वाले बच्चों का कोई भविष्य नहीं है। गरीब परिवारों में पैदा होने पर उन्हें अपने पुरखों से कुछ नहीं मिलता। जब ये बड़े होते हैं तो काम खोजने के अलावा उनके पास कोई विकल्प नहीं होता और जो काम इन्हें मिलता है उससे सदा ही कम मज़दूरी मिलती है। इनकी तुलना में ज़मीदारों, पूंजीपतियों, व्यापारियों, बैंकरों, ठेकेदारों और सफल पेशेवरों के परिवारों में पैदा हुए बच्चों को विरासत में बहुधा बड़ी सम्पत्ति मिलती है। इससे वह अपने जीवन की बहुत अच्छे ढंग से शुरुआत करने लायक हो जाते हैं। ये व्यक्ति औसत योग्यता के होते हुए भी न केवल बहुत अधिक उपार्जन कर लेते है बल्कि अपनी परिसम्पत्ति को बढ़ाने में भी सफल हो जाते हैं, जिससे उनकी और अधिक आय अर्जित करने की सामर्थ्य बढ़ती है। इससे स्पष्ट होता है कि विभिन्न देशों में आय की असमानता कालांतर में बढ़ती क्यों रही।

3 **अवसरों के अवरोधकों के रूप में वर्ण, जाति और वर्ग :** सभी वर्ग समाजों में सभी के लिये समान अवसर उपलब्ध नहीं हैं। उदाहरण के लिये, एक पूंजीवादी समाज में श्रमिक वर्ग के लोगों को नौकरियों का चुनाव करने की अधिक स्वतंत्रता नहीं है। बहुधा शिक्षा, निपुणता और प्रशिक्षण की कमी के कारण ये अच्छी आय प्राप्त करने वाले पेशेवर व्यक्ति बनने की आशा भी नहीं कर सकते। गरीब परिवार के होने के कारण ये उच्च शिक्षा नहीं पा सकते या व्यावसायिक विषयों का अध्ययन भी नहीं कर सकते। साधारणतयाः गरीबों के पास पूंजी की कमी होती है और इसलिये ये कोई व्यापार या औद्योगिक क्रिया भी नहीं कर सकते। वास्तव में व्यापार, उद्योग और अधिक आय वाले व्यवसाय केवल उन्हीं लोगों के लिये होते हैं जिनकी वित्तीय पृष्ठभूमि बहुत मज़बूत होती है। अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीका में रंगभेद इन देशों में श्वेत और काले लोगों की आय में अंतर का मुख्य कारण है। रोज़गार में इन देशों में काले व अन्य अश्वेत लोगों के साथ भेदभाव किया जाता है और श्वेतों की तुलना में इन्हें बहुधा कम मज़दूरी दी जाती है। भारतीय समाज में जातिवाद के कारण सामाजिक रूप से दलित हरिजनों को उन अवसरों से वंचित कर दिया जाता है जो ऊँची जाति के हिंदुओं को उपलब्ध हैं। सामाजिक स्तर पर लम्बे अरसे से हो रहे भेदभावों ने भी काफी हद तक भारतीय समाज में आय की असमानता में योगदान दिया है।

4 **शिक्षा में भेदभाव :** पूंजीवादी देशों में सभी बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर नहीं हैं। अधिकांश गरीब परिवार अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने में समर्थ नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इन देशों में विशिष्ट परिवारों के बच्चों के लिये विशेष स्कूल और कालेज हैं। उच्च और व्यावसायिक शिक्षा महंगी होने के कारण यह साधारणतया अमीरों का विशेषाधिकार है। वे व्यक्ति जो व्यवसायिक प्रबंध, डाक्टरी, इंजीनियरिंग आदि की पढ़ाई करते हैं, अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद ऊंचे वेतन के साथ अपना जीवन शुरू करते हैं, जबकि सामाजिक विज्ञान या साहित्य के स्नातक कम वेतन वाली नौकरी ही खोजते हैं। अब तक यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि एक वर्ग समाज में शिक्षा भी एक वर्ग-चरित्र प्राप्त कर लेती है और आय की असमानताओं को कम करने की बजाय बढ़ाती है।

5 **योग्यता में अंतर :** लोगों की व्यक्तिगत योग्यताओं में अंतर भी कुछ हद तक आय की असमानताओं को स्पष्ट कर सकता है। कुछ व्यक्ति परिश्रमी और सक्रिय होते हैं। एक प्रतियोगी सामाजिक व्यवस्था में ऐसे व्यक्ति अन्य लोगों को काफी पीछे छोड़ देते हैं। साधारणतया इन व्यक्तियों की आय अकर्मण्य और निरुत्साहित लोगों की आय से अधिक होती है। फिर भी ऐसे अंतर जो जैविक कारणों और सामाजिक व आर्थिक वातावरण के कारण हैं, उनकी बढ़ा-चढ़ा कर चर्चा नहीं करनी चाहिए। Paul A. Samuelson ने ठीक ही कहा है कि ये व्यक्तिगत अंतर आय की असमानता की पहेली के उत्तर का केवल एक हिस्सा ही हैं।

बोध प्रश्न ग

1 आय की असमानता के मुख्य कारणों की सूची बनाइये।

क) ....

ख) ....

ग) ....

घ) ....

च) ....

2 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही है या गलत।

भूमि और पूंजी का निजी स्वामित्व आय की असमानता का बुनियादी कारण है। ....

ii) उत्तराधिकार की संस्था आय की असमानता को खत्म कर देती है। ....

iii) वर्गों वाले समाज में आय की असमानता अवश्यंभावी है। ....

iv) अमेरिका में श्वेत और काले लोगों के बीच आय की असमानता को रंग भेद के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता। ....

v) वर्गों वाले समाज में शिक्षा एक वर्ग प्राप्त कर लेती है और आय की समानता को बनाये रखती है। ....

vi) किसी समाज में आय की असमानता व्यक्तिगत अंतरों के द्वारा पूरी तरह स्पष्ट होती है। ....

20.5 आय की असमानता की समस्याएँ

आय की असमानता से बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिनके गंभीर परिणाम होते हैं। आय की असमानता के कारण होने वाली मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित हैं :

1 **गरीबी :** आय की असमानता का शायद सबसे गंभीर परिणाम गरीबी है। भारत, बंगलादेश, श्रीलंका, पाकिस्तान और अफगानिस्तान जैसे तीसरी दुनिया के देशों में गरीबी बहुत व्यापक है। लेकिन अमेरिका जैसे विकसित देशों में भी यह मौजूद है।

जनगणना ब्यूरो और श्रम सांख्यिकी ब्यूरो (U.S.A.) के अनुसार अमेरिका में 1979 में 9 प्रतिशत श्वेत और 30 प्रतिशत काले व्यक्ति गरीबी रेखा से नीचे थे। आपको अचम्भा हो रहा होगा कि अमेरिका जैसे देश में इतने लोग गरीबी रेखा से नीचे थे। इसका स्पष्टीकरण बहुत सरल है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति औसत आय बहुत ऊँची है परन्तु आय की असमानता के कारण कुछ व्यक्तियों के पास अपार धन है लेकिन और लोगों की बड़ी संख्या की स्थिति दयनीय है। भारत जैसे देश में भी जहाँ औसत आय बहुत कम है, यदि आय का वितरण न्यायपूर्ण होता तो लाखों लोग भूखे नहीं मरते। यह बात एक अमेरिकी अर्थशास्त्री John G. Gurley ने चीन का जिक्र करते हुए स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने लिखा है कि चीन के बारे में एक मूलभूत, अधिभावी (oversiding) आर्थिक तथ्य यह है कि 20 वर्षों तक उसने सबको रोटी-कपड़ा और मकान प्रदान किये, उन्हें स्वस्थ रखा और अधिकांश को शिक्षा प्रदान की। लाखों लोग भूखे नहीं मरे, पटरियाँ और गलियाँ, भूखे-भिखारियों और अनपढ़ों से भरी नहीं रही। Gurley का कथन इस बात को प्रमाणित करता है कि गरीबी मुख्यतः आय की असमानता का परिणाम है।

2 **अवसरों की समानता का अभाव :** आय की असमानता अवसर की असमानता की जड़ है। संवैधानिक समानता बहुधा बहुत कम उपयोगी हो पाती है। गरीब परिवारों में पैदा हुए बच्चों को बहुत कम अवसर प्राप्त होते हैं। कम विकसित देशों में खेतिहर मज़दूरों, सीमांत किसानों, कारीगरों और औद्योगिक श्रमिकों के बच्चों का भविष्य उनके गरीब परिवारों से होने के कारण अंधकारमय होता है जबकि जीवन में तरक्की करने के सारे अवसर विशिष्ट वर्ग के लोगों को उपलब्ध होते हैं। Samuelson के अनुसार अमेरिका में भी व्यवसायों के कार्यकारी प्रबंधक साधारणतया कृषि या मज़दूर परिवार से नहीं होते। संभव है कि ये व्यापार करने वाले परिवार या व्यवसायी परिवार से ही हों। शिक्षा के अवसर भी सबको समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं।

3 **हानिकर उपभोग :** आय की असमानता बहुधा हानिकर उपभोग को प्रोत्साहित करती है। ऊँची आय वाले लोग प्रदर्शन उपभोग में पैसा खर्च करते हैं जबकि देश को विकासात्मक परियोजनाओं और गरीबी हटाने के कार्यक्रमों के लिये वित्त की बहुत आवश्यकता हो सकती है। विकसित और अल्पविकसित दोनों ही प्रकार के देशों में अमीरों का अधिकांश उपभोग अनावश्यक होता है। बड़े व आलीशान मकान बनाना, मार्बल के फर्श बनाना, एक से अधिक कारें रखना, आलीशान होटलों में भोजन करना और सभी प्रकार के बिजली और इलेक्ट्रॉनिक साज-समानों का प्रयोग करना आदि हानिकर उपभोग के कुछ उदाहरण हैं। बहुत थोड़े से लोगों द्वारा किया गया प्रदर्शन-उपभोग बाकी लोगों की रुचि को विकृत कर देता है और ये लोग भी जायज़ और नाजायज़ सभी तरीकों से इन वस्तुओं को पाने का प्रयत्न करते हैं। यदि वे इसमें असफल होते हैं तो कभी-कभी वे आवश्यक वस्तुओं पर खर्चा कम करके वैभव की वस्तुओं पर अधिक पैसा खर्च करते हैं।

4 **साधनों के आबंटन में अविवेक :** किसी भी समाज में साधन सीमित होते हैं। अतः उनका प्रयोग विवेकपूर्ण होना चाहिये। कुछ अर्थशास्त्रियों का मत है कि बाज़ार में माँग के स्वरूप के आधार पर साधनों का आबंटन विवेकपूर्ण होता है। लेकिन यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि आय और धन का

वितरण संतोषजनक है। लेकिन सच्चाई यह है कि पूंजीवादी समाज में आय और धन का वितरण हमेशा अन्यायपूर्ण होता है और इसलिये इन देशों में असमानता को प्रदर्शित करने वाला जो माँग का ढांचा उभरता है उसे विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता। आपने देखा होगा कि हमारे देश में ही बहुधा अपेक्षाकृत कम उपयोगी वस्तुएँ बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होती हैं जबकि आवश्यक वस्तुओं की कमी होती है। यह समस्या हमारे देश में आय की असमानता से उत्पन्न होती है।

5 **आर्थिक विकास में व्यवधान :** आय की असमानता कम विकसित देशों में एक व्यवधान साबित होती है। जैसा कि इस भाग में पहले बताया है, आय की असमानता, जिससे गरीबी बढ़ती है, श्रमिक वर्ग की बहुत बड़ी संख्या के कुपोषण का कारण भी है। इसके अतिरिक्त, दुःखद अवस्थाओं में रह रहे ये लोग शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं से भी वंचित रह जाते हैं। इनकी इस आर्थिक दशा का परिणाम यह होता है कि इनकी उत्पादिता का स्तर नीचा रहता है जिससे आर्थिक विकास की गति धीमी हो जाती है।

बोध प्रश्न घ

1 आय की असमानता से उत्पन्न होने वाली समस्याओं की सूची बताइए।

....

....

....

2 निम्नलिखित में सही उत्तर पर (√) चिन्ह लगाइये :

i) कम विकसित देशों में गरीबी मुख्य रूप से आलस्य/आय की असमानता के कारण है। ....

ii) आय की असमानता किसी भी समाज में हानिकर उपभोग/विवेकी उपभोग को प्रोत्साहित करती है। ....

iii) एक ऐसे समाज में जहाँ आय का वितरण असमान है, यह आशा की जाती है कि साधनों का आबंटन अधिक विवेकी/अविवेकी होगा। ....

iv) सबको समान अवसर प्रदान करने के लिये समाज में आय का न्यायपूर्ण वितरण/आय के वितरण में असमानताएँ होना आवश्यक है। ....

v) श्रम की उत्पादिता पर आय की असमानता का कुल प्रभाव धनात्मक/ऋणात्मक होता है। ....

3 बताइए कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) अमेरिका जैसे सुविकसित देशों में भी आय की असमानता से गरीबी आई है। ....

ii) भारत जैसे कम विकसित देशों में भी आय में सख्ती से पुनर्वितरण के द्वारा गरीबी खत्म की जा सकती है। ....

iii) आय की असमानता का यह अर्थ नहीं है कि सबको समान अवसर नहीं मिलते। ....

iv) एक व्यक्ति कितनी शिक्षा प्राप्त करने की आशा कर सकता है, यह उसकी योग्यता पर निर्भर करता है न कि उस परिवार की आय पर जिसका वह सदस्य है। ....

v) एक देश में आय की असमानता उन लोगों के उपभोग के रूप में विकृति पैदा कर देती है जो बहुत धनी नहीं है। ....

vi) एक अल्प आय वाली अर्थव्यवस्था में आय की असमानता का श्रम की उत्पादिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। ....

20.6 आय का पुनर्वितरण

लगभग सभी देशों में आय के पुनर्वितरण की आवश्यकता महसूस की जाती है। आय की असमानता, जो निजी सम्पत्ति की संस्था और बाज़ार शक्तियों के मुक्त व्यवहार से उत्पन्न होती हैं, ऐसे सामाजिक तनाव पैदा करती है जिनसे पूंजीवादी समाज को खतरा हो जाता है। अतः असमानताओं को कुछ कम करने का दबाव सदा बना रहता है और ये काम आय के पुनर्वितरण की नीति और गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों को अपना कर किया जा

सकता है। इस भाग में हम केवल उन उपायों पर विचार करेंगे जो आय के पुनर्वितरण के लिये अपनाये जा रहे हैं। ये उपाय निम्नलिखित हैं :

1 **आरोही आय कर (Progressive tax) :** अब यह सर्वमान्य है कि किसी देश के कर ढांचे को कर देने की योग्यता के मापदंड का पालन करना चाहिये। इसका तात्पर्य है कि कर आरोही दर से लगाने चाहिये यानि एक न्यूनतम सीमा से कम आय पर कर नहीं लगने चाहिये और इस सीमा से अधिक पर जैसे-जैसे आय बढ़े, कर की दर बढ़नी चाहिये। परोक्ष कर जो वस्तुओं पर लगाये जाते हैं उन्हें आरोही बनाना आसान नहीं है। इस दृष्टि से आय कर सबसे उपयुक्त है। यदि आय कर आरोही है तो यह आशा की जाती है कि यह अपेक्षाकृत गरीबों के हक में आय के वितरण में सुधार लाएगा। लेकिन व्यवहार में, विभिन्न प्रकार की करों में छूटों और व्यापक कर चोरी से आय कर की आरोहिता कम हो जाती है और इस प्रकार आय के पुनर्वितरण के उपाय के रूप में आय कर का प्रभाव बहुत कम हो जाता है।

2 **सम्पदा शुल्क :** सम्पदा शुल्क (Estate duty) मृतक की सम्पत्ति पर लगाया जाता है। कुछ देशों में इसे मृत्युकर भी कहते हैं। उत्तराधिकार कर इससे कुछ भिन्न है क्योंकि यह उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति पर लगता है। यह आय और धन की असमानता कम करने का प्रयत्न भी करता है। एक पूंजीवादी समाज में जहां निजी संपत्ति और निजी उद्यम की वैधता को माना जाता है उत्तराधिकार के नियम का खत्म होना सम्भव नहीं है। फिर भी, अब यह मान लिया गया है कि माँ-बाप की सारी सम्पत्ति को बच्चों को हस्तांतरित होने से रोकना आवश्यक है। इस उद्देश्य से अधिकांश विकसित और अल्पविकसित देशों में आरोही सम्पदा शुल्क लगाया जाता है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि जब तक सम्पदा शुल्क की आरोहिता बहुत अधिक नहीं होगी तब तक यह आय के पुनर्वितरण के उपाय के रूप में प्रभावी नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, इस उपाय से कोई भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने में बहुत समय लगता है क्योंकि इसका प्रभाव केवल तब पड़ता है जब सम्पत्ति का स्वामित्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता है।

3 **सामाजिक सुरक्षा उपाय :** वृद्ध, बेरोजगार और अपंग व्यक्तियों का समाज के सबसे निचले वर्ग में होने की सम्भावना सबसे अधिक होती है। आय का कोई नियमित स्रोत न होने के कारण इनकी दुर्दशा का अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिये, बहुत से देशों में सामाजिक सुरक्षा उपाय अपनाये गये हैं। इनमें से वृद्धावस्था पेंशन, बेरोज़गारी भत्ता, और सामाजिक सुरक्षा बीमा कुछ महत्त्वपूर्ण उपाय हैं। औसत आयु में वृद्धि और समाज में वृद्ध माता-पिता के प्रति उदासीनता के कारण किसी भी सभ्य समाज में वृद्धावस्था पेंशन को सर्वाधिक प्राथमिकता मिलनी चाहिये। बेरोज़गारी के सदैव अनैच्छिक होने के कारण बेरोज़गार लोगों को, उनकी बिना किसी गलती के कारण, दुःख उठाने के लिये छोड़ देना उचित नहीं है। इसलिये कुछ विकसित देशों में बेरोज़गारी भत्ते की व्यवस्था है जिसके अंतर्गत सरकार बेरोज़गारों को कुछ भत्ता देती है ताकि वे जीवित रह सकें। अल्पविकसित देशों में सरकारें साधनों की कमी के बहाने बनाकर इस जिम्मेवारी को स्वीकारने से कतराती हैं। सामाजिक सुरक्षा बीमा भी लोकप्रिय होता जा रहा है। यह योजना गरीब श्रमिक वर्ग के परिवारों के हित के लिये है। सामाजिक सुरक्षा बीमा योजना प्रायः बीमारी, दुर्घटना, प्रसूति और पराश्रित होने की अवस्थाओं में हित लाभ प्रदान करने का प्रयत्न करती है। गरीबों की दशा सुधारने में इस भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

बोध प्रश्न च

1 उन उपायों की सूची बनाइये जो सामान्यतः आय के पुनर्वितरण के लिये अपनाये जाते हैं।

....

....

....

2 बताइये कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत।

i) आरोही कर ढांचा निम्न आय वर्गों के पक्ष में आय का पुनर्वितरण करता है। ....

ii) आरोही कर वह है जिसकी दर आय के अनुपात से बढ़ती है। ....

iii) कर छूटें (tax exemptions) और कर वंचन (tax evasions) आय कर की आरोहिता को कम करती हैं। ....

iv) असमानता के बने रहने को रोकने के लिये सारी सम्पत्ति का माँ-बाप से बच्चों को हस्तांतरण रोकना आवश्यक नहीं है। ....

v) सम्पदा शुल्क का आय के पुनर्वितरण पर प्रभाव केवल दीर्घावधि में महसूस होता है। ....

vi) जिस समाज की जनसंख्या में वृद्धों का अनुपात काफी होता है वहाँ वृद्धावस्था पेंशन की आय के पुनर्वितरण के उपाय के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ....

vii) आय के पुनर्वितरण के लिये बेरोजगारी निर्वाह दान (unemployment dole) का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि जो लोग काम नहीं करना चाहते उनको सहारा देना समाज का दायित्व नहीं है। ....

viii) सामाजिक सुरक्षा बीमा प्रणालियों से आय का पुनर्वितरण समाज के अमीर-वर्ग के हित में होता है। ....

20.7 सारांश

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में आय का वितरण न्यायोचित ढंग से नहीं है। आर्थिक विकास के शुरु के चरणों में आय की असमानता बढ़ने की प्रवृत्ति दिखने में आती है, एक उच्चतम सीमा पर पहुँचती है और उसके बाद घटने लगती है। कुछ अनुभवाश्रित अध्ययन, खासतौर से Simon Kuznets और Adelman Morris द्वारा किये गये अध्ययन; इस बात की पुष्टि करते हैं। विकास की शुरु की अवस्थाओं में आय की असमानता में वृद्धि का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि शुरू में आर्थिक संवृद्धि छोटे से आधुनिक क्षेत्र में केन्द्रित रहती है और इसके लाभ ज्यादातर समाज के धनी वर्ग को मिलते हैं। एक बार विकासात्मक क्रियाओं के अर्थव्यवस्था के सारे क्षेत्रों में फैलने पर आय वितरण गरीबों के हक में होने लगता है।

अर्थशास्त्री अब आय की असमानता मापने के लिये कई तरीकों का प्रयोग करते हैं। इनमें लॉरेंज वक्र सबसे सामान्य है। लॉरेंज वक्र असमानता के अध्ययन की एक ग्राफिक विधि है। आय के वास्तविक वितरण को दिखाने वाला लॉरेंज वक्र पूर्ण समानता वाली रेखा के नीचे ही स्थित होना चाहिये और इन दोनों के बीच का क्षेत्र आय के वितरण में पूर्ण समानता से विचलन दिखाता है। अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में आय की असमानता विभिन्न कारणों से होती है जैसे उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व, उत्तराधिकार की संस्था, जाति, वर्ण, रंग जो अवसरों के अवरोधक हैं, शिक्षा में भेदभाव, योग्यता में अंतर आदि। उत्पादन के साधनों, खासतौर से भूमि और पूंजी, का निजी स्वामित्व आय की असमानता का मूलभूत कारण है और जब तक यह रहता है तब तक आय की असमानता खत्म नहीं हो सकती है। हाँ, इसमें थोड़ा सा परिवर्तन किया जा सकता है। उत्तराधिकार की संस्था आय की असमानता का अन्य मूलभूत कारण है। इसके कारण आय की असमानता कालांतर में बहुधा बढ़ती है।

आय की असमानता से समाज में बहुत सी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसका सबसे भयंकर परिणाम गरीबी है। गरीबी विकसित देशों में भी प्रचंड रूप में मौजूद है और यह आय की असमानता का परिणाम है। आय की असमानता का अर्थ है अपेक्षाकृत गरीब लोगों को उन अवसरों से वंचित रखना जो अमीरों को उपलब्ध हैं। आय की असमानता से हानिकर उपभोग होता है जिससे साधनों का आबंटन अविवेक ढंग से होता है। यह भी एक गम्भीर समस्या है। कम विकसित देशों में आय की असमानता से होने वाली गरीबी के कारण श्रम की कार्यकुशलता कम रहती है जो आर्थिक विकास में अवरोधक है।

आय की असमानता के परिणामों से यह स्पष्ट है कि इसमें सुधार की आवश्यकता है और इसके लिये आय के पुनर्वितरण की नीति अपनाना जरूरी है। आय का पुनर्वितरण करना आसान नहीं है। फिर भी बहुत से देशों में सरकारों ने आरोही कर ढाँचा और अन्य सामाजिक सुरक्षा उपाय अपनाएँ हैं ताकि आय के वितरण को न्यायोचित बनाया जा सके।

20.8 शब्दावली

वर्ग समाज : दो या उससे अधिक वर्गों में विभाजित समाज।

प्रदर्शन उपभोग : अपने धन को दिखाने के लिये किया गया उपभोग।

द्वैतवादी ढांचा : एक सामाजिक ढांचा जिसमें परम्परागत और आधुनिक क्षेत्र दोनों मौजूद हों।

आय का न्यायोचित वितरण : आय का उचित वितरण।

आय की असमानता : व्यक्तिगत आय के वितरण में असमानता।

असमानता तालिका : मान्यता की गई पूर्ण समानता और पूर्ण असमानता के साथ आय का वास्तविक वितरण दिखाने वाली तालिका।

उत्तराधिकार की संस्था : वह व्यवस्था जिसके अंतर्गत बच्चे अपने माँ-बाप की सम्पत्ति के कानूनी उत्तराधिकारी बन जाते हैं।

साधनों का अविवेकी आबंटन : साधनों का ऐसा आबंटन जिससे समाज का अधिकतम कल्याण सुनिश्चित नहीं होता।

लॉरेंज वक्र : आय की असमानता के अध्ययन की एक ग्राफिक विधि।

आरोही कराधान : कर प्रणाली जिसमें आय के बढ़ने के साथ कर की दर बढ़ती है।

वर्ण भेद-भाव : वर्ण के आधार पर लोगों में भेद-भाव।

बेरोज़गारी निर्वाहदान : सरकार द्वारा सामाजिक सुरक्षा योजना के अंतर्गत बेरोज़गारों को किया गया थोड़ा सा भुगतान।

20.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

क 3 (i) गलत (ii) सही (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) सही

ख 1 असमानता तालिका और लॉरेंज वक्र

4 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत

ग 2 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) गलत

घ 2 (i) आय की असमानता (ii) हानिकर उपभोग (iii) अविवेकी (iv) आय का न्यायोचित वितरण (v) ऋणात्मक

3 (i) सही (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v) सही (vi) सही

च 2 (i) सही (ii) गलत (iii) सही (iv) गलत (v) सही (vi) सही (vii) गलत (viii) गलत

20.10 स्वपरख प्रश्न

1 आय की असमानता का क्या अर्थ है ? कम विकसित देशों में आय का वितरण विकसित देशों में आय के वितरण से कैसे भिन्न है ?

2 विकास करती हुई अर्थव्यवस्था में आय के वितरण में आशा किये जाने वाले परिवर्तनों का विवेचन कीजिए ।

3 आय की असमानता को मापने की लॉरेंज वक्र विधि को स्पष्ट कीजिये।

4 आय की असमानताएँ समान्यतः किन कारणों से होती हैं ?

5 आय की असमानता से कौन सी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं ? क्या ये समस्याएँ गंभीर हैं ?

6 आय के पुनर्वितरण की आवश्यकता का विश्लेषण कीजिये। उन उपायों का भी विवेचन कीजियें जो पूंजीवादी देशों में आय की असमानता को कम करने के लिये अपनाये जा रहे हैं ?

नोट : इस इकाई को अच्छी तरह समझने के लिए यह प्रश्न और अभ्यास आपकी सहायता करेंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयास कीजिए। परन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

एस॰ सी॰ बरला : *उच्चतर व्यष्टिगत अर्थशास्त्र* (नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 1988)

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका : *व्यष्टि अर्थशास्त्र* (मेरठ : मीनाक्षी प्रकाशन, 1988)

पी॰ ए॰ सैम्युलसन : *अर्थशास्त्र,* दसवा संस्करण (दिल्ली : कैपिटल बुक हाउस, 1982)

डोनाल्ड स्टीवेंसन एवं मेरी ए॰ हालमैन : *मूल्य सिद्वांत एवं उसके उपयोग* (चण्डीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1986)

एस॰ के॰ मिश्रा : *आर्थिक प्रणालियां एवं व्यष्टि अर्थशास्त्र* (प्रगति पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1988)